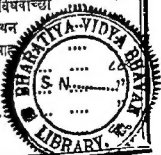


विषय.	पृष्ठांक.	विषय	पृष्ठांक.
<b>आर्तवपरीक्षा ।</b>		तथा ....	११
शुद्धआर्तवके लक्षण ....	११	तथा ....	११
आर्तवके यथार्थ अपवृत्तिके दोष ८७३		यामलका प्रमाण ....	११
<b>मलपरीक्षा ।</b>		<b>स्पर्शपरीक्षा ।</b>	
वातपित्तादिसे मलके चिह्न .... ८७३		वातादिसे स्पर्शके लक्षण .... ८८२	
पित्तवात और कफ पित्तजन्य मलके चिह्न ... ८७४		त्वचाका स्पर्श .... ११	
त्रिदोषजन्य मलके चिह्न .... ११		थर्मोमीटर लगानेकी विधि .... ८८३	
जीर्ण मलके लक्षण .... ११		प्लैक्सोमीटर यंत्र .... ८८५	
क्षीण दोष और जलोदरवालेके मलके लक्षण .... ११		स्टिपसकोप यंत्र .... ११	
क्षयादिमें मलके लक्षण .... ११		अवस्थापरीक्षा .... ११	
वातादिदोषजन्यमलके चिह्न ... ११		जातिपरीक्षा .... ८८६	
आमादि रोगके कारण मलके लक्षण ८७५		<b>कालज्ञानम् ।</b>	
वातादि मूत्रके लक्षणांतर .... ११		कालको मुख्यत्व .... ८८७	
असाध्य आदिसे मलके चिह्न .... ११		सृष्टि संहार और पालनमें कालका मुख्यत्व ११	
<b>मुखपरीक्षा ।</b>		कथन .... ११	
वातादिसे मुखका स्वाद .... ८७६		छः महानि पूर्व मृत्युजाना जाय है यह कथन .... ११	
डाकरी मतानुसार मुखपरीक्षा .... ११		उत्पन्न संहार और सुप्तावस्थामें कालको मुख्यत्व कपल .... ११	
<b>जिह्वापरीक्षा ।</b>		देव नागादिकोंका कालसे नाश ११	
वातादिदोषसे जिह्वाके लक्षण .... ८७७		ब्रह्मदेवका मरणत्वसे कालको मुख्यत्व ११	
डाकरीमतसे परीक्षा .... ८७८		मनुष्यको मरणत्वकथन .... ८८८	
<b>शब्दपरीक्षा ।</b>		वर्षाशीतादिकालके रूप .... ११	
वातादि दोषसे स्वरके लक्षण .... ८७९		पृष्ठ बीज और स्त्रीको प्रसूतित्व कथन .... ११	
<b>नेत्रपरीक्षा ।</b>		कालमें कर्मको मुख्यत्व .... ११	
वातजन्यनेत्र .... ८८०		कालाग्रिकी चतुर्विधवाञ्छा ११	
पित्तकफजन्यनेत्र .... ११		षट्चक्रादिकों कथन ८८०	
द्वंद्वज और सन्निपातजन्य ... ११		तत्रादौषट्चक्राण्यात् ८८०	
डाकरीमतानुसार शब्दपरीक्षा .... ११		मतांतर ११	
डाकरीमतसे नेत्रपरीक्षा .... ११		गोडशाधार ११	
अमाध्य लक्षण .... ८८१		त्रिलक्ष्य ११	
तथा .... ११		स्तम्भादिकथन ११	



विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
प्राण पवनकी संख्या कथन ....	११	नेत्रोंकी विकृति ....	११
आत्मा अंतरात्मा और परमात्मा	११	बाह्यकी विकृति ....	८९८
प्राण पवनको निकलनेके पश्चात्		देहके अवयव क्रियाकी विपरीतता	११
देहको शून्यत्वकथन ....	११	गिरकर न उठनेकी विकृति ....	११
स्वरोदयकामत ....	११	उत्तान शयनादिकी विकृति ....	११
सूर्य और चंद्रमार्गसे उदयास्तकाफल	११	श्वासकी विकृति ....	११
पक्षमे होनहार मृत्युका ज्ञान ....	८९१	निद्रा जागरण और बोलनेकी विकृति	११
शीघ्र मृत्यु होनेका ज्ञान ....	११	होंठोंका चाटना आदि ....	८९९
चंद्रसूर्यके गमनका क्रम ....	११	रोमकूपोंसे रुधिर निकलना ....	११
पंचभूतात्मक दीपकी रक्षा ....	११	बाताघीलाका फल ....	११
आयुहीनके लक्षण ....	११	अतिसारादि उपद्रव ....	११
अरुंधत्यादिकी सज्ञा ....	११	स्वेदादि उपद्रव ....	११
जलमें सूर्य चंद्रके प्रतिबिम्बदर्शनद्वारा रोगी-		मुखकी विकृति ....	९००
के मरणका ज्ञान ....	८९२	तथा ....	११
ग्रहणमें अरिष्टको मुख्यत्व ....	११	देहभारीपना आदि विकृति ....	११
अरिष्टको निश्चय मारकत्व कथन	११	गंधद्वारा विकृतिकथन ....	११
अरिष्टके जाननेमें भूलोंको दुर्घटत्व	८९३	यूकादिकी विकृति ....	११

पंचेन्द्रियार्थविप्रतिपत्तिः ।

क्षारीकी विप्रतिपत्ति	२०००	२०००	२१
कर्णेन्द्रीकी विकृति	२०००	२०००	२१
स्वचाकी विकृति	२०००	२०००	८९४
जिह्वाइन्द्रीकी विकृति	२०००	२०००	८९५
नासिका इन्द्रीकी विकृति	२०००	२०००	२१
तथा	२०००	२०००	२१
तथा	२०००	२०००	२१

छायाविप्रतिपत्ति ।

छायाकी विपरीतता कथन	....	११
प्रभाकी विपरीतता.	....	१२७
ओठोंकी विकृति	....	११
दांतोंकी विकृति	....	११
गिन्हाकी विकृति	....	११
नासिकाकी विकृति	....	११

विषय.	पृष्ठांक.
नेत्रोंकी विकृति	११
बालोंकी विकृति	८९८
देहके अवयव क्रियाकी विपरीतता	११
गिरकर न उठनेकी विकृति	११
उत्तान शयनादिकी विकृति	११
श्वासकी विकृति	११
निद्रा जागरण और बोलनेकी विकृति	११
होंठोंका चाटना आदि	८९९
रोमकूपोंसे रुधिर निकलना	११
बाताछाँलाका फल	११
अतिसारादि उपद्रव	११
स्वेदादि उपद्रव	११
मुखकी विकृति	९००
तथा	११
देहभारीपना आदि विकृति	११
गंधद्वारा विकृतिकथन	११
सूकादिकी विकृति	११
क्षुधाकी विकृति	११
प्रवाहिकादि उपद्रव	९०१
अरिष्ट होने और उसको मारणमें कारणत्व	११
मरण समय क्रियाओंके निष्फलत्व होनेमे कारण	११

स्वभावविप्रतिपत्तिः ।

देहमे स्वभावसिद्ध पदार्थोंकी विकृति	”
तथा ....	”
तथा ....	९०२
तथा ....	”
तथा ....	”
तथा ....	९०३
ग्रहोंकी दृष्टी	९०४
चिकित्साके विपरीत होनेका फल	”
पुष्पित मनुष्य ....	९०५
रसजन्य विकृति	”

विषय.	पृष्ठांक.	विषय	पृष्ठांक.
रसज्ञानमें शंका समाधान ....	९०६	वृक्ष द्वारा परीक्षा ....	१
मुखमें तीन टगली न जानेका फल ..	"	तिलक ( क्रोम ) की विवृति ....	"
चंद्रादिककी छाया आदि न		आंतोकी परीक्षा ....	"
दीखनेका फल ....	"		
स्नानमें प्रथम छाती आदि सूखनेका		<b>बालकोंके रोगकी परीक्षा ।</b>	
फल ....	९०७	बालकोंके रोग ज्ञानकी दुर्घटत्व ....	९१६
कानोंकी विपरीततादि ....	"	बालकोंके दूधके पात्र कथन ....	"
भोजनादिककी विपरीतता ....	"	बालकको यत्नमें असावधानी करने-	
पहुंचे न देखने आदिका फल ..	"	बाले वैद्यकी पार्ष्णीयत्व कथन ....	९१७
रोमांच और नख उखरनेका फल ..	"	घायसे घृष्णद्वारा बालकोंके रोगकी	
अरिष्टोंको मृत्युसूचकत्व कथन ..	९०८	परीक्षा ....	"
मूर्ख प्राणीको अरिष्टोंका अशास्त्रत्व	"	परीक्षा करनेमें आज्ञा और परीक्षाविधि ..	"
अरिष्टा परिपाक ....	"	संनिपातादि परीक्षा ....	९१८
वेद्यकी अरिष्टज्ञानकी मुख्यता ..	"		
अरिष्टकी शांति ....	९०९	<b>वस्त्रपरीक्षा ।</b>	
		वातादिकी वस्त्रद्वारा परीक्षा ....	"
<b>छायापुरुष ।</b>		दीर्घ रोग और मरणासन्नके वस्त्रकी	
छाया पुरुष द्वारा बाल ज्ञान कथन ..	"	परीक्षा ....	९१९
एकांतमें छायासाधन ....	"		
मनकथन ....	"	<b>देशपरीक्षा ।</b>	
कालपुरुषका स्वरूपदर्शन ....	"	अनुपदेशलक्षण ....	"
दोषर्षमें निकालज्ञत्व ....	९१०	अनुपदेशके भेद ....	९२०
निरंतर अम्बासका फल ....	"	जांगल देशके लक्षण ....	"
कालपुरुषके कृष्ण वर्ण रीखनेका फल	"	तथा ....	"
पीत नीलादि वर्णका फल ....	"	साधारण देशके लक्षण ....	९२१
अंग हीन कालपुरुषके दीखलेका फल	"	तथा ....	"
वृत्तिभेद ( पेशा ) ....	९११	साधारणदेशके भेद ....	"
स्वरूपपरीक्षा ....	"	देशोचित विषयोंमें दुर्देशांग	
जठरस्थ रोगोंकी परीक्षा ....	९१२	अप्रपारितकथन ....	९२२
यष्ट् आनाशपादिकी विवृति ..	"	स्वदेशगन्ध औषधोंके मुख्यता ....	"
अभिघात द्वारा उद्घाटन परीक्षा ..	"	स्वदेशसंज्ञित दोषोंको अन्य देशमें	
तथा ....	९१३	क्षुण्णित होनेमें निर्बलत्वकथन ....	"
तथा ....	९१४		
यष्ट् विवृतिके लक्षण ....	"	<b>मानपरिभाषा ।</b>	
ज्ञेया द्वारा परीक्षा ....	९१५	मानसूत्र ....	"

विषय	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
त्रसरेणुसंज्ञा ....	११	अनुक्त कालादिकोंकी योजना ....	११
परमाणुके लक्षण ....	११	विशेष कथन ....	१३४
वंश्यादिकोंके परिमाण ....	११	औषधके हीन वीर्य होनेमें प्रमाण	११
मासेकापरिमाण ....	११	उक्तानुक्त द्रव्यका त्याग और ग्रहण	११
ज्ञान और कोलका परिमाण ....	११	देशभेदकाके औषधोंके भेद ....	१३५
कर्षका परिमाण ....	१२४	औषधी लानेका प्रकार ....	११
अर्धपल तथा पलका परिमाण ....	११	ऋतुविशेष करके रोगविशेषोपर	
प्रसूतिसे आदिलेमानिका पर्यंतका परिमाण ....	११	औषध लेनेका काल ....	११
प्रस्थ और आढकका परिमाण....	१२५	औषध विशेषका अंग ग्रहण ....	१३६
द्रोणसेलेकर द्रोणी पर्यंतका परिमाण	११	पक पदार्थोंका फिर पक करनेमें दोष	१३७
खारीका प्रमाण ....	११	द्रव्योंकी परीक्षा ....	११
भारका और तुलाका परिमाण....	१२६	पाराहीकंद संचर और संधव इनकी परीक्षा	११
मुखबोधार्थ उक्तमानका संग्रह ....	११	सुवर्णमासिक तथा रौप्यमासिककी परीक्षा	११
परिभाषाके मतभेदकी ऐक्यता....	११	शिलाजीतकी परीक्षा ....	११
पतलीगीली और शुष्क औषध इनके योगका मान ....	१२८	कपूरइलायची और चंदनकी परीक्षा	१३८
दूध आदिपतली वस्तुनापनेकी मुक्ति	११	रक्तचंदनकी परीक्षा ....	११
कलिंग, मागध और गौड़देशके मासे-की संज्ञा ....	११	देवदार और सरलकी परीक्षा ....	११
सुश्रुत और चरक तथा गौड़देशका मान	११	दारुहृददी और जायफलकी परीक्षा	११
औषधतोलनेमें मागध परिभाषाके वजनका उदाहरण ....	१२९	दासकी परीक्षा ....	११
प्रथम औषधके नामानुसार योगकी संज्ञा कथन ....	१३०	खांड और शहदकी परीक्षा ....	१३९
अत्यंत और थोड़ी औषध देनेको निष्फलत्व	११	स्वभावसे हितकारक द्रव्य ....	११
तथा ....	११	शिम्बीधान्यमें उत्तम ....	११
भक्षणरूप मात्राका अनियम ....	११	उत्तम फल ....	११
औषध सेवनका प्रमाण कलिंग परिभाषाकर के कथन ....	१३१	पत्रफल और कंद इनज्ञाकोंमें उत्तम	११
कलिंग परिभाषाका वजन ....	११	मृग पक्षी और मछली इनमें उत्तम	१४०
कृष्णात्रेयका वजन ....	११	हरिणोंके भेद ....	११
औषधोंका युक्तायुक्त विचार ....	१३२	जल दूध घृत तेल इशु विकार इनमें उत्तम	११
गीली औषध ग्रहणाय ....	११	स्वभावसे अहितकारी द्रव्य ....	११
साधारण औषधकी योजना ....	११	सयोगविरुद्ध ....	११
		औषध ग्रहणमें संकेत ....	१४१
		अतः समार्जन और बहिः समार्जनमें	
		ग्राह्य ....	१४२
		औषधभक्षणमें काल....	११
		औषधभक्षणमें पांच काल ....	११
		प्रथमकाल ....	११



विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
द्वितीयकाल .....	९४३	मधुररसकी द्रव्य ( मधुरवर्ग )....	९५१
तृतीय काल .....	"	अम्लवर्ग .....	"
चतुर्थ काल .....	९४४	लवण वर्ग .....	"
पंचम काल .....	"	कटुक वर्ग .....	९६०
औषधकी प्रतिनिधि .....	"	तिक्तवर्ग .....	"
अप्रधानकी प्रतिनिधिलेना प्रधानकी		कषाय वर्ग .....	"
नदीलेना .....	"	रसोंके संयोगसे भेद वर्णन .....	९६१
<b>रस विशेषविज्ञानीयाध्यायः ।</b>		पथ्यद्वारा रसोंके भेद वर्णन .....	"
आकाशादिमें शब्दादिककी योजना कहकर		एक रसके भेदका उदाहरण .....	९६२
आप्परसकी उत्कृष्टता कथन ९५१		दो रसके भेद .....	"
आप्परसके छः भेद .....	९५२	तीन रसके भेद .....	९६३
छः रस .....	"	चार रसके भेद .....	"
छः रसोंके त्रैसठ भेद .....	"	पांच रसके भेद .....	"
प्रत्येक रसका वर्णन .....	"	छः रसका भेद .....	"
मधुरादि रसोंको घातादि दोषनाशकत्व		भोगनोत्तर बलवान् रसके अनुयायी अन्य	
रसोंको स्वयोनिवर्द्धनत्व और परयोनि		रसोंको कथन .....	९६४
नाशकत्वकथन .....	९५३	मधुरादिकोंके अन्य विशेषगुण तहांमधुर	
रसोंको अमिसोर्मापत्व .....	"	रसके गुण .....	"
रौक्ष गुणसे वायुके कर्म .....	"	अम्लरसके विशेषगुण .....	"
लवण गुणसे पित्तके कर्म .....	९५४	लवण रसके विशेष गुण .....	"
माधुर्य गुणसे कफके कर्म .....	"	तीक्ष्णरसके गुण .....	"
रसोंके लक्षण .....	"	पापल आदि तीक्ष्ण द्रव्योंको घृष्पत्व ९६५	
मधुर रसके लक्षण .....	९५५	संयोगीगुण .....	"
अम्लरस .....	"	शुभिव्यादि शूतोंके गुण .....	"
लवणरस .....	"	लघुगुर आदि पदार्थोंके गुण .....	"
कटुरस .....	"	सुश्रुतोक्त विज्ञाति गुणाः .....	"
तिक्तरस .....	"	गुरु गुण .....	९६६
कषायरस .....	"	लघु गुण .....	"
मधुररसके गुणागुण .....	९५६	स्निग्धगुण .....	"
अम्लरसके गुणागुण .....	"	रूक्षगुण .....	"
लवणरसके गुणागुण .....	९५७	तीक्ष्णगुण .....	"
कटुक रसके गुणागुण .....	"	इक्ष्णु गुण .....	"
तिक्तरसके गुणागुण .....	९५८	स्मिर और मर गुण .....	"
कषायरसके गुणागुण .....	"	पिच्छिल गुण .....	९६७
		विशद गुण .....	"

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
शीतगुण ....	.... १	योगवाही द्रव्य ....	.... ९७४
उष्णगुण ....	.... १	वीर्य ....	.... १
स्थूलगुण ....	.... १	उष्ण शीत वीर्योंके गुण....	.... १
सूक्ष्मगुण ....	.... १	अन्यत्र ....	.... १
द्रवगुण....	.... १	विपाक ....	.... ९७५
शुष्कगुण ....	.... १	विपाकके गुण ....	.... १
आशुकारीद्रव्य....	.... ९६८	प्रभाव ....	.... १
मंदगुण ....	.... १	औषधोंके प्रभावमें अक्षित्व कथन	९७६
भृदु और कर्कशगुण	.... १	औषधको हेतुद्वारा परीक्षाका निषेध	१
दीपन औषधकेगुण	.... १	रसवीर्य विपाकको अन्योन्यनाशकत्व	१
पाचनादि औषध	.... १	<b>पंचकपायाः ।</b>	
संशमन औषध	.... १	स्वरस ....	.... १
अनुलोमन औषध	.... १	दूसराप्रकार ....	.... ९७७
संसन औषध ....	.... ९६९	तीसराप्रकार ....	.... १
भेदन औषध ....	.... १	स्वरसकी मात्राका प्रमाण	.... १
रैचन औषध ....	.... १	कल्काविधि ....	.... १
यमन औषध ....	.... १	कल्कमें मधुघृत डालनेका प्राम	९७८
संशोधन औषध	.... ९७०	कायमें ( काढे ) की विधि ....	.... १
छेदन औषध ....	.... १	कायमें जलका प्रमाण ....	.... १
लेखन औषध ....	.... १	कायकी मात्रा ....	.... १
ग्राही औषध ....	.... १	कायमें तैलका परिमाण	.... ९७९
स्तंभन औषधि ....	.... ९७१	कायमें मिश्री शहदडालनेका प्रमाण	१
रसायन औषधि ....	.... १	हिमविधि ....	.... १
मधुनशक्ति वर्द्धक औषध	.... १	मंथ....	.... १
धातुवर्द्धक औषधि	.... १	तंडुलोदक ....	.... १
वीर्यात्पादक तथावीर्यप्रवर्तक औषधि	१	कांडविधि ....	.... ९८०
वाजीकरण औषधका निषेध ....	९७२	यवागुकी विधि ....	.... १
सूक्ष्म औषध ....	.... १	विलेपि लक्षण ....	.... १
व्यवायी औषध ....	.... १	पानादिकल्पना ....	.... ९८१
निकाशी औषध ....	.... १	पानादिमें शहद गुडडालनेकी विधि	१
मदकारीपदार्थ ....	.... ९७३	युषकी विधि ....	.... १
प्राणहारक द्रव्य....	.... १	पेया लक्षण ....	.... १
प्रमार्थी औषध ....	.... १	पुटपाककी विधि ....	.... ९८२
अभिष्यंदा पदार्थ	.... १	पुटपाककी कृति ....	.... १
पिदाही पदार्थ ....	.... १	पाठांतर....	.... १

विषय.	पृष्ठांक.	विषय	पृष्ठांक.
चावल धोनेकी क्रिया ....	९८३	जलमें द्रव्यका वजन ....	११
अधलेहकल्पना ....	११	अनुक्तप्रमाणमें युक्ति ....	११
नूर्णविधि ....	११	स्नेहपाकमें दूधडालनेका नियम	११
नूर्णमें गुडादि डालनेका नियम	९८४	वृन्दका प्रमाण ....	११
अनुपातकेवल औषधका देहमें फैलना	११	स्नेहमें पाचसे अधिक द्रव्योंमें परिमाणरी	
भावनाविधि ....	११	युक्ति ....	९९५
उष्णोदकविधि ....	९८५	जलद्वारास्नेहपाकमें कल्कका परिमाण	११
घटक ( गोली ) ....	११	दूधदही रसजारणमें कल्कका परिमाण	११
घटक कल्पनामें मतभेद और सिता		केवल कायद्वारा स्नेहसाधनमें परिमाण	११
आदि मिलानेका उपक्रम....	११	कल्कद्रव्य पुष्प होवे तो उसका प्रमाण	११
नूर्णका पाकनिषेध ....	९८६	कल्कादिकोंका स्नेहमें डालनेका क्रम	११
अथानुवादिकाविधि ....	११	गंधद्रव्याणि ....	११
रसनूर्ण ....	११	स्नेहपाकपरिज्ञान ....	११
धन्वंतरीकाभाग ....	९८७	त्रिविधपाक ....	९९७
रुद्रभाग ....	११	नस्यादि कर्मांशं मृदु मध्यमोरस्वरपाककी-	
धन्वंतरी और रुद्रभागसे अधिक		आज्ञा एकदिनमें स्नेहसाधनका निषेध	११
हेलमें वैषको विश्वासघातकत्व कथन	११	स्नेह सेवन विधि ....	११
स्नेहपाककी साधारण विधि ....	९८९	स्नेहपानेका क्रम ....	९९८
तिलतैलमूच्छा ....	११	स्नेहको सात्व्योत्पल ....	११
मूच्छाद्रव्य ....	११	स्नेहपानमें युक्ति ....	११
कटुतैल मूच्छा ....	९९०	अविधि स्नेह सेवनके दोष ....	११
एरंडतैल मूच्छा ....	११	स्नेह योग्य यनूप्य ....	९९९
घृतमूच्छा ....	११	स्नेहक्रिया अयोग्य ....	११
वातहरतेलोंकी निशेषमूच्छाविधि	९९१	( घृतयोग्य ) ....	११
स्नेहपाकमें कालका नियम ....	११	( तैलयोग्य ) ....	११
चतुर्विधस्नेह ....	९९२	वसा और मज्जाके अधिशारी....	१०००
द्विविधस्नेह ....	११	वसाका प्रयोग ....	११
स्नेहके भेद ....	११	ऋतुपरत्व घृततैलादिसेवन ....	११
स्नेहपात्रविधि ....	११	शीतकालमेंभी तैला प्रयोग ....	११
कल्काद्वय साधित घृत तैलकी मात्राका		स्नेहपानकी मात्रा ....	११
प्रमाण ....	९९३	प्रकारांतर ....	१००१
स्नेह साधनमें काय और जलादिका प्रमाण	११	अल्पाधिक मात्राओंके गुण ....	११
अन्यथा ....	११	दोषोंमें अनुपातविशेष ....	११
तुला प्रमाण द्रव्यमें जलका और		घृतयोग्य ....	१००२
तुलाका प्रमाण ....	९९४	तैलयोग्य ....	११

विषय.	पृष्ठांक.	विषय	पृष्ठांक
चर्बीयोग्य .....	.... ११	स्वेदकर्मवर्जित मनुष्य .....	.... ११
मज्जा ( हड्डीका तेल ) .....	.... ११	अल्प पर्मानि काठने योग्यस्थल ...	१०१०
स्नेहपानकाल .....	.... १००३	अत्यंत पर्मानि निकालनेके दोष ..	११
स्नेहकीस्थलविशेषमे योजना .....	.... ११	उक्तचार प्रकारके स्वेदोमे तापसंज्ञक	
स्नेहके पृथक् अनुपान .....	.... ११	स्वेदके लक्षण .....	.... ११
भातके सग स्नेह देने योग्य .....	.... ११	उष्णसंज्ञक स्वेदके लक्षण .....	१०११
यवागूको सघः स्नेहकारित्व .....	.... ११	उपनाहसंज्ञक स्वेदके लक्षण .....	१०१२
धारोष्ण दुग्धसे तत्कालधातु उत्पन्न		दूसराप्रकार तथा महाशाल्वण प्रयोग ..	११
होना .....	.... १००४	द्रवसंज्ञक स्वेदके लक्षण .....	१०१३
मिथ्योपचारसे जिसको स्नेह न पचे		स्वेदकी समाप्ति .....	१०१४
उसका यत्न .....	.... ११	पर्मानि निकालनेके अनंतर उपचार ..	११
दूसरायत्न .....	.... ११		
स्नेह न करके पित्तकोपहो वृषालगे उसका		<b>वमन ।</b>	
उपाय .....	.... ११	वमनमे ऋतुप्रधान .....	१०१५
वर्जित स्नेही मनुष्य .....	.... १००५	वमन योग्य मनुष्य .....	११
उत्तम स्नेहके लक्षण .....	.... ११	वमनके अयोग्य मनुष्य .....	११
अधिक स्नेह पानके उपद्रव .....	१००६	वमनअयोग्य .....	११
रूक्षको स्निग्ध करना और स्निग्धको		रद्द करनेमें विहित पदार्थ ..	११
रूक्षकरनेका प्रकार .....	.... ११	वमनमे हितकारी पदार्थ .....	१०१७
स्नेहसेवनका फल . . .	.... ११	वमनमे काढेका प्रमाण .....	११
स्नेहसेवनके नियम .....	.... ११	वमनमे बाढा पीनेका प्रमाण .....	११
मृदु कूर कोष्ठवालेको स्नेह सेवनका		वमन विषयमे कल्कादिरोका प्रमाण ..	११
समय .....	.... १००७	वमनके उत्तम मध्यम कनिष्ठवेग ..	११
स्नेहव्यापनीका यत्न .....	.... ११	घपन विरेचन आदिमें मस्थका प्रमाण	१०१८
		कफ पित्त और वातक्षारक औषधी ..	११
<b>स्वेदविधि ।</b>		वातादि दोषोके निकालनेको पृथक् २	
स्वेदको ऋतुविषयत्व .....	.... ११	औषधी .....	.... ११
दोषोकी तारतम्यतासे स्वेदविधि ..	.... ११	वमन करते समय बाह्योपचार ..	१०१९
रोगविशेषमें स्वेदविधि .....	१००८	दुष्ट वमन होनेके उपद्रव .....	११
पर्मानि काठने योग्य मनुष्य .....	.... ११	अतिवमन होनेको उपद्रव .....	११
भगदरादि रोगियोंको प्रथम स्वेदनीयत्व		अति वमनका यत्न .....	.... ११
पश्चात् स्वेदनीय मनुष्य .....	.... ११	उल्टी करते २ जीभ भीतर चलीगई हो	
स्वेद फर्म योग्य देशकाल .....	१००९	उसका यत्न .....	.... १०२०
पर्मानि काठनेपर जिस मार्ग दोष दूर होतई		उल्टी करते २ जीभ बाहर निकल आई	
स्वेदनमे विधि .....	.... ११	हो उसका यत्न .....	.... ११

विषय.	पृष्ठांक.	विषय	पृष्ठांक.
वमनसे नेत्रोंमें विकार होनेका यत्न ॥	॥	दस्त होने पर रहनेके नियम ॥	॥
वमन करते २ ठोड़ी स्तम्भित होगई हो		दस्तोंमें निकलनेवाली वस्तु .... १०२१	
उसका उपचार .... ॥	॥	दुष्ट विरेचनके अवगुण .... ॥	॥
वमन करते २२हमें रुधिर आनेलगे उसका		जिससे उत्तम दस्तनहुएहों उसका यत्न ॥	॥
उपचार .... ॥	॥	अत्यंत दस्त होनेके उपद्रव .... ॥	॥
अत्यंत वमनके होनेसे प्यासलगे		अत्यंत दस्तोंका उपाय .... १०३२	
उसकायत्न .... ॥	॥	दस्त बंद होनेका उपाय .... ॥	॥
उत्तम वमन होनेके लक्षण .... १०२१		तथा .... ॥	॥
उत्तम वमन होनेके पश्चात् पथ्य ॥	॥	उत्तम जुलाब होनेके लक्षण .... १०३३	
उत्तम वमनका फल .... ॥	॥	उत्तम जुलाब होनेका फल .... ॥	॥
वमनकर्ममें निषिद्ध पदार्थ .... १०२२		जुलाबमें अपथ्य .... ॥	॥
		जुलाबमें पथ्य .... ॥	॥
<b>अथ रेचनाधिकार ।</b>		नाराचरसः .... १०३४	
स्निग्ध स्विन्नको रेचन देना .... ॥	॥	द्वितीय नाराचरसः .... ॥	॥
दस्तोंका दूसरा प्रकार .... १०२४		इच्छामेदी रसः .... ॥	॥
बिना वमनके दस्तकराने योग्य ॥	॥	द्वितीय इच्छामेदीरस .... १०३५	
दस्तकराने योग्य रोग .... १०२५			
दोष दूर करनेमें विरेचनको उत्कृष्टता ॥	॥	<b>वस्तिप्रकरणम् ।</b>	
दस्तकराने योग्य मनुष्य .... ॥	॥	वस्ति के दोषेद .... ॥	॥
दस्त देना निषेध .... १०२६		प्रकारांतर .... ॥	॥
मृदु, मध्य, और कुरकोष्ठ .... ॥	॥	प्रथम अनुवासन वस्ती .... १०३६	
मृदुमध्यमादिकोष्ठोंमें मृदु मध्यमादिक		अनुवासनवस्तीयोग्य प्राणी .... ॥	॥
औषध .... १०२७		अनुवासनअयोग्यपुरुष .... ॥	॥
दस्तोंकाईनांतमादि मात्रा .... ॥	॥	वस्तीका मुखस्थापन विषयमें सुपर्णादि-	
दस्तोंमें कांडे आदिका मात्राका प्रमाण ॥	॥	कौकी नली .... ॥	॥
दस्तोंमें फल्गादियोंका प्रमाण १०२८		रोमीनी अवस्थानुसारनलीकाप्रमाण १०३७	
पात पित्तप्रक्रमें औषधी .... ॥	॥	नलीके छिद्रका प्रमाण .... ॥	॥
अल्प औषध परके दस्तोंका विषय ॥	॥	वस्ती जिसके आंडोकी बनावे ॥	॥
क्रतु भेद परके दस्तोंकी विधि ॥	॥	प्रणवस्तीका प्रमाण .... १०३८	
शूलदृष्टाहर्ष विरेचन .... १०२९		वस्ति के गुण .... ॥	॥
हैमंतक्रतुमें विरेचन .... ॥	॥	वस्तीका सेवन काल .... ॥	॥
शिशिक्रतु और वसंत क्रतुमें विरेचन ॥	॥	वस्तीमें हीन और अतिमात्राका निषेध ॥	॥
पथ्य क्रतुमें विरेचन .... ॥	॥	उत्तमादि मात्रा वयन .... १०३९	
सुगन्ध दस्त होनेके लिये अभयादिनोदक ॥	॥	स्नेह संघवादिनी मात्रा .... ॥	॥
दस्तोंकी सहाय करनेवाले पदार्थ १०३०		अनुवासन वस्तीदेना समय .... ॥	॥

विषय.	पृष्ठांक.
वस्ती देनेका प्रकार ....	११
पिचकारी लगानेमें काल ....	१०४०
मात्राका प्रमाण ....	११
बाहुमात्राका प्रमाण ....	११
पिचकारी लगानेके पश्चात् किया १०४१	
उत्तम वस्ती होनेके गुण ....	११
स्नेहका विकार दूर होनेमें उपाय ११	
वातादि दोषोंमें पिचकारी मारनेका क्रम ....	१०४२
वस्तीके गुण ....	११
अनुवासनवस्ती और निरुहणवस्ती ये किसको देनी इसका प्रकार ....	११
तत्काल स्नेह बाहर निकले उसका उपाय ....	१०४३
स्नेहबाहर न निकले उसके उपद्रव ११	
स्नेहवस्ती जिसको उपद्रव करे नहीं उसका विधान ....	११
अहोरात्रिमेंभी स्नेह बाहर न आवे तो उसका उपाय ....	१०४४
अनुवासन तेल तद्वांगुडूच्यादि तेल ११	
शठधादितैलम् ....	११
वचादितैलम् ....	१०४५
चित्रकादितैलम् ....	११
भूतिकादितैलम् ....	१०४६
जीवन्त्यादितैलम् ....	१०४७
मधुकादितैलम् ....	११
मृणालादितैलम् ....	१०४८
त्रिफलाघृतैलम् ....	११
पाठाघृतैलम् ....	११
विडंगाघृतैलम् ....	१०४९
अनुवासनवस्तिमें विपरीत होनेसे रोग होतेहैं उनको कहतेहैं ....	११
वस्तिवर्धमें पथ्य ....	१०५०

विषय.	पृष्ठांक
<b>निरुहवस्तीकी विधि ।</b>	
निरुहवस्तीको अनेकविधत्ववर्णन ११	
निरुहवस्तीके दूसरे नाम ....	११
निरुहवस्तीमें काटेआदिका प्रमाण ११	
निरुहवस्ती अयोग्य ....	१०५१
निरुहवस्ती योग्य पुरुष ....	११
निरुहवस्ती देनेका प्रकार ....	११
निरुहको बाहर लानेवाली औषध १०५२	
निरुहवस्ती उत्तम होनेके लक्षण ११	
जिसको उत्तम नहुई हो उसके लक्षण ११	
निरुहवस्ती और स्नेहवस्ती उत्तम देनेका फल ....	११
निरुहवस्तिदेनेमें समयका प्रमाण १०५३	
सुकुमारादि मनुष्योंके निरुहवस्तिकी योजना ....	११
आदिमध्य और अंत इनमें वस्तीकी योजना ....	११
दक्केशन वस्ती ....	१०५४
दोषहरवस्ती ....	११
शोषनवस्ती ....	११
दोषशमनवस्ती ....	११
लेखनवस्ती ....	१०५५
बृंहणवस्ती ....	११
पिच्छलवस्ती ....	११
निरुहणमात्राकी विधि ....	११
मधुतैलवस्ती ....	१०५६
शोषनवस्ती ....	११
युक्तरथ वस्ती ....	१०५७
सिद्धवस्ती ....	११
वस्तीमेंसेन्य पदार्थ ....	११

### उत्तरवस्तीकी विधि ।

उत्तरवस्तीको अनुपान और उसका प्रमाण ११

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
वयोनुमानकरके मात्राका प्रमाण	१०५८	पल्लवातादि रोगोंपर नस्य	१०६६
उत्तरवस्तीकी योजना कैसे करावे	"	प्रतिमर्शनस्यकी दो विंदुरूपमात्रा	"
स्त्रियोंकेवस्ती देनेका प्रमाण	....	विंदुसंज्ञक मात्रा	....
बालकोंके वस्तिदेनेके विषयमें प्रमाण	१०५९	प्रतिमर्श नस्यका समय	....
और बालकोंके वस्तिदेनेमें स्नेहकी मात्रा	....	प्रतिमर्श द्वारावृत्त हुएके लक्षण	"
शोधन द्रव्यकरके वस्तीका विधान	"	प्रतिमर्शके योग्य	....
उत्तम उत्तरवस्ति होनेके लक्षण	१०६०	कुसमयपरसपेदवाल हीनपरनस्य	१०६८
शुद्धा में फलवर्तीकी योजना	....	नस्यकी विधि	....
<b>नस्यविधि ।</b>		नस्यके ग्रहणमें आज्ञा	....
नस्यके नाम और भेद	....	नस्यसंधारणका प्रकार	....
तथा भेद	....	नस्यक्रममें याजितवस्तु	....
नस्यका काल	....	नस्यमें शुद्धादिभेद	....
नस्यका निषेध	....	उत्तमशुद्धीके लक्षण	....
नस्यक्रममें योग्य अयोग्य मनुष्य	"	हीनशुद्धीके लक्षण	....
रेचक नस्यका विधान	....	अतिशुद्धीके लक्षण	....
रेचन नस्य प्रकार	....	हीनशुद्ध्यादिमें चिकित्सा	....
नस्य क्रममें औषधीका प्रमाण	....	अविस्निग्धके लक्षण	....
रेचन नस्यके दूसरे दो भेद	....	नस्यमें पथ्य	....
अवपीडन और प्रथमनके लक्षण	"	पंचमूर्ति संख्या	....
रेचन और स्नेहन नस्यके योग्य	१०६३	<b>धूमपान ।</b>	
अवपीडन नस्य योग्य	....	धूमपानकेछः भेद	....
प्रथमन नस्यके योग्य	....	शामनादि धूमोंके पर्वण्ड शब्द	"
रेचन संज्ञक नस्य	....	धूममेवनेके अयोग्य	....
रेचन नस्यकी दूसरी विधि	....	धूमपानके उपद्रवोंका यत्न	....
रेचन नस्यका तीसरा प्रकार	....	धूमपानका काल और उसके गुण	"
प्रथमन संज्ञा नस्य	....	धूमोपयोग होनेपर गुण	....
घृहण नस्यकी वक्षणा	....	धूममें नलीका विधान	....
यशः संज्ञक नस्य तथा शिरेचन संज्ञक नस्य इनके आधिषय होनेसे जो	"	धूमपानार्थ इषिणा विधान	....
रोग होतेदे उनका उपाय	....	नीलनी औषधका पला नीलमे धूमदेवे	....
जो घृहण नस्यमें योग्यहै	....	बालप्रहादि दूर करनेकी धूना	१०७५
		धूम इतिहास पथ्य	....

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
धूमपानके गुण ....	१०७६	सेकके लक्षण ....	१०८२
गंडूष और कवल तथा प्रतिसारणकी विधि ....	"	सेकके भेद ....	"
स्नेहादि गृह्योकी दोष भेदकरके योजना ....	"	सेककी मात्रा ....	"
गंडूष और कवल इनमें भेद ....	"	सेक कर्मका काल ....	"
गंडूष और कवलकी औषधका प्रमाण १०७७		वाताभिष्यंदादिरोगपर सेक ....	"
किस अवस्थामें गंडूष करे और कैसे करे ....	"	तथा दूसराक्रम ....	"
प्रमाणान्तर ....	"	पित्त रक्त और अभिघातपर सेक १०८३	
वातरोगमें चिकनाईके छुरले ....	"	रक्ताभिष्यंद ....	"
पित्तरोगमें श्मन संत्रक गंडूष ....	"	तथा दूसरा ....	"
घ्राणादि रोगोंपर मधु गंडूष ....	१०७८	नेत्रज्वलमें सेक ....	"
गंडूष धारणके गुण ....	"		
कवल धारणके गुण ....	"		
<b>प्रतिसारणम् ( भंजन ) :</b>		<b>आश्वोतनके लक्षण ।</b>	
प्रतिसारणकी संज्ञा और गुण ....	"	आश्वोतनकी विधि ....	१०८४
गंडूष कवल और प्रतिसारणकी विधि १०७९		लेखनादिक आश्वोतनमें कितनी सूँढ़ाले १	
विषादिमें गंडूष ....	"	वातादिकमें आश्वोतन ....	"
दंतचालनमें गंडूष ....	"	आश्वोतनकी मात्राकाक्रम ....	१०८५
मुखसोवपर गंडूष ....	"	वाताभिष्यंदपर आश्वोतन ....	"
कफपर गंडूष ....	"	वायुजन्य वा रक्तपित्तजन्य अभिष्यंदपर आश्वोतन ....	"
कफ तथा रक्तपित्तपर गंडूष ....	"	सर्व अभिष्यंदोंपर आश्वोतन ....	"
मुखपाकपर गंडूष ....	१०८०	रक्तपित्तजन्य अभिष्यंदोंपर आश्वोतन १०८६	
गंडूषकी औषधोंसेही प्रतिसारण करण १		पिडिकाके लक्षण ....	"
कवलका प्रकार ....	"	वातपित्तकफपर पिंडी ....	"
प्रतिसारणका भेद ....	"	नैत्राभिष्यंदमें शिरोविरेचन ....	"
प्रतिसारणनूर्ण ....	"	टपायांतर ....	"
गंडूषादिकोंके हीनयोग होनेके लक्षण १०८१		वाताभिष्यंदका यत्न ....	१०८७
शुद्ध गंडूषके लक्षण ....	"	वात तथा पित्ताभिष्यंदका यत्न ....	"
		पित्ताभिष्यंदपर दूसरी पिंडी ....	"
		श्लेष्माभिष्यंदपर पिंडी ....	"
		कफपित्ताभिष्यंदपर पिंडी ....	"
		रक्ताभिष्यंदपर पिंडी ....	"
		सूजन सुजली आदिपर पिंडी ....	१०८८
		पिडालकके लक्षण ....	"
<b>नेत्ररोगचिकित्साविधि: ।</b>			
नेत्र अच्छे होनेके उपचार ....	"		



विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
सर्व नेत्ररोगोंमें लेप ....	११	विरेचन अंजनमें चूर्णका प्रमाण....	११
तथा दूसरा लेप ....	११	सलई बनानेकी युक्ति ....	१०९७
तथा तीसरा लेप ....	१०८९	लेखनादिमें शलाईका प्रमाण ....	११
चतुर्थ लेप ....	११	अंजनमें समयका निश्चय ....	११
अर्भरोगपर लेप ....	११	चन्द्रोदयवर्ती ....	११
अंजननामिकापर प्रतिसारण ....	११	फूलाछर इत्यादिरोगोंमें लेखनीवर्ती १०९८	
नेत्ररोगमें तर्पण ....	११	दूसरी विधि ....	११
हीनाधिक तर्पणमें उपचार ....	१०९०	लेखनीदंतवर्ती ....	११
तर्पणका निषेध ....	११	तन्द्रानाशक लेखनवर्ती ....	१०९९
तर्पणकाविधान ....	११	रोपणी कुशमिता वर्ती....	११
तर्पणकी मात्रा ....	१०९१	नक्त्याप्यनाशिनी वर्ती ....	११
तर्पणसे स्नेहके अधिक योगदाता कफाधिक्य		नेत्रसावनाशक वर्ती ....	११
होनिका उपाय ....	११	रसक्रिया ....	११००
तर्पणकी मर्यादा ....	११	फूला दूर होनेको रसक्रिया ....	११
तर्पण करके दृष्टके लक्षण....	१०९२	अतिनिद्रा दूरहोनेको लेखनी रसक्रिया	११
तर्पण अत्यंत होनेके लक्षण ....	११	तन्द्रानाशिनी रसक्रिया....	११
हीनतर्पणके लक्षण ....	११	संनिपातमें लेखनी रसक्रिया ....	११०१
तर्पणसे हीनाधिक्य स्निग्धका यत्न	११	तिमिरादिरोगोंमें रोपणी रसक्रिया	११
<b>पुटपाक ।</b>		पुनर्नवाके अनुपात ....	११
पुटपाककी विधि ....	११	नेत्रसावमें रोपणीरसक्रिया ....	११
पुटपाक संबंधी रस नेत्रमें डालनेकी		दूसराप्रकार ....	११०२
विधि ....	१०९३	नेत्रप्रसादन ....	११
नेहनादिनेत्रसे पुटपाककी योजना	११	शिरोत्यातरोगमें अंजन ....	११
स्नेहपुटपाक ....	११	अंधापन दूर होनेको रसक्रिया....	११
लेखनपुटपाक ....	१०९४	अंजन योग ....	११
रोपणपुटपाक ....	११	रतौंधादूरहोनेको लेखन कर्णोजन	११०३
दोष पकहोनेसे अंजनका साधारण		कंठकाचादिपर लेखन चूर्णांजन	११
विधान ....	१०९५	सर्व नेत्रके रोगमें अंजन ....	११
अंजनके भेद ....	११	सर्व नेत्ररोगपरसौकीर अंजन ....	११०४
अंजनके गुटकादि तीन भेद ....	११	शीक्षेकीसलई बनानेका क्रम ....	११
अंजनके अयोग्य ....	१०९६	प्रत्यंजन करनेका विधान ....	११
अंजनमें वर्तीका प्रमाण ....	११	सदीपनेत्रमें निषेध ....	११०५
अंजनमें रसका प्रमाण ....	११	प्रत्यंजन चूर्ण ....	११
		सर्पविषनाशक अंजन ....	११

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
नेत्ररोगनाशनसुगमोपाय	.... ॥	सर्वकाल ग्रहण	.... १११६
तथा उपायांतर	.... ११०६	छः रसयुक्त पृष्ठीके अनुसार वृक्ष वर्णन	॥
<b>अथ संधानविधिः ।</b>		अप्रकट रस पृष्ठीके गुणसे जाना जायहै	॥
संधानके भेदकथन	.... ॥	भूमिद्रव्यका कारण कहतेहैं	.... ॥
आसवारिष्टके लक्षण	.... ॥	नवीन वा पुरानी कैसी द्रव्य लेनी	१११७
आरेष्ट	.... ११०७	विडंगदि प्रार्चन लेनेकी आज्ञा	॥
सामान्यसे आरेष्टविधिः	.... ॥	औषध रखनेका उपाय	.... ॥
दिविधसाधु	.... ॥	<b>द्रव्य संग्रहणीयाध्यायः ।</b>	
मुरादिलक्षण	.... ॥	अध्यायका पिढार्थ	.... १११८
मुराप्रसन्नादिमद्योके भेद	.... ११०८	विहारी गंधादि गण	.... १११९
वाकणी	.... ॥	आरग्वधादिगण	.... ११२०
शुक्त	.... ॥	वरुणादि गण	.... ॥
गुहशुक्त	.... ११०९	वीरतर्वादि गण	.... ११२१
मूर्द्धाकाशुक्त	.... ॥	सालसारादि गण	.... ॥
तृषांडु और सौंवार	.... ॥	शोभादि गण	.... ॥
घन्यांतरसे	.... ॥	अर्द्धादि गण	.... ॥
आरनाल	.... १११०	सुरसादि गण	.... ११२३
कांजिक	.... ॥	मुष्ककादि गण	.... ॥
सांढाकी	.... ॥	पिप्पल्यादि गण	.... ११२४
धान्याम्ल	.... ॥	एलादि गण	.... ॥
कांजिक साधन	.... ॥	बचाहरिद्रादि गण	.... ११२५
<b>भूमिप्रविभागविज्ञानीयाध्यायः</b>		दयामादि गण	.... ॥
सामान्य भूमिविभागका वर्णन	.... ११११	वृहत्पादि गण	.... ११२६
स्वगुणभूयिष्ठ पृष्ठीके गुण	.... १११२	पटोलादि गण	.... ॥
शलगुण भूयिष्ठ पृष्ठी	.... १११३	काकोल्यादि गण	.... ॥
अग्निगुण भूयिष्ठ पृष्ठी	.... ॥	टपकादि गण	.... ॥
पवन गुणभूयिष्ठ पृष्ठी	.... ॥	सारिकादि गण	.... ११२७
आकाशगुण भूयिष्ठ पृष्ठी	.... ॥	अजनादि गण	.... ॥
औषध ग्रहणमें मतभेद	.... १११४	परुषकादि गण	.... ॥
विरचनादि द्रव्यकिस पृष्ठीकी लेनी	॥	मिश्रण और अंशुष्टादि गण	.... ११२८
नवीन और मार्चन औषध	.... ॥	न्यषोधादि गण	.... ॥
लेनेकी आज्ञा	.... १११५	गुहृष्पादि गण	.... ११२९
औषध माननेका उपाय	.... ॥	उत्पन्नादि गण	.... ॥
		मुस्तादि गण	.... ॥

विषय.	पृष्ठांक.
त्रिफलादि गण ....	११३०
त्रिकटु गण ....	"
आमलक्यादि गण ....	"
त्र्यम्बादि गण ....	"
लाक्षादि गण ....	११३१
लघुपंचमूल गण ....	"
वृद्धपंचमूल गण ....	"
दशमूल ....	११३२
वर्णापेक्षक तथा फेटक पेक्षक ....	"
द्वयपंचक ....	"
पांचोके गुण एक श्लोकमें ....	"
संक्षेपस्वदिसाना ....	११३३
इनगणोंका क्याकरे इस वास्ते कहतेहैं "	"
औषध रक्षणकी विधि ....	"
इस द्रव्य गणकी कैसे योजना करे सो कहतेहैं ...	"

### संशोधन संशमननीयाध्यायः ।

धमन द्रव्यगण ....	११३४
विरचन द्रव्य ....	११३५
धमन विरचन कर्त्ता द्रव्यगण ....	"
क्षिरोविरचन ....	११३६
वातसंशमनोवर्गः ....	११३७
पित्तसंशमनो वर्ग ....	"
कफसंशमन वर्ग ....	११३८
संशमन और संशोधन द्रव्योंकी मात्रा "	"
व्याधिमें बलाधिक्य औषधके अवगण "	"
संशोधनके दोष ....	११३९
औषधकी हीनमात्रा देनेमें दोष "	"
सिद्धि हेतु उपाधियोंकोदिसाना "	"
दुर्बलको तीक्ष्ण धमन विरचन देना निषेध अवस्था विशेष कर्क व्याधि दुर्बलको भी शोधन करे ....	"
मध्यमली तथा मध्य अधिबालेकोकिन्तनी मात्रादे यह कहतेहैं ....	"
शोधनको व्याधिनाशकत्व ....	११४०

### द्रव्यविशेषविज्ञानीयाध्यायः ।

पृथ्यादिसे द्रव्योंकी उत्पत्ति ....	"
उत्कर्ष उपाधि भेदको दिसाना "	"
बल द्रव्यकी उत्कर्ष उपाधि ....	११४१
तेजस द्रव्यके गुण और स्वभाव "	"
वायवीय द्रव्यके गुण स्वभाव ....	११४२
आकाशीय द्रव्यके गुणस्वभाव ....	"
सब औषधोंको पांचभेदितकत्व ....	"
औषधोंका काल कर्म बीर्यादि ....	११४३
औषधज्ञानमें अनुमानकी योजना "	"
संशमनादि औषधोंको आकाशादि गुण-भूमिष्ठ ....	११४४
भूआदि गुण भूमिष्ठसे वातादि दोषोंका शमन ....	११४५
आकाशादि गुण भूमिष्ठसे वातादि दोषोंकी वृद्धी ....	"
क्षतिकोष्णादि गुणोंको अधि संवधादि कपन ....	"
लघुगुरु विषाकादि ....	"
द्रव्योंके बीस गुण इस भागीकी देहमें कपन ....	११४६

### हिताहितीयाध्याय और भाषा यज्ञ पुरुषीयाध्यायः ।

प्रथम औरोंका मत ....	११४७
अपना मत कपन ....	"
प्रथम एकांत हित ....	११४८
एकांत अहित ....	११४९
एकांत हिताहित ....	११५०
रक्त झाली आदि धान्यवर्ग ....	११५१
मांसवर्ग ....	११५२
फलकी धान्य और श्राकवर्ग ....	११५३
धृतनिमकादि हितकारी ....	११५४
संयोग विरुद्ध ....	११५५
कचिद्विरुद्धकार्यो प्रयोग दिखानेहैं ....	११५६

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
हिताहितत्वका खंडन ....	११५८	कारिणी चिकित्सा ....	११
पूर्वोक्त अर्थको स्पष्ट करके दिखाना ११५९		देवी मानवी और राक्षसी चिकित्सा ..	११
उक्त विधानसे अन्य द्रव्योंमें हिताहितत्व ..	११	तथा ....	११
अन्य संयोग विरुद्धोंको कथन ..	११	चिकित्सामें कौन २ वस्तु जानना यह	
कर्मविरुद्ध ....	११६०	प्रश्न और इसका प्रत्युत्तर ११७०	
मानविरुद्ध ....	११६१	चिकित्साके अंग ....	११
श्रीदोरस रसवीर्य और विपाकसे		चिकित्साके पादचतुष्टय ....	११
विरुद्ध ....	११६२	पाठांतर ....	११७१
अतिस्निग्धादिपदार्थोंका सेवन-		वैद्यविना पादत्रयको निष्फलत्व ..	११
निषेध ....	११६३	पादत्रय विनामी वैद्यको मुख्यत्व ..	११
पूर्वोक्तको स्पष्ट करतेहैं ....	११	पादचतुष्टयोंमें वैद्यको प्राधान्यता ..	११
विरुद्ध पदार्थ भक्षणके अवगुण ..	११	प्रथम वैद्यके लक्षण....	११७२
विकार कर्त्ता पदार्थ ....	११६४	वैद्य शब्दकी व्युत्पत्ति ....	११
विरुद्ध भोजन अनित रोगोंकी चिकित्सा ..	११	वैद्यके नाम ....	११७३
विरुद्ध भोजन करनेपरभी किसीको रोग		वैद्यके लक्षण ....	११
नहींहो यह कहतेहैं ....	११	वैद्यके गुण चतुष्टय....	११
पूर्वकी पवनके गुण ....	११६५	त्रिविधवैद्य ....	११७४
दक्षिणकी पवनके गुण ....	११६६	दृग्वैद्यके लक्षण ....	११
पश्चिमकी पवनके गुण ....	११	सिद्धसाधित वैद्यके लक्षण ....	११
उत्तरकी पवनके गुण ....	११	सद्वैद्यके लक्षण ....	११७५
* इति हिताहितायाध्याय *		दशप्राणायतनीयाध्यायः ।	
मिश्रखंडकी समाप्ति ।		प्राणोंके दशम्यान ....	११
<hr/>		द्विविध वैद्यवर्णनम्....	११७६
चिकित्साखंडप्रारम्भः ।		प्राणाभितर वैद्यके लक्षण ....	११
चिकित्सा विषयमें प्रश्नोत्तर ....	११६७	लक्षणान्तर ....	११
चिकित्सा ...	११	तथा ....	११७७
मुश्रुतका प्रमाण ....	११	तथा ....	११
प्रधान्तरका प्रमाण....	११	तथा ....	११
क्रियाके लक्षण ....	११६८	तथा ....	११७८
चिकित्सा और उसका प्रयोजन ..	११	माणनाशक वैद्य अर्थात् रोगाभितर	
चिकित्साके नाम ....	११	वैद्यके लक्षण ....	११८०
ध्यानान्तरसे चिकित्साके नाम ....	११६९	मर्त्य वैद्यके लक्षण....	११८१
चिकित्साके भेदमें प्रश्नोत्तर ...	११	वैद्यके पालनीय नियम ....	११८२
निदान रोग विपरीत और तदर्थ-		तथा ....	११
		तथा ....	११८३

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
तथा ....	११८४	वैद्यपूजनीय ....	"
तथा ....	"	आयुर्वेदको धर्मार्थपरता ....	११९४
प्रसंगवत् कलिपुगिया वैद्योंका		वैद्यको दयावान् होना ....	"
सिद्धान्त ....	११८५	वैद्यको लोभ त्यागकी, आज्ञा ....	"
बहुश्रुत वैद्यकी प्रशंसा ....	११८७	वृत्त्यर्थ चिकित्सा करनेका	
निदान, औषधा और साध्यासाध्यजाता		निषेध ....	"
वैद्यकी कर्मकी सिद्धि ....	"	एकभी रोगी अच्छे करनेका	
शास्त्र और कियाज्ञाता वैद्यकी प्रशंसा ....	"	फल ....	"
चतुर्विध ज्ञानवान् वैद्यको राजात्व ....	"	ज्ञादि विज्ञोधन ....	११९५
बहुगुणयुक्त वैद्यकी प्रशंसा ....	११८८	ज्ञान और बुद्धिद्वारा चिकित्सा	
वैद्यशब्दमार्त्तिका कारण ....	"	करनेकी आज्ञा ....	"
गुरुमुख पठित वैद्यको वैद्यत्व ....	"	चिकित्सा पादत्रयका अधिपति	
पूज्यवैद्यके लक्षण ....	"	होनेके कारण वैद्यको कुशल हो	
जीवदान श्रेष्ठत्व कथन ....	११८९	नेकी आवश्यकता ....	"
परोपकारत्व कथन ....	"	वैद्यकी चतुर्विधवृत्ति ....	"
वैद्यको दानित्व कथन ....	"	देवताओं करके वैद्यपूजनीयत्व	
तथा ....	"	कथन ....	११९६
चिकित्सा करनेका पुण्य ....	"	चिकित्सा सिद्धी योग्य वैद्य ....	"
तथा ....	११९०	ज्ञान पठित वैद्यको चिकित्साका	
ग्रथान्तरका प्रमाण ....	"	अधिकार ....	"
प्रमाणांतर ....	"	अन्न, जल और चिकित्सादानका फल	"
सर्वत्र वैद्य वृत्तीका कथन ....	"	रानाको वैद्यादि चतुष्टयोंका नित्य	
तथा ....	११९१	दर्शन ....	११९७
रोगके अंतमें वैद्यपूजन ....	"	न्योतीकी वेद्य और ब्राह्मणसे ....	"
रोगके अंतमें वैद्यपूजनमें कथन ....	"	क्षेप करनेका फल ....	"
चिकित्साका फल ....	"	विनाशास्त्र भावभित्तादि कथनमें	
तथा ....	"	ब्रह्मादित्यके पापकी प्राप्ति	"
वैद्यकी शिक्षा ....	११९२	गुणयुक्त पादचतुष्टयोंकी प्रशंसा	११९८
तथा ....	"	ज्ञान और बुद्धिद्वारा कर्म करने	
प्राणीको वैद्यशब्दकी प्राप्ति ....	"	का आज्ञा ....	"
वैद्यमात्रको द्विजत्व ....	"	उत्तम वैद्यके लक्षण ....	"
वैद्यके प्रति रोगीका वर्त्ताव ....	११९३	निदानपठित वैद्यको कर्मकी ....	
कद्वैदकृतदेवमें अधोर्मित ....	"	प्रसिद्धि ....	११९९
वैद्यके धर्म ....	"	विनापठित वैद्यकी निंदा ....	"
रोगीकी पुत्रके समान रक्षाकरना	"	मूर्ख वैद्यका उपहास ....	"
रोगीको पिताके समान	"	वैद्याभिमानी मूर्ख वैद्यकी निंदा	"

विषय.	पृष्ठांक.	विषय	पृष्ठांक.
निदान विना जाने चिकित्सा कर		औषधके चारगुण ....	१
नेमें वैद्यको दंडनीयत्व		प्रसंगवश औषधके त्रिविधभेद चरकसे १२०८	
कथन ....	१२००	देव व्यापाश्रय ....	११
केवल शास्त्रज्ञाता और औषधज्ञान		युक्ति व्यापाश्रय ....	११
रहित वैद्यकी निंदा ....	१	सत्त्वावगम ....	११
शास्त्रपठित और क्रिया रहित		शरीराश्रित त्रिविध औषधी ....	११
वैद्यको भीरुत्व कथन ....	१	अंत. परिमार्जन ....	१२०९
विनापठित वैद्यको राजासे दंडनी-		बहिः परिमार्जन ....	११
यत्न कथन ....	१	शास्त्र प्रणिधान ....	११
कर्तव्यमें मूर्खवैद्यकी निंदा ....	१२०१	त्रिविध औषधी ....	११
मूर्ख वैद्यके दोष ....	१	जंगमाग्निभेदसे त्रिविध औषध ....	१२१०
तथा ....	१	जंगमद्रव्य ....	११
चिकित्सा अन्यथा करनेमें वैद्यको		भोगद्रव्य ....	११
अधर्मित्व ....	१	दृष्टिज औषध ....	११
वैद्यको स्वयं तर्क करनेकी आज्ञा		औद्भिद् गण ....	१२११
निषिद्ध वैद्य ....	१२०२	औद्भिद् औषधोंकी गणना ....	१२११
वैद्यको पाक कारित्वमें प्रमाण....	१	औषध ज्ञानको दुर्ज्ञेयत्व ....	११
अन्य जातिके करे पाक भोजनमें प्रायश्चित्त		औषधोंके रूप और योग ज्ञाता वैद्यकी	
वैद्यशास्त्र और व्योतिषकी प्राधान्यता १२०३		प्रज्ञासा ....	१२१२
चोरी कपट और बलपूर्वक विद्या ग्रहणमें		तथा वैद्यको उत्तमत्व कथन ....	११
दोष ....	१	ज्ञाताज्ञात औषधोंके गुणागुण ....	११
मरणपर्यंत चिकित्सा करनेकी आज्ञा		अज्ञात और दुष्प्रयोजित औषधकी निंदा	
तथा ....	१२०४	युक्त और अयुक्त औषधके गुणागुण	
रोगीके लक्षण ....	११	दुक्तिपूर्वक औषधको मुख्यत्व ....	१२१३
चिकित्सकिये योग्य रोगी ....	११	मूर्ख वैद्यके हाथकी औषध न लेना	
तथा ....	११	अज्ञानी वैद्यसे भाषण करनेमें पाप कथन	
तथा ....	११	शरणागत रोगीसे द्रव्यादि लेनेका निषेध	
रोगीके गुणवत्तुष्टय ....	१२०५	मूर्ख वैद्यसे यत्न करना निषेध....	१२१४
उत्तम रोगी ....	११	वैद्यको वैद्यके गुण सोखनेकी आवश्यकता	
मूर्खरोगी ....	११	उत्तम औषध और वैद्य ....	११
रोगकी उपेक्षा करनेमें आयुकी हानि १२०६		उत्तम प्रयोग और उत्तम वैद्यकी प्रज्ञा	
विनापीडाके शास्त्र और वैद्यमें अविश्वास		परिचारकके गुण ....	१२१५
त्याज्यरोग ....	११	परिचारकके लक्षण....	११
भेषज्य लक्षण ....	१२०७	आयुर्विचार ....	११
उत्तम औषध ....	११	आयुका प्रमाण ....	१२१६

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
द्रव्यम् ....	१२१७	प्रत्यक्ष ....	१२२७
व्याधिलक्षण ....	"	कर्णइन्द्रा ....	"
		नेत्रइन्द्रा ....	"
<b>व्याधिसमुद्देशीयाध्यायः ।</b>		जिह्वा इन्द्रा ....	"
द्विविध व्याधि ....	"	नासिका इन्द्रा ....	१२२८
त्रिविध व्याधि ....	१२१८	स्पर्शेन्द्रा ....	"
सप्तविधव्याधि ....	"	अनुमान जान ....	"
आदिबल प्रवृत्तव्याधि ....	१२१९	रोग ज्ञानानंतर चिकित्सा ....	१२२९
जन्मबल प्रवृत्तव्याधि ....	"	सर्वरोगोंके नाम न जाननेमें अलजत्व १२३०	
दोषबल प्रवृत्तव्याधि ....	"	अनुक्त दोषोंमें लक्षणद्वारा चिकित्सा "	
संघातबल प्रवृत्तव्याधि ....	१२२०	असाध्यरोगीकी चिकित्सा कर-	
कालबलप्रवृत्तव्याधि ....	"	नेका निषेध ....	"
दैवबल प्रवृत्तव्याधि ....	"	उत्पन्न होतेही चिकित्सा	
स्वभावबल प्रवृत्त ....	१२२१	करनेका हेतु ....	"
व्याधियोंमें वातादि दोषोंको मुख्यत्व १२२१		औषधकी आवश्यकता ....	१२३१
तीन दोषोंमें व्याधियोंके अनेकविधत्व १२२२		औषधके फलमें तुच्छता करनेका	
दोषद्रव्यसंज्ञालक्षणकरके होती है "		निषेध ....	"
रसजन्य विकार ....	१२२३	विना औषधीके रोगी रहनेमें दृष्टांत "	
रुधिरजन्य विकार ....	"	विना चिकित्साके अकाल मृत्युमें पवन	
मांसजन्य विकार ....	"	दीपककादृष्टांत ....	१२३२
मेढ्रदोषजन्य विकार ....	१२२४	तथा ....	"
अस्थिदोषजन्य विकार ....	"	वैद्यपुरोहितको राजाका रक्षण कर-	
मज्जादोषजन्य विकार ....	"	नेकी आज्ञा ....	"
शुक्रजन्य विकार ....	"	रोगज्ञानमें अभ्यासको मुख्यत्व	"
मलायतन विकार ....	"	दुष्टाचचारआदि त्रिविध व्याधि ....	"
इन्द्रियायतन दोष ....	१२२५	दोषकर्मआदि त्रिविध व्याधि १२३३	
चिकित्सा विधिका उपदेश ....	"	द्रव्य देशादि निश्चयानंतर चिकित्सा	
वैद्यकाकर्तव्य ....	"	करनेकी आज्ञा ....	"
रोग और औषधपरीक्षणानंतर चिकित्सा		अन्यथा दृष्टगत व्याधिमें वैद्यको सावधान	
करनेकी आज्ञा ....	१२२६	होनेकी आज्ञा ....	"
<b>त्रिविधरोग विज्ञानीयाध्यायः ।</b>		मूढवैद्यको पण्यमें स्थलन ....	"
त्रिविध रोग जानका उपाय ....	"	गुरुव्याधिमें अल्पगुण और	
आप्तलक्षण ....	"	अल्प औषधकी निष्फलत्व १२३४	
प्रत्यक्षके लक्षण ....	"	अल्परोगमें उत्कट औषध	
अनुमान ....	"	देना निषेध ....	"
		यथा योग्य औषधी देनेका	

विषय	पृष्ठांक.	विषय	पृष्ठांक.
उत्तम फल ....	....	रोग संख्याहेमाद्वी....	....
त्रिविध परीक्षा ....	....	रोगनाम ....	.... १२६५
चतुर्विध व्याधि ....	....	रोगीक नाम ....	....
रोगीके भेद ....	.... १२३५	रोगीके लक्षण ....	....
त्रिविध व्याधि ....	....	आम व्याधिके लक्षण ....	.... १२४६
त्रिविधव्याधीका चिकित्सा ....	....	उसका यत्न ....	....
पुनः त्रिविध व्याधि ....	.... १२३६	दोषत्रयका यत्न ....	....
याप्यके लक्षण ....	....	औषधके नाम ....	....
याप्यव्याधिको चिरस्थायित्व ....	....	औषधके दो भेद ....	....
साध्यव्याधीका उपेक्षा		अभेषज द्विविध ....	.... १२४७
करनेका फल ....	....	अभेषजके लक्षण ....	....
याप्यत्व ....	....	ज्वराधिकार प्रथम बढ़नेमें कारण	....
साध्य व्याधिके चिकित्सा		पूर्वजन्मोपाजित पाकको व्याधि-	
न करनेमें मृत्यु ....	.... १२३७	रूपत्ववर्णन....	....
सप्तविध व्याधि ....	....	प्रदोषक प्रतिकूल होनेमें औषधको	
उपद्रवके लक्षण ....	....	निष्फलत्व ....	....
अरिष्टके लक्षण ....	.... १२३८		
मृत्युको अवार्पण		<b>ज्योतिःशास्त्रका अभिप्राय ।</b>	
मृत्यु संज्ञा और कालसंज्ञा ....	....	ज्वर होनेका योग ....	.... १२४८
शीतउष्ण क्रियाद्वारा क्रिया		तथा ....	....
कालका पालन ....	.... १२३९	ज्योतिष कल्पतरुसे ग्रहोंकी संज्ञा	....
युक्त कर्मकी कौशल्य वर्णन ....	....	ज्वरदायक योग ....	.... १२४९
संकर क्रियाका निषेध ....	....	पेशाचिक ज्वरका योग ....	....
अच्छे होनेपरभी पथ्य करनेकी		खेटज्वरका योग ..	....
आज्ञा ....	.... १२४०	ज्वरद्वारा मृत्युका योग	....
कर्मदोषज और दोषज व्याधि ....	....	औषधजन्यज्वर योग	.... १२५०
रोगी और रोगीकी परीक्षा करनेकाक्रम	....	भीतिज्वरयोग ....	....
रोगपरीक्षा करनेका क्रम ....	....	श्लेष्मज्वर योग ....	....
औषध और मणिमंत्रादिका		यमघटयोग ....	....
आयुष्यवान् परचलते ॥ यह कथन	.... १२४१	सुखयोग ....	....
आरोग्य लक्षण ....	....	असाध्य नक्षत्र ....	.... १२५१
मार्गमें रोगप्रसूत ग्रहणन गैर		साध्यनक्षत्र ..	....
त्यागमें वैद्यकी ब्रह्महत्या		कष्टसाध्य नक्षत्र ....	....
का पाप ....	.... १२४२	कष्टावली ....	.... १२५२
		<b>प्रत्येक चरणका फल ।</b>	
<b>ज्वरप्रकरणम् ।</b>		अग्निनी ....	.... १२५४
रोग गणनामें प्रदोषक ....	.... १२४३	भरणी ....	.... १२५५



विषय.	पृष्ठांक.	विषय	पृष्ठांक
कृतिका	....	उसका शमन	.... ११
रोहिणी	....	ज्वरवालेके दैविक उपचार	.... ११
मृगशीर	....	तथा	.... १२६२
आर्द्रा	....	गणेशरादि देवोंका पूजन	.... ११
पुनर्वसु	....	उष्णज्वरका कर्म विपाक	.... ११
पुष्य	.... १२५६	और उसकी शान्ति	.... ११
अश्लेषा	....	सर्वज्वरपर कुम्भदान	.... ११
मघा	....	कुम्भदानका मंत्र	.... १२६३
पूर्वा फाल्गुनी	....	अन्यप्रमाण	.... ११
उत्तरा फाल्गुनी	....	ज्वरोत्पत्ति	.... १२६४
हस्त	....	तथा	.... १२६५
चित्रा	....	अनेक प्राणियोंमें ज्वरके	.... १२६६
स्वाती	....	नामभेद	.... १२६७
विशाखा	....	ज्वरके आठ भेद	.... ११
अनुराधा	....	बीभत्सज्वरकाम्बरूप	.... १२६८
ज्येष्ठा	.... १२५७	त्रिंशिराज्वर	.... ११
मूल	....	कापिलज्वर	.... ११
पूर्वाषाढ	....	भस्मविक्षेपक ज्वरका स्वरूप	.... १२६९
उत्तराषाढ	....	त्रिपदाज्वरका स्वरूप	.... ११
श्रवण	....	पिङ्गाज्वरका स्वरूप	.... ११
धनिष्ठा	....	महोदर ज्वरका स्वरूप	.... ११
शतभिषा	....	ज्वलद्विपदज्वरका स्वरूप	.... १२७०
पूर्वाभाद्रपद	....	सुश्रुतकाममाण	.... ११
उत्तराभाद्रपद	....	ब्राह्मण ज्वरके लक्षण	.... ११
रेवती	....	क्षत्रीज्वरके लक्षण	.... १२७१
नक्षत्रहवन की विधि तहसमिधा	१२५८	वैश्य ज्वरके लक्षण	.... ११
मघ	....	शूद्रज्वरके लक्षण	.... ११
पूर्व	....	ज्वरके नाम	.... ११

## ज्वररोगकाकर्मविपाक ।

## निदानपंचकम् ।

कर्मजन्याधिके लक्षण	.... १२५९	मगलाचरण	.... १२७२
जन्मांतरके पापकोन्याधिक-	....	अथकी उत्तमता	.... १२७३
पत्र और उसकी शान्तिका यत्न	.... १२६०	रोग जाननेके पाँच उपाय	.... ११
सर्वज्वरे कर्मविपाक	.... १२६०	निदानके पर्यायवाचक शब्द	.... ११
शान्ति	....	पूर्वरूप	.... १२७४
गार्ग्यका प्रमाण	....	रूप	.... १२७६
शीतज्वरका कर्मविपाक	.... १२६१	उपशय	.... ११

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
उपशय प्रदर्शक चक्र	.... १२७७	स्नेहन और संशोधनअयोग्योंको लेपनकी	
अनुपशयके लक्षण ....	.... १२७८	आज्ञा ....	.... ११
संप्राप्तिके लक्षण ....	.... ११	ज्वरके पूर्वरूपमें लेपनकी आज्ञा....	१२८९
संप्राप्तिके भेद ....	.... ११७९	लेपनकी अवधी ....	.... ११
संख्यारूप संप्राप्तिके लक्षण ....	.... ११	वमनकराने योग्य रोगी ....	.... ११
विकल्परूप संप्राप्तिके लक्षण ....	.... ११	अवस्थाविशेषमें वमन कराना ....	.... ११
प्राधान्यरूपसंप्राप्तिके लक्षण ....	.... ११	ठक अवस्थाके विनावमन करना निषेध	११
मलरूप संप्राप्तिके लक्षण ....	.... ११	ज्वरमें प्रथमकर्तव्य कर्म ....	१२९०
कालरूप संप्राप्तिके लक्षण ....	.... १२८०	शरकका प्रमाण ....	.... ११
निदान पंचकका उपसंहार ....	.... ११	ज्वरमें पित्त विरुद्धाचरण निषेध....	.... ११
संनिष्ठ निदान ....	.... ११		
रोगका रोगनिदानकथन ....	.... १२८१	<b>जल ।</b>	
रोगोंको हेतुर्थ कारीपना ....	.... ११	जलके गुण ....	.... ११
रोग रोगका हेतुर्थकारी होना और न		उष्णजलके गुण ....	.... १२९१
होना ....	.... ११	श्लेष्मविशेषमें जलकायके नियम....	१२९२
इस निदानमध्य पठनेकी आज्ञा	१२८२	रात्रिमें सेवित उष्ण जलके गुण	११
<b>ज्वरनिदानम् ।</b>		उष्णोदकका प्रयोग ....	.... ११
ज्वरकी प्राधान्यतामें शरकका प्रमाण	११	उष्ण जल पोड़ापीना ....	.... ११
ज्वरकी उत्पत्ति ....	.... ११	शूतशीत जलके गुण ....	.... १२९३
ज्वरकी संप्राप्ति ....	.... ११	उष्णजलकी विधि ....	.... ११
ज्वरके लक्षण ....	.... १२८४	अधिकजलपीनेके दोष ....	.... ११
ज्वरका पूर्वरूप ....	.... ११	ज्ञात ....	.... ११
ज्वरके विशिष्ट पूर्वरूप ....	.... १२८५	वर्षा और शूतशीत जलके गुण	१२९४
		दिनमें ओटे जलको रात्रिमें और रात्रिमें	
<b>ज्वरचिकित्सा ।</b>		ओटे जलको दिनमें पीनानिषेध	११
वेपको साधारण क्रियाकी आज्ञा	११	जलशोधनविधि ....	.... ११
ज्वरकी सामान्यचिकित्सा ....	१२८६	तरुण ज्वरमें काटा देनानिषेध ....	.... ११
ज्वरके आदि, मध्य और अंतमें कर्तव्य	११	इसमें दृष्टांत ....	.... १२९५
लेपन ....	.... ११	क्षयकी संज्ञा ....	.... ११
लेपनकरानेमें प्रमाण ....	.... १२८७	नवीन ज्वरमें काटे देनेके अवगुण	११
बलनाशक लेपनका निषेध ....	.... ११	अर्जागादिमें औषध पीनेसे आमकी वृद्धि	११
लेपनके गुण ....	.... ११	तरुण ज्वरमें परिषेकादिना निषेध	११
उत्तम लेपनके लक्षण ....	.... ११	तरुण ज्वरमें परिषेकादि सेवनसे	
अतिलेपनके दोष ....	.... ११	उपद्रव ....	.... १२९६
लेपनके अयोग्य रोगी ....	.... १२८८	परिषेकादि मत्पेकके दूषण हारीतसे	११
लेपन सहन करनेमें कारण ....	.... ११	ज्वरकी तरुणादि अवस्था ....	.... ११

विषय	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
ज्वरके अष्टमदिन पचनमें हेतु....	११	कणादि काटा ....	११
ज्वरपाककी अवधि ....	११	काकोल्यादि काटा ....	११
तथा ....	१२९७	अमृतादि काटा ....	१३०६
औषध देनेका काल ....	११	श्रंप्यादि काटा ....	११
तथा औषध देनेका समय ....	११	शालिपण्यादि काटा....	११
वृद्ध वाग्भटका प्रमाण ....	११	गुडूच्यादि पाचन ....	११
यवागुआदि देनेका समय ....	१२९८	किरातादि काटा ....	११
औषध देनेका काल ....	११	पिप्पल्यादि काटा ....	१३०६
काठे देनेका समय ....	११	उष्णपादि काटा ....	११
दिनांतमें अल्प और लघु भोजन		मरीच्यादि काटा ....	११
करानेकी आज्ञा ....	११	त्रिफलादि चूर्ण ....	११
तरुण ज्वरमें रात्रिके भोजनादिका		पिप्पल्यादि चूर्ण ....	१३०७
निषेध ....	११	द्राक्षादि चूर्ण ....	११
विदेहका प्रमाण ....	११	ज्ञतावरीस्वरस ....	११
अन्नदेनेका काल ....	१२९९	कल्पतरु रसः ....	११
औषधादिके अजीर्णमें अन्नके अग्राह्यत्व ११		भैरव रसः ....	१३०८
जीर्ण औषधके लक्षण ....	११	शोतभेजाररसः ....	११
औषध ग्रहणका मुहूर्त ....	११	मातुलुंगादि गुटिका ....	१३०९
औषध ग्रहणमें मंत्र ....	१३००	द्राक्षादि प्रतिसारण....	११
औषध ग्रहणकी विधि ....	११	हरीतक्यादि गुटिका ....	१३१०
गंडूष वर्जन ....	११	स्वेद काठनेमें प्रमाण ....	११
काय, कल्क, स्वरस, अंजन, चूर्ण, सुरमा,		खर्परभ्रष्टवालका स्वेदयोग ....	११
गुड, लेह, घृत, तेलआदि पदार्थोंकी		निद्रानाश निदान ....	११
शक्तिवीर्य नष्टकालवर्णन ....	१३०१	विजयचूर्ण योग ....	१३११
वातज्वरके लक्षण ....	११	सगुडादि चूर्ण ....	११
वातज्वरपर शुष्क्यादि पाचन ....	११	निद्रा लानेकी औषध ....	११
गुडूच्यादि पाचन ....	१३०२	<b>पित्तज्वर ।</b>	
शुष्क्यादि काटा ....	११		
श्रंपण्यादि पाचन ....	११	पित्तज्वरके लक्षण ....	११
गुडूच्यादि काटा ....	११	छिन्नादि पाचन ....	१३१२
दर्भमूलादि काटा ....	१३०३	दुस्पर्शादि काटा ....	११
त्रिफलादि काटा ....	११	द्राक्षादि काटा ....	११
भुनिवादि काटा ....	११	पित्तज्वरके प्रतीकार....	११
दुरालभादि काटा ....	११	तिकादि काटा ....	१३१३
शुठ्यादि काटा ....	१३०४	पर्पटादि काटा ....	११
धनमूलादि काटा ....	११	द्राक्षादि काटा ....	११
		पटोलादि काटा ....	११

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
गुह्य्यादि काठा	१३१४	अमृतादिहिम	११
श्वीवरादि काठा	११	कफज्वरकेलक्षण	१३२३
भूनिवादि काठा	११	कलिगादिनूर्ण	११
कटफलादि काठा	११	शृंग्यादि अवलेह	११
पंचभद्रादि काठा	११	सिन्धुकवल	१३२४
कलिगादि काठा	१३१५	सुद्रयुष	११
शर्करादि काठा	११	त्रिफलादिनूर्ण	११
शुद्धादि काठा	११	अजादि योग	११
लोभादि काठा	११	चन्दनादि काठा	११
पर्पटादि काठा	११	शतघोत वृत्त	१३२५
विद्यादि काठा	१३१६	पलाशादि लेप	११
गुह्य्यादि काठा	११	नीरदादि पाचन	११
किरातादि काठा	११	पिप्पल्यादि पाचन	११
चन्दनादि काठा	११	शौद्रादि काठा	११
पर्पटादि काठा	११	पिप्पल्यादि नूर्ण	१३२६
ठुडम्बरादिहिम	१३१७	कटफलादिलेह	११
द्राक्षादि काठा	११	कटफलादिनूर्ण	११
दुरालभादि काठा	११	निर्गुड्यादि काठा	११
द्राक्षादि काठा	११	यषान्पादि काठा	१३२७
छिन्नादि काठा	१३१८	वासादि काठा	११
द्राक्षादि काठा	११	निवादि काठा	११
ससितादि काठा	११	मरीच्यादि काठा	११
शुद्धादि काठा	१३१९	निदिग्धिकादि काठा	११
श्वीवरादि काठा	११	भोग्यादि काठा	१३२८
तिक्तादि काठा	११	मातुलुंगादि काठा	११
पप्प्यादि काठा	११	त्रिफलादि काठा	११
आम्रादि फण्ट	११	पिप्पल्यादिगण	११
गुह्य्यादि काठा	१३२०	पंचकोल	११
पटोलादि काठा	११	पटोलादि काठा	१३२९
केसरमातुलगादि योग	११	बीजपूरादि काठा	११
दूसराप्रकार	१३२१	भूनिवादि काठा	११
रसपेटी	११	कटुव्यादि काठा	११
उत्तानसप्तयोग	१३२२	त्रिकंटादि काठा	१३३०
औदुम्बरादि योग	११	कुष्ठादि काठा	११
धर्म	११	त्रिफलादि काठा	११
द्राक्षादिकल्क	११		
सुद्रयुष	११		

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
ससञ्चदादि काठा ....	११	यूष ..... ११	११
आमलक्यादि काठा.....	११	पंचकोल ..... ११	११
तिक्तादि काठा ....	१३३१	निवादि कषाय ..... १३३८	१३३८
मुस्तादि काठा ....	११	किरातादि कषाय ..... ११	११
चपलादि काठा ....	११	बृहत्पिप्पल्यादि काठा ..... ११	११
पिचुमदादि काठा ....	११	सिंहिकादि कषाय ..... १३३९	१३३९
वासादि काठा ....	११	कटुफलादि कषाय ..... ११	११
कटुकार्यादि काठा.....	१३३२	दशमूली काठा ....	११
कणादि काठा ....	११	पिप्पल्यादि काठा ..... १३४०	१३४०
मुस्तादि काठा ....	११	दार्वादि काठा ..... ११	११

### वातपित्तज्वर ।

वात पित्त ज्वरलक्षण ..... ११	११
नीलोत्पलादि हिम ..... ११	११
निदिग्धिकादि काठा ..... १३३३	१३३३
विश्वादि काठा .... ११	११
नीलोत्पलादि काठा ..... ११	११
आरग्वधादि काठा .... ११	११
द्राक्षादि काठा .... १३३४	१३३४
पंचमूलादि काठा ..... ११	११
मुद्गादि यूष ..... ११	११
मुद्गादि योग ..... ११	११
मधुकादि कषाय ..... ११	११
पचभद्र कषाय ..... १३३५	१३३५
दुरालभादि कषाय ..... ११	११
भूनिषादि कषाय ..... ११	११
त्रिफलादि कषाय ..... ११	११
मधुकादि फाट ..... ११	११
द्राक्षादिकाठा ..... १३३६	१३३६
न्याम्रादि काठा ..... ११	११
मुस्तादि काठा ..... ११	११
चलादि काठा ..... ११	११
रसायन ..... १३३७	१३३७

### वातकफज्वर ।

वातरुफ ज्वर लक्षण ..... ११	११
चिकित्सा ..... ११	११

आरग्वधादि कषाय ..... १३४१	१३४१
मुस्तादि काठा ..... ११	११
भूनिषादि काठा ..... ११	११
चतुर्भेद्रादि काठा ..... ११	११
स्वेदशोषक चूर्ण ..... ११	११
यरिचाष्टदूलन ..... १३४२	१३४२
भूनिषाष्टदूलन ..... ११	११
सप्तकोशर रसः ..... ११	११

### कफपित्तज्वर ।

कफपित्त ज्वरलक्षण ..... ११	११
कफपित्तज्वर प्राक्रिया ..... १३४३	१३४३
कटुकार्यादि काठा ..... ११	११
नागरादि काठा ..... ११	११
मृगबेरादि काठा ..... ११	११
पटोलादि यूष ..... ११	११
पटोलादि वाटा ..... १३४४	१३४४
तिक्तादि काठा ..... ११	११
लोहितचंदनादि काठा ..... ११	११
जीरकादि काठा ..... ११	११
यवादि काठा ..... ११	११
नागरादि काठा ..... ११	११
द्राक्षादि काठा ..... १३४५	१३४५
पटोलादि काठा ..... ११	११

विषय	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
यवादि काढा .....	११	वालुका स्वेद .....	११
त्रायत्यादि काढा .....	११	संघवादि तस्य .....	११
किरमालादि काढा .....	१३४६	मातुलुंगादि नस्य .....	१३५५
पटोलादि काढा .....	११	कल्पतरु नस्य .....	११
गुडूच्यादि काढा .....	११	द्राक्षादिलेख जिह्वापर .....	११
शुठ्यादि काढा .....	११	आर्द्रकादिकबलग्रह .....	११
क्षुद्रादि पचतिक्त काढा .....	११	अष्टांगावलेह .....	१३५६
भारंग्यादि काढा .....	१३४७	कटुफलादि अवलेह .....	११
पटोलादि काढा .....	११	आर्द्रकादि स्वरस .....	११
त्रिफलादि काढा .....	११	मधु निषेध .....	१३५७
वत्सकादि काढा .....	११	प्रक्रिया .....	११
अमृतादि काढा .....	१३४८	दूसा प्रकार .....	११
पासा स्वरस .....	११	लघनका असहन .....	११
कटुकी चूर्ण .....	११	एक कालमें दो प्रकारकी औषध देनेका निषेध.....	११
लाजमंड .....	११	अन्य प्रतीकार .....	१३५८
वाय्वमंड .....	११	कटकायादि पाचन .....	११
मुस्तादि निर्यूह .....	१३४९	मनःशिलादि अंजन.....	११
निषादि यूष .....	११	भूनिषादि मर्दन व उद्दालन .....	११
षट्शेखर रसः .....	११	यवानिकाघुद्दालन .....	१३५९
<b>सन्निपात ।</b>		विषाघुद्दालन .....	११
सन्निपातस्वर लक्षण.....	११	चलकाघुद्दालन .....	११
धातुपाक लक्षण .....	१३५०	षटनी .....	११
दोषपाक लक्षण .....	१३५१	लघनाविधि .....	११
सन्निपात ज्वरके विशेष लक्षण.....	११	लघन .....	१३६०
साध्यासाध्य लक्षण ...	११	अति लघनके विचार .....	११
सन्निपातकी कालमर्यादा .....	११	लंघितको अन्न .....	११
दोषजनित कालमर्यादा .....	१३५२	पंचमुष्टिक यूष .....	११
कटुफलादि पाचनम्.....	११	सप्त मुष्टिक यूष .....	१३६१
दशमूलादि मंड .....	११	कपादिककी चिकित्सा .....	११
दुस्पर्शादि सिद्धान्त .....	११	अभ्यंजन .....	११
लाजसकुन्त .....	१३५३	वर्षकादि रस .....	११
पित्त ज्ञमन करनेके कारण .....	११	सन्निपाती मासनिषेध .....	११
शीतोदक सेचनका निषेध .....	११	सुवर्णादि लेप .....	१३६२
शिरिषार्पजन .....	११	चिकित्सा प्रक्रिया .....	११
कस्तूरिकार्पजन .....	१३५४	अन्य सन्निपात .....	११
लघन .....	११	<b>वातोल्लेख ।</b>	
शीतजलपान निषेध.....	११	वातोल्लेख सन्निपात .....	११

विषय	पृष्ठांक.	विषय	पृष्ठांक.
वातोल्वण सन्निपातकी चिकित्सा	१३६३	हीनपित्त मध्यकफ श्लेष्माधिकसंनि०	१३६९
मुस्तादि काठा	....	हीनकफ मध्यवात व पित्ताधिक	१
कट्फलादि काठा	....	संनि०	....
<b>पित्तोल्वण ।</b>		हीनकफ मध्यपित्त व वाताधिक	....
पित्तोल्वण सन्निपात निदान	.... १३६४	सनि०	....
पित्तोल्वण सन्निपात चिकित्सा काठा	....	छहोकी एक श्लेष्मसे चिकित्सा	....
चदनादि पानी	....	प्रबलदोषकी ज्ञाति होनेसे अन्यहीन	....
मुस्ताद्यष्टादशांग	....	दोषोकी ज्ञाति कथन	....
किरातादि काठा	.... १३६५	द्वात्रिंशांग काष	....
शब्बावि काठा	....	अष्टादशांग काठा	.... १३७०
<b>कफोल्वण ।</b>		द्वादशांग काठा	....
कफोल्वण सन्निपात निदान	....	सन्निपातपर रेचन	.... १३७१
कफोल्वण चिकित्सा	.... १३६६	संज्ञानाज्ञ चिकित्सा	....
कफोल्वणोपर काष....	....	वित्वादि काठा	....
<b>शुष्मोल्वण ।</b>		शुष्मादि काठा	....
शुष्मोल्वण सन्निपात	....	अर्कादि काठा	.... १३७२
बागरादि काठा	....	तिक्तादि काठा	....
व्योषादि काठा	....	त्रिदोषपर	....
<b>वात पित्तोल्वण ।</b>		दाह्याद्यष्टादशांग	.... १३७३
वात पित्तोल्वण सन्निपात	.... १३६७	गुडूच्यादि काठा	....
वातपित्तोल्वण चिकित्सा	....	अमृतादि काठा	....
<b>वातश्लेष्मोल्वण ।</b>		विश्वादि काठा	....
वातश्लेष्मोल्वण	....	चूपणादि काठा	.... १३७४
चिकित्सा	....	दशमूत्रादि काठा	....
<b>पित्त कफोल्वण ।</b>		आटकादि काठा	....
पित्त कफोल्वण	.... १३६८	कट्फलादि काठा	....
चिकित्सा	....	किरातादि काठा	.... १३७५
हीनवात मध्यपित्त व श्लेष्मा-	....	अष्टादशांग काठा	....
धिकसं०	....	पंचतक्त काठा	....
हीनवात मध्यकफ व पित्ताधिक	....	दाह्याद्यष्टादि काठा	....
संनि०	....	शेष्यादि काठा	.... १३७६
हीनपित्त मध्यकफ व वाताधिकसं०	....	लघुनादि काठा	....
		दशमूत्रादि काठा	....
		पचमूलादि काठा	....
		अर्कादि काठा	.... १३७७
		यृतसजीवनी वटिका	....
		त्रिनेत्र रसः	....

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
भस्मेश्वरो रसः ....	१३७८	मृतसंनिवनी रसः ....	११
अमिकुमार रसः ....	११	पण्यादि काठा ....	१३८९
पंचवक्त्र रसः ....	१३७९	असाध्यत्व ....	११
दूसरा प्रकार ....	११	अंतकर्म मुख्य औषध ....	११
उन्मत्त रसः ....	१३८०	<b>रुग्दाह ।</b>	
कनकसुंदर रसः ....	११	रुग्दाह संनिपात निदान ....	१३९०
तन्द्रा ....	१३८१	जलधर काठा ....	११
असुरादि अंजन ....	११	अभयादि काठा ....	११
लोहांजन ....	१३८२	ब्राह्मादि काठा ....	११
संध्यादि अंजन ....	११	उशीरादिपडंग काठा ....	११
ज्योतिष्मतीनस्य ....	११	धान्यादि काठा ....	१३९१
जातीपुष्प मस्य ....	११	अगुर्वादि धूप ....	११
द्राक्षाघषलेह ....	११	दध्यादि लेप ....	११
सन्निपात मकोप कारण ....	१३८३	बदयोदि लेप ....	११
सन्निपातोक्ते नाम ....	११	लाजतर्पण ....	११
उनकी मयीश ....	११	स्त्रीका आलिंगन ....	१३९२
साध्यासाध्य ....	१३८४	पण्यावलेह ....	११
		भस्मी गुटी ....	११

**संधिक ।**

संधिक सन्निपात ....	११
संधिकारी रसः ....	११
सन्निपातानल रसः ....	११
निर्गुडयादि धूप ....	१३८५
हसरीनिर्गुडयादि धूप ....	११
देवदारुकाठा ....	११
मुस्तादि काठा ....	१३८६
पचादि काठा ....	११
राधादिकाठा ....	११
अमृतादि काठा ....	११
ग्रण्यादि काठा ....	१३८७
पंचमूल्यादि काठा ....	११
रास्नादि काठा ....	११
सायादि परिमाण ....	११
संधिकपर लेपन ....	११

**अंतक ।**

अंतक संनिपात निदान ....	१३८८
अंतके रोटिका बंधनम् ....	११

**चित्तभ्रम ।**

चित्तभ्रम संनिपात ....	१३९३
मध्वादि काठा ....	११
द्राक्षादि काठा ....	११
बाह्यादि काठा ....	११
पण्यादि काठा ....	१३९४
हरीतक्यादि काठा ....	११
कणापंजन ....	११
कुम्भोद्गपनस्य ....	११
धूप ....	१३९५
सन्निपात गजांजलि ....	११
मोरेश्वर रस ....	११
मोरेश्वर रस ....	११

**शीतांग ।**

शीतांग संनिपात निदान ....	११
शीतांगकी चिकित्सा ....	१३९७
अर्कोदि काठा ....	११
भातुलुगादि काठा ....	११
बर्होटापुद्गलन ....	११
श्रीविष्टादि चूर्ण ....	११



विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
<b>तंद्रिक ।</b>			
तंद्रिक संनिपात निदान	.... १३९८	बीजपूरादि लेप	.... १४०५
तंद्रिक परीक्षा	.... १३	वचमुष्ट्यादि लेप	.... ११
भारग्यादि काठा	.... ११	सिद्धार्थादि लेप	.... ११
दूसरा प्रकार	.... ११	रोहीतकादि लेप	.... ११
अमृतादि काठा	.... १३९९	मरिचादि नस्य	.... १४०६
रास्नायजन	.... ११	कर्णकपरनस्य	.... ११
तुरंगलाला अंजन	.... ११	सामान्य उपचार	.... ११
कृष्णादि नस्य	.... ११	कांजिकादिलेप	.... ११
मरिचादि नस्य	.... ११	उपचार	.... ११
सुद्धादि नस्य	.... १४००	अन्न	.... १४०७

**कंठकुब्ज ।**

कंठकुब्ज निदान	.... ११
शृंग्यादि काठा	.... ११
त्रिकटुवादि कषाय	.... ११
फलत्रिकादि काठा	.... ११
किरातादि काठा	.... १४०१
कृष्णादि नस्य	.... ११
सिद्धवटी	.... ११

**कर्णक ।**

कर्णक संनिपात निदान	.... ११
रास्नादि कषाय	.... १४०२
रास्नादि काठा	.... ११
मरिचादि काठा	.... ११
भारग्यादि काठा	.... ११
दशमूलादि काठा	.... ११
शृंग्यादि लेप	.... १४०३
प्रलेप	.... ११
व्रण चिकित्सा	.... ११
कुलित्वादि लेप	.... ११
मरिचादि लेप	.... ११
प्रियङ्गवादि लेप	.... १४०४
अर्कादि लेप	.... ११
दंत्वादि लेप	.... ११
नागरादि लेप	.... ११
निशादि लेप	.... ११

**भुमनेत्र**

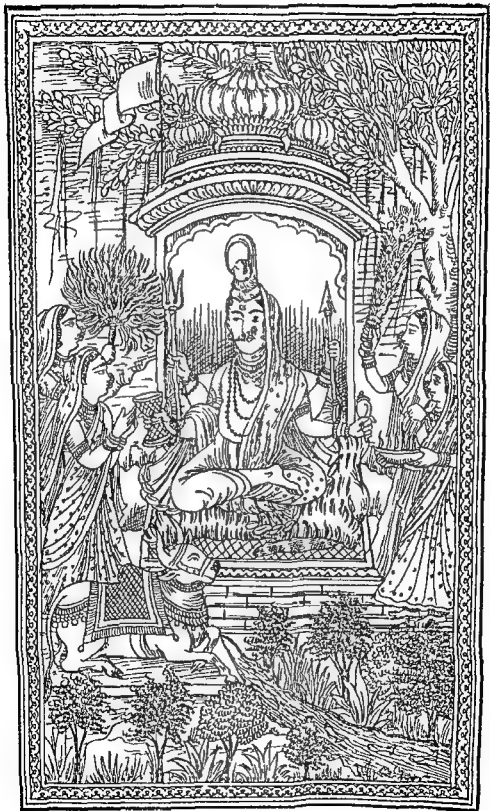
भुमनेत्र सन्निपात निदान	.... ११
दाण्यादि काठा	.... ११
श्लेष्मादि काठा	.... ११
यष्ट्यादि काठा	.... ११
मरिचादि नस्य	.... १४०८
अभ्रगंधादि नस्य	.... ११
भूमिनादि अवलेह अंजन व	
नस्य	.... ११
मार्तण्डभेरेवरसः	.... ११

**रक्तप्लीवी ।**

रक्तप्लीवी संनिपातनिदान	.... १४०९
पर्प्यादि काठा	.... ११
नलदादि काठा	.... ११
रोहितादि काठा	.... १४१०
पद्मादि काठा	.... ११
मूषकादि काठा	.... ११
दुग्धादि नस्य	.... ११
आधादि नस्य	.... १४११
चिकित्सा	.... ११
रक्तप्लीवि चिकित्सा	.... ११
सोमपाणिरसः	.... ११

**प्रलापक ।**

प्रलापक सन्निपात निदान	.... १४१२
मुस्तादि काठा	.... ११
तगरादि काठा	.... ११















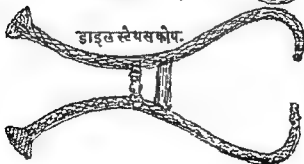
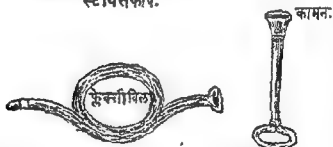
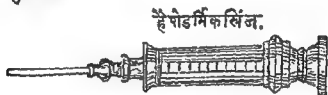
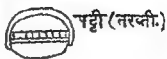














श्रीः ।

## अथ मूत्रपरीक्षा ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि मूत्रस्य च परीक्षणम् ॥

येन विज्ञानमात्रेण रोगचिह्नं प्रकाशते ॥ १ ॥

अर्थ-अब नाडीदर्पण कहनेके अनंतर हम मूत्रपरीक्षण कहते हैं, जिसके जाननेसे रोगके चिह्न प्रकाश होते हैं ।

मूत्रपरीक्षाका समय ।

निशांतयामे घटिकाचतुष्टये उत्थाप्यवैद्यः किल रोगिणां  
च ॥ मूत्रं धृतं काचमये च पात्रे सूर्योदये तत्सततं  
परीक्षेत् ॥ २ ॥

अर्थ-रात्रिके चौथेप्रहरकी जब ४ घड़ी रात्रि बाकी रहै तब वैद्य रोगीको उठाय काँचके पात्रमें मूत्रवराकर धरकर खै जब सूर्योदय होवे तब उस मूत्रकी परीक्षा करे ।

तस्याद्यधारां परिहृत्य मध्यधारोद्भवं तत्परिधारयित्वा ॥  
सम्यक् परिज्ञाय गदस्य हेतुं कुर्याच्चिकित्सां सततं  
हिताय ॥ ३ ॥

अर्थ-रोगीका मूत्र लेतेसमय प्रथम और अंतकी धाराको त्यागकर बीचकी धाराको लेवे तथा उसमूत्रसे रोगका कारण जानकर रोगीके हितार्थ औषधि करे ।

वाते च पांडुरं मूत्रं सफेनं कफरोगिणाम् रक्तवर्णं भवेत्पित्ते  
द्वंद्वजे मिश्रितं भवेत् ॥ सन्निपाते च कृष्णं स्यादेतन्मू-  
त्रस्य लक्षणम् ॥ ४ ॥

१ घटितेन पाण्डुरं मूत्रं रक्तं नीलं च द्रिप्तम् । रक्तमेव भवेद्गन्ताद्गन्तं फेनिलं कफात् ॥ इति पुस्तकान्तरे ।

अर्थ-रोगीका मूत्र वातविकारसे पांडुरवर्णहोताहै कफविकारसे श्याग-  
युक्त पित्तविकारसे रक्तवर्ण और द्रवजव्याधिसे मूत्र मिश्रवर्णका होताहै  
और सन्निपातसे कृष्णवर्ण होताहै । यह मूत्रके सामान्य लक्षण जानने ।

नीलं च रूक्षं कुपिते च वायौ पीतारुणं तैलसमं च  
पित्ते ॥ स्निग्धं कफे पल्वलवारितुल्यं स्निग्धोष्णरक्तं  
रुधिरप्रकोपे ॥ ५ ॥

अर्थ-मतांतर कहतेहैं कि वातके कोपमें रोगीका मूत्र नील और  
रूक्ष होताहै । पित्तके कोपमें पीला और लाल तथा तैलके समान  
होताहै । कफके विकारमें रोगीका मूत्र चिकना और पोखराके जलके  
समान गदला होताहै रक्तप्रकोपमें रोगीका मूत्र चिकना गरम और  
थाला होताहै ।

मातुलुंगरसाभासं सौवीराभं जलोपमम् ॥

प्रपाकरहितानां च मूत्रं चन्दनसन्निभम् ॥ ६ ॥

अर्थ-जिसके अन्न भलेप्रकार पाचन नहीं होताहै उसका मूत्र विजां-  
रेके रसके समान अथवा कांजीके समान अथवा जलके समान किंवा  
चन्दनके समान उतरताहै ।

अजीर्णप्रभवे रोगे मूत्रं तंडुलतोयवत् ॥

नवज्वरे धूम्रवर्णं बहुमूत्रं प्रजायते ॥ ७ ॥

अर्थ-अजीर्णसे जो विकारहुआहो उसमें मूत्र चावलके धोवनके स-  
मान होताहै । और नवीन ज्वरमें मूत्र धूपके समान तथा बहुत होताहै ।

पित्तानिलेधूम्रजलाभमुष्णं श्वेतं मरुश्लेष्मणि बुद्बुदा  
भम् ॥ सश्लेष्मपित्ते कलुषं सरक्तं जीर्णज्वरेऽसृक्  
सदृशं च पीतम् । स्यात्सन्निपातादापि मिश्रवर्णं तूर्ण  
विधिज्ञेन विचारणीयम् ॥ ८ ॥

अर्थ-मूत्र वातपित्तके कोपमें धूम्रवर्ण, गरम, और जलके समानहो-  
ताहै । वातकफके विकारमें सपेद तथा बुलबुलेदार होताहै । कफपित्तके  
विकारमें लाल तथा दूषितहोता है । जीर्णज्वरहोनेमें पीला तथा रुधि-

रके समान होय । और सन्निपाह होनेसे मूत्र अनेकप्रकारके मिश्रित-  
वर्णका होता है । इसप्रकार वैद्यको मूत्रके वर्ण जानने चाहिये ।

**परीक्षा विधिवत्कार्या रोगिमूत्रस्य तत्त्वतः ॥**

**तृणेन दापेयतैलबिन्दुं तत्रातिलाघवात् ॥ ९ ॥**

अर्थ-रोगीके मूत्रकी यथाविधिसे उत्तम परीक्षा करनी चाहिये । वह  
इसप्रकार कि पूर्वोक्त धरेहुए मूत्रमें तिनकासे लेकर वैद्य शीघ्र तेलकी  
बूंद डाले फिर उसकी इसप्रकार परीक्षा करे ।

**विकासि चेत्तैलमथाशु मूत्रे साध्यः स रोगी न विकासितं  
चेत् ॥ स्यात्कष्टसाध्यस्तलगेत्वसाध्यो नागार्जुनेनैव  
कृता परीक्षा ॥ १० ॥**

मूत्रमें डाली हुई तेलकी बिंदु यदि सबमूत्रके ऊपर जलदी-  
फैल जावे तो जाने रोगी साध्य है । और यदि न फैले तो जाने कि  
रोगी कष्टसाध्य है । तथा वह तेलकी बूंद मूत्रके नीचे बैठ जावे तो  
असाध्य जानना यह नागार्जुनसिद्धकी करी हुई परीक्षा है ।

**पूर्वाशां वर्द्धते बिन्दुर्यदा शीघ्रं सुखी भवेत् ॥**

**दक्षिणाशां ज्वरो ज्ञेयस्तथारोग्यं क्रमाद्भवेत् ॥ ११ ॥**

अर्थ-मूत्रमें डाली हुई तेलकी बूंद यदि पूर्वकी तरफ फैले तो रोगी  
शीघ्र अच्छा हो और दक्षिणदिशाकी तरफ फैले तो ज्वर जानना । वह  
रोगी औषध देनेसे अच्छा होय ।

**उत्तरस्यां यदा बिन्दोः प्रसरः संप्रजायते ॥ अरोगिता**

**तदा नूनं पुरुषस्य न संशयः ॥ १२ ॥**

अर्थ-यदि तेलकी बिंदु उत्तरदिशाकी तरफ फैले तो रोगी रोग-  
रहित है इसमें संदेह नहीं है ।

**वारुण्यां प्रसरेद्विन्दुः सुसाध्योऽपि न जीवति ॥ १३ ॥**

अर्थ-यदि पश्चिमदिशामें तेलकी बिंदु फैले तो उस रोगीकी सुख  
तथा आरोग्य होय ।

**विकासितं हलं कूर्मं सैरभाकारसंयुतम् ॥ करण्डमण्डलं**

**वापिनरं मूर्धविवर्जितम् ॥ १४ ॥ गात्रखण्डं च शङ्खं च**



खड्गं मुसलपट्टिशम् ॥ शरं च लगुडं चैव तथैव त्रिचतुः  
पथम् ॥ १५ ॥ विन्दुरूपं नरोदृष्ट्वा न कुर्वीत क्रियां  
कचित् ॥

अर्थ—यदि तैलकी विंदु हल, कल्लुआ, भैंसा, तथा करंड (पिटारी)  
मंडल, अथवा मनुष्यके धड़के समान अथवा तोड़े हुये हाथपैरके समान  
अथवा शस्त्र, तलवार, मूसल, पट्टा, बाण, दंड किंवा तिराहे-चौराहेके  
आकार विंदुरूप होय तो उस रोगीकी चिकित्सा न करे ।

हंसकारंडताडगं कमलं गजचामरम् ॥ छत्रं वा तोरणं  
हर्म्यं सुपूर्णं दृश्यते यदि ॥ आरोग्यता ध्रुवं ज्ञेया तदा  
कुर्यात्प्रतिक्रियाम् ॥ १७ ॥

अर्थ—यदि तैलकी विंदु हंसपक्षीके समान, खंजन, तलाव, कमल,  
हाथी, चमर, छत्र, तोरण, किंवा महल इनके आकार होंवें तो उस रोगीको  
आरोग्यहोय अतएव उसका यत्न करना चाहिये ॥

तैलविन्दुर्यदा मूत्रे चालनीसदृशी भवेत् ॥

कुले दोषो ध्रुवं ज्ञेयः प्रेतदोषसमुद्भवः ॥ १८ ॥

अर्थ—यदि तैलकी विंदु मूत्रमें चालनीके छिद्र सदृश होय तो उस  
रोगीको कुलदेवका दोष अथवा प्रेतदोष जानना चाहिये ।

नराकारं प्रजायेत किम्वा स्यान्मस्तकद्वयम् ॥

भूतदोषं विजानीयाद्भूतविद्यां तदाचरेत् ॥ १९ ॥

अर्थ—तैलविंदु मूत्रमें मनुष्याकार अथवा दो मस्तकके आकार होय  
तो उस रोगीको भूतदोषहै इस प्रकार विचार उसका यंत्र मंत्रादि भूत-  
विद्याका प्रयोग करना चाहिये ।

मांजिष्ठाभं धूम्रवर्णं च नीलं स्निग्धं मूत्रं वारितुल्यं च  
शीतम् ॥ ज्ञात्वा चित्ते बुद्धिमान्मानुषाणां कुर्यान्वन्तर्भे  
पज्ञं रोगिणां च ॥ २० ॥

अर्थ—यदि मूत्र मजीठके रंगके समान अथवा धूम्रवर्ण, नीला, चिकना  
पानीके समान शीतल होय तो बुद्धिमान् वैद्यको उसरोगकी औषध  
फरना चाहिये ।

सर्पाकारं भवेद्वाताच्छत्राकारं तु पित्ततः ॥

श्लेष्मणा मौक्तिकाकारमित्येतन्मूत्रलक्षणम् ॥ २१ ॥

अर्थ-तैलबिंदु मूत्रमें वातविकारसे सर्पके समान तथा पित्तकोपसे छत्रके समान तथा कफकोपकरके मोतीके समान होयहै इसप्रकार मूत्र-लक्षण जानना ।

प्रकारान्तरेण परीक्षा ।

अहोरात्रेण विसृजेत्स्वस्थो मूत्रमनाविलम् ॥ अपाण्डु  
रं च तरलं पलानामष्टसम्मितम् ॥ २२ ॥ बाहुल्येन जलं  
तत्र कठिनं स्वल्पमेव हि ॥ दृश्यते पलमूत्रे तु चतुर्गुणाऽ  
द्रवस्थिति ॥ २३ ॥

अर्थ-स्वस्थ मनुष्य दिनरात्रमें ८ पल निर्मल कुछ पाण्डुवर्ण तरल मूत्र परित्याग करताहै उसमें बहुधा जलभागहै, और कठिन भाग अल्प है, परीक्षाद्वारा निश्चय हुआहै कि १ पल मूत्रमें ४ रत्ती कठोर पदार्थहै ।

वस्तिदेशे समुद्विग्ने मलेष्वन्त्रे चितेषु च ॥ तस्मिन् कृमि  
गणाकीर्णे दाहेर्वापि सुदारुणैः ॥ २४ ॥ नार्याश्चापन्नस  
त्वाया अश्मर्या वापि निःस्रवेत् ॥ सुकृच्छ्रं विन्दुशस्त  
द्धानस्रवेद्वापि किञ्चन ॥ २५ ॥ वस्तौ विस्तीर्णतां याते  
तद्ग्रीवाकुञ्चनात्तथा ॥ मस्तुलंगरुजामूत्रं संचितं वापि न  
स्रवेत् ॥ २६ ॥ विद्रधिर्मूत्रपिण्डे चेद्विसृचीवापि दारुणा ॥  
नोत्पद्यते ततो मूत्रंतद्वन्थावापि कञ्चन । वस्तेः प्रदाहतो  
मूत्रं तद्वन्थावापि किञ्चन ॥ २८ ॥ वस्तिः प्रदाहतो मूत्रं  
विन्दुशस्तु स्रवेत्सदा ॥ द्रवातियोगाच्छैत्येन संयोगा  
च्चाति वर्द्धते ॥

अर्थ-वस्तिदेशका उत्तेजन, अंत्रोंमें कृमि तथा मलसंचय एवं दाह पयरी इन सब कारणोंसे तथा गर्भवती स्त्रीआदिके मूत्र घटे कष्टसे बृंह बृंह होकर निकले, अथवा एकसाथही मूत्र उतरना बंद होजावे, एवं मूत्राशयकी विस्तीर्णता उसके ग्रीवादेशका संकोचहोना मस्तिष्कमें

पीडा और संचितमूत्रका न उतरना । मूत्रग्रन्थिकी विदग्धि तथा विपू-  
चिकारोगमें उक्तग्रन्थिसे एकसाथ मूत्र उतरे नहीं । वस्ती अर्थात् मूत्रा-  
शयमें दाहकेसाथ बिंदुबिंदु होकर मूत्र निकले अधिक पतले पदार्थ  
पीनेसे और देहको शरदीलगनेसे मूत्र अधिक उतरताहै ।

व्याधिक्षीणशरीरस्य नष्टसंज्ञस्य देहिनः ॥ तस्य स्वेदस्य  
वात्यर्थं वृद्धिः स्यान्मृत्यवेमता ॥ ३० ॥ विरत्या द्रव  
पानाच्च स्वेदाधिक्यात्स्मृतोऽसृजि ॥ जलोदरेऽतिसारे च  
मूत्रं स्तोकं स्रवेचृणाम् ॥ ३१ ॥

अर्थ—व्याधिद्वारा क्षीणदेह तथा चेतना विहीन रोगीके मूत्रकी वृद्धी  
और पसीने अधिक आवे तो वह रोगी निश्चयमरे द्रवपानकी अल्पता  
तथा द्रवपानमें वैराग्य, रक्तस्राव, जलोदर और अतिसाररोगमें मूत्र  
अत्यंत थोड़ा उतरताहै ॥

## यूनानी मतानुसार मूत्रपरीक्षा.

दोषैराक्रान्तदेहस्य प्रतिकर्तुं रुजां चयम् ॥ मूत्रनाडी  
परीक्षा तु प्रथमं परिभाव्यते ॥ ३२ ॥ मरीज्विमार  
रोगी स्यात्तत्परीक्षा द्विथैव हि ॥ शनाशी नब्जकारू  
रा नाडीमूत्रस्य सा स्मृता ॥ ३३ ॥

अर्थ—दोषोंकरके आक्रान्त देहकी रोगोंसे यत्नकरनेके लिये प्रथम हम  
मूत्र और नाडीकी परीक्षा कहतेहैं तहां रोगीको यूनानीभाषामें मरीज  
और विमार कहतेहैं उसकी परीक्षा दो प्रकारकीहै प्रथम शनाशी जिसमें  
नब्ज और कारूरा अर्थात् नाडी और मूत्रकी परीक्षाहै तहां प्रथम मूत्र-  
परीक्षा कहतेहैं ।

मूत्रफेवर्ण ।

सुपेद अवियज श्वेतं स्याद् अस्वद मेचकम् ॥

जर्द अस्कर पीतं स्यात् सुर्ष अहमर रक्तकम् ॥ ३४ ॥

अर्थ-मूत्रके वर्ण चार प्रकारके हैं जैसे सफेद, अवियज, ये दोनों श्वेतवर्णके नाम हैं स्याह और असवद ये कालवर्णके नाम हैं जर्द और अस्कर ये पीतरंगके नाम हैं एवं सुख और अहमर लालरंगको कहते हैं ।

सितमच्छं च बहुलं मूत्रं शैत्यविशेषतः ॥ शुभ्रं सान्द्रं  
कफोद्रेकादसान्द्रं दोषपाकतः ॥ ३५ ॥ अवदातं घनं  
चापि विच्छिन्नं श्लेष्मदोषतः ॥ उपायो मदितो वैद्यस्त-  
त्रमूत्रविरेचनम् ॥ ३६ ॥

अर्थ-जिस रोगीका मूत्र सफेद, स्वच्छ, और बहुतही उसके शीतकी विशेषता जाननी और जिसका मूत्र सफेद और गाढाही उसके कफकी आधिक्यता जाननी एवं पतलामूत्र दोषपाक होनेसे होता है उसी प्रकार सफेद गाढा और लहसदार कफके विकारसे होता है इसका उपाय वैद्योंने मूत्र विरेचन अर्थात् इन्दी जुलाब देना कहा है ।

असितं मलिनं वातकोपवैकृत्यसूचकम् ॥ सौदा विकृ-  
तिजं चापि परिज्ञातं भिषग्वरैः ॥ ३७ ॥ श्यामलं  
घनविच्छिन्नं सौदा कोपेन संभवेत् ॥ सञ्ज अरज्वर  
पालाशं भवेन्मूत्रं विषा शिनः ॥ ३८ ॥ श्यामं सान्द्रं च  
यन्मूत्रमूष्मणा दग्धदोषताम् ॥ प्रकटी कुरुते दोष  
विचारे भिषजं प्रति ॥ ३९ ॥

अर्थ-जो मूत्र काला और मलिन हो वो वातकोपको सूचित करता है तथा यही सौदाकी विकृतताको भी सूचना करता है एवं श्यामरंग और गाढा यह सौदाके कोपसे होता है सञ्ज और अरज्वर पलाशरंग अर्थात् हरितवर्ण होता है ऐसा मूत्र जिस रोगीने विषभक्षण करा हो उसका होता है और जिस रोगीका मूत्र काला और गाढा होय वह गरमीसे दोषोंको दग्ध होना सूचित करता है ।

शुष्कस्य यवसस्येव नीरं यद्भावनाद्भवम् ॥ ईपत्पीतं हि  
मन्दाग्ने रंगतिव्री उदाहृतः ॥ ४० ॥ फलपूरत्वगाभासं  
तीक्ष्णाऽग्रेरुपजायते ॥ तुरंजी उत्रंजी चेति नाम्नावर्णः

प्रकीर्तितः ॥ ४१ ॥ ज्वलनज्वालभं यत्तु रक्तं पीतं च  
मेचकम् ॥ सवर्ण आतशीनारी प्रोक्तस्तस्य परीक्षकैः ॥ ४२ ॥

अर्थ-सूखे जो के भूसेको रात्रिमें भिगोनेसे प्रातःकाल पानीकारंग होजाता है उस ईषत्पीतरंगको तिब्बनीरंग कहते है ऐसा मूत्रमंदाभिवालेका होता है और विजोरे नींबूकरंगको तुरंजीरंग और उत्रजीरंग कहते है यह तीक्ष्णाभिवालेका होता है एवं अमिकी ज्वालाका जैसा लाल और पीलारंग होता है ऐसा हो या मोरकी चंद्रकाके आकार श्यामभि-  
श्रितरंग हो उस वर्णको आतशी और नारीरंग मूत्रपरीक्षकोने कहाहै.

तत्रोष्मणाखरत्वंतुदोषाणांजातमुच्यते ॥ इहतएकसवि  
ज्ञेयः सोख्तगी हिकेतस्मृताः ॥ ४३ ॥ सुहतरिक् दग्ध-  
कर्त्ता स्यादेपशब्दस्थितोर्विधि । जाफरानी कुंकुमाभ  
मत्पुष्णज्वरिणोभवेत् ॥ ४४ ॥

अर्थ-ऐसा उक्तरंग दोषोके अत्यंत गरमीकी प्रखरतासे होताहै उसमें भी एक सोख्तगी और हिकेत कहाता है और दोष दग्धकर्त्ताको सुहत-  
रिक् कहते है और जिस मूत्रकावर्ण केशरिया हो उसको जाफरानीरंग कहते है यह अत्यंत उष्ण ज्वरवालेका होता है ।

ऐरावतफलाभासो नारंजीवर्ण उच्यते ॥ तत्सादृशं भवे  
न्मूत्रं रक्तपित्तविकारिणः ॥ ४५ ॥ वर्दी गुलाबी पर्यायौ  
पाटलं वदतो गुणम् ॥ असहव किंचिदेतस्मादवदातः  
स्मृतो बुधैः ॥ ४६ ॥ वर्णद्वयानुगंमूत्रंजायतेरक्तवेगतः ॥

अर्थ-जो मूत्रनारंगीके रंगका हो उसको नारंजीवर्ण कहते है ऐसा मूत्र रक्तपित्त रोगीका होता है जो मूत्र पाटलहो उसको वर्दी और गु-  
लाबीरंग कहते है यदि इसगुलाबीमें जो मूत्र कुछ सपेदहो उसको अ-  
सहव कहते है ये दोनों प्रकारका मूत्र रक्तवेगके कारणसे होता है ।

कानी त्वत्यन्तशोणःस्यादाडिमीकुसुमादपि ॥ ४७ ॥  
तत्रालप्राज्यभावितु शोधनं शस्तमीरितम् ॥ अक्तं  
यावकवर्णस्याद्दग्धासृग्लक्षणंवदेत् ॥ ४८ ॥ अपकरी

कोपज्वरेभवेत्॥ समास्तन्मुख्यवर्णानां रंगगुलाला रक्त  
व्यंजनं समुदाहृतम् ॥ ४९ ॥

अर्थ-जो मूत्र अनारके फूलसेभी लालहोवे उसको फारसीमें कानी रंग कहतेहैं यह अत्यंतखूनके बढनेसे होता है इसका शोधन करना उत्तम कहाहै जो मूत्र गुलालारंगकाहोवे उसको फारसीमें अपकारी रंग कहतेहैं यह रक्तकुपित ज्वरमें होताहै यह हमने संक्षेपसे मूत्रके वर्णोंका वर्णनकराहै विशेष भाषामेंदेखो ॥

मूत्रकी परीक्षा तीनप्रकारसे करी जाती है जैसे प्रथम आरोग्यावस्थाका मूत्र देखना फिर रोगावस्थाका और तीसरे मूत्रकी दशाका निश्चय करना अरबीमें मूत्रको बोलू कहते हैं परंतु फारसीमें काहूरः कहते हैं इसका यहकारण है कि काहूरः एक शीशीका नाम है जिसमें वैद्यजन मूत्रकरके देखते हैं अब कहते है कि यह प्राणी जो जल पीता है वह प्रथम भेदामें आहारके साथ मिलकर उस आहारको द्रवीभावमेंकर केलूस निर्माण करताहै फिर रुधिरवाहिनीमें भ्रमण करताहुआ हृदयमें परिपक्वहो फिर गुरदेमें ही मूत्राशयमें संचित होताहै और जो कुछ रुधिरमें मिलाहुआ हृदयमें रहजाता है वह धमनि नाडियोंके द्वारा सर्वदेहमें पहुँचकर कुछ पसीने से निकल जाता है और कुछ फिर गुरदेमें ही मूत्राशयमें गिरता है इसी कारण मूत्र रंगीन हो जाता है जिस मनुष्यके पसीना अधिक आता होगा उसके मूत्रभी थोडा उतरेगा और जिसके पसीने थोडे आते होंगे उसके मूत्र अधिक उतरताहै जब मूत्राशयमें संचित होजाताहै तब इस प्राणीको मूत्रकरनेकी कांक्षा होती है अतएव सर्वदेहकी चेष्टा इसमूत्रसे उत्तमप्रकार निश्चय हो सपती है॥ अब कहते हैं कि मूत्रदेखनेकी इतनी बडी शीशी लेंवे कि समग्र मूत्र आय जाये और कुछ खालीरहे कि हिलाने चलानेमें अडचल न होवे, वैद्यको यहभी स्मरणरहे कि मूत्र दीपडीपीछे परीक्षाके योग्य नहीं रहता और यहतो अवश्य याद रखवे कि शरदीमें मूत्र स्वतःस्वभावसे ही गाढा रहताहै और गरमीकी ऋतुमें पतला होताहै । मेहदीके लगानेसे एवं रंगदार वस्तुके खानेसे मूत्र रंगीन उतरता है घट्टत हरितशाक खानेसे मूत्र हरितरंगका उतरताहै एवं केशर, सनाय, अथवा अमलतासके पीनेसे मूत्र पीला उतरताहै बहुत भूखारहनेसे क्रोधसे

रात्रिमें जगनेसे मूत्र लालरंगका उतरताहै । वैद्यको उचितहै कि ऐसे मूत्रकी परीक्षा रोगी या रोगीके बांधवोंसे प्रथमही करलेवे नहीं तो परीक्षामें विपरीतता हो जावेगी । मूत्रके देखते समय किसीप्रकारकी छाया तथा किसीवस्तुका प्रतिबिंब उसपर न पडताहो और किसीसमय मूत्रके समान और वस्तु दृष्टिमें आजातीहै तो अपक्ववैद्य धोका खाजाते है जैसे सिकंजबी, जल मिला सहत, और मूत्र समीपके देखनेसे गाढा प्रतीतहोताहै और दूरसे स्वच्छ प्रतीत होताहै परंतु सिकंजबीआदिमें इस्से विपरीत ज्ञान होताहै अतएव इसप्रकारकी परीक्षा वैद्य प्रथमकरलेवे.

प्रसंगवश पशुमूत्रकी परीक्षाकहते हैं जैसे गधेका मूत्र सपेद और गाढा होताहै घोडेका पतला और सपेद होताहै. परंतु ऊपरका आधा-धेत और नीचेका आधा गाढा होता है ॥

ऊँटका मूत्र पीला और मनुष्यमूत्रके समान होताहै परंतु मनुष्यके मूत्रसे नहीं मिलता.

मूत्रकी आठप्रकारसे परीक्षा करतेहै जैसेकि रंग, पकता, स्वच्छता, समल, गंध, फैन, रसुच और प्रमाण.

तहाँ प्रथमरंगका ज्ञान कहते हैं—

पीलेरंगके छः भेदहै.						
केलसी.	रक्तवर्ण	अग्निवर्ण.	पीतरक्तवा- सिंशिष्ट	नारंगी	दुग्धप्रक्षालन सदृश.	संस्कृ०ना
जाफ रानी.	अहमर	नारी	अशकर.	उत्तरजी	तबनी	फार०ना०
केलसीवर्णका मूत्र उबर-पाहु- रोग आदिसे होताहै	लालवर्णका मूत्र अधिरक्तोपसे होताहै	जैसे अग्निज्वाला पीली और चमकदार होतीहै ऐसा मूत्र भय- त गरमोंके कारण होताहै	पीत और रक्तता मिश्रित व- र्णभी पित्ताधिक्यसे होताहै	समत रंगके समान अथवा नार- ंगीकेसमान मूत्रका वर्ण रक्तपि- तके कोपसे होताहै	दुग्धधोवनके समान मूत्रका वर्ण कफपित्तकुपितके कारण होताहै.	व्यवस्था

हरितवर्णके भेद.			कृष्णवर्णके भेद.			
भतिहरित.	हरित.	नीलवर्ण.	श्वेतकृ०	हरितकृ०	रक्तकृष्ण.	केशरी.
कुरांती.	जंगाली.	नीला.	स्याह.	सवज-स्याह.	अहमरी.	जाफरानी.
गंदेकासा रंग अथवा घृक्षपत्रकानल जैसा ऐसा मूत्र गरमी और पित्तके जल-नेसे होताहै.	मूत्र जंगारके रंगका होतो वातपित्त मिश्रित जानना.	सरदीसे मूत्र नीलवर्णका होताहै यदि बालकका मूत्र नीला हो तो पक्षाघात आदिवातका विकारजाने.	जो मूत्र प्रथम सपेद फिर काला प्रतीत हो तो कफ जलकर वात हुआजाने.	जो प्रथम हरित और पीछे कृष्णवर्ण हो तो कफ जलकर सौदा वात हुआहै	जो प्रथम रक्त फिर कृष्ण हो जावे तो जाने कि रुधिर बिगड़कर वात बन गया है इसमें दुर्गंध बहुत होतीहै.	प्रथमपीछा और पीछे काला हो जावे तो पित्तजलकर वात होगया ऐसा निश्च-य करना.
रक्तवर्णके भेद.			श्वेतवर्णके भेद.			
पिक्कवर्ण.	रक्तकृ०	पाटलवर्ण.	पाटलवर्ण.	कृत्रिम.	स्वा भाविक.	
भक्रम.	अहमर-कानी	घरदी.	असहव.	मिजाजी.	हकीकी.	
जिसमें रक्तता अधिक और कृष्णता स्वल्प हो तो रुधिर कोष और गरमी कुछ न्यून जाने.	जिस मूत्रमें रक्तता हो परंतु कृष्णवर्ण अधिक हो तो रुधिरतोष जाने परंतु गरमी अधिक है.	जो मूत्र सुद्धाव पुष्पके समान रंगमें हो तो रुधिरकी आधिर्यता और गर्मी जाने.	जो मूत्र प्याजके पत्तेके समान रक्तमिश्रित भेत होतो रुधिरकी शय्यता जाने.	जो मूत्र मधुय जलके समान प्रतीत होतो शरीर अथवा दुर्बलताको सूचितकरे है.	दूधके समान सपेदी होनेसे मूत्र कफाधिर्य-को सूचित करताहै, अथवा चरबी निकलती है, ऐसा जाने.	



अब पक्वता ( किंवा म ) के जाननेका प्रकार लिखते हैं । वह तीन प्रकारका है इसके लिखनेसे यह प्रयोजन है कि वैद्यको यह परीक्षा करनी चाहिये कि इसरोगीका मूत्र पक्क हुआ निकला है या फच्चा ॥

मूत्रकी पक्वापक्वदशा दर्शक कोष्ठक.		
मध्यम	घन	द्रव
मोतदिल	गलीज	रकीक
नैरोग्य अवस्थावाले प्राणीका मूत्र मध्य अवस्थाका अर्थात् न बहुत पतला और न बहुत गाढा ऐसा उतरता है ।	वातादि दोषोंके अत्यंत बढनेसे मूत्र बहुत गाढा उतरता है यदि अंतर्ब्रणके फटनेसे आँतोंकी गोंठ मुलनेसे अथवा जीर्णज्वरमें गाढा मूत्र होवे तो बुरा है ।	यदि देहमें शरद्री अधिक हो या मंदाग्नि तथा बहुत जलपीनेसे मूत्राशय और वस्तीमें दुर्बलताके कारण इस प्राणीका मूत्र पतला उतरता है ।

## स्वच्छता ।

अब कहते हैं कि निर्मलता ( सफाई ) और अनिर्मलता ( गदलाहट ) से रोग ज्ञात होता है । यदि रोगीका मूत्र स्वच्छ उतरे तो जाने कि पाक होकर उतरा है । यदि गदला प्रतीत होवे तो जानना कि अपक्व मूत्र उतरा है । अर्थात् पानी हजम नहीं हुआ ॥ देहकी कुव्वत घटनेसे मूत्राशयमें मूत्रशुद्ध नहीं होता, एवं अंतर्ब्रणकी सृजनसे मूत्र गदलासा प्रतीत होता है ॥

इनमें गाढा और गदलेकी पृथक् २ परीक्षा इसप्रकार है कि जो मूत्र गाढा होता है वह ऊपर नीचे समान रहता है । और जो गदला होता है वह बीचमें अथवा नीचे गाढा और पतला प्रतीत होता है ॥

## रसूव ( उर्द्ध्वमध्यः अधोभागस्थ )

रसूव तीन प्रकारका है जैसे १ असफल २ औसत ३ फक १ असफल अर्थात् अधोभागस्थित २ औसत मध्यभागस्थित, ३ फक नाम

उद्धभागस्थित-फिर उस रसूबके दो भेदहैं । एकरश्मेत, दूसरारक्तवर्ण, तहाँ सपेदरंगका रसूब उससमय होताहै जब जठरामि ( पाकदशा ) शुद्धहोतीहै । और रक्तवर्णकाररसूब पाकदशाके गड़बड़ होनेमें दृष्टि-गोचर होता है ॥

पूर्वोक्तपाकदशाकाचक्र.		
ऊर्ध्वस्य	मध्यस्य	अधस्य
शौक	भौसत	भसफल
और जिसप्रमाणकि मूत्रमें वायुके अंश अधिक होवे तथा पुरुषांप्रती अधिक होवे तो उसके परमाणु मूत्रके ऊपर भाजोवे ।	मूत्रमें वायु मध्यमदशामें रहे और पुरुषांप्रती देहमें मध्यम होता है तो उसके परमाणु मध्यमें रहते हैं ।	जब मूत्रमें वायु न्यूनहो तथा देहमें निबंछता अधिकहो तो उस मूत्रके परमाणु नीचे बैठ जावेगे ।

## डॉक्टरमैतानुसारमूत्रपरीक्षा ।

इदानीं कथयिष्यामि चमत्कृतिकरं परम् ।

डॉक्टरमैतमालोक्य मूत्रस्य च परीक्षणम् ॥

अर्थ-अब हम परम चमत्कृतिकारक डाक्टरमैतके अनुसार मूत्र परीक्षा कहतेहैं । डॉक्टरमैत मूत्रको ( यूरन ) Urin कहते हैं उसकी तीनप्रकारसे परीक्षा पहीहै । अर्थात् आरोग्यावस्थाकामूत्र, रोगीकामूत्र और मूत्रकी दशा निर्णयकरनेकी विधि ॥

## आरोग्यावस्थामेंमूत्रकीपरीक्षा

रोग रहित प्राणीका मूत्र निर्मल और कहरवार्द ( हलके ) रंगका होता है । जिसका स्पिसिफिक्ग्रेवेटांतोल ( घननभूतनासिचह ) १००३ से लेकर १०३० पर्यंत होता है । परंतु कभी २ आहार, विहारके फा-

रणसे न्यूनाधिक होजाता है । अर्थात् जैसा भोजन और चैष्टाकरताहै उसीके अनुसार होता है ॥

जैसे यूरिनापोटास ( *Urina Potas* ) अर्थात् द्रव ( पतली ) वस्तुके पीनेसे पीछे जो फीकेरंगका मूत्रहोताहै उसका स्पिसिफिकग्रेवटी ( तोल ) १००३ से १००९ तकहोतीहै ॥

युरैनाकाईलाई ( *Urina Chyli* ) अर्थात् भारीपदार्थके पचनेके पश्चात् जो मूत्रहो उसका स्पिसिफिकग्रेवटी १०३० होतीहै ॥

यूरिनासें ग्यूनिस *Urina Segunis* अर्थात् अत्यंतसोनेके पश्चात् प्रातः कालके मूत्रका स्पिसिफिकग्रेवटी १०१५ से १०२५ तक होताहै । इसी कारण पडताफैलानेसे मूत्रका स्पिसिफिकग्रेवटी १०२० पर्यंत गिना गयाहै ॥

२४ घंटे अर्थात् आठमहरके करेडुए मूत्रका प्रमाण ४० औंस अर्थात् सेरसे कुछ अधिक होताहै कि जिसमें १॥ अंशके लगभग भारीवस्तु पाईजातीहै ॥

मूत्र निफलतेही उसमें देहकी गरभीके अनुसार गरमीहोतीहै । तथा एकप्रकारकी गंधहोतीहै । परंतु कुछसमयके पश्चात् यह दोनों बात जाती रहतीहै ॥

तत्कालके मूत्रका खारीस्वादहोताहै, यदि थोड़ीदेर रखदिया जावे तो लैक्टिकएसिड जो एसिटिकएसिड उत्पन्न होनेसे खट्टा होजाताहै । तथा अधिक देरीतक रखरहनेसे उसका घनभाग ( म्युकस ) नीचे पड़ेमें बैठ जाताहै । जिमें यूरिकएसिडकीकलमें अलग दिखाई देतीहै । यदि उसके पश्चात् देरीतक धरारहनेसे सड़जाताहै । और कार्बोनेट आफ एमोनियामें यूरियाके बदलनेसे खारी दुर्गंधितहोजाताहै तथा उसके ऊपरके भागमें झाग प्रतीत होतेंहैं । जिसमें फास्फेट निमफ मिलताहै उसके । पीछेभी मूत्रको रखनेसे नीलेरंगके कालापनलिये झाग होजाते हैं औरफाई पैदा होजातीहै ॥

मूत्रमें दोप्रकारकी वस्तुरहतीहै । एक आरगेनिक, दूसरी इनआरगेनिक।

आरगेनिक जो वस्तुहै जो जरायुज और उद्भिन्नेके स्वरूपमें मिलतीहै-उनमेंसे इतनीवस्तु मुख्यहै यूरिकएसिड-हिप्पूरिकएसिड-लैक्टिकएसिड एमोनियाफानमक और कुछक्रियेटेन-फीएटीन-इत्यादि ॥

इनआरगेनिक ( धातुरूप पदार्थों ) मेंसे वह निमकहै जो सोडापोटास-लाइम-मेग्नेशिया-केसाथ कार्बोनिक्एसिड-हैड्रोक्लोरिक्एसिड-सलफ्यूरिक्एसिड-स्फास्फोरिक्एसिड केसंयोगसेबनतेहैं और अतिसूक्ष्म प्रमाणमें सिलिका फौलाद क्लोरिन भी मिलताहै ॥

पूर्वोक्त दोप्रकारके अतिरिक्त मूत्राशयकी म्यूकस और एपिथीलियल सेल्सभी मूत्रमें मिलतेहैं ॥

मूत्रमें जो वस्तुहै उनका प्रमाण निम्न लिखित चक्रसे जानो ।

### नकसा.

पानी	९५०		हिप्पूरिक् एसिड	०	३५
यूरिया	३४	७	फास्फेटनमक	९	००
यूरिक्एसिड ( पाषाणभाग )	६०	३०	सेलफेट नमक	६	००
क्रिस्टल	१	३५	हैड्रोक्लोरेटनमक	८	००
क्रिस्टलिन	१	३०	सब मिलकर	१०००	

मूत्रपरीक्षामें इतनी बातोंका जानना मुख्यहै । मूत्रनिकलनेकीरीति, प्रमाण, स्फेरिकग्रावटी, रंगत, गंधी, स्वाद, तथा नीचेबैठने वाली वस्तुएँ तहाँ ॥

### मूत्रनिकलनेकीरीति ।

जब मूत्र कष्ट और कठिनताकेसाथ निकले तथा पेसाबके स्थानपर दाहहोय जैसे-सूजाक, मूत्राघात, और मूत्राशयकी सूजनमें, तो उसे ( डिस्यूरिया ) कहतेहैं ॥

यदि मूत्रनिकलनेमें अत्यंत कष्टहो और बूंद २ टपके तथा सीवनके स्थानपर दाहपीडा, और मरोडाहो जैसे-तारपीन या मक्खी के खाने अथवा उक्तरोगोंकी अधिकता होनेसे तो उसे ( म्यूरी कहते ) है ।

मूत्रका बिलकुल बंद होजाना इस्चुरियाकहाताहै ॥ यह दो प्रकारसे होताहै । एकतो यह कि मूत्रोत्पत्तीही न होना । दूसरे मूत्रके मार्ग रुकनेसे होताहै ॥

मूत्राशयकी सूजनके कारणसे मूत्र वेअख्तियार या उसकीहाजत वा रंवारहो, या मूत्राशयकी गर्दनमें फालिजहोनेके कारण बूंद २ मूत्रटपके तो उसको ( एन्यूरेसिस ) या ( इन्कांटेनिन्शआफ्यूरेन् ) कहते हैं ॥

रणसे न्यूनाधिक होजाता है । अर्थात् जैसा भोजन और चेष्टाकरता है उसीके अनुसार होता है ॥

जैसे यूरिनापोदास ( Urina Potas ) अर्थात् द्रव ( पतली ) वस्तुके पीनेसे पीछे जो फीकेरंगका मूत्रहोता है उसकां स्पिसिफिकग्रेवटी ( तोल ) १००३ से १००९ तकहोती है ॥

युरैनाकाइलाई ( Urina Chyli ) अर्थात् भारीपदार्थके पचनेके पश्चात् जो मूत्रहो उसका स्पिसिफिकग्रेवटी १०३० होती है ॥

यूरिनासें ग्यूनिस Trina Segunis अर्थात् अत्यंतसोनेके पश्चात् प्रातः कालके मूत्रका स्पिसिफिकग्रेवटी १०१५ से १०२५ तक होता है । इसी कारण पडताफेलानेसे मूत्रका स्पिफिकग्रेवटी १०२० पर्यंत गिना गया है ॥

२४ घंटे अर्थात् आठप्रहरके करेडुए मूत्रका प्रमाण ४० औंस अर्थात् सेरसे कुछ अधिक होता है कि जिसमें १॥ अंशके लगभग भारीवस्तु पाईजाती है ॥

मूत्र निकलतेही उसमें देहकी गरमीके अनुसार गरमीहोती है । तथा एकप्रकारकी गंधहोती है । परंतु कुछसमयके पश्चात् यह दोनों बात जाती रहती है ॥

तत्कालके मूत्रका खारीस्वादहोता है, यदि थोड़ीदेर रखदिया जावे तो लैक्टिकएसिड वो एसिटिकएसिड उत्पन्न होनेसे खट्टा होजाता है । तथा अधिक देरीतक रखे रहनेसे उसका घनभाग ( म्युफस ) नीचे पड़ेमें बैठ जाता है । जिमें यूरिकएसिडकीकलमें अलग दिखाई देती है । यदि उसके पश्चात् देरीतक धरारहनेसे सड़जाता है । और कारबोनेट आफ- एमोनियामें यूरियाके बदलनेसे खारी दुर्गंधितहोजाता है तथा उसके ऊपरके भागमें झाग प्रतीत होते हैं । जिसमें फासफेट निमफ मिलता है उसके । पीछेभी मूत्रको रखनेसे नीलेरंगके कालापनालिये झाग होजाते हैं औरफाई पैदा होजाती है ॥

मूत्रमें दोप्रकारकी वस्तुरहती है । एक आरगेनिक, दूसरी इनआरगे। निक।

आरगेनिक वो वस्तु है जो जरायुज और उद्भिजके स्वरूपमें मिलती है- उनमेंसे इतनीवस्तु मुख्य है यूरिकएसिड-हिप्पूरिकएसिड-लैक्टिकएसिड एमोनियाकानमक और कुछक्रियेटेन-फीटीनैन-इत्यादि ॥

## मूत्रकारण ।

रंगतदार वस्तुके बिना खानेसे भी मूत्रकी रंगतफिकी कहरवाई-भूरी लाल आदि होसकीहै । एवं जब मूत्र पतील होता है तब फीकेरंगका या साफ या वेरंगहोता है । जैसे पानीपीनेके पश्चात् रुधिरकी न्यूनतामें तथा पानी न पीने-पसीने निकलने इस अवस्थामें मूत्रमें रुधिरके माफिक कालेरंगका रुधिर निकलताहै। और यदि खूनही निकले तो मूत्रका रंग अधिक काला होजाता है। गठियाभे नारंगी रंगका पीव मिलनेसे या फास्के टके मिलापसे मूत्रका रंग दूधके समान होता है। कमलवायुमें मूत्र पीला कुछ कालौच लिये उतरताहै । इसीप्रकार पतंगकी वस्तु अथवा चुर्कदुर आदिके साग खानेसे मूत्र लालरंगका होताहै । इसीप्रकार जिस २ रंगतके पदार्थ या औषधी यह मनुष्य खाताहै तो मूत्रभी उसी २ रंगका निकलताहै ॥

## मूत्रकीगंध ।

यह प्रथम लिख आएहैं कि मूत्रमें एकप्रकारकी गंध होतीहै परंतु कुछकालके बाद सीतल होतीही वह गंध नहीं रहती ॥

मूत्रको अधिक देरतक रखनेसे तेजावके सदृश होजाताहै, और सडनेके सबब उसमें दुर्गंध आने लगतीहै । परंतु मसानेकी सूजनमें सडने के प्रथमही मूत्रमें दुर्गंध आने लगती है । धातुक्षीण आदि रोगके मूत्रमें मरीमछलाकी या सुदंकीसी दुर्गंध मारने लगतीहै ॥

तथा बहुतसी ऐसी ऐसी वस्तुहैं जिनके भक्षणसे उनकीसी दुर्गंध आने लगैहै जैसे-प्याज, लहसन, तारवीन, और होंगआदि ॥

## मूत्रकास्वाद ।

स्वस्थमनुष्यके मूत्रका स्वाद नमकीन और बहुमूत्रके रोगमें मीठा होता है ॥

## तत्त्वस्यद्रव्य ।

मूत्रमें नीचे बैठनेवाली वस्तु कितनेई प्रकारकी होती है । एकतो वह जो स्वाभाविक गरमीके कारण उसमें मिली रहती है । और बाद शर्दिके जमजाती है । जैसे यूरेटस-और क्रोरायडनमक-आदि- । दूसरी नहीं मिलनेवाली वस्तु जैसे-म्यूकस और पीव आदि मूत्रके मार्गसे निकलकर जमजाते हैं । इत्यादि और भी जानने ॥

यूरिया प्रायः अभिभूत रहताहै यदि किसी वस्तुके साथ मिला होय तो सहजही पृथक् होसकताहै । यह एक कठोर कलमदार वस्तुहै । इस-

पतलीचीजोंके पीनेसे-पसीनेकमनिकलेसे जैसे गरमीकी अपेक्षा शरदीमें गरमहवाकीअपेक्षा शरदहवामें-सायंकालकी अपेक्षा प्रातःकाल दिनकी अपेक्षा रात्रिमें अथवा सूत्राशयके फैलनेसे मूत्र अधिक उतरताहै॥

अत्यंत फिकर, शरदीसे ज्वरहोना, इत्यादि कारणभी मूत्रअधिक करनेवालेहैं । तथा पूर्वोक्त नियमके विरुद्ध अर्थात् गाढीवस्तुओंके पीनेसे त्वचा और फुफ्फुसकाकार्य अधिकहोनेसे, तथा हैजा, पित्तज्वर, जलंधर और सूत्राशयमें सूजन होनेके कारण इस प्राणीके मूत्र कम उतरताहै ॥

## मूत्रका प्रमाण ।

चिन्हभेद, अवस्था, ऋतु, आहार, देहकीदशापलटना, और विमारी आदिके, कारणसें मूत्रकी तोलमें कुछ २ भेद होजाताहै । जैसे-पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंके, बालककी अपेक्षाजवानी, और वृद्धावस्थामें फरक होजाताहै ॥

कसरत करनेसें, बहुतपसीना निकलनेसे, सूखेपदार्थखानेसे निद्राके पश्चात् मूत्रकरनेसेभी वजन मूतनासिवह अधिक होताहै । एवं सर्दी, आलस्य, पतली और खट्टी वस्तुकेभोजनसें तथा पुराने रोगोंमें वजन मूतनासव मूत्रका कम होजाताहै ॥

यदि मूत्रकी तोल एकहजार पांचसौसे कम हो या १०३० से ऊपर होय तो अवश्य कोई रोग होनेकी संभावना जाननी कभी वजनमूतना सवासे जलभागकी अधिक्यता और कठोरभागोंकी न्यूनता प्रतीत होतीहै प्रायः ऐसे मूत्रोंमें अलव्युमनमिलना है । और वजनमूतनासिवा अधिक होनेसे दृढभागोंमें जैसे यूरिया और शर्कर आदि होनेका संदेह होताहै ॥

कदाचित् मूत्रमें गुरुपदार्थके भारीपनेकी परीक्षा करनी होवेतो उसकी यह रीतिहै कि २४ घंटेका जितना मूत्रहो इधड़ाकरे, अथवा रुब समयका न मिले तो प्रातःकालके मूत्रकी स्पेसिफिक ग्रावटी मादूम करके उसके अंत्यके दो अंकोंसें। २-३३ को गुणनकरे फिर जितना गुणन फलहोय उतनेही ग्रेन भारी वस्तु हजार ग्रेन मूत्रमें समझे ॥

उदाहरण-जैसे मूत्रका वजनमूतनासिवः १२२३ है तो उसके अंतके दो अक्षर अर्थात् २३ तेईस को २०३३ से गुणा करा तो ५३२५९ हुआ अतएव इसी हिसाबके अनुसार एकहजारग्रेनमें ( ग्रेन १ मासेका ) ५३। ५९ ग्रेन समझे जातेहैं ॥

मूत्रकारंग ।

रंगतदार वस्तुके बिना खानेसे भी मूत्रकी रंगतफिकी कहरवाई-भूरी लाल आदि होसकीहै । एवं जब मूत्र पतील होता है तब फीकरंगका या साफ या वेरंगहोता है । जैसे पानीपीनेके पश्चात् रुधिरकी न्यूनतामें तथा पानी न पीने-पसीने निकलने इस अवस्थामें मूत्रमें रुधिरके माफिक कालेरंगका रुधिर निकलता है। और यदि खून ही निकले तो मूत्रका रंग अधिक काला होजाता है। गठियामे नारंगी रंगका पीव मिलनेसे या फास्फे टके मिलापसे मूत्रका रंग दूधके समान होता है। कमलवायुमें मूत्र पीला कुछ कालौच लिये उतरता है । इसीप्रकार पतंगकी वस्तु अथवा चुन्दर आदिके साग खानेसे मूत्र लालरंगका होता है । इसीप्रकार जिस २ रंगतके पदार्थ या औषधी यह मनुष्य खाता है तो मूत्रभी उसी २ रंगका निकलता है ॥

मूत्रकीगंध ।

यह प्रथम लिख आएहैं कि मूत्रमें एकप्रकारकी गंध होतीहै परंतु कुछकालके बाद सीतल होतेही वह गंध नहीं रहती ॥

मूत्रको अधिक देरतक रखनेसे तेजाघके सदृश होजाताहै, और सड़नेके सबब उसमें दुर्गंध आने लगतीहै । परंतु मसानेकी मूजनमें सड़ने के प्रथमही मूत्रमें दुर्गंध आने लगती है । धातुक्षीण आदि रोगके मूत्रमें मरीमछलीकी या मुर्देकीसी दुर्गंध मारने लगतीहै ॥

तथा बहुतसी ऐसी ऐसी वस्तुहैं जिनके भक्षणसे उनकीसी दुर्गंध आने लगैहै जैसे-प्याज, लहसन, तारवीन, और हांगआदि ॥

मूत्रकास्वाद ।

स्वस्थमनुष्यके मूत्रका स्वाद नमकीन और बहुमूत्रके रोगमें मीठा होता है ॥

तलस्थद्रव्य ।

मूत्रमें नीचे बैठनेवाली वस्तु कितनेई प्रकारकी होती है । एकतो वह जो स्वाभाविक गरमीके कारण उसमें मिली रहती है । और बाद शर्दिके जमजाती है । जैसे यूरेटस-और क्रोरायडनमक-आदि- । दूसरी नहीं मिलनेवाली वस्तु जैसे-म्यूकस और पीव आदि मूत्रके मार्गसे निकलकर जमजाते हैं । इत्यादि और भी जानने ॥

पूरिया प्रायः अमिश्रित रहताहै यदि किसी वस्तुके साथ मिला होय तो सहजही पृथक् होसकाहै । यह एक कठोर कलमदार वस्तुहै । इस-



का स्वादु कुछ कड़ुआ नमकीन सोरेसा शीतल तेजावके समान होता है । यदि इसमूत्रमें २४८ दर्जेकी गर्मी पहुँचाई जायतो इसका स्वरूप पलट जाता है, और उसकी कलम बन जाती हैं । जिसका चित्र हमने इस बृहत्त्रिषण्डुरन्ताकरकी दूसरी जिल्दमें दीनाहै यदि फिर उन कलमोंमें कुछ पानी मिलाकर औटाओ और कुछ जियादा कावॉ-नेट आफवरायटा डालो और वाटरवायसे उसको सुखाओ फिर एक केटाल डालो कि, यूरिया उसमें मिलजाय पीछे उसको छानकर सुखानेसे यूरिया की कलमें प्रगटहोगी । इसकीभी तसवीर प्रथम हम लिख आएहैं । इसीप्रकार डॉक्टरलोग यूरिकएसिड अर्थात् जोमूत्रमें पथरीला भाग मिलारहता है उसकीभी कलम बनातेहैं । विशेष देख-नाहो तो डाफटरीकी पुस्तकोंमें देखो ॥

मूत्रपरीक्षाकीतरकीब ।

वैद्यको उचितहै कि, मूत्रकी रंगत, स्वच्छता, दूषितता ( मैलापन ) गंध, तोल, और गर्मी सर्दी आदि सब जाहिरी अवस्थाओंका निश्चय करना चाहिये ॥

तहां रोगीके मूत्रकरतेही ( टेस्पेपर ) अर्थात् परीक्षाकरनेके कागज दसे ( जोहलदी और वनस्पतीके नीले रंगसे रंगाहुआ होताहै ) परीक्षा करे । यदि मूत्रमें तेजआवी भाग अधिक होगा तो उसमें हरा कागज डालनेसे सुर्ख होजायगा । और मूत्रमें खारका भाग अधिक होगा तो हलदीके रंगें कागजका रंग भूरा और सुर्खालिये हो जायगा और तेजावसे सुर्ख हुआ कागज उसमें फिरपहली दशामें आय जावेगा ॥

यदि परीक्षाके समय खार प्रतीत होय तो यह निश्चय करना कि यह विकार अमोनियाके कारण है या और किसीकारणसे । यदि आमो नियाके कारण होगा तो उस कागजकी सुखानेसे रंग उडजावेगा और अफलीका होगा तो रंग ज्योंका त्यों बनारहेगा ॥ यदि वनसके तो २४ घंटेका समय मूत्र लेकर नापे और ( यूरेनामेटर ) मूत्रमापक यंत्रद्वारा उसकी स्पेसिफिकावटी मालूम करनी चाहिये ।

एकछोटासा यंत्र शीशिका या पीतलका बनाहुआ होताहै जिसकी अंग्रजीमें यूरेनामेटरकहतेहैं जिसका चित्र इस खंडके आदिमें देखो उसके साथ एक ग्लास होताहै, जिसमें नंबर की रेखा सिचीद्वई हो-

तीहै । उसमें स्पेसिफिकावटीके निश्चयकरनेके समय पूर्वोक्त ग्लास अथवा किसी पात्रको समानभूमिमें रखकर यूरेनामेटरको उसमें डालके देखो तो यूरेनामेटरकी डंडी जिस नंबरके साम्हने ठहरीहो उसपर हजार और मिलायदेनेसे स्पेसिफिकावटी मालूम हो जातीहै । जैसे १५ के नंबर पर यूरेनामेटरकी डंडी ठहरी है तो मूत्रकी स्पेसिफिकावटी ( भारीपना ) १०१५ हुई ॥

यदि यूरेनामेटर यंत्र न मिलसके तो यह रीतिकरे कि कांचके डाटवा ली घोटलका घडाकर उसमें साफजल भरके तोले, फिर उसीके हिसाब माफिक मूत्रको भरके तोले तो मूत्रके भारीपनेका ज्ञान होजायगा ॥

जैसे कल्पनाकरो कि साफपानी बीतलमें ४०० ग्रेन आया फिर उसपानीको निकाल मूत्रभरके तोला तो ४०६ ग्रेन हुआ तो ४०० ग्रेन पानीका भारीपना १००० हुआ तो ४०६ ग्रेन मूत्रका गुरुत्व १०१५ होगा एकग्रेन १५ मासेका होता है ॥

खुर्दवीनयंत्रकावर्णन ।

मूत्रपरीक्षा आदिमें खुर्दवीनका अधिक काम पडताहै अतएव प्रसंगवस उसका वर्णन भी इसी स्थानपर होना ठीक है ॥

आज कल इस खुर्दवीनका वैद्यकमें अधिक काम पडताहै । परंतु उसका मौल्य अधिक होनेके कारण अत्यंत प्रचार नहींहै ॥

खुर्दवीन दो प्रकारकी होती है १ सादां कांच जो केवल शीशाहा होता है । इसमें किसी चीजकी देखो तो उसके बडा अक्स होकर नेत्रोंपर गिरताहै ॥

दूसरा मिश्रित जिसमें अनेक टुकड़े होतेहैं असलमें इसीको खुर्दवीन कहना चाहिये यद्यपि खुर्दवीन अनेक प्रकारकी है परंतु यहां वैद्यके वर्तने योग्य कहतेहैं । ऐसे खुर्दवीनमे पीतलकी एक टिकटी लकड़ी पर जडी हुई होती है । एक लंबी डंडी ऊपर और एकडंडी नीचे लगी हुई होती है ॥ तथा उस डंडीमें नलीलगी हुई होतीहै । नलीके नीचे तीन इंचकी लंबी और दो ढाई इंच चौड़ी एक रफेवी होतीहै जिसके बीचमें छेद होता है और छेदके दोनोंतरफ लोहेकी कमानी या और कोई ऐसी वस्तु होतीहै जिसमेंग्लास आदि कोईवस्तु छेदके ऊपर रखी जाय तो रखीरहे । इसीप्रकार इसके कितनेही टुकड़े होतेहैं देखनेसे मालूम होजावेगा ।

सुर्दवीनकोकाममलनेकीविधि ।

प्रथमसुर्दवीनके सब टुकड़े सांफहं। यदि मैले हों तो सावरसे पोछ डाले कपड़ेसे न पोछे क्योंकि कपड़ेके पोछनेसे शीशेमें लकीर होजातीहै ॥

देखनेके समय सुर्दवीनको कुछ तिरछीकरलेवे और एक आंख बंदकरके देखे और सुर्दवीनके पेचको इतना घुमावे कि देखनेकी वस्तु दृष्टिके सामने आयजावे तथा सूर्यके प्रकाशमें परीक्षाकरे यदि रात्रि-होतो दीपकके लजेलेमें परीक्षाकरे ॥

जब देखनेकी वस्तु ठीक २ दीखने लगे तब पैन्सिलसे उसकी तसवीर खींचले कि जिस्से याद रहे, पूरा चित्र खिंचजानेके बाद बंद करदे-इस प्रकार पूरी २ परीक्षाकरे इस जगे मूत्र देखनेके सब नियम ठीक २ नहींकहे यदि अधिक देखना होतो डॉक्टरकी पुस्तक से देखो ॥

इति मूत्रपरीक्षासमाप्ता ।

## आर्तवपरीक्षा ॥

द्वादशाद्वत्सरादूर्ध्वमापंचाशत्समाःस्त्रियः ॥

मासिमासिभगद्वाराप्रकृत्यैवार्तवं स्रवेत् ॥ १ ॥

अर्थ-चारहवर्षकेउपरांत पचासवर्षकी अवस्थापर्यंत स्त्रियोंके महीनेकी महीने रजोदर्शका रुधिर भगद्वारा सदैव निकला कर्त्ता है ॥

शुद्धआर्तवकेलक्षण ।

शशासृक्प्रतिमंयच्चयद्वालाक्षारसोपमम् ॥

तदार्तवंप्रशंसंति यच्चाप्सुचविरज्यते ॥ २ ॥

अर्थ-शशके रुधिरके रंगका अथवा लाखके रसके समानहो और जिस रुधिरके रंगेहुए वस्त्रको जलमें धोनेसे दाग जाय नहीं वो आर्तव उत्तम जानना ॥

मासान्निष्पिच्छदाहार्तिपंचरात्रानुबंधि च ॥

नैवातिबहुलात्यल्पमार्तवमशुद्धमादिशेत् ॥ ३ ॥

अर्थ-जो महीनेके महीने पिच्छलता-दाह-और पीडाराहित पाँचरात्रिपर्यंत गिरनेवाला-एव न बहुत अधिक न बहुत थोड़ा परिमाणका निकलनेवाला आर्तव शुद्ध होता है ॥

आर्त्तवकेयथार्थअप्रवृत्तिकेदोष ।

तस्यायथाप्रवृत्त्याहिशारीरामानसास्तथा ॥

व्याधयोबहवःस्त्रीणांजायंतेकृच्छ्रसाधनाः ॥ ४ ॥

अर्थ-यथा नियम रजोदर्शकी प्रवृत्ति न होनेसे स्त्रियोंके शारीरिक और मानसिक विविध कष्टसाध्य पीडाओंकी उत्पत्ति होती है ॥

स्नायूनारक्तयंत्राणांपाचकाम्नेश्चजायते ॥

व्याद्वतिव्याद्वतेतस्मिन्सुस्थितिर्नियतेभवेत् ॥ ५ ॥

अर्थ-नियम पूर्वक रजोदर्श होनेसे स्नायु-रुधिरयंत्र-और पाचकामि ये सब क्रिया उत्तम प्रकारसे निर्वाहित होती है ॥ रक्तस्त्रावके रुकनेसे पूर्वोक्त क्रियाओंमें विपरीतता होती है अतएव स्त्रीजातिकी संपूर्ण पीडा और विषयका ज्ञान करना अत्यंत आवश्यक है ॥

ऋतौकंदूयनंयोनौक्वचिदंगेचवेदना ॥

बाहुल्यंस्वलपतोवापिचानुबन्धित्वमस्यवा ॥ ६ ॥

संरोधःसर्वथावापिवेद्यान्येतानियत्नतः ॥

आमयेष्वखिलेष्वेवभिपग्भिर्योपितांसदा ॥ ७ ॥

ऋतुके समय योनिमें खुजली चले-कमर-तलपट अथवा अन्य किसी-स्थानमें पीडा-रुधिरस्त्रावकी आधिक्यता-वा अल्पता-अथवा अधिक कालपर्यंत रुधिरका जाना और रुधिरका सर्वथा बंद होजाना इत्यादि विषयकी वैद्यजाने इसी प्रकार सर्व समुदाय विशेषकी परीक्षा करके फिर स्त्रियोंकी चिकित्साकरनी चाहिये ॥

इति आर्त्तवपरीक्षा ॥

मलपरीक्षा ।

तुटितं फेनिलं रूक्षं धूम्रं वा वातकोपतः ॥

वातश्लेष्मविकारे च जायते कपिशं मलम् ॥

अर्थ-वातके कोपसे रोगीका मल ( दस्त ) दृढा हुआ, शीघ्रदार,

रूखा और धूँके रंगका होता है । वातकफके विकारमें मल काला लालमिले रंगका होता है ॥

बद्धं सुशुटितं पीतं श्यामं पित्तानिलाद्भवेत् ।

पीतश्यामं श्लेष्मपित्तादीपदार्द्रं च पिच्छिलम् ॥

अर्थ—वातपित्तके रोगमें बँधाहुआ, दूटा, पीला, श्यामवर्णका मल होता है । कफपित्तके रोगमें पीला, श्याम और कुछ गीला एवं मलाई-दार दस्त होता है ॥

श्यामं शुटितपीताभं बद्धं श्वेतं त्रिदोषतः ॥

अर्थ—त्रिदोषके कोपसे काला दूटा, पीला, बँधाहुआ, और सपेददस्त होता है ॥

दुर्गन्धः शिथिलश्चैवविष्टोत्सर्गो यदा भवेत् ।

तदा जीर्णं मलं वैद्यैर्दोषज्ञैः परिभाष्यते ॥

अर्थ—जिस रोगीका मल दुर्गन्धयुक्त, शिथिल उतरे उसको दोषज्ञ वैद्य जीर्णमल कहते हैं ॥

कपिलं गुण्डियुक्तं च यदि वर्चोऽवलोक्यते ।

प्रक्षीणमलदोषेण दूषितः परिकथ्यते ॥

सितं महत्पूतिगन्धं मलं ज्ञेयं जलोदरे ॥

अर्थ—जिस रोगीका आमिके सदृश वर्णवान् और गाँठदार मलहो तो क्षीणमलदोषसे दूषित जानना और जलंधररोगीका मल सपेद बहुतसा दुर्गन्धयुक्त होता है ॥

श्यामं क्षयेत्वामवाते पीतं सकटिवेदनम् ।

अतिकृष्णं चातिशुभ्रं मतिपीतं तथारुणम् ।

मरणाय मलं किंतु भृशोष्णं मृत्यवे ध्रुवम् ॥

अर्थ—क्षयरोगमें मल काला होता है, आमवातसे कमरमें पीडा करता हुआ पीलेरंगका दस्त होता है, और अत्यंत काला, अत्यंत सपेद, अत्यंत पीला, अत्यंत लालरंगका और अत्यंत गरम दस्त होय तो उस रोगीकी अवश्य मृत्यु होय ॥

वातस्य च मलं कृष्णं ततः पित्तस्य पीतविट् ।

रक्तवर्णमलं किञ्चिन्मलं श्वेतं कफोद्भवम् ॥

१ मलका प्रमाण—अवस्था और प्रकृतिके अनुसार है । जैसे अधिक भोजन वाला मलकोंके दिनमें कईबार दस्तहोता है युवा पुरुषोंके १ बार-

अर्थ-वादीसे काला, पित्तसे पीला और किंचित् लाल, कफसे सपेद रंगका मल होता है ॥

आमं वा श्वेतजं प्राहुः मिश्रितं द्वंद्वजं वदेत् ।

अपक्वं स्यादजीर्णं तु पक्वं स्वस्थमलं भवेत् ॥

अर्थ-सपेद रंगका मल आमका होता है, और जिसमें मिश्रितरंगही वह द्वंद्वज जानना, अजीर्ण रोगीका मल कच्चा और स्वस्थ मनुष्यका मल पक्का होता है ॥

अत्यग्नौ पीडिते शुष्कं मन्दाग्नौ तु द्रवीकृतम् ।

दुर्गंधं चन्द्रिकायुक्तमसाध्यं मललक्षणम् ॥

अर्थ-तीक्ष्णाग्निवाले पुरुषकामल गांठदार होता है । और दुर्गंध तथा चन्द्रिका युक्त मल होनेसे रोगीअसाध्य ऐसा जानना ॥

वद्धं श्यामं मरुति कुपिते पित्तकोपे तु पीतं

पानीयाभं सफेनं कफरुपि च मले सान्द्रपांडूरवर्णम् ॥

रक्ते क्रुद्धे सरक्तं जलनिभमथतत् द्वंद्वकोपेद्विलिंगं

सर्वैर्दोषैः सरोपैर्भवतिकिलमलं रोगिणः सर्वलिंगम् ॥

अर्थ-बधाहुआ, कालामल, वादीकेकोपसे होता है । पित्तकोपसे पीलावर्ण, कफकोपसे पानीके समान, श्यागयुक्त, सघन और सपेद होता है और रुधिरके कोपकरके रक्तवर्ण, पानीके समान मल होता है । द्वंद्वजदोषोंके कोपसे दो दोषोंके चिह्नमिलताहोताहै । और त्रिदोषके कोपसे तीनों दोषोंके चिह्न मिला रोगीका मल उतरता है ॥

बृद्ध पुरुषोंके और जिनको अधिक बैठे रहनेका अभ्यास है उनकी एकवारसे भी कम दस्त होता है । अब कहते हैं कि जिनरोगोंमें दस्त अधिक आते हैं वह ये हैं । जैसे-आंतों में गांठ और सूजन होनेसे, दुष्टभोजन अथवा अपाचक भोजन करनेसे, अथवा जुल्लाव लेनेसे अधिक दस्त होते हैं । एवं आंतोंमें घाव होनेके कारण, देहमें अधिक गर्मीके कारण, तथा आव दवा के पलट जानेसे, एव भीतरी चोट लगनेसे, शोक, चिंता, और भय आदिकारणोंसे इस मनुष्यके अधिक दस्त होते हैं ॥

मिली हुई लोहमय आदि काली वस्तु खानसे दस्त काले रंगका होता है पतंग आदि औषधसे लाल रंगका, हरासाग आदिसे हरे रंगका, रेवतचीनी आदिसे पीले रंगका दस्त होता है इसी प्रकार अनेक रंगका दस्त होता है ॥

दुर्गंधिद्यामर्णं मलमरुणनिभं पांडुराभं विचित्रं  
मांसाभं मेचकं तत्प्रभवति मरणायैव रोगान्वितस्य ॥  
विश्वं शैथिल्ययुक्तं मुहुरिति निपतत्स्यादजीर्णाच्च वर्ज्यं  
दिङ्मात्रं चैतदेवं निगदितमगदैर्लक्षणं वर्चसोऽपि ॥

अर्थ-दुर्गंधयुक्त, काला, किंचितलाल, सफेद, अनेकवर्णयुक्त मांसके समान, सुरमईरंगका ऐसा मल होनेसे रोगीमरे और अजीर्णसे दूटा हुआ, शिथिल बारंवार ऐसा मल होता है। ये वैद्योंको किंचित् दिङ्मात्र लक्षण मलके कहें। बाकी कुशलवैद्य अपनी बुद्धिसे विचार लेवे ॥

इति मलपरीक्षातमाप्ता ।

## मुखपरीक्षा ।

वाते च मधुरास्यत्वं पित्ते च कटुकंतथा ॥

मधुराम्लं कफे चैव सर्वलिङ्गं त्रिदोषजे ॥

अजीर्णे घृतपूर्णस्यात्कपायं वाग्निमांद्यके ॥

अर्थ-अब मुखपरीक्षा कहते हैं जैसे कि वादीके रोगसे रोगीका मुख भीठा होता है पित्तके रोगसे कटुआ और कफके रोगसे मुख भीठा और खट्टा होता है एवं सन्निपातवाले रोगोंके मुखका स्वाद भीठा कटुआ और खट्टा होता है अजीर्ण रोगमें मुखका स्वाद घृतपूर्णके सदृश होता है और मंदाग्निमें मुखका स्वाद कषेला होता है इसप्रकार वैद्य मुखकी परीक्षा करें ॥

अजीर्णवस्थामे मल कठोर बड़े लेंगे २ अथवा ऊटके मैलेके समान गोल २ उतरता है । हेजमि पतथा और चावलके धोवनकासा दस्त होता है । आमवात यवासीर, पथरी मूत्रगर्भ, इत्यादि रोगोंमें बारंवार दस्त की क्षात्र होती है इत्यादि ॥

डाक्टरोंमतानुसार मुखपरीक्षा ।

सब लक्षणोंमें प्रथम मुखके लक्षण जानना वैद्यको अत्यावश्यक है । क्योंकि जब रोगी आता है तो प्रथम वैद्यकी दृष्टि मुखपरही जाती है और मुखपरीक्षा द्वारा अनेक रोगोंका ज्ञान होता है ॥

जैसे पीडाके पश्चात् मुखपर प्रसन्नता और उन्मेद प्रगट होय तो उत्तम है परंतु अकस्मात् किसी घोर रोगकी तत्काल निवृत्ति होजाय और मुखपर प्रसन्नता और देदीप्यमानता दीखे तो यह बुरा है ॥ -

## जिह्वापरीक्षा ।

जिह्वा शीताखरस्पर्शा स्फुटिता मारुताधिके । रक्तइयामा  
भवेत्पित्ते कफे शुभ्रातिपिच्छिला॥ कृष्णासकण्टका शुष्का-

यदि मुखसे किसीप्रकारका कोई चिह्न जैसे रोगके बिना होठ न हिले न नेत्र अच्छीतरह खुले तो यह निर्बलताका धर्म है । पुराने रोगोंमें मुखचमकीला होता है । प्रायः सुजाक-गरमी या भीतरी अन्य२ रोगोंमें मुखसे फिकर और पीडा प्रतीत होती है । अच्छी रीतिके विचार करनेसे मानसिक बिमारियोंमें तथा अन्य घोर बिमारियोंमें मुखपर बिता और जीनेसे निरासता प्रगट होती है ॥

बावरेपनेमें भोलापन बिनाकारण हँसी-आती है । मृगीरोगमें नि-  
बुंड़ीपना और सुस्ती प्रतीत होती है दिवानेका मुख भयंभर प्रतीत होता है । नामदोंका मुख सरमिंदगी लिये होताहै ऐसा मनुष्य किसीसे आँख नहीं मिलाता ॥

मृत्युके समय मुखपतला-दुर्बल नाफकी आगेकीहड्डी निकली हुई कनपटी बैठी हुई होठ लटकते गालपिचके त्वचा सिमटी हुई-और काली तथा नाफके बाल और पलकोंपर सपेद पिलास लगाहुआ प्रती-  
त होताहै इत्यादि अनेक चिह्न होते हैं ये लक्षण अशुभ हैं ॥

रुधिरके पतले होनेके कारण रोगोंमें मुखफीका और कुछ सूजन लिये होता है पित्तज्वरमें मुख लालरंगका सरतानमें चिन्तायुक्त और नीलतालिये सीसके रंगका होताहै गरमीके रोगमें मट्टीके रंगका पांडु-  
रोगमें पीला तिछीके बडी होनेमें मैलयुक्त और फीका होता है ॥

हैजा तथा श्वासके अवरोधमें नीलेरंगका मृगीकी यारीकेपूर्व बैंगनी रंगका मुख होजाता है । इत्यादि और भी अनेक चिह्न होते है ॥

इति मुखपरीक्षा समाप्ता ।

१ जिह्वाके देखनेसे बहुधा रोगोंकी परीक्षा होतीहै-जैसे रुधिरका भ्रमण दोषोंकी कमी बेसीकाहाल आदि और प्रायः आमाशयकी अवस्था उत्तमरीतिसे जानीजाती है । इसका यह कारणहै कि लुआवदार शिर्छिकेद्वारा इन रोगोंका विशेष संघष रहताहै ।

प्रायः रोगोंकी आद्य अन्त्यावस्था जाननेमें जिह्वासे बहुत सहायता मिलती है । और आरोग्यावस्थामेंभी सर्वप्राणियोंकी जिह्वाका स्वरूप एकसा नहीं होता जैसे-किसीकिसी की लाल किसीकी सफेद, किसीकी स्वच्छ और किसीकी मलिन एवं किसीकी नम्र, और किसीकी कठोर होती है । किसीकी जिह्वा बाहर निकालनेके समय शिथिल और किसीकी नौदार आदि बिह्वेसे चिह्नित होतीहै ।



**सन्निपाताधिके तु सा॥ मिश्रिते मिश्रिता ज्ञेया सर्वलक्षणवर्जिता॥**

अर्थ—जिस जीभका शीतल कठोरस्पर्श हो तथा फटी हुई प्रतीत होतो वाताधिक्य जानना । पित्ताधिक्यमें लाल और कालेरंगकी, एवं कफाधिक्यसे सफेद और अत्यन्त कफसे ल्हिसी हुई होती है । सन्निपातमें जीभ कटिदार सुखी और काली होती है । और मिश्रित दोषोंसे जीभका भी रंग मिश्रित होता है ॥

**शाकपत्रप्रभा रूक्षा स्फुटिता रसनानिलात् । रक्ताश्यामा भवेत्पित्ताल्लिप्तार्द्रा धवला कफात्॥ परिदग्धा खरस्पर्शाकृष्णा दोषत्रयाधिके ॥ सैव दोषद्वयाधिक्ये दोषद्वितयलक्षणा ॥**

अर्थ—वादीसे जीभ शाकपत्रके समान रूखी, और फटी हुई होती है । पित्तसे लाल और काली एवं कफसे ल्हिसी हुई गीली और सफेद होती है । त्रिदोषकी अधिकतासे जीभ जली हुईसी, खरदरी और काली होती है । एवं द्विदोषकी आधिक्यतासे दोदोषोंके मिले लक्षण होते हैं ।

अब मनुष्य सोकर उठता है तो जिह्वापर मैलकी पतली पपड़ीसी बम जाती है । जो मनुष्य मुख खोलकर सोते हैं उनकी जीभ सोकर उठनेके बाद सुखीसी प्रतीत होती है । बहुतसे रोगोंकी अवस्था जिह्वाके द्वारा प्रतीत होती है । परन्तु हिन्दुस्थानी मनुष्योंको पान तमाखू खानेके कारण जिह्वा परीक्षा करना कठिन है तथापि थोड़ासा वर्णन हम करते हैं ।

जैसे जिह्वाका आकार, सुखी, गीली, रंग, थकावट, आदि वस्तु है ॥ प्रथम वैद्यको जिह्वा निकालनेकी व्यवस्था देखनी आवश्यक है क्योंकि अनेक रोगोंमें अनेक प्रकारकी अवस्था होती है जैसे ज्वरमें निर्बलता या मस्तकके रोगोंमें रोगी जिह्वा को बाहर नहीं निकाल सकता । वातके बहुतसे रोगोंमें जिह्वा थरथरती है और रोगी भलेप्रकार वार्त्तालाप नहीं कर सकता । उसीप्रकार सन्निपातावस्थामें भी जिह्वा थरथरती है । उन्मत्तावस्थामें रोगी जिह्वा निकाले है और फिर वत्क्षण भोतर करलेता है । अर्द्ध गवातमें जिह्वा एक ओर दबीसी प्रतीत होती है ॥

रोगके निमित्त कर्के जिह्वाका आकार न्यूनाधिक होता है । परन्तु न्यूनता बहुत कम होती है जिह्वाका आकार न्यून होना केवल कृशावस्था आदिके कारणसे होता है ॥

जिह्वाका बटना इन कारणोंसे होता है जैसे—जीममें सूजन, शीतला, लालज्वर, गरमी, पारद आदि दुष्ट घातुके भक्षणसे, तथा मुखका आना आदि ।

आरोग्यावस्थामें मुख खोलकर सोनेके कारण जिह्वा सुखी रहती है परन्तु किसी रोगके कारण थूक थोड़ा प्रगट होता है जैसे—ज्वर, देहके भीतरका दाह और रूपवान् शिल्पविदादमें, जिह्वापर सूखापन कालौच बढेरता और मलिनता होती मालूम होता है कि रतुवतकेन प्रगट होनेसे रुधिरमें संभीयत होजानेके कारण अतिनिर्बलता आगई है ॥

## शब्दपरीक्षा ।

गुरुस्वरो भवेच्छ्रेष्ठीस्फुटवक्ता च पित्तलः ।

उभाभ्यां रहितोवातः स्वरतश्चैव लक्षयेत् ॥

अर्थ—अब शब्द परीक्षा कहते हैं—भारीस्वर कफरोगीका और पित्त-रोगीका स्पष्ट उच्चार होता है, और वात रोगीका इन दोनोंके लक्षणों करके रहित उच्चार ( आवाज ) होती है इसप्रकार स्वरसे रोगकी परीक्षा वैद्यको करनी चाहिये ।

## नेत्रपरीक्षा ।

अथातःसंप्रवक्ष्यामिनेत्रस्यचपरीक्षणम् ।

येपांविज्ञानमात्रेणरोगचिह्नंप्रकाशते ॥

अर्थ—अब हम नेत्र परीक्षाको कहते हैं जिसको जाननेमात्रसे ही रोगोंके चिह्नप्रकाशित होते हैं ॥

जिह्वाके शुष्क और मलिनावस्थाके पश्चात् गीलापन होजावेतो उत्तम चिह्न है अत-एव जैसे २ स्वर उतरताहै उसीप्रकार कमसे धीरे २ जीभके किनारोपर आर्द्रता आ-ती है फिर धीरे २ सब पर आतीहै ॥

आरोग्यताकी अपेक्षा रोगमे जीभक्ता वर्ण पलटजाताहै जैसे—रुधिरकी न्यूनतामें प्ली-हकी सूजनतामें जिह्वाका रंग पीका होता है श्वास रुकनेकी दशामें नीला या बैजनी, तालु अथवा हलकादिकी सूजन तथा पित्तज्वरमें जीभ संपूर्ण लाल होती है मध्यजन्-व्वरमें तथा अजीर्णमे केवल नौक और किनारे लाल होते हैं ॥

मूच्छा—हैजा और श्वासरोगमे जिह्वाका कार्य मंद होजाताहै और जिह्वाकी सूजनमे अधिक ॥

जिस समय जिह्वा सफेद—देदीप्यमान और मेलसे एकसी आच्छदितहो तो चारज्वर जानना यदि मेल पलिरंगका होता हृदयकारोग तथा रुधिरमें पित्तका मिलाप है ऐसा जानना यदि जिह्वाका मेल भूरा अथवा श्याम होवे तो मिलाप रुधिरके कारण आत्मश-क्तिका नष्ट होना सिद्ध होताहै ॥

रक्तज्वर ( लालज्वर ) मे जीभपर सफेदरंगका मेल जमाहुआ होता है और उसमें ला-लरंगके काटे उठे हुए प्रतीत होते हैं और जैसे २ वह मेल दूर होताजाता है—दाने उठे हुए सदृशतके समान प्रतीत होते हैं जिह्वाकी नौक और किनारोंसे धीरे २ मेल दूर होने लगे तो यह चिह्न शुभ है परंतु जिह्वाके मध्य गत उस विभागमें बड़े २ भाग दृश्य २ हो तथा जीभ लाल नहो और चमकदार हो जाय तो चिरकालमें पूर्ण आरोग्यता होती है किंतु रोगके फिर उलटनेका संदेह रहता है जब द्वितीय बार रोग प्रगट होता है तब पूर्वोक्त जिह्वाका मेल भी पूर्व नियमानुसार जम जाताहै ॥

वातजन्यनेत्र.

रूक्षाधूम्रातथारौद्राचलाचांतज्ज्वलत्यपि ।

दृष्टिर्यदातदावातरोगरोगविदोजगुः ॥ १ ॥

अर्थ—रूख धूँआकरंगके भयंकर और भीतरसे जाज्वल्यमान ऐसी दृष्टि वात रोगीकी वैद्योंने कहीहै ॥

पित्तकफजन्यनेत्र.

दीपद्वेपितसन्तप्तंवातं पित्तेनलोचनम् ।

जलाद्रज्योतिपाहीनंस्निग्धमंदंकफेनतत् ॥ २ ॥

अर्थ—जिसप्राणीकी दीपक अच्छा न लगे तथा गरम पीले ऐसे पित्त-रोगवाले रोगीके नेत्र होतेहैं, तथा जलसे आर्द्र ज्योतिहीन स्निग्ध और मंद ऐसीदृष्टी कफरोग वालेकी होतीहै तथा नेत्रसपेद होतेहै

द्वंद्वज और संनिपातजन्य ।

द्वंद्वदोषेभवेन्मिश्रतूष्णैतूष्णविलोचनम् । इमामवर्णचनिर्भुम्

डाक्टरीमतसेशद्वपरीक्षा ।

बहुतसे रोगोंमें रोगीसे बोला नहीं जाय । जैसे संनिपातकी बेहोसी—बहुतसे रोगमें रोगी समझसके परंतु बोल नहीं सके ऐसे रोगको अंगरेजीमें एक्सीया कहते हैं कथा बाँचनेवाले—बकील—पादरी—और जो अत्यंत पुकारके बोलें हैं उनकी आवाज ऐसी बेठजानीहै कि प्रतीत नहींहोती गरमीके रोगमें सीटीदेनेका शब्द निकलने लगताहै निर्वल ताके कारण शब्द अत्यंत मंद होजाताहै खतगीमें या शूल आदि पीडाके कारण रोगी चिल्लाने लगताहै इत्यादि जानने ॥

यदि जिन्हाका एक्की बार मेल दूर हो जाय और जीभ तरलाल धावके समान दरारदार काली और चमकदार होजाय तो यह चिन्ह रोगीके विषयमें अशुभ है । गरमीके रोगमें जिन्हाके नीचे और किनारोंपर छोट २ पाय और फटी हुई होती है । बालों में मुस आनेमें जिन्हापर सपेद रंगके दाग पड़ जाते हैं ॥

डाक्टरीमतानुसारनेत्रपरीक्षा ।

हृदयमें यंत्र और मूत्रपिठकी क्रियामें जब कुछ बिगाड होता है अथवा उदरया कोई रोग उत्पन्न होनेसे प्रथमनेत्रके पलक सुजते हैं । भ्रमरोगमें नेत्रोंके पलक बीचनेमें अत्यंत घट होता है । मगीरोगकी पालीके समय नेत्रके पलक पारंपार संक्षिप्त होते हैं पुष्पुम मस्तिष्क और हृदययंत्रमें रुधिरके रुकनेसे तथा टम रुधिरकी गरमीके घेगसे नेत्रया आकार पूर्णरूपसे बढा होता है

तन्द्रामोहसमन्वितम् ॥ ३ ॥ रौद्रं च रक्तवर्णं च भवेच्चक्षुस्त्रिदोषतः  
 अर्थ—दो दोषके मिलनेसे दृष्टिभी मिश्रित होती है । अर्थात् वात पि-  
 त्तसे घूँघ और पीले, कफपित्तसे पीले और कीचड़से परिपूर्ण, इत्यादि  
 त्रिदोषके कोपसे नेत्र काले विकराल तन्द्रा और मोहयुक्त बीभत्स और  
 लाललाल होते हैं ॥

असाध्यलक्षण ।

एकचक्षुर्यदाभीमं द्वितीयं मीलितं भवेत् ॥ ४ ॥

त्रिभिर्दिनैस्तथारोगी स याति यममंदिरम् ।

अर्थ—जिस रोगीका एक नेत्र भयंकर और दूसरा मिचाहुआही घो-  
 तीनदिनमें यममंदिर अर्थात् सुत्युके मुखमें जाता है ॥

ज्योतिर्विहीनं सहस्रारोगिणो यस्य लोचनम् ॥ ५ ॥

इपत्कृष्णं स नियतं प्रयाति यमसादनम् ।

अर्थ—जिस रोगीके नेत्र अकस्मात् ज्योतिहीन और कुछ कुछ कालिहो-  
 वह निश्चय यमालयको जायगा ऐसा जाने ॥

सरत्तंकृष्णवर्णं च रौद्रं च प्रेक्षते यदा ॥ ६ ॥

इतिलिङ्गैर्विजानीयान्मृत्युरेव न संशयः ।

अर्थ—जो रोगी लाल और काले तथा भयानक नेत्रसे देखे इन लक्ष-  
 णोंसे वैद्य जाने कि इस रोगीकी मृत्यु होवेगी ॥

एकदृष्टिश्चैतन्यो भ्रमन्स्फुरिततारकः ॥ ७ ॥

एकरात्रेण नियतं परलोकपथं व्रजेत् ।

अर्थ—जो एकदृष्टिसे देखे होस होय नहीं तथा जिसकी दृष्टी चारोंतर  
 फन्मणकरे और तारे फडके वह एकरात्रमें निश्चय परलोकको पधारे ॥

यामलेऽपि.

शुष्कास्यः श्यामकोष्ठोऽप्यसितरदततिः शीतनासाप्रदेशः ।

शोणाक्षश्चैकनेत्रोलुलितकरपदः श्रोत्रपातित्ययुक्तः ॥

शीतश्वासोऽथ चोष्णश्च सनसमुदयः शीतगात्रप्रकंपः

सोद्विगोनिः प्रपञ्चः प्रभवति मनुजः सर्वथा मृत्युकाले ॥

यामलप्रथमें भी लिखा है कि जिसका मुख सूखजावे कोष्ठकाला तथा दाँत काले नाक जिसकी शीतल एक नेत्रलाल हाथ पैर गिरेपडे कानोंसे सुने नहीं कभीशीत और कभी गरमी लगे गरम श्वास निकले-सरदीसे देह काँपे-तथा वह रोगी उद्वेग युक्त और प्रपंच रहितहो येलक्षण प्राणीकी मृत्युके समय जानने ॥

॥ इति नेत्रपरीक्षा समाप्ता ॥

## स्पर्शपरीक्षा ।

पित्तरोगी भवेदुष्णो वातरोगी च शीतलः ।

पिच्छिलः श्लेष्मरोगी स्यात्त्रिलिंगात्संनिपातवान् ।

आर्द्रकः स भवेच्छ्लेष्मा स्पर्शतश्चैव लक्षयेत् ॥

अर्थ-अब स्पर्शपरीक्षा कहते हैं-जैसे कि पित्तरोगवाले मनुष्यका देह गरम होता है । वातरोगीका शीतल औ कफरोगीका देह पसीनोंसे लिह-सा हुआ होता है । और सन्निपातवाले रोगीका देह तीनोंदोषोंके लक्षणयुक्त होता है । अथवा कफरोगीका देह गीला होता है । इसप्रकार वैद्यकी स्पर्शसे परीक्षाकरनी चाहिये ॥

त्वचा व स्पर्श ।

त्वचासे देहकी उष्मा ( भाफ ) निकलती रहती है इसीकारणसे देहमें समान गरमी रहै

युवावस्थावाले प्राणियोंके देहसे २४ घंटेमें ३० औंसके लगभग भाफ

अत्यंत रुधिरके निकलनेसे अत्यंत शुद्ध होनेसे रजस्यमादि क्षयरोग और निराहारव्रत इत्यादि कारणोंसे नेत्र अत्यंत भीतरकी बैठ जातेहैं यदि एकनेत्र बैठ जाये और दूसरानेत्र यथावस्थित रहे तो उसकी दर्शन संपाद करीं छायाका पक्षाघात हुआ है अथवा किसी प्रकारके शिरारोगके कारण यह दशाहुई है ऐसा जाने

यदि दोनोंनेत्र अत्यंत लाल होने तो मस्तिकमें रुधिरका संचय हुआ जानना पांडुरोगमें नेत्र पीले रंगके होतेहैं सरिकमांसेनेत्रके संपद भागमें दाह होताहै मस्तिष्कके उद्वेजन अथवा मस्तिष्कमें रुधिरके रुकनेसे मृगी सन्यासरोग और अफीमके खानेसे

नेत्रके तारे संकुचित होजाते हैं मस्तिष्कसे रुधिरके निकलनेमें तथा सन्यास और मूच्छा आदिरोगके अरिष्ट लक्षण उत्पन्न होनेसे तारे फटे और फैले हुएसे दाखतेहैं घृतराग्यानेसे या नेत्रके चारोंतरफ लगानेसे कर्नातिका फैल जाती है चोर उन्माद रोगमें नेत्र अत्यंत बमकीले तथा स्नायुकी दुष्टतामें नेत्र प्रभारहित होते हैं ।

निकलती है यदि इसे न्यून निकले तो देह सूखी रहती है और अधिक निकले तो देह गीली रहती है ।

हैजा-ज्वर आदि रोगों में त्वचा शुष्क रहती है और दाह रोग में भी ऐसा ही होता है । देह में गीलापना पसीने के कारण होता है परंतु पसीने आने के कारण पृथक् है जैसे साधारण ज्वर में पसीना प्रसिद्ध है परंतु विषमज्वर में पसीने बहुत आते हैं क्योंकि उसमें निर्वलता अधिक हो जाती है मरने के थोड़ी देर पहले पसीना शीतल निकलता है ।

यह प्रसिद्ध नियम है कि दुर्बलता के कारण देह का परिष्कम न्यून हो जाता है तब देह शीतल हो जाता है और शीतल पसीने निकलने लगते हैं जैसे कि प्रायः विपूचिका ( हैजा ) में होय है अथवा हाथ पैर अत्यंत शीतल हो और देह के भीतर दाह हो तथा बेचैन चिंतायुक्त दीखे तो जानना कि अब शीघ्र ही यह रोगी मरेगा ॥

बहुत से रोगों की परीक्षा देह का गरमी के द्वारा होती है परंतु स्पर्श से ठीक २ तिश्चय नहीं होता अतएव बुद्धिमानों ने इसके वास्ते यंत्र बनाया है जिसको थर्मामिटर ( Thermometer ) कहते हैं इसके द्वारा गरमी की न्यूनाधिक्यता ठीक २ हो जाती है ।

थर्मामिटर यंत्र अनेक प्रकार का है परंतु सेल्फरैजिस्टिरिंग सब में उत्तम होता है इसकी तसवीर इस जिल्द के प्रथम ही दीनी है सो देख लेना ॥

थर्मामिटर लगाने की विधि ।

थर्मामिटर लगाने का मुख्य स्थान बगल है परंतु आवश्यकता के समय अन्य अन्य सुखादि स्थान में भी लगाते हैं । यदि हो सके तो थर्मामिटर लगाने के पूर्व एक घंटे रोगी को लिटाए रखे यदि शरदी की ऋतु अथवा काबुल व शमार आदि शर्द देश होवे तो थर्मामिटर को हाथ से मलकर गरम कर ले कि पारा ९४ चौरानवे अंश पर्यंत चढ़ जावे और गरम ऋतु वा गरम देश जैसे दक्खिण आफ्रिका आदि हो तो शीतल जल में डुबायकर नीचे उतार लेवे फिर जहां लगाना होवे उस जगह लगावे ।

कम से कम ५ मिनट और बढसे बढ २४ मिनट तक लगावे परंतु चौबीस मिनट लगाने का बहुत थोड़ा काम पड़ता है फिर उसको उजे ले में ले जाकर देखे कि पारा कितने अंश चढ़ा है

और यह भी निश्चय करे कि थर्मामिटर लगाने से पारा शीघ्र चढ़ गया या धीरे २ चढ़ा है प्रायः ज्वर वाले रोगों में जब तक रोग की गरमी की

ठीक अवस्था नहीं निश्चय करी जाय उससमयतक रोगीके रोगका निश्चय होनाभी सहज बात नहीं है और यहभी ठीक नहीं है कि एक-वारके थर्मामिटर लगानेसे ही रोगका निश्चय होजावे किंतु वैद्यको उचित है कि प्रातःकाल और सायंकालमें लगावे तथा संभव हो तो दिनमें कईवार देहकी गरमी का निश्चय करे ।

आरोग्यके समय ९७-३ से लेकर ९९-५ अथवा १०० से और औसतक ९८-४ पर्यंत होती है इससे कम या अधिक होकर उसीजगे रहे तो समझना कि कुछ न कुछ दोष है ।

परंतु यहभी याद रहे कि देहके प्रत्येक स्थान-प्रत्येकदेश प्रत्येक समय प्रत्येक अवस्थामें गरमी एकसी नहीं रहती जैसे मुँह आदिमें गरमी अधिक रहती है ठके हुएकी अपेक्षा सुलेमें छातीकी अपेक्षा हाथ पैरमें बालकोंकी अपेक्षा जवानके एवं जवानकी अपेक्षा बुढ़ापेमें गरमी अधिक रहती है

प्रातःकालसे सायंकालतक गरमी अधिक होजाती है एवं सायंकालसे प्रातःकालतक न्यून अर्थात् २४ घंटेमें अनुमान १ डिग्री के चढ़ाव उतार होता है शरद सुत्ककी अपेक्षा गरम सुत्कमें गरमी अधिक होती है अर्थात् १०० अंशपर्यंत गरमी पहुच जाती है

गरम जलके स्नानकरनेसे गरमी बढ़जाती है एवं शीतल जलमें नहानेसे अथवा किसीस्थानपर शरदीं पहुचानेसे अधिक मानसिक परिश्रमसे गरमी न्यून होजाती है ॥

ज्वरमें अधिक गरमीका होना एक साधारण धर्म है इसीसे १०१ दर्जेपर्यंत पारा चढ़नेसे ज्वर हलका जानना १०५ दर्जेपर्यंत हो तो सामान्य और १०६ से १०७ दर्जेपर्यंत होनेसे भयानक ज्वर जानना यदि इससे भी अधिक अर्थात् ११० से ११२ दर्जेपर्यंत होनेसे रोगीके बचनेकी आशा नहीं रहे ॥ अर्थात् मृत्यु उसकी समीपहीं जाननी ॥

बहुतसे रोग देखनेमें थोड़े होते हैं परंतु थर्मामिटरके लगानेसे रोग अधिक होता है तो मालूम होजाता है बहुतसे रोगी अपना रोग नहीं बतासकते जैसे पागलमनुष्य तो उनकी गरमीका हाल थर्मामिटरलगा नेंसे प्रत्यक्ष होजाता है

बालकोंमें प्राय ऐसे भयानक चिन्ह दृष्टि आते हैं कि जिसे उनकी मातापिता शोकवस होजाते हैं परंतु थर्मामिटरलगानेसे ठीक २ घृत्तांत मालूम होजा

ताहै यदि वास्तवमें किसीप्रकारका अधिक रोग न होवे तो चाहे जैसे दृष्ट लक्षण क्यों नहो परंतु चिंता नही होती

जब ९८ दर्जासे एकभी दर्जागर्भी बढेतो नाडीभी प्रत्येक मिनटमें १० गुनी बढ जातीहै जैसे ९८ दर्जेपर नाडी ६० होतो ९९ पर ७० एवं १०० दर्जेपर ८०० एवं १०६ दर्जेपर १४० होजातीहै इसीप्रकार और भेदभी बुद्धिमानोंको डाक्टरोंके ग्रंथोंसेजानने चाहिये

प्लेक्सी मेटरयंत्र

पेट छातीके देखनेके निमित्त इंग्लैंडके डाक्टरोंने एक यंत्र बनायाहै उसको प्लेक्सीमेटर कहतेहैं इसयंत्रमें हाथीदांतकी एक तख्ती दो इंच लंबी और १ इंच चौड़ी होतीहै उसके दोनोतरफ दस्ते लगे रहतेहैं जिस्से पकड़तेहैं । दूसरीवस्तु एकपीतलकी हथोड़ीहोतीहै उसपर रबड़लगी रहतीहै उसका दस्ता लकड़ीका होताहै बस जहां ठोकनाहो वहां प्लेक्सीमेटरके दस्तेको बाँए हाथमें हथोड़ीको पकड़कर एकसी चौटलगातेहैं कि जो न अत्यंत धीरेसे न बहुत जोरसे जहां ठोकनाहो वहाँपर मर्दोंमें कपडा हटाकर और औरतोंमें एकमहीन कपडा बराबर एकसा फैलाकर और उसकी सिलवट दूरकरके बाँएहाथकी मध्यमा-अंगुली और तर्जनीखूब जमाकर रखते हैं और दाहिने हाथकी उक्त दो उंगलियोंसे इसप्रकारठोकतेहैं कि हाथ न हिले केवल पहुँचेको हरकत ही जिससे चौट एकसीलगे और उंगलियाँ चौट देनेके समय सीधी रखतेहैं तिरछीनही रखेऔर ध्यानसे परकशनकी आवाजसुने इत्यादि इसका चित्रभी इस पुस्तककी आदिमें है सो देखना ॥

स्टिथसकोपयंत्र

यह यंत्र अनेक प्रकारकाहै । परंतु प्रचलित यंत्रहलकी लकड़ीकी नली चार इंचसे आठ इंच पर्यंत लंबी होती है एकतरफका शिरा बड़ा और चपट्टा होताहै जिसपर कान लगाकर सुनते हैं और दूसरा छोटा होताहै जिसको रोगीके देहपर रखतेहैं-इसके द्वारा आवाज सुननेमें बहुत सुगमता पडती है इसकाभी चित्र इसजिल्दके आदिमें लिखाहै एक थस्टि सकोप ऐसाभी बनातेहैं जिस्से छातीके दोनो बगलका शब्द सुना जाय है उसकानाम फ्लाकूजिविल स्टिथसकोपहै ॥

अवस्था

रोगज्ञानमें अवस्थाका परीक्षणभी एकमुख्यकारणहै क्योंकि प्रत्येक अवस्थामें इसप्रणीके देहके विभागोंमें कुछकुछफरक पडजाताहै अतएव



रोगभी पृथक् २ उत्पन्न होतेहैं तहाँ मुख्य अवस्थातीनहैं प्रथमबालक-दूसरी युवा-और तीसरी वृद्धावस्था ॥

तहाँ बालक अवस्थामें थोड़ीभी सरदी लगनेसे बालकबीमारहो जातेहैं । दांतनिकलनेके समय प्रायःज्वर, खांसी, फोड़ा, फुंसी-नेत्रदृखनेके रोग होतेहैं ॥

दूसरीयुवावस्थामें २५ वर्षतक शरीरके बढनेका कार्य परिपूर्णहो जाता है अतएव प्रायःइसी अवस्थामें दौड धूपके कारणशरीरके टूटने फूटनेसे मृत्युकाभयरहताहै ॥

परंतु पच्चीससे उपरांत पचास वर्षतक पथ्यपूर्वक आहार विहारसे रहतो कोई रोगनहीं होते ॥

परंतु स्त्रियोंके यथासमय रजोदर्शन होनेसे रोगप्रगटहोतेहैं पचास वर्षके उपरांत तीसरी वृद्धावस्थाका अमल आताहै जिसमें कम २ से

हाथ पैरआदिकमेंन्द्रियें और नेत्र नासिका आदिज्ञानेंन्द्रियें तथा मन इनका न्हास ( घटना ) होनेलगता है आखिरअत्यंत बुढ़ाहोनेसे मर जाताहै इसप्रकारवैद्यको अवस्थाके सर्व कारणविचारके रोगीका यत्नकरना

### जाति

जातिके तीनभेदहैं स्त्री पुरुष और नपुंसक परंतु नपुंसक इन्द्रिय दोनोंके बीचमें मानाहै उसका यत्न पृथक् कहीं नहींलिखा,

जैसे प्रत्यक्ष पुरुषस्त्रीके बीचमें बहुत अंतरहै उसीप्रकार उनके रोगोंमें भी अंतर जानना । पुरुष स्त्रियोंकी अपेक्षा अतिबली और दृढ होते हैं कारण कि उनके सब कार्य कठोर और परिश्रमके हैं । तथा प्रायः पुरुष मादकवस्तु ( भांग-अफीम-पोस्त आदि ) के खानेवाले होतेहैं इसी कारण उनको अनेकप्रकारके फट्टउठाने पडतेहैं तथा तंदुरुस्तीके कारणों को बसबस अपने रुजगारके नहीं करसके अतएव उनको महामारी आदि छूतके रोग अत्यंत दुःख देते हैं ॥

स्त्रियोंका स्वभावफोमल और निर्बल होताहै और प्रायः घरमें ही बैठी हुई सब घरके कामोंको कराकर्ती हैं बाहर डोलना फिरना कम होता है अतएव इनको छूतके रोगभी कम बाधा करें हैं

स्त्रियोंके निर्बलतासे रोगहोते हैं वो पुरुषोंकी अपेक्षा असाध्य कम होते हैं उसका प्रत्यक्ष दृष्टांत यहीहै कि मनुष्य संख्या ( मर्दम सुमारी ) के अनुसार पुरुषोंसे स्त्री अधिकहैं तथा स्त्रियोंके महीने के महीने रजोदर्श होनेके कारण संचित दुष्टदोषनिश्चलजातेहैं परंतु गर्भजन्य रोग प्रगट होते हैं इसप्रकार वैद्यको जाति विचारकरके यत्नकरना चाहिये

श्रीः ।

## अथ कालज्ञानमाह ।

कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि यदुक्तं शम्भुना स्वयम् ।

येन विज्ञानमात्रेण त्रिकालज्ञो भवेन्नरः ॥

अर्थ—अब हम कालज्ञानको कहते हैं । जो साक्षात् श्रीशिवने कहा है । जिसके जाननेमात्रसे ही यह मनुष्य त्रिकालज्ञ (अर्थात् भूत भविष्यत् और वर्तमानका जाननेवाला) होता है

कालेन सृजते ब्रह्मा कालेन हरते हरः ।

कालेन पाल्यते विष्णुस्तस्मात्कालं च चिंतयेत् ॥

अब कालको मुख्यत्व दिखाते हैं—जैसे कि ब्रह्मा कालकरके सृष्टीको रचै है, श्रीरुद्र संहार करै हैं, और विष्णु उसीकाल करके जगत्को पालन करते हैं अतएव वैद्य कालको चिंतवन करें ॥

कालज्ञानं कलायुक्तं शम्भुना यच्च भाषितम् ।

येन पण्मासतो मृत्युः पूर्वं ज्ञायेत रोगिणाम् ॥

अर्थ—श्रीशिवका कहा कलायुक्त (शक्ति सहित अथवा छलयुक्त) काल-ज्ञान जिसके जाननेसे छःमहीने पहिले रोगियोंकी मृत्युकी वैद्य जान सकता है [उसकी कहते हैं]

कालः सृजति भूतानि कालः संहर्ते प्रजाः ।

कालः सुप्तेषु जागर्ति तस्मात्कालं च चिंतयेत् ॥

अर्थ—कालही प्राणियोंको उत्पन्नकर और संहार करता है । तथा प्राणि-योंके सोनेपरभी काल जागता रहता है । अतएव कालको चिंतवन करे ॥

काले देवास्तथा नागा यक्षाश्चासुरपन्नगाः ।

विद्याधरा मनुष्याश्च सर्वे नश्यन्ति कालतः ॥

अर्थ—कालमें देव, नाग, यक्ष, असुर, पन्नग, विद्याधर, और मनुष्य सर्व नष्ट होते हैं ॥

विरंचिदिनमध्ये तु पतन्तीन्द्राश्चतुर्दश ।

सोऽपि चाब्दशतांते तु स्वयं कालेन नश्यति ॥

अर्थ—जिसके १ दिनमें चौदह इन्द्र पतन होतेहैं, ऐसाभी ब्रह्मदेव सौवर्षके अंतमें काल करके स्वयं नष्ट होताहै ॥

**मानुषस्तु शतंजीवी पुरावेदेषु भाषितम् ।**

**सोपि कालप्रभावेण विनश्यति न संशयः ॥**

अर्थ—वेदमें यह लिखाहै कि मनुष्य सौवर्षजीताहै परंतु वोभी सौवर्षके उपरांत कालके प्रभावकरके नष्ट होताहै ॥

**वर्षाशीतं तथा चोष्णं प्रत्यूषं मध्यमं दिनम् ।**

**अपराह्णं तथा नक्तं रूपं कालस्य कथ्यते ॥**

अर्थ—वर्षा, शीत, गरमी, प्रातःकाल, मध्याह्न, अपराह्ण, तथा रात्रि ये कालकेही रूपहैं । अर्थात् इन्हींमें यह जीव मरताहै ॥

**काले फलंति तरवः काले बीजं प्ररोहति ।**

**काले पुष्पवती नारी सर्वं कालेन जायते ॥**

अर्थ—कालमें वृक्ष फलतेहै, कालमें बीज उपजताहै । कालमें स्त्री रजो दर्शवती होतीहै एवं यावनमात्र वस्तुहै सबकालकरके होतीहै ।

**कालेऽक्षनं च तोयं च काले मेघः प्रवर्षति ।**

**काले कर्म समुद्दिष्टं विपरीतं न शोभनम् ॥**

अर्थ—कालमें भोजन पान होताहै । मेघवर्षताहै । और जिस कालमें जो कर्म करना कहाहै उसमें करनेसे शुभ होताहै और विपरीत करनेसे शुभ नहीं है ॥

**कालाग्निर्जठरे जातस्तस्य बांछा चतुर्विधा ।**

**आहारमुदकं निद्रा कामश्चैव चतुर्थकः ॥**

अर्थ—जब कालाग्नि उदरमें होतीहै तब उसप्राणीकी इच्छा चार प्रकारकी होतीहै भोजन, जल, निद्रा, और चौथा कामदेव ॥

**पट्चक्रं षोडशाधारं त्रिलक्षं व्योमपंचकम् ।**

**स्वदेहे यो न जानाति कथं वैद्यः स उच्यते ॥**

अर्थ—जो वैद्य अपनीदेहमें स्थित छःचक्र, सोलह आधार, और तीनलक्ष व्योमपंचक को नहीं जाने उसको वैद्य किसप्रकार कहना चाहिये ।

तत्रादौ पट् चक्राण्यह

**प्रथमं ब्रह्मचक्रं तु लिंगचक्रं द्वितीयकम् ।**

तृतीयं नाभिचक्रं तु हृदि चक्रं चतुर्थकम् ॥

पंचमं कंठचक्रं तु भ्रुवोर्मध्ये तु षष्ठकम् ।

एतानि षट्चक्राणि यो जानाति स वैद्यराट् ॥

अर्थ-अब छः चक्रोंको कहतेहैं-ब्रह्मरंभ अर्थात् कपाल मधमचक्रहै, दूसरा लिंगचक्र, तीसरा नाभिचक्र, चतुर्थ हृदयचक्र, पंचम कंठचक्र और भौंहोंके बीचमें छठा-चक्रहै, इन छःचक्रोंको जो जानताहै वो वैद्योंका राजाहै ।

मतान्तर

प्रथमं कपाटचक्रं ज्योतिश्चक्रं द्वितीयकं ।

तृतीयं नाभिचक्रं तु हृदि चक्रं चतुर्थकं ॥

पंचमं नासिकाचक्रं गुदचक्रं तु षष्ठकम् ।

एतानि षट्चक्राणि यो वेत्ति स तु वैद्यभाक् ॥

अर्थ-मतांतरसे कहतेहैं-प्रथम कपाट (वक्षस्थल) चक्रहै, दूसरा ज्योतिः (माण) चक्रहै, तृतीय नाभिचक्र, चौथा हृदयचक्र, पांचवा नासिका-चक्र, और गुदाचक्र छठाहै इन छः चक्रोंको जो जानता है वह वैद्य-शब्दका भागी है ॥

अथ षोडशाधाराण्याह

अहंकारो मनो बुद्धिश्चित्तं कारणमेव च ।

प्राणोऽपानःसमानश्च उदानो व्यान एव च ॥

पृथ्वी आपश्च तेजश्च वायुराकाशएव च ॥

ज्योतीरूपं च तत्रैव षोडशाधारउच्यते ॥

अर्थ-सोलह आधारयेहैं-जैसे १ अहंकार, २ मन, ३ बुद्धि, ४ चित्त, ५ कारण, ६ प्राण, ७ अपान, ८ समान, ९ उदान, १० व्यान, ११ पृथ्वी, १२ जल १३ तेज, १४ वायु, १५ आकाश, और १६ ज्योति रूपजीव ये इसदेहमें सोलह आधारहैं ॥

त्रिलक्षाण्याह

ऊर्ध्वलक्षं भवेतालौ मध्यलक्षं भवेद्द्वि ।

अधोलक्षं भवेन्नाभ्यां लक्षातीतं निरंजनम् ॥

अर्थ-तालुएमें ऊर्ध्वलक्ष ( जाननेयोग्य ) है । हृदयमें मध्यलक्षहै और

नाभिमें अधोलक्ष है परंतु जो लक्षमें न आवे ऐसा निरंजन (परमात्मा) है

एकस्तंभं नवद्वारं त्रिशून्यं पंचदेवता ।

पञ्चेन्द्रियकुटुंबेषु यत्रात्मा तत्र मे गृहम् ॥

अर्थ—एकस्तंभ ( अहंकाररूपखंभ ) नवद्वार ( नेत्रनासिकाआदि नौ दरवाजे ) तीनशून्य, ( रजसत्त्वतम ) पंचदेव ( पंचतत्त्वदेवरूप ) और पंचइन्द्रिय सोई हुआ कुटुंब इनमें जहां आत्मा है वही मेरा घर है, ये व्योमपंचक हुआ ॥

कुर्विंशतिसहस्राणि पट्शतान्यधिकानि च ।

निशाह्ने चलते प्राणः सोऽपि स्तंभोऽत्र कथ्यते ॥

अर्थ—२१६०० इक्कीस हजार छःसौ श्वास इसप्राणीकी दिनरातमें चलती हैं इसकोभी स्तंभ कहते हैं ॥

आत्माशरीरमित्युक्तमन्तरात्मा मनो विदुः ।

परमात्मा भवेत्प्राणः पञ्च तत्त्वानि धारयेत् ॥

अर्थ—शरीरको आत्मा, मनको अंतरात्मा और प्राणोंको परमात्मा कहते हैं, येही पंचतत्त्वोंको धारण करते हैं ॥

कायानगरमध्ये तु प्रतोली शून्यवद् भवेत् ।

नरेन्द्रो गच्छते तेन तत्पुरं शून्यकं भवेत् ॥

अर्थ—देहरूप नगरमें नस नाडी और इन्द्रिय आदि जो गली हैं ये शून्यहोजाती हैं अर्थात् इनके कार्य बंद होजाते हैं तब प्राणरूप राजा उस गलीमें होकर निकल जाता है । तब यह देहरूप पुर शून्य होजाता है ।

स्वरोदयमतात्

कायानगरमध्ये तु मारुतो रक्षपालकः ।

प्रवेशो दशभिः प्रोक्तो द्वादशाङ्गुलनिर्गमः ॥

अर्थ—अब स्वरोदयके मतसे कालज्ञानको कहते हैं कि इस देहरूप नगरमें श्वासरूप पवनही रक्षवाली वाला है उसका १० अंगुल फरके प्रवेश और बारह अंगुलनिर्गमकहा है इससे न्यूनाधिक अरिष्टहोनेका चिन्ह है.

उदयं सूर्यमार्गेण चन्द्रेणास्तमयं यदि ।

ददाति गुणसंघातं विपरीतं विनाशकृत् ॥

अर्थ—स्वर्का उदय नासिकाके दहने मार्गसे हो और वाममार्गसे अस्तहो

तो अत्यन्त गुणदाताहै इससे विपरीतहो अर्थात् वामस्वरसे उदय और दहने स्वरसे अस्तहोवे तो विनाश कर्त्ता है

संपूर्ण वहते सूर्यः सोमश्चैव न दृश्यते ।

पक्षेण जायते मृत्युः कालज्ञानेन भाषितम् ॥

अर्थ—यदि सदैव दहना स्वर चले वाम स्वर कभी चले नहीं उस प्राणीकी १५ दिनमें मृत्युहो यह कालज्ञानने कहा है ॥

मासश्चैव तु षण्मासः पक्षश्चैव त्रिमासकः ।

पंचरात्रिर्वहेच्चैक स्तस्य मृत्युर्न संशयः ॥

अर्थ—जिस प्राणीका एकही स्वर एक महीने या छः महीने या एक पक्ष तथा तीनमहीने, या पांचरात्र चरावर चले उसकी निस्संदेह मृत्युहो

शुक्लपक्षे वहेद्रामं कृष्णपक्षे च दक्षिणम् ।

उभयोस्त्रीणि चाहानि दृश्यते चंद्रसूर्ययोः ॥

अर्थ—शुक्लपक्षमें प्रथम वामस्वर चलताहै, और कृष्णपक्षमें दहनास्वर एवं शुक्लकृष्णपक्षोंमें चंद्र और सूर्य दोनों स्वर तीन २ दिन चलतेहैं ॥

पंचभूतात्मकं दीपं चन्द्रस्नेहेन पूरितम् ।

रक्षेच्च सूर्यवातेन तेन जीवस्थिरो भवेत् ॥

अर्थ—यह पंचभूतात्मक देह रूप दीपक चंद्रस्वररूप तैलसे भराहुआहै इसकी सूर्यस्वररूप पवनसे रक्षा करनी चाहिये तो यह जीव स्थिर रहे ॥

आत्मादीपः सूर्यज्योतिरायुस्नेहकलात्मकः ।

कायाकज्जलसंसारे वृत्तिरेखा तनोर्मता ॥

अर्थ—आत्मारूप दीपक सूर्यस्वररूपज्योति आयुरूपी तैल भराहै, इसमें काया रूपी कज्जलहै और इस संसारमें इसप्राणीकी वृत्तिहै वोही इस देहकी रेखा कही है

अरुंधती ध्रुवं चैव विष्णोस्त्रीणि पदानि च ।

आयुर्हीना न पश्यन्ति चतुर्थं मातृमंडलम् ॥

अर्थ—अरुंधती, ध्रुव, और विष्णुकेत्रिपद ( श्रवणनक्षत्रकेतीनतारे ) एवं चतुर्थ मातृमंडल(कृत्तिकाके छःतारे)इनकी हीनायु मनुष्य नहीं देखसकते ।

अरुंधती भवेज्जिह्वा ध्रुवो नासायमेव च ।

विष्णुस्तु भ्रूद्रयोर्मध्ये भ्रूद्रयं मातृमंडलम् ॥

अर्थ-इस कालज्ञानमें अरुंधती जीभको कहते हैं । और नासाका अग्र-भाग है वोही ध्रुवका तारा है । दोनों भौंहका बीचहै वोही विष्णुपदैह । और दोनोंभौंहको मातृमंडल कहते हैं । अर्थात् मरणासन्न मनुष्य इनको नहीं देखसकता ॥

अक्षैर्लक्षितलक्षणेन पयसा पूर्णैन्दुना भानुना ।

पूर्वादक्षिणपश्चिमोत्तरदिशां षट्त्रिद्विमासैककम् ॥

छिद्रं पश्यति चेत्तदा दशदिनं धूम्राकृतिं पश्चिमे ।

ज्वालां पश्यति सद्य एव मरणं कालोचितज्ञानिनाम् ॥

अर्थ-जो रोगी जलमें सूर्य अथवा चंद्र इनके प्रतिबिम्बमें पूर्वकी ओर या दक्षिणकीयापश्चिम अथवा उत्तरकी तरफ छिद्र देखे तो क्रमसे छः-तीन दो-और एक इतने महीने बचे और सूर्यचंद्रका धूम्रवर्णदेखे तो दश-दिन और उसप्रतिबिम्बके पश्चिमकी तरफज्वाला देखे तो तत्काल मरण हो यह कालज्ञान के जानने वालोंने कहा है. ॥

मरणमें अरिष्टको मुख्यत्व ।

पुष्पं यथा पूर्वरूपं फलस्येह भविष्यतः ।

तथा लिंगमरिष्टारूपं पूर्वरूपं मरिष्यतः ॥

अप्येवमु भवेत्पुष्पं फलेनाननुवांघि यत् ।

फलं चापिभवेत्किञ्चिदस्य पुष्पं नपूर्वजम् ॥

अर्थ-जैसे पुष्प होनेवाले फलका बोधक अर्थात् वृक्षमें फूलके आतेही अनुमानद्वारा निश्चय होताहै कि अब इसमें फलभी आवेगा उसी प्रकार अरिष्टलक्षण ( मिश्रमरणसूचक चिन्ह ) द्वाराभावी ( होनहार ) मृत्युका निश्चय होता है । अनेक पुष्पोंमें फलनही आताहै इसी प्रकार कोई २ पुष्पकेबिनाभी होते हैं ( जैसे गूलर-पीपरमें )

नत्वरिष्टस्य जातस्य नाशोऽस्ति मरणादृते ।

मरणं चापितन्नास्ति यन्नारिष्टपुरःसरम् ॥

मिथ्यादृष्टमरिष्टाभमनरिष्टमजानता ।

अरिष्टं चाप्यसंबुद्धमेतत्प्रज्ञापराधजम् ॥

अर्थ-परंतु अरिष्ट चिन्हके होनेसे अवश्य मृत्युहोये । यह मृत्युही नहीं जिसमें प्रथम अरिष्ट लक्षण उपस्थित नहो । अनेकजगोरेसा धोपहोताहै

किं अरिष्ट लक्षणद्वयं और रोगीकी मृत्युनहीं हुई औरकहीं २ मृत्युहो गई परंतु मृत्युके पूर्व कोई अरिष्ट चिन्ह दृष्टनहीं आए । परंतु ऐसाबोध भ्रमात्मकहै इसमें कोईसंदेह नहींहै । जिसको वैद्य अरिष्टजानताहै वह प्रकृति अरिष्ट चिन्हनहींथा अज्ञानसे उसको ऐसाभ्रमहोगया ॥

तानिसौक्ष्म्यात्प्रमादाद्वातथैवाशुव्यतिक्रमात् ।

गृह्यन्तेनोद्धतान्यज्ञैर्मुर्मूर्धुनत्वसंभवात् ॥

असिद्धिमाप्नुयाल्लोके प्रतिकुर्वन्गतायुषः ।

अतोरिष्टानियत्वेन लक्षयेत्कुशलो भिषक् ॥

अर्थ—किसी २ मृत्युके पूर्व अरिष्टलक्षण संपूर्ण जानेनही जाते इसका यह कारणहै किये उक्तलक्षण समस्त जो हैं वो अत्यंत सूक्ष्म ( बारीक ) रूपसे उठतेहैं अथवा जल्दी २ एकलक्षणके होनेपर दूसरालक्षण होनेलगताहै उसका अनुमान मरनेवाले रोगीको नहींहोता । अथवा जैसेये अरिष्टकाज्ञानहो ऐसाविशेष मनको नहींलगाता इसीसे यथार्थज्ञान नहींहोता । इससे यह निश्चयहुआ कि मृत्युके पूर्व ये अरिष्टलक्षण अवश्य उत्पन्नतो होतेहैं, परंतु उससमय यह निश्चय नहीं करता । इसमें निश्चय नहीं होनेका कारण अज्ञानता अथवा यथार्थ निश्चयात्मक मनका न लगाना मात्रहै ॥

गतायुमनुष्यकीचिकित्साकरनेसे अवश्य व्यर्थ परिश्रम होताहै [ अर्थात् उसको यश और धन इनमेंसे किसीवस्तुकी प्राप्तिनही होती ] अत एव वैद्यको समस्त अरिष्ट लक्षणोंका जानना अति आवश्यकहै ॥

अथातः पंचेन्द्रियार्थविप्रातिपत्तिमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अर्थ—अब पंचेन्द्रियार्थविप्रातिपत्ति अध्यायकी व्याख्याकरेंगे ॥

शरीरशील्योर्यस्य प्रकृतिर्विकृतिर्भवेत् ।

तत्त्वरिष्टं समासेन व्यासतस्तु निबोधमे ॥

अर्थ—जिस प्राणीके शरीर मानसिक स्वभाव और प्रकृति ये तीनों पलटजावें वो मरणकेलक्षणहैं । यह अने संक्षेपसे कहा अब इनको हे वत्स ! वृ विस्तारसे सुन ॥

कर्णेन्द्रियकीविकृति ।

शृणोति विविधान् शब्दान् यो दिव्यानामभावतः ।

समुद्रपुरमेधानामसंपत्तौ च निःस्वनम् ॥



तान् स्वनाम्नावगृह्णाति मन्यते चान्यशब्दवत् ।  
 ग्राम्यारण्यस्वनांश्चापि विपरीतान् शृणोत्यपि ॥  
 द्विपच्छब्देषु रमते सुहृच्छब्देषु कुप्यति ।  
 न शृणोति च योऽकस्मात्तं ब्रुवंति गतायुषम् ।

अर्थ-जो मनुष्य विविधशब्द ( बोलना, पाठ, गीत, बाजे, आदि ) और दिव्य ( सिद्ध, गंधर्व, किन्नर, आदिके ) तथा समुद्र, पुरमेघ, आदिके न होनेपर इनका शब्द सुने, अथवा इन समुद्रादिके होनेपरभी इनका शब्द न सुने, अथवा इनके शब्दको औरही शब्दके समान सुने, तथा गौँवके शब्दोंको वनके शब्द समान सुने और वनके शब्दोंको गौँवके शब्द समान सुने, एवं शत्रुके वाक्यमें प्रीतिकरे, और माता, पिता, भाई, मित्रादिके शब्दको सुनकर कुपितहो, अथवा सुनते २ अकस्मात् न सुने उस प्राणीकी गतायु ( मरणासन्न ) जानना । ये कर्णेन्द्रिके बिन्ध कहें ॥

त्वचाकी विकृति ।

यस्त्वृष्णमिव गृह्णाति शीतमुष्णं च शीतवत् ॥  
 संजातशीतिपिडको यश्च दाहेन पीड्यते ॥  
 उष्णगात्रोऽतिमात्रं च यः शीतेन प्रवेपते ।  
 प्रहारान्नाभिजानाति योऽङ्गच्छेदमथापि वा ॥  
 पांशुनेवावकीर्णानि यश्चगात्राणि मन्यते ।  
 वर्णान्यभावो राज्यो वा यस्य गात्रे भवंति हि ॥  
 स्नातानुलिप्तं यश्चापि भजंते नीलमक्षिकाः ।  
 सुगंधिर्वाति योऽकस्मात्तं वदंति गतायुषम् ॥

अर्थ-अब रोगीके स्पर्शकी विप्रातिपत्ति ( विपरीतता ) दिखातेहैं । कि जो मनुष्य शीतलवस्तुको गरमके समान ग्रहणकरे, और गरमवस्तुको शीतलके समान, एवं शीतपिडिका देहमें होनेपरभी दाहके मारे पीडित हो । जिसका देह गरमहो परंतु मरिशीतके थरथरकाँपे । और लकड़ी तलवार आदिकी चोट लगनेको तथा अंगकटजानेकोभी नजाने, एवं जो अंगोंको धूलसे आच्छादितमाने, तथा देहका वर्ण पलट जावे अथवा जिसके देहमें काली, लाल, रेखा होजावे । एवं तत्काल स्नानकराहो और

चंदनादि लेपभी कर रक्खाहो इस प्रकार सुगंधित देहवालेके देहमे नीलीमक्खी चारों तरफसे आनकर बैठें, तथा जिसकी देहमें अकस्मात् सुगंध आने लगे वो १ वर्षमे अवश्य मरे ॥

विपरीतेन गृह्णाति रसान् यश्चोपयोजितान् ।

उपयुक्ताः क्रमाद्यस्य रसा दोषाभिवृद्धये ॥

यस्य दोषाग्निसाम्यं च कुर्युर्मिथ्योपयोजिता ।

यो वा रसान्न संवेत्ति गतासुं तं प्रचक्षते ॥

अर्थ—जो मनुष्य खट्टेरसको मीठा और मीठेरसको खट्टा इसी प्रकार सर्व, रसोको विपरीतजाने और क्रमपूर्वक सेवनकरेहुएभी मधुरादिरस दोषोंको बढ़ावे और जो वैपरीत्यसे सेवनकरे हुए रस दोष और अग्निकी समानता करे [ अर्थात् हितकारी पदार्थ उपद्रव करे । और उपद्रवकारी पदार्थ जिसको हितहो ] तथा जो अन्नके रसको न जाने उसको गतआयु जानना यह एकमहीनेमें मरे ॥

सुगंधं वेत्ति दुर्गंधं दुर्गंधस्य सुगंधिताम् ।

यो वा गंधान्न जानाति गतासुं तं विनिर्दिशेत् ॥

अर्थ—जो मनुष्य सुगंधको दुर्गंध और दुर्गंधको सुगंध समझे अथवा जो सुगंध और दुर्गंध किसीको न जाने उसे गतप्राण जानना ये भी एकमहीनेमें मरताहै ॥

द्वंद्वान्युष्णहिमादीनि कालावस्थादिशस्तथा । विपरीतेन गृह्णाति भावानन्यांश्च यो नरः ॥ दिवाज्योतींषि यश्चापि ज्वलितानीव पश्यति ॥ रात्रौ सूर्यं ज्वलंतं वा दिवावा चन्द्रं चर्चसम् ॥ अमेघोपप्लवे यश्च शक्रचापतडिद्विगान् ॥ तडित्वतोऽसि नान्यो वा निर्मले गगने घनान् ॥ विमानयानप्रासादैर्यश्च संकुलनंवरं ॥ यश्चानिलंमूर्त्तिमंतमन्तरिक्षं च पश्यति ॥ धूमनीहारवासोभिरावृतामिव मेदिनीम् ॥ प्रदीप्तमिव लोकं च यो वा प्लुतमिवाम्भसा ॥ भूमिमष्टापदाकारां लेखाभिर्यश्च पश्यति ॥ न पश्यतिसनक्षत्रांश्च देवीमरुंधतीम् ॥ ध्रुवमाकाशगंगां वा तंवदंतिगतायुपम् ॥

अर्थ—जो मनुष्य गरमी सरदी काल की अवस्था ( प्रवातनिर्वात )

और वर्षादि, और दिशा इनको तथा अन्यभाव कहिये द्रव्य गुण कर्मादिकोंको विपरीततासे ग्रहणकरेवो १ मासमें मरे ॥ अब रूपग्रहणको दिखाते हैं कि जो मनुष्य दिनमें ज्योतिवाले पदार्थ ( सूर्यचंद्रआदिको ) अग्निके समान जलते से देखे और रात्रिमें सूर्यको प्रज्वलित देखे अथवा दिनमें सूर्यको चंद्रमाके समान शीतल तेजवाला देखे ॥ एवं विनावादलके जो इन्द्रधनुष और बिजली चमकती देखे, तथा बिजलीवाले बादलोंकी काले पीले देखे और निर्मलआकाशको बादलोंसे व्याप्त देखे, तो वो या तीन ग्रहीनेमें मरे, जो मनुष्य आकाशको विमान यान ( रथ घोड़ा हाथीआदि ) और महलोंसे व्याप्त देखे तथा चलती हुई पवनको मूर्तिमान ( देवताके आकार अथवा अन्यपुरुषाकार ) देखे तथा विना नेत्ररोगके जो मनुष्य पृथ्वीको धूआ, कुहल और बरखोंसे आच्छादित देखे तथा विना ग्रीष्मऋतुके जगतको फुक्ताहुआ देखे, तथा जलमें डूबाहुआ देखे, तथा पृथ्वीको रेखारचित चतुष्पथके आकार देखे । और जो मनुष्य नक्षत्र सहित अरुंधती ध्रुवकातारा और शिशुमारचक्र को न देखे वो मरणके समीप जानना ॥

ज्योत्स्ना दशोष्णतोयेषु छायां यश्च न पश्यति ॥

पश्यत्येकांगहीनां वा विकृतां वाऽन्यसत्त्वनाम् ॥

श्वकाककंकगृध्राणां प्रेतानां यक्षरक्षसम् ॥

पिशाचोरगनागानां भूतानां विकृतामपि ॥

योवा मयूरकंठाभं विधूमं बन्दिमीक्षते ॥

आतुरस्य भवेन्मृत्युः स्वस्थो व्याधिमवाप्नुयात् ॥

अर्थ-जो मनुष्य घूपचांदनी आदिप्रकाशमें दर्पण, पसीने और जलमें अपनी छायाको न देखेयदि देखेतो ( हाथ, पैर, मस्तक आदि ) एक अंगरहित देखे, अथवा विकृत तथा अन्यसत्त्व ( और प्राणी गधा कुत्ते आदि ) कीसी देखे, तथा कुत्ता, काक, कंक, गीध, प्रेत, यक्ष, राक्षस, पिशाच, सर्प, नाग, और मनुष्य इनकी छायाको विकृतदेखे ॥ तथा जो मनुष्य धुआं रहित अग्निकां वर्ण मोरकंठके समान नील देखे तो आतुर ( रोगी ) की मृत्युहोवे और नैरोग्य पुरुष देखेतो रोगी होय-इति

अथातः छायाविप्रतिपत्तिमध्यायं व्याख्यास्यामः

अर्थ-अब छायाविप्रतिपत्ति अध्यायकी व्याख्या करेंगे इस जग

छायाशब्दके पश्चात् हीन्धी तुष्ट्यादिकीभी विपरीतता जाननी अर्थात् इनकीभी व्याख्या करेंगे

**इयावा लोहितका नीला पीतिका वापि मानवम्  
अभिद्रवन्ति यं छायाः स परासुरसंशयम् ॥**

अर्थ-अब छायाकी विपरीतता दिखातेहैं जैसेकि जिस पुरुषके साथ काली, लोहित, ( लाल ) नीली और पीली छाया दीखे वो गतप्राण जानना अर्थात् मरेगा ॥

**ह्रीश्रियो नश्यतो यस्य तेज ओजः स्मृतिः प्रभा ।  
अकस्माद्यं भजन्ते वा स परासुरसंशयम् ॥**

अर्थ-अब प्रभाकी विपरीतता दिखातेहैं । जिस रोगीकी लज्जा, लक्ष्मी, ओज, स्मरणशक्ति, और कांति, ये अकस्मात् जातीरहें । अथवा जो लज्जा आदिसे रहितहो वह अकस्मात् लज्जा आदि युक्तहोजावे तो वह मनुष्य अवश्य मरे ॥

**यस्याधरोष्ठः पतितः क्षिप्तश्चोर्ध्वं तथोत्तरः ।  
उभौ वा जाम्बवाभासौ दुर्लभं तस्य जीवितम् ॥**

अर्थ-जिसका नीचेका होठ नीचेकी गिरपड़े और ऊपरका होठ ऊपरकी विपट जावे, अथवा दोनो होठ जामुनके समान काले हो जाँय उस मनुष्यका जीना कठिन है ॥

**आरक्ता दशना यस्य इयावा वा स्युः पतन्ति च ।  
खञ्जनप्रतिमावापि तं गतायुपमादिशेत् ॥**

अर्थ-जिस मनुष्यके दाँत लाल अथवा काले होजावें, अथवा गिर पड़ें या खंजन पक्षीके समान सपेद और काले होजावें उसे गतायु अर्थात् मरेगा ऐसा जाने ।

**कृष्णा स्तब्धावलित्ता वा जिह्वा शूना च यस्य वै ।  
कर्कशा वा भवेद्यस्य सोऽचिराद्विजहात्यसून् ॥**

अर्थ-जिसकी जीभ-काली, लठर, कफसें ल्हिसी, सूजी और कठोर होजावे वह थोड़े समयमें मरेगा ऐसा वैद्य जाने । यह एकमहीनेमेंमरे है ॥

**कुटिला स्फुटिता वापि शुष्का वा यस्य नासिका ।  
अवस्फूर्जति मग्ना वा न सजीवति मानवः ॥**

अर्थ-जिसकी नाक टेढ़ी, फटीसी, सूखीसी और शब्दयुक्तहो, अथवा भीतरकी बैठ जावे वह मनुष्य नहीं जीवे । यह मनुष्य सातरात्रिमें मरेहै ॥

संक्षिप्ते विपमे स्तब्धे रक्ते स्रस्ते च लोचने ॥

स्यातां वा प्रस्रुते यस्य स गतायुर्नरो ध्रुवम् ॥

अर्थ-जिसके नेत्र संकुचित, ऊँचेनीचे, निश्चैष्ट, लाल, और नीचेको गिरजावें, अथवा जलबँह वो मनुष्य निश्चय गतायु जानना ॥

केशा सीमंतिनो यस्य संक्षिप्ते विनते ध्रुवौ

लुनन्ति चाक्षि पक्ष्माणि सो चिराद्याति मृत्यवे ॥

अर्थ-जिसके बालोंकी बेनीसी गुथजावे, और दोनों भौंह संकुचित और नीचेको गिरजावें, और जो पलकोंके बालोंकी बारं बारखोलि, मूँदे वो थोड़ेकालमें यमराजके गृहको पधारि । यदि ये लक्षण नेरोग्यपुरुषके होती वो छः महीनेमें मरे । और रोगी तीनदिनमें मरे ॥

नाहरत्यन्नमास्यस्थं न धारयति यः शिरः ।

एकाग्रदृष्टिर्मूढात्मा सद्यः प्राणान् जहाति सः ॥

अर्थ-अब देहकेअवयवक्रियाकी विपरीतताको कहते हैं, जैसेकि जो मनुष्य मुखमें धरे हुए अन्नको न निगले और जो मस्तकको धारण न करे अर्थात् गेरंगेर देवे एकही स्थानमें दृष्टी लगाय दे, झीलताजाती रहे वह तत्कालप्राणोंको परित्यागकरे ॥

बलवान् दुर्बलो वापि संमोहं योऽधिगच्छति ।

उत्थाप्यमानो बहुशस्तंधीरः परिवर्जयेत् ॥

अर्थ-बलवान् हो या दुर्बलहो जिसको बहुतसा उठानेपरभी बारं बार मूर्च्छा आवे उसको धीर पुरुष त्यागदे ॥

उत्तानः सर्वदा शेते पादौ विकुरुते च यः ॥

विप्रसारणशीलो वा न स जीवति मानवः ॥

अर्थ-जो सदैव चित्त सोवे और पैरोंको कभी उठावे कभीधरे कभी मोड़े इत्यादि विकृतिकरे, अथवा सुकड़ेही रखे वो रोगी नहीं जीवे ॥

शीतपादकरोच्छ्वासश्छिन्नश्वासश्च यो भवेत् ।

काकोच्छ्वासश्च यो मर्त्यस्तंधीरः परिवर्जयेत् ॥

अर्थ- जिसके हाथपैर और श्वास शीतलहो तथा श्वास दूट २ जावे, अथवा काककेसमान श्वासलेवे उसेधीरवेद्य त्याग देवे ये सद्यमरणके चिन्हहैं

निद्रा न छिद्यते यस्य यो वा जागर्ति सर्वदा ।

मुह्येद्रा वज्रकामस्तु प्रत्याख्येयः स जानता ॥

अर्थ—जो सोयाही करे जागे नहीं, अथवा जो सदैव जागाकरे सोवे नहीं और जब घोलाचाहे तभी मूर्च्छित होजावे उसे वैद्य त्याग देवे ॥

**उत्तरोष्ठश्च यो लिह्यादुद्वारांश्च करोति यः ।**

**प्रेतैर्वा भापते सार्द्धं प्रेतरूपं तमादिशेत् ॥**

अर्थ—जो ऊपरके होठको चाटाकरे, और जो बारंबार डकारलेवे, तथा मृतपुरुषोंके साथ जो भापण करे, उसको प्रेतरूपही जानना ।

**स्वेभ्यः सरोमकूपेभ्यो यस्य रक्तं प्रवर्त्तते ।**

**पुरुषस्य विपातस्य सद्यो जह्यात्स जीवितम् ॥**

अर्थ—अब शरीर देश विशेषाश्रित व्याधि विशेष अरिष्ट कृतोंको दिखातेहैं—जैसे जिसके रोमांचोंमेंसे रुधिर बहवे लगे वो विपात पुरुष तत्काल जीवनको परित्याग करे ॥

**वातष्ठीला तु हृदये यस्योर्ध्वमनुयायिनी ।**

**रुजात्रविद्वेषकरी स परासुरसंशयम् ॥**

अर्थ—जिसके वातष्ठीला हृदयमें प्रगटहो ऊपरको चढे, और उसमें पीडाहो तथा अन्नमें प्रीति न होवे, वह रोगी मरेगा ऐसा जाने ॥

**अनन्योपद्रवकृतः शोफः पादसमुत्थितः ।**

**पुरुषं हन्ति नारीं तु मुखजो गुह्यजो द्वयम् ॥**

अर्थ—पैरोंमें सूजनहो और उसमें सोफकेही उपद्रव श्वास प्यास आदि होवे । वो पुरुषको नाशकरे । और मुखसे उठी सूजन उक्त उपद्रवों करके युक्तहो वह स्त्रीको नाश करे, और गुदाकी सूजन स्त्रीपुरुष दोनोंको नष्ट करती है ॥

**अतिसारो ज्वरो हिक्का छर्दिः शूनांडमेद्रता ।**

**श्वासिनो कासिनो वापि यस्य तं परिवर्जयेत् ॥**

अर्थ—खांसी श्वासवाले रोगीके अतिसार, ज्वर, हिचकी, और चमन ये उपद्रव होतेहों तथा अंडकोष और लिंग भग परसूजनहो उसे वैद्य त्याग देवे ॥

**स्वेदो दाहश्च बलवान् हिक्का श्वासश्च मानवम् ।**

**बलवंतमपि प्राणैर्वियुज्यन्ति न संशयः ॥**

अर्थ—जिसके पसीना और दाह अत्यंतहो ऐसे बलवान् पुरुषको हिचकी और श्वासरोग प्राणरहित करतेहैं इसमें संदेह नहीं है ॥

इयावा जिह्वा भवेद्यस्य सव्यं चाक्षि निमज्जति ।

मुखं च जायते पूति यस्य तं परिवर्जयेत् ॥

अर्थ-जिसकी जीभ फालीहो और दहना नेत्र बैठ जावे, तथा मुख-मेंसे दुर्गंध आवे उसको वैद्य त्याग देवे ॥

वक्रमापूर्यते श्रूणां स्विद्यतश्चरणानुभौ ।

चक्षुश्चाकुलतां याति यमराष्ट्रं गमिष्यतः ॥

अर्थ-जिसका मुख आंसुओंसे भरजावे, और दोनों पैर पसीजें तथा नेत्र जिसके व्याकुल होजाय वह यमराजके देशको जायगा ऐसा जाने । यह रोगी प्रहर अथवा दोघडीमें मरे है ॥

अतिमात्रं लघूनि स्युर्गात्राणि गुरुकाणि च ।

यस्याकस्मात्स विज्ञेयो गन्ता वैवस्वतालयम् ॥

अर्थ-जिस रोगीका भारी देह अकस्मात् अल्पत हलका होजावे वह रोगी यमराजके घर जानेवाला है ॥

पङ्कमस्त्यवसातैलघृतगंधांश्च ये नराः ।

मृष्टगंधांश्च ये वांति गन्तारस्ते यमालयम् ॥

अर्थ-जिन रोगियोंकी देहमेंसे कीच, मछली, वसा, तेल, और घृतकी सीवास आवे, तथा जो दिव्य सुगंधवान् वमनकरे वो यमालयको जायेंगे । यह एक व पंमें मरता है ॥

यूकाललाटमायांति बलि नाश्रन्ति वायसाः ।

येषां वापि रतिर्नास्ति यातारस्ते यमालयम् ॥

ज्वरातीसारशोकाः स्थिर्यस्यान्योऽन्यावसादिनः ।

प्रक्षीणबलमांसस्य नासौ शक्यश्चिकित्सितुम् ॥

अर्थ-जिनके मस्तकपर जूआ आवे और कौआ काक बलिफो न खांय तथा जिनको फर्ही सुखनहो वो यमालयजाने वाले है । ऐसा जानना यह अरिष्ट एक वर्षका है जिसके परस्पर उपद्रव करता ज्वर अतिसार और सुजनहो । तथा बल मांस ये क्षीण होजाय वह रोगी चिकित्साके योग्यनही है

क्षीणस्य यस्य क्षुत्तृष्णे हृद्यैर्मिष्टैर्हितैस्तथा ।

न शाम्यतोऽन्नपाने अ तस्य मृत्युरुपस्थितः ॥

अर्थ-जिस क्षीणपुरुषकी भूख प्यास हृद्य मिष्ट और हितकारी अन्न जलसे भी शांत न हो उसकी मृत्यु खड़ीदुई है ऐसा जाने ॥

प्रवाहिका शिरःशूलं कोष्ठशूलं च दारुणम् ।

पिपासा बलहानिश्च तस्य मृत्युरुपस्थितः ॥

अर्थ-जिस रोगीके प्रवाहिका, मस्तकशूल, घोर उदरशूल, प्यास और बलहानिही उसकी मौत खड़ी है ऐसा जानो ॥

विषमेणोपचारेण कर्मभिश्च पुराकृतैः ।

अनित्यत्वाच्च जंतूनां जीवितं निधनं व्रजेत् ॥

अर्थ-अब यह कहते हैं कि इस मनुष्यके अरिष्ट किस तरह उत्पन्न होते हैं जिनसे यह निश्चय मरता है । तहां विषम चिकित्सा करनेसे और पूर्वजन्मके कर्मोंकरके, तथा प्राणीमात्रोंकी अनित्य होनेसे, जीवोंका जीवन विनाशकी प्राप्ति होता है ॥

प्रेतभूतपिशाचाश्च रक्षांसि विविधानि च ॥ मरणाभिमुखं नित्यमुपसर्पति मानवम् ॥ तानि भेषजवीर्याणि प्रतिघ्नन्ति जिघांसया ॥ तस्मान्मोघाः क्रियाः सर्वा भवंत्येव गतायुषः ॥

अर्थ-मरणके समय सब क्रिया निष्फल क्यों होजाती है इसवास्ते कहते हैं कि इसमनुष्यके मरण समय प्रेत, भूत, पिशाच अनेक प्रकारके ब्रह्मराक्षसआदि नित्य इसके मारनेको समीप आते हैं, इसीसे गतायु मनुष्यकी सर्वक्रिया निष्फल होजाती है ॥

इति ।

अथातः स्वभावविप्रतिपत्तिमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अर्थ-अब स्वभाव ( प्रकृति ) विप्रतिपत्ति अध्यायकी व्याख्या करेंगे । यहां स्वभाव शब्दके अनंतर आदिशब्द लुप्त है अर्थात् स्वभावादि विप्रतिपत्ति अध्यायकी व्याख्या करेंगे ॥

स्वभावादप्रसिद्धानां शरीरैकदेशानामन्यभावित्वं मरणाय तद्यथा शुक्लानां कृष्णता कृष्णानां शुक्लता रक्तानामन्यवर्णत्वं स्थिराणामस्थिरत्वं मृदूनां स्थिरता चलानामचलत्वं मचलानां चलता पशूनां संक्षिप्तत्वं संक्षिप्तानां पृथुता दीर्घाणां ह्रस्वत्वं ह्रस्वानां दीर्घताऽपतनधर्मिणां पतनधर्मित्वं



पतनधर्मिणामपतनधीमत्वमकस्माच्चशैत्यौष्ण्यस्नैग्ध्यरौ  
क्ष्यप्रस्तम्भवैवर्ण्यावसदनाश्चाङ्गनानाम् ॥

अर्थ-जो देहमें स्वभाव सिद्धपदार्थ हैं उनका शरीरके एकदेशमें विपरीत होजाना मरणके अर्थ है। जैसे अकस्मात् सपेदपदार्थोंका काला होजाना, और कालोंका सपेद होजाना, लालपदार्थ (होठ, तालुआदि) का सपेद काला पीला होजाना, स्थिरपदार्थोंका अस्थिर होना और (किश इमश्रु आदि कठोर पदार्थोंका) नम्र होजाना और नम्रपदार्थ (मांस, रुधिरादिकोंका) कठोर होजाना इसी प्रकार चलपदार्थोंका स्थिर हो जाना और अचलपदार्थोंका चलायमान होना मोटेनकी सुकड़जाना सुकड़ेहुओंका मोटा होना, दीर्घोंका ह्रस्व होना, और ह्रस्वोंका दीर्घ होना विनागिरने वालोंका गिरजाना, और गिरनेवालोंका स्थिर होना, तथा, शीतलता, गरमी, चिकनाई, रुखाई, स्तब्धता विवर्णता, और विकलता ये अंगोंके विपरीत होना मरणके अर्थ जानने ॥

स्वेभ्यः स्थानेभ्यः शरीरैकदेशानामवस्रस्तोत्क्षिप्तभ्रांतावक्षि  
प्तपतितविमुक्तनिर्गतातर्गतगुरुलघुत्वानि ॥

अर्थ-शरीरके एकदेशोंका अपनेस्थानसे सिथिल होना, उनको ऊपरको जाना नेत्रादिकोंका भ्रमण होना, तिरछागिरना, शिरग्रीवादिकोंका गिरना, संधी, आदिकालुटना, जिह्वाआदिका निकलना, जिह्वा नेत्रादिकोंका भीतरप्रवेश होना, बाहुशिरआदि भारीहलकोंका विपरीत होना, ये लक्षण अरिष्टकरते हैं ॥

प्रवालवर्णव्यंगप्रादुर्भावोऽप्यकस्मात् । सिराणां च दर्शनं  
ललाटे नासावंशे वा पिडकोत्पत्तिः । गोमयचूर्णप्रकाशस्य  
वारजसो दर्शनमुत्तमांगे निलयनं वा कपोतकंकप्रभृतीनां  
मूत्रपुरीषवृद्धिरभुञ्जानानां तत्प्रणाशो भुञ्जानानां । स्तनमू-  
लहृदयोरसुच शूलोत्पत्तयः मध्ये शून्यत्वमन्तेषु परिम्ला-  
यित्वं विपर्ययो वा तथाङ्गि ज्वयधुः ॥

अर्थ-अकस्मात् लालवर्णका व्यङ्गरोम प्रगट हो, लालवर्णकी नस दीखने लगे. मस्तकमें और नासिकाकी हड्डीमें पिडकाकी उत्पत्ति हो, मस्तकमें गोबरकी घूलसमान रजदीखे, तथा कबूतर कंक आदि पक्षियोंका

मस्तकपरवैठना, बिनाभोजनके मल मूत्रकी वृद्धिहोना, अर्थात् अधिक उतरना, और भोजन करेहुआँका मलमूत्रका नाशहोना, स्तनमूल, हृदय, छाती, इनमें शूलकी उत्पत्तिहो । और जिसका देहका मध्यभाग सूज-जाय और अंतकेभाग मुरझाए हुएसे होजावें अथवा अंतकेभाग ( हाथ-पैरआदि ) सूजजाय, और बीचकाभाग मुरझायासाहो अथवा अर्द्धाङ्गमें सूजनहो उसको अरिष्ट है ऐसाजानना यह एकमहीनेका है ॥

शोषेणपक्षयोर्वा नष्टहीनविकलविकृतिस्वरता । विवर्णपु-  
ष्पप्रादुर्भावो वा दन्तनखशरीरेषु । यस्य वाप्सु कफपुरी-  
परेतांसिनिमज्जंति । यस्य वा दृष्टिमंडले भिन्नविकृतानि  
रूपाण्यालोक्यन्ते । स्नेहाभ्यक्तकेशांगद्वयो भाति यश्च  
दुर्बलो भक्तद्वेषातिसाराभ्यां पीड्यते । कासमानश्च तृष्णा  
भिभूतः । क्षीणच्छर्दिभक्तद्वेषयुक्तः सफेनपूयरुधिरोद्गामी  
हृत्स्वरः शूलाभिपन्नश्च मनुष्यः ॥

अर्थ—अंगोंका सूखना अथवा आधे देहका शोषहोना, एवं स्वर अत्यंत क्षीण हो जाय वा विकलस्वरहो जाय । ( गदगदादि स्वर हो जाय ) वा विकृत अर्थात् स्वभावसे विपरीतहोजावे तथा दांत नख और शरीरमें विवर्णपुष्प अर्थात् दुष्टरंगकी बिंदु प्रगट होजावें जिसके जलमें कफ, मल और धीरे धीरे सूजजावे । और नेत्रोंके सामने भयानक अनेकप्रकार (तीनशिर, शिर रहित) रूपदीखे । तेल लगाएहुए बाल रूखेसे दीखे, और जो दुर्बल पुरुष अन्नसेद्वेष और अतिसारकरके पीडितहो । जब खाँसे तब तृषासे पीडितहो । क्षीणरोगी वमन, अन्नद्वेषयुक्तहो । तथा ज्ञागयुक्त राध रुधिरकी वमन करे । स्वर बैठ जावे, और शूलसे पीडित हो, उस-को अरिष्ट जानना ॥

शूनकरचरणवदनःक्षीणोऽन्नद्वेषो सस्तापिण्डिकांसपाणिपादो  
ज्वरकासाभिभूतः यस्तु पूर्वाणहे भुक्तमपराणहे छर्दयत्यवि-  
दग्धमतिसार्यते वा ज्वरकासाभिभूतः स श्वासान्त्रियते ।  
वस्तवन् विलपन् यश्च भूमौ पतति सस्तमुष्कस्तब्धमेहो  
भग्नग्रीवःप्रनष्टमहेनश्च मनुष्यः ॥

अर्थ—जिसके हाथ, पैर मुख सूजेहुए हों, अन्य अंग क्षीण होगये हों,

अन्नमें अरुचि, सिधिल हैं घोटू, कंधे, हाथ और पैर जिसके, ज्वर खाँसी-  
करके युक्त एवं जो प्रातःकालमें भोजनकरेहुएकी अपराह्नमें वमनकरदेवे,  
और जिसके विनपचा अन्न दस्तके मार्गहोके निकले, और ज्वर खाँसीसे  
व्याप्तहो, वो श्वासरोगसे मरे । एवं बकरेका शब्द समान विलापकरता  
हुआ पृथ्वीमें गिर पड़े । अंडकोशस्थान छूटजावे, लिङ्गस्तंभितहो जाय,  
नारगिरपड़े, तथा लिङ्गभीतरको चलाजाय । उसको अरिष्टजानना ॥

प्राग्विशुष्यमाणहृदय आर्द्रशरीरोयश्चलोऽलोलोऽपेनाभिहन्ति  
काष्ठंकाष्ठेन तृणानि वाछिनत्तिअधरोष्ठंदशत्युत्तरोष्ठंवाले  
दि॥आलुंचतिवाकर्णौकेशांश्च देवद्विजगुरुसुहृद्रैद्यांश्चद्रेष्टि॥

अर्थ—जिस पुरुषका सब देह गीला रहते प्रथम हृदय ही सूखजावे  
उसको पक्षभरका अरिष्ट है और मिट्टीके टेलसे टेलको तोड़े लकड़ीसे  
लकड़ीको और तिनकोंको तोड़े. नीचेके होठको दांतोंसे इसे और ऊपर-  
के होठको चाटे. और कान माथेके वालोंको तोड़े । एवं देव, ब्राह्मण, गुरु,  
सुहृद और वैद्य इनसे द्रोहकरे तो उसको १ वर्षका अरिष्ट जानना ॥

यस्यवक्रानुवक्रगाग्रहागर्हितस्थानगताःपीडयन्तिजन्मक्षवा-  
यस्योल्काशनिभ्यामभिहन्यतेहोरावागृहदारशयनासनया  
नवाहनमणिरत्नोपकरणमर्हितलक्षणनिमित्तप्रादुर्भावोवेति॥

अर्थ—जिसके वक्तीग्रह, जोग्रह उपस्थितराशिको छोडकरपूर्व भुक्तराशि  
पर आजावे और मार्गीग्रह ये दुष्टस्थानपर आनकर जन्म नक्षत्रको  
पीडित करे तथा जिसका जन्म नक्षत्र और होरा वल्का ( जिसे तारा  
दूदा कहते हैं ) और विजली करके हतहो एवं पर, स्त्री, क्षय्या,  
आसन, सवारी, वाहन, मणि, रत्न, और सामग्री आदिमें दुष्ट लक्षण  
इनके निमित्त करके अरिष्टकी उत्पत्ति होती है ॥

चिकित्स्यमानःसम्यक्चविकारोयोऽभिवर्द्धते

प्रक्षीणवलमांसस्यलक्षणंतद्रतायुषः ॥

निवर्त्ततेमहाव्याधिःसहसायस्यदेहिनः

नचाहारफलंयस्यदृश्यतेसविनश्यति ॥

अर्थ—जिस रोगीका उत्तम रीतिसे चिकित्सा करते २ परभी रोगवढे  
और बलमांस, जिसके क्षीण हो जायें वो गतायु जानना । जिस रोगीका

घोररोग अकस्मात् जातारहे और जो भोजनकरे उसका कुछ देहमें ( पुष्टाई क्षुधा शांति आदि ) फल न दीखे वो रोगी अवश्य मरे ॥

ज्ञानसंबोधनार्थतुलिंगैर्मरणपूर्वकैः ॥

पुष्पितानुपदेक्ष्यामोनरान्बहुविधान्बहून् ॥

नानापुष्पोपमोगंधोयस्यवातिदिवानिशम् ॥

पुष्पितस्यवनस्येवनानाद्रुमलतावतः ॥

तमाहुःपुष्पितंधीरानरंमरणलक्षणैः ॥

स वै संवत्सराद्देहंजहातीतिविनिश्चयः ॥

अर्थ—मरणपूर्वक लक्षणों करके कालज्ञानके जाननेके लिये अनेक प्रकारके बहुतसे पुष्पित मनुष्योंको कहताहूं । अनेक वृक्ष लतावान् फूले हुए वनकीसी जिसके देहमें दिनरात्रि फूलोंकीसी गंध आवे उसको धीर वैद्य पुष्पित कहते हैं, वो १ वर्षके भीतर निश्चय मरणको प्राप्तहो ॥

एवमेकैकशःपुष्पैर्यस्यगंधःसमोभवेत् ॥ इष्टोवायदिवानिष्टैः

सचपुष्पितउच्यते ॥ तद्यथाचन्दनंकुष्ठंतगरागुरुणीमधु॥मा

ल्यसूत्रपुरापेवामृतानिकुणपानिवा ॥ येचान्येविषिधात्मानो

गंधाविविधयोनयः॥तेऽप्यनेनानुमानेनविज्ञेयाविकृतिंगते ॥

अर्थ—उसी प्रकार एक एक फूलकी पृथक्स्मृगंध या दुर्गंध आवे तो उस को पुष्पित कहतेहैं जैसे—चंदन, कूठ, तगर, अगर, सहत, माला, सूत्र, मल मुरदेके समान दुर्गंध, तथा और अनेक प्रकारकी आपकी दुर्गंध आवे वो भी इसी अनुमानसे अरिष्ट गत मनुष्यके देहमें जाननी चाहिये ॥

इदंचाप्यतिदेशार्थलक्षणंगंधसंश्रयम् ॥

वक्ष्यामोयदभिज्ञायभिषक् मरणमादिशेत् ॥

अर्थ—इस प्रकार वैद्योंके जाननेके लिये गंधसंश्रयलक्षणोंको कहंगा जिन लक्षणोंको वैद्य जानकर रोगी का मरण कहे ( अर्थात् ये रोगी इतने दिनमें मरेगा )

वियोनिविज्वरोयस्यगन्धोगात्रेपुद्गद्यते ॥ इष्टोवायदिवानिष्टो

नसजीवतित्तासमाम् ॥ एतावद्गंधविज्ञानंरसज्ञानमतःपरम् ॥

अर्थ—जिस मनुष्यके देहमें पशु पक्षी आदि कीसी और अनेक प्रकारके रोगोंकीसी गंध आवे चाहिये वो अच्छीहो वो मनुष्य वर्षभर नहीं जीवे यह हमने गंध विज्ञान कहा अब रसज्ञानको कहते हैं ॥

आतुरेषु शरीरेषु वक्ष्यामो विधिपूर्वकम् ॥ योरसः प्रकृतिस्थानां  
नराणां देहसंभवः ॥ स एषां चरमे काले विकारं जते द्रव्यम् ।  
कश्चिदेवा स्य वैरस्य मत्त्यर्थमुपपद्यते ॥ स्वादुत्वमपरं चापि  
विपुलं भजते रसः ॥ तमनेनानुमानेन विद्याद्विकृतिमागतम् ॥

अर्थ—अब रोगीके शरीरमें रसज्ञानको विधि पूर्वक कर्हेगे नैरोग्य पुरुषोंके  
देहका रस जो स्वस्थावस्थामें होता है वही मरणके समय दो प्रकारके  
भावको होजाता है किसीके तो सुखमें विरसता हो जाती है और किसीके  
मुखमें अत्यंत स्वादुता आयजाती है उसको वैद्य अनुमान द्वारा जानें कि  
विकृति आनपहुंची है ॥

मनुष्यो हि मनुष्यस्य कथं रसमवाप्नुयात् ॥ मक्षिकाश्चैव यक्षा  
श्च दंशाश्च मशकैः सह ॥ विरसादपसर्पति जन्तोः कायान्मुमुर्षु  
तः ॥ अत्यर्थरसकं कायङ्कालपक्षस्य मक्षिकाः ॥ अपि स्नाता  
नुलितस्य भृशमायांति सर्वशः ॥ यान्येतानि मयोक्तानि लिङ्गा  
निरसगंधयोः ॥ पुष्पितस्य नरस्यैतैः फलं मरणमादिशेत् ॥

अर्थ—कदाचित् कोई प्रश्नकरे कि मनुष्य मनुष्यके देहका रस कैसे जान  
सक्ता है इस लिये धन्वन्तरि कहते हैं कि जिस समय यह मनुष्य मरणोन्मुख  
होता है तब इस मनुष्यकी देह विरस हो जाती है अतएव उस गंधके  
प्रभावसे मक्खी, यक्ष, मच्छर, डास इत्यादि इसके ऊपर नहीं बैठते हैं  
और जब कालकरके अत्यंत देह पक होजाता है तब इस प्राणीके स्नान  
करनेके पश्चात् और चंदन आदि लगाने परभी मक्खी पीछा नहीं छोड़तीं  
तब वैद्य जानलेवे कि इस मनुष्यके देहका रस पलटगया है यह हमने  
पुष्पित मनुष्यके रस, और गंधके लक्षण कहे इस्से वैद्य रोगीका मरण कहे ॥

दंतपंक्त्यन्तरे न्यस्तं न विशेदंगुलित्रयम् ।

स याति सप्तरात्रेण निश्चितं यमसादनम् ॥

जिसके दांतोंके भीतर देनेसे तीन तंगली न जावें, वो निश्चय सातादिनमें मरे

छायां विधोर्न ध्रुवभृक्षमालामालोकयेद्यो न च मातृचक्रम् ।

खंडपदं यस्य च कर्दमादौ कफश्च्युतो मज्जति चाम्बुचुंबी ॥

अर्थ—जो मनुष्य चंद्रमाके कलंकको, ध्रुवको, नक्षत्रोंको और मातृमंड-  
लको न देखे और कीचआदिमें पैर रखनेसे आधा पैर काही चिन्ह दखे

और जलमें कफ गेरनेसे जलको लेकर नीचे बैठजावे, उसे अरिष्ट जानना चाहिये ॥

**उरः पुरःशुष्यति यस्य चार्द्रं न मांति तिस्रोऽंगुलयश्च वक्त्रे ।**

**स्नातस्य मूर्धन्यपि धूमवल्ली निलीयते रित्तमुखः खगो वा**

अर्थ-जिसका देह चंदन अथवा जलआदिसे गीलाहोकर प्रथम छाती-सूखे, और जिसके मुखमें तीन उंगली न अमावे और जलमें स्नानकरे हुए मस्तकमें धूम ( धूआं ) की शिखा उठे एवं जिसके मस्तकपर फलधान्यादिसे रीती चांचवाले पक्षीबैठे, उसको अरिष्टहै ऐसा जानना ॥

**नाकीर्णकर्णः शृणुयाच्च घोषं नो वा सुभुक्तोऽपि धृतिं न धत्ते ।**

**निःश्रीरकस्मात्सुतरां च सुश्रीः कृशः स्थवीयानपि योप्यकस्मात्**

अर्थ-जो मनुष्य, उंगलियोंसे कानोंको बंदकर कानोंके भीतरका स्वाभाविक शब्दको न सुने, और जो बहुत भोजन करनेपर भी तृप्त न होवे, तथा अशोभित अकस्मात् शोभावान् होजाय, और शोभावान् अशोभित हो जाय, एवं जो कृशहै वो मोटाहोजावे और मोटा मनुष्य अकस्मात् पतलाहोजावे तो उसको अरिष्टजानना ॥

**अतीवतुच्छं बहुचाल्पहेतोरतीतसात्म्यः सदसत्प्रवृत्तौ ।**

**अप्यंगुलिक्रांतविलोचनांतो न मेचकं चान्द्रकमीक्षते यः ॥**

अर्थ-जो ज्वरादि रोगके बिना अत्यंत थोड़ा भोजन करनेलगे, और भस्मकादि रोगके बिना बहुत भोजन करनेलगे, और जो उत्तमविषय तथा दुष्टविषयोंमें अपने सात्म्यको छोड़ देवे, अर्थात् जो उत्तमकर्मकर्ता वो दुष्ट कर्म करने लगे और दुष्टकर्म वाला अच्छेकर्म करने लगे, एवं उंगलियोंसे नेत्रोंको ठकने पर मोरचंद्रकके समान तिलमिले अनुभवसिद्धको न देखे उसको अरिष्ट जानना ॥

**मध्येललाटं मणिबंधधारी न चाल्पिकां पश्यति यः कलावीम्**

**अहेतुकं यः श्वगन्धिगात्रः सर्वत्र सीमंतिमूर्धजो वा ॥**

जो ललाटपर पड़ुंकेको धरकर थोड़ाभी पड़ुंकेको ( कलाईको ) न देखे, और बिनाकारण जिसमें मुरदेकीबास आनेलगे, और जिसके समस्त मस्तकमें बालोंकी वेनीसी गुथजावे उसको अरिष्ट जानना ॥

**अपिक्षरद्रोमनखः शरीरात्सद्यः स्रवद्रामविलोचनो वा ।**

**निरीक्षते सत्त्वममानुषं वा विस्रस्तनासानयनश्रुतिर्वा ॥**

अर्थ-जिसके शरीरसे रोम और नख स्वयं उखड़कर गिरने लगें,

और जिसका वामनेप्रसे आंसु बहनेलगे और जो भूतपिशाचादि प्राणि-  
योंको देखे, एवं जिसके नाक, नेत्र और कान ये सिथिलहोजावें,  
उसको अरिष्ट जानना चाहिये ॥

**फलाग्निजलवृष्टीनां पुष्पधूमाम्बुदा यथा ॥**

**ख्यापयन्ति भविष्यत्वं तथा रिष्टानि पंचताम् ॥**

अर्थ—जैसे—पुष्प, धुंआ, और बादल, ये फल, अग्नि, और जलके  
भविष्यको प्रगटकरतेहैं, उसीप्रकार अरिष्ट मरणको सूचना करताहै ।  
अर्थात् फूलफलको और धुंआहोनेसे अग्नि, एवं बादल होनेसे पानीविर्षने  
का भविष्यसूचनाहोताहै । उसी प्रकार अरिष्टद्वारा मरणका बोध होता  
है । अरिष्ट दो प्रकारकाहै एक नियत ( निश्चित ) और दूसरा अनि-  
यत ( अनिश्चित ) है ॥

**तानि सौक्ष्म्यात्प्रमादाद्वा तथैवाशुन्यतिक्रमात् ।**

**गृह्यन्ते नोद्धतान्यज्ञैर्मुमूर्षोर्नैतत्सम्भवात् ॥**

अर्थ—उन प्रगटहुए अरिष्टोंको मरणेच्छू मूढमनुष्य अत्यंत सूक्ष्महोनेसे  
और शीघ्रनष्टहोजानेसे नहीं जानसक्ता अर्थात् वो परमाशुके समान  
अत्यंत सूक्ष्म होतेहैं । और रोगी मतवालासा होताहै इसकारण तथा  
जिस समय अरिष्टहुआ उसी समय रोगी मरगया इन सबकारणोंसे  
मूर्ख नहीं जानते किंतु यह नहींहै कि वो अरिष्ट उनके न होतेहों इसका-  
रणको नहीं जाने ॥

**नक्षत्रपीडा बहुधा यथा कालाद्विपच्यते ।**

**तथैवारिष्टपाकं च भ्रुवते बहुधा जनाः ॥**

अर्थ—अब यह कहतेहैं कि । ये अरिष्ट पीडा पक्षीसवर्षादिमें कयी  
होती है । इसवास्तेहै कि जैसे नक्षत्रजनित पीडा प्रायः कालांतरमें पचती  
है उसीप्रकार अरिष्टफलको बहुतसे मनुष्य कहते हैं ॥

**असिद्धिमाप्नुयाल्लोके प्रतिकुर्वन् गतायुषः ।**

**अतोरिष्टानि यत्नेन लक्षयेत्कुशलो भिषक् ॥**

अर्थ—जो वैद्य गतायु अर्थात् मरणोन्मुखकी चिकित्सा करताहै वो  
इसलोकमें सिद्धि ( चिकित्साफलजनयशादि ) को नहींप्राप्तहोता, अतएव  
कुशलवैद्य यत्नपूर्वक अरिष्टोंको देखे ॥

अपस्तम्बदीप्तश्लोकः व्यस्ताद्वादिस्वभावा अग्नि च पददलं भाषिकारोऽपुपूर्वं स्वस्थोऽग्नांकिं  
न पश्येत्तनुमितरदृशि स्वाक्षि वा र्गिष्ठचतेनः । प्रौवादीन्वाय पश्येद्गमइनि च तद्विज्ञाप-  
पूर्वं निरुधे सूर्येन्द्रोश्चिद्रपूर्वं मृत्तिकुदिह च मृत्युअपाजाप्यहोमो ॥ १ ॥

ध्रुवं तु मरणं रिष्टे ब्राह्मणैस्तत्किलामलैः ।

रसायनतपोजप्यतत्परैर्वा निवार्यते ॥

अर्थ—अब दोषज अरिष्टों करके मरण निश्चयको दिखातेहैं कि अरिष्ट होनेसे इसप्राणीका अवश्य मरण होताहै । वो अरिष्ट जन्ममरण रागादि दोषरहितब्राह्मणोंकीसेवा, रसायन औषधोंका सेवन, तपश्चरण और गाय-त्र्यादिमंत्रोंके जपकरनेसे निवारण होते हैं। यहकेवल अनियत अरिष्टमें भि-  
षकु उपायहै और नियतहै वो दानपुण्यआदि किसी उपायसे दूरनहीं होते॥

अथ छाया पुरुषलक्षणम् ॥

अथातः संप्रवक्ष्यामि छाया पुरुषलक्षणम् ।

येन विज्ञानमात्रेण त्रिकालज्ञो भवेन्नरः ॥

अर्थ—अब हम छायापुरुषके लक्षण कहते हैं जिसके जाननेसे यह प्राणी त्रिकालज्ञ ( भूत-भविष्यत्-वर्तमानका जाननेवाला ) होता है ॥

कालोदूरस्थितश्चापियेनोपायेन लक्ष्यते ।

तंवक्ष्यामि समासेन तयोक्तं शंभुना पुरा ॥

अर्थ—दूरस्थितभी काल जिसउपायकरके दृष्टिगोचरहो उसको मैं सं-  
क्षेप करके कहूँ जैसे पहिले शिवजीने कहा है ॥

एकांते विजने गत्वा कृत्वा दित्यं च पृष्ठतः ।

निरीक्षितनिजां छायां कंठदेशे समाहितः ॥

अर्थ—कालज्ञानका परीक्षक मनुष्य निर्जन एकांतवनमें जाय समान-  
भूमिमें सूर्यको पिछाड़ीकरके सीधा खड़ाहो फिर अपनी छायाके कंठ-  
देशमें देखताहुआ सावधानीसे परीक्षा करे ॥

ततश्चाकाशमीक्षितततः पश्यति शंकरम् ।

ॐ ह्रीं परब्रह्मणे नमः इति मंत्रः अष्टोत्तरशतवारं जपेत् ॥

अर्थ—बराबर [ दोपड़ी पर्यंत छायाको देखाकरे ] फिर उसछायापरसे  
दृष्टिको उठाकर आकाशकी तरफ देखेतो साक्षात् शिवको देखेगा जि-  
ससमयछाया देखनेकी खड़ाहो तब १०८ बार इसमंत्रको पढे  
“ ॐ ह्रीं पर ब्रह्मणे नमः ” ॥

शुद्धस्फटिकसंकाशं नानारूपधरं हरम् ॥

पणमासाभ्यासयोगेन भूचराणां पतिर्भवेत् ॥

अर्थ—इसप्रकारकरनेसे शुद्धस्फटिकमणिके समान अनेक रूप धारण क-



र्त्ताशिवको देखे इसप्रकार छःमहीने करनेसे संपूर्णप्राणीमात्रका अधिपतिहो  
वर्षद्वयेन हेनाथ कर्त्ताहर्त्ता स्वयंप्रभुः ॥

त्रिकालज्ञत्वमाप्नोति परमानंदमेवच ॥

अर्थ—दो वर्ष इसक्रियाके साधनकरनेसे स्वयं कर्त्ता हर्त्ता और त्रिका-  
लका जाननेवाला परमानंदयुक्त होवे ॥

सतताभ्यासयोगेन नास्ति किंचन दुर्लभम् ॥

अर्थ—इसीप्रकार बराबर नित्यप्राति साधनकर्त्ता रहेतो इस संसारमें  
ऐसीकोई वस्तु नहीं है जो इससाधकको प्राप्ति नहो ॥

तद्रूपंकृष्णवर्णयः पश्यतिव्योम्नि निर्मले ॥

पण्मासान्मृत्युमाप्नोतिसयोगीनात्र संशयः ॥

अर्थ—यदि यहयोगी आकाशमें उसछायापुरुषका वर्ण कालेरंगका  
देखेतो छःमहीनेमें निःसंदेहमृत्यु हो ॥

पीतेव्याधिभयंरक्ते नीलेहत्यांविनिर्दिशेत् ।

नानावर्णस्वरूपोस्मिन्नुद्देशे जायते महान् ॥

अर्थ—यदि पीलावर्ण देखेतो इसको रोगहो लाल देखेतो भयहो और  
नीले वर्णकी छाया देखेतो हत्यालगे एवं अनेक प्रकारके रंगकी छाया  
देखेतो इसके चित्तमें घोर उद्वेग होवे ॥

पादेगुल्फेचजठरे विनष्टमृत्युमादिशेत् ।

अर्धवर्षेणवर्षेणक्रमाद्वर्षद्वयेनच ॥

अर्थ—छाया पुरुषके पैर-टकना-और पेट न दीखनेसे क्रमपूर्वक छः  
महीने वर्षदिन और दोवर्ष में मृत्यु हो अर्थात् पैर नदीखने से छःमहीनेमें  
टकना न दीखनेसे वर्षदिनमें और पेटनदीखनेसे दो वर्षमें मरे ॥

विनष्टेदक्षिणेबाहौस्वबंधुर्ग्रियतेध्रुवम् ।

वामे बाहौ तथा भार्या विनश्यतिन संशयः ॥

अर्थ—छाया पुरुषका दहिना हाथ न दीखनेसे अपना भाई मरे और  
बाँयाँ हाथ न दीखनेसे अपनी स्त्रीमरे इसमें संदेह नहीं है ॥

शिरोदक्षिणबाहोस्तुविनाशेमृत्युमादिशेत् ।

अशिरामासिमरणविनाजंघेदिनेनवा ।

अष्टभिः कंधरानाशे छाया लुप्ते च तत्क्षणात् ॥

अर्थ-छाया पुरुषके शिर और दहिना हाथन दीखनेसे मृत्युहो यदि कंधादीखे तो महीनेमें मरे और बिना पिंडरीके दीखेतो एकदिनमें मरे कंधानदीखनेसे आठदिनमें और सर्व छाया न दीखेतो तत्कालमृत्युहो, परंतु यह ज्ञान केवल योगियों को होता है अन्यको नहीं ॥

इति कालज्ञानं समाप्तम् ।

## वृत्तिभेद ( पेशा )

वृत्ति अर्थात् पेशाभी एक रोगका कारण है जैसे जो अत्यंत कष्टकी मेहनत करते हैं जैसे बोझा उठानेवाले उनको वातकी बिमारी होती है.

और जो आनंदसे बैठे रहते हैं उनको अरुचि मंदामि-बवासीर आदि रोग होय है जैसे शोठसाहूकार-लेखक-चित्ररे आदिको छुहार घड़िसाज-सुनार-रसोय्या और चूड़ी बनानेवाले नेत्रहीन और अन्य २ नेत्रके रोगोंसे ग्रसित होते हैं.

धुनिया, बुहारी ( झाड़ू ) देनेवाले चून भेदा छाननेवाले प्रायः श्वास रोगी होते हैं.

सीसेके कामकरनेवाले प्रायः पतले हाथके या झुकेहुए पड़ुंचके होते हैं दिया सलाईके बनानेवाले हनुस्तंभ आदि रोगमें ग्रसित होते हैं

परंतु जंगली मनुष्य खेती करनेवाले गैया, भेड़, बकराके चरानेवाले प्रायः स्वच्छ पवनके सेवन करनेसे रोगहीन होते हैं.

इत्यादि पेशाका विचारभी घेद्य अवश्य करके पश्चात् चिकित्सा करे.

रीतिभ्रांतिके भेदसे जातिभी रोग होनेका कारण है जैसे कि. मुसलमान एकही कुलमें विवाह करलते हैं इस कारण माँघापके रोग पीढीदूर पीढीचले जाते हैं और हिंदू जो बहुत छोटी अवस्थामें विवाह करते हैं इसीसे उनकी संतान अत्यंत दुर्बल होती जाती है जैसा कि हिन्दुओंकी संतान प्रथमकी होते ही मरजाती है कदाचित् बचजावे तो बहुतही कम-जोर होती है कि उसकी संपूर्ण अवस्था दुःख और अनेक प्रकारके रोग भोगनेमें कटती है तथा जो जवानीमें विवाह करते हैं उनकी संतान हृष्ट पुष्ट और रोगरहित होती है ॥

## स्वरूपपरीक्षा ।

वातादीनां स्वरूपं तु प्राङ्मयाकथितं प्रिये

दूषणं पुनरुक्तिः स्यात्तस्मान्नात्र प्रकाशितम् ॥

अर्थ-वातपित्तादिकोंका स्वरूप प्रथम शरीरस्थानमें कह आए हैं फिर कहनेसे पुनरुक्ति दूषण आता है इस कारण यहांपर नहीं कहा ॥

## जठरस्थरोगोंकीपरीक्षा ।

तातास्माभिः श्रुतं पूर्वनेत्रादीनां परीक्षणम् ।

अधुनोदररोगाणां परीक्षा वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्रियाशिष्यस्य धीमतः

आत्रेयो वक्तुमारेभेत् तत्सर्वं शिष्यवत्सलः ॥ २ ॥

अर्थ—हारीतकृषि परम कारुणिक सर्वशास्त्रविशारद अपने गुरु श्रीम-  
हर्षि आत्रेयके चरणकमलमें प्रणामकर बोलें कि हे तात ! आपने प्रथम  
नेत्र आदि परीक्षा कही की जिसे हमको उस विषयमें बहुत कुछ लाभ  
हुआ अब आप कृपा करके उदरयंत्रोंकी परीक्षा कहनेको योग्यहों ।  
इस प्रकार शिष्यवत्सल आत्रेय भगवान् प्रियाशिष्य हारीतके वचन सुन  
इस प्रकार कहनेका प्रारंभ करते भए ॥

यकृदामाशयप्लीहाग्रहण्यान्त्राणिवृक्कौ

मलमूत्राशयोयंत्राण्यौदराण्यपराणि च ॥ ३ ॥

तेषां विकृतितोयानिलक्षणानि भवन्ति हि ।

शृणु तावहि तावत्सावच्चिमसोऽहं समासतः ॥ ४ ॥

अर्थ—यकृत आमाशय प्लीहा संग्रहणी संपूर्ण अंत वृक्क दोनो मलाश-  
य और मूत्राशय ये सब इसी प्रकार औरभी अनेक उदरयंत्र विद्यमान  
होकर अपने २ कार्यको करते हुए प्राणियोंकी जीवनरक्षा करते हैं । इन  
में किसी प्रकारका विकार होनेसे जो लक्षण होते हैं उनको मैं संक्षेपसे  
वर्णन करता हूँ उनको तू सावधान होकर सुन ॥

उदरे सर्वहस्तस्य स्थापयेन्मध्यमांगुलीम् ।

तामन्यस्य करस्याग्रैरंगुलीनां विधानतः ॥ ५ ॥

अभिहृत्याभिघातोत्थैर्ध्वनिभिर्विविधैर्भिषक् ।

क्रियाविशेषान्यंत्राणां विद्यादुदरवर्तिनाम् ॥ ६ ॥

अर्थ—तहाँ प्रथम अभिघात परीक्षा कहते हैं जैसे—परीक्षा करनेवाले  
रोगीके पेटपर वैद्य अपना बायें हाथके बीचकी अंगुली धरके उसके  
ऊपर दहने हाथकी सब अंगुलियोंको एकत्रितकर ताड़ना । करनेसे  
पृषक् २ शब्दद्वारा उदर यंत्रोंकी पृथक् २ अवस्थाका ज्ञान होता है  
सो आगे लिखते हैं ॥

यकृद्देशान्मन्दतरःशब्दः प्रकृतितो भवेत् ।

शून्यामाशयतःशब्दोजायतेशून्यगर्भिकः ॥ ७ ॥

वातैर्वायुदिवावाष्पैःपूर्णश्चामाशयोभवेत् ।

ततःप्रादुर्भवेच्छब्दोवाताध्मातोद्भूतेर्यथा ॥ ८ ॥

अर्थ—यकृतके ऊपर स्थितउदरके भागमें ताड़ना करनेसे अस्फुट धीरा शब्दप्रतीतहोवे । शून्य अमाशयके ऊपर ताड़ना करनेसे जैसाशून्य (रीते ) पात्रकी आवाजहो ऐसी ध्वनि निकलती है । यदि आमाशय-वायु अथवा वाष्प द्वारा पूर्ण होनेसे हवाभरी हुई धौंकनीके शब्दसदृश आवाजनिकलती है ॥

वायुनारूपीतिमापन्नेप्रहतेचमलाशये ।

प्रतिध्वनिर्भवेच्छब्दोमन्दःस्यान्मलपूरिते ॥ ९ ॥

उदकोदरिणंकृत्वासर्वथापार्श्वशायिनम् ।

तस्योर्ध्वपार्श्वविधिनापरीक्षिताभिघाततः ॥ १० ॥

अर्थ—वायु पूर्ण मलाशयके ऊपर आघात ( चोटदेने ) से प्रतिध्वनि-अर्थात् जैसी चोटदेने से आघाजहोती है ( उसीके माफिक ) आघाजहो यदिमलाशय मलपूरीत होवे तो मंद २ शब्दनिकले । जलंधर रोगीको किसी एककरबटसुलायकर ऊपरके पार्श्वमें आघात ( चोट ) से परीक्षाकरे

स्वभारात्संचितंतोयंमध्येव्रजतिनिश्चितम् ।

तदूर्ध्वमुपतिष्ठतेक्षिप्रमंत्राणिवत्सकाः ॥ ११ ॥

ऊर्ध्वगतेभ्यश्चात्रिभ्यःशब्दश्चाध्मानिकोभवेत् ।

अभिघातपरीक्षयंमयाप्रोक्तासमासतः ॥ १२ ॥

अर्थ—इसप्रकार सीते हुए जलंधररोगीके पेटका संचित जलसमूह अपने भारीपनेके बससे नीचेको उतर बीचमें रहता है और आंतडें सब उपरहीके पसवाड़ेमें रहजाती हैं इसकेऊपरके पसवाड़ेमें आघात करनेसे आध्मानिक शब्दहोता है यह मैंने अभिघातपरीक्षा संक्षेप से कही है ॥

भोजनादुदरस्योर्ध्वगौरवंजायतेमहत् ।

शिरोरुग्वक्त्रैरस्यहृदाहोवमथुस्तथा ॥ १३ ॥

रसनामलसंपूर्णाक्लान्तिर्हृदयवेपनम् ।

निद्रानाशोग्रिमन्द्येस्याज्जाडयंदुःस्वप्नदर्शनम् ॥ १४ ॥

अर्थ—आमाशयकी विकृति से मंदाग्रिका रोग होता है भोजनके उप-रांत पेट अत्यंत भारीहो मस्तकपीडा-मुखमें विरसता-हृदयमें दाह-

वमन-जीभपरमैलका जमना-क्लांति-हृदयका फडकना-निद्रानाश-तथा निद्रा आवेतो घुरे २ स्वप्न दीखे-और इसमंदाभि रोगमें प्राणी जकड़ा साहो जाता है ये सबलक्षण होते हैं ॥

आमाशयव्रणेनृणांजायतेपरिकर्तिका ।

वांत्यातदाशयेश्चन्येवेदनासाप्रशाम्यति ॥ १५ ॥

भोजनाद्वांतिरेवस्याच्छेप्सशोणितसंयुता ।

रुधिरस्यापिवमनंरक्तपित्तस्यवाभवेत् ॥ १६ ॥

पुरीषैर्मलिनंरक्तंनिर्यायाद्बद्धतोऽपिच ।

प्रायशोयोपितामेवव्याधिःस्यादतुरोधतः ॥ १७ ॥

अर्थ-आमाशयमें घावहोने से उसमें कतरने कीसी पीड़ा होवे, जब वमन होनेसे आमाशय खाली होजावे तब पीड़ाभी शांति होजावे । तथा भोजनके पश्चात् कफ अथवा रुधिर मिली वमन ( रद्द ) वा केवल रुधिरकी रद्द अथवा रक्तपित्तकी वमनहो एवं मल ( विष्टाके ) साथ रुधिर निकले ये संपूर्ण लक्षण होते हैं । यह व्याधि प्रायःस्त्रियोंके होतीहै स्त्रियोंके ऋतुके न होनेसे यह रोग होताहै ॥

पशुकाधोयकृत्प्लीहानाविकृत्योऽनुभूयते ।

दक्षिणाच्चूचुकात्रिम्नेद्व्यंगुलाद्यकृतःस्थितिः ॥ १८ ॥

अतीत्यैकांगुलिस्थानंपशुकाभ्यश्चनिश्चितम् ।

उरःप्राचीरसंकोचाद्विवृद्ध्याहृदयस्यच ॥ १९ ॥

वायुनाफुफ्फुसस्फीत्यक्षोभणैरपरैरपि ।

यकृत्स्थानात्प्रच्यवतेनतद्वृद्धंविधारयेत् ॥ २० ॥

अर्थ-रोगरहित प्राणिके यकृत ( कलेजा ) प्लीहा ( तिल्ली ) पसलीके नीचे टटोरनेसे भतीत नहीं होती । दक्षिण स्तनके दो अंगुल नीचेसे पसलीके नीचे एक अंगुलपर्यंत स्थानमें व्याप्त यकृत को जानना । वक्षस्थल प्राचीका संकोच हृदयकी संवृद्धि-वायुके फुफ्फुसका परिपूर्ण होना-तथा अन्य २ क्षोभकारक कारण द्वारा यकृत हटकर नीचेको आजातीहै इसप्रकार नीचेको आई हुई यकृतको बड़ीहुई कहनेसे भ्रमनहीं होता ॥

दक्षिणेशकलेप्रायोविद्रिधिर्यकृतोभवेत् ।

हिक्काश्वासोवामिःकासोजायतेतीव्रवेदना ॥ २१ ॥

नशक्तिःशयनेतस्यसव्येपार्श्वेभवेच्चतु ।

इतिप्रोक्तंसमासेनयकृद्विद्रधि लक्षणम् ॥ २२ ॥

अर्थ-यकृतमें विद्रधि रोगहोनेसे हिचकी-श्वास-वमन-खांसी-इत्यादिसे तीव्रपीडा हो तथारोगीसे चाँद करवट नहीं सोया जावि इत्यादि संपूर्ण लक्षण होते हैं इसप्रकार यकृत विद्रधि के लक्षण भेने कहे हैं यकृतके प्रायःदहने खंडमें विद्रधि होती है ॥

अनुभूयेतहस्तेनप्लीहाचयदिकस्यचित्

तदातंव्याधितंविद्यात्तेनरक्तक्षयोभवेत् ॥ २३ ॥

अर्थ-प्लीहा ( तिल्ली ) यदि हाथोसे प्रतीत होने लगे अर्थात् टटोरनेसे मालूम होनेलगे तो जानेकि इसके रोग है प्लीहाके बढनेसे मनुष्यका रुधिर क्षीण होता है ॥

पश्चान्मलाशयाद्वृक्कौवर्त्ततेचोदरान्तरे ।

तत्ररक्तावरोधेनमूत्रंस्तोकृत्यजेन्नरः ॥ २४ ॥

मूत्रंसशोणितंवापिवेदनातत्रदारुणा ।

तथास्पृशसिहत्वंचवृक्कविकृतिलक्षणम् ॥ २५ ॥

अर्थ-मलाशयको पिछाडी दोवृक्क है उसवृक्कमें रुधिर रुकनेसे मूत्र थोडा उतरता है अथवा रुधिरयुक्त मूत्रउतरे तथा उसमें दारुणपीडाहो इसपीडाके कारण स्थानके इस छूनेमें रोग न सहाजाय । ये वृक्कमें विकार होनेसे लक्षण होते है ॥

विकृतेतिलकेनृणामलंमेदोयुतंभवेत् ।

अग्निमाद्यंभवेच्चापिदौर्बल्यंचाप्यजीर्णता ॥ २६ ॥

अंत्रावरोधाद्भ्रान्तिःस्यादवसादश्चेतसः ।

विट्संगो वेदनात्युग्रा पुरीषवमनं तथा ॥ २७ ॥

अर्थ-तिलक ( कुम ) की विकृति होनेसे समेदमल-मंदामि-दुर्बलता और अजीर्ण रोग होते है तथा अंत्रावरोधरोग-वमन-चित्तकी असावधानता कोष्ठ रोग उग्रपीडा और मलकीरद-ये सब लक्षण होते है ॥

रोगस्थानादधश्चात्रिशून्यतोपरिपूर्णता ।

रोगेणानेनचाक्रांतोनरः प्रायस्त्यजत्यमून् ॥ २८ ॥

मलमूत्राशयोदुष्टैर्मेहानाहादिकान्बहून् ।

**व्याधीन्जनयतोदुष्टाग्रहणीवह्निमन्दताम् ॥**

अर्थ-रोगस्थानके नीचे अंत्राशयमें शुन्यता और ऊपरके भागमें पूर्णता प्रतीत होती है । इससे व्याप्त रोगीके जीनेकी आशा नकरे । इसजगे संक्षेपसे उदरयंत्र आदिकी विकृति लक्षण लिखते हैं । मलमूत्राशयोंकी दुष्टी होना अनेक प्रमेहअफराआदि रोगोंको-तथा संग्रहणी और मंदामि आदि दुष्टरोगोंको प्रगट करे है ॥

**इत्यौदराणांयंत्राणांविक्रियायांसमासतः**

**यान्युद्भवन्तिचिन्हानिमयाप्रोक्तानिवत्सकाः ॥ २९ ॥**

**प्रतिरोगंप्रवक्ष्यामिकृत्स्नश्वपराणिच ।**

**तानिसर्वाणिवेद्यानिभिषजासिद्धिमिच्छता ॥ ३० ॥**

अर्थ-ये उदरयंत्रोंकी विकृतिसे होनेवाले जो चिह्न हैं वो मैंने हेवत्स ! संक्षेपसे तेरे आगे कहे हैं । बाकी संपूर्ण लक्षण रोग २ के प्रति पृथक् २ कहूंगा उनको सिद्धिकी इच्छाकरनेवाले वैद्यकी अवश्य जानना चाहिये ॥  
इति अठारस्यरोगोंकी परीक्षा ।

**बालकोंके रोगकी परीक्षा ।**

**नकिंचिदस्तिकर्मदुरूहतंयथाशिशूनांरोगपरीक्षणम्**

**परंधैर्यशीलगांभीर्यशान्त्यादिभिस्तेषांप्रियदर्शनप्रदा**

**नाभ्यां तथान्यैस्तोपणकर्मभिश्चतदपिसुकरंभवति ॥**

अर्थ-बालकके रोगपरीक्षाके समान और कोई विषय कठिन नहीं है । अतएव वैद्य धीरज-शीलता और गांभीर्यके आश्रयसे सांत्वनवादद्वारा [पुचकारी देकर] तथा बालकको प्रिय खिलौने आदि दिखाके वा देकर एवं अन्य प्रकारों करके बालकको फुसलाकर रोगोंकी परीक्षाकर सकता है [ अन्यथा नहीं ] ॥

**बालाद्यात्मवेदनानिवेदनेसर्वथैवासमर्थारोदनमात्रस-**

**हाया आत्मशुभाशुभबुद्धिपरिहीनाः सर्वथान्येषुसम-**

**पितप्राणाभृशंपरावलम्बिनः परदथाभाजनानि ॥**

अर्थ-बालक अपने दुःखके कहनेमें सर्वथा असमर्थ होता है केवल रुदन मात्र सहाय अर्थात् रुदनके सिवाय वो कुछ नहीं करसکتा तथा

आपकेलिये हित और अहित बुद्धि करके रहित होता है एवं सर्वथा औरोंके हाथमें समर्पित प्राण होते हैं अतएव इनके समान दयाका पात्र दूसरा नहीं है ॥

जगतिनतस्मात्कश्चिदपरः पापीयान्नयः सर्वथासर्व  
प्रयत्नेनसमाहितचेताः सम्यग्विचार्यतान्भेषजैरुप  
पादयेत् । भिषजासर्वेवातुराअविशेषेणपुत्रवद्रष्ट-  
व्याविशेषतःशिशुः।तेनात्यर्थमवधानपरेणावश्यंभा  
वयितव्यम् । यथातेनतस्माद्भीतिमापादयन् ॥

अर्थ—उस प्राणीके समान दूसरा घोर पापी कोई नहीं है जो सर्वथा सर्व यत्न करके सावधानीके साथ विचार पूर्वक बालकोंकी चिकित्सा नहीं करता । वैद्यको उचित है कि संपूर्ण रोगियोंको प्रायः पुत्रके समान देखें [ जैसे अपने पुत्रकोकि चिन्मात्रभी पीडा युक्त नहीं देख सके इसी प्रकार सब रोगियोंको देखे ] इनमेंभी बालकोंके ऊपर परम कृपादृष्टिसे देखे । वैद्यको इस प्रकार सावधान होना अत्यंत आवश्यक कहै कि जिस प्रकार बालक डरपै नहीं ॥

भिषजापरीक्षार्थं गृहं प्रविश्य प्रथमं शिशोर्धात्रीतः एता  
न्यवश्यं वेद्यानि । यथा । वर्तमानरोगोत्पत्तेः प्राकृत  
स्य देहिकोवस्थाविशेषः अतीता पूर्व रूप प्रकृतिर्जात  
रोगसंपृक्ताविविधाश्च पराविकृतयः शिशुः पुमान् स्त्री  
वात्यक्तस्तनोवानवासयदाहारप्रियस्तस्य वयः परिमा  
णं मलमूत्रादीनां प्रकृतिरित्याद्यानि ।

अर्थ—वैद्य बालकको देखके उसके घरमें प्राप्त होतेही उसकी धाय [ अथवा मातासे ] इतनी वार्त्ता प्रथमही अवश्य जान लेवे । जैसे वर्तमान रोगके उत्पन्न होनेके पूर्व उसकी कैसी दशा थी । किस प्रकार पूर्व रूप लक्षण हुए थे । उपस्थित रोग संयुक्त होनेके पीछे विकृति स्वरूपका जानना एवं बालक पुरुष है या स्त्री है स्तनको पीता है या नहीं पीवे । यदि बाल भोजन प्रिय होवे तो उसकी अवस्थाका परिमाण पूछना तथा मल मूत्रादिकी प्रकृति इत्यादि ॥

शिशुर्यदि स्वपितिनतं प्रबोधयेत्सुप्तस्यैव तस्या कृत्यंग  
संस्थितिप्रभृतीनि विशेषेणैक्षणीयानि । स उत्तानशायी



पार्श्वशायी वा विस्तीर्णजंघःकुंचितजंघोवाइत्यादि-  
भिस्तस्यांगसंस्थितिविशेषैर्व्याधेःकृच्छ्रत्वमकृच्छ्रत्वं  
वावगम्येत ।

अर्थ—यदि बालक सोता होवे तो उसको जगाने नहीं सोते हीकी  
आकृति अंगोंकी स्थिति आदिकी परीक्षा करलेवे बालक सीधा सोताहै  
या कर्बदसे सोताहै पैरपसारके या पैरोंको सिकोडिकर सोताहै इत्यादि  
उसको अंगसंस्थिती विशेष करके लक्षकरे । इत्यादि संपूर्ण अवस्था  
विशेषों करके कृच्छ्रसाध्य और सुखसाध्य व्याधि जानना ॥

ज्वरेसान्निपातिकेफुफ्फुसेच व्यथाकुलेगण्डौलोहितौ  
स्याताम् । कूजनात्सहसानिद्राछेदादकस्मादाक्षेपाद् ।  
विक्रोशनाद्धस्तग्रहाच्चतस्यमस्तिष्कविकृतिरनुमेया ।  
आमाशयेर्धौग्रतामापन्नेऽकस्मान्मुखविवरमाक्षिप्य  
ते । नयनयोरसम्यङ्निमीलनान्मस्तिष्कविक्रियारोग  
स्यकृच्छ्रसाध्यत्वंचावगम्यम् ।

अर्थ—संनिपातज्वरमें—और फुफ्फुसकी पीडामें बालकके गंड दोनो  
लालरंगके होते है । कुंजना सदसा निद्रा जाती रहना अकस्मात् आक्षे-  
पकीक मारना और हाथोंका जकड़ना ये संपूर्ण लक्षण मस्तिष्क विकार-  
के सूचक है अर्थात् इन लक्षणोंसे बालकके मस्तिष्क संबंधी रोग जानना  
आमाशयमें उपद्रव होनेसे अकस्मात् मुखमिच जाताहै । दोनों नेत्रोंके  
आधे आधे मूंदनेसे उस बालकके पीडाकी आधिक्यता तथा मस्तिष्क  
विकृति ज्ञापक है ॥

॥ इति बालरोग परीक्षाविधिः समाप्ता ॥

## अथवस्त्रपरीक्षा ।

ज्वरव्याप्तशरीरस्य रुष्मा भवति दारुणः ।

सरुष्मावहिरामोतिवस्त्रेतिष्ठतिनिश्चितम् ॥

अर्थ—ज्वरयुक्त देहमें दारुणगरमी रहती है वह गरमी देहसे निकल  
वस्त्रमें ठहरतीहै अतएव इस प्राणीके वस्त्रोंकी परीक्षा करनी चाहिये ॥

वातपित्तकफानांचद्वित्रिदोषस्यलक्षणम् ।

**परीक्षेज्वरिणोवस्त्रं वैद्यो वै शुद्धवंशजः ॥**

अर्थ-ज्वरवाले प्राणीके घात-पित्त कफ द्विदोष तथा त्रिदोषके लक्षण शुद्ध वंशोत्पन्नवैद्य वस्त्रद्वारा परीक्षाकरे सो इसप्रकार ॥

**वातेवस्त्रं सौरभं घ्राणतः स्यात्**

**पौष्पपैत्ते मत्स्यतुल्यं विगंधि ॥**

**पाकास्थो गण्डलेष्मणः संप्रकोपात्**

**द्वंद्वैर्द्रोत्युल्वणैर्येकता च ॥**

अर्थ-वादीसे रोगीके वस्त्रोंमें फूलकीसी गंध आती है पित्तसे मछली कीसी और कफके कोपसे पके हुए फोड़े किसी और द्विदोष तथा त्रिदोषके लक्षणमिलनेसे त्रिदोषके लक्षण जानने ॥

**यदा वस्त्रे भवेद्गंधः सटिता जालकदर्दमः ।**

**तदा दीर्घो भवेद्गोम्रियतेश्वरगंधकः ॥**

अर्थ-जिसके वस्त्रोंमें सड़ी हुई जाल और कीचकीसी दुर्गंध आवे उसके बहुत दिनोंका रोग जानना और जिसके वस्त्रोंमें मुरदेकीसी दुर्गंध आवे उसकी मृत्यु हो ॥

इति वस्त्रपरीक्षा ।

**अथ देशाः ।**

**भूमिदेशस्त्रिधाऽनूपोजाङ्गलो मिश्रलक्षणः ॥**

अर्थ-भूमिदेश तीनप्रकारका है एक अनूप दूसरा जांगल और तीसरा मिश्र संज्ञक ( मिलाजुला ) है तहाँ प्रथम अनूप देशके लक्षण कहते हैं ॥

अनूपक्षलणम् ।

**नदीपल्वलशैलाढ्यः फुल्लोत्पलकुलैर्युतः ॥**

**हंससारसकारण्डचक्रवाकादिसेवितः ॥**

**शशवाराहमहिपरुरुरोहिकुलाकुलः ॥**

**प्रभूतद्रुमपुष्पाढ्यो नीलसस्यफलान्वितः ॥**

**अनेकशालिकेदारकदलीक्षुविभूषितः ॥**

अर्थ-जिसमें नदीनाले-तलैया-पर्वत-फूले हुए कमल-हंस-सारस

चवका आदि पक्षी शशा-सूकर-भैसा-रुरु ( हरिणकाभेद ) और रोहिंस  
इत्यादि चतुष्पद समूहयुक्त-तथा अत्यंत वृक्ष-फूलकेवृक्ष-नीलवर्णपुष्प  
हरी २ घास और फलयुक्तहो तथा अनेक प्रकारके चावल खेती केलाके  
वृक्ष और गन्ना ऐसे अनेक प्रकार धान्यादिकों करके जो देश युक्त हो  
उसको अनूपदेश कहते हैं जैसे कश्मीर काबुल तिब्बत, आदिदेश हैं.

अनूपदेशकेभेद ।

तच्चोक्तकृत्स्ननिजलक्षणधार्मिभूरिच्छांयावृतांतरवहद्रुवा  
रिमुख्यम् । ईपत्प्रकाशसलिलंयदिमध्यमतदेतच्चनातिवहु  
लांबुभवेत्कर्नायः ॥

अर्थ-जिसदेशमें अनूपदेशके उक्तलक्षणसमग्र पाये जावे और अत्यंत  
छाया युक्तहो तथा अत्यंत जलयुक्तहों वो उत्तम अनूपदेश जानना ।  
और जिसमें थोड़ी छाया और थोड़ा जलहो तथा उक्तलक्षण कुछ २  
मिलते हों वहमध्यम अनूपदेश है और जिसमें बहुतही थोड़ा जलहो  
उसको कनिष्ठ अनूपदेश जानना ॥

जांगललक्षणम् ।

आकाशशुभ्रवच्चश्चस्वल्पपानीयपादपः ।

शमीकरारवित्वार्कपीलूकैर्धुसंकुलः ॥

हरिणैर्गर्क्षपृषतगोकर्णस्वरसंकुलः

सुस्वादुफलवान्देशोवातलो जांगलः स्मृतः ॥

अर्थ-जोदेश आकाशके समान शुभ्र और ऊंचाहो, थोड़े जलाशय  
( कूआवावडीआदि ) और थोड़े जहाँ तहाँ वृक्षहों तथा छोकरा-करील  
बेल आक पीलू-और घेर इत्यादि वृक्षजहाँ हों तथा हरिण-एण ( काला  
हरिण ) रीछ चीता-रोज-और गधा ए अधिकहों, तथा जिसदेशमें स्वादु  
फलप्रगट होते हों वह वातकारक जांगल देशजानना ॥

यत्रानूपविपर्ययस्तनुतृणास्तीर्णाधराधूसरा ।

मुद्गव्रीहियवादिधान्यफलदा तीव्रोष्णवत्युत्तमा ॥

प्रायःपित्तविवृद्धिरुद्धेतवलाः स्युर्नीरुजःप्राणिनो ।

गावोजाश्च पयः क्षरतिबहुतत्कूपेजलंजांगलम् ॥

अर्थ—अब ग्रंथान्तर से जांगल देशके लक्षण कहते हैं कि जिसमें अनूप देशसे विपरीत लक्षण मिलते हों तथा थोड़े तिनकाओंसे पृथ्वी आच्छादित हो और घुसरे रंगकी हो तथा मूंग-मोठ-मक्का यवआदि धान्य अत्यंत होते हों, तीव्र गरमी करके युक्त और पित्तके बढ़ानेवाली एवं जिसमें बलवान् और रजोगुण रहित प्राणी होते हों और गौओंके थनोमें दूध बहुत हो तथा कूआसे जलप्रायः प्राप्त हो उसे जांगल देश कहते हैं जैसे मारवाडके देश (आफ्रिकाकामुल्क और) अरब आदिकी विलायत जाननी

एतच्चमुख्यमुदितंस्वगुणैःसमग्रमल्पाल्पभूरुहयुतंयदिमध्य  
मंतत् । तच्चापिकूपखननेसुलभांबुयत्तज्ज्ञेयंकनीयइतिजा  
गलकंत्रिरूपम्

अर्थ—जिस जांगल देशमें सर्व लक्षण मिलतेहों वह उत्तम है । और जिसमें बहुत थोड़े वृक्ष और थोड़े दूरपर पानी मिले तथा जांगल देशके कुछ लक्षण मिलते हों और कुछ न मिलतेहों वह जांगलदेश मध्यमहै । और जिसमें कूआखोदनेसे पासही जल निकल आवे वह कनिष्ठ जांगल देशहै ॥

साधारणलक्षणम् ।

संसृष्टलक्षणोपेतो देशः साधारणोमतः

समाः साधारणे यस्माच्छीतवर्षोष्णमारुताः ॥

समतातेनदोषाणांतस्मात्साधारणोवरः

अर्थ—जो अनूपदेश और जांगलदेशके मिले हुए लक्षण युक्तहों उसे साधारण देशकहतेहैं इससाधारणदेशमें शीत-वर्षा-गरमी-और पवन समान रहती है इसीसे दोष भी समान रहते हैं अतएव यह साधारण देश उत्तमकहाहै। साधारणदेश जैसे मथुरा आगरा दहली काशी पटना आदिजानने ॥

लक्ष्मोन्मीलितियत्रकिंचिदुभयोस्तज्जांगलानूपयोर्गोधूमोल्बण-  
यावनालविलसन्मापादिधान्योद्भवम् । नानावर्णमशेषजंतुसुखदं-  
देशंबुधामध्यमंदोषोद्धूतिविकोपशांतिसहितंसाधारणंतंविदुः ॥

अर्थ—जिसदेशमें जांगल और अनूप ए दोनोदेशोंके लक्षणमिलतेहों और गेहू जो उड़द आदि धान्य प्रगट होतेहों-तथा अनेक वर्णके पशुपक्षी आदि सबको सुखकारी उसको पंडितजन मध्यमदेशकहते हैं इसमें

विकारोंका कोप और शांति स्वयं होती रहती है इसीको साधारण देशजानना चाहिये ॥

**तच्च साधारणं द्वेधाऽनूपजांगलयोः परम् ।**

**यत्रयत्रगुणाधिक्यंतत्रतस्यगुणंभजेत् ॥**

अर्थ—इससाधारणकेभी दो भेद हैं एक अनूप साधारण दूसरा जांगल साधारण इनदोनोंमें जिस २ देशके अधिक गुणमिलतेहों उसको उसी नामसे विल्यात जानना ॥

**सुश्रुतात्—उचितेवर्तमानस्यनास्तिदुर्देशजंभयम् ।**

**आहारस्वप्नचेष्टादौतद्देशस्यकृतेसति ॥**

अर्थ—जो प्राणी उचित आहार विहारकरताहै—उसको दुष्टदेशसे कुछ भयनही है, अतएव जिसदेशमें रहे उसके अनुसार आहार-निद्रा-और विहारका सेवन करना चाहिये यह सुश्रुतमें लिखाहै, ॥

**वृद्धवाग्भटात्—यस्यदेशस्ययोजंतुस्तज्जंतस्यौषधंहितम् ।**

**देशादन्यत्रवसतस्तत्तुल्यगुणमौषधम् ॥**

अर्थ—वृद्धवाग्भट कहते हैं कि जिसदेशका जो प्राणीहै उसको उसी देशकी प्रगटहुई औषध हितकरी होती है और अपने देशकोत्यागके जो अन्यदेशमें रहते हैं उसकी उसदेशके तुल्यगुणकारी औषधदेवे ॥

**स्वदेशेनिचितादोषान्यस्मिन्कोषमागताः ।**

**बलवतस्तथानस्युर्जलजाः स्थलजास्तथा ॥**

अर्थ—जो अपने देशमें संचित दोषहैं, वो दूसरे देशमें जायकर यदि कुपितहों वो बली नहीं होते उसीप्रकार जलजदेशके स्थलमें और स्थल-जदेशके जलमें बलहीन होते हैं ॥

**अथ मानपरिभाषा ।**

**अव्यक्तानुक्तलेशोक्तसंदिग्धार्थप्रकाशिकाः ।**

**परिभाषाःप्रकथ्यन्तेदीपभूताःसुनिश्चिताः ॥**

अर्थ—शास्त्रकी विधि सर्वत्र स्पष्टनहीं लिखी बहुतसी जगें संदेहयुक्तहै उसीउसी स्थलमें अर्थजानना दुष्करहै वह इस परिभाषाध्यायमें समग्र सांकेतिक अर्थ प्रकाशकरते हैं ॥

प्रथम मानसूत्र लिखतेहैं ।

**नमानेनविनायुक्तिर्द्रव्याणांज्ञायतेक्वचित् ।**

अतःप्रयोगकार्यार्थमानमत्रोच्यतेमया ॥

अर्थ—विना मान ( परिमाणज्ञान ) के सर्व द्रव्यप्रयोगकी युक्ति नहीं हो सकती इसी हेतुसे प्रथम हम परिमाणज्ञानको प्रयोगकार्यके अर्थ लिखते हैं । मानपरिभाषा अनेक देशमें अनेकप्रकारकी हैं और मानभेदभी भिन्नभिन्न हैं इससे हम प्रथम मागेधपरिभाषा जो मध्येदेशमें प्राचीन आचार्योंने बाँधी है उसे लिखते हैं ॥

त्रसरेणुबुधैःप्रोक्तस्त्रिंशद्भिःपरमाणुभिः ।

त्रसरेणोस्तुपर्यायोनाम्नावंशीनिगद्यते ॥

अर्थ—तीस परमाणुका १ त्रसरेणु वैद्योंने कहा है वंशी इस त्रसरेणुका पर्यायवाचक नाम है अर्थात् उसीत्रसरेणुको वंशीभी कहते हैं ॥

परमाणुकलक्षण ।

जालान्तरगतेभानौयत्सूक्ष्ममृद्व्यतेरजः ।

तस्यत्रिंशत्तमोभागः परमाणुःसमुच्यते ॥

अर्थ—अब परमाणुके लक्षण कहते हैं कि, घरमें जाली झरोखा आदिमें सूर्यकी किरण पड़ती है उनकिरणोंमें जो बहुत सूक्ष्म धूलके किनके उड़ते दीखते हैं उस किनकेका तीसवाँ जो भाग है उसको परमाणु ऐसा कहतेहैं॥

वङ्ग्यादिकोंकेपरिमाण ।

पङ्कशीभिर्मरीचिःस्यात्ताभिःपङ्क्तिस्तुराजिका ।

तिसृभीराजिकाभिश्चसर्पपः प्रोच्यतेबुधैः ।

यवोष्टसर्पपैःप्रोक्तोगुआस्यात्तच्चतुष्टयम् ।

अर्थ—अब फिर उसी त्रसरेणुसे प्रमाण कहते हैं कि ५ वंशी (त्रसरेणु) की १ मरीची होती है । छःमरीची की १ राई, ३ राई की १ सरसों, आठ सरसोंका १ यव ( जौ ), चार जौ की १ रत्ती ( धूँषची ) होती हैं ॥

मासेकापरिमाण ।

पङ्क्तिस्तुरक्तिकाभिःस्यान्मापकोहेमधान्यकौ ।

अर्थ—छःरत्तीका एक मासा इस मासेको हेम और धान्यकभी कहतेहैं॥

शाणका और कोलकापरिमाण ।

मापैश्चतुर्भिःशाणःस्याद्धरणःसनिगद्यते ।

१ महुतसे इसपरिभाषाको कलिंगपरिभाषा कहतेहैं और कलिंगको मागेधपरिभाषा कहतेहैं.

टंकःसएवकथितस्तद्वयंकोलउच्यते ॥

क्षुद्रभोवटकश्चैवद्रंक्षणःसनिगद्यते ।

अर्थ—चारमासेका १ शाण होता है, इसशाणको धरण और टंकभी कहते हैं, दोशाणका १ कोल कहाता है इसे क्षुद्रभ, वटक और द्रंक्षणभी कहते हैं [ कोलनाम भाषामे ढेरका है अतएव तोलमें ढेरके प्रमाण होने से इसकी कोल संज्ञा वैद्योने कही है ]

कर्षकापरिमाण ।

कोलद्वयंतुकर्षःस्यात्संप्रोक्तः पाणिमानिका ।

अक्षः पित्रुः पाणितलं किंचित्पाणिश्चतिदुकम् ॥

विडालपदकंचैवतथापोडशिकामता ।

करमध्यहंसपदंसुवर्णकवलग्रहम् ॥

उदुंबरचपर्यायैःकर्ष एवनिगद्यते ॥

अर्थ—दोकोलका १ कर्षहोताहै इसकर्षको पाणिमानिक-अक्ष-पित्रु-पाणितल-किंचित्पाणि-तिदुक-विडालपदक-पोडशिका-करमध्य-हंसपद-सुवर्ण-कवलग्रह-और उदुंबर भी कहते हैं अर्थात् ये तेरह नामभी उसी कर्षके हैं । कर्षको लौकिकमे तोला कहते हैं । तोलेभर वस्तुका प्रमाण गूलरके समान होताहै इसीसे इसकी उदुंबरभी संज्ञाकही है ।

अर्द्धपल तथा पलकापरिमाण ।

स्यात्कर्पाभ्यामर्धपलंशुक्तिरष्टमिकातथा ।

शुक्तिभ्यांचपलंज्ञेयमुष्टिराम्रचतुर्थिका

प्रकुंचः पोडशीविल्वंपलमेवात्रकीर्त्यते ॥

अर्थ—दोकर्षका १ अर्धपल इसको शुक्ति ( सीप ) और अष्टमिकाभी कहतेहैं दोशुक्तिका १ पलहोताहै उसको मुष्टी ( मुठ्ठीभर ) आम्र चतुर्थिका प्रकुंच-शोडशी और विल्वभी कहते हैं [ आम और वेलकी बराबर वस्तुका परिमाण होनेसे पलकी आम्र और विल्वसंज्ञाहै ]

प्रसृतिसे आदिलेके मानिकापर्यंतका परिमाण ।

पलाभ्यांप्रसृतिर्ज्ञेयाप्रसृतश्चनिगद्यते ॥

प्रसृतिभ्यामंजलिःस्यात्कुडबोर्धशरावकः ॥

अष्टमानंचसंज्ञेयंकुडवाभ्यांचमानिका ॥

शरावोष्टपलंतद्वज्ज्ञेयमत्रविचक्षणैः ॥

अर्थ-दोपलका १ प्रसूति इसे प्रसूतभी कहते हैं-दोप्रसूतिकी १ अंजली इसको कुडव अर्ध शरावक और अष्टमानभी कहते हैं. [ कुडवको लौकिकमें पावभर कहते हैं ] दो कुडवकी मानिका होती है उसे शराव, और अष्टपल भी कहते हैं. [ मानिकाकी लौकिकमें आधसेर संज्ञा है शरावके भरजानेसे इस तोलका नाम शराव है ]

प्रस्थका और आढककापरिमाण ।

शरावाभ्यांभवेत्प्रस्थश्चतुःप्रस्थैस्तथाढकम् ।

भाजनंकंसपात्रंचचतुःपष्टिपलंचतत् ॥

अर्थ-दोशरावका १ प्रस्थ अर्थात् सेर होता है और चार प्रस्थका १ आढक, आढकको भाजन और कंसपात्रभी कहते हैं इसके ६४ पल और २५६ तोले होते हैं.

द्रोणसे लेकर द्रोणीपर्यंतपरिमाण ।

चतुर्भिराढकैर्द्रोणःकलशोनल्वणोन्मनौ ॥

उन्मानश्चघटोराशिर्द्रोणपर्यायसंज्ञकः ॥

द्रोणाभ्यांशूर्पकुंभौचचतुःपष्टिशरावकाः ॥

शूर्पाभ्यांचभवेद्द्रोणीवाहोगोणीचसास्मृता ॥

अर्थ-चार आढकका १ द्रोणहोता है उसको कलश नल्वण उन्मान घट और राशि कहते हैं ( एकघडेभर वस्तुकी आढकसंज्ञा है ) दो द्रोणका एक शूर्प और कुंभ होता है. उस शूर्पके ६४शराव अर्थात् ५१२ पल और १०४८तोल होते हैं दोशूर्पकी १ द्रोणी उसको गोणीभी कहते हैं ॥

खारीकापरिमाण ।

द्रोणीचतुष्टयंखारीकथितासूक्ष्मवृद्धिभिः ॥

चतुःसहस्रपालिकापण्णवत्यधिकाचसा ॥

अर्थ-चार द्रोणकी १ खारी होती है उस खारीके

१६३८४ तोले होते हैं ॥

४०९ पल तथा



टंकःसएवकथितस्तद्वयंकोलउच्यते ॥

क्षुद्रभोवटकश्चैवद्रक्षणःसनिगद्यते ।

अर्थ—चारमासेका १ शाण होता है, इसशाणको धरण और टंकभी कहते हैं, दोशाणका १ कोल कहाता है इसे क्षुद्रभ, वटक और द्रक्षणभी कहते हैं [ कोलनाम भापामें बेरका है अतएव तोलमें बेरके प्रमाण होने से इसकी कोल संज्ञा वैद्योंने कही है ]

कर्षकापरिमाण ।

कोलद्वयंतुकर्षःस्यात्संग्रोतः पाणिमानिका ।

अक्षः पिबुः पाणितलं किंचित्पाणिश्चैतिदुकम् ॥

विडालपदकंचैव तथा षोडशिकामृता ।

करमध्यहंसपदंसुवर्णकवलग्रहम् ॥

उदुंबरंचपर्यायैः कर्ष एव निगद्यते ॥

अर्थ—दोकोलका १ कर्षहोताहै इसकर्षको पाणिमानिक-अक्ष-पिबु-पाणितल-किंचित्पाणि-तिदुक-विडालपदक-षोडशिका-करमध्य-हंसपद-सुवर्ण-कवलग्रह-और उदुंबर भी कहते हैं अर्थात् ये तेरह नामभी उसी कर्षके हैं। कर्षको लौकिकमें तोला कहते हैं। तोलेभर वस्तुका प्रमाण गूलरके समान होताहै इसीसे इसकी उदुंबरभी संज्ञाकही है।

अर्धपल तथा पलकापरिमाण ।

स्यात्कर्पाभ्यामर्धपलं शुक्तिरष्टमिका तथा ।

शुक्तिभ्यांच पलं ज्ञेयं मुष्टिराग्नचतुर्थिका

प्रकुंचः षोडशी विल्वं पलमेवात्र कीर्त्यते ॥

अर्थ—दोकर्षका १ अर्धपल इसकी शुक्ति ( सीप ) और अष्टमिकाभी कहतेहैं दोशुक्तिका १ पलहोताहै उसको मुष्टी ( मुठ्ठीभर ) आग्न चतुर्थिका-प्रकुंच-षोडशी और विल्वभी कहते हैं [ आम और वेलकी बराबर वस्तुका परिमाण होनेसे पलकी आग्न और विल्वसंज्ञाहै ]

प्रसृतिसे आदिलेके मानिकापर्यंतका परिमाण ।

पलाभ्यां प्रसृतिज्ञेया प्रसृतश्च निगद्यते ॥

प्रसृतिभ्यामंजलिः स्यात्कुडवोर्धशरावकः ॥

होता है उसको कहते हैं-चारह धान्यमापक कर्क करे हुए ६४ मासोंका जो सुश्रुतने पल कहा है वो रत्तियोंके तोलनेसे ५ रत्तीका मापा होकर चरकके मतसे आधा पल होवेगा ॥

**चरकेदशरत्तिकैः ॥**

**मापैः पलं चतुःपष्ट्या यद्भवेत्तत्थेरितम् ॥**

अर्थ-चरकके मतसे दश रत्तीका मापा होता है और ऐसे ६४ मासेका पल होता है अर्थात् ३२ मापकलाय कर्क करे हुए ४८ मासेका जो पल-मान है वो दशरत्तीका मासा मानकर ६४ मासेसे तोले तो पूर्वोक्त मान होता है क्यों कि २४ मापकलाय ( मटर ) दशरत्तीके बराबर होती है ॥

तो अब दशरत्तीका मासा मानकर ऐसे ६४ मासोंको २४ से गुण दिया तो १५३६ मासकलाय होगये ॥

इसी प्रकार चरकके मतसेभी ३२ मापकलायका मापा मानकर ऐसे ४८ मासोंको ३२ से गुण दिया तो १५३६ मापकलाय होते हैं ॥

तो अब दशरत्तीके मासेवाले पलको ३२ मापकलाय प्रमाण मासेवाले पलके साथ मिलान करनेसे समानता मत्पक्ष मिलती है सुश्रुतके मतसे चारह मापकलाय वाले ६४ मासेका पल होता है ॥

उनको ६४ मासोंको १२ मापकलायसे गुणा तो ७६८ ये चरकके मतसे आधामान सुश्रुतका हुआ ॥

**तस्मात्पलं चतुःपष्ट्यामापकैर्दशरत्तिकैः ।**

**चरकानुमतं वैद्यैश्चिकित्सासूपयुज्यते ॥**

अर्थ-अब चरक सुश्रुत दोनोंके मानमें चरककाही मान व्यवहारो-पयोगी है यह कहते हैं-पूर्वोक्त कारणकर्क दशरत्ती मासेके हिसाबसे ६४ मासेकाही पल चरकके मतका वैद्योंको चिकित्सामें लेना चाहिये सुश्रुतका नहीं ॥

अब हमने लौकिकोदाहरणमें १ पलकी छटकी मानी है तो इसकोभी विचारकर देखा जावे कुछ थोड़ाही फरक पड़ेगा जैसे चरकके मतसे १० रत्ती वाले मासोसे ६४ मासेका पल कहा है यदि चौंसठको दशसे गुणा तो ६४० छः सौ चालीस रत्ती होवेंगी ।

परंतु आजकल अंग्रेजी राज्यमें ८ रत्तीका मासा मानते हैं तो इस हिसाब पांचतोले और पांचमासे की छटकी हुई और हिसाबमें बड़ा फरक पड़ता है ॥

भारका और तुलाकापरिमाण ।

पलानांद्विसहस्रंचभारएकः प्रकीर्तितः ॥

तुलापलशतंज्ञेयासर्वत्रैपविनिश्चयः ॥

अर्थ-दो हजार पलका एकभार होता है और सौ पलकी १ तुला होती है ऐसा निश्चय सर्वत्र जानना ॥

सुखबोधार्थरुक्तमानकोएकश्लोकमेंकहतेहैं ।

माषटंकाक्षविल्वानिकुडवः प्रस्थमाढकम् ॥

राशिगोणीखारिकेतियथोत्तरचतुर्गुणाः ॥

अर्थ-मासेसे लेकर खारी पर्यंत एकसे दूसरी तोल चौगुनी जाननी जैसे चार मासेका १ शाण-चारशाणका १ कर्ष-चारकर्षका १ विल्व चारविल्वकी १ अंजली चार अंजलीका १ प्रस्थ चार प्रस्थका १ आढक चार आढककी १ राशि चार राशिकी १ गोणी चार गोणीकी १ खारी इस प्रकार समझनी चाहिये ॥

परिभाषाकेमतभेदकीऐक्यता ।

द्वात्रिंशन्मापकैर्माषश्चरकस्यतुतैःपलम् ।

अष्टचत्वारिंशतास्यात्

अर्थ-रत्तीके आधीन मापेका मापेके आधीन कर्षपलादिकका ज्ञान है अर्थात् जबतक यह निश्चय न करलेवे कि रत्ती कितने वजनको कहते हैं तथा कितने रत्तीका मापा और कितने मापेका कर्ष होता है तबतक किसी तोलका प्रमाण नहीं होता । अतएव मापकादि मानके स्थापनके अर्थ परिभाषा कहते हैं ३२ धान्य मापकोंका ( मापकलायोंका ) चरकके मतसे मापा होता है और उन्हीं ४८ मासेका चरकके मतसे पल होता है इसी कारण कर्षकी लौकिकमें तोला संज्ञा कही है ॥

सुश्रुतस्यतुमापकः ।

द्वादशभिर्धान्यमाषैश्चतुषट्यातुतैःपलम् ॥

अर्थ-सुश्रुतके मतसे १२ ब्रीही मासक चावलोंका एकमासा होता है और ६४ मासेका पल होता है ॥

एतच्चतुलितंपञ्चरक्तिमापात्मकंपलम् ।

चरकार्द्धपलोन्मानम्

अर्थ-अब चरक सुश्रुत इन दोनोंके मतसे जितनी रत्तियोंका मापा

होता है उसको कहते हैं-बारह धान्यमापक कर्क करे हुए ६४ मासोंका जो सुश्रुतने पल कहा है वो रत्तीयोंके तोलनेसे ५ रत्तीका मापा होकर चरकके मतसे आधा पल होवेगा ॥

**चरकेदशरत्तिकैः ॥**

**मापैः पलं चतुःपष्ट्या यद्भवेत्तत्थेरितम् ॥**

अर्थ-चरकके मतसे दश रत्तीका मापा होता है और ऐसे ६४ मासेका पल होता है अर्थात् ३२ मापकलाय कर्क करे हुए ४८ मासेका जो पल-मान है वो दशरत्तीका मासा मानकर ६४ मासेसे तोले तो पूर्वोक्त मान होता है क्योंकि २४ मापकलाय ( मटर ) दशरत्तीके बराबर होती है ॥

तो अब दशरत्तीका मासा मानकर ऐसे ६४ मासोंको २४ से गुण दिया तो १५३६ मासकलाय होगये ॥

इसी प्रकार चरकके मतसेभी ३२ मापकलायका मापा मानकर ऐसे ४८ मासोंको ३२ से गुण दिया तो १५३६ मापकलाय होते हैं ॥

तो अब दशरत्तीके मासेवाले पलको ३२ मापकलाय प्रमाण मासेवाले पलके साथ मिलान करनेसे समानता प्रत्यक्ष मिलती है सुश्रुतके मतसे बारह मापकलाय वाले ६४ मासेका पल होता है ॥

उनको ६४ मासोंको १२ मापकलायसे गुणा तो ७६८ ये चरकके मतसे आधारमान सुश्रुतका हुआ ॥

**तस्मात्पलं चतुःपष्ट्यामापकैर्दशरत्तिकैः ।**

**चरकानुमतवैद्यैश्चिकित्सासूपयुज्यते ॥**

अर्थ-अब चरक सुश्रुत दोनोंके मानमें चरककाही मान व्यवहारो-पयोगी है यह कहते हैं-पूर्वोक्त कारणकर्क दशरत्ती मासेके हिसाबसे ६४ मासेकाही पल चरकके मतका वैद्योंको चिकित्सामें लेना चाहिये सुश्रुतका नहीं ॥

अब हमने लौकिकोदाहरणमें १ पलकी छटकी मानी है तो इसकोभी विचारकर देखा जावे कुछ थोड़ाही फरक पड़ेगा जैसे चरकके मतसे १० रत्ती वाले मासोसे ६४ मासका पल कहा है यदि चौंसठको दशसे गुणा तो ६४० छः सौ चालीस रत्ती होवेंगी ।

परंतु आजकल अंग्रेजी राज्यमें ८ रत्तीका मासा मानते हैं तो इस हिसाब पांचतोले और पांचमासे की छटकी हुई और हिसाबमें बड़ा फरक पड़ता है ॥

पतली गीली और शुष्क औषध इनके योगकामान् ।

गुंजादिमानमारभ्ययावत्स्यात्कुडवस्थितिः ॥

द्रवाद्रेशुष्कद्रव्याणां तावन्मानं समं मतम् ॥

प्रस्थादिमानमारभ्यद्विगुणं तद्द्रवार्द्रयोः ॥

मानं तथा तुलायास्तु द्विगुणं न क्वचित् स्मृतम् ॥

अर्थ-जलआदि पतले पदार्थ गीली औषध और सूखी औषध ये रस्तीसे लेकर कुडव पर्यंत घरावर लेवें तथा जलआदि पतले पदार्थ और गीली औषध ये लेना होय तो प्रस्थसे लेकर तुलापर्यंत दुगनीलेवें ऐसा कहीं नहीं लिखा अतएव इनका मान सूखी औषधके समानही लेना चाहिये ॥

दूधआदिपतलीवस्तु नापनेकी युक्ति ।

मृदुस्तु वेणुलोहादेर्भाण्डं यच्चतुरंगुलम् ।

विस्तीर्णं च तथोच्चं च तन्मानं कुडवं वदेत् ॥

अर्थ-नम्रवाँसा लोह आदिका चौखुदा बरतन लंबा चौड़ा और ऊँचाई निचाईमें चारही अंगुलका हो उसको कुडव नाम कहते हैं, कुडव नाम पावसेरका है परंतु व्यवहारका पौआ कुछ अधिक बजनवाला होता है इस कुडवपात्र द्वारा घी-दूध तेल आदि पतली वस्तु नापी जाती है ॥

कालिंगः पञ्चगुञ्जाभिर्मागधाः सप्तभिस्तथा ।

मापकं दशभिर्गौडामानज्ञाः कीर्तयन्ति च ॥

अर्थ-कलिंग परिभाषामें पांचरस्तीकामापा होता है [ यही भास्कराचार्यने भी माना है ] और मागध परिभाषाके मतसे सातरस्ती का मापा होता है और गौडदेशवासी १० रस्तीका मासा मानते हैं ॥

कालिंग्यं सौश्रुतं मानं मागधं चरकादिषु ॥

गौडादिदेशे गौडं च मानं मानविदो विदुः ॥

अर्थ-सुश्रुत कलिंग परिभाषाको कहता है और चरकादि ग्रंथमागध परिभाषाको एवं गौडदेशवासी गौड परिभाषाको मानते हैं परंतु " कालिंगान्मागधं श्रेष्ठ " इसवाक्यसे मागध परिभाषा उत्तम है मध्ये देशमें इसका प्रचार हुआ इसी से मागध परिभाषा कहलाती है ॥

औषध तोलनेके विषयमें मागधपरिभाषाका वजन ।

- १ परमाणुका १ त्रसरेणु इसे वंशीभी कहते हैं.  
 ६ वंशीकी १ मरीची.  
 ६ मरीचीकी १ राई.  
 ३ राईकी १ सरसो.  
 ८ सरसोंका १ यव.  
 ४ यव ( जों ) की १ रत्ती ( पुंघची ) होती है इसे कुंचभी कहते हैं.  
 ६ रत्तीका १ मासा इसको हेम और धान्यकभी कहते हैं.  
 ४ मासेका १ शाण इसके व्यवहारिक मासे ३ होते हैं.  
 उस शाणको निष्क धरण और टंकभी कहते हैं.  
 २ टंकका १ कोल होता है उसके व्यवहारिक मासे ६  
 उसकोलको क्षुद्रभं, षटक और द्रंक्षणभी कहते है.  
 २ कोलका १ कर्ष होता है जिसके व्यवहारिक तोला १  
 उसकर्षको पाणिमानिका-अक्ष-पिचु-पाणितल-किंचित्पाणि-  
 तिष्ठक-विडालपदक-पोडशिका-हंसपद सुवर्ण कवलग्रह और  
 उदुंबरभी कहते हैं.  
 २ कर्षका १ अर्धपल होता है उसके व्यवहारिक तोले २  
 इसअर्धपलको शुक्ति और अष्टमिका भी कहते हैं.  
 ३ अर्ध पलका १ पल होता है जिसके व्यवहारिक तोले ४  
 इसपलको मुष्टि-आम्र चतुर्थिका-प्रकुंच-पोडशी और वित्त्वभी  
 कहते हैं.  
 दोपलकी प्रमृति होती है जिसके व्यवहारिक तोले ८  
 इसप्रमृतिको प्रमृत भी कहते हैं.  
 २ प्रमृती की १ अंजली होती है जिसके व्यवहारिक तोले १६  
 इस अंजलीको कुडव-अर्धशराव और अष्टमानभी कहते हैं.  
 २ अंजलीकी १ मानिका जिसके व्यवहारिक तोले ३२  
 उस अंजलीकी शराव और अष्टमिकाभी कहते हैं.  
 २ मानिकाका १ प्रस्थ जिसके व्यवहारिक तोले ६४  
 ४ प्रस्थका १ आढक जिसके व्यवहारिक तोले २५६  
 उस आढकको भाजन और कंसपात्रभी कहते हैं.  
 ४ आढकका १ द्रोण जिसके व्यवहारिक तोले १०२४  
 उस द्रोणको कलश=नल्लवण-उन्मान घट और राशिभी कहते हैं.

२ द्रोणकाशूर्प जिसके शराव ६४ और व्यवहारिक तोले	२०४८
इसशूर्पको कुंभभी कहते हैं.	
२ शूर्पकी १ द्रोणी जिसके व्यवहारिक तोले	४०९६
इस द्रोणको बाँह और गोणीभी कहते हैं.	
४ द्रोणीकी १ खारी जिसके व्यवहारिक तोले	१६३८४
दोहजार पलका १ भार जिसके व्यवहारिक तोले	८०००
सौपलकी १ तुला जिसके व्यवहारिक तोले	४००

यदौषधंतुप्रथमंयस्ययोगस्यकथ्यते ।

तन्नामैवसयोगोहिकथ्यतेऽत्रविनिश्चयः ॥

अर्थ-जिस प्रयोगमें जो प्रथम औषध हो उसी औषधके नामसे वह प्रयोग जानना जैसे पीपरपाक पेठापाक शुंठ्यादिकाढा प्रसारणी तेल इनमें पीपरपाकमें प्रथम पीपरलिखी है इसीसे पीपरपाक कहतेहैं शुंठ्यादि काढेमें प्रथम सोंठहैं अतएव शुंठ्यादि काढा कहताहै इसी प्रकार प्रसारणीतेलमें प्रथम प्रसारणी औषध कहीहै इसीसे उसका नाम प्रसारणी औषध वहीहै इसीसे उस का नाम प्रसारणी तेलहै इसी प्रकार औरभी उदाहरण जानने ॥

नाल्पं हंत्यौषधंव्याधियथाल्पांबुमहानलम् ।

दोषवच्चातिमात्रंस्याच्छस्यमत्युदकंयथा ॥

अर्थ-थोड़ी औषध रोगको दूर नहीं करती जैसे थोड़ाजल बहुतसी अग्निको शांति नहीं करता उसी प्रकार बहुत औषधभी रोगको नहीं दूरकरे जैसे बहुत सा जल नवीन वृक्षादिकको नष्ट करदेता है ॥

मात्रयाहीनयाद्रव्यंविकारननिवर्तयेत् ।

द्रव्याणामतियोगाच्चव्याधिस्संजायतेध्रुवम् ॥

अर्थ-थोड़ी मात्रासे विकार दूर नहीं होता उसी प्रकार बहुत मात्राके खानेसे अनेक प्रकारकी व्याधि होतीहै अतएव दोष काल अवस्था आदिके अनुसार औषधीखाना चाहिये ॥

भक्षणरूपमात्राकाअनियम ।

स्थितिर्नास्त्येवमात्रायाः कालमग्निवयोवलम् ।

प्रकृतिदोषदेशौचद्वामात्रांप्रकल्पयेत् ॥

अर्थ-औषधिकी मात्राके प्रमाणकी स्थिति नहीं अर्थात् निश्चय नहीं है अतएव वैद्य काल अग्नि अवस्था बल प्रकृति दोष और देश इनका विचार करके अपनी बुद्धिके अनुसार मात्राकी कल्पना करे ॥

औषधसेवनका प्रमाण कर्लिंगपरिभाषाकरके कहते हैं ।

यतोमन्दाग्रयोद्विस्वाहीनसत्वानराः कलौ ।

अतस्तुमात्रातद्योग्याप्रोच्यतेसुज्ञसंमता ॥

अर्थ-कलियुगमें मनुष्य मंदाग्रिवाले छोटे और बलहीन हैं अत एव उनके उपयोगी तथा वैद्योंको मान्य ऐसी औषधीका प्रमाण कहता हूँ ॥

कर्लिंगपरिभाषाकावजन ।

यवोद्वादशभिर्गौरसर्पपैः प्रोच्यतेबुधैः ॥ यवद्वयेनगुञ्जास्या

त्रिगुंजोवल्लुच्यते ॥ मापोगुंजाभिरष्टाभिःसप्तभिर्वाभवे

त्क्वचित् ॥ स्याच्चतुर्माषकैःशाणःसनिष्कष्टंकएवच ॥ गद्या

णोमाषकैःपद्भिःकर्पःस्याद्दशमाषकः ॥ चतुःकर्पैःपलंप्रोक्तं

दशशाणमितंबुधैः ॥ चतुःपलैश्चकुडवंप्रस्थाद्याःपूर्ववन्मताः ॥

अर्थ-वारहसपेद सरसोंका १ मष होता है दोषवकी १ रत्ती ३ रत्तीका १ वल्ल आठरत्ती अथवा कहीं सातरत्तीका मासाहोता है, चार मासेका १ शाण उसको निष्क और टंकभी कहते हैं छः मासेका १ गद्याणक दशमासेका १ कर्प चारकर्पका १ पल कि जिसके दशशाण अर्थात् ४० मासे होते हैं चार पलका १ कुडव होता है और प्रस्थ आठक आदिका प्रमाण पूर्वोक्त मागधीपरिभाषाके समान जानने अर्थात् ४ कुडवका १ प्रस्थ चार प्रस्थका एक आठक इसीप्रकार और भी जानो यह कर्लिंगपरिभाषा कही है ॥

अथ कृष्णात्रेयात् ।

रजासित्रीणिसिकतातामिःपोडशभिस्तथा ।

सर्पपश्चभवेद्गौरस्तेचाष्टौतण्डुलंविदुः ॥

तद्वयंथान्यकंमापंतद्वयंरक्तिकामता ।

रक्तिकाद्वितयेनापिवल्लःप्रोक्तोविशारदैः ॥

चतुर्भिश्चंडिकातैःस्यादेवंमानपरंपरा ॥



अर्थ-तीनेरजकी १ सिकता १६ सिकता ओंकी १ सपेदसरसों ८ स-  
पेद सरसोंका १ चावल २ चावलोंका १ धान्यक और माप २ धान्यक-  
की १ रत्ती २ रत्तीका १ वल्ल ४ वल्लकी १ चंडिका होती है इसप्रकारे  
मानपरंपरा जाननी यह कृष्णात्रेय ऋषिका मत है ॥

औषधोंकायुक्तायुक्तविचार ।

नवान्येवहियोज्यानिद्रव्याण्यखिलकर्मसु ।

विनाविडंगकृष्णाभ्यांगुडधान्याज्यमाक्षिकैः ॥

अर्थ-संपूर्ण कार्यमें नवीन औषधोंकी योजनाकरनी चाहिये परंतु  
वायविडंग पीपर-गुड चावल पी और सहत ए छः पदार्थ पुराने ही  
लेने चाहिये ॥

गीलीऔषधग्रहणी ।

वासानिवपटोलकेतकवलाकूष्मांडकैंद्रीवरी  
वर्षाभूकुटजाश्वकंदसहिताः सापूतिगंधाःस्मृताः ॥

मांसीनागवलाकुरंटकपुरोहिंम्वार्द्रकंचैक्षवं

गृह्णीयात्सरसान्यमृनिनपुनःकुर्याद्विभागानिच ॥

अर्थ-अदुसा नीमकीलाल परवल केतक पेठा इद्रायण सतावर पुन-  
नैवा कूडा असकंद गंधप्रसारणी छड गुलसफरी कटसरैया गूगल हींग  
अदरक और ईख इतनी वस्तु सरस लेय परंतु गीली जानके इनी न  
लेवे जितनी लिखी हो उतनी लेवे ॥

साधारणऔषधोंकीयोजना ।

जीर्णमेवप्रशस्तंस्यात्तांबूलंकांजिकंतथा ॥

शुष्कंनवीनद्रव्यंचयोज्यंसकलकर्मसु ॥

आर्द्रिचद्विगुणंयुज्यादेपसर्वत्रनिश्चयः ॥

अर्थ-पान सुपारी और फांजी ये पुरानेही उत्तम होते हैं । सर्वकार्यमें  
उक्तविडंग और पानसुपारी आदिकी त्यागकर सब वस्तु नवीन और  
सूखी लेनाचाहिये यदी वह औषध गीली होय तो बाँसे आदिकी त्याग  
कर बाकी की औषध दुनो लेवे यह सर्वत्र निश्चय है ॥

अनुक्तकालादिकोंकीयोजना ।

कालेऽनुक्तेप्रभातंस्यादंगेऽनुक्तेजटाभवेत् ।

**भागेनुक्तेतुसात्म्यंस्यात्पात्रेनुक्तेचमृन्मयम् ॥**

अर्थ—जिसप्रयोगमें कालनहीं कहाहो उसजगमातःकाल लेना चाहिये और जहां औषधीका अंग न कहा हो तहां औषधीकी जडलेवे और जिसप्रयोगमें भाग न कहा हो तहां समान भाग लेवे, जिसजगे पात्र न कहाहो वहां पर मिट्टीका पात्रलेना चाहिये ॥

**पात्रोक्तौचापिमृत्पात्रमुत्पलेनीलमुत्पलम् ।**

**मूत्रेगोमूत्रमादेयंविशेषोयत्रनेरितः ॥**

अर्थ—सामान्यता करके पात्र शब्द करके मिट्टीका पात्रलेवे उत्पल शब्द करके । नीलकमलले—मूत्रशब्द से गोमूत्रलेना चाहिये यह जहां विशेष नाम न कहा हो तहांकरे ॥

**पयःसर्पिःप्रयोगेपुगवामेवप्रशस्यते ।**

**स्त्रियश्चतुष्पदेग्राह्याःपुमांसोविहगेपुच ॥**

**जांगलानांवयस्थानांचर्मरोमनखादिकम् ॥**

**हित्वाग्राह्यंपूतमांसंसास्थिकंखंडशःकृतम् ॥**

अर्थ—जहां केवल दूध घी लिखा हो तहां गौका घी दूध लेवे । चौपाए जानवरोंमें स्त्रीग्राह्य है, जैसे गौमेंस और पखेरुओंमें पुरुष लेना जैसे कबूतर चिड़ा जंगली जीवोंमें जवान जीवले उसके चर्म, नख रोम आदिको त्याग करके इइड़ी सहितटुकड़े २ करके मांसलेना चाहिये ॥

**पक्तव्यमाजमासंचविधिनाघृततैलयोः ॥**

**हित्वास्त्रींपुरुषंचापिक्रीवंतत्रापिदापयेत् ॥**

अर्थ—स्त्री पुरुषको त्याग नपुंसक बकरालेकर उसके मांसको घी तैलमें भूने यदि नपुंसक बकरा न मिले तो बंध्या बकरी लेवे ॥

**शृगालवर्हिणोः पाके पुमांसंतत्रदापयेत् ॥**

**मयूरी जम्बुकीछागीवीर्यहीनास्वभावतः ॥**

अर्थ—स्यार और मीरके पाकमें पुरुष लेवे—क्योंकि मीरनी स्यारनी और बकरी ये स्वभावसे ही वीर्यहीन होती हैं ॥

**स्त्रीणांतीक्ष्णंगवामूत्रंनतुपुंसांविधीयते ॥**

**पित्तात्मिकाः स्त्रियोयस्मात्सौम्यास्तुपुरुषामताः ॥**

## क्षीरमूत्रपुरीषाणिजीर्णाहारेतुसंहरेत् ॥

अर्थ-यदि गौजातिकामूत्रलेना होयतो स्त्रीजातिकालेवे इसका कारण यह है कि स्त्री गौजातिका मूत्र तीक्ष्ण और पित्तात्मक होता है, एवं पुरुषजातिका मूत्र शीतल और तीक्ष्णता रहित होता है । यदि दूध, मूत्र और गोबर लेना होवे तो जब पशुका आहार पचजावे तब लेय अजीर्ण वालेका न लेय ॥

विशेषकथन ।

एकमप्यौषधयोगेयस्मिन्यत्पुनरुच्यते ।

मानतोद्विगुणंप्रोक्ततद्व्यंतत्त्वदर्शिभिः ॥

अर्थ-प्रयोगमें एक औषध दोवार आवे तो वह औषध वैद्यको दुगुनी डालनी चाहिये ॥

औषधोंकेहीनवीर्यहोनेमेंप्रमाण ।

गुणहीनंभवेद्वर्षादूर्ध्वतद्रूपमौषधम् ॥ मासद्वयात्तथाचूर्णहीन  
वीर्यत्वमाप्नुयात् ॥ हीनत्वंगुटिकालेहौलभेतेवत्सरात्परम् ।  
हीनाःस्युर्ध्वततैलाद्याश्चतुर्मासाधिकास्तथा ॥ औषध्योल  
घुपाकाःस्युर्निर्वीर्यावत्सरात्परम् ॥ पुराणाःस्युर्गुणैर्युक्ताभा  
सवाधातवोरसाः ॥

अर्थ-एक वर्षके पश्चात् औषधोंका तेज और उनके गुणहीन हो जाते हैं उनमेंभी दोमहीनेके बाद चूर्ण हीनवीर्य होता है तथा गुटिका और अघलेह ये एक वर्षके उपरांत हीनवीर्य होते हैं तथा घृत और तैलादिक ये चारमहीनेसे हीनवीर्य होते हैं तथा औषधी हलके पाकवाली वर्षके पश्चात् निर्वीर्य हो जाती है एवं आसव ( कुमारीसर्प द्राक्षासवआदि ) धातु ( सोने आदि रंगा लोहा आदि की भरम ) और रस ( चंद्रोदपादि ) ये जितने पुराने होंगे उतनेही गुणमें उत्तम होते हैं ॥

व्याधेरनुक्तंयद्रव्यं गणोक्तमपितत्त्यजेत् ।

अनुक्तंमपियुक्तंयद्युज्यतेतत्रतदुधेः ॥

अर्थ-रोगमें चूर्ण और काटे आदि की योजना गणकरके करते समय यदि उसगणमें एक दो औषध रोगके विरुद्ध होंगे तो वैद्य त्यागदेवे और जिसजगे गुणदायक औषध गणमें नहीं कही हो तो उसको वैद्य स्वयं द्विषे मिलाय देवे ॥

देशभेदककेंऔषधोंकेभेद ।

आग्नेयाविंध्यशैलाद्याः सौम्येहिमगिरिर्मतः ॥

अतस्तदौषधानिस्थुरनुरूपाणिहेतुभिः ॥

अन्येष्वपिप्ररोहंतिवनेपूषवनेपुच ॥

अर्थ—विंध्याचलपर्वत आदिकी औषध उष्णवीर्य होती है और हिमालय पर्वत आदिकी सौम्य ( शीतल ) औषधी होती है । अतएव जैसी २ पृथ्वी होती है उसी २ प्रकारकी औषधी और २ वनोंमें तथा उपवनोंमें होती है उनको विचारकर वैद्य ग्रहण करे ॥

## औषधीलानेकाप्रकार ।

गृह्णीयात्तानिसुपनाः शुचिःप्रातःसुवासरे ॥

आदित्यसन्मुखोमौनीनमस्कृत्यशिवंहृदि ॥

साधारणधराद्रव्यंगृह्णीयादुत्तराश्रितम् ॥

वल्मीककुत्सितानूपश्मशानोपरमार्गजा ॥

जंतुवाह्निहिमव्याप्तानौषधीकार्यसिद्धिदा ॥

अर्थ—औषधी लानेके समय प्रातःकाल उठकर स्वस्थचित्त करके पवित्रहो उत्तमदिन और मुहूर्तमें सूर्यके सन्मुख खड़ाहोके नमस्कार करे, और हृदयमें शिवका ध्यान करके और मौनधारण करके जो औषध लानीहो उसके समीप जायकर औषधीके उत्तरेके तरफकी छाल अथवा जड़ खोदके लावे

जो औषध सर्पकी बांवीके ऊपरहो, दुष्ट पृथ्वीमेंहो, जलमय पृथ्वीमें हो, इमसान ऊसर और मार्ग ( रास्ते ) में हो, तथा जिसको कीड़े खाए गयेहों अमिसे या धूपसे झूलसगई हो तथा जाड़ेकी मारीहो ऐसी औषधको न लेंवे क्योंकि ऐसी औषध कार्यकर्ता नहीं होती ( परंतु यहाँ हिंदुस्थानमें वैद्य अहेरिया वा पसारी आदिसे औषध लेतेहैं भला वो इस बातको क्या जाने कि ऐसी जगेंसे औषध लेना और ऐसी जगेंसे नलेना दूसरे देखो शास्त्रवैद्यकोही आज्ञा देताहै कि आप जायकर औषध लावे परंतु पश्चात्तापहें यहाँके वैद्य औषधके जाननेमें सर्वथा मूढ़हैं ) ॥

ऋतुविशेषकरकेरोगविशेषोंपरऔषधलेनेकाकाल ।

शरद्यखिलकार्यार्थग्राह्यंरसमौषधम् ।

विरेकवमनार्थचवसंतातिसमाहरेत् ॥

अर्थ—आग्नि और कांतिक इन दो महीनोंमें सर्व औषधी रससे भरी

होतीहैं अतएव सर्व कार्यके वास्ते इन्हीं दो महीनोंमें औषधी लेना चाहिये, और दस्त करानेको तथा वमनकेलिये वसंतांत ( वैशाख और ज्येष्ठ ) इन दो महीनोंमें औषधी वनसे लावे ॥

औषधविशेषका अंगग्रहण ।

अतिस्थूलजटायाः स्युस्तासां ग्राह्यास्त्वचो बुधैः ।

गृह्णीयात्सूक्ष्ममूलानि सकलान्यपि बुद्धिमान् ॥

अर्थ-जिस वृक्षकी जड़ अत्यंत स्थूल हो उस वृक्षकी छाल लेव जैसे नीम, बड़, जामुन आदि जानना और जिस वनस्पतिकी जड़ छोटी हो उस रुखड़की जड़ लेव तथा सर्व अंग ( जड़ फल पत्ते आदि ) लेव जैसे कटेरी गोखरू धमासा अडूसा आदि जानना तथा कितने वैद्योंका यह मत है कि ऐसी २ छोटी वनस्पतियोंकी जड़ही लेना ॥

न्यग्रोधादेस्त्वचो ग्राह्याः सारं स्याद्बीजकादितः ।

तालीसादेश्च पत्राणि फलं स्यात् त्रिफलादितः ।

धातव्यादेश्च पुष्पाणि स्नुह्यादेः क्षीरमाहरेत् ॥

अर्थ-बड़ आदि शब्द करके पापरी, जामुन, आम और पीपर इत्यादिकोंकी छाल लेना चाहिये, बीजकवृक्ष आदि शब्दसे खैर, महुआ इनका सार लेना जैसे विजसार, खैरसार लेवे तालीस आदि शब्द करके तमालपत्र, ग्वारपाठा, नागरवेल इत्यादिकोंके पत्ते लेना चाहिये त्रिफला आदि शब्दसे सुपारी, आम, बेर इत्यादिकोंके फल लेना चाहिये धाय आदि शब्दसे गुलाब, केवड़ा आदिके फूल लेवे शूहर आदि करके आक, तिथारा, थूहर इत्यादिकोंका दूध लेव इस प्रकार औषधी लेना चाहिये ॥

क्वचिन्मूलं क्वचित्कंदः क्वचित्पत्रं क्वचित्फलम् ।

क्वचित्पुष्पं क्वचित्सर्वं क्वचित्सारः क्वचित्त्वचः ॥

अर्थ-किसीकी जड़ किसीका कंद किसीके फल किसीके पत्ते किसीके फूल किसीका सर्व अंग और किसीका सार अथवा गोंद वैद्यको यथायोग्य लेना चाहिये ॥

चित्रकः सूरणो निंबो वा सा च त्रिफला क्रमात् ।

धातकी कंदकारी चखदिरः क्षीरपादपः ॥

अर्थ-चित्रकली छाल, जमीकंद नीम अडूसेके पत्ते हरड़ घेहड़ा आमला इनके फल, धायके फूल, कटेरीका सर्वांग, खैरका सार, इस प्रकार लेना चाहिये

क्वचिन्निवस्यगृहीयात्पत्राभावेत्वचामपि ।

वालंफलंतुविल्वस्यपक्वमारग्वधस्यतु ॥

अर्थ—कहीं नीमके पत्ते न मिलनेसे छाललेना चाहिये वेलका कोमल फल लेवे और अमलतासकी पक्की फलीलेना चाहिये ॥

पक्वपदार्थोंकोफिरपक्वकरनेमेंदोष ।

घृतंतैलंचपानीयंकपायंव्यंजनादिकम् ।

पक्त्वाशीतीकृतंतसंतत्सर्वस्याद्विपोषमम् ॥

अर्थ—घृत तेल पानी काढा भोजनके पदार्थ ( दालभात रोटी आदि ) को एकवार सिजापकर जब शीतल होजाय तो फिर गरम न करे पुनः गरम करनेसे ये विषके समान होजाते हैं ॥

## द्रव्योंकीपरीक्षा ।

सूक्ष्मास्थिमांसलापथ्यासर्वकर्मणिपूजिता ।

क्षिप्ताभिसिनिमज्जेद्याभल्लातक्यभयोत्तमा ॥

अर्थ—जितनी बारीक तथा ऊपरकी खचामोटीहो वो छोटीहरड सर्व कार्यमें अति उत्तमहै, और जो जलमें गेरनेसे डूबजावे वो हरड और भिलावा उत्तमहै ऐसा जानना ॥

वाराहीकंदसंचरऔरसंधवइनकीपरीक्षा ।

वराहमूर्धवत्कंदोवाराहीकंदसंज्ञितः ।

सौवर्चलंतुकाचाभसंधवंस्फटिकप्रभम् ॥

अर्थ—सूकरके मस्तक समान जो कंद होय वोवाराहकंद, जो पांचके समान चमके वो संचरनोन, और स्फटिकमणिके समानचमके वो संधानोन उत्तम होता है ॥

सुवर्णमाक्षिकतथारौप्यमाक्षिककीपरीक्षा ।

सुवर्णछविकंज्ञेयंस्वर्णमाक्षिकमुत्तमम् ।

उडुपुप्पप्रतीकाशामनोह्राचोत्तमोत्तमा ॥

सौनिके रंगका सुवर्णमाक्षिक उत्तम होताहै, और जो चंद्रमाके समान स्वच्छ और सफेद होय वो रौप्यमाक्षिक उत्तम जानना ॥

शिलार्जितपरीक्षा ।

श्रेष्ठशिलाजतुज्ञेयंयत्क्षिप्तंनविशीर्यते ।

तोयपूर्णैकांस्यपात्रेप्रतानेनविवर्द्धते ॥

अर्थ-वो शिलाजीत उत्तम जाने जो जलमें गेरनेसे फूटे नहीं किंतु-  
कासीके पात्रमें जलभरके शिलाजीत डालेतो तारसे कूटने लगे वो उत्तम है

कपूर इलायची औरचंदनकीपरीक्षा ।

कर्पूरस्तुवरस्निग्धएलासूक्ष्मफलावराः ।

श्वेतचंदनमत्यंतसुगंधिगुरुपूजितम् ॥

अर्थ-कपूर कपेला और चिकना उत्तम होता है इलायची छोटी  
सुगंधदार उत्तम होती है सपेदचंदन अत्यंत सुगंधदार और भारी उत्तम  
होता है ॥

रक्तचंदनपरीक्षा ।

रक्तचंदनमत्यंतलोहितंप्रवरंमतम् ।

काकतुंडनिभःस्निग्धोगुरुःश्रेष्ठोगुरुर्मतः ॥

अर्थ-जो रक्तचंदन अत्यंत फाला तथा कौएके मुखमांस समान लाल  
हो और चिकना तथा भारी हो वह उत्तम है ॥

देवदारुऔरसरलकीपरीक्षा ।

सुगंधिलघुसूक्ष्मंचसुरदारुवरंमतम् ।

सरलंस्निग्धमत्यर्थसुगंधिचगुणावहम् ॥

अर्थ-सुगंध, हलका, सूक्ष्म, ऐसा देवदारु । और चिकना तथा सुगंध-  
वाला सरल बहुत उत्तम गुणकारी जानना ॥

दारुहल्दी और जायफलकीपरीक्षा ।

अतिपीताप्रशस्तातुज्ञेयादारुनिशाबुधैः ।

जातीफलंगुरुस्निग्धंसमंशुभ्रेतरद्वयम् ।

अर्थ-अत्यंत पीली ऐसी दारुहल्दी उत्तम होती है और जायफल  
भारी चिकना-गोल और फाला उत्तम होता है ॥

दासकीपरीक्षा ।

मृद्धीकासोत्तमाज्ञेयायास्याद्गोस्तनसन्निभा ।

करमर्दफलाकारामध्यमासाप्रकीर्तिता ॥

अर्थ-गौके थनों के समान जो दाखहो वो उत्तम जानना और करोंदे के फलके समान हो वह मध्यमजानना ।

खांड और सहतकीपरीक्षा ।

खंडंतुविमलंश्रेष्ठं चन्द्रकांतिसमप्रभम् ॥

गवाज्यसदृशं रुच्यं गंधं मधुवरं मतम् ॥

अर्थ-मिथ्री चंद्रमाके कांतिके समान सपेदवो उत्तमहोती है ( यह जोधपुरमें होती है ) और गौके घृतके समान रुचिकारी-गंधवाला ऐसा सहत उत्तम जानना

स्वभावसैं हितकारीद्रव्य ।

शालीनां लोहितः शालिः पट्टिके पुच पट्टिका ।

शूकधान्येष्वपि यवो गोधूमः प्रवरो मतः ॥

अर्थ-सर्वशालियोंमें लालशाली (धान्य विशेष) और सांठियोंमें सांठी-चावल उत्तम होतेहैं, शूकधान्योंमें गेहू और जौ उत्तम होते हैं ॥

शिबीधान्योंमें उत्तमधान्य ।

शिबीधान्ये वरो मुद्गो मसूराश्चाढकी तथा ।

रसे पुमधुरः श्रेष्ठो लवणेषु च सैंधवम् ।

अर्थ-फलीके धान्योंमें मूंग-मसूर और अरहर उत्तम होताहै रसोंमें मधुर रस श्रेष्ठहै, नोनमें सैंधानिमक उत्तम जानना ॥

उत्तमफल ।

दाडिमामलकं द्राक्षा खर्जूरं च परूपकम् ।

राजादनं मातुलुंगं फलवर्गं प्रशस्यते ॥

अर्थ-अनार आमले, दाख-छुहारे फालसे-खिन्नी-और बिजोरा ये फल वर्गोंमें उत्तम जानना ॥

पत्रफल और कंद इन शाकोंमें उत्तम ।

पत्रशाके पुवास्तूकं जीवन्ती पोतिका वरा ॥

पटोलं फलशाके पुकंदशाके पुसूरणम् ॥

अर्थ-पत्तेके शाकमें वधुएका साग, डोडीकासाग, और पोयकासाग, उत्तम है । फलके सागोंमें परवलका साग उत्तम होताहै । कंदोंमें जमी कंदका साग उत्तम होता है ॥



मृग पक्षीऔरमछलीइनमेंउत्तम ।

एणः कुरंगो हरिणो जंघालेषु च शस्यते ।

पक्षिणांतित्तिरिर्लावोवरोमत्स्येषुरोहितः ॥

अर्थ—जंघाल ( दौडनवाले ) पशुओंमें एण. कुरंग और हरिण ये उत्तमहोते हैं पक्षियोंमें तोतर और लवा उत्तम होतेहैं एवं मछलियोंमें रोहूमछली उत्तम होतीहै ॥

हरिणोंकेभेद ।

हरिणस्ताम्रवर्णःस्यादेणःकृष्णस्तथामतः ।

कुरंगस्ताम्रउद्दिष्टो हरिणाकृतिकोमहान् ॥

अर्थ—लालवर्णके मृगको हरिणकहते हैं काले रंगकेका एण तथा कुछ-लाल और शरीरमें भारीहो उसको कुरंग कहतेहैं येहरिणोंके भेदजानने जल, दूध घृत, तेल, इक्षुविकारइनमें उत्तम ।

जलेषुदिव्यंदुग्धेषुगव्यमाज्येषुगोद्वयम् ।

तैलेषुतिलजंतैलमैक्षवेषुसिताहिता ।

अर्थ—जलोंमें मेघकाजल—दूध और घृतोंमें गौकादूध घी—तैलोंमें तिलका तेल—तथा ईसके सर्व पदार्थों में मिश्रीउत्तम होती है ॥

स्वभावसेअहितकारीद्रव्य ।

शिबीषुमापान्ग्रीष्मर्तौलवणेष्वौखरंत्यजेत् ।

फलेषुलकुचंशकिसार्पपंहितंमतम् ॥

अर्थ—दो वलके अन्नोंमें उडद त्याज्य है, निमकोंमें रेहूका निमक और फलोंमें छोठा बडहर और सागोंमें सरसोंका साग त्याज्य है ॥

गोमांसग्राभ्यमांसेषुनहितामहिपीवसा ॥ मेपीपयःकुसुंभस्यतैलंत्याज्यंचफाणितम् । इक्षुरसः परिपक्वोयोर्धनःफाणितंतद्धि ॥

अर्थ—मांसोंमें गौका मांसत्याज्य है, भैंसकी वसात्याज्य है, दूधोंमें मेढीका दूध, तैलोंमें कुसुमका तेल त्याज्य है, ईसका रसनिकाळे जव पकानेसे आधारहजावे उसको फाणितकहने हैं वो राव अपथ्य है ॥

संयोगविरुद्धद्रव्य ।

मत्स्यमानूपमांसंचदुग्धयुक्तंविवर्जेर्यत् ।

**कापोत्तंसार्पपस्नेहर्भजितंपरिवर्जयेत् ॥**

अर्थ—मछली और जलसमीप जीवोंकामांसदूध मिलायके नखावे  
कबूतरकामांस सरसोंके तेलमें भूनके नखाय क्योंकिये संयोग विरुद्धहै॥

**मत्स्यानिक्षौर्विकारेणतथाक्षौद्रेणवर्जयेत् ।**

**सकून्मांसपथोयुक्तानुष्णैर्दधिविवर्जयेत् ॥**

अर्थ—इंखके पदार्थसे मछलीका खाना अथवा सहतके साथ खाना  
निषेध है सत्तू मांस और दूध इनके साथभी मछली नखाय तथा गरम  
पदार्थके साथ दही नखावे ॥

**उष्णैर्दध्यंघुनाक्षौद्रं पायसंकृसरान्वितम् ।**

**रंभाफलंत्यजेत्तक्रंदधिविल्वफलान्वितम् ॥**

अर्थ—उष्णपदार्थ दहीके साथ, तथा दूध खिचड़ीके साथ, सहतजलके  
साथ, केलेफी फली छाछके साथ और बेलका फल दहीकेसाथ नभक्षणकरे

**दशाहमुपितंसर्पिःकांस्येमधुघृतेसमम् ।**

**कृतान्नंचकपायंचपुनरुष्णीकृतंत्यजेत् ॥**

अर्थ—घी कांसिके घासनमें दसदिन धरारहने से त्याज्य है, सहत और  
घी बराबरका मिलाहुआत्याज्य है भोजनका अन्न और काढा दूसरे बार  
गरमकराहुआ त्याज्य है ॥

**एकत्रवहुमांसानिविरुध्यंतेपरस्परम् ।**

**मधुसर्पिर्वसातैलपानीयानि यथा तथा ॥**

अर्थ—एकत्रकरे हुए अनेक पशुपक्षियोंका मांस त्याज्य है-और सहत,  
घृत वसा-तेल-और जल एकत्रकरे हुए अपध्य होते हैं अतएव  
इनको नखाय ॥

**औषधग्रहणमेंसंकेत ।**

लवणसैधवंप्रोक्तंचंदनरक्तचंदनम् ॥ चूर्णलेहासवस्नेहाः  
साध्याधवलचंदनैः॥ कपायलेपयोः प्रायोयुज्यतेरक्तचंद  
नम् ॥ अंतःसंमार्जनेज्ञेयाह्वजमोदायवानिकाः॥वहिःसैव  
चविद्रद्भिर्विज्ञातव्याजमोदिका ॥ पयःसर्पिःप्रयोगेपुग  
व्यमेवहिगृह्यते ॥ सकृद्रसोगोमयजोमूत्रंगोमूत्रमुच्यते ॥

अर्थ-औषधि ग्रहणमें जहाँ सामान्यकरके लवण कहाहो तहाँ सैधानिमक लेना और चंदन कहने से काढेमें लालचंदन लेना तथा चूर्ण, घृत तैलादि-अवलह-और आसवमें सपेदचंदन डालना-परंतु लेपमें लालचंदन डालना-भीतरकी शुद्धि करनेवाली औषधोंमें जहाँ अजमोद लिखा हो तहाँ अजवायन डालना और बाहरकी शुद्धिमें अजमोदके स्थानमें अजमोदही लेना-दूध घृतके प्रयोगमें गौका दूधही लेना-गोबरकारस और मूत्रके स्थानमें गोमूत्र लेना चाहिये ॥

अंतः संमार्जने योज्यं वचास्थाने कुलिजनम् ।

वहिः संमार्जने सैव प्रयोक्तव्या मनीषिभिः ॥

अर्थ-अंतर्गतकी शुद्धिमें वचके स्थानमें कुलिजन डाले और बाहर लेपादिकोंमें वचके स्थानमें वचही लेना चाहिये ॥

औषधभक्षणमें काल ।

भैषज्यमभ्यवहरेत्प्रभाते प्रायशो बुधः ।

कपायांश्च विशेषेण तत्र भेदस्तु दांशितः ॥

अर्थ-वैद्य रोगीको बहुधाकरके औषध प्रातःकालमें भक्षण करावे तथा स्वरस फल्क-काढे-फाट-हिम होयती विशेषकरके प्रातःकालमें पिवावे, इसमेंभी कालका भेद वक्ष्यमाणप्रकार करके कहते हैं ॥

औषधभक्षणके पांच काल ।

ज्ञेयः पंचविधः कालो भैषज्यग्रहणे नृणाम्

किंचित्सूर्योदये जाते तथा दिवसभोजने ।

सायंतने भोजने च मुहुश्चापि तथानिशि ॥

अर्थ-मनुष्योंको औषध भक्षणके विषयमें पांच काल है उनको कहते हैं, किंचित्सूर्योदय होने पर औषध लेना वह प्रथम काल है, तथा दिनमें भोजनके समय औषध लेना द्वितीय काल, सायंकालमें व्यापारीके समय औषध लेना तृतीय काल, चारंवार औषध लेना वह चतुर्थ काल है, और रात्रिमें औषध लेना वो पंचम काल है इसप्रकार औषधसेवनके पांच काल कहें हैं अब इनकी क्रमसे कहते हैं ॥

प्रथम काल ।

प्रायः पित्तकफोद्रेके विरेकवमनार्थयोः ।

लेखनार्थं च भैषज्यं प्रभाते नान्नाहरेत् ॥

**एवंस्यात्प्रथमःकालोभैषज्यग्रहणेनृणाम् ॥**

अर्थ—पित्त और कफ इनका प्रकोप होनेसे पित्तको विरेचन और कफको वमन-तथा लेखन कहिये पतलीकरण इनविषयोंमें प्रातःकाल औषध लेवोपरंतु प्रातःकाल रोगीको अन्ननदेवे यह औषधग्रहणमें प्रथमकाल कहा द्वितीयकाल ।

**भैषज्यंविगुणेपानेभोजनाग्रेप्रशस्यते ॥ अरुचौचित्र  
भोज्यैश्चमिश्रंरुचिरमाहरेत् ॥ समानवातेविगुणेमंदेग्रा  
वग्निदीपनम् ॥ दद्याद्भोजनमध्येचभैषज्यंकुशलोभिपक्व ॥  
व्यानकोपेचभैषज्यंभोजनान्तेसमाहरेत् ॥ हिक्काक्षेपक  
कंपेपुपूर्वमन्तेचभोजनात् ॥ एवंद्वितीयकालश्चप्रोक्तोभै-  
षज्यकर्मणि ॥**

अर्थ—गुदासंबंधी वायुके कुपित होनेमें भोजनक कुछ थोड़ी देर पहले औषध खाय । और अरुचि होनेसे अनेक प्रकारके अन्न तथा अनेक प्रकारके रुचिकारी पदार्थोंके साथमिलायके वैद्य रोगीको औषध देवे । और नाभि संबंधी वायुके कुपित होनेमें तथा मंदाग्निहोनेमें जैसे अग्निप्रदीप्त होवे ऐसी औषधभोजनके मध्यमें वैद्यरोगीको देवे । तथा सकल देह व्यापी व्यानवायुके कुपित होनेसे भोजनके अंतमें औषध भक्षण करावे । और हिचकी-तथा आक्षेपक वायु एवं कंपवायु इनका कोप होनेसे भोजनके प्रथम और अंतमें वैद्य रोगीको औषधी भक्षण करावे इसप्रकार औषध भक्षणमें दूसरा काल कहा ॥

**तृतीयकाल ।**

**उदानेकुपितेवातेस्वरभंगादिकारिणि ॥  
ग्रासेग्रासांतरेदेयंभैषज्यंसांध्यभोजने ॥  
प्राणेप्रदुष्टेसांध्यस्यभक्षस्यान्तेचदीयते ॥  
औषधंप्रायशोर्धारेःकालोऽयंस्यात्तृतीयकः ॥**

अर्थ—फंठ संबंधी उदान वातके कोपहोनेसे जो प्रगटदुष्टस्वरभंगादि-रोग उनमें सायंकालमें भोजनके समय ग्रासके साथ औषध देवे अथवा दो

१ पातादि दोषोंको स्नेहादि च योगकरके पतले करना इसीप्रकार स्थूल मनुष्यको सड़तपानी इत्यादि देकर कृश करना ॥

प्रासोंके बीचमें देय और हृदय स्थित प्राण पवनके कुपित होनेसे प्रायः सायंकालके भोजनके अंतमें वैद्य औषधी देवे इस प्रकार औषधि भक्षणका तीसरा कालकहा ॥

चतुर्थकाल ।

मुहुर्मुहुश्चतुर्दृष्टार्द्धिकाश्वासगरेषु च ।

सात्रं च भेषजं दद्यादितिकालश्चतुर्थकः ॥

अर्थ—प्यास वमन और हिचकी श्वास विषदोष ये रोग होनेसे चार, चार अन्नके साथ औषध भक्षण करावे श्लोकमें जो चकारहै इससे अन्न रहितभी भक्षण करे ऐसा जानना यह औषध भक्षणका चतुर्थ कालकहा पंचमकाल ।

ऊर्ध्वजघ्नुविकारेषु लेखने वृंहणे तथा ॥

पाचनं श्मनं देयमन्नं भेषजं निशि ॥

इति पंचमकालः स्यात्प्रोक्तो भेषज्यकर्मणि ॥

अर्थ—नाडके ऊपरके भागोंके विकार ( कर्ण नेत्र मुख नासिका आदि रोगों ) में तथा प्रवृद्धवातादि दोषोंके घटानेमें और अति क्षीण दोषोंके बढ़ानेके वास्ते रात्रिमें पाचन रूप और श्मनरूप औषध अन्नरहित भक्षणकरे इसप्रकार औषध भक्षणका पांचवां कालकहा ॥

औषधिप्रतिनिधि ।

कदाचिद्रव्यमेकं वा योगेयत्र न लभ्यते ।

तत्तद्गुणयुतं द्रव्यं परिवर्तनं गृह्यते ॥

अर्थ—कदाचित् किसी योगमें एक औषध न मिले तो उसी उसीके समान गुणकारी दूसरी औषध तत् प्रयोगमें लेना चाहिये ॥

वज्राभावे तु वैक्रान्तं स्वर्णाभावे तु माक्षिकम् ।

हेममाक्षिकजं सत्त्वं मतं हेमसमं गुणैः ॥

अर्थ—हीराके अभावमें वैक्रान्त ( वां सुला ) लेवे सुवर्णके अभावमें सुवर्ण माक्षिकले और जहाँ चाँदी नहीं मिल सकती हो वहाँ पर रूपामाखी लेवे ॥

विमलमाक्षिकं ज्ञेयं ध्रुवं रजतवद्गुणैः ।

मुक्ताऽभावे क्षिपेन्नूनं मुक्ताशुक्तिचतुर्णाम् ॥

अर्थ—तथा माक्षिकका भेद विमल है उसकी रूपेकी प्रतिनिधिमें

लेवे जहां मोती न मिलती हो तो उसकी एवजमें मोतीकी सीप ढाले तो मोतीके तुल्य गुण करे ॥

**अभावेऽभ्रकसत्वस्यकान्तलोहंप्रयोजयेत् ।**

**कान्ताभावेतीक्ष्णलोहमित्युक्तंरसदर्पणे ॥**

अर्थ—जहां अभ्रकसत्व नमिले तहां कान्तलोहकी भस्मलेवे, यदि कान्तलोहकी भस्मभी न मिले तो खेरी लोहकी वा मजबूलोहकी भस्म लेवे ऐसा रसदर्पण ग्रंथमें लिखाहै ॥

**चित्रकाभापतोदंतीक्षारः शिशिरिजोऽथवा ॥**

**अभावेधन्वयासस्यप्रक्षेतव्यादुरालभा ॥**

अर्थ—चित्रकके अभावमें दंती लेवे अथवा आंगका क्षारलेवे जवासेके अभावमें धमासालेना चाहिये ॥

**यदिनस्यादारुनिशातदादेयानिशाबुधैः ॥**

**रसांजनस्याभावेतुसम्यक्दार्वाप्रयुज्यते ॥**

अर्थ—यदि दारुहल्दी न मिले तो उसके पलटेमें हल्दीही ढालना और रसांत नमिले तो उसके पलटेमें दारुहल्दी लेना चाहिये ॥

**चविकागजपिप्पल्यौपिप्पलीमूलवत्स्मृते ।**

**अभावेसोमराज्यास्तुप्रपुंनटाफलंस्मृतम् ॥**

अर्थ—पीपरामूलके अभावमें चव्य अथवा गजपीपर लेवे और वाव-चीके अभावमें पवाडके बीजलेने चाहिये ॥

**पौष्कराभावतः कुष्ठंतथालंगल्यभावतः ।**

**स्थौण्येयकस्यचाभावेभिपग्भिर्दायतेगदे ॥**

अर्थ—गुहकर मूलके कलिमारीके और ग्रंथिपर्णी इनके अभावमें वैद्यकुष्ठलेवे जातीपुष्पनयत्रास्तिलवंगंतत्रदीयते ।

**अर्कपर्णादिपयसोह्यभावेतद्रसोमतः ॥**

अर्थ—जहां जायफल न मिले उसके स्थानमें लौंगढाले जहां आकके पत्तेका दूधकहा है यदि वह न मिले तो उसमें आकके पत्तोंका रस काम में लाना चाहिये ॥

**वकुलाभावतोदयंकल्हारोत्पलपंकजम् ।**

**नीलोत्पलस्याभावेतुकुमुदंदेयमिष्यते ॥**

अर्थ-मोलसरीके अभावमें कल्हार ( लालकमल ) अथवा नीलकमल और नीलकमलके अभावमें कुमुद ( रात्रिमें फुलनेवाला कमल ) लेवे ॥

अहिंसायाअभावेतुमानकंदः प्रकीर्तितः ।

लक्ष्मणायाअभावेतुनीलकंठशिखामता ॥

अर्थ-अहिंसा ( धरकाभेद ) इसके अभावमें मानकंदलेना और लक्ष्मणा रुखडीके न मिलनेपर मोर शिखा ( बूटी ) वैद्यको लेना चाहिये ॥

तगरस्याप्यभावेतुकुष्ठंदद्याद्भिषग्वरः ।

मूर्वाभावेत्वचोग्राह्याजिगिनीप्रभवानुधैः ॥

अर्थ-तगरके अभावमें कूठ औषध लेवे और मूर्वा औषधके न मिलनेसे मजीठलेना चाहिये ॥

भार्ग्यभावेतुतालीसंकंठकारिजटाथवा ।

रुचकाभावतोदद्यालवणंपांशुपूर्वकम् ॥

अर्थ-भार्ग्यके अभावमें तालीसपत्र लेवे अथवा कटेरीकी जड़लेवे और फाले निमकके अभावमें खारी निमक लेना चाहिये ॥

सौराष्ट्र्यभावतोदेयारुफटिकातद्गुणाजनैः ।

तालीसपत्रकाभावेस्वर्णतालीप्रशस्यते ॥

अर्थ-सौराष्ट्रगर्भके अभावमें फिटफरी लेवे और तालीसपत्रके अभावमें स्वर्णतालीसपत्र लेना चाहिये ॥

अभावेमधुयष्ट्यास्तुधातर्कोतुप्रयोजयेत् ।

अम्लवेतसकाभावेचुक्रंदातव्यमिष्यते ॥

अर्थ-मुलहटीके अभावमें धायके फूल लेवे जहां अमलवेत न मिले उस जगे चूकालेना चाहिये ॥

लवंगकुशुमंदद्यान्नखस्याभावतः पुमान् ।

कस्तूर्यभावेकंकोलक्षेपणीयंविदुर्बुधाः ॥

अर्थ-नख ( सुगंधद्रव्य ) के अभावमें लौंगलेना और कस्तूरीके अभावमें कंकोल लेना ऐसा बुद्धिमान् वैद्योंने कहा है ॥

द्राक्षायदिनलभ्येतप्रदेयंकाश्मरीफलम् ।

तयोरभावेकुसुमंमधूकस्यमतंबुधैः ॥

अर्थ- जहां दाख न मिले उसजगे कंभारीके फल लेने चाहिये, यदि दाख और कंभारीके फल दोनों न मिलें उसजगे महुआके फूललेना ॥

कंकोलस्याप्यभावेतुजातीपुष्पंप्रदीयते ।

सुगंधमुस्तकंदेयंकपूराभावतोबुधैः ॥

अर्थ-कंकोलके अभावमें-जावित्रीलेना-जहांक पूर न मिलता हो वहां सुगंध मुस्तक अर्थात् नागर मोथा लेना वैद्योंने कहा है ॥

कर्चूराभावतोदेयंग्रंथिपर्णविशेषतः ।

कुंकुमाभावतो दद्यात्कुसुमकुसुमंनवम् ॥

अर्थ-कर्चूरके अभावमें ग्रंथिपर्णी लेवे जहांकेशर न मिलती होवे उस जगे नवीन कुसुमका फूल लेवे ॥

श्रीखंडचन्दनाभावेकपूरंदेयमिष्यते ।

अभावेत्तयोर्वैद्यःप्रक्षिपेद्रक्तचन्दनम् ॥

अर्थ-सपेदचंदनके अभावमें कपूर लेना चाहिये और जहां चंदन और कपूर दोनों नमिलें उसजगे लालचंदन लेना चाहिये ॥

रक्तचंदनकाभावेनवोशीरविदुर्बुधाः ।

मुस्ताचातिविषाभावेशिवाभावेशिवामता ॥

अर्थ-लालचंदनके नमिलनेमें नवीन खसलेनी चाहिये अतीसके अभावमें मोथालेवे और छोटीहरडके अभावमें आमले लेना चाहिये ॥

अभावेनागपुष्पस्यपद्मकेशरमिष्यते ।

मेदाजीवककांकोलीऋद्धिद्वंद्वेपिचासति

वरीविदार्यश्चगंधावाराहीश्चक्रमाक्षिपेत् ॥

अर्थ-नागकेशरके अभावमें कमलकी केशर लेवे और मेदा, जीवक, काकोली, ऋद्धि वृद्धि, इनके अभावमें क्रमसे शतावर विदारीकंद अस-गंध और वाराहीकंद ये चार औषध पृथक् २ लेवे ॥

वाराह्याश्चतथाभावेचर्मकारालुकोमत ॥ वाराहीकंदसं

ज्ञस्तुपश्चिमेष्टृष्टिसंज्ञकः ॥ वारहीकंदएवान्यैश्चर्मका

रालुकोमतः ॥ अनूपसंभेदे शवाराहवलोमवान् ॥

अर्थ-सपेद विदारी कंदके अभावमें वाराही कंद लेवे इसको पछेंयां



चर्मकाराल और गृष्टीभी कहते हैं यहकंदजलप्रायःभूमिमें होता है और इसके ऊपर सूअरकेसे कडे २ बाल होते हैं ॥

भल्लातकासहत्वेतुरक्तचन्दनमिष्यते ।

भल्लाताभावतश्चित्रनलश्चेशोरभावतः ॥

अर्थ—भिलावेके अभावमें लालचंदन अथवा चित्रकलेवे और ईखके अभावमें नरसललेवे ॥

माक्षिकस्याप्यभावेतुप्रदद्यात्स्वर्णगैरिकम् ।

सुवर्णमथवारौप्यंमृतंयत्रनलभ्यते ॥

तत्रलोहेनकर्माणिभिषक्कुर्याद्विचक्षणः ।

कांताभावेतीक्ष्णलोहंयोजयेद्वैद्यसत्तमः ॥

अर्थ—सुवर्ण माक्षिकके अभावमें सुवर्णगेरूलेवे और सुवर्ण तथा चांदी की भस्मके अभावमें लोहभस्मडालके कर्मकरे और कांतलोहके अभावमें गजवेल लोहकी भस्मले ॥

मधुयत्रनविद्येततत्रजीर्णोऽगुडोमतः ॥ पुरातनगुडाभा

वेरौद्रेयामचतुष्टयम् ॥ संशोष्यनूतनं ग्राह्यं पुरातनगुणैः पिणा ॥

अर्थ—जहां सड़त नमिले उसजगे पुराना गुडलेना जहां पुराना गुड न मिलता हो वहां नएगुडकी ४ प्रहर धूपमें सुखायके लेवे तो पुराने के समान गुणकरे ॥

क्षीराभावेभवेन्मौद्गोयूपोमासूरसंभवः ।

सिताभावेचखंडस्यात्शाल्यभावेचपट्टिकः ॥

अर्थ—जहां दूध नमिलताहो वहां पर मूंगकायूपले अथवा मसूरका यूप लेवे मिश्रीके अभावमें खांडलेना और शाली चावलके अभावमें सांठी चावललेना चाहिये ॥

नभवेदाडिमोयत्रवृक्षाम्लंतत्रदापयेत् ॥

सौराष्ट्रमृदभावेचग्राह्यापंकस्यपर्पटी ॥

अर्थ—जहांअनारदाना नमिलता होय वहां तंतडीककी खटाईडाले और जहां फिटकरी न मिलती होय वहांपर कीचकी जमीदई पपडीलेनी ॥

नतंतगरमूलंस्यादभावेसिंहलीजटा ।

प्रयोगेयत्रलोहःस्यादभावेतन्मलंस्मृतम् ॥

अर्थ—छडके और तगरकी जड़के अभावमें कठेरीकी जड़ लेवे—जहां प्रयोग में लोहलिखा है यदि न मिले तो उस लोहकी कीटी लेवे ॥

सर्पपःशुक्रवर्णैःसहिसिद्धार्थकोमतः ।

तत्रसिद्धार्थकाभावेसामान्यःसर्पपोमतः ॥

अर्थ—सर्पदरंगके सरसों को सिद्धार्थककहा है जहां यह सिद्धार्थक नमिले उस जगे सामान्यसरसों डालना चाहिये ॥

अभावेप्रश्रवण्यैश्चसिंहपुच्छीविधीयते ।

कुंकुमस्याप्यभावेतुनिशाग्राह्याभिपग्वरैः ॥

अर्थ—प्रश्रवणीके अभावमें पिठवनलेना चाहिये—केशरके अभावमें वैद्य हल्दी की योजना करे ॥

धान्यकाभावतोदद्याच्छतपुष्पाभिपग्वरः ॥

सामुद्रंसेंधवाभावेविडंवागृह्यतेबुधैः ॥

अर्थ—धान्यके अभावमें सौंफलेवे सामुद्र और सैंधनिमकके अभावमें विडनिमक लेना चाहिये ॥

पुष्पाभावेफलंचामंविडंभेदेषित्वतःफलम् ।

कर्पूरस्याप्यभावेऽपिसुगंधंमुस्तमिष्यते ॥

अर्थ—जहां जिस द्रव्यका पुष्पलिखा है उसके अभावमें उसका कच्चा-फल लेवे उदरके रोगमें बेलकी मीरी ही डाले ॥

रास्नाभावेचर्वदाकोजीराभावेचधान्यकम् ।

रसाञ्जनस्यचाभावेदार्वाकाथंप्रयोजयेत् ॥

अर्थ—रास्नाके अभावमें चंदाक लेवे जीरेके अभावमें धनिया रसो-तके अभावमें दारुहलदीका काढा लेंके कार्य साधन करे ॥

मेदा भावेश्वगंधास्यान्महामेदेतुसारिवा ।

जीवकर्पभकाभावेगुडूर्चाचविदारिका ॥

अर्थ—मेदाके अभावमें असगंधलेवे, महामेदाके अभावमें सारिवाले जी-वक और ऋषभकके नमिलनेपर गिलोय और विदारी कंद लेना चाहिये ॥

ऋद्धयभावेबलाग्राह्यावृद्धयभावेमहाबला ।

कांकोलीयुगलाभावेनिक्षिपेच्चशतावरीम् ॥

अर्थ—ऋद्धिके अभावमें बलालेवे वृद्धिके अभावमें महाबलालेय दोनोंकाकोलीके अभावमें शतावरी लेना चाहिये ॥

दयोमृगमदाभावे पूतिकातद्गुणानुधैः ।

रोहीतकत्वचोऽभावेपिचुमर्दस्यगृह्यते ॥

अर्थ—कस्तूरीके अभावमें गंधमार्जार ( मुष्कविलाई ) लेना चाहिये रोहीडेकी छालके अभावमें नीमकी छाललेवे ॥

कापोतंसर्वमांसानां तुल्यगुणकरंस्मृतम् ।

मांसकाथापरिप्राप्तौयूपोमोदः प्रदीयते ॥

अर्थ—सब मांसोंमें कबूतरका मांस तुल्य गुणकारी है इसवास्ते यही देवे और जहां मांसकाथ न मिले वहांपर मंगकायूप देना चाहिये ॥

धेन्वाः प्रकटवत्सायाः क्षीरंकृत्स्नपयोगुणम् ।

वेतसाम्लस्यचाभावेहरिमन्थाम्लमादिशेत् ॥

अर्थ—संपूर्णदुग्धके अभावमें बछरेवाली गौकादूध लेना चाहिये और अमल वेतके अभावमें चनेका रार लेना चाहिये ॥

अभावेचंदनस्यापिमेलयेद्रक्तचंदनम् ।

तुगाभावेप्रदातव्यात्वक्क्षीरीतद्गुणानुधैः ॥

अर्थ—रूपेद चंदनके अभावमें लालचंदन लेवे तवाक्षीरके अभावमें बंशलोचन लेना चाहिये ॥

अभावेसतिपत्राणां रसादेर्भावनाविधौ ।

विपमुष्टि कपायेणषड्गुणाभावनाभवेत् ॥

अर्थ—जहां रसकी भावना लिखी है यदि उस जगे वो पत्ते न मिलें तो कुचलेके काठेकी छः गुनी भावना देनेसे पूर्ववत् गुण करे ॥

फलमाममपुष्टं चत्यजेद्विल्वाहृतेसदा ।

द्राक्षाविल्वाशिवादीनांफलंशुष्कं गुणोत्तरम् ॥

अर्थ—जितने फल हैं उनमें बेलफलके सिवाय सब फल कच्चे और पुष्टि रहित त्याज्य हैं और सूखेफलभी त्याज्य हैं परंतु दाख बेलगिरी और आमले ये सूखेही गुणकारी होते हैं ॥

यत्रयद्द्रव्यमप्राप्तं भेदपक्षे परपूर्वतः ।

ग्राह्यंतद्गुणसाम्यात्तु न तत्र कापि दूषणम् ॥

अर्थ—जिस औषध के बनाने में यदि एक औषध न मिले तो वैद्य को उचित है कि, उसके समान गुणकारी दूसरी औषध लेने में किसी प्रकार का दूषण नहीं है ॥

अत्र प्रोक्तानि वस्तूनि यानि ते पुचते पुच ।

योज्यमेकतराभावे परवैद्येन जानता ॥

अर्थ—इसमें जो जो औषधादि कही हैं उनके न मिलने पर बुद्धिमान् ज्ञाता वैद्य उक्त प्रमाण उसी २ की प्रतिनिधि ग्रहण करे ॥

रसवीर्यविपाकाद्यैः समं द्रव्यं विचिंत्य च ।

युज्यात्तद्विधमन्यच्च द्रव्याणां च रसादिवत् ॥

अर्थ—जो द्रव्य न मिले उसके रस वीर्य और विपाक के सदृश औषधी चिंतन करके मिलावे—जैसे द्रव्यों में रसादिविचार के मिलाये जाते हैं ॥

योगेयदप्रधानं स्यात्तस्य प्रतिनिधिर्मतः ।

यत्तु प्रधानं तस्यापि सदृशं नैव गृह्यते ॥

अर्थ—जो द्रव्य काष्ठ-चूर्ण-गुटिका आदि में मुख्य करके कही है (जैसे योगराजगूल में गूलमुख्य है) तो इस गूल की प्रतिनिधि नहीं लीना जावेगी बाकी अप्रधान और २ औषधों की प्रतिनिधि लेना चाहिये ॥

अथा तो रसविशेषविज्ञानीयमध्यायः ।

अर्थ—अब मधुरादि रस विशेष विज्ञानीयाध्याय की व्याख्या करते हैं तहां संपूर्ण रसों का प्रथम कारण संभव दिखाते हैं यह सश्रुत की अध्याय है

आकाशपवनदहनतोयभूमिपुयथासंख्यमेकोत्तरवृ

द्धाः शब्दस्पर्शरूपरसगंधाः । तस्मादाप्योरसः पररूप

रससर्गात्परस्परानुग्रहात् परस्परानुप्रवेशाच्च सर्वेषु स

र्वेषां सान्निध्यमस्त्युत्कर्षात्कर्षात्तु ग्रहणम् ॥

अर्थ—आकाश-पवन-अग्नि-जल-और पृथ्वी इनमें क्रमसे एक २ वृद्धि के हिसाबसे शब्द-स्पर्श-रूप-रस-और गंध ये रहते हैं [ जैसे शब्दगुण आकाश, शब्द स्पर्श गुणवान् वायु, शब्द-स्पर्श-रूपगुणविशिष्ट

अग्नि, शब्द-स्पर्श-रूप-रस गुणवान् जलहै, एवं शब्द-स्पर्श रूप-रस-गंध गुणवान् पृथ्वी है । ]

इसी कारण रसहै सो जलका गुणहोनेसे आप्यकहलाताहै । परंतु ये संपूर्ण पंचभूत आपसमें परस्पर संयोगहोनेसे परस्पर एक दूसरेके सहायक होनेसे और परस्पर आपसमें एकात्मी भावहोनेसे सबभूतोंमें सबभूतोंकी सान्निध्यताहै [अर्थात् जितने आकाशादि भूतहै ये पंचीकरणकी रीतिसे एकमेंएक हो रहे हैं] परंतु यदि और हासके होनेसे ग्रहण करे जाते हैं इन्हींके अंशसे पंचविधद्रव्यहै तहां आकाश अंश अधिक द्रव्यमें शब्दाधिक्य जानना, वाताधिक्यमें स्पर्शाधिक्यहै इसी प्रकार अन्य द्रव्योंमें जानो

**सखत्वाप्योरसःशेषभूतसंसर्गाद्विदग्धःपोढाविभज्यते ॥**

अर्थ-वहीं आप्यरस अन्यभूत ( आकाश-अग्नि-पवन और पृथ्वी ) के मिलापसे अमगटभी है परंतु कालकी सहायतासे पृथ्वी-आकाश-पवन अग्नि इनके संसर्गसे परिपाकको प्राप्त होकर छः प्रकारका होजाताहै ॥

**तद्यथा-मधुरोऽम्लोलवणःकटुकस्तिक्तःकषायइति ॥**

अर्थ-तहां मधुर ( मीठा ) अम्ल ( खट्टा ) लवण ( खारी ) कटुक ( नरपरा ) तिक्त ( कड़ुआ ) और कषायकहिये कसेला यह छः रसहै ॥

**तेचभूयःपरस्परसंसर्गाग्निपट्टिधाभिद्यन्ते ॥**

अर्थ-वह छः रस आपसमें मिलकर ६३ भेदवाले होते हैं ये भेद आगे कहेंगे

**तत्रभूम्यम्बुगुणबाहुल्यान्मधुरः । भूम्यग्निगुणबाहुल्या**

**दम्लः । तोयाग्निगुणबाहुल्याल्लवणः । वाय्वग्निगुणबा**

**हुल्यात्कटुकः । वाय्वाकाशगुणबाहुल्यात्तिक्तः ।**

**पृथिव्यनिलगुणबाहुल्यात्कषायइति ॥**

अर्थ-तहां पृथ्वी जल-गुण बाहुल्य मधुररसहै। पृथ्वी-अग्नि गुण बाहुल्य अम्ल रसहै । जल अग्नि गुण बाहुल्य लवण रसहै । वायु अग्निगुणबाहुल्य कटुक ( तीक्ष्ण ) रस है । वायु आकाश गुणबाहुल्य तिक्त ( कड़ुआ ) रस है । एवं पृथ्वी और पवनगुण बाहुल्य कषाय ( कसेला ) रस जानना ॥

**तत्रमधुराम्ललवणावातघ्नाः ॥**

**मधुरतिक्तकषायाःपित्तघ्नाः ॥**

**कटुतिक्तकषायाःश्लेष्मघ्नाः ॥**

अर्थ-तहां मधुर अम्ल और लवण ये तीन रसवादीके नाशक हैं । मधुरतिक्त और कषाय ये तीन पित्तनाशक । एवं कटु तिक्त और कषायरस कफ नाशक जानने ॥

तत्रवायुरात्मनैवात्मापित्तमाग्नेयं श्लेष्मासौम्यइति ।

तएवरसाः स्वयोनिवर्द्धना अन्ययोनिप्रशमनाश्च ॥

अर्थ-तहां वायु-आत्मककेंही अपनी आत्मा है-पित्त आग्नेय है अर्थात् इसकी अग्नि आत्मा है । और कफसौम्य है अर्थात् इस का शीतलता आत्मा है । ये पूर्वोक्तछःहों रस अपनी योनिके ( जिसे जो प्रगट है ) बढ़ानेवाले हैं और दूसरे की योनिको नाशकरते हैं ।

केचिदाहुरग्नीपोमीयत्वाज्जगतोरसाद्विविधाः सौम्या आग्नेयाश्च । तत्रमधुरतिक्तकषायाः सौम्याः कटुम्ललवणा आग्नेयाः ॥ मधुराम्ललवणाः स्निग्धा गुरवश्च ॥ कटुतिक्तकषायारूक्षालघवश्च । सौम्याः शीता आग्नेयाश्चोष्णाः ॥

अर्थ-कोई आचार्य ऐसा कहते हैं कि जगत् अग्नि और सोमीयत्व-होने से रस दोहीप्रकारके हैं जैसे-सौम्यरस और आग्नेयरस इनमें भी मधुर-तिक्त-और कषेले येतीनरस सौम्य ( शीतल ) हैं और कटु-अम्ल-और लवणरस आग्नेय ( गरम ) है । तहां मधुर-अम्ल-और लवण ये रस स्निग्ध और भारी हैं । कटुतिक्त और कषाय येतीनोरस रुखे और हलके हैं। इनमें सौम्यरस शीतल है और आग्नेय रस सब गरम हैं ॥

तत्र शैत्यरौक्ष्यलाघववैशद्यवैष्टम्भ्यगुणलक्षणो वायुस्तस्य समानयोनिः कषायोरसः सोऽस्त्यशैत्याच्छैत्यं वर्द्धयति । रौक्ष्याद्रौक्ष्यं लाघवाच्चाघवं वैशद्याद्वैशद्यं वैष्टम्भ्याद्वैष्टम्भ्यमिति ॥

अर्थ-तहां-शीतल-रूख-हलका-विशद और विष्टंभ लक्षणवान् वायु उसकी समान योनि कसेला रस है वह स्वयं शीतल होनेसे वायुको बढ़ाता है रूख होनेसे वायुमें रूखताको बढ़ाता है उसीप्रकार हलका होनेसे हलके पनेको और विशद ( फैलने ) वाला होनेसे इसवायुको फैलाता है, विष्टंभीगुण होनेसे कसेला रस इसवायुमें विष्टंभताको प्रगटकरे है-तात्पर्य ये है कि वायुके और कसेले रसके ( तुल्ययोनिके ) कारण जो कसेले रसमें गुण हैं वही वायुमें जानने ॥

ओष्ण्यतैक्ष्ण्यरौक्ष्यलाघववैशद्यगुणलक्षणंपित्तम् ॥  
तस्यसमानयोनिः कटुकोरसःसोऽस्यौष्ण्यादौष्ण्यंव  
र्द्धयतितैक्ष्ण्यात्तैक्ष्ण्यरौक्ष्याद्गौक्ष्यलाघवाद्वा  
द्याद्वैशद्यमिति ।

अर्थ-उष्ण-तीक्ष्ण रुक्ष हलका और- विशदगुण इत्यादि लक्षणवाला पित्तहै उसके समानयोनि ( तुल्यगुणवाला ) कटुक ( चरपरा ) रसहै वो इसपित्तको उष्णताके कारण गरमी तीक्ष्णताके कारण तीखापना रुक्षताके कारण रुखापना, हलकेके कारण हलकापना विशदताके कारण वैशद्य गुणोंको बढ़ाताहै कटुरसके सेवनसे इन गुणों की वृद्धि होती है ॥

माधुर्यस्नेहगौरवशैत्यपैच्छिल्यगुणलक्षणःश्लेष्मात  
स्यसमानयोनिर्मधुरोरसःसोऽस्यमाधुर्यान्माधुर्यवर्द्ध-  
यति॥ स्नेहात्स्नेहं, गौरवाद्गौरवं, शैत्यात्शैत्यं, पै-  
च्छिल्यात्पैच्छिल्यमिति॥तस्यपुनरन्ययोनिःकटुको-  
रससंश्लेष्मणःप्रत्यनीत्कत्वाकटुत्वान्माधुर्यमाभिभव  
तिरौक्ष्यात्स्नेहंलाघवाद्गौरवमौष्ण्यात्शैत्यंवैशद्या-  
त्पैच्छिल्यमिति ॥ तदेतन्निर्दर्शनमात्रमुक्तम् ॥

अर्थ-मधुर-स्नेह ( चिकनाई ) गौरव ( भारीपना ) शीतल-पैच्छिल्य ( लसदार ) इत्यादि लक्षणवाला कफहै उसकी समानयोनि ( तुल्य-गुणवाला ) मधुर ( मीठा ) रस है वो इस कफको मधुरके कारण माधुर्यता चिकनेके कारण चिकनाई, भारीहोनेके कारण भारीपना, शीतलताके कारण शीतलत्व, और लसदार होनेके कारण कफमें लसदारपना बढ़ावे है । अबकहते हैं कि, उस कफकी अन्ययोनी ( विपरीतगुणवाला ) कटुक ( चरपरा ) रस है वह कफके विरुद्ध होनेसे और चरपरा होनेसे मिठासको नाशकर्ता है, रुक्षहोनेसे चिकनाईको नाशकर्ताहै, हलके पनेसे कफके भारीपनेको, उष्णहोनेसे कफकी शीतलताको, और विशदगुणवान् होनेसे इसकेकफे लसदार गुणको हरणकर है । यह केवल एकनिर्दर्शनमात्र ( दृष्टांतमात्र ) कहा है इसी प्रकार बुद्धिमान् वेद्य सवरसोंमें उसके समान रसको प्रष्टकर्ता और विपरीत रसको उसका नाशकर्ता जाने ॥

रसलक्षणमतल्लघ्ववक्ष्यामः ॥

अर्थ-अब इसके उपरांत रसोंके लक्षण कहते हैं ॥

तत्रयःपरितोपमुत्पादयतिप्रल्हादयतितर्पयतिजीवयति  
मुखावलेपंजनयतिश्लेष्माणंचाभिवर्द्धयति स-मधुरः ।

अर्थ—तहां जो संतोपको प्रगटकरे सुखबढावे तृप्तिकरे प्राणोंको धारण करे मुखमें मैलको प्रगटकरे और कफको बढावे उसको मधुर ( मीठा ) रस जानना अर्थात् इतने गुण मिष्टरस कर्त्ता है ॥

योदन्तहर्षमुत्पादयतिमुखस्रावंजनयतिश्रद्धाञ्चो  
त्पादयति सोऽम्लः ॥

अर्थ—जो दंतहर्ष ( दांतोंकाखट्वापना ) प्रगटकरे सुखसे पानी गिरावे और श्रद्धाप्रगटकरे उसको अम्लरस जानना । अर्थात् अम्लरसमें इतने गुण हैं ॥

योभक्तरुचिमुत्पादयति कफप्रसेकंजनयतिमार्दवंचा  
पादयति सलवणः ॥

अर्थ—जो भोजनमें रुचिको प्रगट करे सुखसे कफके स्रावको प्रगट करे और नम्रताको प्रगट करे उसको लवण रस जानना । अर्थात् लवण रसमें इतने गुण हैं ।

योजिह्वाग्रंवाधतेउद्वेगंजनयतिशिरोगृह्णीतेना  
सिकांचस्रावयतिसकटुकः ॥

अर्थ—जो जिह्वाके अग्रभागमें बाधाकरे अर्थात् बुरालगे तथा उद्वेगको प्रगट करे तथा उद्वेगके कारण मस्तक पकड़े और नाकसे पानीका स्राव करे उसको कटुरस ( चरपरारस ) जानना ॥

योगलेचोपमुत्पादयतिमुखवैशद्यंजनयतिभक्त  
रुचिंचापादयतिहर्षंच स तित्तः ॥

अर्थ—जो गलेका आकर्षण करे अर्थात् खींचे मुखमें विशद्दता प्रगट करे भोजनमें रुचि बढावे और जिस्के खानेसे रोमांचखडे हों वो तित्त-रस ( कडुआरस ) जानना ॥

योवक्त्रंपरिशोपयतिजिह्वांस्तंभयतिकंठवध्नाति  
हृदयंकर्षयति पीडयतिच सकपायः ॥

अर्थ—जो खानेसे मुखको सुखावे जीभका स्तंभन ( जकडोसी ) कर देवे कंठ बांधे हृदयका आकर्षण करे और पीडा करे उसको कपाय ( कसेला ) रस जानना ये रसोंके लक्षण कहें ॥



## रसगुणानत ऊर्ध्ववक्ष्यामः ।

अर्थ-अब इसके उपरांत रसोंके गुणोंको वर्णन करेंगे-

तत्र मधुरो रसो रस रक्तमांसमेदोऽस्थिमज्जाजः शुक्रस्तन्य  
वर्द्धनश्चक्षुष्यः केदयो वण्यो बलकृत्संधानः शोणितरस  
प्रसादनो बालवृद्धक्षतक्षीणहितः पट्पदपिपीलिकाना  
मिष्टतमस्तृष्णामूर्च्छादाहप्रशमनः पण्डिन्द्रियप्रसादनः  
क्रमिकफकरश्चेतिस एवंगुणोऽप्येक एवात्यर्थमासेव्यमानः  
कासश्वासा लसक वमथ्रुवदनमाधुर्यस्वरोपघातकृमी गल  
गंडानापादयति तथा बर्धुदक्षीपदवस्तिगुदोपलेपाभिस्य  
न्दप्रभृतीन् जनयति ॥

अर्थ-तहां मधुर ( मीठा ) रस, रस रुधिर मांस मेदा हड्डी मज्जा  
ओज शुक्र और स्त्रीके दूध इनको बढ़ाता है तथा नेत्रोंको परम हितकारी  
है. बालोंको बढ़ाता है वर्णको ठजलाकर्त्ता है. बलकारी दूटे हाडको  
जोड़ता है रुधिर रसको स्वच्छ कर्त्ता है बालक वृद्ध और क्षतक्षीण  
( घावोंसे दुर्बल ) इनको हितकारी है मक्खी खाँटी इनको मिय है ये  
प्यास मूर्च्छा और दाह इनको नष्टकर्त्ता है तथा मनको प्रसन्न करे है  
एवं फफ और कृमिरोगको प्रगटकर्त्ता है वही मधुर रस ऐसे गुणवाला भी  
है परंतु यदि केवल इसी मिष्टरसका अत्यंत सेवन करे तो श्वास खाँसी  
जलसक वमन मुखका भीठा रहना स्वरभंग ( गलेका बैठ जाना ) कृमि  
रोग गलगंड आदि अनेक रोगोंको प्रगटकरे है तथा अर्धुद क्षीपद वस्ती  
गुदाका उपलेप और अभिष्यंदी आदि रोगोंको उत्पन्न करता है ॥

अम्लोजरणः पाचनः पवननिग्रहणोऽनुलोमनः कोष्ठवि  
विदाहीवहिः शीतः क्लेदनः प्रायशो हृद्यश्चेति स एवंगुणो  
प्येक एवात्यर्थमपसेव्यमानो दन्तहर्षनयनसंमीलनरोम  
संवेजनकफविलयनशरीरशैथिल्यान्यापादयति तथा  
क्षताभिहतदग्धदष्टभग्नशूलरुग्णप्रच्युता वमृत्रितविसर्प  
तच्छिन्नभिन्नविद्धोत्पिष्टादीनि पाचयत्याग्नेयस्वभावात्  
परिदहति कंठमुरो हृदयश्चेति ॥

अर्थ-अम्ल ( खट्टा ) रस आहारको जरानेवाला-पाचक वादीका नाशक सूजन आदिका अनुलोमकर्ता ( चढाने वाला ) कोष्ठमें दाहकर्ता बाहर शीतलकर्ता क्लेदन और प्रायः हृदयको प्रिय है, ऐसा गुणवाला भी है परंतु केवल खट्टे रसकेही सेवन करनेसे दाँतोंका कुंदहोना वा खट्टे होना नेत्रोंका मूंदना-रोमांचोंका खड़ा होना-कफविलीन कर्ता-शरीरको शिथिलकरे है तथा क्षताभिहत ( घावसे पीड़ित ) अभिसें फुका-सर्पादिकसे काटा-चोटलगा सूजन-हड्डीका टेढ़ाहोना तथा स्थानसे हड्डीका हटना जहरीजानवरकामूत्रलगना-तथा जहरी जानवरका स्पर्श होना छिन्न भिन्न-विद्ध-उत्पिष्टादि भयरोग इनसबको अम्लरस आभेय स्वभाव होनेसे पाचनकर्ता है और इसी कारणसे कंठ छाती और हृदयमें दाह-कर्ता है ये लक्षण अम्लरसके कहे ॥

लवणःसंशोधनःपाचनविश्लेषणःक्लेदनःशैथिल्यकृदुष्णः  
सर्वरसप्रत्यनीकोमार्गविशोधनःसर्वशरीरावयवमार्दवक-  
रश्चेतिसएवंगुणोऽप्येक एवात्यर्थमासेव्यमानो गात्रकंडू-  
कोष्ठशोफवैवर्ण्यपुंस्त्वोघातेन्द्रियोपतापान् तथासुखा-  
क्षिपाकंरक्तपित्तवातशोणिताम्लीकाप्रभृतीनापादयति॥

अर्थ-अब लवणरसके गुणकर्म कहते हैं । तहाँ लवणरस वमनविरचन द्वारा व्रणका शोधनकरे है पाचनहै, प्रत्येक अवयवोंको न्यारे २ करे है आर्द्र और शिथिलकरे है तथागरमहै, सर्वरसमात्रकाविरोधी है मूत्र, नाडी-ग्रणादिकके मार्गोंका शुद्धिकर्ता है शरीरके सर्व अवयवोंका मज्ज करने वालाहै । यदि केवल निमकही निमक सेवनकरे तो देहमें खुजली कीठ ( चकते ) सूजन-देहका विवर्ण और पुरुषार्थ ( शुक्र ) का क्षयकरे है तथा नेत्र आदि इन्द्रियोंका घातकहै तथा मुखपाक नेत्र पाक रक्त और खट्टी डकार आदि रोगोंको करे है ॥

कटुकोदीपनःपाचनोरोचनःशोधनःस्थौल्यालस्यकफ-  
कृमिविपकुष्ठकंडूपशमनःसंधिवंधविच्छेदनोऽवसादनःस्त-  
न्यशुक्रमेदसामुपहन्ताचेति सएवंगुणोऽप्येकएवात्यर्थमु-  
पसेव्यमानोभ्रममदगलताल्वोष्ठशोपगात्रसंतापबलवि-  
घातकम्पतोदभेदकृत्करचरणपार्श्वपृष्ठप्रभृतिपुचवात-  
शूलानापादयति

अर्थ-अब चरपरे रसकी प्रकृति और कर्मदिखाते हैं कटुक (चरपरा)

रस दीपन-पाचन-रोचन-शोधन है स्थूलता आलस्य-कफ-कृमि-विष कुष्ठ खुजली इनको नाशकरे । संधिवंधनको खोलनेवाला-अनुत्सोहकर्ता-स्तन्य ( स्तनसंबंधी दूध ) शुक्र भेदइनको नष्टकरे है ऐसा भी है परंतु केवल इसी रसका अत्यंत सेवन करे तो भ्रम करे भदकरे गला-तालु-होठ-इनका शोषकरे-देहमें संताप-बलको नष्टकरे कंप-सुईकीसी चभक-तथा तोड़ने कीसी पीड़ा-तथा हाथ-पैर दोनों बगल-पीठ इत्यादि अंगमें वात शूलोंको प्रगट करे है ॥

तित्तच्छेदनोरोचनोदीपनःशोधनःकंडूकोष्ठतृणामूर्च्छाज्व-  
रप्रशमनः स्तन्यशोधनोविण्मूत्रकृदभेदोवसापूयोपशोषण-  
श्चेतिसएवंगुणोऽप्येकएवात्यर्थमुपसेव्यमानोगात्रमन्यास्तं-  
भाक्षेपकादितः शिरः शूलभ्रमतोदभेदच्छेदास्यवैरस्या  
न्यापादयति ॥

अर्थ-अब फलुपरस की प्रकृति और कर्म दिखाते हैं-कडुआरस छेदन रोचन ( अन्यवस्तुओंका है किंतु स्वयं रोचन नहीं है ) दीपन-शोधन है तथा खुजली-चफत्ते-प्यास-मूर्च्छा और ज्वर इनको नाशकर्ता है । स्त्रीके-स्तनसंबंधी दूधका शोधनकरे मलमूत्र-कृद-भेद-वसा-पूय ( राध ) इन इनको शोषणकर्ता है । इत्यादि गुणविशिष्ट भी है परंतु यदि केवल यही रस अत्यंत सेवन करे तो देहस्तंभ और मन्यास्तंभ तथा भाक्षेपकसे आदिले मस्तकशूल-भ्रम-चभका छेदनेकीसी पीड़ा और मुसमें विरसता इत्यादि रोगोंको करे है ॥

कपायःसंग्राहकोरोपणःस्तंभनशोधनोलेखनःशोषणःपीड-  
नःकृदोपशोषणश्चेतिसएवंगुणोऽप्येकएवात्यर्थमुपसेव्यमानो  
हृत्पीडास्यशोषोदराध्मानवाक्यग्रहमन्यास्तंभगात्रस्फुर-  
णचुमचुमायनाकंचनाक्षेपणप्रभृताञ्जनयति ॥

अर्थ-अब कपायरसके गुण-कर्म दिखाते हैं-कपलारस संग्राही ग्रणको रोपणकर्ता है देहको स्तंभनकारी है-अथवा मृदुको दृढकरे है-ग्रणका शोधनकारी है घनाच्छन्न मांसकालेखनकारी है द्रवधातुका शोषणकर्ता है-अथवा ग्रणप्रमेहका शोषणकर्ता है तथा ग्रणका वा हृदयका पीडनकर्ता और कृदका शोषणकर्ता है इत्यादि गुणवाला भी है परंतु केवल इसही रसका अत्यंत सेवन करे तो हृदयपीड़ा मुसकासुखना-उदररोग-अफरा-

वाणीका रुकना मन्यास्तंभ अंगोंका फड़कना राई लगानेके समान त्वचामें चुमचुमपीडाहो. देहसंकोच-देहका काँपना प्रभृतिके कहनेसे अन्य-भीवातके विकार आदित आदिहोवे ॥

अतः सर्वेषामेव द्रव्याण्युपदेक्ष्यामः

तद्यथा । कांकोल्यादिः क्षीरघृतवसामज्जाशालिपट्टि-  
कयवगोधूममापशृंगाटककसेरुकत्रपुसैर्वा रुककर्कारु-  
कालांबुकांलिदकतकगिलोडचपियालपुष्करबीज-  
काश्मर्यमधुकद्राक्षाखर्जूरराजादनतालनालिकेरेक्षु-  
विकारबलातिबलात्मगुप्ताविदारीपयस्यागोक्षुरक-  
क्षीरमोरटमधूलिकाकूष्मांडप्रभृतीनिसमासेन मधुरोवर्गः ।

अर्थ-अब संपूर्ण रसोंकी द्रव्योंको कहते हैं तहां प्रथम मधुरवर्ग कहते हैं जैसे कांकोल्यादिगण-दूध-घी-वसा- मज्जा शालि और साँठी चावल जौ गेहूँ उडद सिंघाड़े कसेरू खीरा आर्या फकडी धीया तरबूज फतक-फल गिलोडच ( गिल्लोठी ) चिरौंजी कमलगट्टा कंभारी महुआ दाख खजूर ( झुहारा ) खिरनी तालफल गरी ईखके विकारमात्र बला अति-बला तालमखाने विदारीकंद क्षीरकांकोली गोखरू दूधका मोरट ( छा-छकाभेद ) मधूलिका और पेठा इनसे आदि ले औरभी यह मधुरवर्ग संक्षेपसे कहा है ॥

अम्लवर्गः ।

दाडिमामलकमातुलुंगात्रातककपित्थकरमर्दवदरको-  
लप्राचीनामलकर्तितिडीककोशाग्रभव्यपारावतवेत्र-  
फललकुचाम्लवेतसदन्तशठदधितक्रसुराशुक्तसौवी-  
रकतुपोदकधान्याम्लप्रभृतीनि समासेनाम्लोवर्गः ॥

अर्थ-अनार, आमले, विजोरा, अंबाड़े, कैथा, करोंदा, बेर, चडावेर, पानी आमला, तित्तिडीक लालवनकाआंब कमरख, फालसा, वेतकाफल बडहर, अमलवेत, जैभारी, दही, छाँछ, दारू सिरका गेहूँकी कांजी तुपो-दक ( जौकीकांजी ) धान्याम्ल इत्यादि संक्षेपसे यह अम्लवर्ग कहा ॥

लवणवर्गः ।

सैधवसौवर्चलविडपाक्यरोमकसामुद्रकपक्तिमयवक्षा-

रोपप्रसूतमुवर्चिकाप्रभृतीनिसमासेनलवणोवर्गः ॥

अर्थ-सैधानिमक-कालानिमक-विड-खारी-साक्षर-समुद्रकानिमक-  
फुल्ला निमक-जवाखार-रेहकानिमक-सच्ची-चा सोरा इत्यादिक यह  
संक्षेपसे लवण वर्ग कहा है ॥

कटुकवर्गः ।

पिप्पल्यादिः सुरसादिः शिशुमधुशिशुमूलकलशुनमु-  
मुखशीतशिवकुष्ठदेवदारुहरेणुकावल्गुजफलचंडागु-  
ग्गुलुमुस्तलांगलकीशुकनाशापीलुप्रभृतीनि सालसा-  
रादिश्च प्रायशः कटुकोवर्गः ॥

अर्थ-पिप्पल्यादिगण. सुरसादिगण-सहजना-सहत-सहजनेकीजड  
लहसन-वैजयंती-तुलसी-फूल-कूठ-देवदारु-हरेणु-चावची-अजमोद  
के आकार सुगंधद्रव्य-गुग्गुलु-नागरमोथा-कलियारी-टेंदु-पीलू-और  
सालसारादिगण इत्यादि यह सब संक्षेपसे कटुकवर्ग हैं ॥

तिक्तवर्गः ।

आरग्वधादिगुडूच्यादिर्मण्डूकपर्णीवेत्रकरीरहरिद्राद्व-  
येन्द्रयववरुणस्वादुकंटकसप्तपर्णवृहतीद्वयशंखिनीद्र-  
वंतीत्रिवृत्कृतवेधनककोटककारवेल्लकवार्त्ताककरीर-  
करवीरसुमनःशंखपुष्प्यपामार्गत्रायमाणाऽशोकरो-  
हिर्णावैजयन्तीमुवर्चलापुनर्नवावृश्चिकालीज्योतिष्म-  
तीप्रभृतीनिसमासेनतिक्तोवर्गः ॥

अर्थ-आरग्वधादिगण-गुडूच्यादिगण-मण्डूकपर्णी ( ब्राह्मीकाभेद ) पत-  
करीरके अंकुर,हरदी-दारुहल्दी-इन्द्रजौ-वरना विरकत-सतोना छोटी-  
कटेरी बड़ी कटेरी यवतिक्ता दंती-निसोत-वडूइतोरई-ककोडा-करेला  
वैंगन-करीर-चमेली-शंखपुष्पी-आंगा-त्रायमाण-कुटकी-अरनी-हुल-  
हुल-सोंठ-वृश्चिकपर्त्री-मालफाँगनी इत्यादि सबवस्तु संक्षेपसे तिक्तवर्ग हैं ॥

कषायवर्गः ।

न्यग्रोधादिरंघादिः प्रियंग्वादि रोध्रादिस्त्रिफलागल-  
कीजम्बाप्रवकुलतिन्दुक फलानि कतकशाकपापा-

णभेदकवनस्पतिफलानि सालसारादिश्चप्रायशःकुर  
वककोविदारकजीवंतीचिल्लीपालक्यासुनिपण्णकप्र  
भृतीनि निवारकादयोमुद्गादयश्चसमासेनकपायोवर्गः ॥

अर्थ-न्यग्रोधादिगण-अंवष्टादिगण-प्रियंगवादिगण, रीध्रादिगण-त्रिफला  
( हरड-बहेडा-आमला ) सालवृक्ष-जामुन-आम्र-मौलसिरी-तेंदूकेफल  
निर्मली-खरशाक-पापाणभेद-बड आदि वृक्षोंकेफल-सालसारादिगण  
कुरवक-कोविदार ( कचनारकाभेद ) जीवंतीकाशाक-चिल्ली ( खैतका-  
चयुआ ) पालक चौपतिया आदि साग और समापसाई आदि तथा  
मूंग आदि ये संक्षेपसे कपायवर्ग हैं ॥

तत्रैपांरसानांसंयोगास्त्रिपष्टिर्भवन्तितद्यथा । पंचदशद्वि  
का विंशतिस्त्रिकाः पंचदशचतुष्काःषट्पंचकाएकशः  
षड्रसाएकःषट्कइतितेपांमन्यत्रप्रयोजनानिवक्ष्यामः ॥

अर्थ-पूर्वाक्त रसोंके संयोग होनेसे ६३ भेद होते हैं जैसे दो दोरसके  
मिलापसे १५ तीनके मिलापसे २० चार २ केमिलापसे १५ पांचपांचके  
मिलापसे ६ छः रसोंके मिलापसे १ भेद और एक २ पृथक् होनेसे ६ भेद  
ऐसे कुलजोड़नेसे ६३ भेद होते हैं इनका प्रयोजन अन्यवर्णन करेंगे ॥

इनकेभेदपद्यमें लिखते हैं ।

पद्येनच सुखस्मृत्यै रसभेदाद्भृणुष्वमे । मधुरोऽम्लेन पटुनातिक्तेन  
कटुकेनच ॥ १ ॥ कपायेण पृथक् सार्धमम्लःसुलवणेनच । तिक्तेनकटुना  
सार्धं कपायेणपृथक् पृथक् ॥ २ ॥ पटुस्तिक्तेन कटुनाकपायेण पृथक्पृथक् ।  
तिक्तस्तुकटुनासार्धं कपायेण पृथक् पृथक् ॥ ३ ॥ कटुकस्तु कपायेण  
द्विसंयोगे इतिस्मृताः । दशपंचच भेदास्तुसंख्याता विंशतिस्त्रिके ॥ ४ ॥  
मधुराम्लौतु पटुना तिक्तेन कटुना तथा । कपायेण तथा सार्द्धं तथा  
स्वादुषट् पृथक् ॥ ५ ॥ तिक्तेन कटुकेनापि कपायेण तथासह । स्वादु-  
तिक्तौतु कटुनाकपायेण पृथक् सह ॥ ६ ॥ स्वादूपणौ कपायेण स्वादो-  
रेवंदश त्रिके । भेदास्पूरम्ललवणौ तिक्तेन कटुना पृथक् ॥ ७ ॥ कपायेण  
तथासार्धमम्लतिक्तौ पृथक्सह । कटुकेनकपायेण तथासहकटुको सह  
॥ ८ ॥ कपायेणेतिषट् प्रोक्ता भेदा अम्लस्पृतुत्रिके । पटुतिक्तौ तु कटुना  
कपायेण पृथक् सह ॥ ९ ॥ षट्पणोःकपायेण भेदाइति षटोऽस्ययः ॥  
तिक्तौपणौ कपायेण तिक्तस्यैवंसकृत्स्मृतः ॥ १० ॥ त्रिकेभेदाइतिप्रोक्ता  
चतुष्के दशपंचच । स्वादम्ल लवणा सार्द्धं तिक्तेन कटुकेनच ॥ ११ ॥  
पृथक्कपायेण तथा मधुराम्लौ सतिक्तौ । कटुकेनतुसंपृक्तौ कपायेणपृ-

थकृतथा ॥१२॥ स्वाद्वल्लकटुकाः सांद्धिकपायेणेति पटस्मृताः । सप्तमश्चात्र  
मधुरोलवणोपणतित्तकैः ॥१३॥ भेदोष्टमोमतः स्वादुकटुतित्तकपायकैः ।  
नवमस्तत्र मधुरः षड्वणकपायकैः ॥ १४ ॥ दशमोऽत्र भवेत्स्वादुतिको  
पणकपायकैः । दशभेदा भवत्येवं मधुरेणचतुष्कके ॥१५॥ कटुतिक्ताम्ल-  
लवणेभेदएवश्चतुष्कके । द्वितीयः स्वम्ल लवण कपायकटुकैः स्मृतः ॥१६॥  
तृतीयोऽत्र भवेदम्लकटुतित्त कपायकैः चतुर्थोऽत्र भवेदम्लतिकोपणकपायकैः  
॥ १७ ॥ एवमम्लेनभेदास्युश्चत्वारोत्रचतुष्कके । पटुनैकोत्रलवण  
तिकोपणकपायकैः ॥ १८ ॥ एवपंचदशख्याताश्चतुष्करससंख्यया । पटु  
भेदान् पंचके प्रादुस्तान्वक्ष्यामि विभागशः ॥ १९ ॥ एकोभेदोम्ललवण  
तिकोपणकपायकैः । द्वितीयः स्वादुलवण तिकोपणकपायकैः ॥ २० ॥  
तृतीयस्त्वम्लमधुरतिकोपणकपायकैः । चतुर्थस्त्वम्लमधुरषड्वणकपायकैः  
॥ २१ ॥ पंचमस्त्वम्लमधुरपटुतित्तकपायकैः । षष्ठोभेदोम्लमधुरलवणो  
पणतित्तकैः ॥ २२ ॥ षड्भेदा इति निर्दिष्टाः पंचकेऽपि विभागशः । भेदः  
स्वाद्वल्ललवणतिकोपणकपायकैः ॥ २३ ॥ एकएवषड्विंशेन पृथक्त्वेनपटु  
स्मृताः । स्वादुरम्लोऽथलवणतित्तकश्चकटुस्तथा ॥ २४ ॥ कपायइतिभे-  
दाः स्युः सर्वतोऽत्र निपट्रिषा । क्षीरंसुराविडं निवश्चव्यापन्नं रसाभयम् २५ ॥  
द्रव्यं स्वादुरसादीनां पण्णां विद्विषयाक्रमम् । द्रव्यं द्रव्यान्तरेणैव योजयेद्दि-  
रसादिषु ॥ २६ ॥ धात्रीफलं शर्करया लवणेनार्द्रकं तथा । एवमादीनि  
द्रव्याण्योजयेद्भिषगुत्तमः ॥ २७ ॥ कानिचिद्विरसादीनि द्रव्याणि स्युः  
स्वभावतः । यथैणः षड्विंशः कृष्णो यथापंचरसाभया ॥ २८ ॥ मद्यपंच-  
रसं यद्वत्तिको यद्वच्चत्वरसः । एरंडतैलं विरसं भाक्षिकं विरसं यथा ॥  
॥ २९ ॥ घृतमेकं स्वादुरसं मधुरादिविभागतः ॥ दिङ्मात्रादुदितादि-  
वैशेषमूल्यमनीपिणा ॥ ३० ॥

वदाहरण ।

एकरसकभेद

- १ स्वादु
- २ अम्ल
- ३ लवण
- ४ कटु
- ५ तित्त
- ६ कपाय

द्वोरसकभेद

- १ मधुर-अम्ल
- २ मधुर-लवण
- ३ मधुर-तित्त
- ४ मधुर-कटु
- ५ मधुर-कपाय
- ६ अम्ल-लवण
- ७ अम्ल-तित्त

द्वोरसकभेद

- ८ अम्ल-कटु
- ९ अम्ल-कपाय
- १० लवण-तित्त
- ११ लवण-कटु
- १२ लवण-कपाय
- १३ तित्त-कटु
- १४ तित्त-कपाय
- १५ कटु-कपाय

## तीनरसकेभेद.

- |                   |                    |
|-------------------|--------------------|
| १ मधुर-अम्ल-लवण   | ११ अम्ल-लवण-तिक्त  |
| २ मधुर-अम्ल-तिक्त | १२ अम्ल-लवण-कटुक   |
| ३ मधुर-अम्ल-कटुक  | १३ अम्ल-लवण-कपाय   |
| ४ मधुर-अम्ल-कपाय  | १४ अम्ल-तिक्त-कटुक |
| ५ मधुर-लवण-तिक्त  | १५ अम्ल-तिक्त-कपाय |
| ६ मधुर-लवण-कटुक   | १६ अम्ल-कटु-कपाय   |
| ७ मधुर-लवण-कपाय   | १७ लवण-तिक्त-कटुक  |
| ८ मधुर-तिक्त-कटुक | १८ लवण-तिक्त-कपाय  |
| ९ मधुर-तिक्त-कपाय | १९ लवण-कटु-कपाय    |
| १० मधुर-कटु-कपाय  | २० तिक्त-कटु-कपाय  |

## चाररसके भेद.

- |                        |                        |
|------------------------|------------------------|
| १ मधुर-अम्ल-लवण-तिक्त  | ८ मधुर-लवण-तिक्त-कपाय  |
| २ मधुर-अम्ल-लवण-कटुक   | ९ मधुर-लवण-कटु-कपाय    |
| ३ मधुर-अम्ल-लवण-कपाय   | १० मधुर-तिक्त-कटु-कपाय |
| ४ मधुर-अम्ल-तिक्त-कटुक | ११ अम्ल-लवण-तिक्त-कटुक |
| ५ मधुर-अम्ल-तिक्त-कपाय | १२ अम्ल-लवण-तिक्त-कपाय |
| ६ मधुर-अम्ल-कटु-कपाय   | १३ अम्ल-लवण-कटु-कपाय   |
| ७ मधुर-लवण-तिक्त-कटुक  | १४ अम्ल-तिक्त-कटु-कपाय |
|                        | १५ लवण-तिक्त-कटु-कपाय  |

## पाँचरसकेभेद

- |                            |                            |
|----------------------------|----------------------------|
| १ मधुर-लवण-तिक्त-कटुक-कपाय | ४ मधुर-अम्ल-लवण-तिक्त-कपाय |
| २ मधुर-अम्ल-तिक्त-कटु-कपाय | ५ मधुर-अम्ल-लवण-तिक्त-कटुक |
| ३ मधुर-अम्ल-लवण-कटु-कपाय   | ६ अम्ल-लवण-तिक्त-कटु-कपाय  |

## छःरसका एकहीभेद है ।

१ मधुर-अम्ल-लवण-कटु-तिक्त-कपाय.

धीमें केवलमिष्टरस रहे हैं-सहतमेंदोरसरहते हैं-अंडकेतेलमें१रसहैं-



तिलमें चाररस हैं—हरड और मद्यमें पांचरस हैं तथा काले हरिणके मांसमें छारसरहते हैं मिष्टरस दूधमें—अम्लरसदारुमें—निमकमें लवणरस—नीममें कडुआरस—चव्यमें चरपरा—और पद्ममें कसेलारसरहता है.

**जग्धाःपडाधिगच्छन्तिवलिनोवशतांरसाः ॥**

**यथाप्रकुपितादोषावशंयांतिवलीयसः ॥**

अर्थ—भोजनकरे हुए छहोंरसमें जो बलवान् होता है उसीके वशीभूत होते हैं अर्थात् उसीका सा फल देते हैं—जैसे कुपित वातादिदोषोंमें जो दोष बलवान् होता है उसीके अनुगामी अन्यदोष होजाते हैं अथवा अभ्यास—करे हुए एक २ रस वाली पुरुषके आधीन होते हैं अर्थात् उसको अवगुण नहीं करते जैसे वलीदोष—

मधुरादिकोंके अन्यविशेषगुणतर्हामधुररसके गुण ।

**मधुरंश्लेष्मलं सर्वमृते शालेः पुरातनात् ।**

**मुद्गाद्गोधूमतः क्षौद्रात्सितायाजंगलामिपात् ॥**

अर्थ—मधुर पदार्थ मात्र सब कफकारी होते हैं, परंतु पुराने शाली चायल मूंग—गोहूँ—सहत—खांड—और जंगली जीवोंका मांस ये पदार्थ त्यागकर अर्थात् ये पदार्थ मधुरहोने परभी कफकारी नहीं है ॥

अम्लरसके विशेषगुण ।

**अम्लं पित्तकरं प्रायो विना धात्रा च दाडिमम् ।**

अर्थ—प्रायः करके संपूर्ण खट्टे पदार्थ पित्तकर्ता हैं परंतु आमले और अनारदानेके बिना अर्थात् आमले और अनार दाने पित्त नहीं करते—

लवणरसके विशेषगुण ।

**लवणं प्रायशो द्विपिनेत्रयोः संधवं विना ॥**

अर्थ—संपूर्ण लवण प्रायः नेत्रोंको विगाढ़ने वाला है, परंतु संधे निमकके बिना अर्थात् संधानिमक नेत्रोंको हितकारी है ॥

तीक्ष्णरसके गुण ।

**प्रायः कटुतया तित्तमवृष्यं वातकोपनम् ।**

**शुंठी कृष्णारसो नानि पटोलममृता विना ॥**

अर्थ-प्रायः तीक्ष्ण द्रव्य वातकोपकारी है परंतु सोंठ-पीपर-लहसुन परवल-और गिलोय ये वातकोपकर्ता नहीं है ॥

पिप्पलीनागरं मुस्तंकटुचावृष्यमुच्यते ।

प्रायशःस्तंभनं प्रोक्तं कपायमभयां विना ॥

अर्थ-पीपल-सोंठ-नागरमोथा इनके बिना प्रायः संपूर्ण तीक्ष्ण पदार्थ धातुनाशक हैं और हरडको त्यागके बाकी कसेलारस स्तंभनकारी है ॥

सामान्येनात्र निर्दिष्टा गुणाः पदसंभवाः ।

रसानां योगतस्तु स्यादन्य एव गुणोदयः ॥

अर्थ-ये छः रसोंके सामान्य गुणकहे हैं परंतु दूसरे रसोंके योग करके अन्य गुण भी होते हैं ॥

संयोगी गुण ।

संयोगाद्विपतां यातिसममाज्येनमाक्षिकम् ।

अमृतत्वं विपयातिसर्पदपृथ्व्यैव यथा ॥

अर्थ-वी और सहत ये संयोगमें समान होनेसे विपरूप होते हैं जैसे सर्पकेकटिद्वय पुरुषको अमृत विपरूप होता है उसी प्रकार जानना ॥

पृथिव्यादिभूतोंके गुण ।

गुरुलघुस्तथास्निग्धोरुक्षस्तीक्ष्ण इति क्रमात् ।

भूतभोवारिवातानां वह्नेरते गुणाः स्मृताः ॥

अर्थ-गुरु लघु स्निग्ध रुक्ष तीक्ष्ण यह क्रमसे आकाश पृथ्वी जल पवन और अग्नि इनके गुण जानने ।

गुरुलघुइत्यादिपदार्थोंके गुण ।

गुर्वादयो गुणाद्रव्ये पृथिव्यादौ रसात्रये ॥

स्तेषु व्यपदिश्यंते साहचर्योपचारतः ॥

अर्थ-गुरु आदि गुण पृथ्व्यादिके द्रव्यमें रहते हैं वी उन पृथिव्यादिके साहचर्यसे पृथिव्यादिके रसादिगुणोंमें रहते हैं ।

सुश्रुतोंके विंशतिगुणाः ।

सुश्रुते तु गुणा एते विंशतिस्तानहं ब्रूवे । गुरुलघुस्निग्ध

रुक्षोतीक्ष्णः श्लक्ष्णः स्थिरः सरः ॥ पिच्छलोविशदः

शीतउष्णश्चमृदुकर्कशौ । स्थूलसूक्ष्मौद्रवः शुष्कआशु  
मंदः स्मृतागुणाः ॥

अर्थ-सुश्रुतमें ये बीसगुण कहें हैं उनको हम कहते हैं १ गुरु २ लघु ३ स्निग्ध ४ रुक्ष ५ तीक्ष्ण ६ श्लक्ष्ण ७ स्थिर ८ सारक ९ पिच्छल १० विशद ११ शीत १२ उष्ण १३ मृदु १४ कर्कश १५ स्थूल १६ सूक्ष्म १७ द्रव १८ शुष्क १९ शीघ्र और २० मंद ये बीस गुणकहे हैं ।

गुरुगुण ।

गुरुवातहरंपुष्टिश्लेष्मकृच्चिरपाकिच ॥

अर्थ-गुरु ( भारी ) द्रव्य वातनाशक पुष्टता और कफको करेहै तथा देरमें पचताहै ।

लघुगुण ।

लघुपथ्यंपरंप्रोक्तंकफघ्नंशीघ्रपाकिच ॥

अर्थ-लघु ( हलका ) द्रव्य अत्यंत पथ्यकारकहै कफनाशक और जल्दी पचनेवालाहै ॥

स्निग्धगुण ।

स्निग्धंवातहरंश्लेष्मकारिवृष्यंबलावहम् ॥

अर्थ-स्निग्ध ( चिकना ) द्रव्य वातहरण करता कफकारी वृष्य और बल बढ़ानेवाला जानना ॥

रुक्षगुण ।

रुक्षंसमीरणकरंपरंकफहरंमतम् ॥

अर्थ-रुक्षपदार्थ अत्यंत वादीकरे और कफको हरण करनेवालाहै ।

तीक्ष्णगुण ।

तीक्ष्णापित्तकरंप्रायोलेखनंकफवातनुत् ॥

अर्थ-तीक्ष्णपदार्थ प्रायः पित्तकारी लेखनकफ और वातकोनाशकरे ।

श्लक्ष्णगुण ।

श्लक्ष्णःस्नेहंविनापिस्यात्कठिनोपिहिचिकणः ॥

अर्थ-श्लक्ष्णद्रव्य विनाचिकनाईकेभी कठिन और चिकना होताहै जैसे रूढद पद्मरफीसिलीआदि ॥

स्थिर और सरगुण ।

स्थिरोवातमलस्तंभीसरस्तेषांप्रवर्तने ॥

अर्थ-स्थिरपदार्थ-वात और मलका रोकनेवाला है और सर पदार्थ वात और मलको निकालने वाला है अर्थात् दस्तावर है ॥

पिच्छलगुण ।

पिच्छलस्तंतुलोबल्यः संधानःशुष्मलोगुरुः ॥

अर्थ-पिच्छलपदार्थ तंतुछूटनेवाला-बल-भ्रमसंधानकर कफ और भारीहै.

विशदगुण ।

क्लेदच्छेदकरःख्यातोविशदोव्रणरोपणः ॥

अर्थ-विशद पदार्थ-क्लेदकानाशक-दस्तावर-और व्रणको भरनेवाला ऐसाहै

शीतगुण ।

शीतस्तुहादनस्तंभीमूर्च्छातृट्स्वेददाहनुत् ॥

अर्थ-शीतपदार्थ-आनंदकारी-स्तंभक-और मूर्च्छा, तृषा, पसीना, दाह, इनका नाशक है ॥

उष्णगुण ।

उष्णोभवतिशीतस्यविपरीतश्चपाचनः ॥

अर्थ-उष्णपदार्थ-आनंदनाशक-रेचक-मूर्च्छा-प्यास-पसीना-दाहको करनेवाला-तथा पाचक है ॥

स्थूलगुण ।

स्थूलःस्थौल्यकरोदेहेस्रोतसामवरोधकृत् ॥

अर्थ-स्थूलपदार्थ देहको स्थूलकरे, तथा देहके छिद्रोंको रोकता है ॥

सूक्ष्मगुण ।

देहस्यसूक्ष्मछिद्रेषुविशेद्यत्सूक्ष्ममुच्यते ॥

अर्थ-जो देहके बहुत बारीक छिद्रोंमें प्रवेशकरे उसको सूक्ष्म कहतेहैं ॥

द्रवगुण ।

द्रवःक्लेदकरोव्यापी

अर्थ-द्रवपदार्थ-देहको आर्द्रकरे-और सर्व देहमें व्याप्त होवे ॥

शुष्कगुण ।

शुष्कस्तद्विपरीतकः ॥

अर्थ-शुष्क पदार्थ-देहको शुष्ककरे और सर्वदेहमें व्याप्त नहीं हो ॥

आशुकारीगुण ।

आशुराशुकरोदेहेधावत्यंभासितैलवत् ॥

अर्थ—आशुकारीपदार्थ देहमें—शीघ्र फैले है जैसे जलमें तैलकी बिंदु फैलती है ॥

मंदगुण ।

मन्दःसकलकार्येषुशिथिलःसोपिकथ्यते ॥

अर्थ—मंदद्रव्य संपूर्ण कार्यमें शिथिल रहता है ॥

मृदु और कर्कश ।

प्रसिद्धौद्वाविमौलोकेगुणौचमृदुकर्कशौ ॥

अर्थ—इससंसारमें दोगुण प्रसिद्ध हैं एक मृदु (नम्र) दूसरा कर्कश (कठोर)

प्रस्तावाद्दीपनादयोगुणाःसलक्षणानि ।

पचेन्नामवह्निकृच्च दीपनंतद्यथामिश्रिः ॥

अर्थ—जो औषधी आमको न पचावे और अमिको दीप्त करे वो औषध दीपनसंज्ञक जानना—उदाहरण—जैसे सोंफ—

पाचनादिऔषध ।

पचत्यामनवह्निकुप्याद्यत्तद्धिपाचनम् ॥

नागकेशरवद्विद्याचित्रोदीपनपाचनः ॥

अर्थ—जो औषध आमको पचावे परंतु जठराग्निको दीप्त न करे उस औषधको पाचन कहते हैं जैसे—नागकेशर । और जो आमकोभी पचावे तथा जठराग्निको दीप्तभी करे उस औषधको दीपन पाचन संज्ञा है जैसे चित्रक ( चीता ) ॥

संशमनऔषध ।

नशोधयतिनद्वेष्टिसमान्दोषांस्तथोद्धतान् ।

समीकरोतिविपमान्शमनंतद्यथामृता ॥

अर्थ—जो औषध वातादिसमान दोषोंको न शोधन करे न विगांठे किंतु उद्धत ( विपम ) भाव स्थितोंको जो समानकर देवे उस औषधी-को शमनसंज्ञा फही है जैसे गिलोय ॥

अनुलोमनऔषध ।

कृत्वापाकंमलानांयद्विन्वाबंधमधोनयेत् ॥

तच्चानुलोमनज्ञेयंयथाप्रोक्ताहरीतकी ॥

अर्थ-जो औषध मल ( वातादिदोषों ) को पाककर तथा परस्पर मिलेहुएनको पृथक् २ कर अधोभाग ( नीचेगुदा लिंग ) में प्राप्तकरे अथवा अधोवात-मल-मूत्र इनके बंधनको ( अर्थात् बद्धकोष्ठताको ) पृथक् २ कर नीचेके भागमें लायके गुदाके द्वारा निकाले उस औषधको अनुलोमन कहते हैं-जैसे हरड ॥

संसनऔषध ।

पक्तव्यं यदपक्वैव श्लिष्टं कोष्ठे मलादिकम् ।

नयत्यधः संसनंतद्यथा स्यात्कृतमालकः ॥

अर्थ-पश्चात् पाक होनेवाले ऐसे वातादिदोष कोष्ठके आश्रित रहने वालोंको बिनापाककरे ही उनको नीचेलाय गुदाके द्वारा बाहर पटके उस औषधको संसनसंज्ञक जानना उदाहरण-जैसे-अमलतासकागूदा ॥

भेदनऔषध ।

मलादिकमबद्धं वायुद्वद्धं पिंडितं मलैः ।

भित्त्वाधः पातयति तद्भेदनं कटुकीयथा ॥

अर्थ-वातादिदोष फर्के अबद्ध अथवा बद्ध ( बंधाहुआ ) जो मल-मूत्रादि बोधधित ( गांठदार ) हुएनको भेदकर जो औषध अधोभागमें लाय गुदाद्वारा बाहरनेरे उसको भेदन कहतेहैं उदाहरण जैसे-कुटकी ॥

रेचनऔषध ।

विपक्वं यदपक्वं वा मलादिद्रवतानयेत् ।

रेचयत्यपित्तज्ज्ञेयं रेचनं त्रिवृतायथा ॥

अर्थ-पेटमें विशेषकरके अन्नादिकको उत्तमपाक होनेपर अथवा कुछ कच्चा रहनेपर उस अन्नको तथा वातादिकका पतलाकरके जो औषध अधोभागमें लाकर गुदाके द्वारा दस्तकरावे उस औषधको रेचन संज्ञा है जैसे-निशोथ-जमाल गोटा-सनाय आदि-

वमनऔषध ।

अपक्वपित्तश्लेष्माणं वलादूर्ध्वनयेत्तु यत् ।

वमनं तद्विज्ञेयं मदनस्य फलं यथा ॥

अर्थ-पक्वदशामें नहीं प्राप्तहुए ऐसे पित्तकफको बलपूर्वक जो औषध

१ आदि शब्दकरके मलमूत्रादि जानने ।

मुखके द्वारा वमन करावे उसको वमनसंज्ञक जानना उदाहरण  
जैसे-मैनफल ॥

संशोधनऔषध ।

स्थानाद्वहिर्नयेदूर्ध्वमधोवामलसंचयम् ।

देहेसंशोधनंतत्स्यादेवदालीफलंयथा ॥

अर्थ-अपने स्वस्थानमें वातादिकोंका हुआ जो संचय उसकी ऊपरके  
भागमें लायकर मुखके द्वारा-अथवा नाकके द्वारा बाहर काढे अथवा  
उस संचयको अधोभागमें प्राप्तकर गुदाके द्वारा दस्तोंमें होकर या लिंग-  
के द्वारा मूत्रमें होकर निकाले उस औषधको देहमें संशोधनजानना  
जैसे-देवदाली ( सोनैया-बंदाल )

छेदनऔषध ।

क्लिष्टान्कफादिकान्दोषानुन्मूलयतियद्वलात् ।

छेदनंतद्यवक्षारो मरिचानिशिलाजतु ॥

अर्थ-जो औषध परस्पर एकसे एक मिले ऐसे जे कफादिदोष उनकी  
अपनी शक्ति करके तोड़फोड़ न्यारे २ करे उस औषधको छेदन कहते  
हैं जैसे-जवाखारादि तथा कालीमिरच-सोंठ-पीपल और शिलाजीत  
इत्यादिक जानना ॥

लेखन ।

धातून्मलान्वादेहस्यविशोष्योल्लेखयेच्चयत् ।

लेखनंतद्यथाक्षौद्रंजीरमुष्णंवचायवाः ॥

अर्थ-जो औषध रसादिधातु और वातादि दोष इनका शोधनकर  
उनको पतलाकरे उसको लेखन जानना जैसे-सहत-गरमजल पच और जी॥

ग्राहीऔषध ।

दीपनंपाचनंयत्स्यादुष्णत्वाद्ववशोपकम् ।

ग्राहीतच्चयथाशुंठीजीरकंगजपिप्पली ॥

अर्थ-जो औषध अग्निको प्रदीप्तकरे तथा आमादिकोंका पाचन करे  
तथा उष्णधीयं होकर जलस्वरूप जो कफादिदोष-धातु-और मलका  
शोषण करे उस औषधको ग्राही जानना उदाहरण-सोंठ, जीरा, गजपीपल॥

१ देवदालीको भाषामे बंदाल और सोनैयाकहते है इसके फलके पदिरा आबदस्त  
प्यासीरके ऊपरलेना लिखा है ॥

स्तंभनऔषध ।

रौक्ष्याच्छैत्यात्कपायत्वाल्लघुपाकाच्चयद्रवेत् ॥

वातकृत्स्तंभनंतत्स्याद्यथावत्सकटुंदुको ॥

अर्थ—जो औषध रुसगुण करके—कसेले रसकरके युक्त हो और शीतल वीर्य करके तथा लघुपाकके कारण वादीकरे उसको स्तंभनसंज्ञक कहते हैं—जैसे—कूडाकी लाछ—टेंदू इत्यादि ॥

रसायनऔषध ।

रसायनंचतज्ज्ञेयंयज्जराव्याधिनाशनम् ।

यथामृतारुदंतीचगुग्गुलुश्चहरीतकी ॥

अर्थ—जो औषध शरीर का जरा ( बुढ़ापा ) और रोगोंको दूरकरे उसको रसायन कहते हैं जैसे गिलोय—रुदंती—गुग्गुलु—और हरड़ ॥

मैथुनशक्तिवर्द्धकऔषध ।

यस्माद्रव्याद्रवेत्स्त्रीपुरुषोवाजीकरंचतत् ।

यथानागवलाद्यास्तुवीजंचकपिकच्छुजम् ॥

अर्थ—जिस औषधसे धातुवर्द्धक स्त्रियोंके विषय हर्षयुक्त शक्तीवर्द्ध अर्थात् मैथुन करनेकी अधिक शक्तिहोवे उसको वाजीकरणसंज्ञक जानना जैसे नागवला आदि और कौलकेबीज ।

धातुवर्द्धकऔषध ।

यस्माच्छुक्रस्यवृद्धिःस्याच्छुक्रलंचतदुच्यते ।

यथाश्वर्गंधामुशलीशर्कराचशतावरी ॥

अर्थ—जिस औषधसे धातुकी वृद्धि होय उस औषधको शुक्रल कहते हैं उदाहरण—अश्वगंध—मूसली—शतावर—मिश्री आदि ॥

वीर्योत्पादकतथावीर्यप्रवर्त्तकऔषध ।

दुग्धमापाश्चभल्लातफलमज्जामलानिच ।

प्रवर्त्तकानिकथ्यंतेजनकानिचरेतसः ॥

अर्थ—शुक्रधातुकी चैतन्य करनेवाली और शुक्रको उत्पन्न करने वाली औषध दूध—उडद—भिलावे—फलकी मज्जा ( बेलकी गोरी ) और आमले इत्यादिक जानना ॥



वाजीकरणऔषधकानिषेध ।

प्रवर्तनीस्त्रीशुक्रस्यरेचनंवृहतीफलम् ।

जातीफलंस्तंभकंच शोषणीचहरीतकी ॥

अर्थ-शुक्रधातुको चैतन्यकरनेवाली-स्त्रीहै तथा वीर्यका रेचककर्ता कटेरीकाफलहै अथवा घनके वेगनहै एवं स्तंभनकर्ता जायफल है-तथा-वीर्य शोषणकारी हरड है" शोषणीच हरीतकी" इसठिकाने श्लोकमें " कालिंगं क्षयकारिच" ऐसा भी पाठ है उसका यह अर्थ है कि तरबूज वीर्यका नाशकर्ता है कोई इन्द्रजव वीर्यका नाशकर्ता कहते हैं ॥

सूक्ष्मऔषध ।

देहस्यसूक्ष्मछिद्रेषुविशेद्यत्सूक्ष्ममुच्यते ।

तद्यथासैधवंक्षौद्रंनिवस्तैलंरुवूद्रवम् ॥

अर्थ-शरीरमें बहुत छोटे २ छिद्र हैं उनमें जो औषध प्रवेशकरे उसको सूक्ष्म औषध जानना उदाहरण-जैसे-सैधानिमक्-सहत-कडु-आनीम-तिलको तेल और अंडीकातेल इत्यादिक जानना ॥

व्यावायीऔषध ।

पूर्वव्याप्याखिलंकायंततः पाकंचगच्छति ।

व्यवायितद्यथाभंगाफेनं चाहिसमुद्भवम् ।

अर्थ-जो औषध अपकेही प्रथम सर्व देहमें फैलकर फिर पाकदशाको प्राप्तहोवे अर्थात् मद्य विषके समान पाकहोय-उस औषधको व्यावायी जानना जैसे-भाग-और अफीम ॥

विकाशीऔषध ।

संधिवंधांस्तुशियिलान्यत्करोतिविकाशितत् ।

विश्लेप्यौजश्चधातुभ्योतथाक्रमुककोद्रवाः ॥

अर्थ-जो औषधी सर्वदेहके संधिवंधनोंको शिथिल कर रसादिधातुसे उत्पन्न हुए ओजस हिये बलको शिथिलकरे उस औषधको विकाशी जाननी जैसे-सुपारी और फोदो ॥

१ किमी २ आनार्यके मतमें " निवर्तलम् " ऐसा पाठ है उसमें मतसे नीचका तेल लिये । २ पेटमें पाक होते समय ।

मदकारीपदार्थ ।

बुद्धिलुंपतियद्रव्यं मदकारितदुच्यते ।

तमोगुणप्रधानं च यथामद्यसुरादिकम् ॥

अर्थ-जो पदार्थ तमोगुण प्रधानहोकर बुद्धिका आच्छादनकरे अर्थात् बुद्धि का नाशकरे उस औषधको मदकारी जानना जैसे-मद्य-सुराआदि॥

प्राणहारकद्रव्य ।

व्यवायिचविकाशि स्यात्सूक्ष्मछेदिमदावहम् ।

आग्नेयं जीवितहरं योगवाहिस्मृतं विषम् ॥

अर्थ-पूर्वाक्त व्यवायी-विकाशी-सूक्ष्म-छेदि-मदकारी अग्नेय औषध इन छः द्रव्योंके गुणकरके जो युक्तहोय उसद्रव्यको प्राणहारी जानना उदाहरण-जैसे विषवच्छनागादिक ये योगवाहीभी है-इसका यह कारण है कि कोईआचार्य " योगवाह्यमृतं विषं " ऐसा पाठ कहते हैं उसका अर्थ वही है कि, विषयोगवाही अर्थात् उसको किसी संस्कारविशेषकरके जिस २ अनुपानके साथ देय उसी २ अनुपानके गुण बढ़ायकर अमृतके तुल्यगुण करे ॥

प्रमाथी औषध ।

निजवीर्येण यद्रव्यं स्रोतेभ्यो दोषसंचयम् ।

निरस्यति प्रमाथि स्यात्तद्यथा मरिचं वचा ॥

अर्थ-जो औषध अपने वीर्यकरके कान-मुख-नासिका इत्यादि छिद्रोंमेंसे कफादि दोषसंचय हुएको दूर करे उस औषधको प्रमाथी कहते हैं उदाहरण जैसे वच-और कालीमिरच इत्यादि ॥

अभिप्यंदिपदार्थ ।

पैष्ठिल्याद्गौरवाद्द्रव्यं रुद्धारसवहाः शिराः ।

धत्ते यद्गौरवं तत्स्यादभिप्यंदियथा दाधि ॥

अर्थ-जो पदार्थ अपने पिच्छल गुणकरके रसवाहिनी शिराओंको रोक शरीरको जड़के समान करदेवे उस पदार्थको अभिप्यंदी अर्थात् कफकारक जानना उदा० जैसे दही ॥

विदाहीपदार्थ ।

विदाहिद्रव्यमुद्गारमम्लं कुर्यात्तथा तृषाम् ।

हृदिदाहं च जनयेत्पाकं गच्छति तच्चिरात् ॥

अर्थ—जो खट्टी डकार-तृषा-दाह-इनको उत्पन्न करके बहुत देरमें पचे उस द्रव्यको विदाही कहते हैं ॥

योगवाहीद्रव्य ।

गृह्णाति योगवाहिद्रव्यं संसर्गवस्तुजांश्च गुणान् ।

पचमानवद्यथैतन्मधुजलतैलाज्यसूतलोहादि ॥

अर्थ—योगवाही द्रव्य जिस द्रव्यके साथ जिस द्रव्यका संयोग करे वह उसीकेसे गुणकरे है जैसे-जल-तेल घी-पारा लोहा ये पदार्थ दूसरेके गुणके समान अपने गुणकरे है उसी प्रकार अन्ययोगवाही पदार्थ जानना ॥

अथ वीर्यम् ।

उष्णशीतगुणोत्कर्षाद्बुधैः वीर्यं द्विधा स्मृतम् ।

तत्सर्वमग्निपोमीयं दृश्यते भुवनत्रयम् ॥

अर्थ—उष्ण ( गरम ) और शीत ( शीतल ) इन गुणोंका वीर्य दो प्रकारका है अतएव सब त्रिलोकीमें संपूर्ण वस्तुमात्र अग्नि और जल स्वरूपकी दीखती है ॥

उष्णशीतवीर्योंके गुण ।

उष्णवातकफौह्न्यात्पित्तं तु तनुते तराम् ।

शीतं वातकफातंकान्कुरुते पित्तहृत्परम् ॥

अर्थ—उष्णगुण-वात और कफको नष्टकरे है और पित्तको बढ़ाता है एवं शीतगुण वात और कफके रोगोंको प्रगटकरे है तथा पित्तका शमन करे है ॥

अन्यच्च ।

तत्रोष्णं भ्रमत्स्त्रुग्लानिस्वेददाहाशुपाकताः ॥

शमंच वातकफयोः करोति शिशिरं पुनः ॥

हादनं जीवनस्तं भंप्रसादं रक्तपित्तयोः ॥

अर्थ—तहां उष्ण गुण-भ्रम, प्यास, ग्लानि, पसीने, दाह और शीघ्रपाकको करे है एवं वायु और कफ इनको शांतिकरे । शीतगुण-आनंद, जीवन और स्तंभनको करे है तथा रुधिर और पित्त इनको स्वच्छ करे है ॥

अथविपाकाः ।

जाठरेणाग्निनायोगाद्यदुदेतिरसान्तरम् ॥

रसानांपरिणामतिसविपाकइतिस्मृतः ॥

मिष्टःपटुश्चमधुरमम्लोम्लंपच्यतेरसः ॥

कटुतिक्तकपायाणांपाकःस्यात्प्रायशःकटुः ॥

त्रिधारसानांपाकःस्यात्स्वाद्वम्लकटुकात्मकः ॥

अर्थ-जठराग्निके योगसे रस उत्पन्न होकर उस रससे जो रस उत्पन्न होवे उसको विपाक ऐसा कहते हैं, तहां मिष्ट और खारे पदार्थका पाक मीठा होता है और खट्टे पदार्थका पाक खट्टाही होताहै । एवं चरपरा कडुआ और कसेले पदार्थका पाक प्रायः चरपराही होताहै इसप्रकार सब रसोंका मीठा खट्टा और चरपरा ऐसे तीन प्रकारहीका पाक होता है चतुर्थ प्रकारका नहीं ॥

विपाककेगुण ।

श्लेष्मकृन्मधुरः पाकोवातपित्तहरोमतः ॥ आम्लस्तु

कुरुतेपित्तंवातश्लेष्मगदापहः ॥ कटुकरोतिपवनंकफं

पित्तंचनाशयेत् ॥ विशेषएपरसतोविपाकानानिदर्शितः॥

अर्थ-मीठा पाक कफकारक और वात पित्तका नाशक, एवं खट्टाप्रायः पाक पित्तकारक और वायु तथा कफका नाशकारी है एवं तिक्त ( कडुआ ) पाक वातकारी और कफ पित्त इनका नाशक है । यह रसविपाकका विशेष गुण कहाहै ॥

प्रभाव ।

रसादिसाम्येयत्कर्मविशिष्टं तत्प्रभावजम् ॥ दंतीरसाद्यै-

स्तुल्यापिचित्रकस्यविरेचनी ॥ मधुकस्यचमृद्धीकाष्ट-

तंक्षीरस्यदीपनम् । प्रभावस्तुयथाधात्रीलकुचस्यफ-

लादिभिः ॥ समापिकुरुतेदोषत्रितयस्यविनाशनम् ।

क्वचित्तुकेवलंद्रव्यकर्मकुर्यात्प्रभावतः ॥ ज्वरंहंतिशि-

रोवद्धासहदेबीजटायथा ॥

अर्थ-परस्पर औषधोंके रसादि साम्य होनेसे जो विशिष्ट गुणहोता है उसे प्रभाव कहतेहैं । जैसे दंती रसादिकरके चीतेके समान होनेपरभी

उसमें दस्त कराना यह गुण अधिकहै इसीको प्रभाव जानना । और दाख मुलहदी ये समान रस होनेपरभी दाख दस्तलाती है मुलहदी नहीं तो यहां दाखमें अधिक प्रभाव है । तथा घृत और दूधके समान गुण हैं परंतु घृतमें दीपन शक्ति अधिकहै । एवं आमले और बडहर ये समान रसहैं तथापि आमला त्रिदोश नाशकहै बडहर नहीं और कहीं २ केवल एकही द्रव्य प्रभाव करके विलक्षण कर्मकरे है जैसे सहदे ईकी जड़ मस्तकमें बांधनेसे ज्वरको नाशकरे है इत्यादि प्रभावके उदाहरण जानने ।

**अमीमांस्यान्यांचित्यानिप्रसिद्धानिस्वभावतः ।**

**आगमेनोपयोज्यानिभेषजानिविचक्षणैः ॥**

अर्थ—जो औषध स्वभावकरके प्रसिद्ध है उसको जहां शास्त्र कहे उसी जगे वेवे क्योंकि औषधियोंमें तर्क बितर्क नहीं करीजाय इनमें अवि-  
त्यवीर्य है अतएव विचार न करे ।

**प्रत्यक्षलक्षणफलाः प्रसिद्धाश्चस्वभावतः ।**

**नौषधीहेतुभिर्विद्वान्परीक्षेतकदाचन ॥**

अर्थ—जो औषधी प्रत्यक्ष फल देनेवाली और लक्षण जिसके प्रसिद्ध हैं उसकी विद्वान् हेतुओं करके कदाचित् परीक्षा न करे [ अर्थात् इस हेतुसे ये औषध शीतल होनी चाहिये इसने उष्णगुण कैसे करा ] यह परीक्षा त्याग देवे ॥

**विरुद्धगुणसंयोगेभूयसाल्पंहिजायते ।**

**रसविपाकस्तौवीर्यप्रभावस्तान्व्यपोदति ॥**

अर्थ—विरुद्ध गुण औषधी बहुतसी एक ठिकाने पर होनेसे विपाक रसका नाशकरे है तथा रस और विपाक इनका वीर्य नाशकर्ता है और रस-विपाक और वीर्य इनका प्रभाव नाशकरे है ऐसा जानना ॥

॥ इति रसवीर्यविपाकनिर्णयं समाप्तम् ॥

**अथपंचकपायाः ।**

**स्वरसश्चतथाकल्कःकाथश्चहिमफांटकौ ।**

**ज्ञेयाःकपायाःपञ्चैतेलघवःस्युर्यथोत्तरम् ॥**

अर्थ—स्वरसकल्क-काथ-हिम-फांट-ये पांच कपाय हैं क्रमसे एककी अपेक्षा दूसरी हल्की है—अर्थात् स्वरसकी अपेक्षा-कल्क कल्ककी अपेक्षा काथ काथकी अपेक्षा हिम हल्का है इसी प्रकार और भी जानो ॥

तत्रादौस्वरसविधिः ।

आहतात्तक्षणाकृष्टाद्द्रव्यात्क्षुण्णात्समुद्धरेत् ॥  
वस्त्रनिष्पीडितोयः सरसःस्वरसउच्यते ॥ आहतात्  
शीताग्निकीटादिभिर्नुपहतात् ॥ क्षुण्णात्संपिष्टात् ॥

अर्थ-फीडा शीत अग्नि इत्यादिकरके अदूषित ऐसी वनस्पती को लायकर उसको कूटपीस फपड़ेमें डालके निचोड़नेसे जो रस निकले उसको स्वरस अथवा अंगरस कहते हैं ॥

दूसराप्रकार ।

कुडवंचूर्णितंद्रव्यंक्षिप्तंचद्विगुणेजले ।  
अहोरात्रंस्थितंतस्माद्भवेद्वारसउत्तमः ॥

अर्थ-पावभर सूखी औषधको कूट आधसेर जलमें भिगोय देवे उसको एकदिन रात्रि धरा रहनेदे फिर दूसरे दिन उसपानीको फपड़ेमें छान लेवे तो उसकोभी रस वा स्वरस कहते हैं, यहभी एकप्रकार स्वरसका है ॥

तीसराप्रकार ।

आदायशुष्कद्रव्यंवास्वरसानामसंभवे ।  
जलेष्टगुणितेसाध्यंपादशिष्टंचगृह्यते ॥

अर्थ-जिस सूखी औषधका स्वरस न निकलता होय उसको लाय कूटकर आठगुने पानीमें डालके मंदाग्निसे औटावे जब चतुर्थांश जल बाकी रहे तब उतारके छानलेवे तो इसको भी स्वरस कहते हैं-यह तीसरा प्रकार कहा ॥

स्वरसस्यगुरुत्वाच्चपलमर्द्धप्रयोजयेत् ।  
निःशोपितंचाग्निसिद्धंपलमात्रंसंपिबेत् ॥

अर्थ-किसी औषधका स्वरसहो सब भारी अधिक होते हैं अतएव यदि उस रसको किसी औषधमें डालना होवे तो अर्द्धपल (२ तोले) डाले । तथा सुखायकर फाटा हुआ अथवा अग्निपर काढाकरके फाटा हुआ रस ४ तोले पीनाचाहिये ॥

कल्कविधिः ।

द्रव्यमाद्रंशिलापिष्टंशुष्कंवासज्जलंभवेत् ।  
प्रक्षेपावापकल्कास्तेतन्मानंकर्पसंमितम् ॥

१ प्रक्षिप्यगालयेद्द्रव्यं तन्मानं कालसंमितम् । इतिपाठांतरम् ।

अर्थ—गीली औषधको लाय चटनीके समान बारीक पीसे यदि सूखी औषध होवे तो पानीडालके बारीक पीसावे उसको कल्क ऐसा कहते हैं इसके लेनेका प्रमाण, कर्ष कहा है अर्थात् एक तोला है इसको प्रक्षेप और आवापभी कहते हैं ॥

**कल्केमधुघृततैलंदेयंद्विगुणमात्रया ।**

**सितागुडोसमौदद्याद्रवादेयाश्चतुर्गुणाः ॥**

अर्थ—कल्कमें सहत घृत और तेल ये डालनाहोय तो कल्कसे दुगुना मिलावे तथा खांड और गुडये पदार्थ डालना होयतो कल्कके समान मिलावे तथा दूध जल आदि शब्दकरके पतले पदार्थ मिलाने होय तो कल्कके चौगुने मिलाने चाहिये ॥

**क्वाथ ( काढेकी ) विधिः ।**

**पानीयंपोडशगुणक्षुण्णेद्रव्येपलेक्षिपेत् । मृत्पात्रेक्वाथ  
येद्वाह्यमष्टमांशावशेषितम् ॥ तज्जलंपाययेद्धीमान्को  
ण्णमृद्मिसाधितम् । शृतःक्वाथःकपायश्चनिर्यूहः सनिगद्य  
ते ॥ आहारैरसपाकेचजातेचद्विपलोन्मितम् । वृद्धवैद्योपदे  
शेनापिवेत्क्वाथंसुपाचितम् ॥**

अर्थ—पलप्रमाण औषधले जो कूटकर उस औषधका सोलहगुना जलडाल किसी मिट्टीके पात्रमें भरके चूल्हपर चढावे फिर नीचे मंद २ अग्नि देवे जबजलका आठवाँ भाग शेष रहे तब उस काढेको उतारलेवे और कपडेसे छानकर कुछ गरम २ रोगीको पिलावे तथा रोगीके उत्तमप्रकार अन्नका परिपाक होनेबाद इसको वृद्धवैद्यकी आज्ञासेदेवे इसकाढेको शृत-क्वाथ-कपाय-और निर्यूहभी कहते हैं अर्थात् ये नाम पर्यायवाचक हैं ॥

**कर्पादौतुपलं यावद्दद्यात्पोडशिकंजलम् ॥**

**ततस्तुकुडवं यावत्तोयमष्टगुणंक्षिपेत् ॥**

**चतुर्गुणमतश्चाह्नं यावत्प्रस्थादिकंजलम् ॥**

अर्थ—कर्पसे लेकर पल पर्यंत सोलह गुनाजल डाले, पलसे उपरांत कुडव पर्यंत आठगुना जल डाले और कुडवसे लेकर प्रस्थ पर्यंत काथमें चौगुना जल डाले, यह काथमें जल डालनेकी क्रियाकही ॥

**मात्रोत्तमापलेनस्याग्निभिरक्षैस्तुमध्यमा । जवन्यातु  
पलाह्नैर्नस्नेहकार्योपधेपुच ॥ पानेकाथादिद्रव्यावस्था ।**

अर्थ-स्नेह-काढा-और औषध इसकी उत्तम मात्रा १ पलकी है और तीन अक्षर्यात् ३ तोलेकी मध्यम है-और पलार्ध (२ तोले)की मात्रा मध्यम है ॥  
काथमें तोलका परिमाण ।

दशरक्तिकमानेन गृहीत्वा तोलकद्वयम् ।  
दत्वाम्भः षोडशगुणं ग्राह्यं पादावशेषितम् ॥

अर्थ-दशरक्तीका मासा इसप्रमाणसे २ तोले औषध लेकर उसमें ६२ तोले जल मिलाय मंदाभिसे काढाकर जब चतुर्थांश रहे तब उतार कर छानके रोगीको देवे ॥

काथमें मिश्रीसह तडालनेका प्रमाण ।

काथेक्षिपेत्सितामंशैश्चतुर्थाष्टमषोडशैः ।  
वातपित्तकफातंके विपरीतं मधुस्मृतम् ॥

अर्थ-काढेमें खांड डालना होय तो वातरोगमें काढेके चतुर्थांश डाले, पित्तरोगमें आठवाहिस्सा डाले, और कफरोगमें सोलहवाहिस्सा डाले और यदि सहत डालना होय तो खांडसे विपरीत डाले अर्थात् कफके रोगमें सहत चतुर्थांश, वातमें षोडशांश और पित्तमें अष्टमांश ॥

हिमाविधिः ।

क्षुण्णद्रव्यपलंसम्यक्पट्टाभिर्नारपलैः शृतम् । निःशोपितं हिमः  
स स्यात्तथा शीतकपायकः । तस्य मानं मत्तं पाने पलद्वयमितं बुधैः

अर्थ-१ पल कुटी हुई औषध को ६ पल जलमें भिगोय देवे रात्रि भर धरी रहने दे। इसकी हिम अथवा शीतकपाय कहते हैं । इसकी मात्रा ८ तोले की है ॥ "तन्मानं फाटवज्ज्ञेयं सर्वत्रैव विनिश्चयः" अर्थात् इस हिमकी मात्रा फाटके समान जाननी यह सर्वत्र निश्चय है ॥

मंथ ।

मंथोपि फाटभेदः स्यात्तेन चात्रैव कथ्यते । जले चतुःपलेशीते क्षु  
ण्णद्रव्यपलं क्षिपेत् । मृत्पात्रे मंथयेत्सम्यक् तस्माच्च द्विपलं पिबेत् ॥

अर्थ-मंथभी फाटका भेद है अतएव उसको भी इसीजने कहते हैं । एक पल औषधले उसको कूटके ४ पल शीतलजलमें भिगोय देवे, फिर मिट्टीके पात्रमें उसको मंथन कर फिर उसपानीको छानके देवे उसको मंथ कहते हैं इसकी मात्रा दोपलकी है ॥

अवान्तरभेदे तंडुलोदकमाह ।

तंडुलंकनशः कृत्वा पलं ग्राह्यं हितंडुलात् ।



चतुर्गुणं जलं देयं तं डुलोदककर्मणि ॥

शीतं कपायमानेन तं डुलोदककल्पना ॥

अर्थ-१ पल चावलोंको कूट किनकीकरले उसको ४ पलवा ६ पल जलमें भिगीयदेवे थोड़ीदेरकेबाद उसका नितराहुआ पानी लेलेवे तो तं डुलोदकवने जहाँकहीतं डुलोदककाजल लिखाहोय वहाँ इसप्रकार-वनाहुआजल लेवे ॥

फांटविधिः ।

क्षुण्णेद्रव्यपले सम्यक्जलमुष्णं विनिक्षिपेत् ।

मृत्पात्रे कुडवोन्मानं ततस्तु स्रावयेत्पटात् ॥

तन्मानं फांटवज्ज्ञेयं सर्वत्रैपमुनिश्चयः ।

मधुश्चेतागुडादींश्च काथवत्तत्र निक्षिपेत् ॥

अर्थ-१ पल औषधको कूटके मिट्टीके पात्रमें एककुडवप्रमाण गरमजल डालके भिगीवे फिर थोड़ी देरके बाद उसको छानके पीवे-इसे-फांट-तथा चूर्णद्रव ऐसा कहते हैं इसफांटकी मात्रा दोपलकी है-तथा फांटमें सहत-मिश्री-तथा-गुडआदि शब्दसे और जो वस्तु डालनीही वो जिस-प्रमाण फांटमें डालनीकही है उसी प्रकार डाले ।

यवागूकीविधिः ।

साध्यं चतुःपलं द्रव्यं चतुःपाटिपले जले ।

तत्काथेनार्धशिष्टेन यवागूंसाधयेद्धनाम् ॥

अर्थ-चारपलप्रमाण औषधको कूटके ६४ पलजलमें आधा रहने पर्यंत ओटावे जब आधा रहे तब उतारके उसको छानलेवे. उस छाने हुए जलमें चावल, मूंग आदि द्रव्य जो कहे हैं डालके फिरफाटाकरे तो इसको यवागू कहते हैं ॥

विलेपीलक्षणः ।

विलेपी च घनासिक्था सिद्धानीरे चतुर्गुणे ।

बृहणी तर्पणी हृद्या मधुरापित्तनाशिनी ।

अर्थ-चौगुने पानीमें डालके ओटायके लपसीके समान गाढी और चिपकनेवाली घनावे उसको विलेपी ऐसा कहते हैं । यह विलेपी धातु-वर्द्धक शरीरको पुष्टकारी-हृदयको हितकारी-तथा मधुर होनेसे पित्तका नाशकर्ता है ॥

१ सस्याचूर्णद्रवः पाटस्तन्मानं द्विपलोन्मितम् ।

पानादिकल्पना ।

क्षुण्णद्रव्यपलंसाध्यंचतुःपष्टिपल्लेबुनि ।

अर्द्धशिष्टंचतदेयंपानेभक्तादिसंविधौ ॥

अर्थ-कुटाहुआ १ पलद्रव्य ६४ पलजलमें डालके आधापानी रहने पर्यंत औटावे फिर उसको छानके प्यासलगनेमें पीनेको थोड़ा २ देवे- तथा भोजनके समय देनेका प्रकार आगे कहेंगे ॥

मधुंश्चेतगुडक्षारान्जीरकंलवणंतथा ।

घृतंतैलंचूर्णादीन्कोलमात्रान्रसेक्षिपेत् ॥

अर्थ-सपेद सहत-गुड-क्षार-जीरा-लवण-घी-तेल-और इतर चूर्णादिक ये रसमें डालने होयतो छःछ मास डालने चाहिये ॥

प्रमथ्याकीविधिः ।

प्रमथ्याप्रोच्यतेद्रव्यपलात्कल्कीकृताद्दृशम् ।

ततोष्टगुणितेतस्याः पानमाहुः पलद्वयम् ॥

अर्थ-एकपल औषधको कूटकर कल्ककरे यदि सुखी औषधहोयतो पानीमें पीसके कल्ककरे उसमें अठगुनापानी डालके दोपलरहने पर्यंत उसको औटावे इसको प्रमथ्या कहते हैं इसके सेवनकी मात्रा २ पलकी है ॥

यूपकीविधिः ।

कल्कद्रव्यपलंशुंठापिप्पलीचार्द्धकार्षिकी ।

वारिप्रस्थेनविपचेत्सद्रवोयूपउच्यते ॥

अर्थ-कल्ककी औषध सामान्य १ पललेय तथा जिस प्रयोगमें सौंठ ० और पीपर होय वह प्रयोग तीक्ष्ण होनेसे आधा २ कर्षलेवे अथवा दोनोमिलायके आधा कर्षलेय फिर उनका कल्ककर उसमें पानी एक प्रस्थडालके औटावे जब औटके कुछ गाढापेयाके समान होजावे तब उतारले इसको यूपऐसा कहते हैं ॥

पेयालक्षणम् ।

द्रवाधिका स्वल्प सिक्था चतुर्दश गुणेजले ॥ सिद्ध पेया

बुधैर्ज्ञेया यूपः किंचिद्धनःस्मृतः ॥ पेयालघुतराज्ञेयाग्राहि

णीधातुपुष्टिदा ॥ यूपोबल्यस्ततःकंद्योलघुपाकःकफापहः ॥

अर्थ-द्रव्यसे चौगुना जलडालके पतली पेजके समान तथा कुछ गाढी

होय तबतक औटावे इसको पेया ऐसा कहते हैं । पेया की अपेक्षा जो कुछ अधिक गाढा हो उसको यूष कहते हैं । तहां वह पेया बहुत हलकी होनेसे मलादि कोंका स्तंभन करती है तथा धातु पुष्टकरे । और यूष बल देता है, कंठको हितकारी-हलका तथा कफको दूर करने वाला है ॥

**पुटपाककीविधिः ।**

**पुटपाकस्य कल्कस्य स्वरसो गृह्यते यतः ।**

**अतस्तु पुटपाकानां युक्तिरत्राच्यते मया ॥**

अर्थ-पुटपाक और कल्क इन दोनोंका स्वरस लेते हैं इसी कारण पुटपाककी युक्ति में कहता हूं ॥

**पुटपाककीकृति ।**

**पुटपाकस्य मात्रेयं लेपस्यांगारवर्णता ॥ लेपंच द्व्यंगुलं-  
स्थूलं कुर्याद्वांगुष्ठमात्रया ॥ काश्मरीवटजं वादिपत्रैर्वैष्ट  
नमुत्तमम् ॥ पलमात्ररसो ग्राह्यः कर्पमात्रं मधुक्षिपेत् ॥  
कल्कचूर्णद्रवाद्यास्तु देया स्वरसवद्बुधैः ॥**

अर्थ-पुटपाककी मात्राका प्रमाण इस प्रकार करे कि ऊपर कराडुआलेप अग्निमें अंगारके समान लालवर्ण होने पर्यंत उसको अग्निमें राखे-तथा जिस द्रव्य पर लेप देना होय तो दो अंगुल अथवा एक अंगुल मोटा देवे और लेपके ऊपर नीचे पत्ते लपेटनेके लिये-कंभारी बड़ जामुन इत्यादिके उत्तम होते हैं तथा पुटपाकमें रस ढालना होय तो चार तोले तथा तौले भर सहत और कल्कचूर्ण द्रवादिक पदार्थ स्वरसके मान प्रमाण उत्तम जाननेवाला वैद्य मिलावे ॥

**पाठान्तरम् ।**

**द्रव्यमापोथितं जंबूवटपत्रादिसंपुटैः ॥ वेष्टयित्वा ततो  
वध्वाट्टं रज्ज्वादिना तथा ॥ मृष्टे पद्मचंगुलं कुर्यादयवांगु  
लिमात्रकम् ॥ दहेत्पुटान्तरादग्नौ यावलेपस्य रक्तता ॥**

अर्थ-जिस वस्तुका पुटपाक करना हो उसको कूटके गोलाबनावे उसको जामुन बड़ आदिके पत्तोंसे लपेट ऊपर रस्सी आदिसे फसदे फिर ऊपर दो दो अंगुल मोटा मिट्टीका लेप करे अथवा एक अंगुल मोटा-लेप करे उसको अग्निके बीचमें धरके अग्निदेवे जबलाल होजावे तब निकाल रसनिचोढले-यह दूसरीविधि कही ॥

चावलधोनेकीक्रिया ।

कंडितं तंडुलपलंजलेष्टगुणिते सिपेत् ।

भावयित्वाजलं ग्राह्यं देयं सर्वत्रकर्मसु ॥

अर्थ-एक पल विने फटके हुए चावललेकर उसमें आठपल जलढा-  
लके हाथोंसे मीडकर धोवे फिर उसपानीको सर्व कर्ममें देवे ॥

अवलेहकल्पना ।

काथादीनांपुनःपाकात्पनत्वंसारसक्रिया । सोवलेहश्चले-  
हश्च प्राशइत्युच्यतेबुधैः । सिताचतुर्गुणाकार्याचूर्णाच्चद्विगु-  
णोगुडः । द्रवंचतुर्गुणं दद्यादितिसर्वत्रनिश्चयः । सुपक्वेतन्तु-  
मत्त्वं स्यादवलेहेऽप्सुमज्जनम् । स्थिरत्वं पीडिते मुद्रागंधवर्ण-  
रसोद्भवः ॥ दुग्धमिशुरसंयूषं पंचमूलकपायजम् । वासाक्वाथं-  
यथायोग्यमनुपानं प्रशस्यते ॥

अर्थ-औषधोंके काठे तथा फांटादिकको फिर औटाकर चासनीके  
समान गाढीकरे उसको रस क्रिया कहते हैं । उसरसक्रियाके पर्याय  
शब्द अवलेह-लेह-और प्राश यें हैं । उस अवलेहके लेनेका प्रमाण एकपल  
कहा है । तथा उसमें खांड काथचूर्णसे चौगुने गुड चूर्ण से दुगना-और  
पानी-दूध-मूत्र-और दूसरे पतले पदार्थ चूर्णसे चौगुने लेने चाहिये ऐसा  
अवलेहमें सर्वत्र नियम है । उस अवलेहके उत्तम पाककी परीक्षा कहते  
हैं कि पाकहोनेपर अवलेहमें तार निकलने लगता है तथा उस अवलेह  
हकी बूंदकी पानीमें गेरनेसे डूब जाता है । तथा अवलेहको फड़लुलेमें  
लगानेसे चिपक जाता है तथा उस पाकका गंध वर्ण और रस ये अपूर्व  
होते हैं इसप्रकार काथका उत्तम पाक होनेके लक्षण जानने । तथा उस  
अवलेहका अनुपान दूध ईसका रस-पंच मूलके काठेकापूप-जड़सेका फा  
टा इत्यादिक हैं जो रोगका तारतम्य देखकर वैद्य अपनी बुद्धिके  
साथ योजनाकरे ॥

चूर्णविधिः ।

अत्यंतशुष्कं यद्रव्यं सुषिष्टं वस्त्रगालितम् ।

तत्स्यात्तच्चूर्णरजःक्षोदस्तन्मात्राकर्पसंमिता ॥

अर्थ-उत्तम सुखी औषधको लापकर कूटपीस घारीककर उसको

१ तन्मात्रास्यात्पलोन्मिता इति पाठान्तरम् । २ सरत्त्वमिति पाठान्तरम् ।

होय तबतक औटावे इसको पेया ऐसा कहते हैं । पेया की अपेक्षा जो कुछ अधिक गाढा हो उसको यूप कहते हैं । तहाँ वह पेया बहुत हलकी होनेसे मलादि कोंका स्तंभन करती है तथा धातु पुष्टकरे । और यूपवलदेता है, कंठको हितकारी—हलका तथा कफको दूर करने वाला है ॥

पुटपाककीविधिः ।

पुटपाकस्य कल्कस्य स्वरसो गृह्यते यतः ।

अतस्तु पुटपाकानां युक्तिरत्रोच्यते मया ॥

अर्थ—पुटपाक और कल्क इन दोनोंका स्वरस लेते हैं इसी कारण पुटपाककी युक्ति में कहता हूँ ॥

पुटपाककीकृतिः ।

पुटपाकस्य मात्रेयं लेपस्यांगारवर्णता ॥ लेपंच द्व्यंगुलं-

स्थूलं कुर्याद्वांगुप्रमात्रया ॥ काश्मरीवटजं वादिपत्रैर्वेष्ट-

नमुत्तमम् ॥ पलमात्ररसो ग्राह्यः कर्पमात्रं मधुक्षिपेत् ॥

कल्कचूर्णद्रवाद्यास्तु देया स्वरसवद्बुधैः ॥

अर्थ—पुटपाककी मात्राका प्रमाण इस प्रकार करे कि ऊपर कराहुआ लेप अभिमें अंगारके समान लालवर्ण होने पर्यंत उसको अभिमें रखे—तथा जिसद्रव्यपर लेप देना होय तो दो अंगुल अथवा एक अंगुल मोटा देवे और लेपके ऊपर नीचे पत्ते लपेटनेके लिये—कंभारी बड़ जामुन इत्यादिके उत्तम होते हैं तथा पुटपाकमें रस ढालना होय तो चार तोले तथा तौले भर सहत और कल्कचूर्ण द्रवादिकपदार्थ स्वरसके मान प्रमाण उत्तम जाननेवाला वैद्य मिलावे ॥

पाठान्तरम् ।

द्रव्यमापोथितं जंबूवटपत्रादिसंपुटेः ॥ वेष्टयित्वा ततो

वध्वा दृढं रज्ज्वादिना तथा ॥ मृष्टे पद्व्यंगुलं कुर्यादथवांगु-

लिमात्रकम् ॥ दहेत्पुटान्तरादग्नौ यावलेपस्य रक्तता ॥

अर्थ—जिस वस्तुका पुटपाक करना हो उसको कूटके गोलावनाचे उसको जामुन बड़ आदिके पत्तोंसे लपेट ऊपर रस्ती आदिसे फसदे फिर ऊपर दो दो अंगुल मोटा मिट्टीका लेपकरे अथवा एक अंगुल मोटा लेपकरे उसको अभिके बीचमें धरके अग्निदेवे जबलाल होजावे तब निकाल रसनिचोड़ले—यह दूसरीविधि कही ॥

चावलघोनेकीक्रिया ।

कंडितं तंडुलपलंजलेष्टगुणिते क्षिपेत् ।

भावयित्वाजलं ग्राह्यं देयं सर्वत्रकर्मसु ॥

अर्थ-एक पल विने फटके हुए चावललेकर उसमें आठपल जलडा-  
लके हाथोंसे मोडकर घोंवे फिर उसपानीकी सर्व कर्ममें देवे ॥

अवलेहकल्पना ।

काथादीनांपुनःपाकात्पनत्वंसारसक्रिया । सोवलेहश्चले-  
हश्च प्राशेदित्युच्यतेबुधैः । सिताचतुर्गुणाकार्याचूर्णाच्चद्विगु-  
णोगुडः । द्रवंचतुर्गुणं दद्यादितिसर्वत्रनिश्चयः । सुपक्वेतन्तु-  
मत्त्वंस्यादवलेहेऽप्सुमज्जनम् । स्थिरत्वंपीडितेमुद्रागंधवर्ण-  
रसोद्भवः ॥ दुग्धमिक्षुरसंयूपपंचमूलकपायजम् । वासाक्वाथं-  
यथायोग्यमनुपानंप्रशस्यते ॥

अर्थ-औषधोंके काठे तथा फांटादिको फिर औटाकर चासनीके  
समान गाढीकरे उसको रस क्रिया कहते हैं । उसरसक्रियाके पर्याय  
शब्द अवलेह-लेह-और प्राश ये हैं । उस अवलेहके लेनेका प्रमाण एकपल  
कहा है । तथा उसमें खांड काथचूर्णसे चौगुने गुड चूर्ण से दुगना-और  
पानी-दूध-मूत्र-और दूसरे पतले पदार्थ चूर्णसे चौगुने लेने चाहिये ऐसा  
अवलेहमें सर्वत्र नियम है । उस अवलेहके उत्तम पाककी परीक्षा कहते  
हैं कि पाकहोनेपर अवलेहमें तार निकलने लगता है तथा उस अवलेह  
हकी घूंदकी पानीमें गरनेसे दूध जाता है । तथा अवलेहको कड़छुलेमें  
लगानेसे चिपक जाता है तथा उस पाकका गंध वर्ण और रस ये अपूर्व  
होते हैं इसप्रकार काथका उत्तम पाक होनेके लक्षण जानने । तथा उस  
अवलेहका अनुपान दूध ईसका रस-पंच मूलके काठेकायूप-जड़सेका फा  
टा इत्यादिक हैं जो रोगका तारतम्य देखकर वैद्य अपनी बुद्धिके  
साथ योजनाकरे ॥

चूर्णविधिः ।

अत्यंतशुष्कं यद्द्रव्यं सुपिष्टं वस्त्रगालितम् ।

तत्स्यात्तच्चूर्णरजःक्षोदस्तन्मात्राकर्पसंमिता ॥

अर्थ-उत्तम सूखी औषधको लायकर कूटपीस घारीककरे उसको कप

१ तन्मात्रास्यात्सलोन्मिता इति पाठान्तरम् । २ सारत्वमिति पाठांतरम् ।

डेमें छानलेवे उसे चूर्ण ऐसा कहते हैं तथा रज और क्षोद ऐसीभी कहते हैं उसचूर्णके भक्षणकी मात्रा १ तोलेकी है ॥

**चूर्णमेंगुडादिडालनेकानियम ।**

चूर्णगुडःसमोदेयःशर्कराद्विगुणाभवेत् । चूर्णेषुभर्जितंहिगुदे-  
यनोत्क्रेदकारकम् । लिहेत्चूर्णद्रवैःसर्वैर्धृताद्यैर्द्विगुणोन्मितैः  
पिवेच्चतुर्गुणैरेवचूर्णमालोडितद्रवैः । चूर्णावलेहगुटिकाकल्का-  
नामनुपानकम् । पित्तवातकफातङ्केत्रिद्वैयकपलंहरेत् ॥

अर्थ—चूर्णमें गुडडालना होयतो चूर्णके बराबर डाले । खांडदूनी मिलावे । तथा हींग भुनीहुई डालनी तो वह विकार नहींकरे । घी-सहंत-और अन्य चिकनी वस्तुइसमें मिलानी होयतो वो चूर्णसे टुगनी मिलावे । दूध-गोमूत्र जल तथा अन्य पतलीवस्तु चूर्णसे चौगुनीले उसजलादिमें चूर्णको डाल मिलायके पीवे । चूर्ण अवलेह गुटिका तथा कल्क इनका अनुपान जो कहाहै वो पित्तरोग होयतो १ पललेवे—वातरोग होयतो २ पल और कफरोग होयतो एकपलले इससे औषध उत्तमरीतिसे देहमें फैल जाती है ॥

**यथातैलंजलेप्राप्तंक्षणेनैवप्रसर्पति ।**

**अनुपानबलादङ्गेतथासर्पतिभेषजम् ॥**

अर्थ—इसविषयमें दृष्टांतहै जैसे पानीमें तेलकी बूंदक्षणमात्रमें फैल जाती है उसी प्रकार औषधी अनुपानके बलसे अंगमें शीघ्र फैल जातीहै

**भावनाविधिः ।**

द्रवेणयावतासम्यक्चूर्णसर्वशुतंभवेत् भावनायाःप्रमाणंतुचूर्णो  
क्तंभिषग्वरैः । भाव्यद्रव्यसमंकाथ्यंकाथ्यादष्टगुणंजलम् ॥ अ-  
ष्टांशशेषितःकाथोभाव्यानतिनभावना ॥ दिवादिवातपेशुष्कं-  
रात्रौरात्रौनिवासयेत् ॥ शुष्कंचूर्णीकृतंद्रव्यंसप्ताहंभावनाविधिः

अर्थ—चूर्णमें नौघूके रसकी—अथवा अन्य विजोरे आदिके रसकी पुटदे नी होयतो इतनारस डालेकिवो चूर्ण उसरसमें बूदजावेयह चूर्णमें भावना का प्रमाण वैद्योंने कहाहै जिस औषधीमें भावनादेनी है उसद्रव्यके समान

काय द्रव्य ले और उसमें अठ गुनाजल मिलावे फिर अभिपर चढाय मंद २ आंचसे काढाकर जब जल अष्टमांश रहे तब उतार छानके उसरसकी भावना देवे दिनदिन भाषनादेके घूपमें सुखायदे और रात्रिमें उठायके धरदेवे इस प्रकार उस भावनका सब रससुख जावे तब चूर्णकर धररखे इस प्रकार सातदिन भावनादेनी चाहिये ।

॥ इति भावनाविधिः ॥

### उष्णोदकविधिः ।

अष्टमेनांशशेषेणचतुर्थेनार्द्धकेनवा । अथवाकथनेनैवसिद्धमुष्णोदकंभवेत् । श्लेष्मामवातमेदोग्रवस्तिशोधन दीपनम् । कासश्वासज्वरान्हन्तिपीतमुष्णोदकंनिशि ।

अर्थ-जल अभिपरगरम करके अष्टमांश (अष्टावशेष) चतुर्थांश अथवा अर्धांशवशेषकरे अथवा केवल भतोवालकरे तो उसको उष्णोदक कहते हैं । गरमजल कफ-आमवात-और भेदोदोग (मोटापन) इनको नाशकरे तथा अग्निको दीप्त करे-रात्रिकी सोते समय गरम जल पीवे तो खांसी-श्वास-और ज्वरको नाशकरे ॥

घटक (गोली)

वटकाश्वाथकथ्यन्तेतन्नामगुटिकावटी ॥ मोदकोवटिका पिंडीगुडोवर्त्तिस्तथोच्यते । लेहवत्साध्यतेवह्नौगुडोवा-शर्कराथवा । गुग्गुलुर्वाक्षिपेत्तत्रचूर्णतन्निर्मितावटी ॥

अर्थ-अब वटका कहते हैं कि जिसका नाम गुटिका-वटी-मोदक वटिका पिंडी गुड और वर्त्ती है इसके बनानेकी विधि अबलेहके समान गुड अथवा खांडकापाककर उसमें गुग्गुलु वा चूर्ण मिलाय गोलीबनावे ॥

कुर्यादवह्निसिद्धेनकाचिद्गुग्गुलुनावटीम् । द्रवेणमधुनावपि-गुटिकांकारयेद्बुधः । सिताचतुर्गुणादेयावटीपुद्गिगुणोगुडः । चूर्णेचूर्णसमःकायौगुग्गुलुर्मधुसंयुतम् । द्रवंतुद्विगुणंदेयंमोद-केषुभिपग्वरैः । कर्पप्रमाणातन्मात्रावलंष्ट्वाप्रयुज्यते ॥

अर्थ-कहीं कहीं अग्निके पाकविना शुद्ध गुग्गुलुडाल चूर्ण मिलायके एक जीवकर गोली बनायलेवे-अथवा जल-सहत-द्रव इत्यादिक पत-ली वस्तु मिलायके गोली बनाय लेवे । यदि खांडसे गोली बनानी होय



तो चूर्णसे चौगुनी खांडडालके गोली बनावे । और गुडके साथ बनानी होय तो दूना गुडडालके गोली बनावे । गूगल अथवा सहत इन दोसे गोली बनानी होवे तो ये चूर्णके समान भाग लेकर गोलीकरे । पानी-सहत इत्यादि पतली वस्तुसे गोली बनानी होय तो वो चूर्णसे दूगना लेकर उससे गोलीकरे । गोलीकी मात्रा १ तोलेकी है अथवा रोगीके शक्त्यनुसार वैद्य मात्राकी कल्पनाकरे ।

चूर्णस्यपाकानिवेधमाह ।

प्रायोनपाकश्चूर्णानांभूरिचूर्णस्यतेनाहि ।

आसनपाकेप्रक्षेपस्वल्पस्यपाकमागते ॥

अर्थ-चूर्ण औषधका पाक करना उचित नहीं है इसका कारण यह है कि पाक करनेसे चूर्ण द्रव्यका वार्य नष्ट हो जाता है । किंतु चूर्णद्रव्यका परिमाण अत्यंत अधिक होय तो मोदक आदिके बनानेमें अवचासनी होनेपर आयजावे उस समय इसको उसचासनीमें डाल देना उचित है । अन्यथा समग्र चूर्णका उस पाकमें मिलना कठिन है । यदि चूर्ण थोड़ा होय तो जब चासनी लहडुकी होकर उत्तारलीनी जावे और थोड़ी गरम रहे उससमय मिलावे तो गुणकरे अन्यथा नहीं ॥

अथानुवटिकाविधिः ।

धात्वादीनामुद्भिदावा चूर्णमुक्तैर्द्रवैःसुतम् ॥

अनुक्तेतौययोगेनविमर्द्यविदधीतिच ॥

यवसर्पपुंजादिप्रमाणांवटिकाभिपक्व ॥

अनिर्दिष्टवटीसिद्धौप्रायोगुञ्जात्मिकामिति ॥

तत्सेवनंयथादोषमनुपानेनचेप्यते ॥

अर्थ-जड़ी बूटी अथवा धातु आदि सपूर्ण द्रव्यका वारीकचूर्ण यथोक्त द्रव पदार्थके साथ अथवा जहाँ न कहा हो वहाँ जलके साथ सरसो-जो अथवा रत्ती आदिके प्रमाण गोली बनानी चाहिये । जहाँ गोलीके विषयमें विशेष बुझनहीं लिखा उस जगे रत्ती २ की गोली बनानी । इस प्रकार बनाई हुई गोलीयोंको अनुवटिका अथवा सामान्य करके वटिका कहते हैं । ये दोष विशेषसे अनुपान-विशेष करके सेवन करना चाहिये ॥

रसचूर्णम् ।

रसराजयुतंवल्लिहममुखं विधिनापुटितंमनुशैत्यगतम् ॥

उपनीयततःपरिमर्दयतां रसचूर्णमिदंकथितंमुनिभिः ॥

अर्थ-गंधक और स्वर्णादिक द्रव्यपारेके साथ खरलकर यथाविधि पुटपाक देकर जब स्वांगशीतलहो जावे तब चूर्णकर औषधार्थ प्रयोगों में वर्त्ते । इस प्रकारकी औषधको रसचूर्ण कहते हैं ॥

### धन्वन्तरीकाभाग ।

अर्द्धसिद्धरसस्य तैलघृतयोर्लेहस्यभागोऽष्टमः

संसिद्धाखिललोहचूर्णगुटिकादीनां तथा सप्तमः ॥

योदीयेतभिषग्वरायसरुजानिर्दिश्यधन्वन्तरिम् ।

देहारोग्यसुखाप्तयेनिगदितो भागःसधन्वन्तरिः ॥ १ ॥

अर्थ-सिद्धरस ( पारदकी भस्म-चंद्रोदयादि ) में वैद्यका आधारान तैल घृत और अवलेह इनमें आठवां भाग तथा संपूर्ण लोहोंकी भस्म ( सुवर्ण-चांदी तांमा-रांगा लोहकी-भस्म ) चूर्ण-गोली, आदिशब्दसे पाक-अर्क इत्यादिकमें सप्तमभाग जो रोगी-धन्वन्तरिके उद्देश करके वैद्यके वास्ते देता है उसकी देहमें आरोग्यहो-और सुखकी प्राप्ति होती है ये भागधन्वन्तरिका कहलाता है इस वास्ते, अवश्य देना चाहिये ॥

क्रीतद्रव्यस्यभेषज्यभागश्चैकादशोहियः ॥

वाणिग्भ्योगृह्यते वैद्यै रुद्रभागः सकथ्यते ॥ २ ॥

अर्थ-खरीदी हुई औषधमें ग्यारहवां भागजो दुकानदारसे वैद्यलेता है वह रुद्रभाग कहलाता है-तात्पर्य यह है कि विकृती औषधमें वैद्य रोगीसे कुछ न लेवे किंतु बेचने वालेने जितनी औषध बेची है उसका ग्यारहवां भाग वैद्यको लेना चाहिये ये उसका हक्क है ॥

गृहीत्वाधिकमीशांशाद्योऽसमीचीनमौषधम्

दापयेद्धुधवद्वैद्यःसस्याद्विश्वासघातकः ॥

अर्थ-जो वैद्य ग्यारहवें भागसे अधिकलेता है-अथवा उस बेचनेवाले से मिलकर आप कुछ अपने लिये हिस्सा उहरायकर विकवाये वो लोभी वैद्य विश्वास घाती जानना-उसका न इस संसारमें भला होवे न पर लोकमें । प्रसंगवस यहाँ एकघात और लिखते हैं कि जिस्से मनुष्य जाली मनुष्यके फंदमें न पड़े ॥

यहां मधुरा-दिल्ली-आगरेमें सतिये लोग जो जातिके कायप होते हैं और अकसर जर्सीहीका या नेत्रोंका इलाज किया करतेहैं ये बाजारमें

एकांतमें बैठे रहते हैं जहां कोई गामका गमेरू मनुष्य अथवा परदेशी मनुष्य दीखा उसको इसारेसे अपने पास बुलाकर कुछ न कुछ ऐसा रोग बतावे कि जिस्से वो डरजावे, और उससे कहते हैं कि इस रोगसे तुम्हारी बगलमें पसीने आते होंगे, और जब तुम सीकर सुवहको उठते होंगे तब बड़े जोरसे पेशाब उतरता होगा—यदि गरमी देखें तो कहते हैं कि तुम्हारे पैरोंके तलवा बहुत पसीजते होंगे—प्यास अधिक लगती होगी और आलकस जियादह आता होगा—बस ऐसी २ बात कहनेसे उस विचारे भोले भाले परदेशीको इनका विश्वास आजाता है—और उससे बीचबीचमें यहभी कहते जाते हैं कि भाई यह तुम्हारा घुरा रोग देखके हमको तरस आगया यदि इसका इलाज न करोगे तो महीने दो महीनेमें मरजाओगे इस वास्ते हम खुदाकी राहपर तुम्हारा इलाज बताते हैं सो तुमकरो अल्लातालाके फजलसे बहुत जल्द तुमको आराम हो जावेगा । इस तरह उसको काधुमें कर जहां इसकी सट्ट लगी हुई होती है उसी दुकानपर चट्ट ले पहुंचते हैं—जाते खेम उससे कहते हैं कि फलां दवाई तेरेपास है वो कहे है अच्छानिकाल जब निकाले तब ये खरल लेकर बैठ जाते हैं और कहे ये छः मासे ढाल—दूसरी तोलेभर ढाल, इस तरह पहले दमही २ छदाम २ की दवाई बताए, फिर एक अनख टूटी नामलेकर दवाई मांगें वो पसारी कहे साहब वो बड़े मोलकी दवाई है तब ए कहे क्या मुजाका है निकालतो सही जब वो निकाल कर लावे तो पिसा हुआ गोंद होता है उसको कुछ अपनी जीभपर ढाले और एक चुटकी भरके अपने माहकके मुँमें डलवावें जब वो चिपकने लगे तब कहे कि देखो जैसी ये मुँमें चपदेती है । ऐसी ही तुम्हारी धातको गाढीकर देवेगी—फिर पसारीसे पूछें ये क्या तोले देवेगा वो कहे एकरूपे तोले तब ए कहे नहींनहीं आठ आने तोले वे—आखिर को आठ आने दश आने पक्कीकर तुलाते हैं तब यह देखते हैं इस आदमीके पास कितना पैसा है उस वखत पसारीसे कहते हैं कि भाई इस दवाईकी रुपया ढालके तोलो हम और तरहसे नहीं माननेके पसारी सधा हुआ होताही है चट कहदेता है कि मेरे पास अभी रुपयानही आया नहीं तो मैं रुपयसे तोलदेता उसवखत ये हकीमसाहब अपने मर्वाकिलसे कहते की आपके पास रुपया होय तो तोलनेके वास्ते देदीजिये ज्योंही उसने रुपया निकाला और हकीम साहब ताडगए कि इसके पास इतनी जमाई बसठसीके माफिक १ रु० की—दो रुपेकी ८ आनेकी या बारह आनेकी दवाई कुटाई और दामदिलाए उसकी पुडिया बांध उसको सौंपदेते हैं और उसके साथ २ चलकर शहरबाहर निकाल आते

हैं कि जिस्से कोई सख्स उसको भेकाए नहीं और उसको अपनी नेकी जताते हैं कि देखो तुम्हारे इस काममें हमने कौड़ी भी नहीं खाई ईश्वर की राह पर आपको दवाई बनवाय दीनी है—इस तरह उसको शहर बाहर कर चढ़ उस पंसारों के पास आनकर जैसा उसके ठहराव हो वैसा रुपये में बारह आने या दश आने लेकर फिर उसी मुकाम पर आन जमते हैं और दूसरी शिकार की तलाश करते हैं ॥

इस लिखने से हमारा यही प्रयोजन है कि, सब भोले मनुष्यों को जाहिर हो जावे कि ऐसे २ ठगिया—हकीम—जराह—ज्योतिषी—और मंत्रशास्त्री या जादूगरी के जाल से बचे ऐसा कोई सा सहर नहीं है जहाँ ये पामर (नीच) ठगियानहीं रहते इनकी मुख्य पहचान यही है कि ये बिना जानपहचान के आनकर खुसामद की और लोभ की बात से आदमी के दिल को लुभाते हैं—बस उसी समय बुद्धिमान् जान ले कि ये बिना कारण यह परदेशी हमारी क्यों खुसामद करता है—यह शिक्षा दत्तराम चौधे की याद रहे ॥

## अथ स्नेहपाकस्य साधारणो विधिः ।

तथा दौ तिल तैल मूर्च्छा ।

कृत्वा तैलं कटाहे दृढतर विमले मन्दमन्दानलैस्तत् तैलं  
निष्फेन भावं गतामिह यदा शैत्य युक्तं तदैव ॥ मंजिष्ठारा  
त्रिलोभ्रैर्जलधरनलिकैः सामलैः साक्षपथ्यैः ॥ सूचीप  
त्रांश्चिनीरैरुपहितमथितैः गन्धयोगं जहाति ॥

अर्थ—तैल मूर्च्छा के नियम कहते हैं—लोहे के दृढ कटाव में मंद २ अग्नि से तैल पाक करे—जब यह तेल झागरहित होय तब चूल्हे से उतार लेवे कुछ शीतल होने पर—पिसी हलदी को जल में घोर कर क्रम से धीरे २ उस तेल में डाले और औटाता जाय इसी प्रकार कुटी मजीठ को जल में घोरके धीरे २ क्रम से डाले—फिर लोथ नागरमोथा—नलिका—आंवला—बहेडा हरड—केतकी कीजड—बडकी कोपल और नेत्रवाला इन सबको पीस जल में मिलाय पृथक् २ तेल में क्रम से डाले—तथा इस तेल में चौगुना जल मिलाय फिर पाक करे जब कुछ जल बाकी रहे तब उतारके ७ दिन धरा रहने दे तो तैल की दुर्गंध दूर होय । इसी हलदी और मजीठ आदि द्रव्य को मूर्च्छा द्रव्य कहते हैं ॥

तैलस्येन्दुकलांशिकैकविकसाभागोऽपि मूर्च्छाविधौ ॥

ये चान्ये त्रिफलापयोदरजनीहीवेरलोध्रान्विताः ॥

सूचीपुष्पवटावरोहनलिकास्तस्याश्च पादांशिका ॥

**दुर्गंधविनिहंतितैलमरुणंसौरभ्यमाकुर्वते ॥**

अर्थ-अब इनके परिमाणका नियम कहते हैं कि जितना तेल होवे उसके षोडशांश मजीठ लेनी चाहिये और बाकी सब द्रव्य मजीठकी चतुर्थांश लेनी-जैसे तेल १६ सेर तो मजीठ १ सेर एवं हलदी-लोध-हरद-बहेडा-आमला-नागरमोथा-नेत्रवाला-इत्यादि द्रव्य सब पाव २ भर लेनी चाहिये मूच्छांके करनेसे तेलकी दुर्गंध दूरहोती है और उत्तम सुगंध आने लगें हैं तथा उस तेलका लालवर्ण उत्पन्न होता है ॥

**कटुतैलमूच्छा ।**

**वयस्थारजनीमुस्तविल्वदाडिमकेशरैः । कृष्णजरिक  
ह्रीवेरनलिकैः सविभीतकैः ॥ एतैः समांशैः प्रस्थेचकर्ष  
मात्रं प्रयोजयेत् । अरुणोद्विपलंतत्र तोयंचाढकसंमितं  
कटुतैलंपचेत्तेन आमदोषोपशान्तये ॥**

अर्थ-कटुतैलके मूच्छांकी औषध ये हैं-आमला-हरदी-नागरमोथा-वेलकीछाल अनारकी छाल-केशर-कालाजीरा-नेत्रवाला-नलिका बहेडा-और मजीठ । मूच्छां करनेकी विधि पूर्ववत् जाननी । अर्थात् तेल निस्केन होजावे तब उतारके हरदीजलमें घोरके तैलमें छिरके फिर मजीठको छिड़के-फिर अन्य २ सब वस्तुओंको तेलमें डाले ४ सेर कटुजातैल-मजीठ २ पल-और २ द्रव्य प्रत्येक दोदो तोलालेवे और जल १६ सेरमिलायके पाककरे ॥

**एरंडतैलमूच्छा ।**

**विकसामुस्तकंध्यान्यंत्रिफलावैजयन्तिका ॥ ह्रीवेरव  
खर्जूरवटशुंगानिशायुगम् । नलिकाभेषजंदेयंकेतकीच  
समंसमम् । प्रस्थेदेयंशुक्तिमितंमूच्छंनेदधिकांजिकम् ॥**

अर्थ-एरंडतैलकी मूच्छा द्रव्य ये हैं-मजीठ-नागरमोथा-धनिया-त्रिफला अरनीके पत्ते नेत्रवाला-वनखजूर-बड़कीकोपल-हरदी-दार-हलदी-नलिका-केतकीकीजड-दही-कांजी-प्रत्येक चार २ तोला, तेल अंडीका ४ सेर-पूर्वोक्तरीतिके अनुसार मजीठ आदिसे मूच्छा करे ॥

**घृतमूच्छा ।**

**पथ्याधात्रीविभीतैर्जलधररजनीमातुलंगद्रवैश्चद्रव्यै**

रेतैःसमस्तैः पलकपरिमितैर्मन्दमन्दानलेन । आज्यं  
प्रस्थंविफेनंपरिचपलगतंमूर्च्छयेद्वैद्यराजः तस्मादा-  
मोपदोपंहरतिचसकलंवीर्यवत्सौख्यदायि ॥

अर्थ-हरड-आमले-बहेडा-नागरमोथा-दलदी और नींबूकारस  
येसब वस्तु घृतकी मूर्च्छाद्रव्यहैं । प्रथमहलदी-पश्चात् नींबूका रस फिर  
और २ द्रव्य संपूर्ण डालके पूर्ववत् मूर्च्छित करे-मूर्च्छाद्रव्य प्रत्येक एकर  
पल लेवे घृत ४ सेरले और जलपाकार्य १६ सेर मिलावे ॥

वातहरतैलानांविशेषमूर्च्छाविधिः ।

आम्रजंबूकापित्थानांबीजपूरकबिल्वयोः ॥

गन्धकर्मणिसर्वत्रपत्राणिपञ्चपल्लवम् ॥

पंचपल्लवतोयेनगंधानां क्षालनंमतम् ॥

अर्थ-वातघ्न ( नारायणतैल-विषगर्भादि ) तैलोंकी मूर्च्छामें पूर्वोक्त  
साधारण नियमकरे । तथा पंचपल्लवजलमें फिरशोधनकरे । उसका  
नियम यह है कि आम-जामुन-कैथ, विजोरा-और बेल इनसबके-  
पत्ते तैलके अष्टमांस लेकर चौशुने जलमें काढाकरे, जबचतुर्धाश वाफ़ी  
रहे तबउतारके छानलेवे । फिरइसकाढे केसाथ उत्तममूर्च्छित तैलको  
फिरपाककरे ॥

स्नेहपाकमेंकालकानियम ।

मूर्च्छास्यात्सप्तभिः सिद्धारात्रिभिर्बुधसंमता ॥ ब्रीहि

प्राण्यंगयोःपाकःसद्यःसिध्यतिनान्यथा ॥ स्यात्पाकः

पयसोद्वाभ्यांस्वरसादेस्तुतिसृभिः ॥ दधिकांजिकत

क्राणांसिद्धोभवतिपञ्चभिः ॥ मूत्रादीनामेकयास्यात्ततः

कल्कस्यसप्तभिः॥ गंधानांपंचभिर्ज्ञेयः स्नेहपाकेत्वयंक्रमः॥

अर्थ-तैलादिककी मूर्च्छा ७ दिनमें होतीहै-अर्थात् मूर्च्छा द्रव्य संपूर्ण  
पाकके अंतर ७ दिन तकउतारके ढालते हैं । तत्पश्चात् मटरआदिका  
काढा और उसके पीछे मांसादिक काढेके साथ तैलकापाक करना ।  
इत्यादिकमें एकएक दिनलगत है, फिरदूधके साथ पाककरना इसमें दो-  
दिन लगते हैं फिर स्वरस तथा क्वाथके साथपाककरनेमें तीनदिन लगते

हैं, फिर दही-काँजी और छांछ इनके साथ पाकमें पांच५ दिन लगते हैं। तत्पश्चात् मूत्रादिकके साथ पाक करनेमें एक दिन लगता है। फिर कल्कपाक ७ दिनमें होता है—सबके पीछे गंधपाक अर्थात् गंधद्रव्य के साथ पाक ५ दिनमें होता है, तथा दूध-दही-इनके साथ पाक करनेमें एक एक दिन लगता है चतुर्विधस्नेह ।

**स्नेहश्चतुर्विधः प्रोक्तो घृतं तैलं वसा तथा ॥**

**मज्जा च तपि वेन्मर्त्यः किञ्चिदभ्युदितैरवौ ॥**

अर्थ—स्नेह ( चिकनाई ) चार प्रकार की है—जैसे—घी—तेल—वसा ( मांसस्नेह ) और मज्जा ( हड्डी से निकलता तेल ) ये चारों प्रकारके तेल किञ्चित् सूर्योदय होनेपर तथा नहोनेपर पीने चाहिये ॥

**द्विविधस्नेह ।**

**स्थावरं जंगमं चैव द्वियोनिः स्नेह उच्यते ॥**

**तिलतैलं स्थावरेषु जंगमेषु घृतं वरम् ॥**

अर्थ—वो स्नेह दो प्रकारका है एक स्थावर और दूसरा जंगम ये दोही स्नेहकी योनि हैं, तिनमें स्थावर पदार्थके स्नेह बहुत हैं उनमें तिलका तैल उत्तम है। और जंगम पदार्थोंमें घी आदि शब्दसे वसादिक अनेक है उनमें घी श्रेष्ठ है इस प्रकार स्नेहके दो भेद जानने ॥

**स्नेहके भेद ।**

**द्राभ्यां त्रिभिश्चतुर्भिस्तैर्यमकस्त्रिघृतो महान् ॥**

अर्थ—घी और तेल दोनोंके मिलनेसे उसको यमक कहते हैं और घी—तेल—तथा वसा ( चर्बी ) ये तीन एकत्र होनेसे उसकी त्रिघृत संज्ञा है तथा घी—तेल—वसा—और मज्जा इन चारोंके एकत्र मिलने से उसकी महान् संज्ञा है इस प्रकार स्नेहके तीन भेद जानने ॥

**स्नेहपाकविधिः ।**

**विमिश्रक्षेत्रपालौ वटुकमपिशुभे वा सरपूजायित्वा तैल ।**

**रग्राज्यस्य किं वारचयतु निपुणः संस्कृतिं संप्रदायात् ॥**

१ मांसादृष्ट्वा घृतं, अर्थात् मांसकी अपेक्षा घृत अठनुना अधिक है, इसी कारण प्रथम घृत लिखा है। २ मांससे घृतके समान तेल निकलता है अतएव उसको मांस स्नेह अथवा चर्बी कहते हैं। ३ जो नहीं चले (जैसे वृक्षादि उनको स्थावर) ४ और चलनेवाले (गो भैस—मनुष्य आदि) को जंगम कहते हैं।

आदौ बन्धिप्रदद्यालघुरथशनकैः फेनशब्दावधिः स्यात् ॥

पश्चान्मृत्पिण्डकैस्तदशभिरलघुभिर्नातिर्पानैर्विशोधयम् ॥

अर्थ—श्रीगणपति—क्षेत्रपाल और बटुक इनका शुभदिनमें पूजनकर-फिर तेल—अथवा घीकी विधिको कुशल वैद्य गुरु संप्रदायानुसार प्रारंभ करे प्रथम तेलको लोह आदिके कढ़ावमें चढ़ाय बूढ़े पररखके मंद मंद आगि देवे कि जबतक तेलमें झागन आवे और घीमें शब्द न होवे—फिरक्रमसे अधिको चढ़ावे। पश्चात् मिट्टीके दशगोला कि जो न बहुत बड़े और न बड़, त छोटे हो ऐसे लेकरउनसे शोधनकरे ॥

कल्काच्चतुर्गुणीकृत्यघृतं वा तैलमेव वा ॥

द्रव्ये चतुर्गुणे साध्यं तस्य मात्रा पलोन्मिता ॥

अर्थ—कल्कसे चौगुना घीवा तेल लेवे उसको चतुर्गुण द्रव्यमें साधन करे जिसकी मात्रा एकपल ( ४ तोले ) की है ॥

स्नेहसाधनमें काथ्य और जलादिका प्रमाण ।

निक्षिप्य काथयेत्तोयं काथ्यद्रव्याच्चतुर्गुणम् ॥ पादशिष्टं

गृहीत्वा तु स्नेहस्तेनैव साधयेत् ॥ चतुर्गुणं मृदु द्रव्यकठि

नेऽष्टगुणं जलम् । मृदादिकाथ्यसंघाते दद्यादष्टगुणं पयः ॥

अत्यंत कठिने द्रव्ये नीरं पोडशिकं मतम् ॥

अर्थ—अनेक स्थलमें काथके साथ घी वा तेलका पाककरते है इसीसे काथवनानेका नियम लिखते है । काथ्यद्रव्य ( जिसकी काथकरी जावेगी ) यदि नम्र होवे तो चौगुना जल डाले और यदि मध्यम होय अर्थात् न बहुत करडी और न बहुत नरम तो अठगुना जल मिलावे, तथा जो द्रव्य अत्यंत कठोर होवे तो सोलह गुना जल डालके काथ सिद्ध करे—जब चतुर्थांश शेष रहे तब उतारके छानलेवे । ऐसाकाठा स्नेहसे चौगुना लेना चाहिये ॥

अन्यच्च ।

कर्पादितः पल्यावत्क्षिपेत् पोडशिकं जलम् ॥ तदूर्ध्वं कुडवं यावद्भवेदष्टगुणं पयः ॥ प्रस्थादितः क्षिपेत्तीरं खारीयावच्चतुर्गुणम् ।

अर्थ—अन्यत्रभी लिखा है कि काथवनानेमें काथ द्रव्यका परिमाण १ फर्से लेकर परपर्यंत होनेसे सोलहगुना जल डालना और पलसे लेकर कुडव पर्यंत अठगुना जल डालना एवं प्रस्थसे लेकर खारी पर्यंत द्रव्य होवेतो उसमें चौगुना जल डालना न्यूनाधिक नहीं डालना ॥



**तुलाद्रव्येजलद्रोणोद्रोणेद्रव्यतुलामता ।**

अर्थ—जहां जलका परिमाणकुछ नहीं कहा वहाँ १२॥ सेर द्रव्यमें ६४ सेर जलडालके कायकरे । एवं ६४ सेर जलमें काथ्यद्रव्य १२॥ सेर डालना चाहिये ॥

**अनिर्दिष्टप्रमाणानांस्नेहानांप्रस्थदृष्यते ।**

**जलस्नेहौषधानांचप्रमाणंयत्रनोदितम् ॥**

**तत्रस्यादौषधात्स्नेहः स्नेहात्तोयंचतुर्गुणम् ॥**

**स्नेहसिद्धौद्रव्येऽनुक्तेसर्वत्राम्भश्चतुर्गुणम् ॥**

**गन्धद्रव्याणिचेच्छन्तिकल्कस्याधौशिकानिच ॥**

अर्थ—स्नेह पाकमें जहां विशेष कुछनहीं लिखा उसजगे स्नेह १ सेर लेना चाहिये, तथा जलस्नेह—और कल्कद्रव्यका परिमाण न लिखाहो तहां कल्कचौगुनालेना स्नेह और कल्कपाकार्थ जलका परिमाण स्नेहसे चौगुनालेना चाहिये । स्नेह पाकमें द्रव्य पदार्थका जहां उल्लेख न होवे तहां चौगुना जलडालके पाक करना । तथा तैल पाकमें गंधद्रव्यका परिमाण कल्कके परिमाणसे आधा जानना चाहिये ॥

**स्नेहपाकविधौयत्रक्षीरमेकंतुकथ्यते ।**

**तोयादीनामनिर्देशेक्षीरमेवचतुर्गुणम् ॥**

**द्रव्यान्तरेणयोगेतुक्षीरंस्नेहसमंविदुः ॥**

अर्थ—स्नेह पाकमें यदि दुग्धके सिवाय और पदार्थ नहो अर्थात् केवल दूधसे ही पाककरना होवे तो दूधस्नेहसे चौगुनालेना चाहिये । और यदि पाकमें जल अथवा अन्य द्रव्यका संयोग होवे तो दूधस्नेहके बराबरही लेना यह नियम है ।

**वृन्देतु ।**

**स्वरसक्षीरमाङ्गल्यैर्पाकोयत्रेरितः क्वचित् ॥**

**जलंचतुर्गुणंतत्रवीर्याधानार्थमावपेत् ॥**

**नमुंचतिरसंद्रव्यंक्षीरादिभिरुपस्कृतम् ॥**

**सम्यक्पाकोनजायेततस्मात्तोयंचतुर्गुणम् ॥**

अर्थ—वृन्दर्पणमें लिखा है कि स्वरस—दूध—अथवा दही इनकरके पाक करना कहाहो वहां कहीं २ चौगुना जल मिलाकर पाक करते हैं ॥

१ कल्काच्चतुर्गुणः स्नेहः स्नेहात्कापञ्चतुर्गुणः । कापाच्चतुर्गुणंवारिपापः काप्यसमोमतः

इसका तात्पर्य यह है कि दूध आदिके गाढ़ा होने पर कल्कादिद्रव्यका रस अच्छीतरह नही निकलता अतएव उत्तम पाकभी नही होवे—इसी कारण चौगुना जल डालनेसे पाक ठीकर होता है और द्रव्योंमें वीर्यकी प्राप्ति होती है इससे चौगुना जल डालना चाहिये ॥

**पंचप्रभृति यत्र स्युर्द्रव्याणि स्नेहसंविधौ ।**

**तत्र स्नेहसमान्याहुरर्वाक् च स्याच्चतुर्गुणम् ॥**

अर्थ—स्नेहपाकमें पांच अथवा पांचसे अधिक द्रव्य होवे तो प्रत्येक द्रव्यका प्रमाण स्नेहके समान लेना चाहिये । यदि पांचसे न्यून (कम्) होवे तो उनको स्नेहसे चौगुना लेना चाहिये ॥

**अम्बुकाथरसैर्यत्र पृथक् स्नेहस्य साधनम् ।**

**कल्कस्यांशं तत्र दद्याच्चतुर्थपटमपटमम् ॥**

अर्थ—जलद्वारा स्नेह पाक करना होवे तो एक द्रव्यका परिमाण स्नेहसे चतुर्थांश लेवे । काथके द्वारा पाक करना होय तो कल्कका परिमाण स्नेहसे छठा भाग लेवे । एवं स्वरस द्वारा पाक करना होय तो स्नेहका अष्टमांश रस लेना चाहिये ॥

**दुग्धे दधिरसे तत्र के कल्को देयोष्टमांशिकः ।**

**कल्काच्च सम्यक् पाकार्थं तोयमत्र चतुर्गुणम् ॥**

**कल्कात्कल्कद्रव्याच्चतुर्गुणतोयं पेयार्थम् ॥**

अर्थ—दूध—दही—स्वरस अथवा छाछद्वारा पाक करना होवे तो स्नेहका अष्टमांश कल्क और कल्कका चौगुना जल डालना चाहिये । चौगुना जल कल्कके पीसनेके वास्ते लेते हैं ॥

**काथेन केवलेनैव पाको यत्रोदितः क्वचित् ॥ काथ्यद्रव्यस्य-**

**कल्कोऽपि तत्र स्नेहे प्रयुज्यते । कल्कहीनस्तु यः स्नेहः**

**स साध्यः केवलेनैव । केवलेनैव काथेतरस्मिन् स्वरसादिरूपे ॥**

अर्थ—जहकिवल काथ द्वारा स्नेह साधन कहा हो तो उसजगे काथ्य द्रव्यका कल्कभी मिलापके पाक करे । जहां कल्कके बिना स्नेहपाक करना होय उसजगे काथके शद्वश अन्य द्रव पदार्थके साथ अर्थात् स्वरसादि के साथ पाक करना चाहिये ॥

**पुष्पकल्कस्तु यः स्नेहस्तत्र तोयं चतुर्गुणम् ।**

**स्नेहात्स्नेहाष्टमांशश्च पुष्पकल्कः प्रयुज्यते ॥**

अर्थ—कल्कद्रव्य यदि पुष्पहोय तो उसको स्नेहका अष्टमांश लेवे और पाकार्थ स्नेहका चौगुना जल डालना चाहिये ॥

आदौकल्कःप्रदातव्योगंधद्रव्यंततःपरम् । तैलमुत्तार्यदा  
तव्यंशिहकंकुङ्कुमंनखम् । गंधचंदनकपूरमेलवीजंलवंगकम् ॥

अर्थ—प्रथम कल्कपाककरे—फिर गंधद्रव्यका पाककरे—गंधद्रव्य समग्र फल्कके परिमाणसे आधी होनी चाहिये । तैलकादूनाजलदेकर गंधपाक करे गंध द्रव्यमें शिलारस, केशर, नख, सपेद चंदन, कपूर, छोटी इलायची और लोंग इनका पाक नहींकरना इनको पाकातमें तैल चूल्हेसे उतार शीतलकर उसमें ये द्रव्य पीसके डालदेवे और कौंचासे सबको मिलाय के एकजीव करदेना चाहिये ॥

गंधद्रव्याणि ।

एलाचंदनकुङ्कुमागरुमुराकंकोलमांसीशटी ॥  
श्रीवासच्छदग्रन्थिपर्णशशभृत्क्षौणीध्रजोशी  
रकम् ॥ कस्तूरीनखपूतितैलजलमुद्गमेथीलवं  
गादिकम् गंधद्रव्यमिदंप्रदेयमखिलंश्रीविष्णुतैलादिषु ॥

अर्थ—छोटी इलायची,—सफेदचंदन,—केशर,—अगर,—जटाभांसी,—कचूर,—सरलकाष्ठ,—तेजपत्र,—गठीला, कपूर,—शिलाजीत,—खस,—कस्तूरी, नख,—मुक्कबिलाई, शिलारस, नागरमोया, मेथी, लोंग, इत्यादि गंधद्रव्य कहाती हैं नारायण तैल आदिमें ये संपूर्ण गंधद्रव्य देनी चाहिये ॥

स्नेहपाकपरिज्ञानम् ।

वर्तिवत्स्नेहकल्कःस्याद्यदाङ्गुल्याविवर्तितः ॥  
शद्गहीनोऽग्निनिक्षिप्तः स्नेहः सिद्धोभवेत्तदा ॥  
यदाफेनोद्गमस्तैलेफेनंशांतिश्चसर्पिषि ॥  
गंधवर्णरसोत्पत्तिः स्नेहः सिद्धोभवेत्तदा ॥

अर्थ—स्नेह पाकमें जब कल्कको अंगुलियोंके मीडनसे चतीसी होने लगे तथा अग्निमें उसको गरनेसे चट चटाहट शब्द नकरे तब जानना कि स्नेह, सिद्ध होगया । जिस समय तेलमें झाग आवे और धीमें झाग आना बंदहो जावे तथा उपयुक्त वर्ण गंध और रसकी उत्पत्ति होवे तब जानना कि पाक सिद्ध होचुका ॥

## त्रिविधपाक ।

स्नेहपाकस्त्रिधाप्रोक्तोमृदुर्मध्यःस्वरस्तथा । इपत्स्वर  
सकल्कस्तुस्नेहपाकोमृदुर्भवेत् ॥ मध्यपाकस्यसिद्धि  
श्चकल्केनीरसकोपले । इपत्कठिनकल्कश्चस्नेहपाको  
भवेत्स्वरः ॥ तदूर्ध्वदग्धपाकःस्यादाहकृन्निप्रयोजनः ।  
आमपक्वश्चनिर्वार्योवह्निमांथकरोगुरुः ॥

अर्थ—स्नेहपाक तीन प्रकारका है १ मृदु—२ मध्य—३ स्वर—तहाँ कल्कद्रव्यका  
कुछ थोड़ा सारस अंश बाकी रहनेसे मृदु पाक कहा जाता है और जो कोमल होय  
तथा रस रहित हो उसको मध्यपाक कहते हैं। एवकुछ थोड़ा कठिन होनेसे स्वर-  
पाक कहा जाता है। इसके उपरांत कठिन पाक होनेसे दग्ध पाक कहा जाता है। ऐसा  
स्नेह कार्य साधक नहीं होता—यह दाहको प्रगट करे है तथा आमपक्व (कच्चे  
पाकका) स्नेह निर्वार्य—मंदाग्नि करता और भारी होता है ॥

नस्याथैस्यान्मृदुःपाकोमध्यमःसर्वकर्मसु ।

अभ्यंगार्थःस्वरःप्रोक्तोयुंज्यादेवयथोचितम् ॥

अर्थ—नस्यके अर्थ मृदुपाकवाला स्नेह लेना और मालिशमें स्वरपाक  
लेना तथा मध्यपाक स्नेह सर्व कार्योंपयोगी जानना ॥

घृततैलगुडादींश्चसाधयेन्नैकवासरे ।

प्रकुर्वत्युपिताह्येतेविशेषाङ्गणसंचयम् ॥

अर्थ—घृत—तेल और गुड आदिपाक एक दिनमें न साधन करे, इसका  
यह कारण है कि, उपित (घासित) अर्थात् अधिक दिनमें सिद्ध करा हुआ पाक  
विशेष गुणोंको फरता है इसी कारण धीरे धीरे साधन करे ॥

अथस्नेहसेवनविधिः ।

गुरुशीतसरस्निग्धमंदसूक्ष्ममृदुद्रवम् । औषधंस्नेहनं  
प्रायोविपरीतं विरूक्षणम् । सर्पिर्मज्जावसातैलंस्नेहेषुप्रवरं  
मतम् ॥ तत्रापिचोत्तमं सर्पिःसंस्कारस्यावनुत्तनात् । घृ  
तातैलंगुरुवसातैलान्मज्जाततोऽपिच ॥

अर्थ—गुरु, शीत, सर, सिग्ध, मंद, सूक्ष्म, मृदु और द्रव, गुणयुक्त द्रव्य  
समस्त स्नेहन जानना। इसके विपरीत अर्थात् लघु, उष्ण, स्थिर, रूत, स्थूल,

कठिन और सांद्रगुण, विशेषद्रव्यमात्र प्रायः रूक्षण जानना । स्नेहपदार्थमें घृत, मज्जा, वसा और तैल ये चार प्रधान हैं । इस स्नेहचतुष्टयमेंभी घृत उत्तम है । कारण यह है कि, इस घृतका अन्य द्रव्यके साथ संस्कार होनेसे निजशक्ति और संस्कृत द्रव्यकी शक्तिको प्रकाश करे है । घृतसे तैल तैलसे भारी वसा है और वसासे भारी मज्जा जाननी ॥

स्नेहपीनेकाक्रम ।

पिवेन्यहंचतुरहं पंचाहंपडहंतया ॥

अर्थ-पी तीन दिन पीवे और तैल चार दिन पीवे तथा मांस स्नेह पांच दिन पीवे और हड्डीका तैल छ दिन पीना चाहियो इस प्रकार क्रम करके घृतादि स्नेह पीनेका क्रम जानना ॥

सतरात्रात्परंस्नेहःसात्मीभवतिसेवितः ॥

अर्थ-सात दिवसके अनंतर घृतादिक स्नेह पीनेसे आहारके समान हो जाता है । फिर गुण अवगुण कुछ नहीं करता ॥

स्नेहपानमेंयुक्ति ।

दोषकालामिवयसांवलंढद्वाप्रयोजयेत् ।

हीनांचमध्यमांज्येष्ठांमात्रांस्नेहस्यबुद्धिमान् ॥

अर्थ-वातादिक दोष, काल, अग्नि, अवस्था इनका बलावल विचारके घृतादिक स्नेहोंकी सेवनकी मात्रा हीने ( अल्प ) और मध्य तथा ज्येष्ठ इनमेंसे शक्तिका तारतम्य देखकर देनी चाहिये ॥

अविधिस्नेहसेवनकेदोष ।

अमात्रयातथाकालेमिथ्याहारविहारतः ।

स्नेहःकरोतिशोफार्शस्तंद्रानिद्राविसंज्ञितः ॥

अर्थ-घृतादिक स्नेह पीनेका प्रमाण कहा है उसकी अपेक्षा कम अथवा ज्यादा पीनेसे, तथा पीनेका काल छोड़कर अन्यकालमें पीनेसे तथा घृतादिक स्नेह पी कर मिथ्या आहार और मिथ्या विहार करनेसे उस स्नेहसे सूजन और ववासीर होती है तथा तंद्रा आनकर घोरनिद्रा आती है तथा संज्ञाका नाश होता है

१ स्नेह पीनेमें । २ कर्पकी मात्रा हीने हैं तीन कर्पकी मात्रा मध्यम जाननी । ३ एक पल प्रमाणकी जो मात्रा है वो ज्येष्ठ ( बड़ी ) जाननी ।

स्नेहयोग्यमनुष्य ।

स्वेद्यसंशोध्यमद्यस्त्रीव्यायामासक्तचित्ताः ।

वृद्धबालाबलकृशारूक्षक्षीणासुरेतसः ॥

वातातसंधितिमिरदारुणप्रतिबोधिनाः ॥

अर्थ—औषध करके जिसका पसीना काढाहो, रेचक औषध करके शुद्ध कराहुआ, मद्य पीनेवाला, स्त्रीपीरभ्रमसे थकाहुआ, चिंताकरके व्याप्त, वृद्ध, बालक, कृश, रूक्ष, क्षीण, रुधिरवाला, धातुक्षीण, बादीकरके पीड़ित, तिमिररोगसे व्याप्त ऐसे प्रकारके मनुष्य घृतादिक स्नेह पीनेके योग्यहैं ऐसा जानना ॥

स्नेहक्रियाअयोग्य ।

स्नेहानत्वतिमन्दाग्नितीक्ष्णाग्निस्थूलदुर्बलाः ।

उरुस्तंभातिसारामगलरोगगरोदरैः ॥

मूर्च्छाछर्द्यरुचिश्लेष्मत्तृष्णामद्यैश्चपीडिताः ।

अपप्रसूतायुक्तेचनस्येवस्तौविरेचने ॥

अर्थ—अत्यंत मंदामिवाला, अत्यंत तीक्ष्णामिवाला, अतिस्थूल, अत्यंत दुर्बल, एवंकुरुस्तंभ, अतिसार, आम, गलरोग, विषरोग, उदररोगी, मूर्च्छा, वमन, अरुचि, कफ, तृषा और मदात्यय रोगसे पीड़ित, अकाल प्रसूता नारी इत्यादि रोगी तथा नस्य, बस्ती और विरेचन करबुकाहो ऐसे मनुष्योंको स्नेहन क्रिया करना निषेधहै ॥ घृतयोग्य ।

तत्रधीस्मृतिमेधाग्निकांक्षिणांशस्यतेघृतम् ॥

अर्थ—तहां बुद्धि, स्मृति ( स्मरण ) मेधा और अभिवृद्धि इनके निमित्त स्नेह प्रयोग करनेवालोंको घृतप्रयोग उत्तमहै ॥

तैलयोग्य ।

अन्धनाडीक्रिमिश्लेष्ममेदोमारुतरोगिषु ॥ तैललाघवदा-  
ढ्यैर्यैःशूरकोष्ठेषुदेहिषु ॥ वातातपाध्वभापास्त्रीव्याया-  
माक्षीणधातुषु ॥

अर्थ—गांठ, नाडीव्रण, कृमि, कफ, मेदा, चाचुरोगसे पीड़ित, शूरकोठेवाला एवं हवा, धूप, भार्गचलना, अधिक पुकारना ( पटना गाना आदि ) स्त्रीमंभोग और दंड, कसरत, इत्यादि कारणोंसे क्षीण धातुनालोंके पक्षमें तथा हलकापन और दृढताके निमित्त तैलका प्रयोग अति उत्तमहै ॥

वसा और मज्जाके अधिकारी ।

रूक्षकेशक्षमात्यग्निवातावृतपथेषुच । शेषैवसातु-

अर्थ-रूक्षदेह, केशका सहनेवाला, अत्यंत अग्निदीप्तवाला, इनको तथा वादी करके मार्गरुका हुआ ऐसे मनुष्योंको बाकीके दोस्नेह वसा और मज्जा हितकारी जानने ॥

. वसाकाप्रयोग ।

सन्ध्यास्थिमर्मकोष्ठरुजांसुच । तथादग्धाहतेभ्रष्टेयोनि  
कर्णशिरोरुजि ॥

अर्थ-संधि, हड्डी, मर्म, कोष्ठ, कर्ण और मस्तककी पीड़ा, एवं दग्धयोनि, आहतयोनि और भ्रष्टयोनि ऐसी स्त्रियोंके पक्षमें वसा अत्यंत हितकारी है ॥

ऋतुपरत्वधृततेलादिकासेवन ।

तैलंप्रावृषिपर्षान्तेसर्पिरन्योतुमाधवे । ऋतौसाधारणेस्ने  
हःशस्तोऽह्निविमलेखौ ॥

अर्थ-प्रावृद्धकालमें तैल, शरदकालमें घृत, एवं वसंतकालमें वसा और मज्जा सेवन करने । साधारण ऋतुमें अर्थात् जिससमय शीत, गरमी और वर्षा इनकी प्राच्यता न होवे उस समय दिनमें सूर्य निर्मल हो अर्थात् बादलादिक होय नहीं उससमय स्नेहप्रयोग करना उत्तम है ॥

तैलंत्वरयांशीतेपिधर्मेपिचघृतंनिशि । निश्येवापित्तेप-  
वनेसंसर्गेपित्तवत्यपि । निश्यन्यथावातकफाद्रोगाःस्युः  
पित्ततोदिवा ॥

अर्थ-अत्यंत आवश्यकतामें अर्थात् जिसरोगसे शीघ्रही चिगाड दीखे उस रोगमें शीतकालमेंभी तैलका प्रयोग करना किंतु दिनमें जब सूर्य निर्मल होवे तब करे इसी प्रकार गरमीमें घृतकी व्यवस्था जाननी, परंतु घृतको रात्रिमें देना चाहियेकेवल पित्त अथवा केवल वादीमें अथवा पित्तयुक्त संसर्गस्थलमें रात्रिके समय स्नेहपानकी व्यवस्था जाननी। अविधिसे रात्रिमें स्नेहप्रयोग करनेसे वात कफके रोग और अविधिसे दिनमें स्नेह प्रयोग करनेसे पित्तक रोग उत्पन्न होते हैं ॥ स्नेहपानकी मात्रा ।

देयादीप्ताग्नेमात्रास्नेहस्यपलसंमिता ।

**मध्यमायत्रिकर्षास्याजघन्यायद्विकर्षिकी ॥**

अर्थ—जिसमनुष्यकी दीक्षाग्रि होवे उसको घृतादिक स्नेहकी मात्रा १ पल पिलानी चाहिये और जिसकी मध्यम अग्रिहै उसमनुष्यको तीनकर्ष प्रमाणदेवे तथा जिसकी मंद अग्रि होवे उसको दोकर्षप्रमाणकी मात्रा देनी चाहिये।  
प्रकारांतर ।

**अथवास्नेहमात्राः स्युस्तिप्तोऽन्याः सर्वसंमताः ।**

**अहोरात्रेण महती जीर्यत्यद्वितुं मध्यमा ।**

**जीर्यत्यल्पादिनाद्धेन सा विज्ञेया सुखावहा ॥**

अर्थ—संपूर्ण ऋषियोंको मान्य ऐसी दूसरी घृतादिक स्नेह व्यवस्थापक मात्रा तीन प्रकारकी है उसको कहते हैं। जो मात्रा आठप्रहरमें पचे उसको बड़ी मात्रा कहते हैं वो एक पलकी जाननी और जो मात्रा एकदिनमें पचे उसको मध्यम कहते हैं वो तीन कर्षकी है। तथा जो मात्रा दोप्रहरमें पचे उसको अल्पा ( छोटी मात्रा ) कहते हैं वो दोकर्षकी जाननी यह सुखदायक है अर्थात् यह सबको पचन हो सकती है । अल्पादिक मात्राओंके गुण ।

**अल्पास्यादीपनी वृष्ट्या स्वल्पदोषे सुपूजिता ।**

**मध्यमा स्नेहनी ज्ञेया वृंहणी भ्रमहारिणी ।**

**ज्येष्ठा कुष्ठविषोन्मादभ्रहापस्मारनाशिनी ॥**

अर्थ—घृतादिक स्नेह पीनेकी जो दोकर्षकी अल्पमात्रा है वह जठराग्नि दीप्तकर स्त्रीसंगकी रुचि बढ़ावे है, तथा घातादिक दोषोंके अल्पप्रकोपको दूरकरे है। तथा तीनकर्षकी जो मध्यममात्रा है। वो देहको पुष्टकर धातुकी वृद्धिकरे है। तथा भ्रमको दूरकरे है। एवं १ पलकी जो ज्येष्ठमात्रा है वो कुष्ठ, विष, मूतोन्माद और अपस्मार इनका नाशकरे ॥

**दोषोंमें अनुपानविशेष ।**

**केवलपित्तिके सर्पिर्वातिके लवणान्वितम् ।**

**देयं बहुकफे वापि व्योषस्य समन्वितम् ॥**

अर्थ—केवल पित्तके कोषमें घी मिलावे और वायुके कोषमें घी और निमक मिलायके पिवावे । तथा कफके अत्यंत कोप होनेसे व्योष—तथा जवाखार इनके चूर्णके साथ देवे ॥

१ सोंठ, मिरच, पीपल, इन तीनोंके समुदायको व्योष कहते हैं ।



घृतयोग्य ।

रूक्षसतविपार्त्तानां वातपित्तविकारिणाम् ।

हीनमेधास्मृतीनां च सर्पिः पानं प्रशस्यते ॥

अर्थ—रूक्षमनुष्य उरक्षत और विपार्त्त मनुष्य—तथा वातपित्तके विकारी एवं बुद्धि स्मृति करके हीन हैं उनको घृतका पिलाना उत्तम है ॥

तैलयोग्य ।

कृमिकोष्ठानिलाविष्टाः प्रवृद्धकफमेदसः ।

पिवेयुस्तैलसाम्यायेतैलं दीप्ताग्नयस्तु ये ॥

अर्थ—कृमिरोगी, उदरविकारी तथा वायुकरके व्याप्त है शरीर जिन्हों का तथा प्रवृद्धदुष्ट हैं कफ और मेद जिनके ऐसे मनुष्योंको तैल पिलावे । तथा जिनकी प्रकृतिको तेल सुहाता हो एवं प्रदीप्त है अग्नि जिनकी उन मनुष्योंको तैल पिलाना चाहिये ॥

चर्बीयोग्य ।

व्यायामकर्पिताः शुष्करेतोरक्तामहारुजः ।

महाग्निमारुतप्राणावसायोग्यानराः स्मृताः ॥

अर्थ—कुशली कशरत तथा धनुष्यादिकका खींचना इनकरके पीडित है शरीर जिसका तथा क्षीण है धातु और रक्तजिनका तथा देहमें घोरपीड़ा है जिनके एवं अग्नि और वायु हैं प्रबल जिसके ऐसे मनुष्योंको मांस स्नेह पिलाना चाहिये ॥ मज्जा ( हड्डीका तेल ) ।

मूराशयाः कुशसहावातार्ता दीप्तवह्नयः ।

मज्जानं च पिवेयुस्ते सर्पिर्वासर्वतो हितम् ॥

अर्थ—दुष्ट है कोष्ठ जिन्होंका तथा दुःख सहन करनेवाले मनुष्य तथा जो मनुष्य वायुकरके पीडित हैं एवं प्रदीप्त हैं जठराग्नि जिन्होंकी ऐसे मनुष्योंको हड्डीका तेल पिलाना अथवा घी पिलावे तो इसकार्यसे शरीरको हित होता है

१ जिनमनुष्योंकी प्रदीप्त अग्नि है—तथा वायुका शरीरमें जैसा वर्त्ताव चाहिये ऐसा वर्त्ते तथा अधिक सायहो अन्नको पचन करे इसीसे अग्नि और वायु ये शक्ति देनेवाले हैं तथा ये अनुकूल होंगे तो मांसका स्नेह पचन होय और ये अनुकूल न होंगे तो नहीं पचे ।

२ आम २ अग्नि ३ पक्क ४ मूत्र ५ यकृत ६ लीला ७ हृदय ८ टंडुक ९ और फुफ्फुस नौ स्थानोंको कोष्ठ कहते हैं अर्थात् ये पदार्थ कोष्ठमें रहते हैं ।

स्नेहपानकाल ।

शीतकालेदिवास्नेहमुष्णकालेपिवेत्रिंश ।

वातपित्ताधिकेरात्रौवातश्लेष्माधिकेदिवा ॥

अर्थ—शीतकालमें घृतादिक स्नेह दिनमें पीवे और गरमीमें वात पित्त प्रबल होनेसे रात्रिके समय पीवे । तथा कफ वायु प्रबल होनेसे दिनमें पीवे इसप्रकार स्नेह पीनेका क्रमजानना ॥

स्नेहकीस्थलविशेषमेंयो जना ।

नस्याभ्यंजनगंडूपमूर्धकर्णाक्षितर्पणे ।

तैलंघृतंवायुंजीतदृष्ट्वादोषबलाबलम् ॥

अर्थ—नाकमें डालनेके विषयमें तथा अंगमें मालिश करना कुछे करना तथा मस्तक, कानऔर नेत्रोंकी तृप्तिके विषयमें वातादिकोंका बलाबल देख तेल अथवा घृतकी योजनाकरे ॥

स्नेहकेपृथक् २ अनुपान ।

घृतेकोष्णजलंपेयंतैलेयूपःप्रशस्यते ।

वसामज्ज्ञोःपिवेन्मंडमनुपानंसुखावहम् ॥

अर्थ—घृतपीकर उसके ऊपर गरम जल पीवे तथा तेल पीके ऊपर न्योपे पीवे—मांस स्नेह अथवा हड्डीका तेल पीकर ऊपरसे मंड पीवे तो सुखकारी होय इस प्रकार स्नेहका अनुपान जानना ॥

भातकेसंगस्नेहदेनेयोग्य ।

स्नेहद्विपःशिशूनवृद्धान्सुकुमारान्कृशानपि ।

तृष्णातुरानुष्णकालेसहभक्तेनपाययेत् ॥

अर्थ—घृतादिक स्नेहसे जिनको द्वेष(नफरत)है, तथा बाल वृद्ध-सुकुमार मनुष्य और कृश तथा तृष्णा करके पीडित ऐसे मनुष्यको गरमीके दिनोंमें भातके साथ घृतादिक स्नेह पियावे ॥

यवागूकोसद्यःस्नेहकारित्व ।

सर्पिष्मतीबहुतिलायवागूःस्वल्पतंदुला ।

१ चावल गुल्थी इत्यादिक धान्य एक पल ले उसमें जल १ प्रस्थ डालके ओटवे और गाढीकरे उसको न्योत्र ऐसा कहते हैं । २ भातके पेयको मंड ऐसा कहते हैं ।

**सुखोष्णासेव्यमानातुसद्यःस्नेहनकारिणी ॥**

अर्थ-तिलोंको कूट उसमें थोड़े चावल मिलाय धी और पानी उनमें डालके चूल्हेपर चढायके औटावे मंदाभिसे पतली ल्हयसीसी बनावे उसकी यावगू कहते हैं । यह यवागू कुछ गरम २ सेवन करनेसे उसीसमय देहमें धातु उत्पन्न होती है अर्थात् सद्यस्नेहनकारिणी है ॥

धारोष्णदुग्धसेतत्कालधातुवत्पन्नहोतीहै ।

**शर्कराचूर्णसंमृष्टेदोहनस्थेघृतेतुगाम् ।**

**दुग्धवाक्षरिंपिवेदुष्णंसद्यःस्नेहनमुच्यते ॥**

अर्थ-मिश्रीका चूरा धीमें डालके उस धीको चूल्हेपर चढाय थोड़ा गरमकर दूधदुहनेके पात्र(दोहनी)में डाले फिर उसपात्रमें गौका दूध उसी समय गरम होय उसको पीवे ऐसा करनेसे तत्काल स्नेहन होता है अर्थात् उसीसमय देहमें धातु उत्पन्न करता है ॥

मिथ्योपचारसेजिसकोस्नेह पचे उसका यत्न ।

**मिथ्याचाराद्बहुत्वाद्वायस्यस्नेहो न जीर्यति ।**

**विप्रभ्यवापि जीर्येतवारिणोष्णेन वामयेत् ॥**

अर्थ-घृतादिक स्नेह पीनेके पश्चात् व्यायामादिक परिश्रम करनेसे वो स्नेह पचे नहीं अथवा बहुत पीनेसे नहीं पचा अथवा मलके अवरोध करके जीर्ण नहीं हुआ ऐसे स्नेहाजीर्ण मनुष्यको गरम २ जल पिलायकर ठलटी करावे जिस्से स्नेहके अजीर्णका दोष दूरहोय ॥

दूसरायत्न ।

**स्नेहस्याजीर्णशंकायांपिवेदुष्णोदकं नरः ।**

**ततोद्गारो भवेच्छुद्धो भक्तप्रीतिरुचिस्तथा ॥**

अर्थ-घृतादिक स्नेह पीनेसे यदि अजीर्ण हुआ ऐसी शंका होय तो गरमागरम जल पीवे जिस्से शुद्ध उत्तम डकार आकर अन्नके रूपर रूचि आवे आतेही अजीर्ण दूर हुआ ऐसा जानना ॥

स्नेहनकरके पित्तकोष हो नृषा लगे उसका उपाय ।

**स्नेहेन पैत्तिकस्याग्निर्यदातीक्ष्णतरीकृतः ।**

**तदास्योदीयते तृष्णा विपरिमात्तस्य पाययेत् ॥**

**शीतजलं वामयेच्च पिपासा तेन शाम्यति ॥**

अर्थ—जिस मनुष्यकी आधी पित्तकी प्रकृति उसमें वो मनुष्य घृतादिक स्नेह पदार्थ पीवे तो उसकरके उसमनुष्यकी अग्नि अत्यंत तीक्ष्ण हो तृषाको बढावे उसतृषाके दूर करनेको उस मनुष्यको शीतलजल पिवावे तथा उलटी करवावे कि, जिस्से अत्यंत प्यासका लगना दूरहो ॥

**वर्जितस्नेहीमनुष्यः ।**

**अजीर्णं वर्जयेत्स्नेहमुदरीतरुणज्वरी ।**

**दुर्बलो रोचकी स्थूलो मूर्च्छार्तो मदपीडितः ॥**

**दत्तवस्तिर्विरक्तश्च वांति तृष्णा समन्वितः ।**

**अकालप्रसवानारी दुर्दिने च विवर्जयेत् ॥**

अर्थ—अजीर्णका विकार उदररोगी, तरुणज्वरवाला, दुर्बलमनुष्य अरुचिवाला, अतिस्थूल, मूर्च्छारोगी, मद्यपनिसे पीडित एवं वस्तिर्कर्मकराहुआ—तथा जिसको दस्त होतेहो, उलटीकरताहो, प्याससे पीडित तथा अकालमें प्रसूता स्त्री इन सब रोगियोंको घृतादिक स्नेह पान नहींकरना चाहिये—तथा जिस दिन बद्दलसे आकाश घिररहाहो उस दिनभी स्नेहपान करना वर्जितहै ॥

**उत्तमस्नेहकेलक्षणः ।**

**वातानुलोम्यं दीप्तोऽग्निर्वर्चः स्निग्धमसंहतम् ।**

**मृदु स्निग्धांगता ग्लानिः स्नेहो वेगो थलाघवम् ।**

**विमलेन्द्रियता सम्यक् स्निग्धेरुक्षेविपर्ययः ॥**

अर्थ—घृतादिक स्नेह पीकर अंगका रूखापन दूर होकर मनुष्य उत्तम स्निग्ध होनेसे उसके लक्षण दिखाते हैं कि, वायु देहमें उत्तम रीतिसे संचारकरे । तथा मल सचिक्रण होवे और अधिक उत्तरे तथा शरीर नम्र और सचिक्रण होवे—तथा ग्लानिरहितहो तथा घृतादिक स्नेहके सेवन करनेसे किसी प्रकारका उपद्रव न होय शरीर हलका होय तथा इन्द्री निर्मल होवे ये लक्षण उत्तमके हैं और रुक्ष मनुष्य जो होताहै उसके लक्षण इनलक्षणोंसे विपरीत होते हैं। तात्पर्य यहहै कि, देहमें यथार्थ स्नेहन(चिकनाई) न होनेसे जो ऊपर लक्षणकहे हैं उससे विपरीत लक्षण होते हैं ॥

१ जिसका ज्वर परिपक्व न हुआ हो वो मनुष्य ।

२ गुदाके द्वारा तेल आदिकी पिचकारी मारनेका प्रयोग ।

अधिक स्नेहपानके उपद्रव ।

भक्तद्वेपोमुखस्रावोगुदेदाहःप्रवाहिका ।

तन्द्रातिसारःपाण्डुत्वमृशंस्निग्धस्यलक्षणम् ॥

अर्थ-जो मनुष्य घृतादिक स्नेह अधिक पीता है उसके लक्षण ये हैं कि, अन्नसे डेपकरे, मुखसे लार गिरे, गुदामें दाह होय, मल पतला उतरे नेत्रोंमें तन्द्रा हो, अतिसार होय तथा शरीर पीले रंगका हो जावे ये अतिस्निग्धके लक्षण जानने ॥

रूक्षकोस्निग्धकरना और स्निग्धकोरूक्षकरनेका प्रकार ।

रूक्षस्यस्नेहनंस्नेहैरतिस्निग्धस्यरूक्षणम् ।

श्यामाकचणकाद्यैश्चतक्रपिण्याकसक्तुभिः ॥

अर्थ-रूक्ष मनुष्यको स्निग्धपदार्थ मक्खन निकाला हुआ तत्कालका मट्टा तथा तिलोंका कल्क तथा जोंका सत्व इत्यादिकरके स्निग्धकरे और स्निग्ध मनुष्यको रूक्ष पदार्थ जे सोंमखिया, पसाई, धान्य और चना इत्यादिक करके रूक्ष करना चाहिये ॥

स्नेहसेवनका फल ।

वीताग्निःशुद्धकोष्ठश्चपुष्टधातुर्जितेन्द्रियः ।

निर्जरोवलवर्णाढ्यःस्नेहसेवीभवेन्नरः ॥

अर्थ-घृतादिक स्नेहके सेवन करनेसे मनुष्यके लक्षण-जैसे कि, अग्निदीप्त हो कोष्ठ शुद्ध होय, शरीरमें रसादिक धातु पुष्ट हो तथा वो मनुष्य जितेन्द्रिय होय तथा वृद्धावस्थारहित हो वल और कांति इनकरके युक्त होवे ये लक्षण होते हैं ।

स्नेहसेवनके नियम ।

उष्णोदकोपचारीस्याद्ब्रह्मचारीक्षपाशयः । नवेगरोधी

व्यायामक्रोधशोकहिमातपान् ॥ प्रवातयानपानाध्वभा-

ज्याव्यासनसंस्थितौ । नीचात्युच्चोपधानाहःस्वप्नधूमर-

जांसिच । यान्यहानि पिवेत्तानि तावन्त्यन्यान्यपित्यजेत् ॥

अर्थ-घृतादि स्नेह सेवन करनेवाला गरमजल पीवे-शीतल नपीवे, ब्रह्मचर्यमें रहे, रात्रिमें शयनकरे, दिनमें न सोवे, मलमूत्रादिके वेगको रोके नहीं, दसी सम य त्यागे, दंडकसरत, क्रीष, शोक, शरदी, घृष, अत्यंत हवाखाना धोडे आदिकी

सवारी, मद्य आदिका पान, मार्गका चलना, बहुत बोलना, अत्यंत बैठारहना, अत्यंत नीचा अथवा अत्यंत ऊंचा, मस्तकके नीचे तकिया धरके सोना, दिनमें सोना, घूआके घरमें रहना, उडती धूरमें जानाआना इत्यादिक सब कर्म त्यागदेवे ये संपूर्ण नियम जितने दिन स्नेहपान करे उतनेही दिन आगेतक पालनकरने चाहिये ॥

**ज्यहमच्छंमृदौकोष्ठेऋसप्तदिनंपिबेत् ।**

**सम्यक्स्निग्धोऽथवायावदतःसात्मीभवेत्परम् ॥**

अर्थ—मृदुकोष्ठवाला ३ दिन, ऋकोष्ठवाला ७ दिन, अच्छा स्नेहपान करे, मध्यकोष्ठवाला पांच दिन सेवनकरे, तब इसस्नेहका फल दीखे । सामान्यताकरके यह नियम है कि जहांतक स्नेहपानके संपूर्ण लक्षण न मालूम हो तबतक स्नेहपान करे तत्पश्चात् स्नेहपान साम्य अर्थात् अभ्यासमें आय जाता है ॥

**स्नेहव्यापत्तीकायत्न ।**

**तक्रारिष्टखडोद्दालयवश्यामाककोद्रवम् । पिप्पली  
त्रिफलाक्षौद्रपथ्यागोमूत्रगुग्गुलु ॥ यथास्वंप्रतिरोगंच  
स्नेहव्यापदिसाधनम् ॥**

अर्थ—स्नेहके उपद्रवसे यदि क्षुधा, तृषा जातीरहे वमन होय, पसीने आवे तो रुक्षपान, रुक्षअन्नका भोजन, रुक्षऔषधि तक्र, अरिष्ट, खड (कृतान्न विशेष) उद्दाल (धान्यविशेष) यव, सामखिया, कोदोधान्य, पीपल, त्रिफला, संहत, हरड, गोमूत्र, तथा गुग्गुलु इत्यादिकदेवे—तथा जिस रोगपर जैसी २ चिकित्सा लिखी है वो स्नेह व्यापत्ती रोगोंमें करनी चाहिये ॥

**अथस्वेदविधिः ।**

स्नेहपानके अनंतर पसीने काढनेकी विधि कहते हैं तहां प्रथम पसीनेके भेद दिखाते हैं ॥

**स्वेदश्चतुर्विधः प्रोक्तस्तपोष्मोस्वेदसंज्ञितौ ।**

**उपनाहोद्रवःस्वेदः सर्वेवातार्तिहारिणः ॥**

अर्थ—पसीना निकालना चार प्रकारका है उसके नाम जैसे—ताप, उष्म, उपनाह और द्रव ये चार प्रकारके पसीने बादीकी पीड़ा दूर करने वाले हैं ॥

**दोषकीतारतम्यतासेस्वेदविधिः ।**

**महाबलेमहाव्याधौशीतेस्वेदोमहान्स्मृतः ।**

**दुर्वलेदुर्वलस्वेदोमध्येमध्यतमोमतः ॥**

अर्थ—जिसके देहमें घोर वादीका रोग है उसके अंगोंसे अत्यंत पसीना काटना चाहिये तथा हलका रोग होय तो उसके अंगसे थोड़ा पसीना निकाले और मध्यमरोगीके देहसे मध्यम पसीने निकालने चाहिये ॥

**रोगविशेषमेंस्वेदविधि ।**

**बलासेरूक्षणःस्वेदोरूक्षःस्निग्धःकफानिले । कफमे-  
दावृतेवातेकोष्णगेहरवेःकरान् ॥ नियुद्धंमार्गगमनंगुरु-  
प्रावरणंध्रुवम् । चिंताव्यायामभारांश्चसेवेतामयमुक्तये ॥**

अर्थ—कफका रोग होनेसे रूक्ष पदार्थ जो बालुकादिक उससे देहका पसीना निकालना और कफवायुका रोग होनेसे स्निग्ध और रूक्ष इन दोनों प्रकारके पदार्थोंसे पसीना निकालना चाहिये तथा कफ भेदोयुक्तवादीका रोग होनेसे घरमें जिस जगह गरमी हो उसजगह बैठ अंगको सहन होय ऐसी थोड़ी-गरमी लेनी चाहिये तथा सूर्यकी किरण अंगपर लेनी चाहिये तथा कुश्तीफेर एवं कुछ थोड़ी रस्ता चले कंबल, धुस्सा इत्यादि ओढ़े तथा चिंता युक्तहोना चाहिये परिश्रमकरे तथा कोई भारीवस्तु अंगोंपर धारण करनी इतने उपाय पसीने निकालनेके अर्थ करने चाहिये जिसे कफमें दोषयुक्त जो वायुका रोग हो सो दूर होवे ॥

**पसीनेकाटनेयोग्यमनुष्य ।**

**येपांनस्यंविधातव्यंवस्तिश्चापिहिंसेहिनाम् ।**

**शोधनीयाश्चयेकेचित्पूर्वस्वेद्याश्चतेमताः ॥**

अर्थ—जो नस्यकर्मके योग्य है तथा वस्तिकर्मके योग्य तथा विरेचन देनेके योग्य इन सब मनुष्योंके अंगका पसीना प्रथम काटकर फिर नस्यादि उपाय करना चाहिये ॥

**स्वेद्याःपूर्वत्रयोपीहभगंदर्यंशसीतथा ।**

**आश्मर्यांचातुरोर्जतुःशमयेच्छस्त्रकर्मणा ॥**

अर्थ—भगंदररोगी, बवासीररोगी और पथरीरोगी इन तीनोंको प्रथम पसीने निकालके फिर शस्त्रकर्म कर रोगको शमन करना चाहिये ॥

**पश्चात्स्वेदनीयमनुष्य ।**

**पश्चात्स्वेद्यागतेशल्येसूदगर्भगदेतथा ।**

**कालेप्रजाताकालेवापश्चात्स्वेद्यानितंविनी ॥**

अर्थ—जिसस्त्रीके पेटमें गर्भका शल होवे उसका पतन होने उपरांत तथा नौ महीनेके पश्चात् अथवा नौमहीनेके प्रथम प्रसूत होनेसे उसके देहका पसीना निकलवाना चाहिये ॥

**स्वेदकर्मयोग्यदेशकाल ।**

**सर्वान्स्वेदान्निवातेचजीर्णाहारेचकारयेत् ॥**

अर्थ—ये चारों प्रकारके स्वेद मनुष्यका आहार पचन होनेके अनंतर जिसजगे हवा न आतीहो उसजगे काढने चाहिये ॥

**पसीनेकाढनेपरकिसमार्गदोषदूरहोतेहैं ।**

**स्वेदाद्वातुस्थितादोषाःस्वेदःस्विन्नस्यदेहिनः ॥**

**द्रवत्वंप्राप्यकोष्ठांतर्गतायांतिविरेकताम् ॥**

अर्थ—औषधादिक करके मनुष्यके अंगका पसीना काढनेके पश्चात् उसको तथा बड़े वासनमें तेल भरके उसमें मनुष्यको बैठानेसे उसके वातादिक दोष रसादि सतधातुमें रहनेवालेभी कोष्ठके मध्य जानेसे वो दोष पतले होकर गुदाके द्वारा दस्तके साथ निकलते हैं। प्रथम दोष पसीनेके द्वारा नम्रहो कर कोष्ठमें जाति हैं वहांसे दस्तोंके राह बाहर गिरते हैं यह इस श्लोकका तात्पर्य है ॥

**स्वेदनमेंविधि ।**

**स्वेद्यमानशरीरस्यहृदयंशीतलैःस्पृशेत् ।**

**स्नेहाभ्यक्तशरीरस्यशीतैराच्छाद्यचक्षुषी ॥**

अर्थ—मनुष्यके देहका पसीना काढनेसे उसयोगकरके पेटके भीतरके दोष पतले होकर गुदाके द्वारा दस्तोंसे निकलतेहैं तब उसमनुष्यकी छाती में चंदनका लेपकरे जिससे प्रकृति स्वस्थ होय तथा जो मनुष्य तेलमें बैठा हुआ है उस योगसे उसके दोष पतले होकर गुदाके रस्तेसे दस्तोंके साथ निकलनेसे उसके नेत्रोंपर कमलके पत्ते अथवा केलाके पत्ते शीतलता करनेके लिये लगाने चाहिये उस ठंडकके करनेसे ग्लानि दूर होकर प्रकृति स्वस्थ होती है ॥

**स्वेदकर्मवर्जितमनुष्य ।**

**अजीर्णादुर्बलोमेहीक्षतक्षीणपिपासितः ।**

**अतिसारीरक्तपित्तीपांडुरोगीतथोदरी ॥**



**मदात्तौ गर्भिणी चैव न हि स्वेद्या विजानता ।**

**एतान्पिमृदुस्वेदैः स्वेदसाध्यानुपाचरेत् ॥**

अर्थ—जिस मनुष्यको अजीर्ण हो तथा दुर्बल मनुष्य तथा जिसको प्रेम-हो तथा उरःक्षत करके पीडित तथा जिसको अत्यंत प्यास लगरही हो वो तथा अतिसार, रक्तपित्त, पांडुरोगी, उदररोगी, मदार्त ये रोग जिस मनुष्य के होय वो तथा गर्भिणी स्त्री इतने रोगीनका पसीना नहीं काटना चाहिये ये पसीनों काटनेमें अयोग्य हैं यदि इन रोगियों के पसीना काटनेसेही रोग नष्ट होता दीखे तो हलके उपायसे थोड़ा पसीना काटना चाहिये ॥

**अल्पपसीनेकाटनेयोग्यस्थल ।**

**मृदुस्वेदं प्रयंजीत तथा हृन्मुष्कट्टिषु ॥**

अर्थ—हृदय और अंडकोश तथा नेत्र इनका पसीना काटना होवे तो हलका काट विशेष नहीं ॥

**अत्यंत पसीने निकलने के दोष ।**

**अतिस्वेदात्संधिपीडादाहसृष्णाक्लमोभ्रमः ।**

**पित्तासृक्पिटिकाकोपस्तत्र शीतैरुपाचरेत् ॥**

अर्थ—अंगोंसे बहुत पसीना निकालनेसे सर्व संधियोंमें पीडा, तृषा, ग्लानि भ्रम रक्तपित्त ये उपद्रव होते हैं तथा अंगमें मरोड़ी उत्पन्न होती है इनके शमन करनेको शीतल उपाय करना कि, जिसे उपद्रव दूर होवे ॥

**उक्त चार प्रकार के स्वेदोंमें तापसंज्ञक स्वेद के लक्षण ॥**

**तेषु तापाभिधः स्वेदो बालुका वस्त्रपाणिभिः ।**

**कपालकंदुकांगारैर्यथा योग्यं प्रजायते ॥**

अर्थ—चार प्रकार के पसीनोंमें ताप, इसनाम करके जो पसीना है इसको बालू वस्त्र, हाथ, खीपडा, कपड़े की गैद और अंगार इन करके बालुकादिक आदि जिसमें जैसी रक्षा की है तैसा पसीना उत्पन्न होता है। ये छः प्रकार कहें हैं इनकी क्रिया कैसे करे उसको कहते हैं—खैर के अथवा कणखर लकड़ी के धूमरहित जलते हुए कोयले करके उसके ऊपर बालू को तपायके उस बालू को अंडके पत्तोंमें धरके उस पत्ते की पुडिया बनाय उस पुडियासे मनुष्यके अंगों को सेके जिसे अंगका पसीना निकले यह एक प्रकार है तथा अंगारों पर अपने हाथ गरम कर रोगीके अंगोंको सेके अथवा रूजड कपड़े की गैद सी

बनाय अंगारोंपर गरम करके उसमें से रोगीके अंग सिकावे तथा कपड़ेको गरम करके देहको सेके । अथवा अंगारोंको खीपरेमें भरके उस सुहाते २ खिपरेसे सेक करे ये सबउपाय पसीने निकालनेके कहे इनसे वैद्यको जिसउपायसे पसीने काढनेहो काढे ॥

उष्मसंज्ञकस्वेदकेलक्षण ।

उष्मास्वेदः प्रयोक्तव्यो लोहपिण्डेष्टिकादिभिः । प्रतप्तैर-  
म्लसिक्तैश्च काये रल्लकवेष्टिते । अथवा वातनिर्णाशिद्र-  
व्यक्ताथरसादिभिः । उष्णैर्वटंपूरयित्वा पार्श्वे छिद्रं  
निधाय च । विमुद्रयास्यं त्रिखंडा च धातुजां काष्ठवं-  
शजाम् । पटंगुलास्यां गोपुच्छां नलीं युज्याद्विहस्तिकाम् ॥  
मुखोपविष्टं स्वभ्यक्तं गुरुप्रावरणावृतम् । हस्तिशुंडिकया  
नाड्या स्वेदयेद्वातरोगिणम् ॥ पुरुषायाममात्रं वा भूमि-  
मुत्कीर्य खादिरैः ॥ काष्ठैर्दग्धातथाभ्युक्ष्य क्षीरधान्या-  
म्लवारिभिः ॥ वातघ्नपत्रैराच्छाद्य शयानं स्वेदयेन्नरम् ॥  
एवं मापादिभिः स्विन्नैः शयानः स्वेदमाचरेत् ॥

अर्थ—उष्मा इसनाम करके जो स्वेद(पसीना) है उसकी क्रिया कहते हैं । लोहेके गोलाको अथवा ईंटको अग्निमें तपायकर उसपर थोड़ा खट्टा पदार्थ छिड़क कर रोगीको कंबल उढाय उस गोले करके अथवा उस ईंटकरके रोगी के देहको सेके, जिसे पसीने निकले यह एकप्रकार कहा । अथवा दशमूलदि क जो वातहरणकर्ता औषधी उनका काढा अथवा उन औषधियोंका रस गरमकर मिट्टीके घड़ेको भर उस घड़ेके मुखको बंदकर उसके एक बाजूमें छेदकर धातुकी अथवा लकड़ीकी तथा वांसकी नली बनाय उस नलीमें तीन संधी करे तथा उसका मुख छः अंगुल लंबा और चौड़ा करे । अथवा गौके पुच्छके आकार करे, इस नलीका आकार हाथीकी सूंडके समान होता है अतएव इस

१ छौंछ, काजी इत्यादिक खट्टे पदार्थ जानने । २ सालपर्णी, पृष्ठिपर्णी, कटेरी, बड़ी कटेरी, गोखर, वेलगिरी, अरनी, टेटू, पाडर और गभारी, इनकी मूलको दशमूल कहते हैं । ३ उसघड़ेके मुखमें डाटदेकर दहकते हुए कोलेनपर धरे देवे—जिसे उस नलीके रास्ते वाफ अच्छीरितिसे निकले । ४ तांबे, पीतल, लोह आदि धातुकी नली चाहिये ।

को हस्तिशुङ्घिका नाडी कहते हैं। फिर वायुसे पीडित जो मनुष्य उसको स्वस्थ बैठाकरके अंगमें घी अथवा तेल लेपकर उसको रिजाई अथवा कंचल उठाये उस नलीको उसके भीतर करदेवे कि, जितने वाफ़ लगकर अंगोंसे पसीना निकले। अथवा मनुष्यके साडेतीन अथवा चारहाथ लंबा जमीनमें गड़दा खोद उसमें खैरकी लकड़ी भर आगे जलायके कोलाकरे, फिर शीघ्र कोलान्को बाहर निकाल उसजमीनको दूध अथवा धान्यके पानी अथवा छाँछ तथा कांजीसे छिड़ककर उस जमीनपर घातहारक औषधोंके पत्ते बिछायकर उसपर रोगीको सुलायके उसके अंगसे पसीने निकाले । इसी प्रकार उट्ट लेकर उनको थोड़ी वाफ़दे अथकश्चे सिजाय उस तपंडूप ठौरमें बिछाय ऊपर सूती अंडके पत्ते आदि घातहारक औषधोंके पत्ते ढालके उसपर रोगीको सुलाय ऊपरसे कंचल उठाये उसके अंगका पसीना निकलवावे । इसप्रकार उष्मरुंशक पसीनेके लक्षण जानने ॥

उपनाहसंजकस्वेदकेलक्षण ।

अथोपनाहस्वेद्यं च कुर्याद्वातहरोपधेः ।

प्रदिह्य देह वातार्त्तक्षीरमांसरसान्वितैः ॥

अम्लपिष्टैः सलवणैः सुरोष्णैः स्नेहसंगतैः ॥

लवणैरम्लसंयुतैः॥प्रसारण्यश्वगंधाभ्यांबलाभिर्दशमूलकैः॥  
गुडूचीवानरीबीजैर्यथालाभंसमाहृतैः ॥ क्षुण्णैःस्विन्नश्च  
वस्त्रेणबद्धैःसंस्वेदयेन्नरम् ॥ महाशाल्वणसंज्ञोयंयोगःस-  
र्वानिलार्तिजित् ॥

अर्थ—ग्राम्यमांस, अनूपमांस, जीवनीयगणकी औषधी, तथा गौकादही, सौवीर, सन्धीखार, जवाखार, रेहकाखार, वीरतर्वादिगणकी औषधी और कुलधी, उडद, गेहूँ, अलसी, सौफ, देवदारु, निरुडी, कलौजी, अंडकी जड़, अंडके बीज, रास्ना, मूली, सेहेजना, छोटी सौफ, पीपल, वनतुलसी, पाँचोनि-  
मक, अनारदाना प्रसारणी, असगंध, खरेटीकी जड़, दशमूलकी दश औषधी और गिलोय, कौचकेबीज ये सब औषध जो मिलसके उनको लेकर कूट थोड़ा गरम कर कपड़े में पोतली बांधकर उससे रोगीका अंग सेके कि, जिसे सपूर्ण वायुकी पीड़ा दूरहोवे । इस प्रयोगको महाशाल्वण प्रयोग कहते हैं । इसप्रकार उपनाहसज्ञक स्वेद ( पसीने ) की विधि जाननी ॥

द्रवसज्ञकस्वेदकेलक्षण ।

द्रवस्वेदस्तु वातघ्नद्रव्यकाथेन पूरिते । कटाहे कोष्ठके  
वापि सूपविष्टोवगाहयेत् ॥ नाभेःपडंगुलं यावन्मग्नःक्वा-  
थन्य धारया । कोष्ठके स्कंधयोःसिक्तस्तिष्ठेत्स्निग्धत-  
नुर्नरः॥ एवं तैलेन दुग्धेन सर्पिपास्वेदयेन्नरम्॥एकान्तरे  
द्वयंतरे वा स्नेहो युक्तोवगाहने ॥ शिरामुखे रोमकूपैर्ध-  
मनीभिश्च तर्पयेत् । शरीरेबलमाधत्ते युक्तस्नेहावगाहने॥

१ मुरगा, बकरा आदि के मांसको ग्राम्यमांस कहते हैं । २ चकवा—बबवी—चतक जलमुरगा और मछली आदि जलसंचारा जीवोंके मांसको अनूपमांस कहते हैं । ३ काकोली क्षीरका कोली, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, जीवती, मुलहटी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी इन दशऔषधाके समुदायको जीवनायण कहते हैं । ४ कंच जी अथवा भुने औओको कूट पानीमें तीनदिन भिगानसे उस पानीको सौवार कहते हैं, इसी प्रकार गेहूँका भी सौवार होता है । ५ सधा, सचर, विड, समुद्र और रेहका निमक इन पाँचोंको पचलवण कहते हैं तथा उपनाहसज्ञक स्वेदका दूसरा भेद महाशाल्वण प्रयोग है ।

जलसिक्तस्य वर्द्धते यथामूलेङ्गुरास्तरोः । तथा धातु-  
विवृद्धिर्हि स्नेहसिक्तस्य जायते ॥ नातः परतरः कश्चि-  
दुपायो वातनाशनः । मुहूर्त्तैकं समाभ्य यावत्स्यात्त-  
च्चतुष्टयम् । तावत्तदवगाहेतयावदारोग्यनिश्चयः ॥

अर्थ—द्रव या नामका स्वेद उसकी विधि लिखते हैं। दशमूलादि वायु-  
हारक औषधका काटा कर रोगीके देहेमें घी अथवा तेल लगाय उसकी फ-  
टाईमें अथवा तामेके बड़े पात्रमें बैठारके पूर्वोक्त गरमागरम फाटिकी अंगपर  
और कंधेपर सहतीर धार डाले, इसीप्रकार तेलकी अथवा दूधकी अथवा  
घीकी धार डाले परंतु जवतक वह काटा डाले कि, नाभिके छः अंगुल ऊपर  
तक न चढ़े । पश्चात् मनुष्यको धर्मयुक्त होना चाहिये। इसप्रकार एक २ दिनके  
अथवा दो २ दिन के अंतरसे करना चाहिये कि जिस्से शिराओंके मुखद्वारा  
रोमांचोंके मुखमें होकर तथा नाडीनके द्वारा वी स्नेहादिक पदार्थ शरीरके  
भीतर प्रवेश होकर शरीरको तृप्त करके बल उत्पन्न करे। इसमें दृष्टांत है कि, जैसे  
वृक्षकी जड़में पानी देनेसे वृक्ष बढता है उसीप्रकार तैलादिकमें बैठनेसे मनु-  
ष्यके रसादि सातधातु बढती हैं और वायुका नाश होता है इसउपायकी  
अपेक्षा वायुनाशक दूसरा उपाय नहीं है यह उपाय पराकाष्ठाका है । एकमुह-  
ूर्त्तसे लेकर चारमुहूर्त्त अर्थात् एकप्रहर होनेपर्यंत तेलके पात्रमें बैठना  
चाहिये तथा जवतक आरोग्यता न दीखे तावत्कालपर्यंत यही विधिकरे ॥

स्वेदकी समाप्ति ।

शीतशूलाद्युपरमे स्तंभगौरवनिग्रहे ।

दीप्तिग्नौ मार्दवे जाते स्वेदनाद्विरतिर्भता ॥

अर्थ—अंगकी शरदी और शूल इनकी शांति होनेपर तथा अंगका स्तंभ  
तथा जडपना ये दूर होनेपर एवं अभिप्रदीप्त होनेपर तथा अंगमें मृदु  
पना आनेपर रोगीके अंगसे पसीने न निकाले अर्थात् समाप्ति करदेवे ॥

पसीने निकालनेके अनंतर उपचार ।

सम्यक्स्विन्नं विमृदितं स्नानमुष्णांबुभिः शनैः ।

भोजयेच्चानभिष्यंदि व्यायामं च विवर्जयेत् ॥

अर्थ—जिसमनुष्यके अंगका पसीना काटा हो उसको तपा अंगमें तेल ल-  
गाया हो उसको हलके गरम जलसे स्नान करावे तथा कफकारक पदार्थ

भोजनमें न देवे तथा परिश्रम न करे, इस प्रकार द्रवसंज्ञक स्वेदमें करना चाहिये । अब आगे वमनकीविधि लिखी जाती है ॥

## वमनमेंऋतुप्रधान ।

शरत्काले वसन्ते च प्रावृट्काले च देहिनाम् ।

वमनं रेचनं चैव कारयेत्कुशलो भिषक् ॥

अर्थ—शरद् ऋतु, वसन्त ऋतु, वर्षाऋतु इनमें मनुष्यको वमन और विरेचन ये कुशल वैद्यको कराने चाहिये [ कुशलवैद्यके लिखनेसे यह प्रयोजन है कि, यह वमन विरेचनका देना अत्यन्त सावधानीका काम है इससे मूर्ख वैद्यसे वमन विरेचन लेना सर्वथा त्याज्य है ] ॥

वमनयोग्यमनुष्य ।

बलवंतं कफव्याप्तं हृल्लासार्तिनिपीडितम् । तथा वम-  
नसात्म्यं च धीरचित्तं च वामयेत् ॥ विपदोपे स्तन्य रोगे  
मन्देभ्यो श्लीपदेर्वुदोः हृद्रोगकुष्ठवीसर्पमेहाजीर्णभ्रमेषु च ॥  
विदारिकापचीकासश्वासपीनसवृद्धिषु । अपस्मारज्व-  
रोन्मादे तथा रक्तातिसारिषु ॥ नासाताल्वोष्ठपाकेषु  
कर्णस्रावे द्विजिह्वके । गलशुण्ड्यामतीसारो पित्तश्ले-  
ष्मगदे तथा ॥ मेदोगदेरुचौ चैव वमनं कारयेद्विपक् ॥

अर्थ—बलवान् मनुष्य, कफसे व्याप्त, हृल्लाससे पीडित ( अर्थात् जिसके मुखसे लारगिरती ) हो, तथा जिसको वमनका महावरा हो और धीरचित्त हो इनको वमन करावे । तथा विपदोप, स्तनसंघी रोग, मंदामि, श्लीपद, अर्बुद, हृदयरोगी, कोठी, विसर्परोगी, प्रमेही, अजीर्ण, भ्रमरोगी, विदारिका, अपची रोग, खाँसी, श्वास, पीनस, अंडवृद्धि, मृगीरोगी, ज्वर, उन्माद रक्तातिसार, नासापाक, तालुपाक, ओष्ठपाक, कर्णस्राव, द्विजिह्वक, गलशुण्डी, अतीसार, पित्तकफके रोग, मेदोरोग, अरुचि, इन रोगोंमें तथा इसी प्रकारके जो अन्य रोग हैं उनमें वैद्य रोगीको वमन करावे ॥

वमनके अयोग्यमनुष्य ।

न वामनीयस्तिमिरी न गुल्मी नोदरी कृशः । ना

तिवृद्धो गर्भिणी च न च स्थूलक्षतातुरः ॥ मदात्तोवा-  
लको रूक्षः क्षुधितश्च निरूहितः । उदावर्त्यूर्ध्वरक्ती  
च दुश्छर्दिः केवलानिली ॥ पांडुरोगी कृमिव्याप्तः पठना-  
त्स्वरधातकः । एतेऽप्यजीर्णव्यथिता वाम्या ये विप-  
पीडिताः ॥ कफव्याप्ताश्च ते वाम्या मधुकाथप्रपानतः ।

अर्थ—तिमिररोगी, गुल्मरोगी, उदररोगी तथा कृश, अतिवृद्ध, गर्भि-  
णीस्त्री अत्यंतमोटा, उरःक्षत करके तथा मद करके पीडित, बालक,  
रूक्ष, क्षुधित, निरूहित कहिये गुदाद्वारा पिचकारी माराहुआ, तथा उदावर्त  
रोगी, उर्ध्वरक्ती, तथा जिससे वमन न सही जावे जिसके केवल वादीका रोग  
हो पांडुरोगी, कृमिरोगसे व्याप्त, वेदशास्त्रके अत्यंत पढ़ने से जिसका कंठ बैठ-  
गयाहो, इतने रोगियोंको वमन (उलटी करानेकी) औषध नहीं देनी चाहिये  
यदि ये पूर्वोक्त रोगवाले अजीर्णसे अथवा विपदोष करके कफकरके व्याप्त  
होवे तो इनको मुलहदीके अथवा मुहुआकी छालके काढेको पिलायकर वमन  
करानी चाहिये ॥ वमनअयोग्य ।

सुकुमारं कृशं बालं वृद्धं भीरुं न वामयेत् ।

अर्थ—सुकुमार ( नाशुकमनुष्य ) कृश, बालक वृद्ध डरपोक इनम-  
नुष्योंको वमनकी औषधी नदेनी चाहिये ॥

रदकरनेमें विहितपदार्थ ।

पीत्वा यवागूमाकंठं क्षीरितक्रदधीनि च । असाम्यैः  
श्लेष्मलैर्भोज्यैर्दोषानुत्किञ्च्यदेहिनः ॥ स्निग्धास्विन्नाय  
वमनं दत्तं सम्यक्प्रवर्तते ॥

अर्थ—जिस मनुष्यको उलटी करानीहो उसको प्रथम पेटभरके यवागू  
अथवा दूध, छाछ, दही, ये पेटभरके पिवावे, तथा प्रकृतिको जो न भाये वो  
पदार्थ तथा कफकारी पदार्थ खानेको देकर मनुष्यके दोषोंको उखाड़े, जिस्से

१ रक्तपित्ते रोग करते जिनके ऊपर गुसादिद्वारा रुधिरगिर उसको उखाड़नी जा-  
नना । २ कृश और बालक तथा वृद्ध—इनको वमन न करावे इसमार्ग प्रथम यह  
आपदे परंतु निषेध करनेके बान्ते यहांपर फिर कहाई । ३ चारलस चारार उ-  
समें छः भाग पानी मिलाये औषध, पतलीकरे इसको यवागू कहते हैं ।

मनुष्य अच्छीतरह उलटीकरे तथा जिसमनुष्यने घृतपान करा है उस मनुष्यको एकदिनके पश्चात् वमनकरावे तो अच्छीतरह वमन होवे ॥

वमनमेंहितकारीपदार्थ ।

वमनेषु च सर्वेषु सैधवं मधु वा हितम् ।

बीभत्सं वमनं दद्याद्विपरीतं विरेचनम् ॥

अर्थ—जितने वमनके प्रयोगहैं उनमें सैधानिमक अथवा शहत इनका मेलन कराना चाहिये तो हितकारी होताहै।अथवा बीभत्स वमनदेवे और विरेचन इसके विपरीतदे अर्थात् दस्त देना होयतो घीके बिना देवे ॥

वमनमेंकाढेकाप्रमाण ।

काथ्यद्रव्यस्य कुडवं श्रपयित्वाजलाढके ।

अर्धभागावशिष्टं च वमनेष्ववचारयेत् ॥

अर्थ—काढेकी औषधी १ कुडव प्रमाण लेकर कूट उसमें एक आठक प्रमाण पानी डाले जब औटाकरआधारहे तबतक औटावे फिर उतार छानके पिवावे वमनमें काढापीनेका प्रमाण ।

काथपाने नवप्रस्था ज्येष्ठामात्रा प्रकीर्तिता ।

मध्यमापणिमताप्रोक्ता त्रिप्रस्था च कनीयसी ॥

अर्थ—जिस मनुष्यकी वमनकराना होय उसको नौप्रस्थ काढा पिलाना बड़ीमात्राहै तथा छःप्रस्थ काढापीना मध्यममात्रा और तीनप्रस्थ काढा पीना हल्की मात्राजाननी ॥

वमनविषयमें कल्कादिकोंका प्रमाण ।

कल्कचूर्णावलेहानां त्रिपला श्रेष्ठमात्रया ।

मध्यमं द्विपलं विद्यात्कनीयस्तु पलं भवेत् ॥

अर्थ—कल्क, चूर्ण और अवलेहये तीन पल मनुष्यको देनेसे बड़ी मात्रा जाननी तथा दोपल देनेसे मध्यममात्रा और एक एक पलदेनेसे हीन मात्रा कहलातीहै । इसवास्ते वैद्यको यथायोग्य मात्रा देनी चाहिये ॥

वमनकेउत्तममध्यमकनिष्ठवेग ।

वमने चापि वेगाः स्युरष्टौ पित्तांतमुत्तमाः ।

१ वमनकी औषधमें घी डालके वमनकरानेको बीभत्सवमन कहते हैं ।



## पड्वेगा मध्यवेगाश्च चत्वारस्त्ववरामताः ॥

अर्थ—मनुष्यको वमनकी औषध देनेसे सातवेग पर्यंत संपूर्ण दोष पडके आठवें वेगमें पित्तपडनेसे उत्तमवेग जानना । उसी प्रकार पांच वेगपर्यंत दोष पडकर छठे वेगमें पित्तपडनेसे मध्यमवेग जानना । तथा तीन वेग पर्यंत दोष निकलके चौथे वेगमें पित्तपडे तो कनिष्ठवेग जानना । जैदफे रद्द होने उतने वेग जानने अर्थात् रद्दहोनेको ही वेग कहते हैं ॥

वमन विरेचन आदिमें प्रस्थका प्रमाण ।

वमने च विरेके च तथा शोणितमोक्षणे ।

सार्द्धत्रयोदशपलं प्रस्थमाहुर्मनीषिणः ॥

अर्थ—वमनहोनेमें तथा दस्त होनेके विषयमें जो औषध प्रस्थप्रमाण लेना कहा है तहां १३ ॥ साढे तेरह पलका प्रस्थ लेना तथा फस्तखोलनेमें एक प्रस्थ रुधिर कढाना जहाँ लिखा है वहाँ परभी साढे तेरह पलका प्रस्थ जानना ॥

कफपित्त और घातहारक औषधी ।

कफं कटुकतीक्ष्णेन पित्तं स्वादुहिमैर्जयेत् ।

सस्वादुलवणाम्लोष्णैः संसृष्टं वायुना कफम् ॥

अर्थ—तीक्ष्ण औषध करके कफको जीते तथा मधुर और शीतल औषधों करके पित्तको जीते । एवं मधुर और स्वार तथा अम्ल और गरम इनकरके वायुसे मिले कफको जीते ॥

वातादिदोषोंके निकालनेको पृथक् २ औषधी ।

कृष्णराठफलैः सिंधुकफेकोष्णजलैः पिबेत् ।

पटोलवासानिबैश्च पित्ते शीतजलं पिबेत् ॥

सश्लेष्मवातपीडायां सक्षीरं मदनं पिबेत् ।

अजीर्णे कोष्णपानीयं सिंधुं पीत्वा वमेत्सुधीः ॥

अर्थ—कफदोषमें पीपल और मेनफल तथा संधानिमक इनसबके चूर्णको गरम पानीके साथ पीवे तो वमनके साथ कफ गिरे । तथा पित्तके दोषमें पटोलपत्र और बद्धसा तथा कटुपेनीमके पत्ते इनका चूर्णपर शीतलजल ढालके पीवे तो उलटीके साथ पित्त निकले । एष कफवायुकी पीडामें मेनफलका चूर्ण दूधमें मिलायके पीवे तो उलटीके साथ मनुष्यके कफ वायु निकल

कर पीडा दूरहो । तथा अजीर्णमें गरमजलमें सेंधानिमक ढालके पीवे तो उलटी होनेसे मनुष्यका अजीर्ण दूर हो ॥

वमनकरतेसमयबाह्योपचार ।

वमनं पाययित्वा च जानुमात्रासनेस्थितम् ।

कंठमेरंडनालेन स्पृशंतं वामयेद्विपक् ॥

ललाटं वमतः पुंसः पार्श्वौ द्वौ च प्रबोधयेत् ॥

अर्थ—रोगीको वमन करनेकी औपध देकर पृथ्वीमें घोंटू टेककरके बराबर ऊंचे आसनपर चाहिये । अंडके पत्तेकी लंबी वारीक नाल लेकर मुखमें ढालके हलके हाथसे धीरे २ कंठको स्पर्शकरे तो उसीसमय उलटी आवे इसप्रकार आगे पीछे उसको फिरायके वेद्य रोगीको उलटी करावे । तथा उस उलटी करनेवालेके कपालके दोनों भागोंको धीरे धीरे हलके हाथसे एक मनुष्य सिराता जावे ॥

दुष्ट वमन होनेके उपद्रव ।

प्रसेको हृद्ग्रहःकोठकंडुर्दुर्छादिताद्भवेत् ॥

अर्थ—मनुष्यको वमनकी औपध देनेसे यदि उससे कोई विकार होय तो उसके मुखसे लारगिरे तथा दृश्यमें पीडाहोवे तथा देहमें खुजली होती है ॥

अतिवमनहोनेके उपद्रव ।

अतिवांते भवेन्नृष्णा हिकोद्गारोगिसंज्ञिता ।

जिह्वा निःसर्पणं चाक्ष्णोर्व्यावृत्तिर्दनुसंहतिः ॥

रक्तश्छादिष्ठीवनं च कंठे पीडा च जायते ॥

अर्थ—मनुष्यके अत्यंत वमन होनेसे अत्यंत प्यासलगने, हिचकी, डकार आवे और अंग जडहोवे तथा संज्ञाका नाशहो, जीभ बाहर निकल आवे, नेत्र जहाँके तहां ठैरजावें, वा चंचलहोवें तथा भ्रम होय, ठोडोका स्तंभ होय अथवा पीडाहो मुखकेरास्ते रुविर गिरे, बारंबार धूँके और फंठमें पीडा होय ये लक्षण अत्यंत वमनके हैं ॥

अत्यंतवमनकायत्न ।

वमनस्यातियोगेन मृदुकुर्याद्विरेचनम् ॥

अर्थ—जिस मनुष्यके अत्यंत उलटी होतीहो उसके वंद करनेको मृदु जुलाव देवे ॥

उलटी करते २ जीभ भीतरचली गईहो उसका यत्न ।

वमनान्तःप्रविष्टायां जिह्वायां कवलग्रहः ।

स्निग्धाम्ललवणैर्हृद्यैर्घृतक्षीररसैर्हितः ॥

फलान्यम्लानि खादेषुस्तस्य चान्येऽप्रतो नराः ॥

अर्थ—यदि उलटी करते २ मनुष्यकी जीभ भीतर चलीगई हो उसके मनको प्रसन्नकर्ता ऐसे खट्टे, तीखे, मिष्ट और खारी पदार्थ भातके साथ खानेको देवे तथा घृत और दूध भातके साथ देवे तथा उसरोगीके आगे दूसरा मनुष्य बैठकर नाँझ अथवा नारंगी चूसकर खाय, ऐसा करनेसे मनुष्यकी जीभ ठिकानेपर आपके प्रकृतिस्य होयहै ॥

उलटी करते २ जीभ बाहरनिकलआईहो उसका यत्न ।

निसृतां तु तिलद्राक्षाकल्कं लिप्त्वा प्रवेशयेत् ॥

अर्थ—यदि उलटी करते २ जीभ बाहर निकल आईहोवे तो उसको तिल और दाख इनका कल्क करके उसकी जीभमें लेपकर वैद्य धीरे भीतर करदेवे वमनसेनेत्रोंमें विकारहोनेका यत्न ।

व्यावृत्ताक्षिण घृताभ्यक्ते पीडयेच्च शनैःशनैः ॥

अर्थ—उलटी करते २ नेत्र फटजावे तो उसको वैद्य हाथोंमें घी चुपड़कर नेत्रोंको सिरायकर ठिकानेपर स्थितकरे ॥

वमन करते २ ठोड़ी स्तंभित होगईहो उसका उपचार ।

हनुमोक्षे स्मृतःस्वेदो नस्यं च श्लेष्मवातहृत् ॥

अर्थ—वमन करते करते ठोड़ी स्तंभित होगई होवे तो उसके अंगका पसीना निकाले कफवायुनाशक नाकमें औषध डाले अर्थात् नस्य देय तो ठोड़ीका स्तंभितहोना जातारहे ॥

वमन करते २ रद्दमें रुधिर आनेलगे उसका उपचार ।

रक्तपित्तविधानेन रक्तश्छर्दिमुपाचरेत् ॥

अर्थ—यदि रद्द करते २ उलटीमें रुधिर गिरने लगे तो जो उपाय रक्त पित्तपर कहाहै वो उपाय करके रुधिरकी उलटीको दूरकरे ॥

अत्यंत वमनके होनेसे प्यासलगे उसका यत्न ।

धात्रीरसांजनोशीरलाजाचन्दनवारिभिः ।

मथं कृत्वा पाययेच्च सधृतक्षौद्रशर्करम् ॥

शाम्यन्त्यनेन तृष्णाद्याः पीडाच्छर्दिसमुद्भवाः ॥

अर्थ—आंवले, रसोत, खस, चावलकी खील, लालचंदन, नेत्रवाला इन छः औषधोंका मंथकरके उसमें घी और शहत तथा मिश्री डालके पिवादे तो उलटी करनेसे जो तृष्णादिक उपद्रव होतेहैं वो सब दूर होय ॥

उत्तमवमनहोनेकेलक्षण ।

हृत्कंठशिरसांशुद्धिर्दीप्ताग्नित्वंचलाघवम् ।

कफपित्तविनाशश्चसम्यग्वातस्यचेष्टितम् ॥

अर्थ—जिसमनुष्यको उत्तम उलटी होगईहो उसके लक्षण हृदय, कंठ और मस्तक इनमें जो कफादिक दोषहैं वो दूर होकर उसकी शुद्धिहो तथा अग्नि प्रदीप्त और अंग हलके होय तथा कफदोष और पित्तदोष ये दूर हों ॥

उत्तमवमनहोनेकेपश्चात् पथ्य ।

ततोपराह्णे दीप्ताग्निमुद्रपष्टिकशालिभिः ॥

हृद्यैश्च जांगलरसैः कृत्वा यूपं च भोजयेत् ॥

अर्थ—मनुष्यको उत्तम उलटी होनेके अनन्तर तीसरे प्रहरमें अग्नि प्रदीप्त होये ऐसा झूंग और सांठीचावल इनको मनके प्रियकारी ऐसे जंगली जीव हरिणादिकोंके मांसरसके यूपके साथ भोजन करे ॥

उत्तमवमनकाफल ।

तन्द्रा निद्रास्यदौर्गन्ध्यकण्डूश्च ग्रहणी विषम् ।

सुवांतस्य न पीडाये भवंत्येते कदाचन ॥

अर्थ—जिस मनुष्यको उत्तम प्रकारकी उलटी होगईहो उसके नेत्रोंमें तन्द्रा और निद्रा तथा मुखमें दुर्गंधी और खुजली तथा संग्रहणीरोग और विषदोष ये उपद्रव कदाचित् नहीं होवे ॥

१ दारुहलदीके काठमें बराबर बकरीका दूध मिलायके ओटावे नय गाढ़ा होजाये सुलापके जमायले उसको रसाजन कहते हैं । २ मूंग और सांठीचावल एकपल लेंवे उसमें १ प्रस्थ पानीडालके ओटावे कुछ गाढ़ा कर पेजवे समानबरे उसको यूप कहते हैं इसप्रकार हरिणादिकके मांसमें पानीडालके सिवाये पेजवे समान करे उसको मांस रस कहतेहैं तथा वोभी यूपहै ।

वमनकर्ममैनिषिद्धपदार्थः ।

अजीर्णं शीतपानीयं व्यायामं मैथुनं तथा ।

स्नेहाभ्यंगं प्रकोपञ्च दिनैकवर्जयेत्सुधीः ।

अर्थ-भारीपदार्थ, शीतल जल, परिश्रम और मैथुन, देहमें तेलकी मालिश करना और क्रोधकरना इत्यादिक विषय जिसदिन वमनको औषध लेवे उस दिन वर्जितहैं ॥

अथ रेचनाधिकारः ।

स्निग्धस्विन्नस्यवातस्य दद्यात्सम्यक् विरेचनम् ।

अवातस्य त्वधः स्रस्तो ग्रहणीं छादयेत्कफः ॥

मंदाग्निं गौरवं कुर्याज्जनयेद्वा प्रवाहिकाम् ।

अथवा पाचनैरामं बलासं च विपाचयेत् ॥

अर्थ-अब वमनके अनंतर विरेचन (जुलाव) की विधि कहते हैं । प्रथम मनुष्यको घृतादिक पिलायके स्निग्धकरे फिर उसको स्विन्नकरे अर्थात् उसके पसीने निकाले, फिर वमन करावे, वमनके अनंतर उत्तम प्रकार जुलावकी दवाई देकर दस्तकरावे यदि बिना रद्दके कराये जो वैद्य दस्तकराता है तो उस रोगीका कफ अधोभागमें (नीचे) जायकर ग्रहणी (छठी पित्तधरा और अग्निधरा जो कला उसका) आच्छादन करेहै, कि, जिस्से अग्निमांश तथा गौरव कहिये अंगोंका भारीपना और प्रवाहिका रोग (आतिसारका भेद) इन रोगोंको उत्पन्न करेहै अथवा अधस्रस्त ( नीचे गण्ड ) कफ और आमको पाचन ( शुष्कपरंढमूलादिक ) करके (पाचयेत्) अर्थात् पाचावे ॥

हमको इस स्थलपर इतना लिखेबिना नहीं रहाजाता कि, हकीम लोग कहते हैं कि, हमारे यहां जैसा जुलाव देनेका उत्तम कायदा है ऐसा हिंदी वैद्यकमें ख्वाव (स्वप्न) मेंभी नहीं मिलनेका, जैसा हमारे जुलावसे विमारफी तबियत प्रसन्न रहती है और साफ होतीहै ऐसा वैद्य कभी नहीं करसकेगा, इसका कारण यही है कि, हमलोग प्रथम मरीजको

१ वमनके अनंतर दस्त क्यों करावे ऐसी शंका होनेसे कहते हैं कि, भेड, चारक, सुश्रुत और यागभट्ट इत्यादिक ग्रंथोंका यह अभिप्रायहै कि, वमनदेकर छः दिनके पश्चात् तीनदिन स्निग्ध करे फिर तीनदिन अंगमेंसे पसीने निकाले, फिर तीनदिन हलका भोजन देकर सोलहवें दिन रेचन (दस्त) करावे यह ग्रंथकारोंका अभिप्राय श्रेष्ठतम है "सम्यक्" पद धरनेसे जानाजाताहै ।

मुंजिश देकर मलको फुलाय मुलायम कर फिर दस्त कराते हैं तो बहुत जल्द और बहुत सफाईके साथ दस्त होते हैं और विमारभी खुशी रहता है ॥

परंतु इस तरह कहनेवाले हकीमोंको हम निरैवैशाखनंदन ही जानें हैं खैर मुसलमान हकीम कहें तो कहे, परंतु दो दिनसे पैर अडानेवाले कि, जिन्होंने अच्छीरीतिसे हिकमतके भी पूरे २ ग्रंथ नहीं देखे, फिर हमारे ग्रंथ देखना तो उनको मानो एक बड़ा भारी समुद्रका तैरना है । ऐसे हमारे ही हिंदू हकीम हमारी और हमारे शाखोंकी निंदा करते हैं तो हमको उनकी बुद्धिपर अत्यंत शोक होता है कि, देखो जैसे कोई बालक अपने घरमें अमूल्य पदार्थ धरे हुएओंको अंधकारवश न दीखनेसे तुच्छ मोलके दूसरोंके पदार्थ लेकर अपने मनमें यह विचार करता है कि, ऐसे पदार्थ अमूल्य हमने नहीं देखे और उनकी वो अत्यंत इज्जत करता है । यदि उसका पिता आदि कोई बड़ा मनुष्य उसको दीपकका उजला दिखाकर घरके धरे हुए पदार्थोंको दिखलावे और उनका गुणभी बतलावे तो उस लड़केको कितनी खुशी हो और फिर वो दूसरेकी तुच्छ वस्तुओंकी तरफ देखेभी नहीं । क्यों देखे जिसके हाथमें चितामणी आगई वो कौड़ी पैसोंकी तरफ क्यों देखेगा ॥

इसी दृष्टांतके अनुसार हमारे हिंदूभाई जो हकीमी विद्याके जालमें पड़के अपनी अमोल वैद्यविद्याका प्रभाव न जानके इसकी निंदा करते हैं वो उक्त बालकके बतौर हैं; यदि उनको उनके घरकी धरी हुई वस्तु दिखाई जाय तो अवश्य फिर जो दुराग्रही और जाहिल नहीं हैं वो इसकी प्रशंसा करते २ धकजावेंगे और उनको यह निश्चय होजावेगा कि, हकीमी और डाक्टरी आदि विद्या हमारी ही ठण्डिष्ट (जूठन) है ॥

उन भोलेभाले भाइयोंको हम इसजगे हिंदी जुलाबकी विधि दिखला कर कहते हैं कि, हमारे हिन्दी वैद्यकका कायदा ठीक है कि, अन्य मुल्कके हकीमों का कायदा ? ॥

अब आप देखिये कि, हमारे पृथक् जिसको जुलाब लेना हो वो प्रथम घृतआदिको पीवे कि, जिस्से देहकी रंग रंग और नाडीआदि कि जिन्में मवाद भरा है वो अत्यंत चिकनी होजावे । बाद इसके उसरोगीके पसीने निकाले, पसीने निकालनेका यही कारण है कि, प्रथम घीके पीनेसे उसका देह चिकना होगया फिर जो स्वेदन करा तो जहांपर मवाद चिकट रहा था वो पसीनेके निकालतेही तत्काल सबदेहसे अलग होगया । नैसा स्नेहन

( हैजा ) कोष्ठ कर्णरोग, नासारोग, मस्तकरोग, मुखरोग, शुदारोगी, लिंगमें उपदंशादिकरोग, कलेजेकारोगी, सूजन, नेत्ररोग, कृमिरोग, सोमरोग, क्षारजन्यविकार, वातरोग, शूलरोग और मूत्राघातरोग, इतने रोगों से व्याप्त मनुष्य दस्त कराने योग्य है अर्थात् इतने रोगवाले मनुष्यों को दस्त कराना चाहिये ।  
दस्त देने का निषेध ।

बालवृद्धावतिस्निग्धक्षतक्षीणोभयान्वितः । शांतस्तृषा-  
र्तःस्थूलश्च गर्भिणी च नवज्वरी ॥ नवप्रसूतानारी च मंदा-  
ग्निश्च मदात्ययी ॥ शल्यादितश्च रुक्षश्च न विरेच्या विजानता ॥

अर्थ—बालक, अतिवृद्ध, अतिस्निग्धमनुष्य, उरःक्षतकरके क्षीणमनुष्य, भयकरके युक्त, श्रमित ( जो मेहनत करने से थका ) है, प्यास से बराया हुआ, अत्यंत मोटा मनुष्य, गर्भिणी स्त्री, नवीन ज्वरकरके पीड़ित, नवप्रसूता स्त्री, मंदाग्निवाला मनुष्य, मदात्यय रोगी, शल्यकरके पीड़ित तथा रुक्ष ( निस्तेज ) मनुष्य इनको चतुर वैद्य दस्त न करावे [ जो करावे तो वो मूर्ख जानना ]

मृदु मध्य और क्रूर कोष्ठ ।

बहुपित्तो मृदुः प्रोक्तो बहुश्लेष्मा च मध्यमः । बहुवातः क्रूर-  
कोष्ठो दुर्विरेच्यः सकथ्यते ॥ मृद्री मात्रा मृदौ कोष्ठे मध्यकोष्ठे  
च मध्यमा । क्रूरे तीक्ष्णामता तज्ज्ञैर्मृदुमध्यमतीक्ष्णकैः ॥

अर्थ—जिस मनुष्य का कोठा अत्यंत पित्तकरके व्याप्त है वो मनुष्य मृदुकोष्ठ ( नरम कोठेवाला ) जानना । तथा जिसके कोठे में अत्यंत कफ होवे वो मध्यम कोष्ठका जानना । तथा जिसके कोठे में अत्यंत वायु होवे वो मनुष्य क्रूर ( कठिन ) कोठेका जानना । यह क्रूरकोठेवाला दस्त कराने में दुखदाई है [ अर्थात् इसको फरही से भी करही दवा देने पर भी दस्त नहीं होते ] और जिसका नरम कोठा है उसको मृदु ( नरम ) औषध करके मृदु मात्रा देवे तथा जिसका कोठा मध्यम है उसको मध्यम औषध करके मध्यम मात्रा देनी । तथा जिसका कोठा क्रूर है उसको तीक्ष्ण औषध करके तीक्ष्ण मात्रा देनी चाहिये । वो औषध आगे के श्लोक में कहते हैं ॥

१ देखो हैजामें दस्त करना स्पष्ट लिखा है, परन्तु यह लोकविरुद्ध होने से वैद्यों ने धर्मित है ।  
२ तथा मंदाग्निवाले को भी वैद्य दस्त न करावे कारण कि, रहीं सही जो जठराग्नि है, वो भी दस्त कराने से क्षाति हो जाती है । ३ वाच, बाटा, सुई, नस, इत्यादिक शरीर में रहने से जो दुर्गन्ध होता है उसे शल्यादित जानना ।

मृदुमध्यमादिकोष्ठोमें मृदुमध्यमादिक औषध ।  
 मृदुद्राक्षापयश्चुतैरपिविरच्यते ॥ मध्यकस्त्रिवृत्ताति  
 ताराजवृक्षैर्विरच्यते ॥ क्रूरःस्नुक्पयसाहेमक्षीरीदंती  
 फलादिभिः ॥

अर्थ—जिसका नरम कोठाहै उसको कालीदास और दूध अंडीके तेलसेही दस्त होतेहैं और जिसका मध्यम कोठाहै उनको निसोध, कुटकी और अमलतासका गूदा इन तीन औषधोंकरके दस्तहोतेहैं अतएव यही औषध देवे । तथा जिसका क्रूरकोठाहै उसको धूहरका दूध, हेमक्षीरी ( चौक ) जमालगोटा, आदि शब्दसे जलफ इन्द्रायणकी जड सनाय आदि इन करके दस्त करावे, तो दस्तहोवे, परंतु वैद्यकी उचितहै कि, इसमें विपरीत न करे अर्थात् मृदुकोठेवालेको क्रूरकोठेकी औषध नदेय और क्रूरकोठेवालेको नम्रकोठेकी न देवे । दस्तोंकीहीनोत्तमादिमात्रा ।

मात्रोत्तमाविरेकस्य त्रिंशद्वेगैः कफांतिका ।

वेगैर्विंशतिभिर्मध्या हीनोक्ता दशवेगिका ॥

अर्थ—दस्तके वेग ३० होकर अंतके दस्तमें कफ गिरेतो उत्तम मात्रा जाननी तथा दस्तके २० वेगहोकर कफ निकलेतो मध्यम और दशवेग होनेके उपरांत यदि कफ गिरने लगेतो हीन मात्रा जाननी । यदि दस्त चाहिये जितने हों, परंतु जबतक कफ नहीं निकले तबतक जुलाब उत्तम नहीं कहलाता, और कफके निकलनेपरही जुलाबकी तारीफहै ।

दस्तोंमेंकाढेआदिकीमात्राकाप्रमाण ।

द्विपलं श्रेष्ठमारुयातं मध्यमं च पलं भवेत् ।

पलाद्धं च कपायाणां कनीयस्तु विरेचने ॥

अर्थ—दस्तहोनेमें दोपल काढा देनेसे उत्तम दस्त होतेहैं और एकपल देनेसे दस्त मध्यमहोते हैं तथा अर्द्धपल ( दोतोळे ) देनेसे दस्त कनिष्ठ होते हैं ॥

१ और ये नाभिके चारों तरफ लिपटी है और ऊपरसे बढाभारी मलका लपेटा लगा हुआ है जब यह प्राणी दस्तकी दवाई लेताहै तो ऊपरके मलके लपेटेमेंसे थोड़ा बहुत मल निकलताहै, परंतु जब और निकलनेकी होती है तब इसप्राणीके नाभिके चारोंतरफ थोड़ा बहुत भरोडा होने लगता है उस समय जानना कि, अब आम निकलेगी ।



दस्तोमेंकल्कादिकोंकाप्रमाण ।

कल्कमोदकचूर्णानां कर्षमध्वाज्यलेहतः ।

कर्षद्वयं पलं वापि वयोरोगाद्यपेक्षया ॥

अर्थ—कल्क, मोदक ( लड्डू ) और चूर्ण ये प्रत्येक सहत और घीमें मिलायके, कर्ष १ दस्तहोनेके अर्थ देवे अथवा अवस्था और रोग इनका तारतम्य विचारके दोर्ष अथवा पलमात्र देने चाहिये ॥

वातपित्तकफमेंऔषधी ।

पित्तोत्तरे त्रिवृच्चूर्णं द्राक्षाकाथादिभिःपिवेत्।त्रिफलाका-

थगोमूत्रैःपिवेद्योषं कफार्दितः ॥ त्रिवृत्संधवशुंठीनां

चूर्णमम्लैःपिवेन्नरः।वातार्दितो विरेकाय जांगलानारसेन च ॥

अर्थ—पित्तकी अधिकतामें निसोयका चूर्ण कर दाखके फाँटमें मिलायके देवे, आदि शब्दकरके गुलकंद, गुलाबके फूल, सोंफ, सनाय इत्यादिकके फाँटसे देवे और कफके प्रकोप होनेसे त्रिफलाका काठा और गोमूत्र दोनोंको मिलाय उसमें सोंठ, मिरच, पीपल इनका चूर्ण डालके देवे । तथा जो मनुष्य वायुके कोपसे पीडितहो उसको निसोय, सेंधा-निमक और सोंठ इनका चूर्णकर नीबूके रससे देना चाहिये । अथवा जंगली जीवोंके मांसरसके साथ देवे तो दस्तहोय ॥

अन्यऔषधकरकेदस्तोंकाविधान ।

एरंडतैलं त्रिफला क्वाथेन द्विगुणेन च ।

युक्तं पीत्वा पयोभिर्वा नाचिरेण विरिच्यते ॥

अर्थ—अंडीके तैलसे दूना त्रिफलेका काठा मिलाय दोनोंको एककरके पीवे अथवा उस अंडीके तैलको दूधमें मिलायके पीवेतो बहुत जल्दी दस्तहोवे ॥

ऋतुभेदकरकेदस्तकीविधि ।

त्रिवृतांकौटवीजं च पिप्पली विश्वभेषजम् ।

समृद्धीका रससौद्रं वर्षाकाले विरेचनम् ॥

अर्थ—निसोय, इन्द्रजी, पीपल, सोंठ, दाखका रस और सहत इन औषधोंको दस्त होनेके वास्ते वर्षाकालमें देना चाहिये ॥

शरत्कालमें विरेचन ।

त्रिवृद्धुरालभा मुस्ता शर्करादिव्यचंदनम् ।

द्राक्षांबुना सयष्टीकं शीतलं च घनात्यये ॥

अर्थ—निसोय, घमासा, नागरमोथा, शकर, उत्तम सपेद चंदन और मुलहटी इनका चूर्ण कर दाखके पानीमें मिलाप शरद कालमें पीवे, तो इसे दस्तहोवे । ये दस्त शीतलहैं ऐसा जानना चाहिये ॥

हेमन्तऋतुमें विरेचन ।

त्रिवृतां चित्रकं पाठामजार्जसुरलां वचाम् ।

हेमक्षीरी च हेमन्ते चूर्णमुष्णांबुना पिबेत् ॥

अर्थ—निसोय, चित्रक, पाठकी जड़, जोरा, देवदारु, वच और चोकर अथवा पीलेदूधका घृह इनका चूर्णकर गरमजलसे हेमन्तऋतु ( अगहन और पौषमास ) में लेवे तो दस्तहोय ॥

शिशिर और वसन्तमें विरेचन ।

पिप्पली नागरं सिंधु इयामात्रिवृतया सह ।

लिहेत्क्षौद्रेण शिशिरे वसन्ते च विरेचनम् ॥

अर्थ—पीपर, सोंठ, सेंधानिमक, विधायरा और निसोय इन औषधोंका चूर्णकर सहतमें मिलायके शिशिरऋतु और वसन्तऋतुमें लेवे तो इसे दस्त होय ॥

ग्रीष्मऋतुमें विरेचन ।

त्रिवृताशर्करातुल्या ग्रीष्मकाले विरेचनम् ॥

अर्थ—निसोयका चूर्णकर उसमें मिश्री मिलायके दस्तहोनेके वास्ते ग्रीष्म ( गरमीकी ) ऋतुमें सेवन करे तो दस्तहोय ॥

सुखसे दस्तहोनेके लिये अभयादि मोदक ।

अभया मरिचं शुंठी विडंगामलकानिच । पिप्पली पिप्पलीमूलं त्वक्पत्रं मुस्तमेव च ॥ एतानि समभागानि दंती च द्विगुणा भवेत् । त्रिवृदष्टगुणाज्ञेया पट्टगुणा चात्र शर्करा ॥ मधुना मोदकं कृत्वा कर्षमात्रप्रमाणतः । एकैकं भक्षयेत्प्रातः शीतं चानु पिबेज्जलम् ॥ तावद्विरिच्यते जंतुर्यावदुष्णं न सेव्यते ॥ पानादाराविहारेषु भवेन्निर्यत्र-

णं सदा ॥ विषमज्वरमंदाग्निपांडुकासभगंदरान् ॥ विदा-  
हप्लीहमेहांश्च यक्ष्माणं नयनामयान् ॥ वातरोगं तथा  
ध्मानं मूत्रकृच्छ्राणि चाश्मरीं पृष्ठपाश्वोरुजघनकट्यूद-  
ररुजं जयेत् ॥ सततं शीलनादेष पलितानिविनाशयेत् ।  
अभयामोदकोह्येतद्रसायनवरास्मृता ॥

अर्थ—हरड, कालीमिरच, सोंठ, बायविडंग, आवले, पीपर पीपरा-  
मूल, दालचीनी, पत्रज और नागरमोथा ये दश औषध समान भागले,  
तथा दंतीकी जड़ तीनभागले, निसोथ आठभाग, मिश्री छःभाग इस  
प्रमाण सब औषधोंके भागलेकर सबका चूर्णकर सहत डाल एकएक  
तौलेकी गोली बनावे, इसमेंसे एकगोली प्रातःकाल दस्तहोनेके अर्थ  
भक्षणकरे ऊपरसे थोड़ा शीतलजल पीवे और जबतक दस्तहोवे तब  
तक गरम पदार्थोंका सेवन न करे तथा पान और भोजन तथा विहार  
कहिये परिश्रमादिक इनको सदैव नियमित ( परमाणका ) करे कि,  
जिस्से विषमज्वर, मंदाग्नि, पांडुरोग, खांसी, भगंदर, कुष्ठ, गुल्मरोग,  
चवासीर, गलगंड, भ्रम, उदररोग, दाह, तिष्ठो, प्रमेह, राजायक्ष्मा,  
नेत्ररोग, वातरोग, पेटकाफूलना, मूत्रकृच्छ्र, पथररोग और पीठ पस-  
घाटे-कमर-ठरु-जोंघ-उदर की पीडा इन सबरोगोंको दूरकरे । इस मोद-  
कको अभयादिमोदक कहते हैं । यह अभयादि मोदक निरंतर सेवन  
करनेसे पलित (सपेदवालोंकाहीना) दूर होय और कालेवालहो यह अभ-  
यादि मोदक उत्तम रसायनरूप है ॥

दस्तोंकोसहायकरनेवालेपदार्थ ।

पीत्वा विरेचनं शीतजलेःसंसिच्य चक्षुषी ।

सुगंधं किंचिदाप्राय तांबूलं शीलयेन्नरः ॥

अर्थ—मनुष्यको दस्तकी औषध देकर पश्चात् उसके नेत्रोंमें शीतल ज-  
लसे छिड़के और सुगंधित वस्तु ( अतर आदि अर्गजा आदि ) सुंधावे  
तथा बीडा चबावे इत्यादि विधिके करनेसे उत्तम प्रकारके दस्तहोते हैं ॥

दस्तहोनेपर रहनेकेनियम ।

निर्वातस्थो न वेगांश्च धारयेन्न स्वपेत्ततः ।

शीतांबु न स्पृशेत्कापि कोष्णनीरं पिबेन्मुहुः ॥

अर्थ—दस्त होनेके अनंतर हवामें न बैठे, मल मूत्रका जब २ वेग आवे उसी वक्त त्यागे रोके नहीं, जबतक दस्तहोय तबतक सोवे नहीं [जुला-वमें किसी २ को निद्रा अधिक आतीहै] शीतलजलका स्पर्श करे नहीं। दस्तोंमें गरमजल बीच २ में पीतारहे ऐसा करनेसे उत्तम दस्त होतेहैं ॥

दस्तोंमेंनिकलनेवाली वस्तु ।

बलासौषधपित्तानि वायुर्वाते यथा व्रजेत् ।

रेकात्तथा मलं पित्तं भेषजं च कफो व्रजेत् ॥

अर्थ—वमनकी औषध लेनेसे कफ तथा जो औषध लीनी है वो एवं पित्त और वायु ये पदार्थ जैसे वमनके साथ बाहर गिरते है। उसी प्रकार दस्तकी औषध लेनेसे मल—पित्त और जो औषध लीनी है वो एवं कफ ये पदार्थ गुदाके द्वारा बाहर गिरते हैं ॥

दृष्टविरेचनकेअवगुण ।

दुर्बिरक्तस्य नाभेस्तु स्तब्धत्वं कुक्षिशूलता । पुरीष  
वातसंगश्च कंडुमंडलगौरवाः । विदाहो रुचिराध्मानं भ्रम-  
च्छर्दिश्च जायते ।

अर्थ—उत्तम दस्त न होनेसे इस प्राणीकी नाभिमें स्तब्धता, कूखमें शूल, मल और अधोवायु इनकी अपवृत्ति, शरीरमें खुजली तथा चक्ते ये उत्पन्नहो तथा अंगोंका जडपना, दाह, अरुचि, पेटका फूलना, भ्रम और वमन ये उपद्रव होते है ॥

जिसकेउत्तमदस्तनहुएहोउसकायत्न ।

तं पुनःपाचनैःस्नेहैःपक्कासंस्नेह्यरेचयेत् ।

तेनास्योपद्रवायांति दीप्तोऽग्निरलघुताभवेत् ॥

अर्थ—जिस मनुष्यकी उत्तम जुलाब न हुआहो उसे आरग्वधादि पाचन काढा देकर आमकी पचन करावे, फिर उसकी स्नेहपान ( घृत-पिलायके ) उसके कोठेकी चिकना करके फिर दस्त करावे । ऐसा करनेसे संपूर्ण उपद्रव दूरहोकर अठरागि प्रदीप्तहोय और अंग हलका होयहै ॥

अत्यंतदस्तहोनेके उपद्रव ।

विरेकस्यातियोगेन मूर्च्छांशो गुदस्य च ।

शूलं कफातियोगःस्यान्मांसधावनसंनिभम् ॥

**मेदोनिभं जलाभासं रक्तंचापि विरिच्यते ॥**

अर्थ—मनुष्यको बहुत दस्त होनेसे मूच्छा-गुदा (कांचका) निकल आना और गुदामें पीड़ा-उपद्रव होते हैं । तथा कफ अत्यंतगिरे और मांस धुले हुए पानीके समान तथा मद्यके समान अथवा चर्वीके समान तथा जलके समान गुदाके द्वारा जल और रुधिरभी गिरे है ॥

अत्यंतदस्तोंकाउपाय ।

**तस्य शीतांबुभिःसिक्तं शरीरं तंदुलांबुभिः ।**

**मधुमिश्रेस्तथाशीतैःकारयेद्वमनं मृदु ॥**

अर्थ—दस्त अत्यंत होनेसे मनुष्यके शरीरको शीतल जलकी बारसे भिगोवे तथा चावलके धोवनके जलमें सहत मिलायके पिवावे, तथा नरम वमन करावे तो ऐसा करनेसे अत्यंत दस्तोंकी शांति होय ॥

दस्तबदहोनेकाउपाय ।

**सहकारत्वचःकल्को दध्नासौवीरकेन वा ।**

**पिटो नाभिप्रलेपेन हंत्यतीसारमुल्बणम् ॥**

अर्थ—आमकी छालकी गौकी छाछमें अथवा सौवीरमें पीस कल्ककर नाभीके ऊपर लेपकरे तो अत्यंत दस्तहोना बंदहोय ॥

**अजाक्षीरं पिबेद्वापि वैकिरंहारिणं तथा।शालिभिःपट्टिकैः**

**स्वल्पं मसूरैर्वापि भोजयेत् ॥ शीतैः संग्राहिभिर्दिव्यैः**

**कुर्यात्संग्रहणं भिषक् ॥**

अर्थ—दस्त बंद होनेवास्ति बकरीका दूध पिवावे । अथवा विष्किर पक्षी

१ कच्चे जौ अथवा मुनेज्योंको हूट उसमें पाना डालने उस पानका मुख बदरर तीनदिन घण रहनेदे तो सौवार बनकर तप्यारहो इसीप्रकार गेटूका भी बनापलेना ।

टीकाकाराने दस्त बंद करनेका विषय होनेके कारण, सौवीर शब्दफरक काजलिना ऐसा कहाहै । उसकाजी बनानेकाविधि इस प्रकार है कि, एकमिट्टीसा पानलायने उसमें भीतर सरसोंका तेल जुपटदेवे फिर उसमें निर्मल जल भरके राई, जीरा, सैधानिमर, हींग, साठ, हलदी, इन छ औषधोंका पूर्ण तथा भातसहित पेन, उलूषोपाकाडा और थोडे बासके पत्ते ये सब वस्तु उसपात्रमें डाले तथा घीत तले हुये टहदक षड दम पाच उसमें डाले, उसका मुख बदरर तीनदिन घण रहाने ज' उसमें सदाईर्षी पास आने लगे तब जानेकी काजी बनकर तयार होगई ।

लवाआदिका मांसरस तथा हरिणका मांसरस सेवन करे तथा सांठी वा शाली चावलोंका भात करके थोड़ा खाय अथवा भसूरको सिजायके थोड़ी खाय और भी अनार आदिशब्दकरके शीतल और ग्राहक ऐसे पदार्थ सेवनकरे कि, जिसे दस्त बंदहोवे ॥

उत्तमजुलाबहोनेकेलक्षण ।

लाघवे मनसस्तुष्ट्या मनुलोमगतेनिले ।

सुविरक्तं नरं ज्ञात्वा पाचनं पाययेन्निशि ॥

अर्थ—उत्तम दस्तहोनेसे देह हलका होजावे, चित्तमें प्रसन्नता अथवा वायुका स्वस्थानमें गमन इतने लक्षण होनेसे उस मनुष्यको दस्त उत्तमदुष्ट ऐसा जानना । उसको रात्रिके समय पाचन ( सोंठ अंडिकीजड और धनियाँ, ये तीन औषधोंका काढ़ा पाचनार्थ देवे ) ॥

उत्तमजुलाबहोनेकाफल ।

इन्द्रियाणां बलं बुद्धेःप्रसादो बह्निदीप्तता ।

धातुस्थैर्यं वयःस्थैर्यं भवेद्वेचनसेवनात् ॥

अर्थ—जुलाबके लेनेसे मनुष्यकी इन्द्रियोंमें बलआवे, बुद्धि प्रसन्नहो तथा जठरामि प्रदीप्त और धातु तथा अवस्था इनका स्थिरपना होयहे अर्थात् रसादिधातु और आयु बढ़कर बहुत दिनतक रहे ॥

जुलाबमेंअपथ्य ।

प्रवातसेवा जीताम्बु स्नेहाभ्यंगमजीर्णताम् ।

व्यायामं मैथुनं चैव न सेवेत विरेचितः ॥

अर्थ—मनुष्य दस्तहोने उपरांत अत्यंत हवा नखाय तथा शीतल और तैलादिककी मालिस अजीर्णकारी पदार्थ भोजन परिश्रम और मैथुन इनका सेवन न करे ॥

जुलाबमेंपथ्य ।

शालिपट्टिकमुद्गाद्यैर्यवागूं भोजयेत्कृताम् ।

जांगलैर्विष्किराणां वा रसैःशाल्योदनं हितम् ॥

अर्थ—दस्तहोनेके पश्चात् सांठीचावल और मूंग आदिशब्दसे अन्यधान्यकी यवागूं करके सेवनकरे तथा जंगली जीव ( हरीण ससे आदि ) का मांसरस अथवा विष्करजीव ( लवा घटेरआदि ) पक्षियोंका और मुरगा इनके मांसरसके साथ चावलका भात सेवन करे ॥

नाराचरसः ।

तुल्यं पारदटंकणं समरिचं गंधाश्मतुल्यं त्रिभिर्विश्वं च  
त्रिगुणंततो नवगुणं जेपालबीजं क्षिपेत् । खल्वे दंडयु-  
गं विमर्द्य विधिवत्संन्यस्य पर्णे ततःस्विन्नं गोमयवह्निना  
स तु भवेन्नाराचनाया रसः ॥ गुंजेकप्रमितोरसोहिमजलैः  
संसेवितो रेचयेद्यावत्कोष्णजलं भजेत्खलुनरो भोज्यं  
तु दध्योदनम् ॥

अर्थ-शुद्धपारा-फुलायाहुआ सुहागा, कालीमिरच ये समान, भाग  
छेबे और शुद्धगंधक तीनोंके समान छेबे तथा सोंठ तीनभाग, जमाल  
गोटाके बीज नौ भाग इन सबको दोप्रहर खरलकर पत्तेपर निकाल  
आरने डपलोंकी अभिपर स्वेदन करे इस रसका नाम नाराचरस है  
यह पकरी खांडके साथ देवे ऊपरसे शीतलजल पीवे तो दस्तहोए और  
गरमजल पीनेसे दस्तबंदहोते हैं इसके ऊपर दही भात खाना पथ्य है ॥

द्वितीयनाराचरसः ।

जेपालेन समैःसूतव्यापटंकणगंधकैः । नाराचःस्याद्रसो-  
मापमात्रःसर्पिःसितायुतः ॥ हंतिसंग्रहमानाहमामशूलं  
तथाज्वरम् । वेलाज्वरं विरेकेण शीतलांबुनिपेवणम् ॥

अर्थ-जमालगोटा, पारा, सोंठ, कालीमिरच, सुहागा, गंधक ये समा-  
नभागलेकर एकत्र करके खरलकरे तो यह नाराचरस सिद्धहोवे इसमेंसे  
रस्ती रस खांड और धीके साथ देवे तथा ऊपर शीतल जल पिवावे तो मल-  
संग्रह अनाहवायु ( अफारा ) आमशूल, वेलाज्वर इनका दस्तहोनेसे  
नाश करे है ॥

इच्छामेदीरसः ।

शुंठीतीक्ष्णरसेन्द्रटंकणवलिःप्रोक्तःसमंतात्रिधा कुंभीबी-  
जयुतं विमर्द्य सभवेदिच्छाविभेदीरसः । वल्लंशकैरया  
युतेन बुलुकं पुंसःमुखं रेचयेन्निःशेषं मलदोषमेषविनिहं  
त्युच्चैर्यथेभं हरिः ॥

अर्थ-सोंठ, कालीमिरच, पारा, सुहागा, गंधक ये समानभागले उसमें  
जमालगोटा त्रिगुना ढालके खरलकरे इसको इच्छामेदी रस कहते हैं इस

रसको ३ रत्तीले खांडके साथ खाय ऊपरसे जितने चुटू शीतलजलके पीवे उतनेही दस्त इस प्राणीको होते हैं यह सुखजुलाब सबरोगोंको नाशकरे जैसे सिंह हाथीका नाश करता है ॥

द्वितीयइच्छाभेदीरसः ।

शंभोर्वीर्यं च टंकं बालमरिचयुतं गुग्गुवेरं च तुल्यं योज्यं  
नैकुंभवीजं समशिखिसहितं मर्दितं याममेकम् ॥ धुतंगुं-  
जाद्रिमात्रं शिशिरजलयुतं त्यक्ततल्पत्वमुच्येदिच्छा-  
भेदी रसोऽयं प्रबलमलहरः सर्वरोगैकहर्ता ॥

अर्थ-गुडपारा १ तोला, गंधक, कालीमिरच, सोंठ, जमालगोटके बीज, चित्रक ये सब औषध समानभाग लेकर एक प्रहर खरलकरे इसको इच्छाभेदीरस कहते हैं यह प्रबलमलका नाशकर संपूर्णरोगोंको हरणकरे है ।

अथ वस्तिप्रकरणम् ।

वस्तिद्विधानुवासाख्यो निरूहश्च ततः परम् । यः स्नेहैर्दीप्य-  
ते स स्यादनुवासननामकः ॥ कपायक्षीरतैलेर्यो निरूहः  
स निगद्यते । वस्तिभिर्दीप्यते यस्मात्तस्माद्वस्तिरिति स्मृतः ॥

अर्थ-अंडकोशादिक करके गुदामें जो पिचकारी मारते है उसको वस्ती कहते हैं वो वस्ति अनुवासन और निरूहण इस भेदसे दो प्रकारकी है उसमें तेल घी इत्यादि चिकनाईकी जो पिचकारी मारते हैं उसको अनुवासन और फाटे, दूध, तेल इनको एकत्र करके जो पिचकारी मारते हैं उसको निरूहवस्ती कहते हैं ।

प्रकारांतर ।

वातोत्पणेषु दोषेषु वातेवा वस्तिरिष्यते ।

उपक्रमाणां सर्वेषां सोऽग्रणीस्त्रिविधश्च सः ॥

निरूहोऽनुवासनो वस्तिरुत्तरः संप्रकीर्तितः ॥

अर्थ-वातोत्पणदोषोंमें अथवा केवल वातके दोषमें वस्तिकर्म करना चाहिये, यह संपूर्ण कर्मोंमें अग्रगण्य ( मुख्य ) है । सो तीन प्रकारकी है १ निरूहवस्ति, २ अनुवासनवस्ति और तीसरी ३ उत्तरवस्ती ॥



प्रथमअनुवासनवस्ति ।

तत्रानुवासनाख्योहि वस्तिर्यःसोऽत्र कथ्यते । पूर्वमेवत-  
तोवस्तिनिरूहाख्योभविष्यति ॥ निरूहादुत्तरं चैव  
वस्तिस्यादुत्तराभिधः । अनुवासनभेदश्च मात्रावस्तिरु-  
दीरितः ॥ पलद्वयंतस्यमात्रा तस्मादर्धापिवाभवेत् ॥

अर्थ—तहां प्रथम अनुवासन नामक वस्तिको कहके फिर निरूहवस्ति  
तथा उत्तरवस्ति कहेंगे । तथा उस अनुवासनवस्तिका भेद मात्रावस्ति  
है, उस मात्रावस्तिमें स्रेहादिकोंकी मात्रा दोपलकी है । अथवा पलमा-  
त्रकी जाननी इसप्रकार वस्तीके चार भेद जानने ॥

अनुवासवस्तिमेंयोग्यप्राणी ।

अनुवास्यस्तुरूक्षःस्यात्तीक्ष्णाग्निःकेवलानिली ॥

अर्थ—रूक्ष ( स्नेहपानरहित ) और प्रदीप्तहै अग्नि जिसकी धो और  
केवल वातरोगी ऐसे मनुष्योंको अनुवासनवस्तीके योग्य जानने ॥

अनुवासनअयोग्यपुरुष ।

नानुवास्यास्तु कुष्ठीस्यान्मेही स्थूलस्तथोदरी ॥ नास्था-  
प्यानानुवास्याःस्थुरजीर्णोन्मादतृड्युताः ॥ शाकमूच्छा-  
रुचिभयश्वासकासक्षयातुराः ॥

अर्थ—कुष्ठी, प्रमेही, स्थूलपुरुष, उदररोगी ये अनुवासनवस्तीके  
योग्य नहीं हैं । तथा उन्माद ( पागल ) अजीर्ण, तृषा, शोक, मूच्छा,  
अरुचि, भय, श्वास, खांसी और क्षय इनकरके पीडित जो मनुष्यहैं  
वो आस्थाप्य ( निरूहवस्ति ) में योजनाकरे " नानुवास्याः " अर्थात्  
उनकी अनुवासन वस्तीमें योजना न करे ।

वस्तीका मुखस्थापन विषयमें सुवर्णादिकोंकीनली ।

नेत्रंकार्यं सुवर्णादिधातुभिर्वृक्षवेणुभिः ।

नलैर्देतैर्विषाणाग्रैर्मणिभिर्वाविधीयते ॥

अर्थ—नेत्र कहिये गुदामें पिचकारी मारनेके लिये नली—वो सुवर्णादि धातु-  
की अथवा चांसकी अथवा नरसलकी, हाथीदांतकी अथवा सींगके अथ तथा  
विलौर अथवा सूर्यकांतादि (आतसीकाचआदिमणियोंकी करनी चाहिये) ॥

रोगीकी अवस्थानुसार नलीका प्रमाणकरे ।

एकवर्षात् पञ्चर्षं यावन्मानं पङ्गुलम् ।

ततो द्वादशकं यावन्मानं स्यादष्टसंयुतम् ॥

ततः परं द्वादशभिरंगुलैर्नैत्रदीर्घता ॥

अर्थ—वस्तीकी नली एक वर्षसे लेकर छः वर्ष पर्यंत छः अंगुल प्रमाण तथा छः वर्षसे लेकर बारह वर्षपर्यंत आठ अंगुल प्रमाण लंबी तथा बारह वर्षके पश्चात् बारह अंगुलकी लंबी नली बनानी चाहिये ॥

नलीका छिद्रका प्रमाण ।

मुद्गच्छिद्रं कालायामंछिद्रं कोलास्थिसान्निभम् । यथासं

ख्यं भवेन्नेत्रं शुद्धं गोपुच्छसंनिभम् ॥ आतुरांगुष्ठमा

नेन मूलेस्थुलं विधीयते । कनिष्ठिकापरीणाहमग्रे च-

गुटिकामुत्तमम् ॥ तन्मूलेकर्णिके द्वे च कार्ये भागाच्चतुर्थ-

कात् । योजयेत्तत्र वस्तिं च बंधद्वयविधानतः ॥

अर्थ—जो छः अंगुलकी नली है उसका छिद्र मूंगके दानेके समान और जो आठ अंगुलकी नली है उसका छिद्र मटरके दानेके बराबर और जो बारह अंगुल लंबी नली है उसका छिद्र बेरकी गुठलीके प्रमाण इसप्रकार क्रमकरके नलीका छिद्रकरे । और दो नली चिकनी होकर गौके पूंछके समान होनी चाहिये । तथा उस नलीका मूल रोगीके अंगूठाके बराबर मोटा और अग्रभागमें कनिष्ठिका उंगलीके प्रमाण मोटी करके उसका मुख गोलकरे तथा उस नलीके तीन भाग छोड़के चतुर्थभागके मूलमें दो कर्णिका कमलपत्रके समान बनाय हरिणादिकोंके अंडकी वस्ती उस जगह लगाय उस कर्णिकासे वस्तीके दोनों भाग बांधदेवे, कि, जिसे संधि न रहने पावे ॥

वस्तीकिसके आंठोकी बनावे सो कहते हैं ।

मृगाजसूकरगवां महिषस्यापि वा भवेत् ।

मूत्रकोशस्य वस्तिस्तु तदभावेन चर्मजः ॥

कपायरक्तः सुमृदुर्वस्तिः स्निग्धो दृढो हितः ।

१ जैसे गौकी पूंछ ऊपरसे पतली होती है बीचमें मोटी और नीचे फिर कमसे पतली होती चली गई है ऐसी बनावे ।

गुदे न्यसेत् । बध्वावस्तिमुखेसूत्रं वामहस्तेन धारयेत् ॥  
पीडयेद्दक्षिणेनैव मध्यवेगेन धीरधीः । जृम्भाकासक्षवार्दी-  
श्च वस्तिकाले न कारयेत् ॥

अर्थ-अनुवासन वस्तीके योग्य मनुष्योंके देहमें तेल लगाय गरमजलसे अंगमें हलका पसीना काढ उसको यथाशक्त्त लिखित भोजन कराय थोड़ासा इधर उधरको फिराय यदि उसको मलमूत्र अधोवायु त्यागनेकी इच्छा होयतो करायके फिर वस्तिकर्ममें योजना करे । और उसको बाई करबट सुलाय बाएपैरको लंबा पसार दहने पैरको संकुचित करे और गुदाको चिकनीकर वस्तीकी नली वस्तीके मुखमें डोरेसे बांध उस नलीको गुदाके ऊपर धरे तथा कुशलवैद्य उस नलीको बाए हाथमें लेकर दहने हाथसे मध्यमवेग करके दावे तथा वस्तीके समय जंभाईलेना खांसना और छीफना इत्यादिक रोगीको न करनेदेवे ( खांसी आदिके करनेसे पिचकारीका तेल ऊपर चढ़ जाताहै अथवा नीचेही रहे ठीक स्थानपर नहीं पडुचे इसीवास्ते जंभाई और खांसना आदि वर्जितहैं ) ॥

पिचकारीलगानेमेंकाल ।

त्रिंशन्मात्रामितःकालःप्रोक्तोवस्तेस्तुपीडने ।

ततःप्रणिहितःस्नेहउत्तानोवाक्शतं भवेत् ॥

अर्थ-पिचकारी मारनेके समय तीसमात्रा पर्यंत काल जानना और वो स्नेह भीतर जानेसे सोंवार (जितनीदेरमें सोंवार आंख भिचे) इनती देरतक चित्त सोया करे उसमात्राका प्रमाण आगेके श्लोकमें कहते हैं ॥

मात्राकाप्रमाण ।

जानुमंडलमावेष्ट्य कुर्याच्छोटिकयायुतम् ।

एकामात्रा भवत्येषा सर्वत्रैष विनिश्चयः ॥

अर्थ-घोटके चान्योंतरफ हाथ फेरके चुटकी बजावे इतने कालकी एक मात्रा होती है । यह सर्वत्र विषय है तथा मात्राका प्रमाण अन्यत्रभी ग्रंथोंमें लिखा है सो देखलेना ॥

वाङ्मात्राकाप्रमाण ।

निमेषोन्मेषणं पुंसामंगुल्या छोटिकाथवा ।

१. उसतो नावलेंनी पतली पेया करके दिखावे । २. गुदामें घी लगाकर ।

गुर्वक्षरोच्चारणं वा वाङ्मात्रेयं स्मृतावुधैः ॥

अर्थ-निमेषोन्मेषण ( पलकोंका खोलना मूंदना ) चुटकी बजाना, अथवा गुरुअक्षरके उच्चारण इनमें जितना समय लगता है उसको वाङ्मात्रा कहते हैं ॥

पिचकारीलगानेकेपश्चात्क्रिया ।

प्रसारितैःसर्वगात्रैर्यथावीर्यं प्रसर्पति ।

ताडयेत्तलयोरेनं त्रीन्वारान्श्च शनैःशनैः ॥

स्फिजोश्चैवं ततः श्रोणिं शय्यां चैवोत्क्षिपेत्ततः ।

जाते विधाने तु ततःकुर्यान्निद्रां यथासुखम् ॥

अर्थ-पिचकारी मारनेके पश्चात् रोगी हाथ पैर आदि सब देहको ढीला करके पसारदेवे कि, जिससे रसादिकधातु अपने २ स्थानपरजायें । तथा रोगीके हाथपैरके तलकी तीनवार हलकी ( धीरे २ ) तीन २ ताल देवे उसीप्रकार स्फिज ( कूला ) और श्रोणी ( कटिपश्चात्भाग ) में तीन २ बार ताल मारे । फिर उसको शय्या ( पलंगपर ) बैठावे । इसप्रकार वस्तीविधि होनेके अनंतर रोगीको सुखपूर्वक सुलायदे ॥

उत्तमवस्तिकर्महोनेकेगुण ।

सानिलःसपुरीपश्च स्नेहःप्रत्येति यस्य तु ।

उपद्रवं विना शीघ्रं स सम्यगनुवासितः ॥

अर्थ-गुदाके भीतर गयाहुआ जो स्नेह वो वायु तथा मल इनके साथ उपद्रवके विना तत्काल बाहर आनेसे उस मनुष्यको वस्तीकर्म उत्तम हुआ ऐसा जानना ॥

स्नेहकाविकारदूरहोनेमेंउपाय

जीर्णान्नमथसायाद्वे स्नेहे प्रत्यागते पुनः । लघ्वन्नं भोज

येत्कामं दीप्ताग्निस्तु नरोयदि॥अनुवासिताय देयंस्यादित

रेहिसुखोदकम्।धान्यशुंठीकपायो वास्नेहव्यापत्तिनाशनम्॥

अर्थ-गुदाके रास्ते स्नेहनिःशेष(संपूर्ण)बाहर आनेसे और यदि मनुष्यकी अग्नि प्रदीप्त होवे तो उसकी सार्यकालमें पुराने अन्न किंचित् नित्यके

आहारकी अपेक्षा कम पथ्यमें देवे और अनुवासित मनुष्यको दूसरे दिन सुखोदक देवे अर्थात् गरमजल पानिकी देवे अथवा धनियां और सोंठ, इनका काढा करके देय तो स्नेहका विकार दूरहोय ॥

वातादिदोषोंमें पिचकारी मारनेका प्रमाण ।

अनेन विधिना षण्वा सप्त चाष्टौ नवापि वा ।

विधेया वस्त्यस्तेषामन्ते चैव निरूहणम् ॥

अर्थ—पूर्वोक्तविधिकरके वातादिक दोषोंमें छःवार अथवा आठवार अथवा नौवार पिचकारी मारे उस पिचकारियोंके अंतमें निरूह वस्ति योजना करे ॥

वस्तीके गुण ।

दत्तस्तु प्रथमो वस्तिः स्नेहयेद्वस्तिवक्षणौ । सम्यक् दत्तो  
द्वितीयस्तु मूर्धस्थमनिलं जयेत् ॥ बलं वर्षं च जनयेत्-  
तीयस्तु प्रयोजितः । चतुर्थपंचमौ दत्तो स्नेहयेतां रसा-  
सृजी ॥ षष्ठो मांसं स्नेहयति सप्तमो मेद एवच । अष्टमो  
नवमश्चापि मज्जानं च यथाक्रमम् ॥ एवं शुक्रगतान्दो-  
षान् द्विगुणः साधुसाधयेत् । अष्टादशाष्टादशकान् वस्तीनां  
यो निषेवते ॥ सकुंजरबलोश्चस्य रमेत्तुल्यो मरप्रभः ॥

अर्थ—प्रथम वस्ति ( पिचकारी ) मारनेसे यह वस्ती वक्षण ( अंड सांधि ) द्वारा शरीरमें स्नेहन करे है अर्थात् धातु बढ़ावे है । दूसरी पिचकारी मारनेसे मस्तककी वायुको दूरकरे । तीसरी पिचकारी मारनेसे शरीरमें बल, कांति आवे । चौथी और पांचवी पिचकारी मारनेसे रस और रक्त इनकी वृद्धि होय । छटी और सातवी पिचकारी मारनेसे मांस और मेदमें स्निग्धता आती है । आठवी और नवम पिचकारी मारनेसे मज्जा में और श्लोकमें जो चकार है इसे शुक्रधातुमें स्निग्धता आती है । इस प्रकार द्विगुण ( १८ ) पिचकारी देनेसे शुक्रधातुगत जो दोष है उनका नाश होय तथा जो मनुष्य ३६ पिचकारियोंका सेवनकरे उसमें हाथीके समान बल और वेगमें घोंडेके समान होय एवं देवस्वरूप कांति होय है ॥

अनुवासनवस्ती और निरूहणवस्ति ये किसकां देनी इसका प्रकार ।

रूक्षाय बहुवाताय स्नेहवस्तिं दिने दिने । दद्याद्विद्यस्त  
थान्येषामन्यांवाधामपाहरत् ॥ स्नेहोल्पमात्रो रूक्षाणां

**दीर्घकालमनात्ययः । तथा निरुद्धस्निग्धानामल्पमात्रः प्रशस्यते ॥**

अर्थ—रूक्ष होकर जो अत्यंत वायुसे पीडित मनुष्य उसकी वैद्य दिन २ में स्नेहवस्ती देवे अर्थात् स्नेहकी पिचकारी नित्य मारे । उसी प्रकार “ अन्येषां ” कहिये स्निग्ध और स्थूलादिक मनुष्य उनके “ अन्या ” कहिये निरुद्ध वस्ती दिन २ में देवेतो “ बाधा ” कहिये रोग दूरहोय । तथा रूक्ष मनुष्य उनके स्नेहवस्ती अल्पदेवे अर्थात् स्नेहकी पिचकारी हलकी मारे । परंतु रोगी बहुत दिनका बचाहुआ होय तो स्निग्ध मनुष्य उसके निरुद्धवस्ती अल्पदेवे ॥

**तत्कालस्नेहबाहरनिकलेउसकाउपाय ।**

**अथवा यस्य तत्कालं स्नेहो निर्याति केवलः ।**

**तस्यान्योऽन्यतरो देयो नहि स्निग्धस्य तिष्ठति ॥**

अर्थ—स्निग्ध मनुष्यकी गुदामें पिचकारी मारनेसे उसी वखत चिकनाई बाहर निकल आती है ठहरे नहीं है इसीसे स्नेहवस्ती देकर उसी समय निरुद्धवस्ती देवे, इसप्रकार पलटकर दोनों प्रकारकी वस्तीदेवे ॥

**स्नेहबाहर न निकले उसके उपद्रव और उपाय ।**

**अशुद्धस्य पलोन्मिश्रः स्नेहो नैतियदा पुनः । तदा शैथिल्यमाध्मानं शूलं श्वासश्च जायते । पक्काशयो गुरुत्वं च तत्र दद्यान्निरुद्धणम् । तीक्ष्णं तीक्ष्णोपधियुता फलवर्तिर्हिता तथा ॥ यथानुलोमनोवायुर्मलस्नेहश्च जायते । तथा विरेचनं दद्यात्तीक्ष्णं नस्यं च शस्यते ॥**

अर्थ—वमन और विरेचन इत्यादिक करके जिसकी शुद्धी नहीं करी उसकी गुदासे यदि मलमिश्रित स्नेह बाहर आवे नहीं तो उसके देहमें शिथिलता और अफरा (पेटका फूलना) शूल, श्वास और पक्काशयमें भारीपना, ये उपद्रव होते हैं । इनके दूरहोनेके वास्ते तीक्ष्णनिरुद्धण वस्ति देनी चाहिये। इसीप्रकार तीक्ष्ण औषध करके युक्त ऐसी फलवर्तीदि जिस्से वायु अधोगामी होकर मल मिश्रित स्नेह गुदाके रास्ते बाहर आवे, तथा उसीप्रकार तीक्ष्णजुलाब और तीक्ष्णनस्य ये देने चाहिये ॥

**स्नेह वस्ती जिसको उपद्रव करे नहीं उसका विधान ।**

**यस्य नोपद्रवं कुर्यात्स्नेहवस्तिरानिःसृता ।**

**सर्वोल्पो व्यावृते रौक्ष्यादुपेक्ष्यः सविजानता ॥**

अर्थ—स्नेहवस्ती ( स्नेहकी पिचकारी ) गुदामें मारनेके अनंतर गुदाका संपूर्णभाग व्यावृत ( व्याप्त ) होनेसे अथवा मनुष्यके रूक्षपनेके कारण गुदाके एकदेशमें व्याप्तहोके रहनेसे शूलादिक उपद्रव नहीं करे । तो पिचकारी ( स्नेहवस्ती ) उसीप्रकार गुदामें धरी रहनेदे ॥

अहोरात्रिमें भी स्नेह बाहर न आवे तो उसका उपाय ।

**अनायाते त्वहोरात्रे स्नेहं संशोधनैर्हरेत् ।**

**स्नेहवस्तावनायाते नान्यः स्नेहो विधीयते ॥**

अर्थ—स्नेहकी पिचकारी मारनेसे जो स्नेह बाहर नहीं आवे उसके दोवार पिचकारी मारके स्नेह बाहर आवे ऐसा यत्न करे । अथवा जो स्नेह अहोरात्र ( दिनरात्रि ) में बाहर न आवे उसको गुलाब देकर तेलको बाहर निकाले ॥

**अनुवासनतैल ।**

**गुडूच्येरंडपूतीकभार्गवृपकरोहितम् । शतावरी सहचरं  
काकनासा पलोन्मितम् ॥ यवमापातसर्कोलकुलित्या  
न् प्रसृतोन्मितान् । चतुर्द्रोणांभसा पक्का द्रोणशेषेण  
तेन च ॥ पचेत्तैलाढके पेण्यैर्जीवनीये.पलोन्मितैः ।**

**अनुवासनमेतद्विषयवतविकारनुत् ॥**

अर्थ—गिलोय, अंडकी जड़, कंजाकी छाल, भारंगी, अडूसा, रोहि-  
षतृण, शतावर, पियाँवासा, काकतुंडी, ये नौ औषध एक २ पललेवे ।  
जौ, डडद, अलसी, बेरकी गुठली और कुलथी, ये पाँच औषध दो  
दो पलले, इन सबको कूट पानी ४ द्रोण डालके एकद्रोण जल बाकी  
रहने पर्यंत औटावे, उसमें तिलका तेल एक आठफ डालके और जीव-  
नीय गणकी औषधी एक २ पल कूट चूर्णकरके मिलावे, फिर उसको  
औटावे जब फाटा जलके तेलमात्र शेष रहे तब नीचे उतारके तेलछान  
लेवे। इसको अनुवासन तेल कहते हैं। यह तेल सपूर्ण वायुके रोगों से दूर करता है।

**शब्दादितैलम् ।**

**शटीपुष्करकृष्णाह्वामदनामरदारुभिः । शताह्वाकुष्ट-  
यष्ट्याह्वयचविल्वहुताशनेः ॥ सुपिष्टैर्द्विगुणं क्षीरतैलं**

तोयं चतुर्गुणम्।पक्त्वा वस्तौ विधातव्यं मूढवातानुलो  
मनम् ॥ अर्शांसि ग्रहणीदोषमानाहं विषमज्वरम्॥कट्यू  
रुपृष्ठकोष्ठस्थान्वातरोगांश्च नाशयेत् ॥

अर्थ-तिलतैल ४ सेर, दूध ८ सेर, कल्कके वास्ते कचूर, पुहकरमूल,  
पीपल, मैनफल, देवदारु, सौंफ, कूट, मुलहदी, वच, बेलगिरी और  
चीतेकी छाल ये सब मिलायके सेरभर लेवाजल १६ सेरले, सबको मिलाय  
तेलकी विधिसे सिद्धकरे । यह वस्तिक्रियामें प्रयोग करनेसे कृपित  
वायुको अनुलोम करे । तथा ववासीर,ग्रहणीदोष,अफरा, विषमज्वर और  
जांघ, कमर और पीठके वातरोगको दूरकरे। इसे शट्यादि तैल कहते हैं॥

वचादितैलम् ।

वचापुष्करकुष्ठैला मदनामरसिधुजैः । कांकोलीद्वयय  
ष्ट्याह्व मेदोयुग्मनराधिपैः॥ पाठाजीवकजीवन्ती भांगीचं  
दनकट्फलैः॥सरलागरुबिल्वाम्बुवाजिगंधाग्निवृद्धिभिः॥  
विडंगारगवधयामात्रिवृन्मागधिकर्द्धिभिः । पिष्टैस्तैलं  
पचेत्क्षीरं पञ्चमूलरसान्वितम्॥गुल्मानाहाग्निपंगाशोग्रह  
णीमूत्रसंगिनाम्।अन्वासनविधौयुक्तंशस्यतेऽनिलरोगिणाम्।

अर्थ-तिलतैल ४ सेर, छोटा पंचमूलका काढा १६ सेर, दूध १६ सेर,  
कल्कके वास्ते वच, पुहरकरमूल, कूट, इलायची, मैनफल, देवदारु, संधानि-  
मक, कांकोली, क्षीरकांकोली, मुलहदी, मेदा, महामेदा, अमलतास, पाठ, जी-  
वक, जीवन्तीशाक, भारंगी, लालचंदन, कायफल, सरलकाष्ठ, अगर, बेलगिरी  
नेत्रवाला, असगंध, चीता, वृद्धि, वायविडंग, कीरवारेकीगिरी, सारिवा-  
निसीय, पीपर, वृद्धि यह सब औषध १ सेरले । जल १६ सेर, तेलकी  
विधिसे सिद्धकरे, यह तैल गोला, अफरा, मंदाभि, ववासीर, संग्रहणी, मूत्ररो-  
ग और वातरोग इन समस्त रोगोंमें अनुवासन प्रयोगमें देवे ॥

चित्रकादितैलम् ।

चित्रकादिविपापाठा दन्तीबिल्ववचामिपैः।सरलांशुमती  
राष्णा नीलिनीचतुरंगुलैः ॥ चव्याजमोदकांकोलीमेदा



युग्मसुरद्रुमैः । जीवकर्पभवर्षाभ्रवस्तगंधशताह्वयैः ॥ रेन्व  
श्वगंधामंजिष्ठा शटीपुष्करतस्कैः ! सक्षीरं विपचेत्तैलं  
मारुताभयनाशनम् ॥ गृध्रसीखंजकुब्जाद्व्यमूत्रोदावर्त्तरो  
गिणाम् । शस्यतेऽल्पबलाग्नीनां वस्तावाशुनियोजितम् ॥

अर्थ-तिलतेल ४ सेर, दूध १६ सेर, कल्कके वास्ते चीतिकी छाल, अतीस,  
पाठा, दंती, वेलगिरी, वच, सौंफ, निसोत, सालपर्णी, रास्ना, नीली, अम-  
लतास, चव्य, अजवायन, फांकोली, मेदा, महामेदा, देवदारु, जीवक,  
ऋषभक, सांठी, अजमोद, सौंफ, रेणुक, असगंध, मजीठ, कचूर, पुहक-  
रमूल, चौरकाचरी, यहसव १ सेर ले । जल १६ सेर, तैलपाककी  
विधिसे बनावे । यह गृध्रसी, खंजता, कुवडापना, मूत्राधिक्य और उदावर्त्तरो-  
ग, बलहीन तथा मंदामि इत्यादि रोगमें इस तैलका अनुवासन कर्म उत्तम है ।

भूतिकादितैलम् ।

भूतिकैरंडवर्षाभूरास्त्रावृषकरोहिषैः । दशमूलसहाभां  
गंधिद्रुग्रंथामरदारुभिः ॥ बलानागबलामूर्वा वाजिगंधामृ  
ताह्वयैः । सहाचरवरीविश्वा काकनासाविदारिभिः । यव  
माषातसीकोल कुलत्थैः कथितैः शृतम् । जीवनीयप्रती  
वापं तैलं क्षीरं चतुर्गुणम् ॥ जंघोरुत्रिकपार्श्वाशवाहुमन्या  
शिरःस्थिताम् ॥ हन्याद्वातविकारांस्तु वस्तियोगैर्निपेवितम् ॥

अर्थ-तिलतैल ४ सेर काथके वास्ते अजवायन, अंडकी जड़, सांठ,  
रास्ना, अहूसा, रोहिपट्टण, दशमूल, मुद्गपर्णी, भारंगी, वच, देवदारु,  
खैरंदी, गगेरन, मूर्वा, असगंध, गिलोय, पियावासा, सतावर, सांठ,  
काषडोडी, विदारीकंद, जौ, उदद, अलसी, नेर, कुलथी ये सब २॥ सेर ले  
जल ६४ सेर लेके फाटाकरे, जव १६ सेर रहे तब उतारके छानलेय  
फिर जीवनीय गणका कल्क, दूध १६ सेर सबको एकत्र कर तैलकी विधिसे  
सिद्धकरे । इस तैलको अनुवासन द्वारा प्रयोग करे तो जंघा, ऊरु, त्रिक,  
पसवाड़े, कंधे, भुजा, मन्यानाडी और मस्तकगत वातरोग यह नष्ट होवे ॥

## जीवन्त्यादितैलम् ।

जीवन्त्यातिबलाभेदाकांकोलीद्वयजीरकैः । ऋषभाति-  
विपाकृष्णाकाकनासावचामरैः ॥ रास्त्रामदनयष्ट्याह्वस-  
रलाभीरुचन्दनैः । स्वयंगुप्ताशठीशृंगीकलशीसारिवाह्व  
यैः ॥ पिष्टैस्तैलघृतं पक्वं क्षीरेणाष्टगुणेनतु । तच्चानुवासने  
देयं शुक्राग्निबलवर्द्धनम् ॥ बृंहणं वातपित्तघ्नं गुल्मानाहहर  
परम् । नस्ये पाने च संयुक्तं मूर्द्धजन्तुगदापहम् ॥

अर्थ—तिलतैल ४ सेर । घृत १ सेर । जीवती, अतिबला, भेदा, महामेदा,  
कांकोली, क्षीरकांकोली, जीवक, ऋषभक, अतीस, पीपल, काकडोड़ी, वच,  
देवदारु, रास्त्रा, भैनफल, मुलहठी, सरल, सतावर, रक्तचंदन, कौल्लेकी बीज,  
फचूर, काकडासिंगी, पिठवन, सारिवा ये सब औषधी १ सेरले । दूध ४०  
सेर लेके विधिपूर्वक तैल सिद्धकरे । इसका अनुवासन करनेसे शुक्र, अग्नि  
और बलकी वृद्धिकरे, देहको पुष्टकरे, वायु और पित्तकी शांति, एवं गोला  
और अफरा रोगको नष्टकरे । नस्य तथा पानमे इसका व्यवहार करेता  
उर्ध्वजन्तुगत रोगोंका नाशकरे । इसे जीवन्त्यादि तैल कहते है ॥

## मधुकादितैलम् ।

मधुकोशीरकाश्मर्यकटुकोत्पलचंदनैः । श्यामापद्मक-  
जीमूतशक्राह्वातिविपांबुभिः ॥ तैलपादं पचेत्सर्पिःपय-  
साष्टगुणेन च । न्यग्रोधादिगणकाथयुक्तं वस्तिषु योजि-  
तम् ॥ दाहासृग्दरवीसर्पवातशोणितविद्रधीन् । पित्तर-  
क्तज्वराद्यांश्च हन्यात्पित्तकृतान् गदान् ॥

अर्थ—तिलतैल ४ सेर । घृत १ सेर । न्यग्रोधादिगणकी काय २० सेर ।  
दूध ४० सेर । कल्कके वास्ते मुलहठी, खस, कभारी, कुटकी, कमलगट्टा,  
रक्तचंदन, अनंतमूल, पद्मास, नागरमोथा, इन्द्रजौ, नेत्रवाला, अतीस ये  
सब १ सेरलेवे । सबको तैलकी विधिसं औटापके तैल सिद्ध करलेवे, उम  
का अनुवासन करनेसे दाह, मदर, विसर्प, वातरक्त, विद्रधि तथा पित्तकृ  
त अनेक प्रकारके रोग दूरकरे ॥

## मृणालादितैलम् ।

मृणालोत्पलशालूकसारिवाद्वयकेशरैः । चंदनद्वयभूनिव  
पद्मबीजकसेरुकैः ॥ पटोलकटुकारक्तागुंद्रापपटवासकैः ।  
पिष्टैस्तैलमिदं पक्वं तृणमूलरसेन च ॥ क्षीरद्विगुणसंयु-  
क्तं वस्तिकर्माणि योजितम् । नस्येऽभ्यंजनपाने वा  
हन्यात्पित्तगदान् बहून् ॥

अर्थ—तिलतेल ४ सेर, तृणपंचमूलका काठा १६ सेर, दूध ८ सेर । कल्क-  
के वास्ते कमल, नीलकर्मल, नीलकमलकी जड़, सारिवा, अनंतमूल, केश-  
र, रक्तचंदन, सपेदचंदन, चिरायता, कमलगट्टा, कसेरु, पटोलपत्र,  
कुटकी, मजीठ, भद्रमोधा, पित्तपापडा, अदुसा ये सब १ सेरले । सबका  
यथाविधि तैल सिद्धकरे । इस तैलकी नस्य मालिस पीना और वस्ति  
क्रियामें प्रयोग करनेसे अनेक प्रकारके पित्तरोगोंको निवारण करे ॥

## त्रिफलाद्यतैलम् ।

त्रिफलातिविषामूर्वात्रिवृच्चित्रकवासकैः । निवारग्वधपट्ट-  
ग्रंथासप्तपर्णनिशाद्वयैः ॥ गुडूचीन्द्रसुराकृष्णा कुष्ठसर्प-  
पनागरैः । तैलमेभिःसमैःपक्वं सुरसादिरसाहुतम् ॥  
पानाभ्यंजनगंडूपनस्यवस्तिषु योजितम् । स्थूलताल-  
स्यकंद्वादीज्येत्कफकृतान् गदान् ॥

अर्थ—तिलतेल ४ सेर । सुरसादिगणका स्वरस १६ सेर । कल्कके लिये  
त्रिफला, अतीस, मूर्वा, निशोथ, चीतिकी छाल, अदुसा, नीमकी छाल,  
अमलताशके पत्ते, वच, सतौनाकी छाल, हलदी, दारुहलदी, गिलोय,  
सझालु, पीपल, कूट, सरसों और सोंठ, सब १ सेरलेवे । तैलसिद्धकरे  
इसतैलके पीनेसे मालिससे कुरला, नस्य और वस्तीकर्म करनेसे स्थूलता,  
आलस्य और खजलीआदि कफके विविधविकार दूरहों । यह  
त्रिफलादि तैलहै । पाठाद्यतैलम् ।

पाठाजमोदाशाङ्गष्टा पिप्पलीद्वयनागरैः । सरलागरुका-  
लीयभार्गाचव्यामरद्रुमैः ॥ गरिचैलाभयाकटीशटीग्रंथि-  
ककटफलैः । तैलमेरंडतैलवा पक्वमेभिःसमायुतम् ॥

वल्लीकंटकमूलाभ्यांकाथेन द्विगुणेन च । हन्यादन्वा-  
सनैर्दत्तं सर्वान् कफकृतान् गदान् ॥

अर्थ—तिलतेल अथवा अंडीका तेल ४ सेर, वल्लीपंचमूलका काठा ८ सेर, कंटक पंचमूलका काठा ८ सेर, कल्ककेवास्ते पाठ, अजमोद, महाकरंज, पीपल, गजपीपल, सोंठ, सरल, अगर, कालीयकाष्ठ, भारंगी, चव्य, देवदारु, कालीमिरच, इलायची, हरड, कुटकी, कचूर, पीपरामूल और कायफल सब १ सेरलेवे । इनसे तेलको विधिपूर्वक सिद्धकरे इसका अनुवासन कफकृत समस्त रोगोंको निवारणकरे । इसे पाठादितैल कहतेहैं ॥  
विडंगाद्यतैलम् ।

विडंगोदीच्यासिंधूत्थशटीपुष्करचित्रकैः । कट्फल-  
तिविषाभांगी वचाकुष्ठसुराह्वयैः ॥ मेदोमदनयष्ट्याह्व-  
यामानिचुलनागैः । शताह्वानीलिनीराज्या कदली  
वृषरेणुभिः ॥ बिल्वाजमोदकृष्णाह्वादंतीचव्यनरा-  
धिपैः । तैलमेरंडतैलं वा मुष्ककादिरसाप्लुतम् ॥ प्ली-  
होदावर्तवातासृग्गुल्मानाहकफामयान् । प्रमेहशर्करा  
शोसि हन्यादाश्चनुवासनात् ॥

अर्थ—तिलतेल अथवा अंडीकातेल ४ सेर, मुष्ककादिगणका रस १६ सेर, कल्कके वास्ते वायावेडग, नेत्रवाला, संधानिमक, कचूर, पुष्करमूल, चीतिकी छाल, कायफर, अतीस, भारंगी, वच, कूट, देवदारु, मेदा, मैनफल, मुलहठी, अनंतमूल, हिजलके बीज, सोंठ, सोंफ, नीलकी जड़, रास्त्रा, केला-  
की जड़, अडूसा, रेणुक, बेलगिरी, अजमोद, पीपल, दंती, चव्य और अम-  
लतासके पत्ते सब १ सेरलेवे । विधिपूर्वक तैलसिद्धकरे इसतेलके अनुवास-  
नवस्ती करनेसे प्लीह, उदावर्त, वातरक्त, गोला, अफरा, कफकी अनेक  
व्याधि, प्रमेह, शर्करा और बवासीर, रोगको दूरकरे । यह विडंगादितैलहै  
ये पूर्वोक्त संपूर्णतैल सुश्रुतके वस्तीअधिकारमें लिखेहैं ॥

अनुवासनवस्तिमें विपरीत होनेसे रोगहोतेहैं उनको कहतेहैं ।

पट्सप्ततिव्यापदस्तु जायंते वस्तिकर्मणः ।

दूषितात्समुपायेन ताश्चिकित्स्यास्तु सुश्रुतात् ॥

अर्थ—वस्तीकर्ममें दोषरूपकुलभी विपरीतता होनेसे ७६ प्रकारकी व्यापत्ती ( रोग ) उत्पन्न होतेहैं । उसकी चिकित्सा सुश्रुतग्रंथमें लिखी है वो करनी चाहिये ॥

वस्तिकर्ममेंपथ्य ।

पानाहारविहाराश्च परिहारश्च कृत्स्नशः ।

स्नेहपानसमाः कार्या नात्र कार्या विचारणा ॥

अर्थ—अन्न, पान और विहार आहारादिक इनके आचरण जैसा स्नेह पानमें कहाहै उसीप्रकार इसजगे वस्तीकर्ममें करे इस विषयमें विचार नकरे

निरुहवस्तीकीविधि ।

निरुहवस्तिर्वहुधा भिद्यते कारणांतरैः ।

तैरेव तस्य नामानि कृत्तानि मुनिपुंगवैः ॥

अर्थ—निरुहवस्ती कारणभेदकरके अनेकप्रकारकी होतीहैं और जैसे २ कारण होतेहैं उसी २ प्रकारका उसका नाम होताहै । उदाहरण उत्क्रोशन वस्ति, दीपहरवस्ति, दीपशमनवस्ति इत्यादिक नाम जानने ॥

निरुहवस्तीकेदूसरेनाम ।

निरुहस्यापरं नाम प्रोक्तमास्थापनं बुधैः ।

स्वस्थानस्थापनादोषधातूनां स्थापनं मतम् ॥

अर्थ—निरुहवस्तीका दूसरा नाम आस्थापनहै उसकी व्युत्पत्ती, दोष और रसादिक धातु इनको अपने २ स्थानपर बैठातेहैं, इसीसे इसकी आस्थापन वस्ति कहतेहैं । तथा वातादिक दोष अपवा रोग इनको दूर करेहैं इसीसे उसको तिरुह ऐसा कहतेहैं ॥

निरुहवस्तीमें काढेआदिका प्रमाण ।

निरुहस्य प्रमाणं तु प्रस्थपादोत्तरं मतम् ।

मध्यमं प्रस्थमुदिष्टं हीनस्य कुडवाद्ययः ॥

अर्थ—निरुहवस्ती देनेमें काढे आदिका प्रमाण सवा प्रस्थ उत्तम है और एक प्रस्थ मध्यम तथा तनिकुडव कनिष्ठ जानना ॥

निरुहवस्तीअयोग्य ।

अतिस्निग्धो विलष्टदोषो क्षतोरस्कः कृशस्तथा । आ  
ध्मानछर्दिहिकार्शःकासश्वासप्रपीडितः ॥ गुदशोफाति  
सारार्तो विषूचीकुष्ठसंयुतः । गर्भिणीमधुमेहीच नास्था  
प्यश्च जलोदरी ॥

अर्थ-अत्यंतस्निग्ध मनुष्य तथा जिसके ऊर्ध्वगामीदोष दुरहो वो,  
तथा उरःक्षत करके पीडित, कृश, अफराका रोगवाला, छर्दिरोगी,  
हिचकी, बवाभीर, खांसी, श्वास इन करके पीडित जो मनुष्य होवे वह,  
गुदमें पीडा, सूजन, अतिसार, विषूचि, कोठ, गर्भवतीस्त्री, मधुमेह-  
रोगी और जलंधरका रोगवाला इतने रोगी निरुहवस्तीमें अयोग्य  
अर्थात् इन रोगियोंके निरुहवस्ती न करे ॥

निरुहवस्तीयोग्यमनुष्य ।

वातव्याधायुदावर्तं वातासृक्विषमज्वरे । मूर्च्छातृष्णोद  
रानाह मूत्रकृच्छ्राश्मरीषुच ॥ वृद्धचसृगुदरमंदाग्निप्रमेहे  
पु निरुहणम् । शूलेऽम्लपित्तेहृद्रोगे योजयेद्विधिवहुधः ॥

अर्थ-वातव्याधिरोगी, उदावर्त, वातरक्त, विषमज्वर, मूर्च्छा, प्यास,  
उदर, अफरारोग, मूत्रकृच्छ्र, पथरीरोग, बहुतदिनोंका असृग्दर ( प्रदरा )  
मंदाग्नि, प्रमेह, शूलरोग, अम्लपित्त, हृदयरोग, इतने रोगी निरुहवस्तीके  
विषयमें योग्यहैं अर्थात् इनरोगियोंके निरुहवस्ती करे ॥

निरुहवस्तीदेनेकाप्रकार ।

उत्सृष्टानिलविण्मूत्रं स्निग्धं स्निन्नमभोजितम् । मध्या  
ह्ने गृहमध्ये च यथायोग्यं निरुहयेत् ॥ स्नेहवस्तिवि  
धानेन बुधः कुर्यान्निरुहणम् । जाते निरुहे च ततो भवे  
दुत्कटकासनः ॥ तिष्ठेन्मुहूर्तमात्रं च निरुहागमनेच्छ  
या । अनायातं मुहूर्ते तु निरुहं शोधनेहरेत् ॥

अर्थ-निरुहवस्ती जिसमनुष्यको देनीहोवे वह मलमूत्र त्याग चुकाहो

१ मधुमेहके बिना और दूसरे प्रमेह वस्ती विषयमे योग्य जानने ।

अर्थात् उसरोगीसे कह देवे कि, जब तक ये वस्तिकर्म होवेगा तबतक तुमको मल मूत्र त्यागना न होगा, यदि भीतरसे अधोवायु निकले तो उसको निकाल कोठा शुद्धकर उसके देहमें स्नेहपदार्थ लगाय, थोड़े देहसे पसीने निकाल उसको भोजन न देकर मध्याह्नके समय घरमें जिस-प्रकार जिसरोगपर वस्तीदेना लिखाहै उसप्रकार -स्नेहवस्तीका विधान कर तैलादिककी पिचकारी गुदामें मारनी । और निरुहवस्तीके फर्म, होनेके अनंतर वह निरुह बाहर आनेके वास्ते दो घड़ी पर्यंत ठँकू बैठा रहे । यदि दोघड़ीमें निरुहकी औषधी गुदामेंसे न निकले तो उसको शोधन करके बाहर आनेका यत्नकरे सो आगे लिखते हैं ॥

निरुहकोबाहरलानेवालीऔषध ।

निरुहैरेवमतिमान् क्षारमूत्राम्लसैध्वैः ॥

अर्थ-निरुहवस्ती गुदासे बाहर न आनेपर जवाखार और गोमूत्र नींबूका रस अथवा जंभीरीका रस और सेंधानिमक ये चार औषधी एकत्रकर गुदामें फिर निरुहण करे कि, जिसे पहला दिया हुआ निरुह बाहर निकले ॥

निरुहवस्ती उत्तम होनेके लक्षण ।

यस्य क्रमेण गच्छन्ति विट्पित्तकफवायवः ।

लाघवं चोपजायेत सुनिरुहं तमादिशेत् ॥

अर्थ-जिस मनुष्यके निरुह वस्ती देनेसे उसके मल तथा पित्त एवं कफ और अधोवायु ये क्रमकरके गुदाके रास्ते बाहर निकलनेपर शरीरमें हलकापना होवे तो निरुहणवस्तीका कर्म उत्तम हुआ ऐसा जानना ॥

जिसकोउत्तमनहुईहोउसकेलक्षण ।

यस्य स्याद्वास्तिरल्पाल्पवेगोर्हानमलानिलः ।

मूत्रार्तिजाड्यारुचिमान्दुर्निरुहं तमादिशेत् ॥

अर्थ-जिसको निरुहवस्ती देनेसे उसका बाहर आनेका वेग अल्प आनेपर मल और अधोवायु ये जितने बाहर आने चाहिये इतने न आवे, अर्थात् थोड़े आवे और मूत्र करनेमें पीडा तथा शरीरमें जडपना, अरुचि ये सब लक्षण करके युक्त मनुष्यको निरुहवस्ती उत्तम नहीं हुई, ऐसा वैद्यको जानना चाहिये ॥

निरुहवास्ति और स्नेहवस्ति उत्तमदेनेकाफल ।

विविक्तता मनस्तुष्टिः स्निग्धता व्याधिनिग्रहः ।

आस्थापनस्नेहवस्त्योः सम्यक्दाने तु लक्षणम् ॥

अनेन विधिना युंज्यान्निरुहं वस्तिदानवित् ॥

अर्थ—रोगीके अंगमें हलकापना मनका संतोष, अंगमें पसीने आना, तथा रोगोंका नाश ये आस्थापन ( निरुहवस्ति ) तथा स्नेहवस्ती इनके उत्तम देनेके लक्षण जानने । और पूर्वोक्त ( जो वस्ती देनेका कर्म कहा है ) उस कर्मके जानने वाले वैद्यको निरुहवस्ती देनी चाहिये [ और जो वस्तिकर्म न जानता हो उस वैद्यसे कदाचित् वस्तीकर्म न करावे ] ॥

निरुहवस्ति देनेमें समयका प्रमाण ।

द्वितीयं वा तृतीयं वा चतुर्थं वा यथोचितम् । सस्नेहए  
कः पवने पित्ते द्वौ पयसा सह ॥ कपायकटुरुक्षाद्याः कफे  
कोष्णास्त्रयो मताः । पित्तश्लेष्मानिला विष्टं क्षीरयूपरसैः  
क्रमात् ॥ निरुहं योजयित्वा च ततस्तदनुवासयेत् ॥

अर्थ—निरुहवस्ती दोवार अथवा तीनवार अथवा चारवार जैसा दोष होवे उसीके अनुसार देनी तथा वातरोग होनेसे स्नेहयुक्त निरुह वस्ती एकवार देवे तथा पित्तरोग होनेसे दूधके साथ दोवार देवे, एवं कफरोग होनेसे कपाय और कटु तथा रुक्ष इत्यादि पदार्थ एकत्र कर तथा कुछ गरम करके तीनवार निरुहवस्ती देवे, अर्थात् इस औषधकी तीनवार पिचकारी मारनी चाहिये। अथवा कफ और पित्तवायु इन करके मनुष्य पीड़ित होनेसे दूध और यूप तथा रस ( मांसरस ) इनके क्रमकरके गुदादिकमें वस्ती देवे फिर अनुवासनवस्ती देय अर्थात् स्नेहको पिचकारी मारे ॥

सुकुमारादि मनुष्योंके निरुहवस्तिकी योजना ।

सुकुमारस्य वृद्धस्य बालस्य च मृदुर्हितः ।

वस्तिस्तीक्ष्णः प्रयुक्तस्तु तेषां हन्नाद्बलायुपी ॥

अर्थ—सुकुमार ( नाजुक ) और वृद्ध तथा बालक इनके हलकी पिचकारी मारनी क्योंकि, सुकुमारादिकोंके दारुण वस्ती देनेसे इनके बल और आयुका नाश होता है ॥

आदि, मध्य और अंत्य इनमें वस्तीकी योजना ।

दद्यादुत्क्रेशनं पूर्वं मध्ये दोषहरं ततः ।

पश्चात्संशमनीयं च दद्याद्वास्ति विचक्षणः ॥



अर्थ-प्रथम दोषोंके उत्क्लेद (उखाड़ने) को उत्क्लेदकारी औषधोंकी वस्ती देवे । तथा बीचमें दोषनाशक औषधोंकी वस्ती देवे तथा अंतमें अपने २ स्थानपर दोष बैठजावे ऐसी औषधोंकी पिचकारी मारनी चाहिये ॥

उत्क्लेशनवस्ती ।

एरंडबीजं मधुकं पिप्पली सेंधवं वचा ।

हवुपाफलपल्कश्च वस्तिरुत्क्लेशनः स्मृतः ॥

अर्थ-अंडोंके बीज, महुआकी छाल, पीपल, सेंधानिमक, वच, हौउवेर ये छः औषध समान भाग लेकर पीसके फल्ककरे, इसको दोषोंके उखाड़नेके वास्ते देवे इसे उत्क्लेशन वस्ती कहते हैं ॥

दोषहरवस्ती ।

शताह्वा मधुकं विल्वं कौटजं फलमेव च ।

सकांजिकः सगोमूत्रो वस्तिर्दोषहरः स्मृतः ॥

अर्थ-शतावर, सुलहटी, बेलगिरी, इन्द्रजों ये चार औषध समान भाग ले कांजीमें चारीक पीस तथा इसमें गोमूत्र मिलाय गुदामें पिचकारी मारे कि, जिस्से वातादिक दोषोंका शमनहो इसको दोषहर वस्ती कहते हैं ॥

शोधनवस्ती ।

शोधनद्रव्यनिकाथस्तत्कल्कैः स्नेहसैंधवैः ।

युक्त्या खजेन मथिता वस्तयः शोधनाः स्मृताः ॥

अर्थ-निशोध औषधों जो शोधनद्रव्य हैं उनका फाटाकर उसमें इन्ही औषधों का कल्क और सेंधानिमक मिलाय कलछीसे मथनकर दोषोंके शोधन विषयमें पिचकारी मारे, इसको शोधन वस्ती कहते हैं ॥

दोषशमनवस्ती ।

प्रियंगुर्मधुक्रोमुस्ता तथैव च रसांजनम् ।

सक्षीरः शस्यते वस्तिर्दोषाणां शमने स्मृतः ॥

अर्थ-फलप्रियंगु अथवा राल, महुआकी छाल, नागरमोया, रसोत ये चार औषध समान भाग लेकर दूधमें चारीक पीस दोषशमन होनेसे इसकी पिचकारी मारे, इसे दोषशमन वस्ती कहते हैं ॥

लेखनवस्ति ।

त्रिफलःकाथगोमूत्रक्षौद्रक्षारसमायुताः ।

ऊपकादिप्रतीवापैर्वस्तयो लेखनाःस्मृताः ॥

अर्थ—त्रिफलेका काठा करके उसमें गोमूत्र, सहत, जवाखार डालके तथा ऊपकादिगणकी औषधीका चूर्ण उसमें मिलायके मेदरोगादिकमें कुश करनेको वस्ती देवे, इसे लेखन वस्ती कहते हैं ॥

बृंहणवस्ति ।

बृंहणद्रव्यनिकाथःकल्कैर्मधुरकैर्युतः ।

सर्पिर्मांसरसोपेतवस्तयो बृंहणा मताः ॥

अर्थ—मूसली, गोखरू, कौंचके बीज इत्यादिक जो धातुवर्द्धक द्रव्य उनका काठा कर उसमें महुआकी छाल और दाख तथा अनार इत्यादिक मधुरद्रव्य और कल्क तथा घी और मांसरस ये सब औषध डालके पुष्ट होनेके अर्थ वस्ती देवे, इसको बृंहणवस्ति कहते हैं ॥

पिच्छलवस्ति ।

वदर्यैरावतीसेलुशाल्मलीधन्वनागराः । क्षीरसिद्धाःक्षौ-

द्रयुक्ता नाम्ना पिच्छलसंज्ञिताः॥अजोरणैरुधिरैर्युक्ता-

देया विचक्षणैः । मात्रापिच्छलवस्तीनां पलैर्द्वादशभिर्मताः ॥

अर्थ—वेरकी छाल, नारंगी, बहुआरकी छाल, सेमरकी छाल, धमासो, सोंठ ये छः औषध समान भाग लेकर दूधमें पीस सहत मिलाय उसमें बकरा और मेंढा तथा हरिण इनका रुधिर मिलायके कुशल वैद्य दोपोंके पतले करनेको वस्ती देवे इसको पिच्छल वस्ती कहते हैं । इस वस्तीकी मात्राका प्रमाण बारह पल जानना ॥

निरुहणमात्राकीविधि ।

दत्वादौ सैधवस्याक्षं मधुनःप्रसृतिद्वयम् । विनिर्मथ्यततो

दद्यात्स्नेहस्य प्रसृतित्रयम् ॥ एकीभूते ततःस्नेहे कल्क-

स्य प्रसृतिं क्षिपेत् । संमूर्छितकपाये तु चतुःप्रसृतिसंमितम् ॥

क्षित्वा विमथ्य दद्याच्च निरुहं कुशलोभिपक्वाते चतुः

पलं क्षौद्रं दद्यात्स्नेहस्यपट्पलम्॥पित्ते चतुःपलं क्षौद्रं स्ने-  
हस्यच पलत्रयम्।कफे पट्पलकंक्षौद्रं स्नेहस्यैवचतुःपलम्॥

अर्थ-प्रथम सैंधानिमक १ कर्ष, तथा सहत ४ पल इन दोनोंको एकत्र मर्दनकर फिर उसमें घी अथवा तेल छःपल डालके एक जगे मिलाय उसमें कल्ककी जो औषध कही है उनका कल्ककरके उसमें स्नेहमिलायदे अथवा उस कल्कका काटा करके उस स्नेहमें मिलावे । फिर कुशलवैद्य गुदामें पिचकारी मारे, यह निरूहवस्तीको साधारण विधि जाननी । विशेषविधि वातरोगमें सहत चारपल और स्नेह तीनपल दोनोंको एकत्रकर वस्तीदेवे तथा पित्तके रोगमें सहत ४ पल और स्नेह ३ पल मिलाय वस्तीदे । एवं कफरोग होयतो सहत छःपल और स्नेह चारपल लेवे दोनोंको एकत्रकर वस्ती देनी चाहिये ॥

मधुतैलवस्ति ।

एरंडकाथतुल्यांशं मधुतैलं पलाएकम् । शतपुष्पाप-  
लाद्धेन सैंधवार्षेन संयुतम्॥मधुतैलकसंज्ञायं वस्तिःख-  
जविलोडितः । मेदो गुल्मकृमिप्लीहमलोदावर्त्तनाशनः॥  
बलवर्णकरश्चैव वृष्यो बृंहणदीपनः ॥

अर्थ-अंडकी जडका काटा ८ पल, सहत और तेल ये चार २ पल, सौंफ और सैंधानिमक आधे२पल लेके सबको एकजगे एकत्रकर गडमड कर लेवे, इसको मधुतैलक वस्ती कहतेहैं, यह गुदामें देनेसे मेदोरोगको, गलेके रोगको, कृमिरोगको, प्लीह और उदावर्त्त इनकी नाशकरे । और यह वस्ती बल तथा कांति और स्त्रीसंगमें प्रीति, धातुकी वृद्धि देय है और अग्निको प्रदीप्तकरे हैं ॥

दीपनवस्ति ।

क्षौद्राज्यक्षीरतैलानां प्रमृतिं प्रमृतिं भवेत् ।  
हपुषा सैंधवाक्षांशौ वस्तिःस्यादीपनःपरः ॥

अर्थ-सहत, घी, दूध, प्रत्येक दो दो पल तथा हाटवेर और सैंधा निमक दोनों कर्षभरलेय, बारीक पीस उस सहत, घी और दूधमें मिला-यके जठराग्नि प्रदीप्त होनेके वास्ते वस्ती देवे । इसे दीपनवस्ती कहते हैं॥

युक्तरथवस्ति ।

एरंडमूलनिःकाथो मधुतैलं ससैंधवम् ।

एष युक्तरथो वस्तिःसवचापिप्पलीफलः ॥

अर्थ—अंडकीजडका काढा करके उसमें सद्दत और तेल डालके सैंधानिमक घच, पीपल और भैरवफल ये चार औषध समान भागले चूर्णकर उस काठेमें मिलायके गुदामें बस्ती ( पिचकारी ) मारे इसको युक्तरथवस्ती कहते हैं यह बस्ती सर्व रोगोंपर है ॥

सिद्धवस्ति ।

पंचमूलस्यनिःकाथस्तैलंमागधिकामधु ।

ससैंधवःसमधुकःसिद्धवस्तिरितिस्मृतः ॥

अर्थ—पंचमूलका काढा करके तेल, पीपलकानूर्ण, सैंधानिमक और महुआकीछाल अथवा गुलहटी ये सब उस काठेमें डालके बस्ती देनी चाहिये । इसको सिद्धवस्ती कहते हैं । यह बस्ती सर्व रोगोंपर है ॥

बस्तीमें सेव्य पदार्थ और निषिद्ध पदार्थ ।

स्नानमुष्णोदकैःकुर्यादिवास्वप्रमर्जीर्णताम् ।

वर्जयेदपरं सर्वमाचरेत्स्नेहवस्तिवित् ॥

अर्थ—पिचकारी लगनेवाला मनुष्य गरम पानीसे स्नानकरे । दिनमें सोवे नहीं तथा अजीर्ण होने दे नहीं तथा दूसरे सब आचरण स्नेहवस्तीके समान करने चाहिये ॥

उत्तरवस्तिकीविधि ।

अतःपरं प्रवक्ष्यामि वस्तिमुत्तरसंज्ञितम् । निरुहादुत्तरो

यस्मात्तस्मादुत्तरसंज्ञितः ॥ द्वादशांगुलकं नेत्रमध्ये च

कृतकर्णिकम् । मालतीपुष्पवृन्ताभं छिद्रं सर्पपनिर्गमम् ॥

अर्थ—अब इसके उपरांत मैं उत्तर वस्तीका प्रमाण कहता हूं । निरुहवस्तीके उत्तर होनेसे इसको उत्तरवस्ती कहते हैं। इसकी बारह अंगुली लंबी नली होकर उस नलीका मध्यभाग कमलपत्तेके कर्णिकाके समान

करे । और वो नली मालतीफूलके बराबर मोटी होकर उसमें सरसों चली जाय इतना बड़ा छिद्र करना चाहिये ॥

वयोनुमानकरके मात्राका प्रमाण ।

पंचविंशतिवर्षाणामधोमात्राद्विकार्षिकी ।

तदूर्ध्वं पलमानंच स्नेहस्योक्ता विचक्षणैः ॥

अर्थ—मनुष्यकी पचीस वर्षकी अवस्था होने पर्यंत वस्ती विषयमें स्नेहकी मात्रा दोर्कप प्रमाण विचक्षण वैद्य देवे । तथा पचीसवर्षके उपरांत १ पलकी मात्रा देनी चाहिये ॥

उत्तरवस्तीकी योजना कैसे करावे उसे कहते हैं ।

अथास्थापनशुद्धस्य तृप्तस्य स्नानभोजनैः । स्थितस्य  
जानुमात्रेण पीठे त्विष्टशलाकया ॥ स्निग्धया मेढ्रमार्गे  
च ततो नेत्रं नियोजयेत् । शनैःशनैर्घृताभ्यक्तं मेढ्रभ्रे-  
ज्जुलानि पट् ॥ ततोवपीडयेद्वस्तिं शनैर्नेत्रं च निर्हरेत् ।  
ततःप्रत्यागते स्नेहेस्नेहवस्तिक्रमोहितः ॥

अर्थ—निरुहवस्ती करके शुद्धहृष्ट तथा स्नान और भोजन इन करके तृप्त हुए ऐसे मनुष्यको आसनपर धोदू टेकके बैठावे फिर यथायोग्य सलाई सचिकणही उस सलाईकी नलीमें घी लगायके शिस्नमार्ग ( लिंगके छिद्र ) में प्रवेश करे, तथा उस नलीको लिंगके भीतर धीरे २ छः अंगुल प्रवेश कर पिचकारीमारि फिर उस नलीको धीरे २ बाहर निकाल लेवे, जब भीतरफा स्नेह बाहर आय जाय तो उत्तम वस्तीकर्म होताहै । इसी प्रकार स्नेहवस्ती क्रम जानना ॥

स्त्रियोंके वस्तिदेनेका प्रमाण ।

स्त्रीणांकनिष्ठिकास्थूलं नेत्रं कुर्याद्दशांगुलम् । मुद्रप्रवेशं  
योज्यं च योन्यंतश्चतुरंगुलम् ॥ द्वयंगुलं मूत्रमार्गेच सूक्ष्मं  
नेत्रं नियोजयेत् ॥

अर्थ—स्त्रियोंके वस्ती देनेमें उस वस्तीकी नली छोटी अंगुलीके समान मोटी और दस अंगुल लंबीहो, तथा उसका छिद्र इतना बड़ा होवे कि,

जिस में मूंग चली जाय । तथा उस नलीके योनिके भीतर चार अंगुल प्रवेश करके फिर पिचकारी मारे । परंतु स्त्रियोंके मूत्रमार्गमें बारीक नली प्रवेशकरे तो उस नलीका दो अंगुल प्रवेश होनेपर पिचकारी मारनी चाहिये बालकोंके वस्तिदेनेके विषयमें प्रमाण ।

**मूत्रकृच्छ्रविकारेषु बालानां त्वेकमंगुलम् ।**

**शनैर्निकंपमाधेयं सूक्ष्मनेत्रविचक्षणैः ॥**

अर्थ—बालकोंके मूत्रकृच्छ्र विकारमें वैद्य जैसे हाथ नहिले ऐसे धीरे २ बारीक नलीको उसकी इंद्रियोंमें १ अंगुल प्रवेश करके पिचकारी मारे ॥

स्त्री और बालकोंके वस्तिदेनेमें स्नेहकी मात्रा ।

**योनिमार्गेषु नारीणां स्नेहमात्रा द्विपालकी । मूत्र-  
मार्गे पलोन्माना बालानां च द्विकार्पिकी ॥ उत्ता-  
नायै स्त्रियै दद्यादूर्ध्वजान्वै विचक्षणः । अप्रत्यागच्छ-  
ति भिषक् वस्तादुत्तरसंज्ञिके ॥**

अर्थ—स्त्रियोंके योनिमें वस्तीकर्म करनेमें स्नेहकी मात्रा दोपल जाननी तथा स्त्रियोंके मूत्रमार्गमें वस्ती देनी होय तो स्नेहकी मात्रा १पलकी जाननी तथा बालकोंके दो कर्पकी मात्रा जाननी । और उत्तर संज्ञक वस्तीमें कुशलवैद्य उस स्त्रीको सीधी चित्त लिटाय कर उसके घोटू ऊपरकी धर फिर वी स्नेह ऐसे बाहर न आवे ऐसी पिचकारी मारे ॥

शोधनद्रव्यकरके वस्तीका विधान ।

**भूयोवस्ति निदध्याच्च संयुक्तैः शोधनैर्गणैः । फलवर्तिनि  
दध्याद्वा योनिमार्गे दृढं भिषक् ॥ सूत्रैर्विनिर्मितां स्निग्धां  
शोधनद्रव्यसंयुताम् । दद्यात्तथा वस्तौ दद्याद्वस्ति वि-  
चक्षणः ॥ क्षीरवृक्षकपायेण पयसाशीतलेन च ॥ वस्ति  
शुक्ररुजः पुंसां स्त्रीणामार्तवजा रुजः ॥ हन्यादुत्तरवस्ति  
स्तु नोचिता मोहिनां क्वचित् ॥**

अर्थ—मूत्रकृच्छ्रादि रोगोंमें शोधनद्रव्य ( अंडीका तेल आदि ) जो औषधी उनके समुदायोंकरके योनिके मार्गमें पिचकारी मारे अथवा अंडीके बीज आदि औषधोंकी दृढ वस्ती बनाय अथवा सूतकीवस्ती बनाय

उसवत्तीमे एरंड बीजादिक औषधी चुपड़के उसको योनिमें प्रवेश करनी चाहिये । यदि उसवत्तीके अधोभागमें वस्तिस्थान है वो विगड जावे अर्थात् उसमें दाहादिक होवे तो गूलर, बड इत्यादि क्षीरवृक्ष है उनका काढा करके वस्ती देवे । अथवा शीतल दूधकी वस्तिदेवे तो वस्तिस्थान शुद्ध हो । और यह वस्ती शुक्रघातु संबंधी जिस पुरुषके पीडा होती हो उसके तथा स्त्रियोंके आर्तव संबंधी पीडा होती होवे उनको दूर करती है । तथा जिस मनुष्यके प्रमेह है उसके उत्तरवस्ती कभी उपयोगी नहीं होवे ऐसा जानना ॥

उत्तमउत्तरवस्तिहोनेके लक्षण ।

सम्यक्दत्तस्य लिङ्गानि व्यापदः क्रमएव च ।

वस्तेरुत्तरसंज्ञस्य श्मनं स्नेहवस्तिना ॥

अर्थ—उत्तरवस्ती स्नेहवस्ती करके उत्तम प्रकार योजना करी हुई उसके लक्षण क्रमकरके ये हैं शुक्रघातु संबंधी जो प्रमेहादिक पीडा वह दूर होती है गुदामें फलवर्तीकी योजना ।

घृताभ्यक्ते गुदे क्षेप्या श्लक्ष्णस्वांगुष्ठसंनिभा ।

मलप्रवर्त्तिनीवर्त्तिः फलवर्त्तिश्च सा स्मृता ॥

अर्थ—गुदामें घी लगायके रोगीके अंगूठेके प्रमाण उत्तम दृढवत्ती बनाय मलहोनेके वास्ते अंडीके बीज आदि जो रेचक औषध उनका उस वत्तीमें लेप कर उसको गुदामें धरे तो मल निकले, इस वत्तीको फलवर्ती कहते हैं ॥

नस्यविधिः ।

नस्यं तत्कथ्यते धीरैर्नासा ग्राह्यं यदोषधम् ।

नावनं नस्यकमेति तस्य नामद्वयं मतम् ॥

अर्थ जो औषध नाकमें डाली जावे उसको नस्य कहते हैं उस नस्यके नाम नावन और नस्यकर्म ऐसे दो जानने ॥

नस्यकेभेद ।

नस्यभेदो द्विधा प्रोक्तो रेचनं स्नेहनं तथा ।

रेचनं कर्पणं प्रोक्तं स्नेहनं वृंहणं मतम् ॥

अर्थ-इस नस्यके दो भेदहैं-एक रेचन और एक स्नेहन, इनमें जो नस्य रेचन है उसको कर्षणसंज्ञक जाननी अर्थात् वातादि दोषोंको उच्छेद करता है एवं जो स्नेहन नस्य है उसको बृंहण जाननी ये धातुवृद्धिकरनेवाली है-

नस्यकाकाल ।

कफपित्तानिलध्वंसे पूर्वमध्यापराह्णके ।

दिनस्य गृह्यते नित्यं रात्रौ वाप्युत्कटे गदे ॥

अर्थ-कफके नाशकरनेको मस्य प्रातःकालमें ले, पित्तके नाशको दोपहरमें ले, वादीके नाशकरने को औषधी नासिकामें सायंकालमें डालनी, यदि रोगका अत्यंत बल होयतो रात्रिमेंभी डालना कहा है ॥

नस्यकानिषेध ।

नस्यं त्यजेद्भोजनान्ते दुर्दिने चापतर्पणे ॥ तथा नवप्र-  
तिश्यायी गर्भिणी गरदूषितः ॥ अजीर्णी दत्तवस्तिश्च  
पीतस्नेहोदकासवः । क्रुद्धःशोकाभिभूतश्च तृपातो  
वृद्धबालकौ ॥ वेगावरोधी स्नातश्च स्नातुकामश्च वर्जयेत् ॥

अर्थ-नाकमें नस्य डालना होय तो भोजनके अंतमें जिसदिन, बदल होय उसदिन और अपतर्पण तथा लंघनकराहो इनमें नस्य न देवे । जिसके नवीन पीनसरोग हुआ हो, गर्भिणीस्त्री तथा विषदोषकरके तथा अजीर्णकरके पीडित मनुष्य तथा जिसके वस्तिप्रयोग करा है तथा घृत, तेल इत्यादिक स्नेह और पानी तथा मद्य इनका सेवन करे हुए मनुष्यके, क्रोधी, शोक करे तथा तृपाकरके पीडित, वृद्ध, बालक, घात मूत्र इनका निरोध करनेवाला मनुष्य तथा स्नानकराहुआ तथा स्नान करनेको जो तयार हो इन सब मनुष्योंको नस्य न देवे ॥

नस्यकर्ममेंयोग्यअयोग्यमनुष्य ।

अष्टवर्षस्य बालस्य नस्यकर्मसमाचरेत् ।

अशीतिवर्षाद्ध्वं चनावनं नैव दीयते ॥

अर्थ-आठवर्षके बालके नाकमें औषधी डाले और अस्सी वर्षके उपरांत अवस्था बालके नाकमें औषधी नहीं डालनी चाहिये ॥



रेचकनस्यकाविधान ।

अथवैरेचकं नस्यं ग्राह्यं तैलैः सुतीक्ष्णकैः ।

तीक्ष्णभेषजसिद्धैर्वा स्नेहैः काथै रसैस्तथा ॥

अर्थ—जो रेचन नस्य नाममें डालनीवो अजवायन, सरसों इत्यादिकोंके तीक्ष्णतेल निकालके नाकमें डाले अथवा तीक्ष्ण औषध डालके स्नेह सिद्धकरे अथवा तीक्ष्ण औषधका काठा अथवा रस इनसे स्नेह सिद्ध करके नाकमें डाले ॥

रेचननस्यप्रकार ।

नासिकारंध्रयोरष्टौ पदचत्वारश्च विदवः ।

प्रत्येकं रेचने योज्यामुख्यमध्यांत्यमात्रया ॥

अर्थ—रेचनके वास्ते नाकके दोनो छिद्रोंमें औषधकी आठ विदु डालना यह उत्तम मात्राहै, छः विदु डालनेसे मध्य मात्रा जाननी और चारबूंद डालनेसे कनिष्ठमात्रा जाननी चाहिये ॥

नस्यकर्ममें औषधीका प्रमाण ।

नस्यकर्मणि दातव्यं शाणैकं तीक्ष्णमौषधम् । हिगुस्या-  
द्यवमात्रं तु मापैकं सैधवं मतम् ॥ क्षीरं चैवाष्टशाणं  
स्यात्पानीयं च त्रिकार्षिकम् । कार्षिकं मधुरं द्रव्यं  
नस्यकर्मणि योजयेत् ॥

अर्थ—नस्यकर्ममें जो तीक्ष्ण औषधी होय वो एक शाण प्रमाण डाले । तथा हिंग एक यव प्रमाण, सैधानिमक १ मासे, दूध आठ शाण, पानी तीनकर्ष और खांड, अनार इत्यादिक मधुरद्रव्य जो है वो प्रत्येक कर्षलेवे, इस प्रकार इनकी योजनाकरे ॥

विरेचननस्यकेदूसरेदोभेद ।

अवपीडःप्रधमनं द्वौ भेदावपरो स्मृतौ ।

शिरोविरेचनस्थाने तौ तु देयौ यथायथम् ॥

अर्थ—उस विरेचन नस्यके दो भेदहै एक अवपीडन तथा दूसरा प्रधमन, ऐसे जानना इन दोनोंकी मस्तकके विरेचनमें देना चाहिये ॥

अवपीडन और प्रधमनकेलक्षण ।

कल्कीकृतादौषधाद्यः पीडितो निःसृतो रसः । श्लोवपीडः

समुद्दिष्टतीक्ष्णद्रव्यसमुद्भवः॥पङ्गुलाद्विक्राया नाडी-  
चूर्णं तथा धमेत्।तीक्ष्णकोलमितं वक्रवातैःप्रथमनं हितत् ॥

अर्थ—अब उन दोनोंके लक्षण कहते हैं—तीक्ष्ण औपधकी पीस उसका कल्ककर निचोडनेसे जो रस निकलताहै उसको अवपीड कहतेहैं । तथा लःअंगुल प्रमाण लंबी और सीधी ऐसी नली करके उसमें तीक्ष्ण चूर्ण १ कोल प्रमाण डालके मुखकी हवासे नाकमें फूकदेना उसको प्रथमन कहतेहैं॥

रेचन और स्नेहननस्यकेयोग्य ।

ऊर्ध्वज्वगतो रोगे कफजे स्वरसंक्षये।अरोचके प्रतिश्या-  
ये शिरःशूले च पीनसे ॥ शोफापस्मारकुष्ठेषु नस्यं वै  
रेचनं हितम् । भीरुस्त्रीकृशबालानां नस्यं स्नेहेन दीयते ॥

अर्थ—ऊर्ध्वज्वगतारोग, कफ संबंधी स्वरभंग, अरुचि सरेकमां, मस्तक-  
शूल, पीनस, सूजन, अपस्मार, कुष्ठ इनरोगोंमें रेचक नस्य हितकारी  
जाननी—डरपा हुआ मनुष्य, कृश मनुष्य तथा बालक और स्त्री इनको  
स्नेहयुक्त नस्य देवे ॥

अवपीडननस्ययोग्य ।

गलरोगे सन्निपाते निद्रायां विषमज्वरे ।

मनोविकारे कृमिषु युज्यते चावपीडनम् ॥

अर्थ—गलरोग, संनिपात, अत्यंत निद्रा, विषमज्वर, मनके विकार  
और कृमिरोग इनमें अवपीडन नस्य देय ॥

प्रथमननस्यकेयोग्य ।

अत्यंतोत्कटदोषेषु विसंज्ञेषु च दीयते ।

चूर्णं प्रथमनं धीरेस्तद्धि तीक्ष्णतरं यतः ॥

अर्थ—मूर्च्छा, अपस्मारादिक, संज्ञा नष्टहोय जिससे ऐसे संन्यासादि-  
करोग—इनमें अत्यंत तीक्ष्ण ऐसे प्रथमनसंज्ञक चूर्णकी नस्य देवे ॥

रेचनसंज्ञकनस्य ।

नस्यं स्याद्दृढशुंठीभ्यां पिप्पलीसैधवेन च ।

जलपिष्टेन तेनाक्षिकर्णनासाशिरोगदाः ॥

हनुमन्यागलोद्भूता नश्यन्ति भुजपृष्ठजाः ॥

अर्थ—सोंठको गरमपानीमें औंटाय उसमें गुडडालके नस्य देवे । पीपल और सैंधानिमक इनको गरमपानीमें औंटाय नाकमें डाले तो इससे नेत्र, कान, मस्तक, ठोड़ी, मन्यानाड़ी, भुजा और पीठ इनमें जो पीड़ाहोती है सो दूरहोय ॥

रेचननस्यकी दूसरीविधि ।

मधूकसारकृष्णाभ्यां वचा मरिचसैधवैः ।

नस्यं कोष्णजले पिष्टं दद्यात्संज्ञाप्रबोधनम् ॥

अपस्मारेतथोन्मादेसनिपातेपतंत्रके ॥

अर्थ—महुआकी लकड़ीकी भीतरका गूदा, पीपल, वच, कालीमिरच और सैंधानिमक ये औषध गरम जलमें पीसके नस्य देवे तो मृगौ, उन्माद, संनिपात और अपतंत्रक वायु इत्यादि जिनसे चेष्टा ज्ञान ये नष्ट होते हैं वो दूरहोकर मनुष्य शीघ्र सावधान होवे इसप्रकार जानना ॥

रेचननस्यकातीसराप्रकार ।

सैधवं श्वेतमरिचं सर्पपा कुष्ठमेव च ।

वस्तमूत्रेण पिष्टानि नस्यं तन्द्रानिवारणम् ॥

अर्थ—सैंधानिमक, सपेदमिरच, पीलीसरसों और कूट इन औषधोंको बकरेके मूत्रमें पीस नस्य देवे तो नेत्रोंमें तंद्रा आती है वो दूरहो । तथा पूर्वोक्त अपस्मारादिक रोग दूरहों ॥

प्रथमनसंज्ञकनस्य ।

रोहितमत्स्यपित्तेन भावितं सैधवं वचा । मरिचं पिप्पली गुंठी कंकोलं लशुनं पुरम् ॥ कटफलं चेति तच्चूर्णं देयं प्रथमर्न बुधेः ॥

अर्थ—सैंधानिमक, वच, कालीमिरच, पीपल, सोंठ, कंकोल, लहसन, गूगल और कायफल इनका चूर्ण कर रोहित ( रोहू ) संज्ञक मछलीके पित्तके चूर्णमें पुटदेवे, फिर पूर्वप्रथमनके लक्षणमें नलीका मान कह आएँ उसरीतिसे नलीले उसमें यह चूर्णभरके नाकमें फूँकदेवे । इस करके पूर्वोक्त अपतंत्रादिक रोग दूर होते हैं । इस चूर्णको प्रथमन ऐसा कहते हैं ॥

वृंहणनस्यकी कल्पना ।

अथ वृंहणनस्यस्य कल्पनाकथ्यतेऽधुना । मर्शश्च प्रति-

मर्शश्च द्वौ भेदौ स्नेहने मतौ॥मर्शस्य तर्पणीमात्रा मुख्या  
 शाणैः स्मृताष्टभिः।मध्यमा च चतुःशाणैर्हीनाशाणामिता  
 स्मृता॥एकैकस्मिन्स्तु मात्रेयं देया नासापुटे बुधैः।मर्शस्य  
 द्वित्रिवेलं वा वीक्ष्य दोषबलावलम्॥एकांतरं द्वयंतरं वा  
 नस्यंदद्याद्विचक्षणः।अहःपंचाहमथवा सप्ताहं वा सुयंत्रितः ॥

अर्थ—अब वृंहण नस्य (धातुवृद्धि करनेवाली तथा नाकमें औषध  
 डालनेवाली ऐसी नस्य) कल्पना कहताहूँ, उस वृंहण नस्यके दो भेद  
 हैं १ मर्श और २ प्रतिमर्श ये दोनों स्नेहन विषयमें योग्य हैं । इनमें  
 मर्शनस्यकी तर्पणी मात्रा जाननी, वो आठ शाणकी मुख्य मात्रा है ।  
 तथा चार शाणकी मध्यम मात्रा है । और एकशाणकी हीनमात्रा जाननी  
 ये मात्रादोषोंका बलावल देखके मनुष्यको वस्त्रादिकसे ढककर एक एक  
 नाकके पुटमें दो दो बार अथवा तीन तीन बार अथवा एकदिन बीचमें  
 देकर तथा दोदिन बीचमें देकर अथवा तीन दिन बीचमें अथवा पांचवे  
 या सातवे दिन नस्य देनी चाहिये ॥

मर्शसंज्ञक नस्य तथा विरेचनसंज्ञक नस्य इनके आधिक्य  
 होनेसे जो रोग होते हैं उनका उपाय ।

मर्शोऽशिराविकारे च व्यापदो विविधाः स्मृताः । दोषो  
 त्क्लेशात्क्षयाच्चैव विज्ञेयास्ता यथाक्रमम् ॥ दोषोत्क्लेश  
 निमित्तासुयुंज्याद्भ्रमनशोधनम् । अथ क्षयनिमित्तासु  
 यथास्वंवृंहणं मतम् ॥

अर्थ—मर्शनस्यकी मात्रा धात्वादिकोंकी वृद्धिकरनेवाली है । उसके  
 आधिक्य होनेसे तथा दोषोंकी वृद्धि होनेसे तथा मस्तकके विरेचन विषयमें  
 विरेचनसंज्ञक नस्यकी मात्रा अधिक होकर मस्तकके भीतरके भेदादिकों  
 का क्षय होनेसे अनेक प्रकारकी पीडा होती है जिस दोषके उत्कर्ष निमित्त  
 जो पीडा होय उसके दूर होनेको वमन तथा विरेचन औषध देवे ।  
 तथा क्षय निमित्तसे जो पीडा होती है उसके दूर करनेको धातुवृद्धि  
 करनेवाली औषध नाकमें अथवा पेटमें खानेके वास्ते देवे ॥

जो वृंहण नस्यमें योग्य है ।

शिरोनासाक्षिरोगेषु सूर्यावर्तार्पणभेदके । दंतरोगे बले

हीने मन्यावाहंसजे गदे ॥ मुखशोपे कर्णनादे वात-  
पित्तगदे तथा । अकालपलिते चैव केशश्मश्रुप्रपातने ।  
युज्यते वृंहणं नस्यं स्नेहैर्वा मधुरद्रवैः ॥

अर्थ—मस्तक रोग, नासारा रोग, नेत्र रोग, सूर्यावर्त्तरोग, आधासीसी, दंत रोग, दुर्बल मनुष्य, मन्यानाडी, भुजा, कंधा इनमें जिसके पीड़ा होती हो तथा मुख-  
शोप, कर्णनाद रोग, वात पित्त संबंधी विकार, विना समय के वालों का सपेद हो  
ना सो पलित कहा जाता है, मस्तक के बाल, डाढी के बाल उखड़ २ के गिरे  
वो तथा इन्द्रलुत्तर रोग इन सब रोगों में घृत आदि स्निग्ध पदार्थ करके तथा  
मिश्री आदि जो मधुर पदार्थ हैं इन करके नस्य देना चाहिये ॥

पक्षाघातादि रोगों पर नस्य ।

मापात्सुशुभ्रास्त्राभिर्बमाऋभुकरोहिषैः । कृतोश्च गंधया  
क्वाथो हिं गुप्ते धवसंयुतः ॥ कोष्णो नस्यप्रयोगेण पक्षाघातं  
सकंपनम् । जयेदार्दितवातं च मन्यास्तंभापवाहुकम् ॥

अर्थ—उड़द, कौंच के धीज, रास्ना, बला की जड़, बंड की जड़, सुगंध तृण,  
असगंध इन सात औषधों का काढ़ा करके उसमें भुंजीर्हांग और संधानि-  
मक डाल के गरम गरम उस कांठ की नस्य देवे, जिससे कंप सहित पक्षाघात  
वायु, अर्दित वायु, मन्यास्तंभ वायु तथा अपवाहुक वायु ये दूर होय ॥

प्रतिमर्शनस्य की दो बिंदु रूप मात्रा ।

प्रतिमर्शस्य मात्रा तु द्विद्विबिंदुमिता मता ।

प्रत्येक शो नस्तकयोः स्नेहेनेति विनिश्चितम् ॥

अर्थ—घृत आदि करके जो स्निग्ध पदार्थ उनके दो २ बूंद एक २ नासि-  
का के छुट में डालने से वह प्रतिमर्शनस्य की दो बिंदु मात्रा जाननी ॥

बिंदु संज्ञक मात्रा ।

स्नेहे ग्रंथिद्वयं यावन्निमग्रा चोद्धृता ततः । तर्जनीयं सवेत्

विन्दुः सा मात्रा विन्दुसंज्ञिता ॥ एवं विधौ बिन्दुसंज्ञैरष्टभिः

शाण उच्यते । सदेयो मर्शनस्येतु प्रतिमर्शो द्विविन्दुकः ॥

अर्थ—घी तेल आदि से जो स्नेह पदार्थ तिनमें तर्जनी टंगली के दो

पोरुआ बूडजावे ऐसी तर्जनीको निकालके उस पोरुआसे जो बूंद टपकाई जावे उसको बिंदुमात्रा कहते हैं। इसप्रकार बिंदुसंज्ञक आठ मात्राओंकी एक शाण संज्ञक तोल होती है। वो शाणमात्रा मर्शनस्यमें देवे। और प्रतिमर्शनस्यमें दो बूंदकीदेय, इतनाही मर्शनस्य और प्रतिमर्श इनमें विशेषता है ॥

प्रतिमर्शनस्यकासमय ।

समयाःप्रतिमर्शस्य बुधैःप्रोक्ताश्चतुर्दश । प्रभाते दंतका-  
ष्ठान्ते गृहान्निर्गमने तथा ॥ व्यायामाध्वव्यवायांतेविष्णु-  
त्रान्तेजने कृते । कवलान्ते भोजनान्ते दिवास्वप्नोत्थि-  
ते तथा ॥ वमनांते तथासायं प्रतिमर्शःप्रयुज्यते ॥

अर्थ—प्रतिमर्शनस्यके १४ समय हैं, जैसे १ प्रातःकाल २ मुख धोनेके समय ३ घरसे बाहर निकलनेके समय ४ परिश्रमके अंतमें ५ रस्ताचलकर अनिपर ६ मैथुनके अंतमें ७ मल और ८ मूत्रकरनेके अंतमें ९ नेत्रोंमें अंजन करनेके उपरांत १० आसके तथा ११ भोजन तथा १२ दिवसमें सोपकर, उठनेके समय १३ वमनके अंतमें १४ सायंकाल इतने समय प्रतिमर्शसंज्ञक नस्यदेवे ॥

प्रतिमर्शद्वारातृप्तहुएकेलक्षण ।

ईपदुच्छिन्नकनात्स्नेहो यदा वक्रं प्रपद्यते ।

नस्ये निपितं तं दद्यात्प्रतिमर्शप्रमाणतः ॥

उच्छिदं न पिबेच्चैतन्निष्टीवेन्मुखमागतम् ॥

अर्थ—नस्यदेनेपर थोड़ी छींक आनकर वो स्नेह मुखमें उतरजावे तो उसमनुष्यको प्रतिमर्श नस्यकरके तृप्तहुआ जानना तथा मुखमें जो उतर-आया स्नेह उसको निगले नहीं किंतु थूकके बाहर पटक देवे ॥

प्रतिमर्शकेयोग्य ।

क्षीणे तृष्णास्यशोपातं वाले वृद्धे च युज्यते ।

प्रतिमर्शेन शाम्यन्ति रोगाश्चैवोर्ध्वचक्षुजाः ॥

बलीपलितनाशश्च बलमिन्द्रियजं भवेत् ॥

अर्थ—धातुक्षीणमनुष्य, बालक, वृद्ध तथा और मुखशोष इन करके पीडित मनुष्योंके प्रतिमर्शसंज्ञक नस्य देना चाहिये, तो उक्त रोग दूर हो

तथा नाडके ऊपरके जो रोगहै वो तथा त्वचाका सिथिलपना, कुसमय सपेद वालोंका होना उसको चलीपलित कहते हैं ये संपूर्ण रोग प्रतिमर्श-संज्ञक नस्यसे दूरहो तथा तेजादिक इन्द्रियोंमें बलबढ़े ॥

कुसमयसपेदबालहोनेपरनस्य ।

विभीतनिंबकं भारी शिवा शेलुश्च काकिनी ।

एकैकं तैलनस्येन पलितं नश्यति ध्रुवम् ॥

अर्थ—बहेडा, नीमकी छाल, कंभारी, हरड, बहुवार, काकडोड़ी इनके बीजके भीतरकी मिर्गीका तेल पृथक् २ निकाल कर एक एक न्यारी २ नस्य देवे तो मनुष्यके बिना समय जो बाल सपेद हुए हैं वो तरुणावस्थाके समान काले होय निश्चय ॥

नस्यकीविधि ।

अथ नस्यविधिं वक्ष्ये नस्यग्रहणहेतवे । देशे वातरजो मुक्ते कृतदन्तनिधर्पणम् ॥ विशुद्धं धूमपानेन स्विन्नमाल-गलं तथा । उत्तानशायिनं किञ्चित्प्रलंबशिरसंनरम् ॥ आस्तीर्णहस्तपादं च वस्त्राच्छादितलोचनम् । ससुन्न-मितनासाग्रं वैद्यो नस्येन योजयेत् ॥ कोष्णमच्छिन्नधा-रं च हेमतारादिशुक्तिभिः । शुक्त्या वा यंत्रयुक्त्यावा प्लुतैर्वानस्यमाचरेत् ॥

अर्थ—नस्य देनेके वास्ते नस्यकी विधि कहते हैं—जिस स्थानमें वायु अध-वा धूल न होवे वहाँ मनुष्य दांतुन और धूमपान करके कपाल और गले-को शुद्ध कर पसीनि युक्त करावे, फिर सीधा ( चित्त ) सुलाय मस्तकको लंबा और कुछ नीचेकी तरफ झुका कर हाथपैरोंको लंबे पसार दे फिर कपड़ेसे नेत्रोंको ढाँके वैद्य अपने हाथसे मनुष्यकी नाकको ऊँची कर जो नस्य डालनेकी वस्तु है उसकुछ २ गरमको एकसी धारसे तथा उस नस्यको सुवर्ण, चाँदी इनके पात्र करके अथवा सीप करके तथा कौड़ी वा फोहसे नाकमें निचोड़ देवे, दोनों नथनोंमें समान निचोड़े ॥

नस्यग्रहणमेंआज्ञा ।

नस्येष्वासिच्यमानेषु शिरो नैव प्रकंपयेत् । न कुप्येन्नप्रभा-

पेत नोच्छिदेन्न हसेत्तथा ॥ एते हि विहितः स्नेहो नैवान्तः  
संप्रपद्यते । ततः कासप्रतिश्याय शिरोक्षिगदसंभवः ॥

अर्थ—मनुष्य नस्यलेते वस्तु मस्तकको कंपावे नहीं तथा क्रोध न करे, किसीसे बोले नहीं, किसी तिनका आदिको तोड़े नहीं, न हसे यदि इसप्रकार न करेगा तो वो नस्य पदार्थ मस्तकके भीतर अन्धे प्रकार प्रवेशनहीं करनेका और खांसी, सरेकमा और मस्तक, नेत्र इनमें पीड़ा आदि उपद्रव होने लगते हैं ॥ अतएव बड़ी सावधानीके साथ नस्य ग्रहण करना चाहिये ॥

नस्यसधारणकाप्रकार ।

शृंगाटकमभिप्लाव्य स्थापयेन्नगलद्रवम् । पंचसप्तदशैव-  
स्युर्मात्रा नस्यस्य धारणे ॥ उपविश्याथ निष्ठीवेन्नासाव-  
वक्रगतं द्रवम् । वामदक्षिणपार्श्वभ्यां निष्ठीवेत्सन्मुखे नहि ॥

अर्थ—मनुष्यको नस्य देकर नासावंशके आगे भूमध्य देशमें चतुष्पथ (चौराहेके समान) है उसको उस नस्यके स्नेहसे भिगोय उस नस्यको धरदेवे । उसका धारण ५।७ मात्रा अथवा दशमात्रा कालपर्यंत करे, फिर बैठारहे और नाकमें तथा मुखमें उतरा जो पानी वा कफ उसको दहनी तरफ अथवा बाई तरफ धूकता जावे साहजने न धूके ॥

नस्यकर्मकरनेमेवार्जितवस्तु ।

नस्ये नति मनस्तापं रजः क्रोधं च संत्यजेत् । शयीत  
निद्रां त्यक्त्वा च उत्तानो वाक्शतं नरः ॥ तथेवरेचनस्यां-  
ते धूमो वा कवलो हितः ॥

अर्थ—नस्यकर्म होनेके उपरांत मनमें संताप न आने दे, जहां धूर उड़-  
तीहो तहां बैठे नहीं तथा क्रोध न करे, जैसे नींद न आवे इसप्रकार  
सौवाक् ( सोवार पलक खुले मुँदे इतने समय ) पर्यंत सोधा सुलावे ।  
इसीप्रकार धिरेचन नस्यके अंतमें धूम और ग्रास ये न देवे ॥

नस्यमेंशुद्धादिभेद ।

• नस्ये त्रीण्युपदिष्टानि लक्षणानि समासतः ।  
शुद्धिहीनातियोगानि विशेषाच्छास्त्रार्चितकैः ॥



अर्थ-नस्यमे शुद्धिलक्षण तथा हीनयोगलक्षण तथा अतियोगलक्षण ये तीन ही लक्षण विशेष करके शास्त्रज्ञ वैद्योंने कहे हैं उन लक्षणोंको आगे संक्षेपसे कहते हैं ॥

उत्तमशुद्धीकेलक्षण ।

लाघवं मनसः शुद्धिः स्रोतसां व्याधिसंक्षयः ।

चित्तेन्द्रियप्रसादश्च शिरसः शुद्धिलक्षणम् ॥

अर्थ-नस्य करके मस्तकभी उत्तमशुद्धि होनेसे शरीर हलकाहो, मन शुद्धहो तथा मुख, नाक, कान गुदा इत्यादि बाहिर्द्वारवाले मार्ग उनका शोधन होनाहै । तथा शिरारोगादिक दूरहो, अंतःकरण और नेत्रादिक इन्द्री ये प्रसन्न रहतीहै ॥

हीनशुद्धिकेलक्षण ।

कंदूपदेहो गुरुता स्रोतसां कफसंभवः ।

मूर्ध्निहीनविशुद्धे तु लक्षणं परिकीर्तितम् ॥

अर्थ-नस्य करके मस्तककी अल्पशुद्धि होनेसे देहमें खुजली तथा भारीपणा ये लक्षण होतेहैं तथा मुख नासिकादिक बाहिर्द्वार है उनसे कफका स्राव होता है ॥

आतिशुद्धिके लक्षण ।

मस्तुलंगागमो वातवृद्धिरिन्द्रियविभ्रमः ।

शून्यता शिरसश्चापि मूर्ध्निगाढं विरेचिते ॥

अर्थ-नस्य करके मस्तककी अत्यंत शुद्धिहोनेसे मस्तकके भीतरजो तरल पदार्थ रहताहै उसका नाकसे स्राव होने लगे तथा वायुकी वृद्धि होय, इन्द्रियोंका विभ्रम होय तथा मस्तकमें शून्यता आती है ॥

हीनशुद्ध्यादिमेचिकित्सा ।

हीनातिशुद्धे शिरसि कफवातप्रमाचरेत् ।

सम्यक्विशुद्धे शिरसि सार्पनस्ये निषेचयेत् ॥

अर्थ-नस्य करके मस्तककी अल्पशुद्धि अथवा अत्यंत शुद्धिहोनेसे कफ वायु हारक ऐसी नस्य देवे तथा उत्तमशुद्धि होनेसे नाकमें पीका नासदेवे ॥

आतिगन्धकेलक्षण ।

कफप्रसेकः शिरसो गुरुतेन्द्रियविभ्रमः ।

**लक्षणं तदतिस्निग्धरूक्षं तत्र प्रदापयेत् ॥**

अर्थ—नस्य करके मनुष्यका मस्तक अति स्निग्धहोनेसे कफका स्राव, मस्तकका भारीपना, इन्द्रियोकी भ्रांति ये लक्षण होते हैं । इस कारण इस अत्यंत सिग्धताके दूर करनेको रूक्षपदार्थकी नस्य देवे ॥

नस्यमेंपथ्य ।

**भोजयेच्चानभिष्यंदि नस्याचरितमादिशेत् ॥**

अर्थ—नस्यलेनेवाला मनुष्य अभिष्यदी पदार्थ अर्थात् भैसका दही आदि कफकारी पदार्थ भक्षण न करे और नस्यमें जैसे शिष्टजन आचरण करते हैं उसप्रकार आचरण करे । ये नस्यकर्ममें पथ्य है ।

पंचकर्माँकीसख्या ।

**वमनं रेचनं नस्यं निरूहमनुवासनम् ।**

**एतानि पंचकर्माणि कथितानिमुनीश्वरैः ॥**

अर्थ—वमन, रेचन, नस्य, निरूहवस्ती और अनुवासनवस्ती इन पाँचोंको पंचकर्म कहते हैं ॥

**धूमपानविधिः ॥**

**धूमस्तु षड्विधः प्रोक्तः शमनो बृंहणस्तथा ।**

**रेचनः कासहा चैव वामनो व्रणधूपनः ॥**

अर्थ—धूमपान छःप्रकारका है उनके नाम-शमन, १ बृंहण, २ रेचन, ३ कासघ्न, ४ वामन ५ और व्रणधूपन ६ इसप्रकार छःप्रकार जानने ॥

शमनादिकधूमोंकेपर्यायशब्द ।

**शमनस्यतु पर्यायौ मध्यः प्रायोगिकस्तथा ।**

**बृंहणस्यापि पर्यायौ स्नेहनो मृदुरेव च ॥**

**रेचनस्यापि पर्यायौ शोधनस्तीक्ष्ण एव च ॥**

अर्थ—तहां शमनधूमके पर्यायवाचक शब्द मध्य और प्रायोगिक ऐसे दो हैं तथा बृंहणधूमके पर्यायशब्द स्नेह और मृदु जानने । तथा रेचन धूमके पर्यायशब्द शोधन और तीक्ष्ण जानने ॥

धूमसेवनके अयोग्य ।

**अधूमार्हाश्च खल्वेते शांतो भीरुश्च दुःखितः । दत्तव-**

स्तिर्विरक्तश्च रात्रौ जागरितस्तथा ॥ पिपासितश्च  
दाहार्तस्तालुशोपी तथोदरी । शिरोभितापी तिमिरी  
छर्द्याध्मानप्रपीडितः ॥ क्षतोरस्कः प्रमेहार्तः पांडुरोगी  
च गर्भिणी । रूक्षः क्षीणोभ्यवहृतः क्षीरक्षौद्रघृतासवैः ॥  
भुक्तान्नदधिमत्स्यश्च बालो वृद्धः कुशस्तथा । अकाले  
चातिपीतश्च धूमः कुर्यादुपद्रवान् ॥

अर्थ—भ्रमितमनुष्य, डरपाहुआ, दुःखसे पीडितमनुष्य, जिसके वस्ती-  
प्रयोग करा, जिसका कोठा दस्तकरके रीताहो वह, रात्रिमें जागने वाला,  
तृषा करके पीडित तथा दाह करके पीडित, तालुशोपी, उदररोगी, शिरो-  
भितापकरके पीडित, तिमिररोगी, वमन, वादीसे पेटफूलाहुआ, डरक्षत-  
रोग, प्रमेह, पांडुरोग इनकरके पीडित मनुष्य, गर्भिणीस्त्री, रूक्ष तथा  
क्षीणमनुष्य, दूध, घी और आसव ( मद्य ) अन्न, दही और मछली इनका  
भक्षणकरनेवाला मनुष्य तथा बालक और दुर्बलमनुष्य ये धूमपानमें  
अयोग्य हैं । यदि कुसमयमें अत्यंत धूमपान करे तो वह चार उपद्रवोंको करे  
हैं । अतएव उक्त मनुष्यों को तथा कुसमय धूमपान करना त्यागदेवे ॥

धूमपानके उपद्रवोंका यत्न ।

तत्रेष्टं सर्पिषः पानं नावनां जनतर्पणम् । सर्पिरिक्षुरसं  
द्राक्षा पयो वा शर्करां वा ॥ मधुराम्लौ रसौ वापि  
शमनाय प्रदापयेत् ॥

अर्थ—धूमपानसे यदि उपद्रव होवे तो उस मनुष्यको घी पिवावे । नासि-  
का में नस्य देवे तथा नेत्रोंमें अंजन तथा तर्पण अर्थात् देहमें तृप्ति करनेवाला  
ऐसा द्राक्षादि मंड देवे । तथा घी, ईखका रस और दाख, दूध, सरसत  
अथवा मिर्ची, पानी अथवा मधुपदार्थ और खट्टेपदार्थ भोजनको देवे,  
तो धूमपानसंबंधी उपद्रव दूरहो ॥

धूमपानका काल और उसके गुण ।

धूमश्च द्वादशाद्वर्षाद्बृहतीति कालात् च ।

कालश्चासप्रतिश्यायान्मन्याहनुशिरोरुजः ।

वातश्लेष्मविकारांश्च हन्याद्भूमः सुयोजितः ॥

अर्थ-धूमपान बारहवर्षकी अवस्थासे लेकर अस्सी वर्षपर्यंत करे फिर न करे और उस धूमपानको उत्तम योजना होने से श्वास, सांसी, छे-प्पा, मन्यानाडी, ठोड़ी और मस्तकमें जो पीडा होतीहै उसको तथा वातकफ संबंधी विकार ये संपूर्ण रोग दूरहोवे ॥

धूमोपयोगहंनिपरगुण ।

धूमोपयोगात्पुरुषः प्रसन्नेन्द्रियवाद्भ्रमनः ।

दृढकेशद्विजश्मथुः सुगंधिवदनो भवेत् ॥

अर्थ-धूमका उपयोग होनेसे मनुष्य चक्षुरादिक इन्द्री तथा वाणी, अंतःकरण इन करके प्रसन्न रहताहै और केश तथा दांत और डढ़ी इनमें बल आताहै तथा मुख सुगंधित रहता है ॥

धूममैनलीकाविधान ।

धूमनाडी भवेत्तत्र त्रिखंडा च त्रिपर्विका । कनिष्ठिकाप  
रीणाहा राजमापागमान्तरा ॥ धूमनाडी भवेद्दीर्घाशमने  
रोगिणोगुलैः । चत्वारिंशन्मितैस्तद्वद्वात्रिंशद्भिर्मृ  
दौ स्मृता ॥ तीक्ष्णे चतुर्विंशतिभिः कासघ्नेषोडशो  
न्मितैः । दशांगुलैर्वामनीये तथा स्याद्ग्रणनाडिका ॥  
कलायमंडलस्थूला कुलित्यागमरंभिका ॥

अर्थ-धूमपानके विषयमें नली तीन टुकडेकी और तीन गांठकी करे तथा कनिष्ठिका ( छोटी डंगली ) के समान मोटीकरे तथा उसमें चौराका दाना भीतर चला जाय ऐसा चौड़ा छिद्र करे । इस प्रकारकी नली सामान्य धूमपानमें होनी चाहिये । यह नली रोगीके चालीस डंगल लंबीहो । तथा मृदुसंज्ञक जो धूमहै उसके सेवनमें वत्तीसे अंगुलीकी लंबी लेय । तथा काससंज्ञक धूम उसके सेवनमें सोलह अंगुलीकी ले । तथा वामनीय संज्ञक धूमके सेवनमें दश अंगुललंबी लेनी । उसीप्रकार ग्रणके धूनी देनेको जो नली ले. वो दश अंगुलीकी ले तथा घां ग्रणके धूनी चाली नली मटरके दानेके प्रमाण मोटी और उसमें छिद्र कुलथीका दाना भीतर चला जावे इतना बारीक करे । इस प्रकारकी वच्चो बनानी चाहिये ॥

धूमपानार्थ ईपिकाका विधान ।

अथेपिकां प्रलिपेच्च तु श्लक्ष्णां द्वादशाङ्गुलाम् । धूमद्रव्यस्य कल्केन लेपश्चाष्टाङ्गुलः स्मृतः ॥ कल्ककर्मितं लिप्त्वा छायाशुष्कं च कारयेत् । ईपिकामपनीयाथ स्नेहाक्तां वर्त्तिमादरात् ॥ अंगारैर्दीपितां कृत्वा धृत्वा नेत्रस्य रंध्रके । वदनेन पिवेद्भूमं वदनेनैव संत्यजेत् ॥ नासिकाभ्यां ततः पीत्वा मुखेनैव वमेत्सुधीः । शरावसंपुटेक्षित्वा कल्कमंगारदीपितम् ॥ छिद्रे नेत्रं सुवेश्याथ व्रणं तेनैव धूपयेत् ॥

अर्थ-ईपिका ( सरकंडेका टुकड़ा ) चारह अंगुलका चिकना लेवे, उसपर धूआँ लेनेकी वस्तुओंके कल्कका लेप ८ अंगुलपर्यंत करे कल्क द्रव्यका परिमाण २ तोले होना चाहिये । फिर उसकल्कके लेपको छायामें सुखाय लेवे, जब वो कल्क सुखजाय तब युक्तिके साथ उसमेंसे सरकंडेके टुकड़ेको निकास लेवे, कि, वो कल्ककी लंबी नलीसी रह जावे, उसके छिद्रमें दूसरी स्नेहकी बत्ती धरके उसको अंगारोंसे जलायके पूर्वोक्तनलीके छिद्रमें धरे फिर उसनलीको मुखमें रखके धूआ ईंचे और मुखके द्वाराही उस धूपको छोड़देवे । तथा नाकके छिद्रसे धूआँको खींचकर मुखसे छोड़दे । एवं सरावसंपुटके ऊपरले सरावमें छिद्रकर उसमें अंगारि भरके उनमें व्रणकी धूनीको जो कि, कल्क कराहुआ तयारहै उसे ढालदे जब धूआँ ठठने लगे तब उसके उस छिद्रके द्वारपर नलीका छिद्र लगाय व्रणकी धूनीदेवे ॥

कौनसी औषधका कल्क कौनसे धूममें देवे ।

एलादिकल्कं शमने स्निग्धं सर्जरसमृदौ । रेचने तीक्ष्ण कल्कं च कासघ्ने क्षुद्रिकोपणम् ॥ वामने स्नायुचर्माद्यं दद्याद्भूमस्य पानकम् । व्रणे निववचाद्यं च धूपनं संप्रचक्षते ॥

अर्थ-शमन संज्ञक धूनी उसमें एलादिक औषधोंका गणहै उनका कल्ककरके देय तथा मृदुसंज्ञक धूममें घृतादिक स्नेह पदार्थोंमें राल ढालके कल्क करके देय । तथा रेचनसंज्ञक धूममें सरसों राई इत्यादि औषधोंका

कल्क करदेवे तथा कासघ्न धूमसे कटेरी और कालीमिरच इत्यादिक औषधोंका कल्क करके देय । तथा वामनधूम ( वमन करानेवाली धूम ) में स्नायु और चर्मादिकोंका कल्ककरके पान करनेको देवे तथा व्रणमे नीम और वच इत्यादिकोंका कल्क करके धूम देवे ॥

बालग्रहादिदूरकरनेकोधूनी ।

अन्याहि धूमा गेहेषु कर्तव्या रोगशान्तये ॥ तद्यथा-मयूर-  
रपिच्छं निवस्य पत्राणि बृहतीफलम् । मरिचं हिगुमांसी  
च बीजं कापाससंभवम् ॥ छागरोमाहिनिर्मोकं विष्टावै-  
डालिकी तथा । गजदंतश्च तच्चूर्णं किंचिद्भूतविमिश्रि-  
तम् ॥ गेहेषु धूपनं दत्तं सर्वान् बालग्रहाञ्जयेत् । पि-  
शाचान् राक्षसान् जित्वा सर्वज्वरहरं भवेत् । एष माहेश्व-  
रो नाम्ना धूपः शिवमुखोद्गतः ॥

अर्थ-बालग्रहमे रोगशान्तिके अर्थ घरमें धूनीदेनी तहां मयूरपिच्छादि धूनी कहते हैं-मोरके पंख १ नीमकेपत्ते २ कटेरीके फल ३ कालीमिरच ४ हिग ५ जटामांसी ६ कपासके बीज ७ बकरेके बाल ८ सापकी काँचली ९ बिल्लीकी बिष्टा १० हाथीका दांत ११ इन ग्यारह औषधोंका चूर्ण-कर और थोडासा इसमें घी मिलाय घरमें इस चूर्णकी धूनी देवे तो संपूर्ण बालग्रह ( शङ्कुनी, पूतना, नैगमेयादि ) तथा पिशाच, राक्षस इनके उपद्रव दूरहोय तथा सर्वप्रकारके ज्वर दूरहोवे । यह मयूरपिच्छादि धूनीहै इसी प्रकार माहेश्वरादि धूनी जानो ॥

धूममेंपरिहार ।

परिहारस्तु खंडेषु कार्यो रेचननस्यवत् ।

नेत्राणि धातुजान्याहुर्नलवंशादिजान्यापि ॥

अर्थ-रेचन सज्ञक नस्यमें रोगोंके परिहारकेविषयमें जो उपाय कहाहै वोही उपाय इस धूमसे करावे । तथा नलीका मुख सुवर्णादी धातुका अथवा नरसल तथा वांस इत्यादिकोंका करावे ॥

धूमपीनेकायंत्र ।

चतुर्विंशत्यंगुलानि त्रीणि युक्तानि युक्तितः ।

योजिता या त्रिसंख्यं नलिका नेत्रसंज्ञिता ॥

अर्थ—चौधीस अंगुल लंबी तीन नली लेके युक्तीसे जोडे ये त्रिखंड नलिका इसीकी नेत्रसंज्ञा है ॥

धूमपानकेगुण ।

मनस्तापं रजः क्रोधं धूमपाने निवारयेत् ॥

अर्थ—धूमपान करनेसे मनका संताप, रजोगुण क्रोध ये दूरहोते हैं ॥

गंडूष और कवल तथा प्रतिसारणकी विधि ।

चतुर्विधः स्याद्गंडूषः स्नेहिकः शमनस्तथा ।

शोधनो रोपणश्चैव कवलश्चापि तद्विधः ॥

अर्थ—गंडूष (कुरलाकरना) चार प्रकारका है १ स्नेहिक, २ शमन, ३ शोधन और चौथा रोपण । तथा कवल (गत्सा—कौर) भी चार प्रकारका है ॥

स्नेहिकादिगंडूषोंकी दोषभेदकरके योजना ।

स्निग्धोष्णैः स्नेहिको वाते स्वादुशीतैः प्रसादनः ।

पित्तकट्वम्ललवणरूष्णैः संशोधनः कफे ॥

कपायतिक्तमधुरैः कटुष्णे रोपणे व्रणे ।

चतुःप्रकारो गंडूषः कवलश्चापि कीर्तितः ॥

अर्थ—स्निग्ध और गरम पदार्थोंकरके जो कुरलेकरने उसको स्नेहिक गंडूष जानना । इसकी वादीके रोगोंमें योजना करे । तथा मधुर और शीतल पदार्थके कुल्ले प्रसादन (शमनगंडूष) जानने उनको पित्तमें योजना करे । तथा तीक्ष्ण, खट्टे, खारी और गरम पदार्थके कुल्ले शोधन गंडूष कहाते हैं उनको कफके विषयमें योजना करना । तथा कपले, कटुष्ण और मधुर पदार्थ करके रोपण गंडूष जानना, इसको कुछ गरम करके व्रणमें योजना करे । इसीप्रकार कवलभी चार प्रकारका कहा है ॥

गंडूष और कवल इनमें भेद ।

असंचारी मुखे पूर्णं गंडूषः कवलश्चरः ।

तत्र द्रवेण गंडूषः कल्केन कवलः स्मृतः ॥

अर्थ—फाटे आदि शब्दसे जो द्रवपदार्थ उनसे मुखको भरके उसको इधर उधर मुखमें चलायमान न करे थोड़ी देर रखके कुरलाकरदेवे उसको

तथा कल्कादिक पदार्थोंको मुखमें भरके इधर उधर फिरावे इसप्रकार रखनेको कवल कहते हैं ॥

गंडूपऔरकवलकी औषधका प्रमाण ।

दद्याद्रव्येषु चूर्णं च गंडूपे कोलमात्रिकम् ।

कर्पप्रमाणःकल्कश्च दीयते कवले बुधैः ॥

अर्थ—गंडूपमें काठि आदि द्रव ( पतली ) द्रव्य उनमें चूर्ण एक कोलके प्रमाण मिलाना चाहिये । तथा कवलमें कल्क कर्प प्रमाण जानना ॥

किस अवस्थामें गंडूपकरे और कैसेकरे ।

धार्यते पंचमाद्र्पांद्रूपकवलादयः । गंडूपान्सुस्थितः  
कुर्यात्स्विन्नभालगलादिकः ॥ मनुष्यस्त्रीस्तथापंच सप्त  
वा दोषनाशनात् ॥

अर्थ—गंडूप अथवा कवलादिक पांचवर्षकी अवस्थाके पश्चात् कराने चाहिये । तथा मनुष्यको स्वस्थचित्त कर बैठाने, फिर रोग दूर होनेके अर्थ कपाल और गला तथा आदि शब्दकरके मुख इनमें थोड़ा २ पसीना आधे तबतक तीन अथवा पांच अथवा सात कुरले करावे अथवा दोष दूरहोने पर्यंत कराने चाहिये ॥

प्रमाणान्तर ।

कफपूर्णास्यतां यावच्छेदो दोषस्य वा भवेत् ।

नेत्रघ्राणश्रुतिर्यावत्तावद्गंडूपधारणम् ॥

अर्थ—कफकरके मुख भराआवे तबतक अथवा दोषोच्छेदन होय तहां तक तथा नेत्र और नाक इनमें छाव छूटे तबतक गंडूप धारण करे ॥

वातरोगमेंचिकनाईकेकुरले ।

तिलकल्कोदकं क्षीरं स्नेहो वा स्नेहिके हितः ॥

अर्थ—तिलोंका कल्क, पानी, दूध, तेल आदिशब्दकरके स्नेहपदार्थ ये स्नेहिक गंडूपमें देवे ॥

पित्तरोगमेंशमनसज्ञकगंडूप ।

तिलानीलोत्पलं सर्पिः शर्कराक्षीरमेव च ।

सशौद्रो हनुवक्रस्यो गंडूपो दाहनाशनः ॥



अर्थ—तिल, नीलकमल, घी, मिश्री और दूध ये पदार्थ एकत्र कर इसमें सहत डालके कुरले करे—तो पित्तसंवंधी, ठोडी और मुख इनमें जो दाह होता है वह दूर होवे ॥

व्रणादिरोगोंपर मधुगंडूष ।

वैशद्यं जनयत्यास्ये संदधाति मुखव्रणात् ।

दाहतृष्णाप्रशमनं मधुगंडूषधारणम् ॥

अर्थ—सहतके कुरले करनेसे मुखके छाले घाव, तथा दाह, तृषा ये रोग दूरहोकर मुखमें स्वच्छता आती है ॥

गंडूषधारणकेगुण ।

व्याधेरपचयस्तुष्टिर्वैशद्यं वक्रलाघवम् ।

इन्द्रियाणां प्रसादश्च गंडूषे विधृते भवेत् ॥

हरेदास्यस्य वैरस्यं शोषं पाकं व्रणं तृषाम् ।

दंतचालं च गंडूषो वैशद्यं तु करोति हि ॥

अर्थ—कुरले करनेसे व्याधिका नाश, तुष्टी, स्वच्छता, मुखमें हलकापना, सर्वेन्द्री प्रसन्न हो तथा मुखकी अरुचि, शोष, मुखके छाले, व्रण, प्यास, दातोंका हिलना इतने रोगोंका नाशकर सब शरीरको निर्मलकरे ॥

कवलधारणकेगुण ।

वातपित्तकफघ्नस्य द्रव्यस्य कवलं मुखे । अर्द्धं निक्षि-

प्य संचर्य निष्टीवेत्कवले विधिः ॥ कवलः कुरुते

कांक्षां भक्षेपु हरते कफम् । तृषां शोषं च वैरस्यं दं-

तचालं च नाशयेत् ॥

अर्थ—वात, पित्त, कफ इनके नाशकर्ता औषधोंका कवल ( प्रास ) मुखमें लेकर आधा चचापके धुक देवे । तो अन्नभक्षण करनेकी इच्छा हो तथा कफका नाशकरे । एवं शोष, प्यास और अरुचि इनका नाश करके हलतद्वय दातोंके टप्पी समय जमाय देवे ॥

प्रतिसारणम् ( मंजन )

दंतजिह्वामुखानां च चूर्णकल्कावलेहकैः । शनैर्षर्पणमंगु

ल्या तदुक्तं प्रतिसारणम् ॥ वैरस्यं मुलदुर्गं मुलशोषं तथा

तृषाम् । अरुचिं दंतपीडां च निह्न्यात्प्रतिसारणम् ॥

अर्थ-दांत, जीभ, मुख इनको चूर्ण, कल्क और अवलेह ऐसे तीन प्रकारकी औषधोंसे धीरे धीरे ँगलीसे रगड़े उसको प्रतिसारण (मंजन) कहते हैं ये प्रतिसारण करनेसे मुखका कड़ुआपना, दुर्गंध, मुखका सूखना, प्यास, अरुचि और दांतोंकी पीडा इन सबको नाश करे है ॥

गंडूप कवल और प्रतिसारणकी विधि ॥

क्षीरस्नेहकपायादिद्रव्यैः संपूर्णमाननम् । आपूर्य स्थीयते तावद्विधिर्गंडूपधारणे ॥

अर्थ-दूध तथा घृतादि स्निग्धपदार्थ तथा काढा आदिशब्दसे पतली औषधको मुखमें भरके थोड़ी देर रहनेदे फिर उसको कुरला ( कुल्ला ) करदेवे, यह गंडूप लेनेकी विधि जाननी ॥

विषादिमें गंडूप ।

विषक्षाराग्निदग्धे च सर्पिर्धार्य पयोधवा ॥

अर्थ-विषदोष-( संखियाबादि ) और क्षारादिजन्य विकार तथा अमिदग्धजन्यविकार इनसे घी अथवा दूध इनके कुल्ले करे ॥

दंतचालनमें गंडूप ।

तैलसैधवगंडूपो दंतचाले प्रशस्यते ॥

/ अर्थ-तिलका तैल और सैधानिमक, दोनोंको मिलाय कुल्ले करे तो दांत हिलते हुए जमजावे ॥

मुखशोषपर गंडूप ।

वैरस्यं मुखशोषं च गंडूपः कांजिको जयेत् ॥

अर्थ-मुखशोष तथा मुखकी बिरसताको कांजीके कुल्ले नाश करते हैं ॥

कफपर गंडूप ।

सिंधुत्रिकटुराजीभिरार्द्रकेण कफेहितः ॥

अर्थ-सैधानिमक, सोंठ, मिरच, पीपल और राई इनका चूर्णकर अदरसक मिलायके कुल्ले करे तो कफदोष दूरहोय ॥

कफतथारक्तपित्तपर गंडूप ।

त्रिफलामधुगंडूपः कफासृक्पित्तनाशनः ॥

अर्थ-त्रिफलेका चूर्ण सहतमें सानके उसके कुल्ले करे तो कफ और रक्त पित्त नष्टहो ॥

मुखपाकपरगंडूष ॥

दार्वी गुडूची त्रिफला द्राक्षा जात्याश्च पल्लवाः ।

यवासश्चेति तत्काथःपष्टांशःक्षौद्रसंयुतः ॥

शीतो सुखे धृतो हन्यान्मुखपाकं त्रिदोषजम् ॥

अर्थ-दारुहलदा, गिलोय, त्रिफला, दाख, चमेलीके पत्ते, जवासा इन औषधोंको समान भाग ले काढा करे तथा काढेका छटाभाग सहत मिलाय काढेको शीतल करके कुल्ले करेतो त्रिदोषजन्य मुखके छाले दूरहोवे ॥

यस्यौषधस्य गंडूपस्तथैव प्रतिसारणम् ।

कवलश्चापि तस्यैव ज्ञेयोऽत्रकुशलैर्नरैः ॥

अर्थ-जिन औषधोंका गंडूप उसीका प्रतिसारण करना तथा कवलभी उन्हीं औषधोंका होता है ऐसा कुशलवैद्योंको जानना चाहिये ॥

कवलकाप्रकार ।

केशरं मातुलिङ्गस्य सैधवं व्योपसंयुतम् ।

हन्यात्कवलतो जाड्यमरुचि कफवातजाम् ॥

अर्थ-विजैरेकी केशर, सैधानिमक तथा सोंठ, मिरच, पीपल इन औषधोंको एकत्र कर इनका कल्ककर कवल करेतो मुखकी जडता तथा कफवातकी अरुचि रोग दूरहोवे ॥

प्रतिसारणकाभेद ।

कल्कोऽवलेहश्चूर्णं च त्रिविधप्रतिसारणम् ।

अंगुल्यग्रगृहीतं च यथास्वं मुखरोगिणाम् ॥

अर्थ-कल्क, अवलेह और चूर्ण इन भेदोंसे प्रतिसारण तीन प्रकारका है । इनमें मनुष्यको जैसी दोषकी तारतम्यताहो उसके सदृश उंगलीके अग्र-भागसे लेकर जीभमें लगा और संपूर्ण मुखको रगडे ॥

प्रतिसारणचूर्ण ।

कुपुं दार्विसमंगा च पाठा तिका च पीतिका ।

तेजनी मुस्तलोध्रं च चूर्णं स्यात्प्रतिसारणम् ॥

**रक्तस्रुतिं दंतपीडां शोथं दाहं च नाशयेत् ॥**

अर्थ—कूट, दारुहलदी, धायके फूल, पाठ, कुटकी, हलदी, तेजवल, नगरमोया और लोष ये नौ औषधोंका चूर्ण करके जीभ तथा सब मुखमें उंगलीके अग्रभागसे लेकर रगड़े, तो दांतोंके मसूढ़ोंसे जो रुधिर गिरे वह, दांतोंकी पीडा, सूजन, दाह ये संपूर्णरोग दूर होवे । इस चूर्णको प्रतिसारण ( मंजन ) कहते हैं ॥

गंडूपादिकोंकेहीनयोगहोनेकेलक्षण ।

**हीनयोगात्कफोत्क्रेशो रसाज्ञानाऽरुची तथा ।**

**अतियोगान्मुखे पाकः शोपस्तृष्णा क्रमो भवेत् ॥**

अर्थ—गंडूपादिका हीनयोग होनेसे कफकी आधिक्यता होतीहै। तथा मधुरादिक रसोंका यथार्थ स्वाद मालूम नहींहो। तथा अन्नादिकमें अरुचि होय। तथा गंडूपादिका अतियोग होनेसे । मुखपाकके समान मुख उपह आवे तथा शोष और प्यास ये लक्षण होतेहैं ॥

शुद्धगंडूपकेलक्षण ।

**व्याधेरपचयस्तुष्टिर्विशद्यं वक्रलाघवम् ।**

**इंद्रियाणां प्रसादश्च गंडूपे शुद्धिलक्षणम् ॥**

अर्थ—गंडूपादिकका उत्तमयोग होनेसे मुखसंबन्धी व्याधिका नाश अंतःकरणमें संतोष, मुखमें निर्मलता और हलकापना तथा रसनादि इंद्रियोंमें प्रसन्नता ये लक्षण होतेहैं । ये शुद्धगंडूप होनेके लक्षण जानने ॥

इतिगंडूपादिविधिः समाप्तः ।

**अथनेत्ररोगचिकित्साविधिः ।**

नेत्रअच्छेहोनेकेउपचार ।

**सेक आश्रोतनं पिंडी विडालस्तर्पणं तथा ।**

**पुटपाकोजनं चैभिः कल्कैर्नेत्रमुपाचरेत् ॥**

अर्थ—सेक, आश्रोतन, पिंडी, विडाल, तर्पण, पुटपाक और अंजन ये सातप्रकार नेत्ररोगमें कहेहैं इनका कल्क करके जिस प्रकार नेत्ररोगमें उपचार करनेका कहाहै उसप्रकार करना चाहिये ॥

सेककेलक्षण ।

सेकस्तु सूक्ष्मधाराभिः सर्वस्मिन्नयने हितः ।

मीलिताक्षस्य मर्त्यस्य प्रदेहश्चतुरंगुलात् ॥

अर्थ—मनुष्यके नेत्रबंदकर दूध, घी, रस इत्यादिकोका सार, नेत्रपर चार अंगुलके अंतरसे वारोक धार देवे इसे सेक कहतेहैं ॥

सेककेभेद ।

सचापि स्नेहने वाते रक्ते पित्ते च रोपणः ।

लेखनश्च कफे कार्यस्तस्य पात्राऽधुनोच्यते ॥

अर्थ—वातरोगमे स्नेहन सेक करे, रक्तपित्तके कोपमे रोपण सेक करे तथा कफरोगमे लेखन सेक करना चाहिये ॥

सेककीमात्रा ।

षड्वाक्शतैः स्नेहनेषु चतुर्भिश्चैव रोपणे ।

वाक्शतैश्च त्रिभिः कार्यः सेके लेखनकर्मणि ॥

अर्थ—स्नेहनकर्ममें छ सोयाक् होनेपर्यंत नेत्रोंपर तरडा जिस औषधका देना फहा वो देवे। रोपणकर्ममें चारसौ वाक्पर्यंत धार देनी। तथा लेखनकर्ममें तीनसौ वाक्पर्यंत धार देनी चाहिये ॥

सेककर्मकाकाल ।

कार्यस्तु दिवसे सेको रात्रौ चात्ययिके गदे ॥

अर्थ—यदि नेत्रमें सेक करना होयतो दिनहीमें करे, कदाचिद् रोगकी आधिक्यता होयतो रात्रौमें भी करे, ऐसी शास्त्रकी आज्ञाहै ॥

वाताभिष्यंदादिरोगपरसेक ।

एरंडत्वक्पत्रमूलैः शृतमाजं पयो हितम् ।

सुखोष्णं सेचनं नेत्रे वाताभिष्यंदनाशनम् ॥

अर्थ—सुरतीअंडकी छाल, पत्ते, जड इनसबको बफरीके दूधमें ओटायेके फिर सुहातेरगरमदूधकी धार वाताभिष्यंदरोग दूरकरनेके वास्ते नेत्रोंमें देय

तथादूसराक्रम ।

परिपेके हितं नेत्रे पयः कोष्णं ससंधवम् ।

रजनीदारुसिद्धं वा सैंधवेन समन्वितम् ॥

वाताभिष्यंदश्मनंहितं मारुतपर्यये ।

शुष्काक्षिपाके च हितमिदं सेचनकं तथा ॥

अर्थ—बकरीके दूधमें सैंधानिमक डाल गरमकर सहन होय ऐसा गरम २ धार नेत्रोंपर गेरे अथवा हलदी, देवदार, सैंधानिमक इनका चूर्णकर उसको दूधमें डाल गरमकर सुहातार गरम नेत्रोंपर धार देय तो वाताभिष्यंदरोग और वातविषयय तथा शुष्काक्षिपाक ये रोग दूरहोय ॥

पित्त, रक्त और अभिघातपरसेक ।

सावरं मधुकं तुल्यं घृतभृष्टं सुचूर्णितम् ।

छागक्षारे घृतं सेकात् पित्तरक्ताभिघातजित् ॥

अर्थ—पठानीलोध और मुलहटी इन दोनों औषधोंको समान भागले घीमें भून चूर्णकर बकरीके दूधमें डालके उस दूधकी सुहाती गरम २ धार नेत्रोंपर डाले तो पित्तविकार, रक्तविकार और अभिघातजन्य विकार ये सब दूरहोवे ॥

रक्ताभिष्यंद ।

त्रिफलालोध्रयष्टीभिः शर्कराभद्रमुस्तकैः ।

पिष्टैः शीतानुनासेको रक्ताभिष्यंदनाशनः ॥

अर्थ—हरद, बहेडा, आमला, लोध, मुलहटी, खांड, नागरमोथाका भेद, भद्रमोथा ये सब औषध समान भागले शीतल जलमें पीस उसपानीकी नेत्रोंपर धारदेवे तो रक्ताभिष्यंद दूरहोय ॥

तथादूसरा ।

लाक्षामधुकमंजिष्टा लोध्रकालानुसारिवा ।

पुंडरीकयुतः सेको रक्ताभिष्यंदनाशनः ॥

अर्थ—लाख, मुलहटी, मजीठ, लोध, सारिवा और सपेदकमल इन औषधोंको पानीमें पीस उस पानीकी नेत्रोंमें धारदेवे तो रक्ताभिष्यंद ( रुधिरके कोपसे आंख दूखने आईहो ) सो दूरहो ॥

नेत्रशूलमेंसेक ।

श्वेतलोध्रं घृतेभृष्टं चूर्णितं पटविश्रुतम् ।

**उष्णांबुना विमृदितं सेकाच्छूलघ्नमंबके ॥**

अर्थ—पठानी लोधकी घीमें भून कूटकर कपडलानचूर्णकर गरम जलमें पीस उस पानीकी नेत्रोंपर धार डाले तो नेत्रका दरद दूरहो कोई इसकी पोटली बनाय गरमपानीमें भिगोयके नेत्रको सेकतेहैं जिस्से नेत्रपीडा जाती रहती है ॥

**आश्रोतनकेलक्षण ।**

**अथ आश्रोतनं कार्यं निशायां न कथंचन ।**

**उन्मीलितेक्षिण दृड्मध्ये बिंदुभिद्वयगुलाद्वितम् ॥**

अर्थ—मनुष्यके नेत्रोंको उघाड नेत्रमें दोअंगुलपर्यंत दूध काठा इत्यादिकी बूंद डाले इसको आश्रोतन कहतेहैं यह आश्रोतनकर्म रात्रिमें न करे ॥

**अथआश्रोतनविधिः ।**

**काथक्षौद्रासवस्नेहविंदूनां यत्तु पातनम् ।**

**यद्वयंगुलोन्मिते नेत्रे प्रोक्तमाश्रोतनं हि तत् ॥**

अर्थ—दूखते नेत्रको दोअंगुल प्रमाण खोलके उसमें काठा, सहत, आसव तथा स्नेह पदार्थ की बूंद डाले उसको आश्रोतन किया कहते हैं ॥

**लेखनादिकआश्रोतनमें कितनी बूंदडाले ।**

**विन्दवोष्टौ लेखनेषु स्नेहने दशविन्दवः । रोपणे द्वा-  
दशप्रोक्तास्ते शीते कोष्णरूपिणः ॥ उष्णे च शीत-  
रूपाः स्युः सर्वत्रैव विनिश्चयः ॥**

अर्थ—लेखनकर्ममें नेत्रमें आठबूंद डाले स्नेहनकर्म होयतो दशविंदु डाले रोपणकर्म होनेसे बारह विंदु डाले वोबूंदशीतल और नेत्रोंको सुहाती २ गरम २ डालनी चाहिये और यदि गरमीके दिन होयतो शीतल २ बूंद डाले ॥

**वातादिकमेंआश्रोतन ।**

**वाते तित्तं तथा स्निग्धं पित्ते मधुरशीतलम् ।**

**तिक्तोष्णरूक्षं च कफे क्रमादाश्रोतनं हितम् ॥**

अर्थ—वादीके रोगमें कट्टू और चिकना ऐसा आश्रोतन करो पित्तरोग होय तो मधुर और शीतल ऐसाकरे । कफरोग होयतो कट्टू गरम, रुख ऐसा आश्रोतन करना चाहिये इसप्रकार आश्रोतनकर्म करना हितकारी है ॥

आश्चोतनकी मात्राकाक्रम ।

आश्चोतनानां सर्वेषां मात्रास्याद्वाक्शतं हितम् ।

निमेषोन्मेषणं पुंसामंगुल्योश्छोटिकाथवा ॥

गुर्वक्षरोच्चारणं वा वाङ्मात्रेयं स्मृताबुधैः ॥

अर्थ—मनुष्यके आँखोंके पलक मूँदना और खुलना अथवा चुटकी बजाना अथवा गुरु ( दीर्घ ) अक्षरका उच्चारण करना इनमें जितनी देरी लगती है उसकाल ( देरी ) को एक वाङ्मात्रा कहते हैं, ऐसी सी वाङ्मात्रा संपूर्ण आश्चोतनोंमें हितकारक जाननी । अर्थात् सौवाक् पर्यंत उक्त औषधोंकी बूंद नेत्रोंमें धारण करनी ॥

वाताभिष्यंदपरआश्चोतन ।

वित्वादिपंचमूलेन बृहत्पेरंडशिष्टभिः ।

काथआश्चोतने कोष्णो वाताभिष्यंदनाशनः ॥

अर्थ—बेलहै आदिमें जिनके ऐसी पांच औषधोंके मूल, कंटेरी, अंड-कीजड़, सहेंजनेके जड़की छाल इन सब औषधोंका काढाकरके जैसा २ सहन होय ऐसी गरम बूंद नेत्रमें डाले, तो वाताभिष्यंद रोग दूरहो ॥

वायुजन्यवातरक्तापित्तजन्यअभिष्यंदपरआश्चोतन ।

अंबुपिष्टैर्निबुपत्रैस्त्वचं लोध्रस्य लेपयेत् ।

प्रतापवह्निनापिष्ट्वा तद्रसो नेत्रपूरणात् ॥

वातोत्थं रक्तपित्तोत्थमभिष्यंदं विनाशयेत् ॥

अर्थ—कडुए नीमके पत्तोंको जलमें पीसके लोध्रकी छाल पर लेपकरे, फिर उस छालकी अग्निमें तपावे पीछे पीसके उसका रस निकाल नेत्रोंमें कुछ गरम २ बूंद डाले तो वातजन्य, रक्तपित्तजन्यअभिष्यंद दूर हो ॥

सर्वअभिष्यंदोंपरआश्चोतन ।

त्रिफलाश्चोतनं नेत्रे सर्वाभिष्यंदनाशनम् ॥

अर्थ—त्रिफलेके काढेकी गरम २ सुहाती बूंद नेत्रोंमें डाले तो सर्व-प्रकारके अभिष्यंद दूरहों ॥

१ बेल, अरनी, टेढ़, पाटल, कभारी ये वित्वादि पंचमूल जानना इसीसे बृहत्पच-मूल कहते हैं ।



रक्तपित्तजन्यअभिप्यंदपरआश्रोतन ।

स्त्रीस्तन्याश्रोतनं नेत्रे रक्तपित्तानिलार्तिजित् ।

क्षीरसर्पिर्घृतं वापि वातरक्तरुजं जयेत् ॥

अर्थ—स्त्रीके दुधके बूंदको नेत्रोंमें डाले तो रक्तपित्त और वायु इनकी पीड़ाको दूरकरे । उसी प्रकार दूधके ऊपरकी मलाई और घी इनकी बूंद अथवा फाये नेत्रोंमें बांधे तो वातरक्त संबंधी पीड़ादूरहो ॥

पिंडिकाकेलक्षण ।

पिंडी कवलिका प्रोक्ता वध्यते पट्टवस्त्रकैः ।

नेत्राभिप्यंदयोग्या सा व्रणेष्वपि निवध्यते ॥

अर्थ—नेत्ररोगनाशक औषधको पीस टिकिया करके नेत्रोंपर धरके कपड़ेकी पट्टीसे उसको बांधदेवे, इसको पिंडी अथवा कवलिका कहते हैं यह पिंडी नेत्राभिप्यंदरोगके योग्य है । तथा घणकेऊपरभी बांधनाकहा है ॥

स्निग्धोष्णा पिंडिका वाते पित्ते सा शीतला मता ।

रूक्षोष्णा श्लेष्मणि प्रोक्ता विधिरुक्ता बुधेरयम् ॥

अर्थ—वातव्याधिपर चिकनी और गरम, पित्तपर शीतल तथा कफपर रूखी और गरम ऐसी पिंडी बांधनेकी विधि कही है ॥

नेत्राभिप्यंदमें शिरोविरेचन ।

अभिप्यंदेऽधिमथे च संजाते श्लेष्मसंभवे ।

स्निग्धस्विन्नोत्तमार्गस्य शिरस्तीक्ष्णैर्विरेचयेत् ॥

अर्थ—कफसंबंधी अभिप्यंद तथा अधिमंथ रोगीके मस्तकमें तेल चुपड़ पसीने निकाले फिर मस्तक शोधन करनेको तीक्ष्ण औषध करके नाकमें नस्य देवे ॥

उपायांतर ।

अधिमंथेषु सर्वेषु ललाटे वेधयेच्छिराम् ।

अज्ञाते सर्वथा मंथे भ्रुवोस्तु परिदाहयेत् ॥

अर्थ—संपूर्ण अधिमंथमें ( नेत्रदूखनेमें ) मस्तककी शिरा घेधे ( फस्त खोले ) तो नेत्रदूखना शांतिहो । यदि सब उपाय करनेपरभी आंख दूखनेसे न रहे तो भ्रुकुटी ( भौंह ) में दाग देवे ॥

वाताभिष्यंदकायत्न ।

वाताभिष्यंदशान्त्यर्थं स्निग्धोष्णा पिंडिका भवेत् ॥

अर्थ-संपूर्ण अभिष्यंदरोगमें नेत्रोंकी पीड़ा दूर करनेको औषध कही है उनकी टिकिया करके बांधा तथा वाताभिष्यंदमें चिकनी और गरम टिकिया बांधनी ॥

वाततथापित्ताभिष्यंदकायत्न ।

एरंडपत्रमूलत्वङ्निर्मिता वातनाशिनी ।

पित्ताभिष्यंदनाशाय धात्रीपिंडी सुखावहा ॥

अर्थ-अंडके पत्ते, छाल, जड़ इन सबको एकत्र पीस टिकिया बनाय वाताभिष्यंद दूर करनेको नेत्रोंपर बांधनी । पित्ताभिष्यंद दूर करनेका आमलोंको पीस टिकिया करके नेत्रोंपर बांधे तो नेत्रपीड़ा दूरहोवे ॥

पित्ताभिष्यंदपरदूसरीपिंडी ।

महानिधफलोद्भूता पिंडी पित्तविनाशिनी ॥

अर्थ-वकायनके फलको पीस टिकिया बनाय पित्ताभिष्यंद रोगवाले-के नेत्रोंपर बांधे तो पीड़ा दूरहो ॥

श्लेष्माभिष्यंदपरपिंडी ।

शिमुपत्रकृतापिंडी श्लेष्माभिष्यंदनाशिनी ।

अर्थ-सहेंजनेके पत्तोंकी टिकिया बनायके बांधे तो कफसे नेत्रदूखना दूर होय ।

कफपित्ताभिष्यंदपरपिंडी ।

निवपत्रकृता पिंडी श्लेष्मपित्तहरा भवेत् ।

त्रिफला पिंडिका प्रोक्ता नाशने श्लेष्मपित्तयोः ॥

अर्थ-नीमके पत्तोंकी टिकिया बनायके रोगीके नेत्रोंपर बांधितो कफपित्ताभिष्यंदकी पीड़ा दूरहो । तथा त्रिफलेकी टिकिया बांधितो कफ-पित्ताभिष्यंद नाशहो ॥

रक्ताभिष्यंदपरपिंडी ।

पिप्पला कांजिकतोयेन घृतभृष्टि च पिंडिका ।

लोध्रःप्रहरति क्षिप्रमभिष्यंदमसृद्धरम् ॥

अर्थ-लोधको कांजीसे पीसके टिकिया बनाय घीमें सेकके नेत्रोंपर बांधे तो रक्ताभिष्यंद ( रुधिरकी दुष्टतासे जो नेत्र दूखनेकी ओत हैं वो ) दूरहो ॥

सूजनऔरखुजलीआदिपरपिंडी ।

शुंठोनिबदलैःपिंडी मुखोष्णा स्वल्पसैंधवा ।

धार्या चक्षुपि संयोगाच्छोथकंदूव्यथापहा ॥

अर्थ-सोंठ और नीमके पत्तोंको पीस उसमें थोड़ा सैंधानिमक डाल टिकिया बनाय गरमकरके नेत्रोंपर बांधि तो नेत्रोंका सूजना नेत्रोंकी खुजलीकी पीड़ाको दूरकरे ॥

विडालककेलक्षण ।

विडालको बहिलेंपो नेत्रपक्ष्मविवर्जितः ।

तस्य मात्रा परिज्ञेया मुखलेपविधानवत् ॥

अर्थ-नेत्रके पलकोंको मूंदके ऊपर सर्वत्र लेप करनेको विडालक कहते हैं । इस लेपकी मात्रा मुखलेपकी विधिके माफिक जाननी, अर्थात् जैसे मुखलेप करनेमें जो मात्रा लेनी लिखी है वही मात्रा इस विडालककी लेवे ॥

सर्वनेचरोगोंमेंलेप ।

यष्टीगैरिकसिंधूत्थदावांताक्ष्यैःसमांशिकैः ।

जलपिष्टैर्वहिलेंपःसर्वनेत्रामयापहः ॥

अर्थ-मुलहृदी, गेरू, सैंधानिमक, दाहहलदी और खपरिया ये पांच औषध बराबरले पानीसे पीस नेत्रोंके बाहर २ लेपकरे तो सर्व अभिष्यंद ( नेत्रोंका दूखना ) दूरहो ॥

तथादूसरालेप ।

रसांजनेन वा लेपःपृथ्वाविश्वदलैरपि । कुमारिका

म्रिपत्रैर्वा दाडिमोपल्लवैरपि ॥ वचा हरिद्रा विश्वैर्वा तथा

नागरगैरिकैः ॥

अर्थ-रसोतको जलसे पीस लेप करे। उसीप्रकार हरड, सोंठ, तमालपत्र इन तीनों औषधोंको जलसे पीस लेपकरे। अथवा घीगुवार और चीतेके पत्तोंको एकत्र जलसे पीस लेपकरे। अथवा अनारके पत्तोंको पीस लेपकरे अथवा वच, हलदी और सोंठ इन तीन औषधोंको जलसे पीस लेपकरे उसीप्रकार सोंठ और गेरू इनको जलमें पीसके नेत्रके बाहरले भागमें चारों तरफ लेप करे तो सर्व प्रकारके नेत्ररोग दूरहो । ये छःलेप पृथक् २ कहे हैं ॥

तथातीसरालेप ।

दग्ध्वाग्नौ सेंधवं लोभ्रं मधूच्छिष्टयुते घृते ।

पिष्टमंजनलेपाभ्यां सद्यो नेत्ररुजापहम् ॥

अर्थ—सैंधानिमक और लोध इन दोनों औषधोंको अग्निमें भून मोम और घी एकत्र कर उसमें वो औषध पीसके नेत्रोंमें अंजन करे और पूर्वोक्त औषधोका नेत्रके बाहर लेपकरे तो नेत्रसंबंधी पीड़ा तत्काल दूरहोय चतुर्थलेप ।

लोहस्य पात्रे सेंघृष्टो रसो निंबुफलोद्भवः ।

किंचिद्वनो वहिलेपात्रेत्रवाधा व्यपोहति ॥

अर्थ—लोहेके पात्रमें नींबूके रसको छोटे जब गाढा होजावे तब नेत्रके वहिर्भागमें लेप करे तो नेत्रसंबंधी सर्वपीड़ा दूरहो ॥

अर्मरोगपरलेप ।

संचूर्ण्य मरिचं केशराजं स्वरसमर्दनात् ।

लेपनादर्मणानाशंकरोत्येपप्रयोगराट् ॥

अर्थ—काली मिरचोंको भांगरेके रसमें पीसके नेत्रोंपर लेप करे, तो शुक्लार्म और अधिमांसार्म इत्यादिक नेत्ररोगोंमें जो अर्मरोग है वो दूरहो

अंजननामिकापरप्रतिसारण ।

स्वित्रां भित्वा विनिष्पीड्य भिन्नामंजननामिकाम् ॥

शिलैकानतसिंधूत्यैःसक्षौद्रैःप्रतिसारणम् ॥

अर्थ—नेत्रोंकी-पलकोंमें अंजननामिका नामकी फुसी होतीहै उसको आजनी पहतेहै, उस फुसीका वफारेसे पसीने निकालके चीरडाले फिर उसका मवाद निकाल पश्चात् मनसिल, इलायची, तगर, सैंधानिमक इन चार दवाइयोंका चूर्णकर सहतमें मिलाय उस फुसीमें प्रतिसारण करे अर्थात् ये औषध उस फुसीपर चुपढदेवे तो आजनी फुसी दूरहो ॥

नेत्ररोगमेंतर्पण ।

अथ तर्पणकं वच्मि नेत्रनृत्तिकरं परम् । यद्रक्षं परिशुष्कं

च नेत्रं कुटिलमाविलम् ॥ शीर्णपक्ष्मशिरोत्पातकृच्छ्रो-

न्मीलनसंयुतम् । तिमिरार्जुनशुक्राद्यैरभिष्यंदाधिमंथ-

कैः ॥ शुक्राक्षिपाकशोथाभ्यां युक्तं वातविपर्ययैः । तन्ने-  
त्रतर्पणे योज्यं नेत्रकर्मविशारदैः ॥

अर्थ-नेत्रमें तृप्तिकरता ऐसा तर्पण कहते हैं; जिन नेत्रोंमें सूखापना, शुष्कता, टेढ़ापना और गदलाहटपना है ऐसे नेत्र तथा जिसके पलकोंके बाल गिर गएहो, शिरोधात, कृच्छ्रोन्मीलन, ( कठिनसेनेत्रमुंदे ) तिमिर, अर्जुन, शुक्र, ( मोतियाबिंद ) अभिष्यंद, अधिमंथ, शुक्राक्षिपाक, सूजन और वातविपर्यय इन रोगसे व्याप्त नेत्ररोगीके तर्पण करे अर्थात् तृप्ति करता औषधीकी योजना करे ॥

हीनाधिकतर्पणमंडपचार ।

पूर्णं चापांगतःस्नेहं स्नावयित्वाक्षिशोधयेत् ।

स्विन्नेन यवपिष्टेन स्नेहवीर्यरितं ततः ॥

यथास्वं धूमपानेन कफमस्य विरेचयेत् ।

एकाहं वा त्र्यहं वापि पंचाहं तर्पणं चरेत् ॥

अर्थ-नेत्र पूर्णहोनेके पश्चात् अपांग ( नेत्रकोण ) के द्वारा स्नेह बाहर निकालके नेत्रका शोधन करे । फिर स्नेहवीर्यसे दुष्टनेत्रोंका जीके चून्को भिगी वाफदेकर अर्थात् कुछ गरम करके नेत्रोंके ऊपर बांधे अथवा धूमपान करके उसके कफको निकाले, इस प्रकार एक अथवा तीन अथवा पांचदिन तर्पण करे ।

तर्पणकानिषेध ।

दुर्दिनात्युष्णशीतेषु चिंतायासभ्रमेपुच ।

अशांतोपद्रवे चाक्षिण तर्पणं न प्रशस्यते ॥

अर्थ-जिसदिन आकाश बदलोंसे घिरा हुआहो, अत्यंत शरदी या गरमीहो, शरीरमें चिंताहो, परिश्रम और भ्रम ये उपद्रव होनेसे तथा नेत्रसंबंधी शूलादिक उपद्रव शांत न हुए होवे तो तर्पण न करे ॥

तर्पणका विधान ।

वातातपरजोहानि देशे चोत्तानशायिनः । आधारीमाप-

चूर्णेन कृन्नेन परिमंडलौ ॥ समौ दृढावसंवाधौ कर्तव्यौ

नेत्रकोशयोः । पूरयेद्दधृतमंडेन विलोनेन सुखोदकैः ॥

अथवा शतधौतेन सर्पिषा क्षीरजेन वा । निमग्ना-

न्यक्षिपक्ष्माणि यावत्स्युस्तावदेव हि ॥ पुरयेन्मीलिते  
नेत्रे तत उन्मीलयेच्छनैः ॥

अर्थ—पवन, घूप, घूल ये जिसजगे न हो उसस्थानमें मनुष्यको चित्त सुलायके नेत्र कीशोंमें भीगे उडदोंके चूनका गोल धामलासा बनावे फिर नेत्रोंको बंदकर उनके ऊपर पतला घी अथवा मंड (पेया) अथवा गरम जल अथवा सौवारका धुला हुआ घी अथवा दूध येपदार्थ जबतकनेत्रोंके पलककी चरुनी न दूबे तबतक नेत्रोंमें डाले, फिर धीरे-धीरे नेत्रोंको उघाड़े, इसप्रकार करने को तर्पण कहते हैं इससे नेत्र ठसहंते हैं ॥

तर्पणकी मात्राका प्रमाण ।

धारयेद्वर्त्मरोगेषु वाङ्मात्राणां शतं बुधाः । स्वच्छे कफे  
संधिरोगे मात्रा पंचशतं हितम् ॥ शुक्ले च पट्शतं कृष्ण-  
रोगे सप्तशतं मतम् । दृष्टरोगेष्वष्टशतमधिमंथे सद्वस्त्र-  
कम् । सहस्रं वातरोगेषु धार्यमेवंहि तर्पणम् ॥

अर्थ—नेत्रसंबंधी पलकोंके रोगमें १०० सौ वाङ्मात्र तर्पणरूप औषधको नेत्रोंमें धारण करे, केवल कफका रोग होय अथवा नेत्रकी संधिगत रोग होनेसे ५०० पांचसौ वाङ्पर्यंत, नेत्रके सपेद भागमें रोग होनेसे ६०० छः सौ तथा काले भागमें रोग होनेसे ७०० सातसौ दृष्टिरोग होयतो ८०० आठसौ। अधिमंथ रोग होयतो १००० एक हजार। वातका रोग होयतो १००० एक हजार वाङ्मात्र होने पर्यंत औषधको नेत्रोंपर धारण करे । इसप्रकार तर्पणके धारण का प्रमाण कहा ॥

तर्पणसे स्नेहके अधिकयोगद्वारा कफाधिक्य होनेका उपाय ।

स्विन्नेन यवपिष्टेन स्नेहवीर्यैरितं ततः ।

यथास्वं धूमपानेन कफमस्य विशोधयेत् ॥

अर्थ—तर्पणके स्नेहवीर्य करके उत्पन्न हुआ जो कफ (नेत्रोंमें कीचड़) उसको भीगे जौओंको पीस उससे तथा धूमपान करके शोधन करना चाहिये ॥

तर्पणकी मर्यादा ।

एकाहं वा त्र्यहं वापि पंचाहं चेप्यते परम् ॥

अर्थ—नेत्रमें तर्पण प्रयोग करना होयतो एकदिन अथवा तीनदिन अथवा पांचदिन पर्यंत करे, यह उत्कृष्ट प्रमाण जानना ॥

तर्पणकरकेतुतकेलक्षण ।

तर्पणे तृप्तिर्लिंगानि नेत्रस्येमानि भावयेत् । सुखस्वप्ना  
वबोधत्वदैशद्यं वर्णपाटवम् । निवृत्तिर्व्याधिशांतिश्च क्रिया-  
लाघवमेव च ॥

अर्थ-सुखपूर्वक निद्रा आवे, सुखपूर्वक जागे, नेत्रोंमें निर्मलता होय, नेत्रोंकी  
कांति उत्तम होय, नजर साफ होवे, रोगका नाश होय और नेत्रोंके खोलने मूँद-  
नेमें हलकापना आवे ये लक्षण तर्पण करके नेत्रतृप्त हुए प्राणीके होते हैं ॥

तर्पणअत्यंतहोनेकेलक्षण ।

गुर्वाविलमतिस्निग्धमश्रुकंदूपदेहवत् ।

घर्पतोदयुतं नेत्रमतितर्पितमादिशेत् ॥

अर्थ-भारी, गदले, अतिचिकने, आँसू, खजली, कीचड़से चिकटे हुए,  
घर्पण, पीड़ा ये लक्षण अतितर्पित नेत्रवाले प्राणीके जानने ॥

हीनतर्पणकेलक्षण ।

आस्त्रावशोफरागाढ्यमुपदेहसमाकुलम् ।

रूक्षमस्त्राविलं रुग्णं नेत्रं स्याद्धीनतर्पितम् ॥

अर्थ-पानी गिरना, रूजन, लाली, चिकटे हुए, रुखे, रक्त, गदले और  
पीड़ायुक्त ये लक्षण जिसके नेत्रोंमें होय रसकी हीनतर्पित जानना ।  
अर्थात् ठीक तर्पण नहीं हुआ ॥

तर्पणसेहीनाधिक्यस्निग्धकायत्न ।

अनयोर्दोषबाहुल्यात्प्रयतेत चिकित्सिते ।

रूक्षस्निग्धोपचाराभ्यामेतयोः स्यात्प्रतिक्रिया ॥

अर्थ-अधिकतृप्त और हीनतृप्त हुए रोगी वैद्य रूक्ष स्निग्ध उपचार करके  
चिकित्साकरे अर्थात् अधिकतृप्तकी रूक्ष और हीन तृप्तकी स्निग्ध चिकित्सा  
करनी चाहिये ॥

पुटपाक ।

अतर्लुर्ध्वप्रवक्ष्यामि पुटपाकस्य साधनमादौ विल्वमात्रे

मांसस्य पिंडौ स्निग्धौ सुपेपितौ ॥ द्रव्याणां विल्वमात्रं  
तु द्रवाणां कुडवो मतः । तदेकस्थं समालोडय पत्रैः  
सुपरिवेष्टितम् ॥ पुटपाकेन तत्पक्त्वागृहीयात्तद्रसंबुधः ।  
तर्पणोक्तविधानेन यथावदुपचारयेत् ॥

अर्थ-अब इसके उपरांत हम पुटपाक साधन (बनाना) कहेंगे, हरिणादि-  
कोंका मांस दो विल्व लेके उसको घृतादि स्नेह पदार्थमें मिलाय बारीक  
पीसे, तथा सूखी ओषध जो कही है वो एक विल्व प्रमाण ले तथा सहत, पानी  
इत्यादिक द्रवपदार्थ एक कुडव प्रमाण ले, इस सबको उस पूर्वोक्त मांसमें  
मिलायके गोला बनावे, फिर जामुन अथवा आम इत्यादिके पत्ते उस  
गोलेके चारों तरफ लपेट देवे फिर उसपर मिट्टीका लेप करे, पश्चात् पुट-  
पाककी रीतिसे गोला को अभिमें भूनके बाहर निकाले मिट्टी पत्ते दूरकर  
उस गोलेको निचोड़ कर रस निकाल लेवे, इस रसको तर्पणकी विधिसे  
ऊपर कहे प्रमाण नेत्रोंमें डाले तो यह सर्वनेत्र विकारोंको दूरकरे ॥

पुटपाकसंबंधीरसनेत्रमेंडालनेकीविधि ।

दृष्टिमध्ये निपेच्यः स्यान्नित्यमुत्तानशायिनः ।

स्नेहनो लेखनश्चैव रोपणश्चेति सत्रिधा ॥

अर्थ-वह पुटपाक संबंधी रस स्नेहन, लेखन और रोपण इन भेदोंक-  
रके तीन प्रकारका है । इस मनुष्यको सीधा चित्त लिटायकर नेत्रोंमें  
दृष्टिके मध्यभागमें नित्य डालना चाहिये ॥

स्नेहनादिभेदसेपुटपाककीयोजना ।

हितः स्निग्धोतिरूक्षस्य स्निग्धस्यापिहि लेखनः ।

दृष्टेर्वलार्थमितरः पित्तासृक्व्रणवातनुत् ॥

अर्थ-रूखे नेत्रवालेको स्निग्धपुटपाक, स्निग्ध नेत्रवालेको लेखनपुट-  
पाक तथा दृष्टिमें बल आनेके वास्ते रोपणपुटपाक की योजना करे वो  
पुटपाक नेत्रसंबंधी दृष्टदृष्ट जे पित्त रक्त व्रण और वायु इनको दूरकरे  
इस पुटपाककी विधि आगेके श्लोकमें कहते हैं ॥

स्नेहपुटपाक ।

सर्पिर्मांसवसामज्जामेदस्वाद्वोषधैः कृतः ।



**स्नेहनः पुटपाकस्तु धार्यो द्वेवाकशते दशोः ॥**

अर्थ—घी, हरिणादिकोंके मांस, मज्जा और मदये सब घीमें मिलाय के पीसे और कांकोल्यादि गणकी औषधोंका चूर्ण कर उस मांसादिकमें मिलाय देवे फिर एक गोला बनाय जाय, आम इत्यादिकोंके पत्तोंमें लपेट मिट्टी चढाय पुटपाककी विधिसे अग्नि देवे फिर उस गोलेको अग्निसे निकाल मिट्टी और पत्ते दूरकरके निचोड रस निकाल लेवे, इस रसको नेत्रोंमें डाले और २०० चाड् मात्र पर्यंत धारणकरे । इसको स्नेहन-पुटपाक कहते हैं आगे लेखनपुटपाक कहते हैं ॥

**लेखनपुटपाक ।**

**जांगलानां यकृन्मांसैर्लेखनद्रव्यसंयुतेः ।**

**कृष्णलोहरजस्ताम्रशंखविट्पुमसिधुजैः ॥**

**समुद्रफेनकासीसस्रोतोजलधिमस्तुभिः ।**

**लेखने वाकशतं धार्यस्तस्य तावद्विधारणम् ॥**

अर्थ—हरिणादिक जंगली जीवोंका मांस, लोहचूर्ण ( ताम्रचूर्ण ) शंख, मृंगा, सैधानिमक, समुद्रफेन, कसीस, सुरमा और बकरीके दहीकी छाँछ डालके पीस गोला करे, उसको पूर्वोक्त पुटपाककी विधिसे पचाय रस निकाल नेत्रोंमें डाले और सौ १०० मात्रा होनेपर्यंत धारणकरे इसको लेखनपुटपाक कहते हैं ॥

**रोपणपुटपाक ।**

**स्तन्यजांगलमध्वाज्यतित्तकद्रव्यपाचितः । लेखनाग्नि**

**गुणो धार्यः पुटपाकस्तु रोपणः ॥ वितरेत्तर्पणोक्तांतु**

**क्रियां व्यापत्तिदर्शने ॥**

अर्थ—स्त्रीका दूध, हरिणादिक जंगली जीवोंका मांस, सहत और घी, कुटकी ये सब उसमांसमें मिलाय पीसके गोला करे, उसको पूर्वोक्त पुटपाककी विधिसे परिपक कर बाहरनिकाले तथा मिट्टी और पत्ते दूरकरके निचोड रस निकालले इसको नेत्रोंमें डाल तीन सौ ३०० बारपर्यंत धारणकरे, इसको रोपणपुटपाक कहते हैं । यदि पुटपाकके आधिक्य अथवा न्यूनताके कारण भारीपना तथा निस्तेजता आदि उपद्रव होवे तो तर्पणमें जैसी क्रिया कहायों है उसके भाषिक यत्न करना चाहिये ॥

दोषपक्वहोनेसेअंजनऔरअंजनकासाधारणविधान ।

अथ संपक्वदोषस्य प्राप्तमंजनमाचरेत् । हेमन्ते शिशिरे  
चैव मध्याह्नेजनमिष्यते ॥ पूर्वाह्णे चापराह्णेच ग्रीष्मे  
शरदिचेप्यते । वर्षासु नाभ्रे नात्युष्णे वसन्तेचसदैवहि ।

अर्थ—जिसके दोष परिपक्व हो उसप्राणीके अंजन लगाना होय तो  
पांचदिनके पश्चात् लगावे, अंजनकी साधारणविधि—हेमन्तऋतु और  
शिशिरऋतु इनमें दोपहर दिनचढ़े अंजन लगावे, ग्रीष्मऋतु और शर-  
दूऋतु इनमें प्रातःकाल अथवा सायंकालमें अंजन लगावे, वर्षामें और  
अत्यंत गरमीमें अंजन न लगावे । एवं वसन्त ऋतुमें सबकालमें अंजन  
( अंजना ) उत्तम है ॥

अंजनकेभेद ।

लेखनं रोपणं चैव तथा तत्स्नेहनांजनम् । लेखनं क्षार  
तीक्ष्णाम्लरसैरंजनमिष्यते ॥ कपायतिक्तरसयुक् स्नेह  
हं रोपणं मतम् । मधुरस्नेहसंपन्नमंजनं च प्रसादनम् ॥

अर्थ—लेखन, रोपण और स्नेहन इनभेदोंसे अंजन तीन प्रकारकाहै ।  
तिनमें खार, तीक्ष्ण और खट्टा ये रस जिस अंजनमें है उसको लेख-  
नांजन कहतेहैं तथा कपेला, कटुआ ये दो रस फरके युक्त जो अंजन  
है तथा स्नेहयुक्तहो उसको रोपणांजन कहते है और जो मधुररस-  
संपन्न तथा स्नेहयुक्त हो उसको स्नेहनांजन जानना ॥

अंजनकेगुटिकादितीनभेद ।

गुटिका रसचूर्णानि त्रिविधान्यंजनानि च ।

कुर्याच्छलाकयांगुल्या हीनानि च यथोत्तरम् ॥

अर्थ—गोली, रस और चूर्ण इन भेदोंसे अंजन तीन प्रकारका है ।  
इन अंजनोंमें गुटिकांजनकी अपेक्षा रसगुणवाला न्यून है और रसरूप  
अंजनकी अपेक्षा चूर्णरूप जो अंजनहै, सो गुणोंमें न्यून है ऐसे उत्तरोत्तर  
गुणोंमें हलके जानने । इन अंजनोंको सलाईसे अथवा टंगली फरके  
नेत्रोंमें लगावे तहां बत्ती चंद्रोदयादिक जाननी, रगड़ा आदि रसांजनहै  
और सुरमा आदि चूर्णांजन जानने चाहिये ॥

अंजनकेअयोग्य ।

श्रान्ते प्ररुदिते भीते पीतमद्ये नवज्वरे ।

अजीर्णे वेगघाते च नांजनं संप्रचक्षते ॥

अर्थ-परिश्रमसे थका, रुदित, डरपाहुआ, मद्य ( दारू ) पानकर बुकाहो, नवीन ज्वरवाला, अजीर्णमें, मलमूत्रकी बाधा रोकनेवाला इतने मनुष्योंके अंजन नहीं लगाना ॥

अंजनमेंबत्तीकाप्रमाण ।

हरेणुमात्रां कुर्वीत वार्तितीक्ष्णांजने भिषक् ।

प्रमाणं मध्यमेऽध्यर्धे द्विगुणं तु मृदौ भवेत् ॥

अर्थ-तीक्ष्ण अंजनमें हरेणुबीज ( मटर ) के समान गोली लंबी बत्तीके समान बनावे, अर्थात् मटरके समान उसका मुटापा होय । उसीप्रकार मध्यम अंजनमें मटरसे डबोदी बत्ती बनावे तथा मृदु अंजनमें हरेणुबीज ( मटर ) दोफी बराबर अर्थात् दुनी गोल बत्ती बनावे ॥

अंजनमेंरसकाप्रमाण ।

रसक्रिया तृत्तमा स्यान्निविडंगमिताहिता ।

मध्यमा द्विविडंगं स्याद्धीनात्वेकविडंगकम् ॥

अर्थ-द्रवरूप अंजनकी मात्रा तीन वायविडंगके समान नेत्रोंमें सलाईसे लगावे यह उत्तम रसक्रिया है । दो वायविडंगके प्रमाण लगाना मध्यम रसक्रिया जाननी और एक वायविडंगके बराबर मात्रा कनिष्ठ अर्थात् छोटी है ॥

विरचनअंजनमेंचूर्णकाप्रमाण ।

विरचनिकचूर्णं तद्विशलाके विधीयते ।

मृदौ तु त्रिशलाकं स्याच्चतस्रःसैदिकेजने ॥

अर्थ-विरचनिक चूर्णको सलाईमें दोबार लगाय दोबार नेत्रोंमें फेरके निकाल लेय । मृदु अंजनमें औषधका चूर्ण तीनबार सलाईमें लगावे और तीनबार नेत्रोंमें फेरके निकाल लेय । तथा घृतआदि जो स्नेहपदार्थ तिनफेरके युक्त जो अंजनहै उनको सलाईमें चारबार लगावे और चारबारही नेत्रोंमें फेरके निकाल लेय यह अंजन लगानेका प्रमाण कहा है ॥

१ गिप्त अंजनके लगानेसे नेत्रोंसे अपिक् शानी गिरे उसको विरेचनिक कृष्ण कहते हैं ।

सलाई बनानेकी युक्ति ।

मुखयोःकुंठिता श्लक्ष्णा शलाकाष्टांगुलोन्मिता ।

अश्मजाधातुजा वा स्यात्कलायपरिमंडला ॥

अर्थ—अब सलाईके लक्षण कहते हैं कि, जो पापाणकी अथवा सुवर्णादि धातुओंकी सलाई आठ अंगुलकी बनावे उसके दोनों आगेके भाग गोलकरे तथा उसको बहुत पतली न करे तथा मटरके दानेके समान सुंदर गोल बनावे ॥

लेखनादिमें शलाईका प्रमाण ।

ताम्रलोहाश्मसंजाता शलाका लेखने मता ।

सुवर्णरजतोद्भूता शलाका स्नेहने मता ॥

अंगुली च मृदुत्वेन कथिता रोपणे बुधैः ॥

अर्थ—लेखन अंजनमें ताँबेकी अथवा लोहकी वा पत्थरकी सलाई लेनी, स्नेहांजनमें सोनेकी अथवा चाँदीकी शलाईले, उंगलीमें मृदु ( नरम ) ताँह अतएव रोपण अंजनमें उंगलियोंसे नेत्रोंमें अंजन आंजना चाहिये, सलाईसे नहीं ॥

अंजनमें समयका निश्चय ।

सायंप्रातर्वीजनं स्यात्तत्सदा नैव कारयेत् ।

नातिशीतोष्णवाताभ्रवेलायां संप्रशस्यते ॥

कृष्णभागादधःकुर्यादपांगं यावदंजनम् ॥

अर्थ—सायंकाल और प्रातःकालमें अंजन लगावे, सर्वकालमें अंजन नहीं लगाना । अत्यंत शरदी, अत्यंत गरमी, अत्यंत हवा तथा जिसदिन आकाश बादलोंसे घिरा हो इनमें अंजन नहीं करना । नेत्रोंके काले भागके नीचे अर्थात् सपेद भागमें अंजन करना चाहिये ॥

चन्द्रोदयवर्त्ती ।

शंखनाभिर्विभीतस्य मज्जापथ्यामनःशिला । पिप्पली  
मरिचं कुष्ठं वचाचेति समांशकम् ॥ छागीक्षारोपण संपि-  
प्य वर्त्ति कुर्याद्यवोन्मिताम् । हरेणुमात्रां संपृण्यजलैः  
कुर्यादथांजनम् ॥ तिमिरं मांसवृद्धिं च कालं पटलम-  
र्चुदम् । रात्र्यधं वार्षिकं पुष्पं वर्त्तिश्चन्द्रोदया जयेत् ॥

अर्थ-शंखकीनाभि, बहेडेके फलके भीतरकी मिगी, हरड, मनसिल, पीपर, कालीमिरच, कूट, वचये औपध समान भागले बकरीके दूधमें वारीक पीस जाँके बराबर गोल बत्तीके सदृश बनावे । इसको चंदोदयावर्ती कहते हैं । फिर इस गोलीमेंसे छोटी मटरके प्रमाण जलमें घिसके अंजन करे तो तिमिर, मांसवृद्धि, काँचांबुदु, पटलगतरोग, अर्बुद, रतांध तथा एकवर्षका फूला ये संपूर्णरोग दूरहो ॥

फूलाछरइत्यादिकरोगोंपरलेखनीवर्ती ।

पलाशपुष्पस्वरसैर्बहुशःपरिभाविता ।

करंजबीजवर्तिस्तु शुक्रादीश्छस्त्रवल्लिखेत् ॥

अर्थ-कंजके बीजोंका चूर्ण करके मुलाके फूलोंके स्वरसकी अनेक भावना देकर वारीककर बत्तीके समान लंबी गोली बनावे फिर इस गोलीको पानीमें पीस नेत्रोंमें लगावे तो शुक्र कहिये फूलेको, मांसवृद्धि, छर इत्यादि सकलरोगोंको शस्त्रसे काटनेके समान दूरकरे ॥

दूसरीविधि ।

समुद्रफेनसिंधूत्थशंखदक्षाडवल्कलेः ।

शिमुबीजयुतैर्वर्तिःशुक्रादीश्छस्त्रवल्लिखेत् ॥

अर्थ-समुद्रफेन, सैधानिमक, शंख, मुरगोंके अंडेके ऊपरकी सपेदी, सहें-जनेकें बीज इन पांच औषधोंको बराबरले पानीमें पीस बत्तीके समान लंबी गोली बनावे । इसको जलमें घिसके नेत्रोंमें अंजन करे तो फूला, छह इत्यादिक रोगोंको शस्त्रसे काटनेके समान दूरकरेहै ॥

लेखनीदंतवर्ती ।

दंतेर्दतिवराहोष्णोदयाजखरोद्भवैः ॥

शंखमुक्तांभोधिफेनयुतैःसर्वैर्विचूर्णितैः ।

दंतवर्तिःकृताश्लक्ष्णा शुक्राणां नाशिनीपरा ॥

अर्थ-हाथी, सुअर, बैल, घोडा, बकरा और गधा इनके दांत, शंख, मोती और समुद्रफेन इन सबका चूर्णकर पानीमें वारीक पीस बत्तीके समान लंबी गोली बनावे । इस गोलीको दंतवर्ती कहते हैं । इसको जलसे घिसके अंजन करे तो फूला दूरहोय और अनेकनेत्रके विकारोंको दूरकरेहै ॥

तद्रानाशकलेखनवर्त्ती ।

नीलोत्पलं शिथुर्बाजनागकेशरकं तथा ।

एतत्कलकैः कृतावर्तिरतितन्द्रां विनाशयेत् ॥

अर्थ—नीलाकमल, सहेंजनेके बीज, नागकेशर इन तीनोंको समान ले पानीसे पीसके लंबी बत्तीके आकार गोली बनावे इसको जलमें पिसके लगाये तो तन्द्राको दूर करे है ॥

रोपणीकुसुमितावर्त्ती ।

तिलपुष्पाण्यशीतिः स्युः पष्टिसंख्याकणाकणाः । जाती

कुसुमपंचाशन्मरिचानि च षोडश ॥ सूक्ष्मं पिष्ट्वा जले

वर्त्तिः कृताकुसुमिकाभिधा । तिमिरार्जुनशुक्राणां

नाशनी मांसवृद्धिहृत् ॥ एतस्याश्वांजनेमात्रा प्रोक्तासार्ध

हरेणुका ॥

अर्थ—तिलके फूल ८०, पीपलके भीतरके दाने ६०, चमेलीके फूल ५०, कालीमिरच १६ इन सबका चूर्णकर पानीसे पीस बत्तीके समान गोली बनावे इसको कुसुमिकावर्त्ती कहते है यह गोली डेढ मटरके समान जलमें पीसके नेत्रोंमें अंजन करे तो तिमिर, अर्जुन, फूला और मांसवृद्धि ये रोग दूरहोय ॥

नक्ताध्यनाशिनीवर्त्ती ।

रसांजनं हरिद्रेद्रे मालतीनिवपल्लवाः ।

गोशकृद्रससंयुक्ता वर्तिर्नक्ताध्यनाशिनी ॥

अर्थ—रसोत, हलदी, दारुहलदी, चमेलीके पत्ते, नाँवके पत्ते ये पाँच वस्तु समान लेके गौके गोबरके रसमें चारीक पीस गोली बनावे, जलमें पिसके नेत्रोंमें अंजन करे तो रतोष ( जिसको रातमें न दीखे वह रोग ) दूरहोये ॥

नेत्रस्त्रावनाशकवर्त्ती ।

धात्र्यक्षपथ्यार्धजानि एकद्वित्रिगुणानि च ।

पिष्ट्वा वर्त्ति जलेः कुर्यादंजनं द्विहरेणुकम् ॥

नेत्रस्त्रावं हरत्याशु वातरक्तरुजंतथा ॥

अर्थ—आपलेके भीतरका धीज १ भाग, बहेडेके भीतरकी मिर्गी २ भाग,

हरडके भीतरकी मिमी २ भाग, सब बीजोंको एकत्र कर पानीसे बारीक पीस बत्तीके समान लंबी गोली बनावे, फिर उस गोलीमेंसे दो रेणुकाबीजकी बराबर पानीमें घिसके अंजन करे तो नेत्रोंसे जलका स्राव होनेको तत्काल दूरकरे तथा वातरक्त संबंधी पीडा दूरहोवे ॥

रसक्रिया ।

तुत्थमाक्षिकसिंधूत्थसिताशंखमनःशिलाः । गैरिको  
दधिफेनं च मरिचं चेति चूर्णयेत् ॥ संयोज्य मधुना कु-  
र्यादंजनार्थं रसक्रियाम् । वर्त्मरोगार्मतिमिरकाचशु-  
क्रहरांपराम् ॥

अर्थ—नीलाथोथा, सुवर्णमाक्षिक, सेंधानिमक, मिश्री, शंख, मनसिल, गेरू, समुद्रफेन और कालीमिरच इन सबको, समान भागले बारीक चूर्णकर सहतमें मिलाय अंजनकरे तो पलकोंका रोग, अर्मरोग, तिमिर, काँच और शुक्ररोग इनको हरणकरे ॥

फूलादूरहोनेकीरसक्रिया ।

वटक्षीरेण संयुक्तो मुख्यः कपूरजः कणः ।  
क्षिप्रमंजनतो हंति कुसुमं च द्विमासकम् ॥

अर्थ—वडके दूधमें कपूरको घिसके नेत्रोंमें अंजन करे तो दोमहीनेका फूल शीघ्र दूरहो ॥

अतिनिद्रादूरहोनेकोलेखनीरसक्रिया ।

क्षौद्राश्वलालासंघृष्टैर्मरिचैर्नैत्रमंजयेत् ।  
अतिनिद्राशमं याति तमः सूर्योदयादिव ॥

अर्थ—सहत और घोंडेकी लार इन दोनोंको एकत्र कर इसमें कालीमिरच को पीस अंजन करे तो अत्यंत निद्राका आना दूरहो। जैसे सूर्योदय होनेसे अंधकार नष्टहोता है इस प्रकार इस औषधके लगानेसे नींद तत्काल जाती है तंद्रानाशिनीरसक्रिया ।

जातीपुष्पं प्रवालं च मरिचं कटुकी वचा ।  
सैधवं वस्तमूत्रेण पिष्टं तन्द्राघ्नमंजनम् ॥

अर्थ—चमेलीके फूल, मूंगा, कालीमिरच, कुटकी, वच और सेंधानिमक ये औषध समान भागले, बकरेके मूत्रमें पीसके अंजन करे तो तंद्रा दूरहो ॥

सन्निपातमैलेखनीरसक्रिया ।

शिरीषबीजगोमूत्रकृष्णामरिचसैधवैः ।

अंजनं स्यात्प्रबोधाय सरसोनशिलावचैः ॥

अर्थ—सिरसके बीज, पीपल, कालीमिरच, सैधानिमक, लहसन, मनसिल और वच ये सब समानले गोमूत्रमें बारीक पीसके अंजन करे तो संनिपातजन्य संज्ञानष्टताको दूरकर मनुष्यको चैतन्यकरे ॥

तिमिरादिरोगोंमेंरोपणीरसक्रिया ।

शुद्धचीस्वरसैः कर्पःक्षौद्रं स्यान्मापकोन्मितम् सैधवंक्षौद्र-  
तुल्यं स्यात्सर्वमेकत्र मर्दयेत् ॥ अंजयेन्नयनं तेन पिष्टार्म-  
तिमिरं जयेत् । काचं कंदूं लिङ्गनाशं शुक्लकृष्णागतान्  
गदान् ॥

अर्थ—गिलोयका स्वरस—१ कर्पले उसमें सहत और सैधानिमक ये एक २ मासे डालके अच्छी रीतिसे खरलकरे, इसका नेत्रोंमें अंजन करे तो पिष्टार्म, तिमिर, काच, खुजली, लिङ्गनाश, नेत्रोंके सपेदभागमें और काले भागमें होने वाले संपूर्ण नेत्ररोग दूरही ॥

पुनर्नवाके अनुपान ।

दूधेन कंदूं क्षौद्रेण नेत्रस्त्रावं च सर्पिषा ।

पुष्पं तैलेन तिमिरं कांजिकेन निशाधताम् ॥

पुनर्नवाजयेदाशु भास्करस्तिमिरं यथा ।

अर्थ—पुनर्नवा ( सांठकीजड ) को दूधमें पीस नेत्रोंमें अंजन करे तो नेत्रोंकी खुजली दूरही। सहतमें घिसके लगावे तो नेत्रसे पानीका गिरना दूरही । घीमें घिसके लगावे तो फूलाको दूरकरे । तेलमें घिसके लगावे तो तिमिर दूरही। कांजीमें घिसके लगावे तो रत्तांध दूरही। जैसे सूर्य अंधकारको शीघ्र नष्ट करे है इस प्रकार पुनर्नवा अनुपान भेदकरके सर्व रोगोंको दूरकरे किसी ग्रंथमें इसपाठसे कुछ २ फरक लिखा है ॥

नेत्रस्त्रावमेंरोपणीरसक्रिया ।

बबूलदलनिःकाथो लेहीभूतस्तदंजनात् ।

१ घृतेन पुष्पं मधुनाशुपातं तैलेन कांठं तिमिरं जलेन ।

रात्र्यंधतो वा सहकांजिकेन पुनर्नवा नेत्रपुनर्नवाकरी ॥



**नेत्रास्त्रावं जयत्येष मधुयुक्तो न संशयः ॥**

अर्थ—चबूरेके पत्तोंका काथ गाढा होनेपर्यंत औटावे, फिर उसमें थोड़ा सहत डाल नेत्रोंमें अंजनकरे तो नेत्रोंके जल गिरनेको अवश्य दूरकरे ॥

दूसराप्रकार ।

**हिजलस्य फलं घृष्ट्वा पानीये नित्यमंजनात् ।**

**नेत्रास्त्रावं जयत्येष मधुयुक्तो न संशयः ॥**

अर्थ—हिजलके फलको पानीसे पीस सहत डाल नित्य अंजन करे तो नेत्रोंसे पानी गिरना दूरहोवे ॥

नेत्रप्रसादन ।

**कतकस्यफलं घृष्ट्वा मधुना नेत्रमंजयेत् ।**

**ईपत्कर्पूरसहितं स्मृतं नेत्रप्रसादनम् ॥**

अर्थ—निर्मलीके फलको सहतमें घिस और उसमें थोड़ासा कपूर मिलाय नेत्रोंमें लगावे तो नेत्र स्वच्छहो ॥

शिरोत्पातरोगमेंअंजन ।

**सर्पिःक्षौद्रं चांजनं स्याच्छिरोत्पातस्य शान्तये ।**

अर्थ—घी और सहत दोनोंको एकत्र कर इसको नेत्रोंमें अंजन करे तो नेत्र-रोगमें जो शिरोत्पात रोगहै वो दूर होवे ॥

अंधापनदूरहोनेकीरसक्रिया ।

**कृष्णसर्पवसाशंसः कतकाफलमंजनम् ।**

**रसक्रियेयमचिरादंधानां दर्शनप्रदा ॥**

अर्थ—काले सांपकी चर्बी, शंस और निर्मलीके बीज इनको एकत्र चारों क पीस नेत्रोंमें अंजनकरे तो यह रसक्रिया अंधे मनुष्यको शीघ्र दीखनेलगे ऐसा करतीहै ॥

अंजनयोग ।

**दक्षांडत्वक्शिलाकाचैः शंसचंदनगैरिकैः ।**

**द्रवैरंजनयोगोऽयं पुष्पामादिविलेखनः ॥**

अर्थ—मुरगेके अंडेकी सपेदी, मनसिल, सपेद कांच, शंस, सपेद चंदन, गेरू

इन छः वस्तुओंको समानभागले बारीक चूर्ण कर नेत्रोंमें अंजन करे तो फूला और मांसमादिक रोग नष्टहोवे ॥

रतोंधदूरहोनेकोलेखनचूर्णांजन ।

कणा छागयकृन्मध्ये पक्त्वा तद्रसपेपिता ।

अचिराद्भंति नक्तांघ्र्यं तद्रत्सक्षौद्रमूपणम् ॥

अर्थ—बकरेके फलेजेके मांसमें पीपल भरके अंगारोंपर पाक करे, फिर उस मांसका रस निचोड उस रसमें उस पीपलको पीसके नेत्रोंमें अंजन करे तो रतोंध बहुत जल्दी दूरकरे ॥

कंडूकाचादिपरलेखनचूर्णांजन ।

शाणार्द्धं मरिचं द्वौ च पिप्पल्यर्णवफेनयोः ।

शाणार्द्धं सैधवं शाणानवसौवीरकांजनम् ॥

पिष्टं सुसूक्ष्मं चित्रायां चूर्णांजनमिदं शुभम् ।

कंडूकाचकफात्तानां मलानां च विशोधनम् ॥

अर्थ—कालीमिरच आधे शाण, पीपल और रसमुद्रफेन ये दोदो शाण लेवे, सैधानिमक आधे शाण, सुर्मा नौ शाण इन सब औषधोंको जिस-दिन चित्रा नक्षत्रहोय उसदिन उत्तमप्रकार पीसके चूर्णकरे; फिर इस चूर्णका नेत्रोंमें अंजन करे तो खुजली, कांच ये दूरहोवे । तथा कफकरके पीडित नेत्रोंके मलको शोधन करे है ॥

सर्वनेत्ररोगमेंअंजन ।

शिलायारसकं पिष्ट्वा सम्यगाप्लाव्य वारिणा ।

तज्जलं सर्वं त्यजेच्चूर्णमधोगतम् ॥ शुष्कं च तज्जलं

सर्वं पर्पटीसंनिभं भवेत् । विचूर्ण्य भावयेत्सम्यक्त्रिवे

लं त्रिफलारसैः ॥ कर्पूरस्य रजस्तत्र दशमांशेन निक्षि

पेत् । अंजयेन्नयने तेन सर्वदोषहरं हि तत् ॥ सर्व-

रोगहरं चूर्णं चक्षुषोः सुसकारि च ॥

अर्थ—खपरियाको स्पाम्रसाके सरलमें उत्तम रीतिसे पीस बारीक चूर्ण करे, फिर उस चूर्णको पानीमें डाल देवे और उस पानीको हाथोंसे एवं हिलाय देवे और तत्काल दूसरे पात्रमें फर ले पहले पात्रमें जो

बड़े २ टुकड़े निकले उनको फेंकदेवे । फिर उसको थोड़ीदेर धरा रहनेदे इस प्रकार करनेसे वो खपरियाका सब चूर्ण पानीके तले जम जावेगा उसको दूरसे पात्रमें सुखाय लेवे तो उसकी पपड़ी जम जावेगी उस पपड़ीका चूर्ण कर उस चूर्णमें त्रिफलेके काटेकी तीन पुट देवे, फिर उस चूर्णका दशवाँ भाग कपूर मिलावे, सबको एक जीव कर इसका नेत्रोंमें अंजन करे तो सर्वदोष और नेत्रके सर्व रोग दूर होकर नेत्रोंको सुख होवे ॥

सर्वनेत्ररोगोंपर सौवीरांजन ।

अग्नि तप्तं च सौवीरं निषिचे त्रिफलारसैः । सप्तवेलं  
तथा स्तन्यैः स्त्रीणां सित्तं विचूर्णितम् ॥ अंजयेन्नयने  
तेन प्रत्यहं चक्षुषे हितम् । सर्वानक्षिविकारांस्तु हन्या-  
देतन्न संशयः ॥

अर्थ—सुरभाको अग्निपर तपाय २ के त्रिफलेके काटेमें बुझाये जव शीतल होजावे तब फिर गरम करे और बुझावे इसप्रकार सातवार बुझावे, इसी प्रकार स्त्रीके दूधमें सातवार बुझावे फिर उसको शीतल कर वारीक चूर्ण कर नेत्रमें अंजन करे, यह अंजन नेत्रोंको परमहितकारी है । इससे सर्व नेत्रके विकार दूर होते हैं इसमें संशय नहीं है ॥

शीशेकी सलाई बनानेका क्रम ।

त्रिफलाभृंगशुंठीनां रसैस्तद्वच्च सर्पिणा । गोमूत्रमध्व-  
जाक्षीरैः सित्तो नागः प्रतापितः ॥ तच्छलाका भवत्येव  
सर्वान्नेत्रभवान् गदान् ॥ नाशयेदिति शेषः ॥

अर्थ—शीशेको गलाय २ के त्रिफलेका काठा, भांगरेका रस, सोंठका काठा, घी, गोमूत्र, सहत और बकरीका दूध इन प्रत्येकमें सात २ बार बुझावे, फिर उसकी सलाई बनावे; इस सलाईको नेत्रोंमें फेराकरे तो नेत्रके सर्वविकार दूरहोवे ॥

प्रत्यंजन करनेका विधान ।

गतदोषमपेताशु संपश्यन्सम्यगंभसि ।

प्रक्षाल्याक्षि यथादोषं कार्यं प्रत्यंजनं ततः ॥

अर्थ—उस शीशेकी सलाईसे नेत्रोंमें अंजन करे, जव दोष दूर होकर नेत्रोंसे पानी गिरजावे तब रोगी एकक्षण शीतलपानीको देखे

फिर उस रोगीके नेत्रोंको जलसे धोयके दोषोंके अनुसार फिर नेत्रोंमें प्रत्यंजन करे, उस प्रत्यंजनको आगे कहतेहैं ॥

सदोषनेत्रमेंनिषेध ।

न वा निर्गतदोषोक्षिण धावनं संप्रयोजयेत् ।

प्रत्यंजनं तीक्ष्णतप्ते नेत्रे चूर्णः प्रसादनः ॥

अर्थ—नेत्रोंसे दोषोंके न निकलने पर नेत्रोंको जलसे धोवे नहीं और तीक्ष्ण अंजन करके नेत्र संतप्त होनेपर उनमें प्रत्यंजन चूर्णकरे सो आगे-के श्लोकोंमें कहा है । अथवा प्रसादनचूर्णकरे ॥

प्रत्यंजनचूर्ण ।

शुद्धे नागे द्रुते तुल्ये शुद्धं सूतं विनिःक्षिपेत् । कृष्णांजनं  
तयोस्तुल्यं सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥ दशमांशेन कर्पूरं त-  
स्मिच्चूर्णे प्रदापयेत् । एतत्प्रत्यंजनं नेत्रगदजिन्नयनामृतम् ॥

अर्थ—शुद्धशीशेको तपावे जब गलजावे तब उसमें बराबरका शुद्ध पारा मिलायदे फिर इन दोनोंके समान सुरमा मिलायके एककर सबका घारीक चूर्णकरे तथा सब चूर्णका दशवां भाग भीमसेनी कपूर मिलावे, इसको प्रत्यंजन चूर्ण कहते हैं । इसके लगानेसे संपूर्ण नेत्ररोग दूरहो तथा यह चूर्ण नेत्रोंको अमृतके समान सुखकारी है ॥

सर्पविषनाशकअंजन ।

जयपालस्य मज्जां च भावयेन्निबुकद्रवैः । एकविंशतिवेलं  
तत्ततो वर्त्ति प्रकल्पयेत् ॥ मनुष्यलालया घृष्ट्वा ततो  
नेत्रे तयांजयेत् । सर्पदण्डविषं जित्वा संजीवयति मानवम् ॥

अर्थ—जमालगोटिके भीतरकी मिर्गी लेकर चूर्णकरे फिर इसमें नींबूके रसकी २१ इसकी पुट देवे, पीछे इसकी लंबी बत्ती बनावे, इस गोलीको मनुष्यकी लारमें घिसके नेत्रोंमें आंजे यह सांप कांटे हुए प्राणीके विषको दूरकर जिवाता है अर्थात् सावधान करताहै ॥

नेत्ररोगनाशनसुगमोपाय ।

भुक्त्वा पाणितलं घृष्ट्वा चक्षुषोर्यादि दीयते ।

जातरोगा विनश्यन्ति तिमिराणि तथैव च ॥

अर्थ-भोजन करनेके पश्चात् हाथोंको धोवे फिर वोही गीले हाथोंकी हथेलीको आपसमें घिसकर नेत्रोंमें लगावे तो उत्पन्नहुए नेत्ररोग तथा तिमिररोग आदि संपूर्ण नेत्ररोग दूरहोवे ॥

तथाउपायांतर ।

शीताम्बुपूरितमुखः प्रतिवासरं यः कालत्रयेण नयनद्वि-  
तयं जलेन । आसिंचति ध्रुवमसौ न कदाचिदाक्षिरोग्य  
थाविधुरतां भजते मनुष्यः ॥

अर्थ-नित्य दिन दिनमें तीनवार शीतलजलसे मुखको भरके और दूसरे शीतलजलसे नेत्रोंके तीनवार छींटा मारे तो अति दुःखदायक नेत्ररोगसंबंधी पीडा कदाचित् नहीं होय । यह उपाय बहुतही सहजका और अत्यंत गुणदायकहै सब मनुष्योंको उचित है कि, इसको अवश्य किया करे इतनी दत्तरामचौबे की प्रार्थनाहै ॥

अथ संधानविधिः ।

द्रवेषुचिरकालस्थं द्रव्यं यत्संधितं भवेत् ।

आसवारिष्टभेदैस्तु प्रोच्यते भेषजोचितम् ॥१॥

अर्थ-उपयुक्त जलादि द्रव पदार्थोंमें औषध डालके फिर पात्रके मुखको बांध मुद्रादेकर बहुत काल ( मास, पक्ष ) पर्यंत धरा रहनेदे, फिर उससे उत्सेक ( दारू निकालनेकी क्रिया ) द्वारा एक नवीन पदार्थ उत्पन्न होवे उस क्रियाको संधान क्रिया कहते हैं तथा उस औषधोचित संधान को आसव और अरिष्ट ऐसे दो भेदों करके कहते हैं ॥

आसवारिष्टयोर्लक्षणम् ।

यदपक्वौषधांबुभ्यां सिद्धं मद्यं स आसवः ।

अरिष्टः काथसाध्यः स्यात्तयोर्मानं पलोन्मितम् ॥२॥

अर्थ-अपक्व औषध और जलद्वारा संपादित ( वनाएड्डए ) मद्य ( दारू ) को आसव कहते हैं और काथसे वनेड्डए मद्यको अरिष्ट कहते हैं, इन दोनोंकी मात्रा ४ तोले है ॥

आप्लाव्य सुरया सम्यग्द्रव्याणि विविधानि च ।

सप्ताहान्ते परिस्राव्य रसं वस्त्रेण गालयेत् ॥ ३ ॥

एषोऽरिष्टाभिधानेन भिषग्भिः परिकीर्तितः ।

अरिष्टस्य गुणा ज्ञेया वीजद्रव्यगुणैः समाः ॥ ४ ॥

अर्थ—दारुमें संपूर्ण द्रव्य भिगोयके सात दिन पर्यंत धरी रहने दे पश्चात् इसका भवकेके द्वारा रस चुवावे उसको कपड़ेमें छानके बोतल आदिमें भरके धरदेवे, इसको अरिष्ट कहते हैं । जिस २ द्रव्यको भिगोयके अरिष्ट बनाया जाता है उसी २ द्रव्यके गुण वो अरिष्ट करता है ॥

सामान्यतोरिष्टविधिः ।

अनुक्तमासारिष्टेषु द्रवद्रोणे गुडातुलाम् ।

क्षौद्रं क्षिपेद्गुडादर्द्धं प्रक्षेपं दशमांशिकम् ॥ ५ ॥

अर्थ—अरिष्ट साधनमें जहां किसी वस्तुका मान न कहा हो वहां नीचे लिखी विधिके अनुसार वर्तना चाहिये । जैसे ६४ सेर प्रमाण जल आदि द्रव द्रव्यमें गुड १०० पल्ले और सहत गुडसे आधा लेवे, अर्थात् ५० पचास पल्ले तथा प्रक्षेप वस्तु गुडके दशमांश ( दशमांश हिस्सा ) अर्थात् १० पल डाले, सबको एकत्र कर यथाविधि अरिष्टको बनाना चाहिये ॥

द्विविधसीधुमाह ।

ज्ञेयः शीतरसः सीधुरपक्वमधुरद्रवैः ।

सिद्धः पक्वरसः सीधुः संपक्वमधुरद्रवैः ॥ ६ ॥

अर्थ—अब सीधु की विधि कहते हैं, तहां सीधु दो प्रकारका है जैसे शीतरस सीधु बनता है । अर्थात् ईख आदि अपक्व रसको घासित करनेसे ( धराखनेसे ) शीतरस सीधु बनता है । अर्थात् ईखकारस अथवा और कोई मधुर रसको पात्रमें भर धरदेवे फिर सातदिनके बाद रस नितारलेवे । इसीप्रकार पके हुए ईखके रसके द्वारा उत्पन्न सीधुको पक्व-रससीधु कहते हैं सीधुको भाषामें सिका कहते हैं । इसका प्रचार प्रायः पूर्वेक देश ( फाशी, पटना, आदि प्रांतोंमें ) अधिक है ॥

सुरादिलक्षणम् ।

दिनानि कतिचित्किन्नं गुडादौ स्यापयेद्विषम् ।

ततो विक्लित्तिमापन्नं यंत्रैश्च नाडिकादिभिः ॥ ७ ॥

विधिवत्प्रावयेच्चास्मादन्यपात्रे सुतं रसम् ।

गृह्णीयात्सासुरा ख्याता तीक्ष्णोष्णवीर्यशालिनी ॥ ८ ॥

अर्थ-सुरोपादानद्रव्य ( दारू बनानेकी दवाई ) उन सब गुहादिको पात्रमें डालके कुछदिन उसी प्रकार धराखावे, जब सब द्रव्य गलजावे और वो जल उठ आवे अर्थात् गंधदेने लगे तब उसको नाडिकादि यंत्रद्वारा जुवायके रस निकाल लेवे । इस निकाले हुए द्रवपदार्थको सुरा कहते हैं यह तीक्ष्णवीर्य तथा उष्णवीर्य वाली है ॥

सुरा प्रसन्नादि मद्योंके भेद ।

परिपक्वान्नसंधानात्समुत्पन्नासुराजगुः ।

सुरामंडःप्रसन्ना स्यात्ततःकादंबरी घना ॥ ९ ॥

तदधो जगलोज्ञेयो मेदको जगलाद्धनः ।

वक्रसो हृतसारःस्यात्सुरावीजं च किण्वकम् ॥ १० ॥

अर्थ-तंडुलादिक धान्यको सिजाय अग्निके संयोग करके यंत्रद्वारा जो मद्य उत्पन्न करते हैं उसको सुरा कहते हैं उस सुराके फेन ( झाग ) को प्रसन्ना कहते हैं । उस प्रसन्नाके मध्यमें जो घन ( गाढ़ा ) भाग है उसकी कादंबरी कहते हैं । उस सुराके अधोभागमें जो द्रव्य भाग है उसकी जगल कहते हैं और उस जगलसे भी गाढ़े भागको मेदक-उस मेदकको पक करके उसमेंसे सार काढके शेष रहे हुए पदार्थको सुरावीज अथवा किण्व कहते हैं ॥

वारुणी ।

यत्तालस्वर्जूरसैः संधिता साहि वारुणी ।

अर्थ-ताडकारस अथवा स्वर्जूरके रससे संधानकिया द्वारा वारुणी उत्पन्न हो, अर्थात् ताड अथवा स्वर्जूरके रससे अग्निके संयोगकरके यंत्रद्वारा जो पदार्थ उत्पन्न करते हैं उसको वारुणी कहते हैं, इस वारुणी मद्यको भापामें ताड़ी कहते हैं ॥

शूक्त ।

कन्दमूलफलादीनि सस्नेहलवणानि च ॥ ११ ॥

यत्रद्रवेऽभिपूर्यते तच्छूक्तमभिधीयते ॥

अर्थ-अनेक प्रकारके कंद, मूल, फलादि, स्नेह और सैधानिमक

इनको पानी आदि द्रवपदार्थमें डालके कुछदिन धरारहनेदे जब उठआवे तब काममें लावे उसको शूक्त कहते है । भाषामे शूक्तको अचार, वा अधाना वा संधाना, कहते है जैसे आमका नीबूका अचार ॥

**विनष्टमम्लतां यातं मद्यं वा मधुरद्रवैः ॥ १२ ॥**

**विनष्टः संधितो यस्तु तच्छूक्तमभिधीयते ॥**

अर्थ—मद्य विनष्टहोकर खटाई आयजावे अथवा कोई भीठी द्रव्यको पात्रमें बंदकर मुद्रा देकर महिना या पक्षपर्यंत धरा रहनेदे जब सिद्धहोय उस मद्यको शूक्त ( चुक ) कहते है ॥

गुडशूक्त ।

**गुडाम्बुना सतैलेन कन्दशाकफलैस्तथा ॥ १३ ॥**

**संधितश्चाम्लतां यातं गुडशूक्तं तदुच्यते ॥**

अर्थ—गुड, पानी, तैल, कंद, मूल, फल, साफ इन सबको किसी पात्रमें भरके मुखबंद कर १ महिने या पंद्रह दिन धरा रहनेदे जब खटाई आयजावे तब कार्यमें लावे इसे गुडशूक्त कहते है ॥

**एवमेवहि शूक्तं स्यान्मृद्धीका संभवस्तथा ॥ १४ ॥**

अर्थ—इसीप्रकार ईखका तथा दाखका शूक्तभी बनताहै ॥

तुषांयुऔरसौवीर ।

**तुषाम्बुसंधितं ज्ञेयमामेर्विदालितैर्यवैः ।**

**यवैस्तुनिस्तुपैःपक्वैःसौवीरं साधितं भवेत् ॥ १५ ॥**

अर्थ—निस्तुप कच्चे जौ कूट उसमे पानी डाल किसीपात्रमें भरके थोड़े-दिन धरा रहनेसे जब खटाई आयजावे उसको तुषांयु कहते- है । और भुनेहुए अथवा सीजे हुए जौ कूट पानीडाल खटाई आने पर्यंत धरारहनेदे उसको सौवीर कहते है ॥

मंत्रांतरे ।

**सौवीरस्तु यवैरामैःपक्वैर्वा निस्तुपीकृतैः ।**

**गोधूमेरपि सौवीरमाचार्याःकेचिदूचिरे ॥ १६ ॥**

अर्थ—अपक अथवा पक निस्तुप जौको संधित (पूर्वोक्तक्रिया) करनेसे सौवीर बनताहै । किसी २ वैद्यके मतसे गेहूं द्वाराभी सौवीर ( पूर्वोक्त क्रियासे बनताहै ) ॥



आरनाल ।

आरनालस्तुगोधूमैरामैः स्यान्निस्तुपीकृतैः ।

पक्वैर्वा संहितं तत्तु सौवरिसदृशं गुणैः ॥ १७ ॥

अर्थ—कच्चे अथवा पक्के निस्तुप गेहूं लेकर संहित ( साधित ) करनेसे आरनाल उत्पन्न होता है, इसके गुण सौवीरके समान जानने ॥

कांजिक ।

संधितंधान्यमण्डादि कांजिकं कथ्यते जनैः ।

अर्थ—धान्य के मंडादिसे साधितको कांजी कहते हैं ॥

सांडाकी ।

सांडाकी संधिता ज्ञेया मूलकैः सर्षपादिभिः ॥ १८ ॥

अर्थ—और मूली तथा सरसों आदिका बना रस उसमें पानी डाल हलदी, हींग, राई, संधानिमक, जीरा, सोंठ इत्यादिका चूर्ण डालके पात्रका मुख बंदकर तीन चार दिन धरा रहनेदे इसको सांडाकी कहते हैं ॥

धान्याम्लम् ।

प्रस्थं पष्टिकधान्यस्य नीरप्रस्थद्वयं क्षिपेत् । आधार-  
भांडं संरुद्धय भूमेर्गर्भे निधापयेत् ॥ १९ ॥ पक्षादथ-  
समुद्धृत्य वस्त्रपूतं च कारयेत् ॥ ततो जातरसं योज्यं  
धान्याम्लं सर्वकर्मसु ॥ २० ॥ धान्याम्लं शालिचूर्णा-  
च्चकोद्रवादि कृतं भवेत् ।

अर्थ—तुषयुक्त सोठी धान्य १सेरकी कूटके उसमें २सेर डालके भिगोयदे अथवा चारसेर जलमें भिगोयदे फिर उस पात्रके मुखमें डाढ लगाय धरतीमें गाड़देवे २५ दिनके बाद निकालके कपड़ेसे छानलेवे इस रसको धान्याम्लक कहते हैं इसको सब कर्मोंमें देवे । इसी प्रकार शाली चावलके चुर्णसे और कोदों आदिके चूर्णसेभी धान्याम्ल बनता है ॥

कांजिकसाधन ।

तुलामितं पष्टिकर्तदुलं च प्रष्टव्यं चात्रं विधिवद्वि-  
धाय । द्रोणेऽभसि क्षिप्तमथ त्रियामास्तत्सप्तरक्षे-

त्पिहितं प्रयत्नात् ॥ ततस्तु कल्कं सकलं निरस्येत्  
त्कांजिकं कथ्यत आरनालम् । तद्भेदितीक्ष्णं लघुपा-  
चनं च दाहज्वरघ्नं कफवातनाशि ॥

अर्थ-१२॥ साडे बारह सेर स्वच्छ सांठी चावल लेवे, उनको ६४ सेर जल में भिगोय देवे, इस प्रकार उनको रक्षापूर्वक सात दिन भीगने दे, बाद सात-दिन के उसको छानके पानी नितारले, इस कल्ककी आरनाल अथवा कांजी कहते हैं, यह दस्तकरानेवाली, तीक्ष्णगुणयुक्त, हलकी और पाचनहै तथा दाह, ज्वर और कफवातको नाश करती है। परंतु हमारे देश में इसको कांजी नहीं कहते, हमारे राईके पानी में उड़दके बड़ा भीगने से जो बनती है उसको कांजी कहते हैं ॥

यद्यपि भूमिपरीक्षा देशपरीक्षामें लिख आये हैं परंतु यहांपर यह पूर्वपरीक्षासे भिन्न है सो नीचेके अर्थमें दिखाये हैं यह सुश्रुतसे लिखते हैं ॥

## अथातो भूमिप्रविभागविज्ञानीयाध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ-अब हम भूमिप्रविभाग विज्ञानीयाध्यायका वर्णन करेंगे अर्थात् भूमिका जो उत्तम भाग उसके अर्थका विज्ञान जिस अध्यायमें उसकी व्याख्या करेंगे । यद्यपि आतुरोपक्रमणीयाध्यायके देशवर्णनमें भूमिपरीक्षा कही है, परंतु वह परीक्षा भूतोंके कार्य ( शीतोष्णवर्षादिकों ) करके तथा पर्वतवृक्षादिकोंकरके करी है । और इस भूमिप्रविभागविज्ञानीयाध्यायमें खास भूतगणोंकरके परीक्षा करी है यह भेद ही। वो पृथ्वीका विभाग दो प्रकारका है, एक सामान्य और दूसरा विशिष्ट तहां प्रथम सामान्य भूमिप्रविभागको कहते हैं ॥

सामान्यभूमिभागका वर्णन ।

श्वभ्रशर्कराश्मविपमवल्मीकश्मशानाऽद्यतनदेवतायतन  
सिकताभिरनुपदतामनूपरामभंगुरामदूरोदकांसिग्धां

१ भूतशब्दसे पृथ्वी जल आदि पंचभूत जानने इनके शीतल उष्णता आदि कार्य जानने । २ भूतगुण अर्थात् पृथ्वी जल आदिके गुण काले पीले कठोर मृद आदि जानने ।

प्ररोहवर्ती मृद्धी स्थिरां समां कृष्णां गौरीं लोहितां वा  
भूमिमौषधार्थं परीक्षेत तस्यां जातमपिकृमिविषशस्त्रा-  
तपपवनदहनतोयसम्बाधमार्गैरनुपहतमेकरसं पुष्टं पृथ्व-  
वगाढमूलमुदीच्यां चौषधमाददतिेत्यौषधभूमिपरीक्षा  
विशेषः सामान्यः ॥

अर्थ-जो पृथ्वी सर्प मूसे आदिके विले, शर्करा, पत्थर, आदिसे विषम अ-  
र्थात् ऊँची नीची न हो तथा बोंबी, ईमशान, वधस्थान, देवस्थान और  
बालू रेत आदिसे दूषित न हो, ऊपर न हो, रेखावाली न हो, जिसमें बहुत  
नीचापानी न हो, चिकनी, बीजमें अंकुरोत्पादक, कोमल, स्थिर ( पानी  
और हवासे जिसको मिट्टी न जाय ) समान अर्थात् एकसी, काली, गौरी  
( सुवर्णके समान वर्णवाली ) लोहित ( लाल रंगकी ) इत्यादि गुणवाली  
पृथ्वी की परीक्षा औषधग्रहण ( औषधलानेके ) अर्थकरे ॥

अब कहते हैं कि, केवल पृथ्वीके गुणोंकरकेही औषधोंको ग्रहण न करे  
किंतु औषधोंके दोष गुणकोभी विचार करके औषधलेनी यह दिखाते हैं ॥

तहां उक्तपृथ्वीमें भी उत्पन्न हुई, जो कृमि ( कीड़ा ) विष, शस्त्र घूप,  
हवा, अमि, संकट और मार्ग ( रस्ता ) इत्यादि करके दूषित ( बिगड़ी  
हुई ) न हो, जिसमें एकरस ( उत्कृष्टरस ) हो, देखनेमें पुष्ट हो तथा जिस-  
की पृथ्वीके भीतर दूरतक जड़ चलीगई हो ( चकारसे वो जड़भी उत्तम हो  
दूषित न हो ) इत्यादि गुणविशिष्ट औषधको वैद्य उत्तरामुख करके उखाड़े  
यह औषध भूमिकी परीक्षा सामान्यता करकेकही है ॥

इस प्रकार सामान्य पृथ्वीके गुणोंको कहकर अब विशेष गुण प्रत्येक  
भूतोंको दिखाते हैं ॥

स्वगुणभूयिष्ठपृथ्वीके गुण ।

विशेषतस्तु । तत्राश्मवती स्थिरा गुर्वी श्यामा कृष्णा  
वा स्थूलवृक्षशस्यप्राया स्वगुणभूयिष्ठा ॥

१ आगे रसायनके प्रकरणमें कपोती नामकी रुखड़ीकी बावीपरसे लाना लिखा है फिर  
निषेध क्यों करा? तहां कहते हैं कि, दिव्यौषधियोंका बीर्य सर्पोदि विषसे नष्ट नहीं होता  
अथवा वो उसी बोग ऊगनेसे अधिक बीर्यवाली होती है । २ जहां मुर्दे जलाए जाते हैं ।

अर्थ—अब विशेषता दिखाते हैं कि, जो पृथ्वी पत्थरवाली, (पथरीली-फकरीली,) कठोर, भारी, कालेरंगकी, अथवा स्याम रंगकी हो तथा जिसमें बड़े २ पुष्टवृक्ष- (दरखत) और लंबी २ घास आदि तृणहो, वो, पृथ्वी (जमीन) स्वगुणभूयिष्ठ अर्थात् पृथ्वीगुणभूयिष्ठ जाननी ॥

जलगुणभूयिष्ठपृथ्वी ।

स्निग्धा शीतलासन्नोदका स्निग्धशस्यतृणकोमलवृक्ष-  
प्राया शुष्काम्बुगुणभूयिष्ठा ।

अर्थ—जो पृथ्वी चिकनी, शीतल, जलप्राय, अर्थात् जिसमें समीपही जल हो तथा जिसमें सचिकण, छोटी २ और बड़ी घास (दूब आदि तृण) हो, कोमलवृक्ष और प्रायः सर्वत्र गीली हो वो जमीन जलगुणभूयिष्ठ जाननी अर्थात् इसमें जलका भाग अधिक रहता है ॥

अग्निगुणभूयिष्ठपृथ्वी ।

नानावर्णा लघ्वश्मवती प्रविलाल्पपाण्डुवृक्षप्ररोहा-  
ऽग्निगुणभूयिष्ठा ॥

अर्थ—जो पृथ्वी अनेकवर्णकी, हलकी पथरीली, कहींकहीं थोड़े और पीले वृक्षादिकहों वो जमीन अग्निगुणभूयिष्ठ जाननी, अर्थात् इसमें अग्निका गुण अधिक जानना ॥

पवनगुणभूयिष्ठपृथ्वी ।

रूक्षाभस्मरासभवर्णा तनुरूक्षकोठरालपरसवृक्ष-  
प्रायाऽनिलगुणभूयिष्ठा ॥

अर्थ—जो पृथ्वी रूखी, भस्म (खाक) और गद्देके वर्णसमान खाकी रंगकी हो तथा जिससे छोटे २ रूखे, पीले, थोड़े रसवाले ऐसे वृक्षहों वो जमीन पवनगुणभूयिष्ठ जाननी । अर्थात् इसमें पवनका गुण अधिक है ॥

आकाशगुणभूयिष्ठपृथ्वी ।

मृद्वी समा श्वभ्रवत्यव्यक्तरसजला सर्वतोऽसारवृक्षा  
महापर्वतवृक्षप्राया श्यामाचाकाशगुणभूयिष्ठा ॥

अर्थ—जो पृथ्वी नरम, समान, गड्ढेवाली हो तथा जिसमें रसहीन

१ इसमें पृथ्वीका अंश अधिक रहता है ।

( मलमलेस्वादको ) जलहो, सारहीनवृक्ष, बड़े २ पर्वत और बड़े २ वृक्ष जिसमें सर्वत्रहों तथा रंगमें श्यामहो वो जमीन आकाशगुणभूयिष्ठ जाननी अर्थात् इसमें आकाशका गुण अधिक है ॥

पंचभूतोंके गुणकहनेसे यह प्रयोजन है कि, प्रत्येक वमन विरेचनादिमें अपने २ गुणभूयिष्ठ दवाई लेनी, जैसे वमनकी औषध आकाशगुणभूयिष्ठ होती है तो उनको आकाशगुणभूयिष्ठ जमीनसे लेनी इसी प्रकार जुलाबमें जलगुणभूयिष्ठ होनेवाली औषधी जलगुणभूयिष्ठ पृथ्वीसे वैद्य लेवे, कारण यह कि, स्वगुणभूयिष्ठ औषधी बलवान् होती है ॥

औषधग्रहणमें मतभेद ।

तत्र केचिदाहुराचार्याः । प्रावृद्धवर्षाशरद्धेमन्तवस-  
न्तग्रीष्मेषु यथासंख्यं मूलपत्रत्वक्क्षरिसारफलान्या-  
ददाति, तत्तु न सम्यक् कस्मात् सौम्याग्नेयत्वाज-  
गतः । सौम्यान्यौषधानि सौम्येष्वृतुष्वदादीताग्नेया-  
न्याग्नेयेष्वेवमव्यापन्नगुणानि भवन्ति । सौम्यान्यौष-  
धानि सौम्येषु ऋतुषु गृहीतानि सौम्यगुणभूयिष्ठायां  
भूमौ जातान्यतिमधुरस्निग्धशीतानि जायन्ते । एतेन  
शेषं व्याख्यातम् ।

अर्थ—तहां कोई २ आचार्य कहते हैं कि, प्रावृद्ध, वर्षा, शरद, हेमन्त-  
वसंत और ग्रीष्म इन ऋतुओंमें यथाक्रम जड़, पत्ते, त्वचा, दूध और औष-  
धोंके फल लेने चाहिये ॥ परंतु यह मत उचम नहीं है, क्योंकि यह जगत  
सौम्य और आग्नेयके भेदसे दोही प्रकारका है, जब दो प्रकार जगहें तब  
सौम्य ( शीतल ) औषधोंको सौम्यऋतु ( शरद, हेमन्तादि ) में लेवे और  
आग्नेय ( गरम ) औषध गरमऋतु ( ग्रीष्मआदि ) में लेवे, तो ये निर्दोष  
गुणवाली होती है । सौम्य औषध सौम्यऋतुओंमें ग्रहण करीगई तथा सौम्य  
गुणभूयिष्ठ पृथ्वीमें उत्पन्न हुई वो अत्यंत मधुर सिग्ध और शीतल होती  
है । इसीप्रकार आग्नेय औषधी आग्नेय ऋतुओंमें ग्रहण करीगई तथा आग्नेय-  
गुणभूयिष्ठ पृथ्वीमें उत्पन्नहुई वो अत्यंत तीक्ष्ण और रूक्ष और गरमहोतीहै ॥

विरेचनादिद्रव्यकिसपृथ्वीकीलेनी ।

तत्र पृथिव्यम्बुगुणभूयिष्ठायां भूमौ जातानि विरे-

चनद्रव्याण्याददीताभ्याकाशमारुतगुणभूयिष्ठायां वम-  
नद्रव्याणि । उभयगुणभूयिष्ठायामुभयतोभागानि ।

आकाशगुणभूयिष्ठायां संशमनान्येवं बलवत्तराणि भवन्ति ॥

अर्थ—तहां पृथ्वी और अंबु ( जल ) गुणभूयिष्ठ पृथ्वीमें उत्पन्न होने वाली ऐसी विरेचन अर्थात् दस्तकारी औषधोंको वैद्य लेवे और आकाश पवन गुणभूयिष्ठ पृथ्वीमें उत्पन्नहो ऐसी वमन करानेवाली औषधोंको वैद्य लेवे । एवं दोनोंगुण अर्थात् आकाश और पृथ्वीमें तथा जल और पवनगुणभूयिष्ठ पृथ्वीमेंसे वमन विरेचन दोनों कराने वाली औषधोंको वैद्य लेवे । एवं आकाशगुणभूयिष्ठ पृथ्वीमें उत्पन्न होनेवाली औषधी संशमन संज्ञक औषध होती है उनको उसी स्थानसे लेवे ॥

सर्वाण्येव चाभिनवान्यन्यत्र मधुघृतगुडपिप्पलीविड-  
ङ्गेभ्यः । सर्वाण्येवं सक्षीराणि वीर्यवन्ति तेषामसम्पत्ताव-  
नतिक्रान्तसंवत्सराभ्याददीतेति ॥

अर्थ—वैद्यको उचितहै कि, जितनी औषधले सब नवीन ले, परंतु सहत घी, गुड, पीपल और वायविडंग ये पुरानेही लेना [ तथा दोषवर्जित अर्थात् कृमिविपादि दोषरहित औषधी लेना ] एवं सब क्षीर [ दूधवाली वा रसवा-  
न ] के कारण कि, रस औषध वीर्यवान् होती है कदाचित् कहे हुए लक्षण वाली औषध न मिले तो फिर कैसाकरे तहां कहते हैं कि, यदि पूर्वोक्त गुणवान् औषध न मिले अर्थात् सहत घृत आदि पुराने तथा औषधी आदि नवीन न मिले तो जिनको लाए वर्षदिन न हुआहो ऐसी औषध लेवे ॥

औषधजाननेकाउपाय ।

भवन्ति चात्र ।

गोपालास्तपाप्सा व्याधा ये चान्ये वनचारिणः ।

मूलाहाराश्च ये तेभ्यो भेषजव्यक्तिरिष्यते ॥

अर्थ—गोपाल, ( गौ, भैस, बकरी, आदिके पालन करनेवाले चरवाहे )  
तपास्वि, ( जटाधारी, स्फंडिलशापी आदि ) व्याध, ( सिकारी, अहेरिया  
आदि ) वनचारी, ( भील, चुआड, गौण, माली, काछी, बंजारे, नाथ

१ जो द्रव्य न वमन करावे न दस्त करावे किंतु रोगके सापेक्ष एकीभूतहो उस  
व्याधिको शमन करे उसको संशमन संज्ञक औषधी कहते हैं ।

कालवेलिया इत्यादि) तथा मूल, फल, कंद, भक्षणकर्ता तपस्वि इनसे औष-  
धका स्वरूप और नाम मालूमहो सकताहै । अर्थात् उक्तप्राणी नित्य वनमें  
रहा करते हैं अतएव इनको सब वनस्पती, वृंटी, आदिकी पहचान होतीहै  
वैद्यको उचित है कि, इनके सकाससे औषधोंको जाने ॥

**सर्वावयवसाध्येषु पलाशलवणादिषु ।**

**व्यवस्थितो न कालोऽस्ति तत्र सर्वो विधीयते ॥**

अर्थ-संपूर्ण मूलादि अवयव ग्राह्य ऐसे पलाश लवण अर्थात् पत्रलव-  
णादि योगोंमें जहां कालकी मर्यादा नहीं कही वहां पर संपूर्ण ( प्रावृडा-  
दि ) काल जानना

**गन्धवर्णरसोपेता षड्विधा भूमिरिष्यते ।**

**तस्माद्भूमिस्वभावेन वीजिनः षड्रसायुताः ॥**

अर्थ-वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, शब्द और सर्व लक्षणा ऐसे छः प्रकारकी  
पृथ्वी है अतएव इस पृथ्वी के स्वभावसेही वृक्षादिकभी षड्रस करके युक्त  
है अथवा ये छः रस भूमि के स्वभावसे मिलकर वृक्षादिरूपसे प्रगट होतेहैं ॥

अब कहते हैं कि, द्रव्योंके परिणाम विशेषकरके मधुरादि रस होते हैं फिर  
आप 'आप्योरसः' अर्थात् रस है सो आप्य है ऐसा क्यों कहते हैं तहां कहते हैं ॥

**अव्यक्तः किल तोयस्य रसो निश्चयनिश्चितः ।**

**रस एव स चाव्यक्तो व्यक्तो भूमिरसाद्भवेत् ॥**

अर्थ-जलका रस ( मधुरादि भावकरके ) अप्रकट है यह प्रमाण निश्चय  
है अर्थात् जलमें रसतो है, परंतु मीठा वा खारी है यह निश्चय नहीं है, तहां  
वही अप्रकट रस भूमिक रससे प्रगट होता है ॥

**भूमिद्रव्यकाकारणकहतेहैं ।**

**सर्वलक्षणसम्पन्ना भूमिः साधारणा स्मृता ।**

**द्रव्याणि यत्र तत्रैव तद्गुणानि विशेषतः ॥**

अर्थ-सर्वलक्षण ( पृथिव्यादि पंच महाभूत लक्षणों करके ) युक्त पृथ्वी  
साधारण कही है ऐसी साधारण पृथ्वीकी द्रव्य ( औषधी ) विशेषकरके  
साधारण गुणवाली जाननी ॥

नवीनवापुरानीकैसीद्रव्यलेनी ।

विदग्धे नापरामृष्टमविपन्नं रसादिभिः ।

नवं द्रव्यं पुराणं वा ग्राह्यमेव विनिर्दिशेत् ॥

अर्थ-जो औषधी विरोधी गंध करके स्पर्श न करी गई हो ( अर्थात् जिसमें जोसुगंध आया करे उससे विपरीत गंध न आवे जैसे गुलाबमें प्याजकीगंध ) और रसादि करके क्षीण न हो अर्थात् रसादि संपन्नहो, ऐसी नवीन अथवा प्राचीन लेनी चाहिये ॥

विडङ्गं पिप्पली क्षौद्रं सर्पिश्चाप्यनवं हितम् ।

शोपमन्यत्त्वभिनवं गृह्णीयादोषवर्जितम् ॥ ४ ॥

अर्थ-तहां घायविडंग, पीपल, सहत, और घी ये पुराने लेवे इससे अन्य औषधी सब नवीन और पूर्वोक्त विषादि दोष रहित लेनी चाहिये ॥ इसप्रकार स्थावरोंको कहकर अब जंगमों को कहते हैं ॥

जंगमानां वयःस्थानां रक्तरोगनखादिकम् ।

क्षीरमूत्रपुरीषाणि जीर्णाहारेषु संहरेत् ॥

अर्थ-तहां वयस्थ जंगम ( अर्थात् ) तरुण प्राणियोंके रुधिर, रोग और नखादिक लेवे और यदि इनके क्षीर, मूत्र, गोबर, लीद आदि लेने होयतो जब इनका आहार पचजावे तब लेवे, अजीर्णवस्थाका नलेय ॥

औषधरत्ननेकाउपाय ।

प्लुतमृद्राण्डफलकशंकुविन्यस्तभेषजम् ।

प्रशस्तायांदिशि शुचौ भेषजागारमिष्यते ॥ ५ ॥

अर्थ-इन औषधोंको कपड़ेके टुकड़ोंमें, मिट्टीके वासन ( इमरतवान्

१ जंगम शब्दसे सजीव चलने फिरनेवाले मनुष्य, घोड़ा, हाथी, शेर, बकरी, भेड़ा, हरिण, मुरगा आदि जानने । जंगम प्राणी जो जवान होते हैं उनके मांस, रुधिरादिभी अधिक शीघ्रपाए होते हैं । और बच्चे, तथा बुढ़े निबंली और हीनवीर्य होते हैं । इस वास्ते इस जंग ( वयस्य ) ऐसा पद धरा है ।

२ जो दानेदार औषधें उनको कपड़ेमें बांधके धरे, जो क्षूर्ण आदि हैं उनको मिट्टीके पात्र तथा झींझी आदिमें धरे परंतु उनके ऊपर नाम लिखदेवकि, जिस्से भूल न हो । जो लंबा और भारी वस्तु है उनको तक्ते आदिपर धरे और जो रुसड़ी जड़ी



हांडी, चीनीके प्याले, सकोरा, गागर, मांट, तथा शीशीआदि ) फलक, ( तक्का, पट्टी ) और शंकु ( कील, भस्त्र, ) इनमें धरी है औषधी जिसमें ऐसा औषधालय पूरव अथवा उत्तरदिशा और पवित्र स्थानमें होना चाहिये पिछाडी वस्ती प्रकरणमें लिख आए हैं कि, औषधोंके गण आगे कहेंगे, इसवास्ते अब द्रव्यसंग्रहणीयाध्यायकरके औषधोंके ३७ गण कहते हैं॥

## अथातो द्रव्यसंग्रहणीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ-अब हम द्रव्यसंग्रहणीय अध्यायका वर्णन करेंगे, तहां संग्रह शब्दसे संक्षेपार्थ लेना अर्थात् द्रव्योंका संक्षेप मुख्यकरके करी अध्याय उसका हम व्याख्या करेंगे, द्रव्योंका विस्तारसे वर्णन आगे चिकित्सा खंडमें कराजायगा जैसे इसी अध्यायके अंतमें लिखेंगे 'समासेन गणा ह्येते प्रोक्तास्तेषां तु विस्तरम् । चिकित्सितेषु वक्ष्यामि ज्ञात्वा दोषबलाद्य लम्' जैसे इस सुश्रुतमें ३७ गणकहे हैं उसीप्रकार वाग्भटके शोधनादि-गणसंग्रहाध्यायमें ३३ ही औषधोंके गण कहे हैं ।

तहांअध्यायकापिंडार्थ ।

## समासेन सप्तत्रिंशद्रव्यगणा भवन्ति तद्यथा ।

आदि है उनको डोरसे बांधके कील, सूटी, मेस आदिमें लटकाय देंगे । तेल घृत आदि को कुप्पी, चिकने पासन आदिमें वैद्य एक सुडोल रीतिसे अपने औषधालयमें धरे कि, जिससे मकानभी सजजाय और औषधभी न बिगड़े तथा वस्तुपर शीघ्र मिलजावे ।

१ पवित्रस्थान कहनेका यह प्रयोजन है कि, जो सपेदी आदिसे स्वच्छ तथा नीचे कूड़े आदिसे रहित, जिसमें उत्तम ऊंचे २ द्वारा हों जिससे पवनका संचार अच्छे प्रकार हो और डब्वल चादनी आदि कपड़े बिछे हों तथा ऊपरभी ऐसेही तने हों, तथा उस मकानके और पास दुर्गंध न हो, इत्यादिक सामग्रीसे पवित्रहो, ऐसा न होय कि, कहीं कुछ रुखड़ी पड़ी है, कहीं कूड़ेका ढेर लगा है, पासही टूटे फटे चूत्तोंके जोड़े पड़े हैं, पुराना धुराना कुछ बिछिया बिछा है, मकानकी छत और भीतोंमें मिट्टीकी वर्षा होरही है मक्खनकी भिन भिनाता है, दुर्गंधआती है टूटे फूटे पासनोंसे कुछ दवाई धरतीमें फैल रही है, कुछ उस पात्रमें है । पोथी पत्तरे अस्तव्यस्त पड़े हैं कुरूप और मलीन ऐसे औषध बनानेके पात्र वहाँ पड़े हैं इत्यादि अनेक कारणोंसे अपवित्रता होती है । उससे वैद्यको सदैव सावधान रहना चाहिये ॥

यह वैद्य अन्यरोगी आदिको स्वच्छ रहनेकी आज्ञा देता है फिर दीपकके नीचे अध-कारहो तो रोगिजन क्या कहेंगे । देखो डाक्टरलोग कैसे अस्पताल और अपने मकानकी स्वच्छता रखते हैं खैर उनहीका अनुकरण सीखो ॥

अर्थ-संक्षेपसे द्रव्योंके सैंतीस गण होते हैं, जैसे-आगे लिखते हैं ॥

विदारीगंधादिगण ।

विदारिगन्धा विदारी सहदेवा विश्वदेवा श्वदंष्ट्रा पृथक्-  
पर्णी शतावरी सारिवा कृष्णसारिवा जीवकर्पभकौ  
महासहा क्षुद्रसहावृहत्यौ पुनर्नवरण्डौ हंसपादीवृश्चि-  
काल्यूपभीचेति ।

विदारिगन्धादिरयं गणःपित्तानिलापहः ।

शोषगुल्माङ्गमर्दोर्द्धश्वासकासविनाशनः ॥ १ ॥

अर्थ-विदारीगंधा, ( शालपर्णी ) विदारीकंद, सहदेवा, ( सहदेई )  
विश्वदेवा, ( गगेरन गुडसफरीनामसे प्रसिद्ध ) श्वदंष्ट्रा, ( गोखरू ) पृथ-  
क्पर्णी, ( पिठवन ) शतावर, सारिवा, कृष्णसारिवा, जीवक, कृपभक,  
महासहा, ( मासपर्णी ) क्षुद्रसहा, (मुद्रपर्णी) वृहती, ( छोटफलकी और  
बड़े फलकी दोनों फटेरी ) पुनर्नवा, ( साठ ) अंड, हंसपर्दी, पृश्चिकांली  
( मेढासिंगीकाभेद ) और कृपभी ( कौंच, किवाच )

ये ऊपर लिखीहुई संपूर्ण औषध विदारीगंधादिगण जानना । यह  
पित्त, वादी, शोष, ( राजयक्ष्मा ) अंगमर्द, ( अंगोंका टूटना ) उर्द्धश्वास  
और खांसीको दूरकरे है ॥

वातपित्त हरण करनेसे इस गणको दीपनाशक और शोषादि हरण करने

१ विदारीकंद कोहला ( पेट ) के समान लाल पलका होताहै । इसके दो भेद हैं-  
पहला लंबाकंद और बहुत दूधवाला, दूसरा हाथीके पैरके समान बहुतबोड़ा दूधवाला  
होता है । ये पूरकके देशोंमें बहुत मिलते हैं । सारिवा जामुनके पत्तेसमान पत्तेवाली दूध-  
वालीबेल इसी नामसे प्रसिद्धहै । कृष्णसारिवा छोटैटाके समान पत्तेवाली और  
उसमें बदनकी सुगंध आती है, भाषामे कालीबेल बढ़ते हैं । ४ इसपदीइसके पत्ते इसके  
पैरके सदृश होते हैं, और पीलाफूल-तथा जल सुस गन्धाहो उस पुष्पोंमें होताहै लोहमें  
इसराज बढ़ते हैं परंतु इसराज यह नहीं है । इसकी परीक्षा और रूप हम इसी पृष्ठात्रि-  
पेंटरनाकरके निघंटभागमें लिखेंगे । ५ पृश्चिकांली रुसडी फटिवाली मेढाके साँगेके  
समान ऊँचे पलकाली होती है । कोई कहता है कि, पाठकेसे पत्ते-कुछ २ रुआं पाली  
संपेद पलकी दक्षिणावर्त बेल मेढासिंगीका भेद होताहै ॥

पागूमठमें देवदारु तथा जीवनीयगणको इसीगणमें लिखाहै ॥

से इस गणको व्याधिनाशक अर्थात् व्याधियोंका शत्रु जानना । दोषों-पर कहकर व्याधियोंके ऊपर कहनेसे इस गणकी अवस्था, काल और देशादि भेदकरके संपूर्ण अथवा आधाजो मिले उतना लेकर काढा, फाँट, स्वरस, कल्क, चूर्ण और गुटिकाआदि वनायकर रसक्रिया, लेप, नस्य, परिपेक और स्नान तथा घृत तैलादिक यथायोग्य योजित करने चाहिये । इसीप्रकार अन्य गणोंमें भी जानना ।

तथा जीवकऋषभकआदि द्रव्योंका अन्नपानादिकमें गुण नहीं कहे-उनको संपूर्ण गणके गुणाभिधान करके पृथक् द्रव्यगुण जानने चाहिये॥

आरग्वधादिगण ।

आरग्वधमदनगोपघोण्टाकुटजपाठाकण्टकीपाटलामूर्वे-  
न्द्रयवसतपर्णनिम्बकुरुण्टकदासीकुरुण्टकगुडूचीचित्रक-  
शार्ङ्गघाकरञ्जद्वयपटोलकिराततित्तकानिसुपवीचेति ।

आरग्वधादिरित्येपगणःश्लेष्मविषापहः ।

मेहकुष्ठज्वरवर्मा कण्डूघ्नो व्रणशोधनः ॥ २ ॥

अर्थ-आरग्वध, ( अमलतास ) मदन, ( मैनफल ) गोपघोंटा, ( कक-  
डीकाभेद ) कूडाकावृक्ष, पाठ, विकंकत, ( काँटेवालावृक्ष कटेरीनामसे  
प्रसिद्ध ) पाठल, मूर्वा, इन्द्रजों, सैतवन, नीम, कुरुण्टक ( कटसरैया,  
पीलेफूलका पीयावांसा ) दासीकुरुण्टक, ( नीलफूलका पियावांसा ) गिलोय,  
चीता, शार्ङ्गघा ( काकजंघा, विकसवनी करके प्रसिद्ध ) करंज, ( कंजा )  
और पूतीकरंज, पटोलपत्र, किरात तित्तक, ( चिरायता ) कारवी  
( कलौजी अथवा काकडामिनी ) ॥

यह आरग्वधादिगण कफ, विष, प्रमेह, कुष्ठ, ज्वर, घमन, खुजली  
इनको दूर करे तथा ( पुष्ट ) घावको भरने वाला है ॥

वरुणादिगण ।

वरुणार्तगलशिशु मधुशिशु तर्कारीमेपशृङ्गीपूतीकनक्त-

१ कोई गोपघोंटाको भेद बताते हैं । और कोई सुपारीका भेद कहते हैं । २ सतौना  
यह वृक्ष शादि ऋतुमें शिलता है और हार्थिक मदकीसी इसमें गंध आती है । ३. कोई  
शार्ङ्गघाको काकमाची-और कोई काकतिका कहते हैं ।

मालमोरटाग्रिमन्थसैरीयकद्वयविम्बीवसुकवसिर चित्र-  
कशतावरीबिल्वाजशृङ्गीदर्भा वृहतीद्वयश्चेति ।

वरुणादिगणोद्घोषकफभेदोनिवारणः ॥ ३ ॥

अर्थ-वरुणा (वरना इसवृक्षके पत्तोंका कडुआ साग होता है) आर्तगल (कोह.) शिष्ट (सहेंजना) मधुशिष्ट (लालसहेंजना) तर्कारी (अरनी) मेपशृंगी (मेढासिंगी) पूतिक (कंजा) नक्तमाल (बढाकरंज) मोरट (मूर्वा) अग्रिमन्थ (अगेयू पूरवदेशप्रसिद्ध अरनीका भेद) सैरीयकद्वय (दो प्रकारकी कटसरैया, लालफूलवाली जिसकी कुरवक कहते हैं और पीलेपुष्प का पियावासा) बिंबी (कंदूरी) वसुक (वक्पुष्प) अयवा वसुक (आक) वसिर (मर्कटाविष्पली, आंगानामप्रसिद्ध) चीता, शतावर, बेल, अजशृंगी (मेढासिंगीका भेद) कुश, और छोटीबड़ी कटेरी ॥

यह वरुणादिगण कफ, मेदा, मस्तकशूल, गोला और भीतरकी विद्रधि इनको दूरकरता है ॥

वीरतर्वादिगण ।

वीरतरुसहचरद्वयदर्भवृक्षादनीगुन्द्रानलकुशकाशाश्म-  
भेदकाग्रिमन्थमोरटावसुकवसिरभल्लूककुरुण्टकेन्दीवर-  
कपोतकङ्काश्वदंष्ट्राश्चेति ॥

वीरतर्वादिरित्येप गणो वातविकारनुत् ।

अश्मरीशर्करामूत्रकृच्छ्रातरुजापहः ॥ ४ ॥

अर्थ-वीरतरु (बिल्वन्तर) दोनोंकटसरैया, दर्भ (डाभ) वृक्षादनी (वंदाक, वंदा प्रसिद्ध) गुन्द्रा (गोदर) नल (नरसल) कुशा, काश, अश्मभेदक (पापानभेद) अरनी, मोरट (मूर्वा) वसुक (वक्पुष्प) वसिर (आंगा) भल्लूक (स्योनाक) कुरुण्ट (सिरवालिका) इन्दीवरी (नीलाकमल) कपोत-  
कंका (डुलडुल) औरगोखरू ॥

यह वीरतर्वादिगण वातके विकारोंको तथा पथरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्रा आदिकी पीडा इन सबको दूरकरे ॥

सालसारादिगण ।

सालसाराजकर्णस्रदिरकदंरकालस्कन्धक्रमुकभूर्जमेपशृ-

ङ्गीतिनिशचन्दनकुचन्दनशिशपाशिरापासनधवारुन-  
तालशाकनक्तमालपूतिकाश्वकर्णागुरुणि कालीयकश्चेति ।

सालसारादिरित्येष गणः कुप्लविनाशनः ।

मेहपाण्ड्यामयहरः कफमेदोविशोपणः ॥ ५ ॥

अर्थ—सालसारं ( राल ) अजकर्ण ( सालवृक्षकाभेदः ) खैर ( काथा ) क-  
दर ( सपेद खैर सारके समानपदार्थ ) कालस्कंध ( तेन्दू ) कमुक ( सुपारी ) भो-  
जपत्र, मेठासिंगी, तिनिश ( सादन ) चंदन, कुचंदन ( लालचंदन ) शिशपा  
( सीसों ) सिरप, असन ( विजसार इस नामसे पूरबदेशमें प्रसिद्ध ) धव  
( धों ) अर्जुन ( कोह. ) ताल ( ताड़ ) शाक ( वरदारु. ) ( सागवन इति  
प्रसिद्ध ) कंजा और बडा कंजा, अश्वकर्ण ( कुशिक ) अगर और  
कालीयक ( पीलाचंदन )

यह सालसारादिगण कुष्ठ, प्रमेह, पांडु, इन रोगोंको दूरकरे तथा कफ  
और मेदको सुखाता है ॥

रोध्रादिगण ।

रोध्रसावररोध्रपलाशकुट्टनटाशोकफंजीकट्फलैलावालु-  
कसल्लकीजिङ्गिनीकदम्बसालाः कदली चेति ।

एष रोध्रादिरित्युक्तो मेदःकफहरो गणः ।

योनिदोषहरस्तम्भी व्रणयो विषविनाशनः ॥ ६ ॥

अर्थ—लोध्र, सावररोध्र ( पठानीलोध्र ) पलाश ( टाक ) कुट्टनट ( स्योनाक )  
अशोक, फंजी ( भारंगी ) कायफल, एलावालुक ( सुवासिक द्रव्य, हरिवालुक  
करके प्रसिद्ध ) सल्लकी ( सालकाभेद ) जिङ्गनी ( मजीठ ) कदंब, साल  
और कैला ये लोध्रादिगण हैं ॥

यह मेद, कफ, योनिदोष इनको हरणकरे है तथा अतिसार आदि रोगोंको  
स्तम्भन करे है, व्रणको हितकारी और विषदोष नाशक है ॥

अर्कादिगण ।

अर्कालर्ककरजद्वयनागदन्तीमयूरकभांभीरास्त्रेन्द्रपुष्पीक्षुद्र-  
श्वेतामहाश्वेतावृश्चिकाल्यलवणास्तापसवृक्षश्चेति ।

अर्कादिको गणो ह्येष कफमेदोविषापहः ।

**कृमिकुष्ठप्रशमनो विशेषाद्व्रणशोधनः ॥ ७ ॥**

अर्थ-अर्क, ( लालफूलकाआक ) अलर्क, ( सपेदफूलकाआक ) कंजा, दंती, आंगा, ( चिरचिटा ) भारंगी, रास्ना, इन्द्रपुष्पी, ( कटेरी ) क्षुद्रश्वेता, ( फेसंद ) महाश्वेता, ( नीलपुष्पसकंद ) वृश्चिकाली, ( भेटासिंगीकाभेद ) अलवणा, ( मालकांगनी, ) काकमर्दनिका और इशुदीवृक्ष, ( गोंदीवा हिंगोट वृक्ष ) ये अर्कादि गण है ॥

यह कफ, भेद, विष, कृमि, कुष्ठ इनको दूरकरे और व्रणको शोधन करे है ॥

**सुरसादिगण ।**

सुरसाश्वेतसुरसाफणिज्झकार्जकभूस्तृणसुगन्धकसुमुख  
कालमालकासमर्दक्षवकखरपुष्पाविडङ्गकट्फलसुरसी-  
निर्गुण्डीकुलाहलान्दुरुकार्णिकाफञ्जीप्राचीवलकाकमा-  
च्यो विषमुष्टिकश्चेति ।

**सुरसादिगणो ह्येष कफहृत् कृमिसूदनः ।**

**प्रतिश्यायारुचिश्वासकासघ्नो व्रणशोधनः ॥ ८ ॥**

अर्थ-सुरसा, ( सपेदतुलसी ) और कालीतुलसी, फणिज्झक, ( मरुआ ) अर्जक, ( सपेद आजवला ) भूस्तृण, ( गुंदाक रोहिसतृण ) सुगंधक, ( बडा-सुगंधतृण ) सुमुख, ( राई, बां बर्वरी ) कालमाल, ( कारीचमेली ) कासमर्द, ( कसौंदी ) क्षवक, ( जिन्हारिपाक इसप्रकार पारियात्र पर्वतमें प्रसिद्ध ) खरपुष्प, ( क्षवकका भेदहै ) बायविडंग, कायफल, सुरसी, ( विल्वनासी ) निर्गुंडी, कुलाहल, ( मुंडिका ) दंडुरकर्णी, ( मूसाकर्णी ) भारंगी, प्राचीवल ( मलेछी ) काकमाची ( मकोय अथवा गुडफला ) विषमुष्टिक, ( राजनिंब ) ये सुरसादि गणहैं ॥

यह कफरोग, कृमिरोग, पीनस, अरुचि, श्वास, खांसो इनको नाश-करे तथा व्रणको शोधन करे है ॥

**मुष्ककादिगण ।**

मुष्ककंपलाशधवाचित्रकमदनवृक्षांशपावत्रवृक्षास्त्रि-  
फलाचेति ।

**मुष्ककादिगणो ह्येष भेदोघ्नः शुक्रदोषहृत् ।**

**मेहार्शःपाण्डुरोगघ्नः शर्कराश्मारिनाशनः ॥ ९ ॥**

अर्थ-मुष्कक, ( मोख वा मोक्षवृक्ष ) पलास, ( डाक ) धव, ( घों ) चित्रक, ( चीता ) भैरवफलका वृक्ष, सीसो, थूहर और त्रिफला ( हरड-बहेडा-आमला ) ये मुष्ककादिगण है ॥

यह मेद, शुक्र (वीर्य) के दोष, प्रमेह, पांडुरोग, शर्करा, पथरी इनको दूरकरे है  
पिप्पल्यादिगण ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकशृङ्गवेरमरिचहस्तिपि-  
प्पलीहरेणकैलाजमोदेन्द्रयवपाठाजीरकर्पपमहा  
निम्बफलहिङ्गभांर्गीमधुरसातिविषावचाविडङ्गानि  
कटुरोहिणी चेति ।

पिप्पल्यादिः कफहरः प्रतिश्यायानिलारुचीः ।

निहन्यादीपनो गुल्मशूलघ्नश्चामपाचनः ॥ १० ॥

अर्थ-पीपर, पीपरामूल, चव्य, चीता, अदरक, कालीमिरच, गजपीपल, हरेणुक, ( रेणुकाद्रव्य ) इलायचीछोटी, अजमोद, इन्द्रजौ, पाठ, जीरा, सरसों, वकायन, हींग, भारंगी, मूवां, अतीस, वच, वायविडंग और कुटकी यह पिप्पल्यादिगण है ॥

यह कफको तथा पीनस, वादी, अरुचि, गोल, शूल और आमघात रोगको हरणकरे तथा अग्निको दीपनकरे है ॥

एलादिगण ।

एलातगरकुप्टमांसीध्यामकत्वक्पत्रनागपुष्पप्रियङ्गुहरे-  
णुकाव्याघ्रनखशुक्तिचण्डास्थौणेयकश्रीविष्टकचो  
चचोरकवालकगुग्गुलुसर्जरसतुरुककुन्दुरुकाऽगुरु-  
स्पृक्षोशीरभद्रदारुकुङ्कुमानिपुन्नागकेशरञ्जेति ।

एलादिको वातकफो निहन्याद्विपमेवच ।

वर्णप्रसादनः कण्डूपिडकाकोठनाशनः ॥ ११ ॥

अर्थ-छोटीइलायची, तगर, कूट, जटामांसी, रोहिणतृण, तज, पत्रज, नागकेशर, प्रियंगु, रेणुका द्रव्य, बृहन्नख, शुक्ति ( उसीव्याघ्रनखकाभेद ) चण्डा, स्थौणेयक, ( युनेर ) श्रीविष्ट, ( सरलवृक्ष ) चोच ( तजकाभेद ) चोरक ( ग्रंथिपर्णाकाभेद ) वालक, ( नेत्रवाला ) गुग्गुल, राल, सिन्धुक, सहकी,

अगर, पृष्ठा (सुगंधिद्रव्य उत्तरमें प्रसिद्ध) उशीर (खस) भद्रदारु (देवदारु) कुंकुम (केशर) पुन्नाग और कमलका केशर ये एलादिगण हैं ॥

यह वात, कफ, विषविकार, खुजली, पिडका, ( फुंसी ) रुधिर विकारके काले काले चकत्ते इन सबको नाशकरे । तथा देहके रंगको स्वच्छ ( गोरा ) करे ॥

वचाहरिद्रादिगण ।

वचामुस्तातिविषाभयाभद्रदारूणि नागकेशरञ्चेति ।

हरिद्रादारुहरिद्राकलशीकुटजबीजानि मधुकंचेति ॥

एतौ वचाहरिद्रादी गणौ स्तन्यविशोधनौ ।

आमातीसारश्मनौ विशेषादोपपाचनौ ॥ १२ ॥

अर्थ—वच, मोथा, अतीस, हरड, देवदारु, नागकेशर, ये वचादि गण हैं । हलदी, दारुहलदी, पृष्ठपर्णी, इन्द्रजों और महुआ ये हरिद्रादि गण हैं ॥

यह दोनों गण स्त्रीके स्तनसंबंधी दूधको शोधन करे तथा आमातिसारको शमनकरे तथा विशेषकरके वातादि दोषोंको पाचन करे है ॥

श्यामादिगण ।

श्यामामहाश्यामातृवृद्धन्तीशंखिनीतिल्वककम्पिल्ल-  
करन्भकक्रमुकपुत्रश्रेणीगवाक्षीराजवृक्षकरञ्जद्वयगुडू-  
चीसप्तलाच्छगलान्त्रीसुधाःसुवर्णक्षीरी चेति ॥

उक्तः श्यामादिरित्येप गणो गुल्मविपापहः ।

आनाहोदरविट्भेदी तथोदावर्त्तनाशतः ॥ १३ ॥

अर्थ—श्यामा ( सपेद निसोप ) महाश्यामा ( विषायरो ) वृष्ट ( लाल जड़की निशोयनामसे प्रसिद्ध ) दन्तीशंखिनी ( यवतिकाकाभेद ) तिल्वक ( लोथ ) कं पिप्पल ( कवीला ) रम्यक ( वकायन ) क्रमुक ( सुपारी ) पुत्रश्रेणी ( संघरी ) गवाक्षी ( इन्द्रायण ) राजवृक्ष ( अमलतास ) करंज, प्रतीकरंज, गिलोय, धूहर, छगलान्त्री ( बृहदारककाभेद ) सुधा ( सेहूड ) स्वर्णक्षीरी ( चोक ) ये श्यामादिगण हैं ॥

यह गोला, विषविकार, अफरा, उदररोग इनको दूरकरे मलको भेदक है अर्थात् दस्तापरहे और उदावर्त्तका नाशक है ॥



बृहत्यादिगण ।

बृहतीकण्टकारिकाकुटजफलपाठा मधुकञ्चेति ।

पाचनीयो बृहत्यादिगणः पित्तानिलापहः ।

कफारोचकहृल्लासमूत्रकृच्छ्ररूजापहः ॥ १४ ॥

अर्थ—बड़ीकटेरी, छोटीकटेरी, इन्द्रजों पाठ और महुआ यह बृहत्यादि गण हैं । यह पाचन है तथा पित्त वादीका और कफ, अरुचि, हृल्लास, मूत्रकृच्छ्र इत्यादि रोगोंको नष्ट करे है ॥

पटोलादिगण ।

पटोलचन्दनकुचन्दनमूर्वागुडूचीपाठाः कटुरोहिणी-  
चेति । पटोलादिगणः पित्तकफारोचकनाशनः । ज्वरोप-  
शमनो व्रण्यश्छार्दिकण्डूविपापहः ॥ १५ ॥

अर्थ—पटोलपत्र, चंदन, लालचंदन, मूर्वा, गिलोय, पाठ और कुटकी यह पटोलादि गण हैं ॥

यह ज्वर, पित्त, कफ, अरुचि, छार्दि, खुजली, विष इनको दूरकरे तथा पाचको हितकरी है ॥

काकोल्यादिगण ।

काकोलीक्षीरकाकोलीजीवकर्पभमुद्रपर्णीमापपर्णीमे-  
दामहामेदाछिन्नरुहाकर्कटशृङ्गीतुगाक्षीरीपद्मकप्रपौ-  
ण्डरीकर्द्धिवृद्धिमृद्रीकाजीवन्त्यो मधुकञ्चेति ॥ का-  
कोल्यादिरयं पित्तशोणितानिलनाशनः । जीवनोवृ-  
हणो वृष्यः स्तन्यश्लेष्मकरस्तथा ॥ १६ ॥

अर्थ—काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभ, मूंगोन, मापपर्णी, मेदा, महामेदा, गिलोय, काकडासिंगी, वंशलोचन, पद्मास, कमल, ऋद्धि, वृद्धि, दास, डोडो और मुलहटी यह काकोल्यादि गण ॥

यह पित्त, रुधिर, वादी इनको नाशकरे तथा जीवन बृंहण ( शरीरको पुष्टकारी ) वृष्य, स्तनोंमें दूधका बढानेवाला और कफकारी हैं ॥

उपकादिगण ।

उपकसैन्धवशिलाजतुकासीसद्वयहिङ्गुनि तुत्थकञ्चेति ॥

उपकादिः कफं हन्ति गणो मेदोविशोपनः । अश्मरीश-  
र्करामूत्रकृच्छ्रगुल्मप्रणाशनः ॥ १५ ॥

अर्थ-उपक ( सारमृत्तिका यह काशीके पास बडहर देशमें अधिक होती है ) सैधानिमक, शिलाजीत, कक्षीस, पुष्पकसीस, हींग और नीलायोथा ये उपकादि गण है ॥

यह कफ, पथरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र, गोला इनको नष्टकरे तथा मेद ( चर्बी ) को शोषण करे ॥

सारिवादिगण ।

सारिवामधुकचन्दनकुचन्दनपद्मककाश्मरीफलमधुक-  
पुष्पाण्युशीरञ्चेति । सारिवादिः पिपासाम्नो रक्तपित्त-  
हरो गणः । पित्तज्वरप्रशमनो विशेषादाहनाशनः ॥

अर्थ-सारिवा ( सरिवनगौरी सर ) मुलहटी, चंदन, लालचंदन, पद्माख, कंभारी, महुआके फूल और खस ये सारिवादि गण है ॥

यह, प्यास, रक्तपित्त, पित्तज्वर और विशेषकरके दाहको हरण करे है ॥

अंजनादिगण ।

अञ्जनरसाञ्जनागपुष्पप्रियंगु नीलोत्पलनलदनलिनके  
शराणिमधुकञ्चेति ।

अञ्जनादिर्गणो ह्येष रक्तपित्तनिवर्हेणः ।

विषोपशमनो दाहं निहन्त्याभ्यन्तरं तथा ॥ १६ ॥

अर्थ-सूरमा, रसोत, नागकेशर, प्रियंगु, नीलाकमल, जटामांसी, कमलकेशर और महुआ ये अंजनादि गण हैं ॥

यह रक्तपित्तको दूरकरे, विषदोषको शमनकरे, भीतरके दाहको नष्ट करे है ॥

परूपकादिगण ।

परूपकद्राक्षाकट्फलदाडिमराजादनकतकफलशाकफ  
लानि त्रिफला चेति ।

परूपकादिरित्येष गणोऽनिलविनाशनः ।

मूत्रदोषहरो हृद्यः पिपासाम्नो रुचिप्रदः ॥

अर्थ—फालसे, दाख, कायफल, अनार, सीरनी, कतकफल ( निर्मली )  
शाकवृक्षका फल और त्रिफला ये परूपकादि गण हैं ॥

यह वादीके दोष, मूत्रके विकार और प्यास इनको हरण कर तथा  
हृदयके हितकारी तथा रुचि उत्पन्न कर्ता है ॥

प्रियंगु और अंबष्ठादिगण ।

प्रियङ्गु समङ्गाधातकी पुन्नागरक्तचन्दनकुचन्दनमोचरस-  
रसाञ्जनकुम्भीकस्रोतोऽञ्जनपद्मकेशरयोजनवल्लयोदीर्घ-  
मूलाचेति ॥ १७ ॥

अम्बष्ठाधातकी कुसुमसमङ्गाकदुङ्गमधुकविल्वपेशिका-  
रोध्रसावररोध्रपलाशनन्दीवृक्षपद्मकेशराणि चेति ।

गणौ प्रियङ्गवम्बष्ठादी पक्वातीसारनाशनौ ।

सन्धानौ यौ हितौ पित्ते व्रणानाञ्चापि रोपणौ ॥

अर्थ—प्रियंगु, लजालु, धायके फल, पुन्नाग, लालचन्दन, चन्दन, मोचरस,  
रसोत, कुम्भीनामा वृक्ष ( जिसकी छाल वस्त्रके आकार होती है ) सूरमा,  
कमलकेशर, मजीठ और धमासा ये प्रियंग्वादि गण हैं ॥

अंबष्ठा ( कुरंड ) धायके फल, लजालु, रेणुक, मुलहठी, वेलगिरी, लोध,  
पठानीलोध, पलाश ( ठाक ) नंदीवृक्ष ( कादमरी ) और पद्मकेशर ये  
अंबष्ठादिगण हैं ॥

ये दोनों ( प्रियंग्वादि और अंबष्ठादि गण ) पक्वातिसारको नष्ट  
करते हैं इटी हड्डीकी जोड़ने वाले, पित्तमें परम हितकारी और  
ग्रणोंकी रोपण करे हैं ।

न्यग्रोधादिगण ।

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थपुक्ष्मधुककर्पातनककुभात्रकोशा-  
त्रचोरकपत्रजम्बुद्वयप्रियालमधुकरोहिणी वञ्जुलकद-  
म्बवदरीतिन्दुकसिल्लीरोध्रसावररोध्रभल्लातकपलाशा-  
नन्दीवृक्षश्चेति । न्यग्रोधादिर्गणोव्रण्यः संग्राही भग्नसाध-  
कः । रक्तपित्तहरो दाहमेदोग्नौ योनिदोषहृत् ॥

अर्थ—बड, गूलर, धीपल, पाखर, महुआ, अंबाड़ा, कोह, आम,  
कोशाघ, चोरकपत्र, ( लाखकावृक्ष ) छोटीजामुन ( काकजामुन )

बडीजामुन ( राजजामुन ) खिरनी, मुलहटी, कायफर, वेत, कदंव, वेर, तेंदु, सालवृक्ष, लोध, पठानीलोध, भिलावाँ, डाक और नंदीवृक्ष ये न्यग्रोधादि गण हैं ॥

यह घणको हितकारी, ग्राही, दूटेहाडआदिको जोड़ने वाला, रक्तपित्त, दाह, भेद और योनिके दोष इनको नाश करे है ॥

गुडूच्यादिगण ।

गुडूचीनिम्बकुस्तुम्बुरुचन्दनानि पद्मकञ्चेति ।

एष सर्वज्वरान् हन्ति गुडूच्यादिस्तु दीपनः ।

हृल्लासारोचकवमीपिपासादाहनाशनः ॥

अर्थ—गिलोय, नीम, धनियाँ, लालचंदन और सफेद चंदन तथा पद्मास ये गुडूच्यादि गण हैं। यह सर्वज्वरोंका नाशकरे और जठराग्निको दीपन करे है। तथा हृल्लास, अरुचि, वमन, प्यास, दाह इनको नष्टकरे ॥

उत्पलादिगण ।

उत्पलरक्तोत्पलकुमुदसौगन्धिककुवलयपुण्डरीकाणि

मधुकञ्चेति । उत्पलादिरयं दाहपित्तरक्तविनाशनः ।

पिपासाविपहृद्रोगच्छर्दिमूर्च्छाहरोगणः ॥

अर्थ—नीला कमल, लालकमल, कमोदनी (बघौला, नीलोफर) सौगन्धिक (नीलकमलके आकार सुगंधवाला) कुवलय (कुडनील और सफेदीयुक्त कमल) पुंडरीक (सफेद कमल) और मुलहटी ये उत्पलादि गण हैं ॥

यह दाह, रक्तपित्त, प्यास, विपदोष, हृदयकेरोग, वमन और मूर्च्छा इनको हरण करे है ॥

मुस्तादिगण ।

मुस्ताहरिद्रादारुहरिद्राहरीतक्यामलकविभीतककुष्ठहै-  
मवर्तावचापाठाकटुरोहिणीशार्ङ्गशक्तिविषाद्राविडीभल्ला-  
तकानि चित्रकञ्चेति । एष मुस्तादिको नाम्ना गणः श्लेष्म-  
निपूदनः। योनिदोषहरः स्तन्यशोधनः पाचनस्तथा ॥

अर्थ—मोषा, हलदी, दारुहलदी, हरड, आमला, बहेडा, कुष्ठ (कूट)

सपेदवच, वच, पाठ, कुटकी, यवतिका, अतीस, छोटीइलायची, भिलावाँ और चीता ये मुस्तकादि गण हैं ॥

यह कफको दूरकरे, योनिदोषको हरण करे, स्तनसंबंधी दूधको शुद्धकरे और पाचन है ॥

त्रिफलागण ।

हरितक्यामलकविभीतकानि त्रिफला (?) ।

त्रिफला कफपित्तघ्नी मेहकुष्ठविनाशनी ।

चक्षुष्या दीपनी चैव विषमज्वरनाशिनी ॥

अर्थ—हरड़, बहेड़ा और आमला यह त्रिफला है यह कफ, पित्त, प्रमेह, कुष्ठ और विषमज्वर इनको नाशकरे नेत्रोंको परमहितकारी और अमिको दीपन करे है ।

त्रिकटुगण ।

पिप्पलीमरिचशृंगवेराणि त्रिकटुकम् ।

व्यूषणं कफमेदोघ्नं मेहकुष्ठत्वगामयान् ।

निहन्यादीपनं गुल्मपीनसाश्रयल्पतामपि ॥

अर्थ—सोंठ, मिरच और पीपल ये त्रिकटुकगण हैं इसको व्यूषण कहते हैं यह कफ, मेदा, प्रमेह, कोठ, त्वचाके रोगोंको, गोला, पीनस और मंदाभि इन सबको दूरकरे और अमिको दीपन करे है ॥

आमलक्यादिगण ।

आमलकीहरीतकीपिप्पल्यश्चित्रकश्चेति ।

आमलक्यादिरित्येष गणःसर्वज्वरापहः ।

चक्षुष्यो दीपनो वृष्यःकफारोचकनाशनः ॥

अर्थ—आमला, हरड़, पीपल और चीतेकी छाल ये आमलक्यादि गण हैं यह सर्व ज्वरोंको और कफ तथा अरुचिको नाश करे, नेत्रोंको हितावह, दीपन और वृष्य है ॥

चप्वादिगण ।

त्र्युसीसताम्ररजतकृष्णलोहसुवर्णानि लोहमलश्चेति ।

गणस्त्र्युपादिरित्येष गरकिमिहरःपरः ।

**पिपासाविप्लवद्रोगपाण्डुमेहहरस्तथा ॥**

अर्थ—रांग, सीसा, ताम्बा, चांदी, खेडीलोह, सुवर्ण ( सोना ) और लोह-मल ( लोहकीटी ) ये त्रिधादि गण कृत्रिम विषदोष, कृमिरोग, प्यास, विपदोष, हृदयरोग, पांडुरोग और प्रमेह रोग इनको हरण करे ॥

लाक्षादिगण ।

**लाक्षारेवतकुटजाऽश्वमारकद्रुफलहरिद्राद्वयनिम्बसप्त-  
च्छदमालत्यस्त्रायमाणा चेति ।**

**कपायस्तिक्तमधुरःकफपित्तार्तिनाशनः ।**

**कुष्ठक्रिमिहरश्चैव दुष्टघ्नविशोधनः ॥**

अर्थ—लाख, आरेवत ( अमलतास ) इन्द्रजौ, कनेर, कायफल, हरदी, दारुहरदी, नीम, सतोना, मालती और त्रायमाण, यह लाक्षादिगण कपेला, कडुआ, मिष्ट ऐसा है । तथा कृमिकुष्ठको नाशकरे तथा दुष्टनासुर आदि फोड़ोंको शोधन करे है ॥

लघुपंचमूलगण ।

**पञ्च पञ्चमूलान्यत ऊर्ध्वं वक्ष्यामः । तत्र त्रिकण्टकवृ-  
हतीद्वयपृथक्पर्णी विदारिगन्धा चेति कनीयः ।**

**कपायतिक्तमधुरं कनीयः पञ्चमूलकम् ।**

**वातघ्नं पित्तशमनं बृंहणं बलवर्द्धनम् ॥**

अर्थ—अब पांच पंचमूलोंको कहते हैं। तहां गोखरू, छोटीकटेरी, बड़ीकटेरी, पृष्टपर्णी और शालपर्णी यह छोटा पंचमूल है । यह कपेला, कडुआ और भीठा है तथा वात और पित्तको शमन करे, बृंहण और बलको बढ़ाता है ॥

बृहत्पंचमूल ।

**वित्वाग्निमन्थदुंदुकपाटलाकाशमय्यश्चेति महत् ।**

**सतिक्तं कफवातघ्नं पाके लघ्वाग्निदीपनम् ।**

**मधुरानुरसश्चैव पञ्चमूलं महत्स्मृतम् ॥**

अर्थ—बेलगिरी, अरनी, स्योनाक, पाटल और कंभारी ये बृहत्पंचमूल है यह कडुआ है लिये भीठा है, कफ वादी इनको नष्टकरे, पचने पर हलका और आग्निको दीपन करे है ॥

दशमूल ।

अनयोर्दशमूलमुच्यते ।

गणःश्वासहरो ह्येष कफपित्तानिलापहः ।

आमस्य पाचनश्चैव सर्वज्वरविनाशनः ॥

अर्थ—छोटे और बड़े दोनों पंचमूलोंके मिलानेसे दशमूल होता है । यह दशमूलगण श्वासरोग, कफ, पित्त और वादी तथा ज्वरको नाशकरे और आमको पाचन करे है ॥

वल्लीपंचक तथा कंटकपंचक ।

विदारीसारिवारजनीगुडूच्योऽजशृङ्गी चेति वल्ली-  
संज्ञः । करमर्दत्रिकण्टकसैरीयकशतावरीगृध्रन-  
ख्य इति कण्टकसंज्ञः ॥

रक्तपित्तहरौ ह्येतौ शोफत्रयविनाशनौ ।

सर्वमेहहरौ चैव शुक्रदोषविनाशनौ ॥

अर्थ—विदारीकंद, सरिवन, हलदी, गिलोय और मेढासिंगी ये वल्लीपंचक हैं । करोंदा, गोखरू, कटसरेया, सतावर, गृध्रनखी ये कंटकपंचमूल हैं ॥

वल्ली पंचक और कंटक पंचक, दोनोंगण रक्तपित्तको हरणकरे, त्रिविध शोथरोगको नाशकरे तथा सर्वमेह और शुक्रके दोषको हरणकरे है ॥

तृणपंचक ।

कुशकाशनलदर्भकाण्डेशुक इति तृणसंज्ञकः ।

मूत्रदोषविकारश्च रक्तपित्तं तथैव च ।

अन्त्यःप्रयुक्तःक्षीरेण शीघ्रमेव विनाशयेत् ॥

अर्थ—कुश, काश, नरसल, डभा ( डाभ ) और कांडेशुक ( सरपत्ता ) ये तृणपंचक हैं । यह मूत्रदोष तथा मूत्रके विकारोंको रक्तपित्तको शीघ्र दूरकरे है पाचोंकेगुणएकश्लोकसेकहते हैं ।

एषां वातहरावाद्यावन्त्यःपित्तविनाशनः ।

पञ्चकौ श्लेष्मशमनावितरौ परिकीर्तितौ ॥

अर्थ—इन पांचों पंचकोंमें आदिके दोपंचक ( लघुपंचमूल और

बृहत्पंचमूल ) वादीको हरण करते हैं और अंत्यपंचक ( तृणपंचमूल ) पित्तको शमन करे है । और बीचके ( वल्लीसंज्ञक और कंटकसंज्ञक पंचमूल ) कफको शमन करे है ॥

**त्रिवृतादिकमन्यत्रोपदेक्ष्यामः ।**

अर्थ-त्रिवृतादिकगण अन्यत्र कहिये आगे संशोधन संशमनीयाध्यायमें कहेंगे ॥

इनकोसंक्षेपत्वदिखातेहैं ।

**समासेन गणाद्ध्येते प्रोक्तास्तेष्वन्तु विस्तरम् ।**

**चिकित्सितेषु वक्ष्यामि ज्ञात्वा दोषबलावलम् ॥**

अर्थ-ये संक्षेपसे ( औषधोंके ) गण कहे हैं दोषोंका बलावल विचारके आगे चिकित्सास्थानमें इनको विस्तारसे वर्णन करेंगे दोषोंका बलावल कहनेसे संपूर्ण परीक्षाओंका ग्रहण जानना ॥

इन गणोंका क्याकरे इसवास्ते कहतेहैं ।

**एभिलैषान् कपायांश्च तैलं सर्पिपि पानकान् ।**

**प्रविभज्य यथान्यायं कुर्वीत मतिमान् भिषक् ॥**

अर्थ-कुशलवैद्य इन औषधोंका यथाक्रम विभाग करके लेप, कपाय ( शृतशीत, स्वरस, फांट, कल्क, आदि पांच कपाय ) तैल, घृत और मंडादिकोंकी कल्पना करे ॥

औषधरक्षणकीविधि ।

**धूमवर्षानिलकुंदैः सर्वतुण्ड्वनभिद्रुते ।**

**ग्राहयित्वा गृहे न्यस्येद्विधिनौषधसंग्रहम् ॥**

अर्थ-विविध औषधसंग्रहको लेकर धुआ, वर्षा, हवा और कुंदोंसे सर्व ऋतुमें न बिगडने पावे ऐसे उत्तम मकानमें औषधोंको रखनी चाहिये ॥

इस द्रव्यगणकी कैसेयोजनाकरे सो कहतेहैं ।

**समीक्ष्य दोषभेदांश्च गणान् भिन्नान् प्रयोजयेत् ।**

**पृथङ्मिश्रान् समस्तान् वा गणं वा व्यस्तसंहतम् ॥**

अर्थ-वैद्य दोषोंको पृथक् २ देखके अमिश्रित गणोंकी योजना करे



तथा द्विदोष मिले देखके मिश्रित गणोंको देवे और संपूर्ण मिले दोष देखके तीनों गणोंको मिलायके देवे ॥

इति द्रव्यसंग्रहणीयाध्याय समाप्त ।

पहलीअध्यायमें लिखआये हैं कि, “त्रिवृतादिमन्यत्रोपदेक्ष्यामः” अर्थात् त्रिवृतादिगण आगे ( संशोधन संशमनीयाध्यायमें ) कहेंगे अतएव हमसंशोधनसंशमनीयाध्यायको कहते हैं ॥

## अथातः संशोधनसंशमनीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ—अब संशोधन और संशमनीयअध्यायकी व्याख्या करते हैं । पूर्व द्रव्य संग्रहणीयाध्यायमें व्याधिके नाशक द्रव्योंके गण कहे और इस संशोधनसंशमनीयाध्यायमें दोषोंके प्रायः नाशकरी पचकर्मोंपयोगी शोधन द्रव्यसंग्रहणोंको तथा वातादि शमनद्रव्य गणोंको कहेंगे । तहां संशोधन दो प्रकारका है, जैसे—वमन और विरेचन, तहां विरेचनके पूर्व वमन कराते हैं इस कारण वमनद्रव्यगणको कहते हैं ॥

वमनद्रव्यगण ।

मदनकुटजजीमूतकेक्षाकुधामार्गवकृतवेधनसर्पपवि  
डङ्गपिप्पलीकरअप्रपुत्राटकोविदारकर्बुदरारिष्टा  
श्वगन्धाविदुलबन्धुजीवकश्वेतासणपुष्पीविम्बीव  
चामृगेर्वारुचित्रा चेत्युर्ध्वभागहराणि । तत्र कोवि-  
दारपूर्वाणां फलानि । कोविदारादीनां मूलानि ॥

अर्थ—मैनफल, इन्द्रजौ, चंदाल, कडुईतूची, धामार्गव ( पीले फूलकीतो-  
रई ) कृतवेधन ( सपेद फूलकीतोरी ) सपेदसरसो, वायपिडग, पीपल,  
कजा, पवार, कोविदार ( कचनारकाभेद ) कर्बुदार ( लिसोडे, लेहसुआ )  
नीम, असगंध, वेत, मझनियाकापुष्प, सपेदवच, सनडूली, कंदूरी, लाल-  
वच, इन्द्रायण, चित्रांजना ( जिसका फल परचलके आकारका होताहै )  
ये ऊर्ध्वभाग हरण कर्त्ता गण है अर्थात् वमनकारी है । तहां चंदालसे

पूर्व मैनफलादिकके फल लेने और कोविदार आदिकी जडलेनी चाहिये । यह औषध कोईतो अकेलीही उलटी लाती है और कोई वमनकारी द्रव्यके साथ मिलानेसे वमन (उलटी)लाती है ॥

विरेचनद्रव्यगण ।

त्रिवृता श्यामा दन्ती द्रवन्ती सप्तला शङ्खिनी विपाणि-  
का गवाक्षी छगलान्त्री स्नुक्सुवर्णक्षीरी चित्रककिणि-  
ही कुशकाशतिल्वककम्पिलकरम्भकपाटलापूगहरीत-  
क्यामलकविभीतकनीलीचतुरङ्गुलैरण्डपूतीकमहावृक्ष-  
सप्तच्छदार्कज्योतिष्मतीचेत्यधोभागहराणि ॥

तत्र तिल्वकपूर्वाणां मूलानि । तिल्वकादीनां पाटला-  
न्तानां त्वचः । कम्पिलकफलरजः । पूगादीनामेरण्डा-  
न्तानां फलानि।पूतीकार्गवधयोःपत्राणि।शेषाणां क्षीराणीति

अर्थ—लालजडकी निसोथ, सपेदनिसोथ, दंती ( दातन ) द्रवन्ती ( दंतीकाभेद जिसको बरी कहतेहैं ) यूहर, शंखिनी, भेटासिंगी, सपेद-  
फूलकी इन्द्रायण, विधायरा, सेहुंड, चोक, चीता, कटभी, कुश, काश,  
तिल्वक ( छोटीलोथ ) कवीला, पटोलकीजड, पाटल, सुपारी, हरड,  
आमला, बहेडा, नीली, अमलतास,अंड, कंजा, महावृक्ष ( यूहरकाभेद )  
सतोना और मालकांगनी यह संपूर्ण औषधी अधोभाग 'हरहैं' अर्थात्  
दस्त लाती हैं । इनमें तिल्वकसे पूर्व अर्थात् निसोथ आदि जितने  
द्रव्यहैं उनकी जड लेनी, तिल्वकसे लेकर पाटल पर्यंतकी त्वचा ( छाल )  
लेनी । कवीले आदिके फलका चूर्णले और सुपारीसे लेकर अंड पर्य-  
ंतके फल लेने, कंजा और अमलतासके पत्ते, बाकी जो रहीं उनका  
दूध लेना चाहिये ॥

वमनविरेचनकर्त्ताद्रव्यगण ।

कोशातकी सप्तला शंखिनी देवदाली कारवल्लिकाचेत्यु-  
भयतोभागहराणि । एषां स्वरसा इति ॥

अर्थ—तोरई ( कडवी तुरैयां ) यूहर, शंखिनी, बंदाल और करेला

यह दोनों भागसे हरणकर्त्ता है । अर्थात् वमन और विरेचन दोनों कराते हैं इनका स्वरसलेना ।

शिरोविरेचन ।

पिप्पलीविडङ्गनामामार्गशिशुसिद्धार्थकशिरीषमरिचकर-  
वीरविम्बीगिरिकर्णिकाकिणिहविचाज्योतिष्मतीकरञ्जा-  
कालर्कलशुनातिविपाशृङ्गवेरतालीशतमालसुरसार्जके-  
डुदीमेपशृङ्गीमातुलुङ्गीमुरुङ्गीपीलुजातीशालतालमधु-  
कलाक्षाहिड्डुलवणमद्यगोशकृद्रसमूत्राणीतिशिरोविरेचनानि  
तत्र करवीरपूर्वाणां फलानि । करवीरादीनामकान्तानां  
मूलानि । तालीशपूर्वाणां कन्दाः । तालीशादीनामज-  
कान्तानां पत्राणि । इड्डुदीमेपशृङ्गीत्वचौ । मातुलुङ्गीमु-  
रुङ्गीपीलुजातीनां पुष्पाणि । शालतालमधुकानां साराः ।  
हिड्डुलाक्षे निर्व्यासौ । लवणानि पार्थिवविशेषाः । म-  
द्यान्यासवसंयोगाः । गोमूत्रशकृद्रसौ मलाविति ॥

अर्थ-पीपर, चायविडंग, आंगा, सहैनना, सरसों, सिरस, कालीमि-  
रच, कनेर, कंदूरी, सेफन्द, कटभी, वच, मालकायनी, कंजा, आक,  
सपेदआक, लहसन, अतीस, अदरक, तालीसपत्र, तमालपत्र, तुलसी,  
कुठेरक, हिगोट, भेटासिंगी, विजौरा, अरण्यबीज, पीलू, चमेली, शाल,  
ताल, महुआ, लाख, हिंग, निमक, मद्य, गोबरकारस और गौका मूत्र,  
यह मस्तकफे, विरेचक हैं । कनेरके, जो, प्रथम हैं उनके फल लेवे,  
कनेरसे आदिले आकपर्यंतकी जड़ले, तालीससे जो प्रथम हैं उनके  
कंद लेवे, तालीससे लेकर कुठेरक तकके पत्ते लेवे । हिगोट और भेटा-  
सिंगी इनकी छालले, विजौरा अरण्यबीज और पीलू इनके फूलले, शाल,  
ताल, महुआ इनका सारले हिंग, लाख, इनका गोंदले, पृथ्वीका विकार  
निमक, आसव आदिके संयोगसे मद्य जानने गोबर और गोमूत्र आदि  
मल ये सब प्रसिद्धी हैं अतएव इनकी स्वरूपसे ही ग्रहण करे ॥

संशमनान्यत ऊर्ध्वं वक्ष्यामः ।

अर्थ-संशोधनको कहकर अब संशमन वर्गोंको कहतेहैं, उत्तम रीतिसे

दुष्ट दोषोंको विना निकालेही शमन करे और जो दोषदूषित नहीं हैं उनको बढ़ावे नहीं अर्थात् जो देहमें व्याधि है उसको संशमन करे अर्थात् दूर करे और जो व्याधि होनेवाली है उसको प्रगट न करे, उस औषधको संशमन कहते हैं । जैसे प्रमाण है “नशोधयति यदोषान् समात्रो-दीरयत्यपि॥समीकरोति च क्रुद्धान् तत्संशमनमुच्यते” दोषशब्द इस जगें दोषोंमें दोषोंके कार्योंमें और रोगमें भी कहा है ।

वातसंशमनोवर्गः ।

तत्र भद्रदारुकुष्ठहरिद्रावरुणमेपथुंगीवलातिबलार्त्तगल  
कच्छुरासल्लकीकुबेराक्षीवीरतरुसहचराग्निमन्थवत्साद  
न्येरण्डाश्मभेदकालर्काकेशतावरीपुनर्नवावसुकवसिर  
कांचनकभांगीकार्पासीवृश्चिकालीधत्तूर बदरयवकोलकु  
लत्थप्रभृतीनि विदारिगन्धादिश्च द्वे चाद्येपंचमूल्यौ स-  
मासेन वातसंशमनोवर्गः ॥

अर्थ—देवदारु, कूट, हलदी, घरना, भेटासिंगी, बला ( खिरेटी ) अति-बला ( फंगही ) फोह, कौछ, साल, काष्ठपाठर, वीरतरु, कटसरेया, अरनी, गिलीय, अंडपापानभेद, सपेदआक, आक, सतावर, सांठ, वक्-पुष्प, आंगा, धत्तरा, भारंगी, वनकपास, वृश्चिकपाक, पतंग, बेर, जों, बेर, कुलथी, विदारिगन्धादिगण और दोनोंपंचमूल, यह संक्षेपसे वात संशमन अर्थात् वातनाशक वर्ग है । ( प्रभृति ) शब्द ग्रहणसे उडद, तिल, और आलसी आदिका ग्रहण है ॥

पित्तसंशमनोवर्गः ।

चन्दनकुचन्दनहीवेरोशीरमञ्जिष्ठापयस्याविदारीशताव  
रीगुन्द्राशैवालकल्हारकुमुदोत्पलकदलीकन्दलीदूर्वाभू  
र्वाप्रभृतीनि काकोल्यादिन्यग्रोधादिस्तृणपंचमूलमिति  
समासेनपित्तसंशमनो वर्गः ॥

अर्थ—चंदन, पतंग वा लालचंदन, नेत्रवाला, खस, मजीठ, क्षीरका-कोली, विदारीकंद, शतावर, सुगंधितृण, शिवार ( काई ) लालकमल,

कमोदनी, नीलकमल, केला, कंदली [ नवीन अंकुर ] दूबां, मूवां, आदि काकोल्यादिगण, न्यग्रोधादिगण, तृणपंचमूल ये संक्षेपसे पित्तसंशमन वर्ग हैं आदिशब्दसे मधुर, कटुए और कषेले पदार्थोंका ग्रहण है ॥

कफसंशमनवर्ग ।

कालेयकागुरुतिलपर्णीकुष्ठहरिद्राशीतशिवशतपुष्पासर  
लारास्नाप्रकीर्योदकीर्यैगुदीसुमनःकाकादनीलाङ्गलकी  
हस्तिकर्णमुञ्जातकलामज्जकप्रभृतीनि वल्लीकण्टकपंचमू  
ल्यौपिप्पल्यादिर्वृहत्यादिमुष्ककादिर्वचादिः सुरसादि  
रारग्वधादिरिति समासेन श्लेष्मसंशमनो वर्गः ॥

अर्थ—कालेयक ( चंदनविशेष ) अगर, डुलडुल, कूट, हलदी, कपूर, सोंफ, निसोथ, रास्ना, कटेरी, कंजा, हिंगोट, चमेला, काकडोडी, कल-यारी, भूपलास, सुजातक, लामज्जक ( खसकाभेद ) इत्यादि तथा, वल्ली-पंचक, कंटकपंचक, दशमूल, पिपल्यादिगण, बृहत्यादिगण, सुष्ककादि-गण, वचादिगण, सुरसादिगण और आरग्वधादिगण ये संक्षेपसे कफ संशमनवर्ग हैं ॥

संशमनऔरसंशोधनद्रव्योंकीमात्रा ।

तत्र सर्वाण्येवौषधानि व्याध्यग्निपुरुषवलान्यभिसमी  
क्ष्य विदध्यात् ॥

अर्थ—तहां संपूर्ण संशोधन संशमन औषधोंको रोगीके रोगको अग्नि और उसके बल ( शक्ति ) को देखके अल्प मात्रा या बृहन् मात्रा देवे ॥

व्याधिमेंबलाधिक्यऔषधकेअवगुण ।

तत्रव्याधिवलादधिकमौषधमुपयुक्तंतमुपशमय्यव्याधिं  
व्याधिमन्यमावहति । अग्निवलादधिकमजीर्णं विष्टभ्य  
वा पच्यते। पुरुषवलादधिकं ग्लानिमूर्च्छाभिदानावहति ॥

अर्थ—तहां व्याधिके बलसे अधिक औषध देनेसे वह औषध उस रोग-को शमनकर दूसरी व्याधिकी प्रगटकर । इसीप्रकार जठरादिकी शक्तिसे अधिक औषध देनेसे वह व्याधि देरमें पचे, अथवा विष्टब्ध होकर पचे । इसीप्रकार पुरुषके बलसे अधिक औषध देनेसे ग्लानि, मूर्च्छा और मत्तावस्थाकी करे है ॥

संशोधनकेदोष ।

संशमनमेवं संशोधनमतिपातयति ।

अर्थ—इसीप्रकार संशमन और इस्से अधिक संशोधन दोषोंको करे हे अर्थात् रोगीके बलको नष्ट करे ॥

औषधकीहीनमात्रादेनेमेंदोष ।

हीनमेभ्यो दत्तमकिञ्चित्करं भवति ॥

अर्थ—रोगके बलसे हीनमात्रा रोगीको देनेसे वो व्यर्थ जाती है वस्से कुछ कार्य नहीं होता ॥

सिद्धीहेतुउपाधियोंकोदिखातेहैं ।

तस्मात् सममेव विदध्यात् ॥

अर्थ—तस्मात् कहिये वही न्यूनाधिक देनेसे रोगीको हित नहीं पड़े इसीसे रोगके अनुसार यथार्थ मात्रा वैद्यको देनी चाहिये ॥

( दुर्बलकोतीक्ष्णवमनविरेचनदेनानिपेध ) भवन्तिचात्र ।

रोगे शोधनसाध्ये तु यो भवेदोषदुर्बलः ।

तस्मै दद्याद्विषक् प्राज्ञो दोषप्रव्यावनं मृदु ॥

अर्थ—जो प्राणी शोधनसाध्य रोगमें दोषोंकरके दुर्बलहो ( किंतु उपवासादि करके दुर्बल न हो ) उसको बुद्धिमान् वैद्य दोषोंका निकालनेवाला नम्र विरेचन देवे ।

अवस्थाविशेषकरकेध्याधिदुर्बलकोभीशोधनकरे ।

चले दोषे मृदौ कोष्ठे नेक्षेतात्र बलं नृणाम् ।

अव्याधिदुर्बलस्यापि शोधनं हि तदा भवेत् ॥

अर्थ—दोषोंके अपने स्थानसे चलायमान होनेपर—तथा नम्रकोष्ठवालेफा ( आम अवस्थामें ) बलाबल न देखे, उपवासादिसे दुर्बल भी हो तथापि उसका शोधन करना चाहिये ॥

मध्यबलीतथामध्यअग्निवालेमनुष्यकोकितनी-

मात्रादेयहकहतेहैं ।

व्याध्यादिषु तु मध्येषु कायस्याञ्जलिरिष्यते ।

**विडालपदकं चूर्णं देयः कल्कोऽक्षसंमितः ॥**

अर्थ—व्याधिआदिके मध्यबल होनेसे काथ और शृतशीत आदिकी मात्रा चारपलकी देवे और चूर्ण १ तोलेदेवे, तथा कल्ककी मात्रा भी एक तोले मात्र कहिये ॥

**स्वयं प्रवृत्तदोषस्य मृदुकोष्ठस्य शोधनम् ।  
भवेदल्पबलस्यापि प्रयुक्तं व्याधिनाशनम् ॥**

अर्थ—यदि दोषस्वय निकलतेहो तथा मृदुकोष्ठ एवं हिनबली पुरुषको शोधन व्याधिनाशकहै ।

इति सशोधनसंशमनीयाध्याय समाप्त ।

**अथातो द्रव्यविशेषविज्ञानीयमध्यायं  
व्याख्यास्यामः ।**

अर्थ—अब द्रव्यविशेष विज्ञानीयाध्यायकी व्याख्या करतेहै ।

**पृथिव्यतेजोवाय्वाकाशानांसमुदायाद्द्रव्याभिनिर्वृत्तिरु-  
त्कर्षस्त्वभिव्यञ्जको भवतीदं पार्थिवमिदमाप्यमिदं  
तेजसमिदं वायव्यमिदमाकाशीयमिति ।**

अर्थ—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इनके एकत्र होनेसे द्रव्योंकी उत्पत्ति, वृद्धि और अभिव्यापकता ( प्रसिद्धी ) होतीहै। जैसे यह द्रव्य पार्थिव ( पृथ्वी संबंधी ) है, यह आप्य ( जलसंबंधी ) है, यह तेजस ( अग्निसंबंधी ) है यह वायुसंबंधी और यह आकाश संबंधी द्रव्य है ॥

उत्कर्ष उपाधिभेदको दिखातेहै ।

**तत्र स्थूलसारसान्द्रमन्दास्थिरस्वरगुरुकठिनगन्धबहुलमी-  
पत्कपायं प्रायशो मधुरमिति पार्थिवं तत् स्थैर्य्यबल-  
संघातोपचयकरं विशेषतश्चाधोगतिस्वभावमिति ।**

अर्थ—तहां स्थूलसार ( मोटापणा ) सान्द्र ( भराहुआ ) मंद, स्थिर, स्वर

( तीक्ष्ण ) गुरु ( भारी ) कठिन, अधिक गंधयुक्त, कुछ केपला और प्रायः मधुर, जो पदार्थ है उसको पार्थिव जानना अर्थात् यह पूर्वोक्त गुणयुक्त पदार्थको पृथ्वीसंबंधी जानना ॥

पार्थिवगुणवत्त्व कहकर उसीको क्रियावत्त्व कहते हैं कि, वह स्थिर (अचलता) बलसंघात ( दृढबल ) और उपचय ( वृंहण ) को करे है । विशेष करके इस पार्थिव द्रव्यका अधोगमनशील स्वभाव है अर्थात् यह नीचेको जाती है ॥

जलद्रव्यकी उत्कर्षउपाधि ।

शीतस्तिमितस्निग्धमन्दगुरुसरसान्द्रमृदुपिच्छिलर-  
सबहुलमीपत्कपायाम्ललवणं मधुररसप्रायमाप्यं तत्  
स्नेहनप्रहादनक्लेदनबन्धनविप्यन्दनकरमिति ॥

अर्थ-शीत, स्तिमित ( आर्द्रता ) स्निग्ध ( चिकना ) मंद, गुरु, सरस, सान्द्र, मृदु ( नरम ) पिच्छिल ( रहसदार ) रसबहुल ( बहुतरसवाला ) ईपत्कपाय ( कुछकेपला ) खट्टा, निमकीन और मधुर रसप्राय ऐसा आप्य ( जल ) पदार्थ होता है ॥

वह स्नेहन ( चिकनाई करनेवाला ) प्रहादन ( सुखोत्पादन ) क्लेदन ( आर्द्रकरता ) बंधन और विप्यन्दनकर ( झरने वाला ) इत्यादि गुणोंको यह आप्य द्रव्यकरे है ॥

तैजसद्रव्यके गुण और स्वभाव ।

उष्णतीक्ष्णसूक्ष्मरूक्षखरलघुविशदं रूपगुणबहुलमीप  
दम्ललवणं कटुकरसप्रायं विशेषतश्चोर्ध्वगतिस्वभाव-  
मितितैजसं तदहनपचनदारणतापनप्रकाशनप्रभाव-  
र्णकरमिति ॥

अर्थ-उष्ण, तीक्ष्ण ( तीखा चरपरा ) सूक्ष्म ( छिद्रोंमें प्रवेशकरता ) रूक्ष ( रूखा ) खर ( पेंना ) लघु ( हलका ) विशद ( फैलनेवाला ) रूप-गुणबहुल ( इसमेंरूपगुण अधिक रहता ) है, कुछ खट्टा, निमकीन, और कटुरसप्राय है तथा इसका स्वभाव ऊर्ध्वगति ( ऊपरको जानेवाला ) है ये तैजस पदार्थका स्वभाव है ॥

अब इसके गुण कहते हैं कि, ये दहन ( दाह ) पचन ( पाचक )



दारण ( चीरना ) तापन ( संतापकारी ) प्रकाशन ( उज्ज्वलाकरने वाला )  
तथा प्रभा, तेज और वर्ण गौर ( सफेद ) इत्यादि गुणोंको करे है ॥

वायवीयद्रव्यके गुणस्वभाव ।

सूक्ष्मरूक्षखरशिशिरलघुविशदं स्पर्शबहुलभीषत्तित्तं  
विशेषतः कपायमिति वायवीयं तद्वैशद्यलाघवग्लप-  
नविरूक्षणविचारणकरमिति ॥

अर्थ—सूक्ष्म, रूक्ष, खर, शिशिर ( शीतल ) लघु, विशद, स्पर्शबहुल  
( इसमें छूनेका गुण अधिकहै ) कुल कहुआ और विशेषकरके कपेला  
इत्यादिगुणवान् वायवीय अर्थात् वायुसंबंधी द्रव्य होता है ॥ -

अब इसके गुण कहते हैं कि, यह वैशद्य ( फैलना ) लाघव ( हलकापना )  
ग्लपन ( घृण्यताके विरुद्ध ) विरूक्षण ( रूक्षताकारक ) और विचारणकर  
( मनमें अनेक विचार करता ) इत्यादि पवन द्रव्यके गुण जानने ॥

आकाशीयद्रव्यके गुणस्वभाव ।

शुक्ष्णसूक्ष्ममृदुव्यवायिविविक्तमव्यक्तरसम् । शब्दबहुल-  
माकाशीयं तन्मार्दवशौषिर्यलाघवकरमिति ॥

अर्थ—शुक्ष्ण ( गिलगिला ) सूक्ष्म, मृदु, व्यवायी ( प्रथम सब देहमें  
व्याप्त होकर पकने वाला ) विविक्त ( पृथक् हुआ अर्थात् अवयवद्वारा  
करके शून्य ) अव्यक्तरस ( जिसमें मधुरादि रसकी प्रतीति नही ) तथा  
शब्दबहुल ( इसमें शब्दका गुण अधिकहै ) कुल कहुआ और विशेष  
करके कपेला इत्यादि गुणविशिष्ट आकाशीय अर्थात् आकाश संबंधी  
द्रव्य जानना ॥

अब इसके गुण कहते हैं कि, यह मार्दव ( मृदुता ) शौषिर्य ( छिद्र-  
भाववाला ) और हलका करनेवाला आकाशसंबंधी द्रव्य जानना ॥

सब औषधोंको पांचभौतिकत्व ।

अनेन निदर्शनेन नानौषधीभूतं जगति किञ्चिद्द्रव्य-  
मस्तीति कृत्वा तं तं युक्तिविशेषमर्थं वाभिसमीक्ष्य  
स्ववीर्यगुणयुक्तानि द्रव्याणि कर्मकराणि भवन्ति ॥

अर्थ—इस पूर्वोक्त पांचभौतिक द्रव्योंके कहनेसे यह दिताया कि, इस  
स्थावर जंगमात्मक जगत्में कोईसी द्रव्य अनौषधिभूत ( जो औषध

न कहलाती हो ) नहीं है ( अर्थात् जितनी ससारमें वस्तुहे वो सब औषधरूपहै ) इसीसे उनकी पृथक् २ युक्ति विशेष और अर्थ विशेषको विचार स्ववैर्यगुणयुक्त द्रव्य देनेसे वो कर्मके करनेवाली होती है ॥

तानि यदा कुर्वन्ति स कालः यत्कुर्वन्ति तत् कर्म, येन कुर्वन्ति तद्वैर्य, यत्र कुर्वन्ति तदधिकरणं, यथाकुर्वन्ति स उपायः यन्निष्पादयति तत्फलमिति ॥ ३ ॥

अर्थ—वो द्रव्य जिस कालमें क्रियाकरे है वो काल जानना और जो कार्य करे वो कर्म है, तथा जिस करके करे वो वैर्य है, जिसमें करे वो अधिकरणहै, जैसे करे वो उपायहै, एव उस क्रियाद्वारा जो रोग अथवा आरोग्य प्रगट होवे उसका फल कहते हैं ॥

औषधज्ञानमे अनुमानकी योजना ।

तत्र विरेचनद्रव्याणि पृथिव्यम्बुगुणभूयिष्ठानि पृथिव्या-  
पो गुर्व्यो गुरुत्वादधोगच्छन्ति तस्माद्विरेचनमधोगुण-  
भूयिष्ठमनुमानात् ।

अर्थ—तहाँ विरेचन द्रव्य ( निसोध, जमालगोटा आदि ) पृथ्वी और अबुगुणभूयिष्ठ है, तो अब जानना चाहिये कि, पृथ्वी और जल यह दोनों भारी है भारीहोनेसे दोनों नीचेकी जाति है, अतएव जितनी विरेचन द्रव्यहैं अर्थात् जुलाव लावेवाली औषधी है सो अधोगुणभूयिष्ठ कहिये अधिक

१ युक्ति विशेष करके जल, अग्नि, संस्कार भावना, मात्रा और काल आदिकी योजना विशेष जानना । २ अर्थ करके अनेक व्याधि नाशरूप प्रयाननका ग्रहण है । ३ काल करके इतीतोममसालक्षण संकटसमयक समानि आनुकूल्यता ग्रहण है । ४ कर्म-जन्मसे शोथनादि द्रव्योंका व्यापार जानना । ५ शक्तिहै । ६ अधिकरणजन्मसे पंच-महाभूताने बनेहुय इस मनुष्यदेहका ग्रहणहै । ७ उपाय इस जन्मसे, स्वरस, कल्म, शृतशीत, पात्र, घृत, तैल लव, मोदकादि प्रकार जानना । ८ इस मग भारी और हलकापेना निशोधआदि और मैनफल आदि द्रव्य प्रकारविशेष करके मिश्रित लेना केवल गुरु लघुत्व मात्रही करन नहा लेना, क्याकि यदि गुरु लघुत्व मात्रसेही दस्त के होती है ऐसा मानेग तो मलनी, पित्त आत्म और ममर आदि भारी है इनके खानस दस्त जाने चाहिये ।

करके नीचेको जानेवाली है । यह अनुमान ( अटकल ) से जाना जाता है ।  
[ उदाहरण जैसे-पत्थर ईंट, जल, तेल आदि जानने ] ॥

वमनद्रव्याण्यग्निवायुगुणभूयिष्ठान्यग्निवायू हि लघूलघु  
त्वाच्च तान्यूर्ध्वमुत्तिष्ठन्ति तस्माद्वमनमप्यूर्ध्वगुणभूयिष्ठमुक्तम् ॥

अर्थ-इसीप्रकार संपूर्ण वमनद्रव्य ( कैलानीवाली औषधी ) अग्नि और पवन गुणभूयिष्ठ है तो अब विचारना चाहिये कि, अग्नि और वायु ये दोनों हलके हैं हलके होनेसे यह दोनों ऊपरको जाते हैं इसी कारण वमनद्रव्य ऊर्ध्वगुणभूयिष्ठ ऐसा कहा है अर्थात् अनुमानसे जाना जाता है [ उदाहरण जैसे धूआँ और अग्निकीज्वाला आदि जानने ] ॥

उभयगुणभूयिष्ठमुभयतोभागम् ।

अर्थ-इसी प्रकार उभय गुणभूयिष्ठ द्रव्य अर्थात् जिसमें पृथ्वी और अग्नि इस प्रकार दो तत्वोंके गुण मिले हों तो अब विचारना चाहिये कि, पृथ्वी भारी है और अग्नि हलकी है तो ऐसी उभयगुणवाली औषधी दोनों तरफ गमन करती है अर्थात् दस्त और रद दोनों कराती है ऐसा अनुमानसे जाना जाता है ॥

आकाशगुणभूयिष्ठं संशमनं । संग्राहकमनिलगुणभूयिष्ठ-  
मनिलस्यशोपणात्मकत्वात् । दीपनमग्निगुणभूयिष्ठम् ।  
लेखनमनिलानलगुणभूयिष्ठम् । बृंहणं प्रथिव्यम्बुगुण-  
भूयिष्ठम् । एवमौषधकर्माण्यनुमानात्साधयेत् ॥

अर्थ-आकाशगुण भूयिष्ठ द्रव्यसंशमन है ( जैसे आकाश निश्चल और सर्वत्र व्यापक है उसीप्रकार संशमन औषधी है ) जिसमें पवन गुणभूयिष्ठ है वो द्रव्य संग्राहक ( शोषक ) है, ( जैसे पवन शोषण करता है ) इसी प्रकार संग्राही द्रव्य ( आर्द्रता शोषण करे है ) अग्नि दीप्त गुणवाला होनेसे अग्निगुणभूयिष्ठ द्रव्यभी दीपन जानना तथा पवन और अग्निगुणभूयिष्ठ द्रव्य लेखन अर्थात् कफ भेदको पतला करने-वाला जानना । पृथ्वी और जलगुणभूयिष्ठ द्रव्य बृंहण ( पुष्टकारी ) जाननी ) इसी प्रकार औषधोंके कर्मोंको अनुमानद्वारा यैद्य साधनकरे ॥

१ तथा संपद तीतर और लषा पक्षियावामास इत्यादि तो इनमें भी रद हाणी चाहिये । परंतु ऐसा नही होता तो यही सिद्धिआ कि, पक्षाघातोंमें मारी इत्यादि औषधोंसे दस्त और रद दोनों है ॥

भवन्ति चात्र ।

भूतेजोवारिजैर्द्रव्यैः शमं याति समीरणः ।

भूम्यम्बुवायुजैः पित्तं क्षिप्रमाप्नोति निर्वृतिम् ॥

खतेजोऽनिलजैः श्लेष्मा शममेति शरीरिणाम् ।

अर्थ—तद्वा पृथ्वी, तेज और जलगुणभूयिष्ठ द्रव्यसे बादी शमन होती है । पृथ्वी जल और वायुगुणभूयिष्ठ द्रव्यसे पित्त तत्काल शांति होता है । एवं आकाश, अग्नि और पवनगुण बहुलद्रव्यसे मनुष्योंका कफ शांति होता है ॥

वियत्पवनजाताभ्यां वृद्धिमाप्नोति मारुतः ॥

आग्नेयमेव यद्रव्यं तेन पित्तमुदीर्यते ।

वसुधाजलजाताभ्यां बलासः परिवर्द्धते ॥

एवमेतद्गुणाधिक्यं द्रव्ये द्रव्ये विनिश्चितम् ।

द्विशो वा बहुशो वापि ज्ञात्वा दोषेष्वचारयेत् ॥

अर्थ—तथा आकाशपवनजन्य औषधोसे बादी बढती है, अग्निगुण संबंधी द्रव्यसे पित्त बढता है और पृथ्वीजलजन्य औषधोंसे कफकी वृद्धि होती है । इसप्रकार प्रत्येक द्रव्यमें गुणाधिक्य जानना, उन दो दो गुणोंसे तथा तीन २ गुणोंसे उत्पन्न द्रव्योंकी दो दो दोषोंमें अथवा बहु-तसे दोषोंमें विचार करके देवे ॥

तत्र यइमे गुणा वीर्यसंज्ञकाः शीतोष्णस्निग्धरूक्षमृदु-

तीक्ष्णपिच्छिलविशदास्तेषां तीक्ष्णोष्णावाग्नेयो । शीत-

पिच्छिलावम्बुगुणभूयिष्ठो । पृथिव्यम्बुगुणभूयिष्ठः स्नेहः ।

तोयाकाशगुणभूयिष्ठं मृदुत्वं । वायुगुणभूयिष्ठं रौक्ष्यम्

क्षितिसमीरणगुणभूयिष्ठं वैशद्यम् ।

अर्थ—तहां शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, मृदु, तीक्ष्ण, पिच्छिल, विशद, ये जो वीर्यसंज्ञक गुण हैं इनमें तीक्ष्ण और उष्ण ये अग्निसंबंधी गुण हैं । शीत और पिच्छिल अंबुगुणभूयिष्ठ हैं अर्थात् जल संबंधी हैं । पृथ्वी और अंबुगुण-भूयिष्ठ स्नेहगुण हैं । जल और आकाशगुणभूयिष्ठ मृदुगुण हैं । रूक्षगुण पवनभूयिष्ठ हैं पृथ्वी और पवनगुणभूयिष्ठ विशद गुण हैं ॥

गुरुलघुविपाकावुक्तगुणौ । तत्रोष्णस्निग्धौ वातघ्नौ ।

शीतमृदुपिच्छिलाः पित्तघ्नाः । तीक्ष्णरूक्षविशदाः

श्लेष्मघ्नाः । गुरुपाको वातपित्तघ्नः । लघुपाकः श्लेष्मघ्नः ।  
 तेषां मृदुशीतोष्णाः स्पर्शग्राह्याः । पिच्छलविशदौचक्षुः  
 स्पर्शाभ्याम् । स्निग्धरूक्षौ चाक्षुषौ । शीतोष्णौ सुख-  
 दुःखोत्पादनेन । गुरुपाकः सृष्टविणमूत्रतया कफोत्क्ले-  
 शेन च । लघुर्वद्वविण्मूत्रतया मारुताकोपेन च । तत्र  
 तुल्यगुणेषु भूतेषु रसविशेषमुपलक्षयेत् । तद्यथा ।  
 मधुरो गुरुश्च पार्थिवः मधुरः स्निग्धश्चाप्य इति ।

अर्थ—लघु और गुरु विपाक दोनोंके गुण प्रथम कह आए हैं । उष्ण और स्निग्ध वीर्यसंज्ञक गुण वातको शमन करते हैं । शीत मृदु और पिच्छल वीर्यसंज्ञक गुण पित्तको । तीक्ष्ण रुक्ष और विशदवीर्यसंज्ञक गुण कफको शमन करते हैं ॥

गुरुपाक वातघ्न है । लघुपाक कफघ्न है । इनमें मृदु शीत और उष्णगुण स्पर्शनेन्दी अर्थात् त्वचाकरके ग्राह्य है । पिच्छल ( गिल गिला ) और विशद दोनों चक्षुःनेन्दी तथा स्पर्शनेन्दी करके ग्राह्य है । स्निग्ध रुक्ष नेत्र करके । शीत और उष्ण सुखदुःखसे उत्पादन से ग्राह्य हैं अर्थात् प्रतीत होते हैं ॥

तहाँ मलमूत्रके निकलनेसे और कफके उत्क्लेशकरके गुरुपाक दुआ जानना, तथा मलमूत्रके न उतरनेसे और वायुके कुपित होनेसे लघुपाक दुआ जानना तहाँ तुल्यगुण पृथिव्यादि भूतोंमें रसविशेषको जाने । जैसे मधुर और गुरु ये पृथ्वीके हैं और मधुर स्निग्ध ये जलके हैं ॥

भवति चात्र ।

गुणा य उक्ता द्रव्येषु शरीरेष्वपि ते तथा ।

स्थानवृद्धिक्षयास्तस्मादेहिनां द्रव्यहेतुकाः ॥ ४ । ५।६

अर्थ—जो बीस गुण द्रव्य ( औषधादिक ) में कहे हैं वो इस देहमें भी हैं अतएव है, वो स्थान ( दोष, धातु, मलकी साम्यता ) वृद्धि ( दोषादिकोंकी अधिकता ) और हास ( दोषादिकोंके घटने करके ) पांचभौतिक द्रव्यके हेतु होते हैं । अर्थात् जैसे २ दोषधातु मलादिक इस प्राणीकी देहमें घटते बढ़ते हैं तैसे २ पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाशजन्य द्रव्योंको इस देहमें घटाते बढ़ाते हैं यह अध्याय सब धैर्योंका विचारने योग्य है ॥ इति श्रीमाधुर कृष्णलालतनय दत्तराम संफलिते आयुर्वेदोद्धारि बृहन्निघण्टुरत्नाकरे द्रव्यविशेष विज्ञानीयाध्यायः समाप्तः ॥

## अथातो हिताहितीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ—अब हम हिताहितीय अध्यायकी व्याख्या करते हैं। अर्थात् इस-प्राणीको ये वस्तु हित ( पथ्य ) हैं और ये वस्तु अहित ( अपथ्य ) हैं, इस दोनोंका इस अध्यायमें वर्णन किया जावेगा ॥

प्रथमऔरोंकेमतकोकहतेहैं ।

यद्वायोः पथ्यं तत्पित्तस्यापथ्यमित्यनेन हेतुना न किञ्चिद्रव्यमेकान्तेन हितमहितं वास्तीति केचिदाचार्या ब्रुवते तत् न सम्यक् ॥

अर्थ—जो वस्तु वादीके रोगमें पथ्य है वह पित्तके रोगमें अपथ्य है [ कारण यह है कि, वादीको वही वस्तु दूर करेगी जो गरम होवेगी और जो गरम है वह अवश्य पित्तके रोगमें अपथ्य होवेगी जैसे तेल और कांजी है ] इस हेतुसे कोईसी द्रव्य निरंतर हितकारी नहीं होसके क्योंकि पित्तको अहितकारी है और न निरंतर अहितकारी होसकी है कि, वातको हितकरे। ऐसे कोई आचार्य कहते हैं, परंतु उनका यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि नहीं है सो कहते हैं ॥ अपना मत कहते हैं ।

इह खलु यस्माद्रव्याणि स्वभावतःसंयोगतश्चैकान्तहितान्येकान्ताहितानि हिताहितानि च भवन्ति ॥

अर्थ—इस सौश्रुतग्रंथमें द्रव्य, स्वभाव(प्रकृति)से और संयोगसे निरंतर

हे बृहन्निधदुरत्नाकरके ग्राहक मित्र गणहो ! इस हिताहितीयाध्यायके नीचे हम चरकसे यज्ञ-पुरषीयाध्यायका केवल भाषांतरमात्र करके आपकी सेवामें निवेदन करते हैं यदि आप प्रसन्न होकर इसको स्वीकारकरेगे तो हम अपने परिश्रमको सफल मानेंगे ॥

श्रीहरि.—प्रहिले मन्त्रज्ञ धर्मस्वरूप भगवान् पुनर्वसु आश्रेय जी महर्षियोंके साथ यह वार्त्ता चली कि आत्मा, इन्द्री, मन और इनके अर्थ इनका समूह यह पुरुष-संज्ञक है इस पुरुषका और पुरुषके देहमें जो रोग उत्पन्न होते हैं उनके मध्यमही रोगोत्पत्तिका निश्चय किसप्रकारहो । तब उससमयमें काशीपति जिसको वामकभी कहते हैं वो सब ऋषियोंको मणामकर अपनी समती इसप्रकार कहने

१ जो संपूर्ण अवस्थाओंमें लूटे नहीं वो द्रव्यकी प्रकृती है। जैसे अग्निमें उष्णत्व और जलमें द्रवत्व, तो यही उष्णत्व और द्रवत्व यही अग्नि और जलद्रव्यकी प्रकृति जाननी ।

हितकारी और निरंतर अहितकारी एवं निरंतर हिताहित कर्ता होती हैं। इस जगह चकार जो पड़ा है इससे संयोगमें स्वभावभी हेतु जानना तथा देश, काल, मात्रा, संस्कार ये सब स्वभावके संबंधसे जानने ॥

प्रथमएकांतहितोंको कहते हैं ।

तत्रैकान्तहितानि जातिसात्म्यात् सलिलघृतदुग्धो  
दनप्रभृतीनि ॥

लगाकि, यह पुरुष जिन कारणोंसे होता है वही कारणजन्य इसके देहमें व्यापिहोती है यह बात जो मैंने कही है हेऋषिहो ! यह ठीक है या नहीं ? तब उस सभाके मध्यमें श्रीपुनर्वसु आत्रेय महर्षि सब ऋषियोंके प्रति बोले कि, हेऋषिहो ! तुम सब अचित्य ज्ञान विज्ञान करके संशय रहितहो आपही इन महात्मा काशीराजके संशयको दूरकरो । यह वचन सुन मौद्गल्य ऋषि बोले कि,—

यह पुरुष आत्मासे उत्पन्न होता है अतएव इसके जो रोग होते हैं वो भी सब आत्मजन्य हैं अर्थात् आत्मासे मगट होते हैं । यह पुरुष कर्मोंको संचय फरता है अतएव उन कर्मोंके फलको भोगता है, ये जितने अत्माजन्य सुखदुःख हैं वह सुखदुःख चैतन्यरूपको नहीं हैं यह मौद्गल्यके वचन सुन शरलोमा ऋषि बोलेकि,—

यह आपका कथन ठीक नहीं है, क्योंकि आत्मासे आत्मा नहीं हो, न यह पुरुष आपको दुखदाई कर्मोंका संग्रह करता है । इसका यह कारण है कि, दुःखोंसे द्वेषकर्ता प्राणी अपनी आत्माको दुखदाई व्याधियोंमें कदाचित् नियुक्त नहीं करनेका । कदाचित् सब ऋषि प्रश्नकरे कि, फिर यह पुरुष कैसे होता है.

तहां शरलोमा अपने मतको कहे हैं कि, यह सत्त्वसंज्ञक मन रजोगुण तमोगुणसे मिलाहुआ इस मनुष्य देहका और इस मनुष्यदेहमें होनेवाले रोगोंका कारण है यह शरलोमाके वचन सुन वाणीविद् ऋषि बोलेकि,—

यह आपका कहना ठीक नहीं है क्योंकि एक मनही इनका कारण नहीं होसका देहके अंतमें न शरीररहे न शरीरके रोगरहे न मन रहता है इससे मेरी समझमें यह आता है कि, संपूर्ण प्राणी राजसी अर्थात् रजोगुणसे मगट है और संपूर्ण व्याधिभी राजसी है । यह शरलोमाके वचन सुनके हिरण्यश्र ऋषि बोलेकि,

यह कथन ठीक नहीं है । क्योंकि आत्मा राजसी नहीं है और इन्द्रियहित मनभी नहीं है और न शब्दादि जन्यरोग है । इससे मेरी समझमें यह आता है कि, यह पुरुष छःधातुओंसे मगट है और रोगभी पड़धातु जन्य है । अतएव यह छःधातु

अर्थ-तहां हिताहित द्रव्योंमें मनुष्य मात्रक जातिसात्म्य होनेके कारण जल, घृत, दूध, भात और आदिशब्दसे गेहूं जों आदि निरंतर सबको हितकारी है ॥

एकान्तअहित ।

**एकान्ताहितानि दहनपचनमारणादिपुप्रवृत्तान्यग्निक्षार-  
विपादीनि । संयोगादपराणि विपतुल्यानि भवन्ति ॥**

अर्थ-तथा दहन (जराना) पचन (पचाना) और मारणादिकोमें प्रवृत्त ऐसे अग्नि, क्षार, विपादिक ये सब प्राणिमात्रके जाति असात्म्य होनेसे निरंतर अहितकारी है, परंतु यह कथन नैरोग्य पुरुषोंके प्रति है, रोगीको तो रोगमात्राकी अपेक्षा करके अग्नि क्षारादि हितकारी ही होते हैं और बहुतसी द्रव्य द्रव्यांतरोके संयोग वशसे विषके तुल्य होजाती है ॥

बोका समूह है । इस वचनको सुन साय्यायन आद्यपरीक्षित और कुशिकऋषि बोलेकि, हमारी समझमें भी ऐसाही आता है । इसप्रकार कुशिकऋषिके वाक्यको सुन शौनकऋषि बोलेकि,

यदि आप इसपुरुषको षड्धातुसे उत्पन्नहुआ बतातेहों तो मैं आपसे पूछताहू कि, बिना माता पिताके कैसे यह पुरुष षड्धातुज प्रगट होसकई । इस्से मेरी समझमें ऐसा आताहै कि, पुरुषसे पुरुषहोताहै। गोसे गो । घोड़ेसे घोड़ा उत्पन्न होता है और जितने प्रमेहादिक रोग है वो पितृजन्य अर्थात् पितासेही होते हैं यह शौनक ऋषिके कहनेको सुनकर भद्रकाप्य नामक ऋषि बोला यह ठीक नहींहै ॥

क्योंकि अथे मनुष्यसे अथा बालक नहीं होता पहले मातापिताहीकी उत्पत्ति नहींथी फिर बालक कहसि हुआ, इस्से मेरी समझमें ऐसा आता है कि, यह प्राणी कर्मज है अर्थात् कर्मसे प्रगट होता है और जितने रोग इस प्राणीके होनेवाले हैं वह सब कर्मज हैं । क्योंकि कर्मके बिना न पुरुषका जन्म और न रोगोंका जन्म है । इस प्रकार भद्रकाप्यके वाक्यको सुन भरद्वाजबोलेकि, यह ठीक नहीं क्योंकि उस कर्मकाभी रचनेवाला उससे प्रथम था ऐसा देखागया है जिसकर्मका फल पुरुषहै ऐसा अकृतकर्म नहीं देखा गया, अतएव हमारी समझमें ऐसा आता है कि, इस प्राणीके और रोगोंके उत्पन्नहोनेमें स्वभावही हेतु है । जैसे

१ जो वस्तु आत्मा और देहके साथ रहकर देहम विकार न करे उसको सात्म्य कहते हैं ।



एकांतहिताहित ।

हिताऽहितानितु यद्वायोः पथ्यं तत्पित्तस्यापथ्य  
मित्यतः सर्वप्राणिनामयमाहारार्थं वर्गं उपदिश्यते ॥

अर्थ—और बहुतसी द्रव्य हितकारी तथा अहितकारी दोनों प्रकारकी हैं जैसे जो द्रव्य वादोंको पथ्य है वह पित्तको अपथ्य है इसप्रकार सकल द्रव्य हिताहित कर कहाती है, अब सब प्राणियोंके आहारके वास्ते एकांतहितवर्ग एकांत अहितवर्ग और एकांत हिताहितीय वर्गोंको कहते हैं ॥

द्रव्योंमें खर, देव, चल, उष्ण, तेज इनमें स्वभावही कारण है उसीप्रकार इस पुरुष और रोगोंके होनेमेंही स्वभाव कारण है ॥

इस वचनको सुन कांकायनऋषि बोले यह भी ठीक नहीं है क्योंकि यदि स्वभावही पुरुष और व्याधिका कारण है तो उस स्वभावका फल प्रारंभमेंही क्यों नहीं होता, भावोंके होने न होनेकी सिद्धी अथवा असिद्धी स्वभावसे होती है यदि स्वभावसेही पुरुष होता है तो उस ब्रह्माको रचनेवाला और मजापति कहते हैं वो व्यर्थ है और सतानहोनेके निमित्त जो मजाहितैषी दुःख उठाते हैं वोभी न होना चाहिये क्योंकि वह तो स्वभावसेही होता है ? फिर दुःख क्यों उठाना इसवास्ते मेरी बुद्धिमें यह आता है कि, यह पुरुष कालज अर्थात् कालसे उत्पन्न है और इसके होनेवाले रोगभी कालजन्य है और यह संपूर्ण जगत् कालके वश है । इसवास्ते सर्वत्र कालही कारण है ॥

इस प्रकार ऋषियोंके आपसमें विवाद ( झगडा ) करनेमें श्रीपुनर्वसु आश्रय बोले कि, भाईहो ! ऐसा विवाद मतकरो, क्योंकि जहां पक्षपात है वहां परस्पर निश्चय अर्थात् किसी बातका निर्णयद्वारा सिद्धांत करना दुष्प्राप्त्य है । वाद और मतिवादोंको कहते हैं उस २ पक्षकी समाप्तिको नहीं पहुँचे, जैसे तेलकी पानीका बेल चढते २ समाप्तिको नहीं पहुँचे तात्पर्य यह है कि, जैसे पानीका बेल बराबर उस पानीके और पास डोलाही कर्ता है, उसीप्रकार पक्षपाती दो विवाद करनेवालोंका झगडा नहीं समाप्त होवे, इसवास्ते आश्रय महर्षि कहते हैं कि, इस विवादको त्यागके अध्यात्म ( सिद्धांत ) का चिंतन करो ॥

जैसे अधिकारमें एक खबरसदा हुआ है उसको जाननेवाले जबतक नहीं जानेंगे कि, यावत् वह अंधकार दूर नहीं हो । जिन भावोंकी संपत्त्य इस प्राणीको उत्पन्न करेहे वोही उन प्राणियोंकी अनेक प्रकारकी व्याधियोंको उत्पन्न करे है ।

इसप्रकारका आश्रय ऋषिके वचन सुन काशीपति धामक फिर आश्रयसे बोला कि, हे भगो ! सपन्निमित्तजन्य प्राणिके सपन्निमित्तजन्य रोगके बदनमें क्या कारण है ?

तद्यथा-रक्तशालिपट्टिककङ्कुकमुकुन्दकपाण्डुकपीतकप्र-  
मोदककालकाशनकपुष्पककर्दमकशकुनाहतसुगन्ध-  
ककलमनीवारकोद्रवोद्दालकश्यामाकगोधूमवेणुयवादयः ॥

अर्थ-लालचावल, सांठीचावल, कंगू ( कांगुनी ) मुकुन्दक ( कालेरंगके  
सांठीचावल ) पाण्डुक ( पीले रंगके चावल ) पीतक, प्रमोदक, कालक, अश-  
नक, पुष्पक, कर्दमक, शकुनाहत, सुगंधक, ( देवशालि ) कलमक ( कल्मी )  
इत्यादि चावलोंकी जाति में हैं तथा वेणुयव ( बांसके चावल ) इत्यादि धान्य ।

तब आश्वेय महर्षि बोलेकि, अहित आहार अर्थात् कुप्य्य भोजन करना  
व्याधि होनेका कारण है, इस प्रकार कह रहे जो आश्वेय उनसे अभिवेश ऋषि  
बोला कि, हे भगवन् ! हित और अहित आहारका लक्षण वादरहित हम किसम-  
कार जाने तथा हम देखते हैं कि, मात्रा, काल, क्रिया, भूमि, देह, दोष, पुरुषकी  
अवस्थांतर और इनमें युक्तभी आहार अपने विपरीत गुणकरता है इस्से आप  
कहिये कि, इनमें क्या कारण है ? ॥

### हिताहित आहारके लक्षण ।

तब आश्वेय महर्षि बोले कि, प्रथममें तुमसे हितआहारके लक्षण कहता हूँ तो  
सुनो, हे अभिवेश ! जो आहार शरीरके समान धातुओंको मृत्तिमें स्थापनकरे  
अर्थात् घटने बढ़ने न देवे और जो धातु विपन्न हो रही हो उनको समानकरे  
उसको हित आहार जानना । यह सब प्राणियोंके सेवन करने योग्य है और  
इस कहे हुए लक्षणसे विपरीतहो वह आहार अहित है, उसको मनुष्य त्यागदेवे ॥

इस प्रकार हिताहित कहनेवाले भगवान् आश्वेयसे अभिवेश बोला कि, हे भ-  
गवन् ! यह जो आपने हिताहित कहा इसको क्या वैद्य जान जावेगे ? तब आश्वेय  
बोले कि, हे पुत्र ! जिनको गुणोंसे, द्रव्यसे, कर्मसे, संपूर्ण अवयवोंसे, मात्रासे  
और भावसे आहारतत्त्वका ज्ञान है वोही वैद्य जानसके है अन्यनहीं, परंतु जैसे  
सब वैद्य जाने उसको मैं कहता हूँ ॥

मात्रादि भावोंके कहनेसे उनके अनेक भेद होते हैं इसवास्ते आहार विधि  
विशेषोंको लक्षणसे और अवयवोंके व्याख्यान करे है ॥

एकप्रकारका आहार अर्थभेदसे वह स्थावर जगमात्मक दियोनि के कारण  
दोमकारका तथा द्विविध मभाव अर्थात् एक हितकारी दूसरी अहितकारी होकर  
उसको चारप्रकारसे उपयोग करते हैं जैसे भक्ष ( चूरा, खांड, चूर्ण आदि ) भोज्य

एणहरिण कुरङ्गमृगमातृकाश्वदंष्ट्राकरालककरकपोत-  
लावतितिरिकापिञ्जलवर्तीरवर्तिकादीनामांसानि ।

अर्थ—कालामृग, लालवर्णकामृग कुरंग (काले हरिणके बराबर कुछ २ लालरंगका ) मृगमात्रिका (कुरंगकी स्त्री ) श्वदंष्ट्रा ( अतिदुष्टकर्षटका ) कराल (कस्तूरीमृग) ककर (ककसपक्षी) कपोत (पिंडुकिया) लवा, काला-  
तीतर, सपेद तीतर, वटेर, चर्विक (वटेरका भेद घर्घर) इनसबका मांस ॥  
( लहडू पेडा आदि ) डेहा (अवलेह, ल्हापसी, चटनीआदि) और चोप्य (जो बूसने योग्य पदार्थ है जैसे ईसकी गहरी और आम इत्यादि ) ॥

उस आहारमें रसोंके भेदसे छःभकारका ( भोज, खट्टा, चरपरा, निमकीन, कटुआ और कषेडा ) स्वाद है । और बीस गुण हैं जैसे गुरु, लघु, शीत, उष्ण, श्लिथ, रुक्ष, मंद, तीक्ष्ण, स्थिर, रस, मृदु, कठिन, विषद, पिच्छल, शृक्ण, सर, सूक्ष्म, स्थूल, सांद्र, द्रव इनके आपसमें संयोग होनेसे असंख्यात भेद होनाते है ॥

द्रव्यसंयोग करणकी अधिकतासे उस आहारके जो जो विकारके अवयव अत्यंत मग्नहोते हैं, वह मनुष्योंकी प्रकृतिसे हिततम और अहिततम अधिक कल्पना होती है उन्हीं २ कल्पनाओंको हम व्याख्यान करते है ॥

तहां लालचावल शूकधान्योंमें पथ्यतम और उत्तमहै, इसीमकार फलीके धान्योंमें भूंग उत्तम, निमकोंमें संधानिमक, शाकोंमें ( तरकारियोंमें ) डोहीका साग उत्तमहै, हिरनके मांसमें कालेहिरनका मांस, पक्षि ( परंदों ) में डवा, बिलेमें रहने वाले जीवोंमें गोह, मछलियोंमें रोहू मछली, घीयोंमें गौफा घी, दूधोंमें गौका दूध, स्थावर अर्थात् वृक्षादिजातिके, तेलमें तिलपातेल, चर्बियोंमें सूअरकी चर्बी, रूपमृग चर्वियोंमें सेह ( जो फटिवाला जानवर होताहै उसकी ) चर्बी, मछलियोंकी चर्बीमें जो पाकहस नाम मछली होती है उसकी वसा, जलमें रहनेवाले पक्षियोंमें जलमुर्गावीकी चर्बी, पक्षियोंमें चिकिर (जो सानेकी चीजकी विस्तरके साने वाले ऐसे ) मुरगा, कबूतर, पिंडुकिया, और पिडाआदि उत्तमहै, चापेत्तोंके जीवोंमें बकरी हुंवा आदि पथ्यहै । फंदोंमें अदरस पथ्य है। फलोंमें मुनका, दास पथ्यहै। ईसके विकारोंमें मिथी वा पीनी उत्तम है ॥

ये आहारकी अर्थात् सानेयोग्य वस्तु सब मनुष्यकी प्रकृतिसे ही हितहै ( ये पदार्थ सबको साने चाहिये ) ये हित आहारसमूह मैंने संक्षेपसे बर्हते ॥

अपथ्यगण ।

अब अहित पदार्थोंको कहते हैं । शूकधान्योंमें जो शुष्य है, फलीवाटे अनानाई-

मुद्रवनमुद्रमकुष्ठकलायमसूरमङ्गल्यचणकहरेण्वाढकी  
सतीलाः । चिल्लिवास्तुकसुनिपण्णकजिवन्तीतण्डु  
लीयकमण्डूकपर्णः ॥

अर्थ-वनकी भूंग, भूंग, मोठ, मटर, मसूर, पीलेरंगकी मसूर, चना, गोलमटर, अरहर और केराव इतने फलीवाले धान्य, खेतकावधुआ, वनकावधुआ, चौपतिया, डोडी, चौलाई और ब्राह्मीधिसागोंमें ॥

में उदद अपप्य है, नदियोंमें बारिषका जल कुपप्य है। निमकोंमें ऊपर जमीनमें जो निमक होता है वह कुपप्य है। सागोंमें सरसोंका साग कुपप्य है। चौपाएन में गौका मास कुपप्य है [ इसी कारण हमारे हिन्दुओंमें गोमांस खाना निषेध है] अब मांसखाने वालोंसे हम मार्थना करते हैं कि, जब यह गोमांस खानेको निषेध करता है तो हे गोमांसभक्षीहो! तुम क्यों हठसे अवगुणकारी पदार्थको खाकर अपनी आत्मा और अस्मदादि हिंदुओंके दुश्मन होते हो] पक्षि (परदो) में कौएका मांस कुपप्य है। बिलोंमें रहने वालोंमें भेड़का कुपप्य है। मछलियोंमें चिलचिम मछली कुपप्य है। घृतोमें भेड़का घी कुपप्य है। दूधोंमें भी भेड़का दूध कुपप्य है। तेलोंमें स्थावर तैल ( अर्थात् वृक्षसबधी तेलोंमें ) कसूम ( करड ) का तेल कुपप्य है। जलसमीप रहनेवाले जानवरोंमें भैसकी चर्बी कुपप्य है। मछलीकी बसामें कुभीर नामक मछलीकी बसा कुपप्य है। जलमें रहनेवाले जीवोंमें जलीकका कुपप्य है। कदोंमें भूली कुपप्य है। पक्षियोंकी बसामें चिकिर पक्षियोंकी बसा कुपप्य है। जो वृक्षोंकी शाखा ( गुदे ) खाने वाले हैं उनमें हाथीकी बसा कुपप्य है। फलोंमें लकुच ( कटहर ) फल कुपप्य है। ईखके विकारोंमें उस ईखकी राव कुपप्य है। ये आहार की वस्तुओंमें ये सब प्रकृतिसे ही कुपप्यतम हैं इनमें जो मुख्य २ द्रव्य हैं सो हमने कही ॥

अब हिताहित अवयवरूप आहार विहारको फिर दूसरे माधान्यतासे और अनुबधसहित द्रव्योंका व्याख्यान करते हैं ॥

अन्न देहरक्षा करनेवालोंमें श्रेष्ठ है। जल माणरक्षकोंमें श्रेष्ठ है। मद्य श्रम हरनेवालोंमें श्रेष्ठ है। जीवनदाताओंमें दूध श्रेष्ठ है। पुष्ट करनेवालोंमें मांस श्रेष्ठ है।

\* गोमांसभक्षणनिषेधका कारण मुख्य यही है फिर भी जिह्वास्वादलपट सबनाश विधर्मा कथामानेगे 'प्राणजायपरवचननात्'। यह वचन 'इनही दुराग्रही पामरोंमें चार-तार्थ होता है नदा तो इस अभक्षको क्योंभक्षणकरे सम्भता इसी से प्रगटहोती है धन्यरे कल्पियुगके अठषड साले सम्भयो ॥

गव्यं घृतं क्षौद्रसैन्धवदाडिमामलकमित्येपवर्गःसर्वप्रा-  
णिनां सामान्यतः पथ्यतमः । तथा ब्रह्मचर्य्यनिवाताश-  
यनोष्णोदकनिशास्वप्नव्यायामाश्चैकान्ततः पथ्यतमाः ॥

अर्थ—घृतेमें गौकापी, सहत, निमकोमें सैधानिमक, विलायतीअनार  
अथवा अनारदाना और फलोंमें आमले इत्यादि कहेहुए वर्ग सब प्राणी-  
मात्रोंको सर्वथा हितहैं ॥

तथा ब्रह्मचर्य(स्त्रीसेवनसे वचना)निवात स्थानमें शयन करना, गरमज-  
लसे स्नान, रात्रिमें सोना और दंड कसरत करना, ये एकान्त हित है अर्थात्  
एक २ ही हित है ।

भोजनद्रव्य रुचि करानेवालोंमें निमक श्रेष्ठ है । हृदय मियोंमें खटाई श्रेष्ठ है । बल-  
कारियोंमें मुरगेका मांस श्रेष्ठ है । वीर्यके बढ़ाने वालोंमें मगरका वीर्य श्रेष्ठ है ।

कफपित्ताशकारियोंमें सहत उत्तम है । वातपित्ताशकर्ताओंमें घी  
उत्तम है । वातपित्तशमनकर्ताओंमें तेल उत्तम है । कफ हरणकारियोंमें वमन  
कराना उत्तम है । पित्तहरणकरनेवालोंमें जुलाब कराना उत्तम है । वस्तीकर्म वात  
हरणकर्ताओंमें उत्तम है । नम्र करनेवालोंमें पसीने निकालना यह कर्म उत्तम  
है । स्थिर करनेवालोंमें दंडकसरत करना उत्तम है । नपुंसक ( हिजडा ) करने  
वालोंमें खार ( सजीखार, जवाखार और निमक, आदि ) उत्तम है । अन्न द्रव्यरहित  
जो पदार्थ है उनमें रुचिकर्ताओंमें तैदुआ उत्तम है । हृदयके अहितकारियोंमें भेडका  
घी उत्तम है । देहमूलनेके रोग हरणकरनेवालोंमें बकरीका दूध उत्तम है । समानरु  
धिरके संग्रहण करनेवालोंके शांतिकरनेमें स्त्रीका दूध उत्तम है । कफ पित्तके संचय  
करनेवालोंमें भेडीका दूध उत्तम है । निद्रा उत्पन्न करनेवालोंमें भैंसका दूध उत्तम है ।  
देहके छिद्र रोकनेवालोंमें दही उत्तम है । कर्षण ( देहसुखानेवालों ) में समापसा-  
ई अन्न उत्तम है । देहमें रुखाई करनेवालोंमें कोदो अन्न उत्तम है । मूत्र पैदाकरने  
वालोंमें ईख उत्तम है । वादी पैदाकरनेवालोंमें जामुनका फल उत्तम है । कफ  
और पित्त करनेवालोंमें पूड़ी पिरामठे उत्तम है । अम्लपित्त करनेवालोंमें  
कुलथी उत्तम है । कफपित्तकरनेवालोंमें उडद उत्तम है । वमन, आस्थापनवस्ती,  
अनुवासन वस्ती इनके उपयोगी पदार्थोंमें मैनफल उत्तम है । सुखपूर्वक दस्तला-  
नेवालोंमें निसोथ उत्तम है, नरम जुलाबोंमें अमलतास उत्तम है । तीक्ष्णजुलाब  
लानेवालोंमें धूहरका दूध उत्तम है । शिरोविरेचनीयद्रव्योंमें सपेद आंग

एकान्तहितान्येकान्ताहितानि प्रागुपदिष्टानि । हिता-  
हितानि तु यद्वायोः पथ्यं तत्पित्तस्यापथ्यमिति ॥

अर्थ—एकान्तहित जल है और एकान्त अहित अग्नि ये प्रथम कह आये हैं और हिताहित वही जानना कि, जो वादीमें पथ्य है वो पित्तमें अपथ्य है॥

उत्तम है । पेटके कीड़े नाशकोंमें वायविहंग उत्तम है । विष हरणकरनेवाले, पदा-  
धोंमें सिरस उत्तम है । कोष्ठरोग हरणकरनेवालोंमें खैर ( खैरसार ) उत्तम है ।  
वादी हरणकरनेवालोंमें रास्ना उत्तम है । अवस्था स्थापनकरनेवालोंमें आमले  
उत्तम है । पथ्यवस्तुओंमें हरड उत्तम है । कृप्य और वातहरणकरनेवालोंमें  
अंडकी जड़ उत्तम है। दीपनीय, पाचनीय और अफरा हरण करनेवाली औषधोंमें  
पीपरामूल उत्तम है । दीपनीय गुदाका शूल और सूजन हरणकरनेवालोंमें  
शीतकी जड़ उत्तम है । हिचकी, श्वास, खांसी और पसवाड़ेके शूलहरण कर-  
नेवालोंमें पुहकरमूल उत्तम है । संग्राहक, दीपनीय और पाचनीयोंमें मोथा उत्तम  
है । शीतलकरना, दीपन, वमन और अतिसार, हरणकरनेवालोंमें नेत्रवाला  
( सुगंधवाला ) उत्तम है । संग्राहक और दीपनीयोंमें श्योनाक अर्थात् टेटू-  
उत्तम है । संग्राहक और रक्तपित्तनाशकोंमें अनंतमूल उत्तम है संग्राहक वातहर-  
दीपनी कफ और रुधिरके विबंधको नाशकरनेवालोंमें गिलोय उत्तम है । संग्राहक,  
दीपनीय और वातकफनाशकोंमें बेलफल उत्तम है । दीपनीय, पाचनीय, संग्रा-  
हक और सर्वदोष हरनेवालोंमें अतीस उत्तम है । संग्राहक और रक्तपित्तनाश-  
कोंमें उत्पल ( नीलाकमल ) कमोदनी और कमलका केशरा उत्तम है । पित्तक-  
फके शोषणकरनेवालोंमें धमासा उत्तम है । रक्तपित्तके अत्यंत गिरनेको दूर  
करनेवालोंमें गंधमिश्रु उत्तम है । कफपित्तरक्तके संग्राहक और शोषण करनेवा-  
लोंमें कूडाकी छाल उत्तम है । रक्तसंग्राहकनाशकोंमें कंभारीके फल उत्तम हैं ।  
संग्राहक, वातहर, दीपनीय और कृप्योंमें पृश्निपर्णी ( पिठवन ) उत्तम है । कृप्य  
और सर्वदोष करनेवालोंमें विदारीगंधा उत्तम है । संग्राहक और बंधवातहरण  
करनेवालोंमें खिरेटी उत्तम है । मूत्रकृच्छ्र और वादी हरणकरनेवालोंमें  
गोखरू उत्तम है । छेदनीय और भेदनीय दीपनीय अनुलोमनी और वातकफके  
नाशकर्त्ताओंमें अमलवेत उत्तम है । संसर्गीय और पाचनीय और  
बवासीरनाशकोंमें जौ उत्तम है, ग्रहणीदोष, बवासीर, घृतके विकार  
इनके नाशकरनेवालोंमें छाछ पीनेका अभ्यास उत्तम है। कृप्यहो और उदावर्त्तहरण  
कर्त्ताओंमें समान घृत, सत्तूका खानेका अभ्यास उत्तम है, दांतोंमें बल और रुचि-

## संयोगविरुद्ध ।

संयोगतस्त्वपराणि विपतुल्यानि भवन्ति; तद्यथा-  
वल्लीफलकरककरीराम्लफललवणकुलत्थपिण्याकदधि-  
तैलविरोहिपिष्टशुष्कशाकाजाविकेमांसमद्यजाम्बवाचिलि-  
चिममत्स्यगोधावराडांश्च नैकघ्यमश्रीयात् पयसा ॥

अर्थ—और बहुतसी द्रव्य संयोगहोनेसे विपके तुल्य होजाती हैं अर्थात् विपके समान एकांत अहित हो जाती हैं। जैसेबेलके फल ( पेठा, कोला, धीया, तोरई, आदि ) करक ( छत्राक, छतोना ) करील, बाँसकी कोपल, खटाईवाले फल, निमक, कुलथी, खल, दही, तेल, विरोहि ( जिस्केअंकुर नहो ) चावल्लोंका चून, सुखेसाग, मेंढका मांस, मद्य, जामुन, चिठचिलनामकी मछली, गोह और सूजरका मांस इन सबवस्तुओंको दूधके साथनभक्षणकरे ॥

कारियोंमें तेलके कुल्ले करनेका अभ्यास उत्तम है । निर्वाण ( शांतकरना ) और छेपकरनेवालोंमें चंदन और गूलर उत्तम है । शीतनाशक और छेपकी औषधोंमें रास्ना उत्तम है । दाह त्वचाके दोष, पसीने और छेपकारी औषधोंमें लामज्जक और खस उत्तम है । वातहर, उबटना और पसीनेवालोंमें कूट उत्तम है । नेत्रका-हितकारी, बालोंको हितकारी, कंठसुधारनेवाला वणको उज्ज्वल करनेवाला रंगने-वालोंमें और घावके भरने वालोंमें महुआ उत्तम है । माणसंज्ञामधानहेतुओंमें पवन उत्तम है । जल, स्तंभ, शीत, गूल, कंप इनके नाशकरनेवालोंमें अग्नि उत्तम है । आमदोष करनेवालोंमें अति भोजनकरना उत्तम है । अग्निको चैतन्यकारि-योंमें यथा अग्निके अनुसार भोजन करना उत्तम है । चेष्टा और व्यवहारोपसे वियोंमें सार्व्य ( अपनी आत्माको जो हितहोसो ) उत्तम है । आरोग्यकरनेवालोंमें यथा-समय भोजन करना उत्तम है । रोगीकरनेको मलमूत्रोंका वेग धारण उत्तम है । आहारके गुणोंमें तृप्तिहोना उत्तम है । मन प्रसन्न करनेवालोंमें मद्य ( दारू ) उत्तम है । धी, धृति, स्मृति, हरण करनेवालोंमें मद्यका अत्यंतसेवन उत्तम है । पेटमें दुष्टपाक करने वालोंमें भारी पदार्थोंका भोजन उत्तम है । सुख और परिणाम करनेवालोंमें एकवार भोजन करना हितकारी है । देहका शोषण करनेवालोंमें स्त्रीसंग उत्तम है । नपुंसककरने वालोंमें

क्वचित् विरुद्धकामी प्रयोगदिखाते है ।

रोगं सात्म्यञ्च देशञ्च कालं देहञ्च बुद्धिमान् ।

अवेक्ष्याभ्यादिकान् भावान् रोगवृत्तेः प्रयोजयेत् ॥

अर्थ—उदरादिकरोग, सात्म्य, देश, (अनूपादि) काल (शीतादिक) देह (स्थूलकृशादि) और अभ्यादिभाव कहिये जठराग्निआदिकी सामर्थ्य विचारके बुद्धिमान् वैद्य उक्त विरुद्धपदार्थोंको रोगीकोभीदेवे ॥

अत्यत शुक्रके वेग (स्तम्भनदवाई द्वारा) रोकना उत्तम है । देहके घटाने वालोमे अन्नका त्यागदेना उत्तम है । देहके मुखानेमे थोड़ा भोजन करना उत्तम है । ग्रहणीके दूषितकरनेमे अजीर्ण और अर्ध्यसन उत्तम है । विषाग्निकरनेवालोमे विषमाशन करना उत्तम है । दुष्ट रोगकरनेवालोमे विरुद्धवीर्य पदार्थ खाना उत्तम है । पथ्योमे प्रशम (कोष मोहादिकाजीतना) उत्तम है । संपूर्ण अपथ्योमें कुछभीकर्म न करना एक जगह बैठारहना उत्तम है । व्याधिके मुखोमे मिथ्यायोग उत्तम है । अलक्ष्मी (तेजबलादि) हरणकरनेवालोमे रजस्वला स्त्रीसे गमन करना उत्तम है । आयुकरनेवालोमें ब्रह्मचर्य उत्तम है ॥

सब वृथ्यामें मनको मसन्न रखना उत्तम है, अवृथ्य कारियोंमें दौर्मनस्य अर्थात् चित्तको दुःखित रखना उत्तम है । माणिके हरणकर्ता कर्मोंमें ठीक २ विचार के बिना करना उत्तम है । रोगबढानेवालोमें दुःखी रहना उत्तम है । परिश्रम हरणकरनेवालोमें स्नान करना उत्तम है । मसन्न कर्ताओमे हर्ष परमोत्तम है । शोषण करनेवालोमे शोक (सोच) करना उत्तम है । पुष्टिकारियोंमें मेथुनादि कर्मसे निवृत्ति होना उत्तम है । तद्राकरनेवालोमे निद्रा उत्तम है । यलबढाने वालोमे सर्वरस भोजन करना उत्तम है । दुर्बलकरनेवालोमे एकरसका सेवन करना उत्तम है । निकालनेयोग्योमे गर्भशतयका निकालना उत्तम है । उद्धारकरनेमे अजीर्ण उत्तम है । नम्र औषधोंके देनेमे बालक उत्तम है । याप्यकर्मोंमे वृद्ध उत्तम है । तीक्ष्ण औषध और परिश्रमसे बचानेवालोमे गर्भिणी स्त्री उत्तम है । गर्भधारणकर्ताओंमें मसन्न चित्त रहना उत्तम है ॥

दुश्चिकित्स्यरोगोमे सन्निपातका रोग उत्तम है । विषम किचित्सावाले रोगोंमें

१ सात्म्य आठ प्रकारका है जैसे जातिसात्म्य, आनुसात्म्य, औषधसात्म्य अन्नसात्म्य, रससात्म्य, देशसात्म्य, ऋतुसात्म्य, जलसात्म्य, । २ भोजनके ऊपर भोजन करना । ३ कभीथोड़ा और कभी अधिक कभी मिदोसा कभी अवेरी ।



अब कहते हैं कि हिताहितत्वनहीं है ।

अवस्थान्तर बाहुल्याद्रोगादीनाव्यवस्थितम् ।

द्रव्यं नेच्छन्ति भिषज इच्छन्ति स्वस्वरक्षणे ॥

अर्थ—रोगादिकेकी अवस्था विशेषाधिक्यतासे वैद्य यह द्रव्यहितहै, और यह अहितहै ऐसी द्रव्य व्यवस्था नहीं मानते, किंतु स्वस्थ रक्षणमें उस द्रव्य व्यवस्थाको मानते हैं ॥

आमका रोग श्रेष्ठ है । संपूर्ण रोगोंमें ज्वर श्रेष्ठ है । दीर्घरोगोंमें कुष्ठरोग श्रेष्ठ है । रोगोंके समूहोंमें राजयक्ष्मा रोग श्रेष्ठ है । अनुसंगिकरोगोंमें प्रमेह श्रेष्ठ है ॥

अनुश्रवणोंमें जोख लगाना उत्तम है । तंत्रोंमें वस्तिकर्म करना उत्तम है । औषध उत्पन्न होनेवाली संपूर्ण पृथ्वीभरमें हिमालय पर्वत श्रेष्ठ है । आरोग्य देशोंमें माहवारकी पृथ्वी उत्तम है । अहित देशोंमें अनूपदेश श्रेष्ठ है, आशा कर्त्ता रोगी उत्तम है । चिकित्साके अंगोंमें वैद्य श्रेष्ठ है । वर्जितोमे नास्तिक उत्तम है । क्लेशकारियोंमें हाँसी ठोरी करना श्रेष्ठ है । अनिष्टोंमें वैद्यकी आज्ञा न मानना श्रेष्ठ है । वमनके लक्षणोंमें जीका मचलाना श्रेष्ठ है । वैद्यके गुणोंमें औषधका योग जानना उत्तम है । औषधोंमें पहचान करना उत्तम है । साधनोंमें शास्त्रके साथ तर्क ( बहिश ) करना श्रेष्ठ है । कालज्ञान प्रयोजनोंमें संप्रतिपत्ति उत्तम है । रुजगारमें आपत्ति डालनेवालोंमें उद्योग ( कोशिश ) न करना श्रेष्ठ है । निःसंशय करनेवालोंमें दीठता श्रेष्ठ है । भयकारियोंमें असामर्थ्य होना श्रेष्ठ है । जो विद्या भाष पढ़ाहो उसमें बादकरना उस विद्याकी वृद्धिमें श्रेष्ठ है । शास्त्रमाप्ति होनेमें आचार्य श्रेष्ठ है । अमृत ( जरामरण रहितकरने ) में वैद्यविद्या श्रेष्ठ है । अनुष्ठानकरनेमें सद्बचन ( उत्तमवाणी ) श्रेष्ठ है । सर्वहितोंमें परित्याग उत्तम है, सुखोंमें सबका संन्यास श्रेष्ठ है ॥

इसप्रकार जो जो वस्तु निस २ में उत्तम हैं सबके १५२ एकसो बावन उत्तर सब रोगोंको दूरकरनेको मैं कहें । समान अर्थ उत्तम और निकृष्टोंका उदाहरण देकर दिखाए हैं तथा वातपित्त और कफ इनपर जो जो नाशकरनेमें हित हैं वो कहें हैं । वे मैं व्याधिहरणकर्त्ता जो जो मुख्य हैं सो सो कहें हैं निपुण वैद्य इनको विचारके चिकित्सामें प्रयोगकरे ॥

श्री आत्रेय महर्षिकहते हैं कि, जो वैद्य इसप्रकार करता है वो धर्म और कामनाओंको प्राप्तहोता है । इनमें आपको अमिय और अपप्य है उसको यह प्राणी

१ आदिशब्दसे सात्त्व्य और देशादिकोंका ग्रहण है ।

पूर्वोक्तअर्थकोस्पष्टकरतेहै ।

द्वयोरन्यतरादाने वदन्ति विषदुग्धयोः ।

दुग्धस्यैकान्तहिततां विषमेकान्ततोऽहितम् ॥

अर्थ—तहाँ स्वस्थ मनुष्यको इन दोनों विष और दूधमें विष सर्वथा एकान्त अहित और दूधको वैद्यजन हितकारी बताते हैं ॥

एवं युक्तरसाद्येषु द्रव्येषु सलिलादिषु ।

एकान्तहिततां विद्धि वत्स सुश्रुत । नान्यथा ॥

अर्थ—हेसुश्रुतवत्स! इसीप्रकार स्वस्थोपयोग प्रकारकरके रसादिद्रव्योंमें और जलआदिमें एकांतहितता जानना अन्यथा अर्थात् जो स्वस्थता हरण-करे उनमें एकांत अहितता जानना ॥

अतोऽन्यान्यपि संयोगादहितानि वक्ष्यामः । न च  
विरूढधान्यैर्वसामधुपयोगुडमापैर्वा ग्राम्यान्पौदक-  
पिशितादीनि नाभ्यवहरेत् । न पयोमधुभ्यां रोहिणी-  
शाकं जातुशाकं वाश्रीयात् । बलाकां वारुणीकुल्मापा-  
भ्याम् । काकमार्चीं पिप्पलीमरिचाभ्याम् । नाडीभ-  
ङ्गशाककुटुदधीनि च नैकध्यम् । मधु चोष्णोदका-  
नुपानं पित्तेन वा मांसानि । सुराकृशरापायसाश्च नैक-  
ध्यम् । सौवीरकेण सह तिलशङ्कुलीम् । मत्स्यैः सहे-  
क्षुविकारान् । गुडेन काकमार्चीं मधुना मूलकं गुडेन  
वाराहं मधुना च सह विरुद्धम् । क्षीरेण मूलकम् ।  
आम्रजाम्बवश्वाविच्छूकरगोधाश्च सर्वाश्च मत्स्यान्  
विशेषेण चिलिचिमं पयसा । कदलीफलं तालफलेन  
पयसा दध्ना तक्रेण वा । लकुचफलं पयसा दध्ना माप-

यदाचिद् सेवन न करे और जो आपको प्य्यहो तथा मियहो उसका सेवन करे । मात्रा, काल, क्रिया, भूमि, देह, दोष और गुणान्तर इनमें द्रव्यादिभाव माप्तहोकर उसी उसीके अनुसार दीसते हैं ॥

सूपेन वा मधुना घृतेन च । प्राक्पयसं पयसोऽन्ते वा ॥

अर्थ—अथ अन्य जो संयोग विरुद्ध हैं उनको कहते हैं । विरुद्धाण्य ( जिसमेंसे अंकुर निकले हों या अंकुर दूर हो गए हों ) उनको वसा ( चर्वी ) सहत, दूध, गुड़, उड़द इनके साथ भक्षण न करे । ग्रामके जीवोंका मांस अनूप संचारी जीवोंका मांस, जलसंचारी जीवोंका मांस इनकोभी वसा सहत आदिके साथ न खाये, क्योंकि संयोगसे विरुद्ध है । कुटकीका शाक और कमलका शाक दूध और सहत के साथ न खावे । बलाका ( बगलाका भेद ) का मांस मद्य और उवालेहुए उड़दके साथ न खाये । पीपर और काली मिरचके साथ कार्कमाचीके सागको न खाये । नाडी सागके पत्तोंका साग मुरगेका मांस और दही इनको दो मिलायके अथवा तीनों मिलायके न खावे । गरमजलके साथ अथवा पित्तेके साथ सहतको न खाये । अथवा मांसोंको पित्तेके साथ न खाये । दारू खिचड़ी और खीर इनको मिलायके न खाये । तिलकी पूड़ियोंको काँजीके साथ न खाये । मछलीके साथ कोईसा ईस्वका चिकार ( खाँह, मिथी, गुड़आदि ) न खाये । काकमाचीको गुड़के साथ न खाये । सहतसे मूली न खाये । तथा सूअरका मांस सहतके साथ खाना विरुद्ध है । दूधके साथ मूली न खाये । आम जामुन सेह ( काटेवाला जानवर ) सूअर और गोह तथा सब प्रकारकी मछली उनमेंभी चिलचिम नामकी मछली इन सबको दूधके साथ न खावे । केलाका फल ( गहर ) की ताड़फलके साथ वा दूधके साथ वा दहीके साथ अथवा छालके साथ न खाये । बड़हरके फलको दूध, दही, उड़दकी दाल, सहत अथवा घीके साथ न खावे । दूध पीनेके प्रथम अथवा अंतमें बड़हरका फल नखावे । इति ॥

कर्मविरुद्धः ।

अतः कर्मविरुद्धान् वक्ष्यामः । कपोतान् सर्पपतैल-  
भृष्टान्नाद्यात् । कपिअलमयूरलावतित्तिरिगोधाश्चैरण्ड

इसी हेतुसे यह प्राणी और स्वभाव और मात्रादिके आश्रित कहा है अतएव स्वभाव और मात्राका प्रथम विचार करके सिद्धिकी इच्छा करनेवाले वैद्यको म-  
योग करना चाहिये ॥

१ काकमाचीको मर्कय कहते हैं ।

दावाग्निसिद्धा एरण्डतैलसिद्धावा नाद्यात् । कांस्यभाजने  
दशरात्रपर्य्युपितं सर्पिर्मधुचोष्णैरुष्णे वा।मत्स्यपरिपचने  
शृङ्गवेरपरिपचने वाभाजने सिद्धां काकमाचीम् । तिल-  
कल्कसिद्धमुपोदिकाशाकम् । नारिकेलेन वराहवसापरि-  
भृष्टां बलाकाम् । भासमङ्गारशूल्यं नाश्रीयादिति ॥

अर्थ-अब संयोग विरुद्धोंको कहकर कर्मविरुद्धोंको कहते हैं । तहाँ  
कपोत ( कवूतरका भेद पिंडुक्रिया ) को सरसोंके तेलमें भूनके न खावे।  
सपेदतीतर, मोर, लवा, कालातीतर, गोह इनको अंडकी और दारुहलदी-  
की लकड़ियोंकी आंचमें भूनके न खावे । तथा अंडीके तेलमें भी तलके न  
खाय । गरमीकी ऋतुमें कौंसेके पात्रमें अथवा गरम कांसेके पात्रमें घी,  
सहत ये दशदिन धरेहुएनको न खायामछली जिस पात्रमें बनाईहो अथ-  
वा अदरकका साग जिस पात्रमें किया होवे उस पात्रमें सिद्धकरी काक-  
माचीका साग न खाय । तिलकल्कमें सिद्धकरी ( पकाया हुआ ) पोईका  
साग न खाय । सुअरकी चर्बीमें भुनीहुई बगलीके मांसको नारियलकी  
गिरीके साथ न खाय । भास ( जो एक गीधका भेद है ) उसको लोहेके  
सुरसे भेदकर आगमें सेंकेहुएको न खाय ॥

अथमानविरुद्धः ।

अतो मानविरुद्धान् वक्ष्यामः । मध्वम्बुनी मधुसर्पिणी  
मानतस्तुल्ये नाश्रीयात् । मधुस्रेहौ जलस्रेहौ वा तैलस-  
र्पिणी तैलवसे तैलमज्जानौ सर्पिर्वसे सर्पिर्मज्जानौ विशो-  
पादान्तरिक्षोदकानुपानौ ॥

अर्थ-अब कर्मविरुद्ध कहनेके अनंतर मान (तोल) विरुद्धोंको कहते हैं।

आगे इसअध्यायमें ८४ आसव इस प्रकार कहे हैं ॥

तहाँ धान्य, फल, सार, पुष्प, कांड, पत्र, छाल ये सात वस्तु आसवकी योनि  
हे अर्थात् आसव इन्हींसे बनती है तथा शर्करा और नवमद्रव्य संयोग इनके  
मिलापसे अनेक आसव अमृतके तुल्य बनती है । तिनमें ८४ आसव पण्यतमहैं ।  
उनको सुन-सुरा, सोबीर, तुषोदक, भैरेय, भेदक, धान्याम्ब, ये छः  
धान्यासव है ॥

सहत् जल और सहत् घी ये समान भाग मिलायके न खावे । सहत् और घृतादि स्नेहा तथा जल और घी आदि तेल और घी तेल और चर्बी । तेल और मज्जा । घी और चर्बी तथा घी और मज्जा ये समान भाग मिलायके न खाय । तथा घी और मज्जाको पीकर अंतरिक्ष संबंधी जल न पीवे ॥

दोदोरस रसवीर्य और विपाकसे विरुद्ध ।

अत ऊर्ध्वं रसद्वन्द्वानि रसतो वीर्यतो विपाकतश्च विरुद्धानि वक्ष्यामः । तत्र मधुराम्लौ रसवीर्यविरुद्धौ मधुरलवणौ च, मधुरकटुकौ च सर्वतः । मधुरतिक्तौ रसविपाकाभ्यां मधुररसकपायौ च, अम्ललवणौ रसतः । अम्लकटुकौ रसविपाकाभ्यां । अम्लतिक्तावम्लकपायौ च सर्वतः । लवणकटुकौ रसविपाकाभ्यां लवणतिक्तौ लवणकपायौ च सर्वतः । कटुतिक्तौ रसवीर्याभ्यां । कटुकपायौ तिक्तकपायौ च रसतः ॥

अर्थ—मान विरुद्धोको कहकर अब दोदो रसोंको रस, वीर्य और विपाक से विरुद्धको कहते हैं । तहाँ मधुर और खट्टे दोनों रस रस और वीर्यसे विरुद्ध है अतएव मिलायके न खावे एवं मधुर और लवणरसभी रसवीर्य से विरुद्ध है मधुर और तीक्ष्णरस सर्व रसवीर्य विपाक से विरुद्ध है, मधुर और कटुआ रस रसविपाक से विरुद्ध है, एवं मधुर और कपेला रसभी रसविपाक से विरुद्ध है खट्टा और निमकीनरस रससे विरुद्ध है खट्टा और चरपरा रस तथा विपाक से विरुद्ध है । अम्ल, तिक्त तथा अम्ल और कपाय ये रसवीर्य और विपाक से विरुद्ध है । लवण कटुकरस रसविपाक से विरुद्ध है । लवण

मुनका, दाख, सजूर, कंभारी, धन्वन, राजादन, तृणशूल्य, परुष, अभया, आमलक, मृगलिङ्गिका, जाम्बव, नक, कैय, कुवल, नदर, कर्कधु, पीलू, पियाळ, पनस, न्यग्रोध, अश्वत्थ, द्राक्षा, कपीतन, उदुंबर, अजमोद, सिंघाडे और संतली इन फलोंसे बननेवाले २६ फलासव हैं ॥

१ दही बूत । यद्यपि खट्टे और मीठे रसद्वेनेपरभी उपयोगी होनेसे दोष नहीं है, परंतु जो खटाई और मिठाई मिली किसी उपयोगमें नहीं आवे वो विरुद्ध है उसको ग्रहण नहीं करना ।

तिक्त तथा लवण और कषाय ये सबसे विरुद्ध हैं । चरपरा और कटु-  
आ रस एवं कटुकषायरस, रसवीर्यसे विरुद्ध है । तिक्त ( कटुआ )  
और कषाय सबसे अर्थात् रसवीर्य और विपाक से विरुद्ध है ॥

तहाँ गयदास इस रसवीर्यविपाक विरुद्धोंको नहीं माने कारण यह  
है कि, प्रथम मधुररस भोजन करना लिखा है फिर सब रसखाय एक-  
रसकाही सेवन निषेध है, परंतु प्राचीन ग्रंथोंमें लिखा देखकर हमनेभी  
लिखकर व्याख्या करदी ॥

अब कहते हैं कि, अत्यंत गुणकारी भैंसके दूधआदि पदार्थ हितकारी हैं,  
परंतु स्वस्थ मनुष्यको उसी एकका सेवन अहितकारी होता है यह कहते हैं ॥

**तरतमयोगयुक्तांश्च भावानतिरूक्षानतिस्निग्धानत्युष्णा  
नतिशीतानित्येवमादीन्विषर्जयेत् ॥**

अर्थ-अत्यंत स्नेहादि सहित जैसे अतिरूक्ष, अतिस्निग्ध, अतिउष्ण,  
अतिशीतल इत्यादि पदार्थोंका सेवन इसप्राणीको वर्जनीय है । इसमें  
चकार जो पडा उससे अत्यंत पथ्यतम, अत्यंत आयुके बढ़ानेवाले,  
अत्यंतवृष्यपदार्थोंकोभी सेवन न करे ॥

पूर्वोक्तकोस्पष्टकरतेहैं ।

**विरुद्धान्येवमादीनि रसवीर्यविपाकतः ।**

**तान्येकान्ताहितान्येव शेषं विद्याद्विज्ञाहितम् ॥**

अर्थ-पूर्वोक्त जो विरुद्ध पदार्थ कहे हैं उनसे आदिले जो जो अन्य  
पदार्थ रसवीर्य और विपाकसे विरुद्ध हैं, उनको एकान्त अहित, वैद्य  
अपनी बुद्धिसे विचारलेवे । बाकी जो द्रव्य है वो एकांत हिताहितहै ॥

विरुद्धपदार्थभक्षणकेअवगुण ।

**व्याधिमिन्द्रियदौर्बल्यं मरणञ्चाधिगच्छति ।**

**विरुद्धरसवीर्यादीन् भुज्जानोऽनात्मवान्नरः ॥**

अर्थ-रस-वीर्यादि विरुद्ध अहितकारी द्रव्य भोजन करनेसे उस चंचल

विदारीगन्धा, असगंध, कृष्णगंध, शतावर, श्यामा, त्रिवृद, दंती, द्रवंती,  
बित्त्य, आरुक और चित्रक ये ११ मूलासेव अर्थात् जड़से बननेवाली आसवहै ॥

१ बेसे भैंस गौकादूध अत्यंत स्निग्धहै इसी वास्ते नेत्रोग्य मनुष्यों अपनी समाधि-  
के रसाके वास्ते ये नहीं खाना चाहिये ।

पित्तवाले मनुष्यके अनेक प्रकारकी व्याधि, इन्द्रियोंमें दुर्बलता अथवा मृत्यु पर्यंतकी करे है, इसवास्ते विरुद्ध पदार्थको सर्वथा त्याग देवे ॥

विकारकर्त्तापदार्थ ।

यत्किञ्चिदोषमुत्क्रेश्य भुक्तं कायात्र निर्हरेत् ।

रसादिष्वयथार्थं वा तद्विकाराय कल्पते ॥

अर्थ—कोई २ द्रव्य भोजनके अंतमें भोजनके पदार्थको प्रकुपित करके वमनकीसी इच्छा कराती है, उसको वमनके द्वारा देहके बाहर न निकाले तो वह कोई न कोई पीडाको करे ऐसा जानना । यह केवल दोषकारी होकर व्याधिमात्रको ही नहीं करे किंतु रसादिधातु दुष्टकारी व्याधियोंकोभी करे हैं । तहाँ बहुतसी द्रव्य दोषोंको दुष्टकरे है और बहुतसी द्रव्य धातुओंको दुष्टकारी है उनको ग्रंथ बढनेके भयसे इसजगहपर नहीं लिखा ॥

विरुद्धभोजनजनितरोगोंकीचिकित्सा ।

विरुद्धाशनजात्रोगान्प्रतिहन्ति विरेचनम् ।

वमनं श्मनं वापि पूर्वं वा हितसेवनम् ॥

अर्थ—विरुद्ध भोजनसे उत्पन्न रोगोंको विरेचन ( दस्तकराना ) दूरकरता है तथा वमन करना और श्मनकर्त्ता औषध नष्ट करती है । एवं उस विरुद्धपदार्थजन्य व्याधिके होनेसे प्रथम ही हितसेवन करे तो विरुद्धदोष श्मनहोवे । तहाँ बलवान्का वमन विरेचनद्वारा रोग शांति करे और हीनबलीका श्मन औषधसे श्मनकरना चाहिये ॥

विरुद्धभोजनकरनेपरभी किसीकोरोगनहींहोयहकतेहैं ।

सात्म्यतोऽल्पतया वापि दीप्ताग्नेस्तरुणस्य च ।

स्निग्धव्यायामबलिनां विरुद्धं वितथं भवेत् ॥

अर्थ—जो अपने सात्म्यसे अल्प भोजन करते हैं अर्थात् जिसका थोडा २

साल, प्रियकसाल, चंदन, स्यंदन, खैर, कदर, सतवन, कोह, विनेसार, अरि-मेद, तिंदुक, किण्ही, शमी, अक्कि, सीसव, सीरीस, वंजुल, धान्यरू और महुआ ये बीस सारसे बननेवाली सारासव है ॥

१ गरमद्रव्यमें चीनी बुरा शीतल डालना विरुद्ध होनेपरभी विचारनहीं करे ।

२ विरुद्धपदार्थजन्यरोगोंको विरेचन दूरकरता है अतएव विरुद्धभोजनजन्य कुष्ठरोगकोभी दूरकरे है इससे यह सिद्धहोता कि, विरेचन कुष्ठरोगका शत्रु है ॥

अभ्यास कराहो ऐसी द्रव्य तथा जिसकी दीप्ताग्नि है और जो तरुण है एवं जो स्निग्ध और दंडकसरत करनेसे बलिष्ठ है अथवा जो दंडकसरत करते हैं और बलो हैं ऐसे प्राणियोंके विद्वर्भोजनभी निष्फल होजाता है । अर्थात् रोग नहींकरे ।

व्यायामशीलो बलवाञ्छिशुश्चस्निग्धोऽग्निर्मांश्चा-  
पिमहाशनश्च । आप्रोतिरोगान्नविरुद्धजातान-  
भ्यासतो बालपतया च जन्तुः ॥

अर्थ-जो दंडकसरत करा कर्ता है, बलीपुरुष, बालक, स्निग्ध देहवाला, प्रबल जठराग्निवाला, अत्यंत भोजन करनेवाला तथा जिसने जिसविरुद्ध वस्तुका अभ्यास करलीना होवे तथा वह विरुद्ध पदार्थ बहुत अल्प खाय तो वह प्राणी विरुद्धभक्षणजन्य रोगोंकी नहीं प्राप्त होवे ॥

अब इस अध्यायकी समाप्तिमें वातके गुणकहते हैं तहां हितकारीभी पवन दिशाओंके संयोगसे अहितकारी होजाता है अतएव उनके पृथक् २ गुण कहते हैं ।

पूर्वपवनकेगुण ।

पूर्वः समधुरः स्निग्धो लवणश्चैव मारुतः । गुरुर्विदाह-  
जननो रक्तपित्ताभिवर्द्धनः ॥ क्षतानां विपजुष्टानां  
व्रणिनः श्लेष्मलाश्चये । तेषामेव विशेषेण सदा रोगवि-  
वर्धनः ॥ वातलानां प्रशस्तश्च श्रान्तानां कफशोपि-  
णाम् । तेषामेव विशेषेण व्रणक्लेदविवर्द्धनः ॥

अर्थ-पूर्वकीपवन मीठी, स्निग्ध और निमकीनहै, भारी, दाहउत्पन्नकरता और रक्तपित्तके बढ़ाने वाली है, घाववाले और विपसेपीडित तथा जिसके फोड़ेहो एवं कफसे व्याप्त हैं उनको यह पूर्वकी पवन सदैव रोगके बढ़ाने वाली है । वादीवाले, श्रांत ( थकेहुए, और जिनका कफ सूखगया है उनको विशेषकरके पूर्वकी पवन अति उत्तम है । तथा यह घावोंमें सदैव क्लेदके बढ़ाने वाली है ॥

पद्म, उत्पल, नलिन, मुकुद, सौगंधिक, शतपत्र, मधूक, मियंगु, धायकेफूल ये पुष्पासव हैं इक्षु, कटिष्ठु इक्षुवालिका, पुंड्रक, ये छालकी आसव हैं और शर्करा सब इस प्रकार आसवोंके भेद ८४ हैं ॥

॥ इति यजःपुरुषीयाध्यायः ॥



## दक्षिणपवनकेगुण ।

मधुरश्चापिदाही च कपायानुरसो लघुः । दक्षिणो मारुतः  
श्रेष्ठश्चक्षुष्यो बलवर्द्धनः । रक्तपित्तप्रशमनो न चवात-  
प्रकोपनः ॥ विशदो रूक्षपरुषः खरः स्नेहवलापहः ॥

अर्थ—दक्षिणकीपवन मधुर है, दाह नहींकरे और कपेले रसवाली हल-  
कीहै तथा नेत्रोंको हितकारी, बलको बढ़ानेवाली, रक्तपित्तरोगको  
हरणकर्ता और वातको कुपित नहीं करे, विषद, रूक्ष, कठोर, तीखा,  
चिकनाईके बलको नाशक है और उत्तम है ॥

## पश्चिमकीपवन ।

पश्चिमो मारुतस्तोक्ष्णः कफमेदोविशोपणः ।

सद्यः प्राणक्षयकरः शोषणस्तु शरीरिणाम् ॥

अर्थ—पश्चिमका पवन तीखा, कफ और मेदाको शोषणकरने वाला है,  
तथा सद्यप्राण नाशन और प्राणियोंके देहको सुखाने वाला है ॥

## उत्तरकीपवन ।

उत्तरो मारुतः स्निग्धो मृदुर्मधुर एव च । कपायानुरसः

शीतो दोषाणामप्रकोपनः ॥ तस्माच्च प्रकृतिस्थानां

क्लेदनो बलवर्द्धनः क्षीणक्षयविपार्तानां विशेषेण तु पूजितः ॥

अर्थ—उत्तरका पवन चिकना, नम्र, भीठा और कुल कपेला है, शीतल  
दोषोंको कुपितनहींकरे, इसी कारण जो प्रकृतिस्थ अर्थात् नैरोग्य पुरुष  
है उनको आर्द्रकरे और बलको बढ़ावे है । तथा जो प्राणी क्षीणहैं क्षई-  
रोगवाले और विषरोगी उनको प्रायः माननीय है ॥

॥ इति द्विवाद्वितीयाध्यायः समाप्तः ॥

इति श्रीमाधुरलुण्णलालतनय दत्तरामप्रणीते आयुर्वेदोच्चारे

बृहन्निषण्डुरत्नाकरे मिश्रप्रकरणं समाप्तम् ॥

समाप्तोऽयं मिश्रखंडः ।

ॐ

श्रीशंखन्दे

श्रीनिकुञ्जविहारिणे नमः ।

## आयुर्वेदोद्गारांतर्गतबृहन्निघंटुरत्नाकरे चिकित्साखण्डप्रारम्भः ।

शिष्य-चिकित्सा किसको कहते हैं ?

गुरु-शरीरमें धात्वादि विकृत दोष समान करनेवाले कर्मको चिकित्सा कहते हैं जैसे-वाग्भटमें लिखा है ।

याभिः क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातवः समाः ।

सा चिकित्सा विकाराणां कर्मतद्भिपजां मतम् ॥

अर्थ-जिनक्रियाओं करके देहमें रसरक्तादि धातु समानहोवे वही रोगों की चिकित्सा है और वैद्योंका वही कर्म कहा है ॥

सुश्रुतेऽपि ।

चतुर्णां भिपगादीनां शस्तानां धातुवैकृते ।

प्रवृत्तिर्धातुसाम्यार्था चिकित्सेत्यभिधीयते ॥

अर्थ-सुश्रुतमें भी लिखा है कि, उत्तम वैद्यादि (वैद्य, रोगी, सेवक और औषध) चतुष्टयोका विकृत (कुपित) धातुके समान करनेके लिये जो प्रवृत्ति है उसको (चिकित्सा) ऐसे कहते हैं ॥

अन्यच्च ।

या क्रिया व्याधिहरणी सा चिकित्सा निगद्यते ।

दोषधातुमलानां या साम्यकृत्सैव रोगहृत् ॥

अर्थ—अन्यत्रभी लिखा है कि, जो क्रिया व्याधिके हरण करने वाली है उस को चिकित्सा कहते हैं । जो चिकित्सा दोष ( वातादि ) धातु ( रसर-क्तादि ) और भलादिकोंको समान करती है वही रोगहरणकर्ता जाननी । क्रिया शब्द करके इसजगे कर्मका ग्रहण है ॥

क्रियाकेलक्षण ।

यात्युदीर्णं शमयति नान्यं व्याधिं करोति च ।

सा क्रिया न तु या व्याधिं हस्त्यन्यमुदीरयेत् ॥

अर्थ—जो बड़ीहुई व्याधिको शमनकरे परंतु अन्य व्याधिको प्रगट न करे उसीको क्रिया ( चिकित्सा ) कहते हैं और जो एकव्याधिको हरणकरे और तत्काल दूसरी व्याधिको प्रगटकरदे उसे क्रिया नहीं कहते । ( क्रिया ) शब्द करके इस जगे ( चिकित्साका ) ग्रहण है जैसे “ आरंभो निष्कृतिः शिक्षा पूजनं संप्रधारणम् । उपायः कर्मचेष्टा च चिकित्सा च नवक्रियाः ” यह अमरकोषमें नौ नाम चिकित्साके कहे हैं ॥

चिकित्सा और उसका प्रयोजन ।

यद्व्याधिनिर्घातकरं वक्ष्यते तच्चिकित्सितम् ।

चिकित्सितार्थ एतावान्विकाराणां यदौषधम् ॥

अर्थ—जो व्याधि अर्थात् रोगका नाशकरे वही चिकित्सा जाननी उस चिकित्साका प्रयोजन इतनाही है कि, विकारोंकी औषधि करना ॥

चिकित्साकेनाम ।

चिकित्सितं व्याधिहरं पथ्यं साधनमौषधम् ।

प्रायश्चित्तप्रश्मनं प्रकृतिस्थापनं हतम् ॥

विद्याद्वेषजनामानि—

अर्थ—अब प्रथम चिकित्साके नाम कहते हैं जैसे चिकित्सित, व्याधि-हर, पथ्य-साधन, औषध, प्रायश्चित्त, प्रश्मन, प्रकृतिस्थापन और हत ये भेषज ( औषधी और चिकित्सा ) के नाम हैं ॥

उपचारास्तूपचर्याचिकित्सारूपप्रतिक्रिया ।

निग्रहो वेदनानिष्ठा क्रियाचोपक्रमश्रमाः ॥

अर्थ—ग्रंथातरसे चिकित्साके नाम कहते हैं जैसे—उपचार, उपचर्या, चिकित्सा, रूक्प्रतिक्रिया, निग्रह, वेदनानिष्ठा, उपक्रम और श्रम ये चिकित्साके नाम ।

**प्रायश्चित्तं प्रशमनं चिकित्सा शांतिकर्मच ।**

**पर्यायास्तस्यनिर्दिष्टा ॥**

अर्थ—सुश्रुतमें भी लिखाहै जैसे कि, प्रायश्चित्त, प्रशमन, चिकित्सा और शांतिकर्म ये चिकित्साके पर्यायवाचकशब्द हैं ॥

शिष्य—चिकित्सा कितने प्रकारकी है?

गुरु—चिकित्सा दो प्रकारकी हैं जैसे, लिखाहै “चिकित्सितं कर्षणवृंहणारूपं” अर्थात् चिकित्सा दो प्रकारकी है एकैकर्षण, दूसरी वृंहण । परंतु किसी आचार्यके मतसे तीन प्रकारकी है । जैसे लिखाहै ॥

**निदानरोगविपरीतऔरतदर्थकारिणीचिकित्सा ।**

**निदानविपरीता च विपरीतारुजस्तथा ।**

**तदर्थकारिणीचेति चिकित्सा त्रिविधा मता ॥**

अर्थ—निदानविपरीत और रोगविपरीत तथा निदानरोगविपरीत ऐसे चिकित्सा तीनप्रकारकी है निदान विपरीत चिकित्सा जैसे विष-भक्षणजन्य गरमीमें दूध घृतका पान करना, रोगविपरीत चिकित्सा जैसे अतीसाररोगमें दस्तोंका बंद करना, उसीप्रकार निदान और रोगविपरीतचिकित्सा जैसे, शीत कफज्वरमें सोंठका काढा परंतु ये तीनों प्रकारकी चिकित्सा उन्हीं पूर्वोक्त कर्षण वृंहणके अंतर्गत है ॥

**दैवीमानुषीऔरराक्षसीचिकित्सा ।**

**रसादिभिर्याक्रियतेचिकित्सा दैवीति वैद्यैःपरिकीर्त्तिता सा ।**

**सा मानुषी याऽयकृताफलाद्यैःसा राक्षसी शस्त्रकृताभवेद्या ॥**

अर्थ—जो रसादिकरके चिकित्सा करीजावे उसको दैवी चिकित्सा वैद्य कहते हैं और जो फलमूलादिकरके करीजावे उसे (मानुषीचिकित्सा) तथा शस्त्रकृत अर्थात् चोरने फाड़नेको (राक्षसी चिकित्सा कहते हैं) यह अधमहै

१ जो दोषघातुमलादिको को क्षीणकरदे उसको कर्षण चिकित्सा कहते हैं जैसे—वमन विरेचन, लेपनादि । २ जो दोषघातुमलादिकोंको बढाकर रोगको दूरकरे उसको वृंहणचिकित्सा कहते हैं अर्थात् जिसमें रोगीका देहभी यथार्थ बना रहै और रोग दूर होजाय इस चिकित्साको प्रायः इक्कीम और डॉक्टर लोग बहुतप्रसन्न करते हैं ।

आसुरी मानुषी दैवी चिकित्सा त्रिविधा मता ।

शस्त्रैः कपायैर्लोहाद्यैः क्रमेणांत्यासुपूजिता ॥

अर्थ—चिकित्सा—आसुरी, मानुषी और दैवी इन भेदसे तीन प्रकारकी है तहां शस्त्रसे अर्थात् चीरना, फाटना, काटना आदि चिकित्साको आसुरी ( राक्षसी ) कहते हैं और काढ़े, चूर्ण, गुटिका आदिकरके जो चिकित्सा करीजाय वो मानुषीचिकित्साहै और जो सुवर्ण, चांदी और लोह आदि शब्दसे पारा, गंधक, रसोपरस, रत्नोपरल और विषादिकसे चिकित्सा करीजावे वो दैवीचिकित्सा कहलाती है । इनमें अंतकी चिकित्सा अर्थात् दैवीचिकित्सा माननीय है ॥

शिष्य—चिकित्सामें कौन २ वस्तु जानने योग्यहै ॥

गुरु—चिकित्साकरने वालोंको प्रथम चिकित्साके अंगोंका जानना अतिआवश्यक है ।

शिष्य—तो आप कृपापूर्वक चिकित्साके अंगोंको कहिये ।

गुरु—जैसे अंगहीन मनुष्य अच्छा नहीं इसी प्रकार अंगहीन चिकित्साकीभी शोभा नहीं अतएव मैं उन अंगोंको कहता हूँ ॥

अथचिकित्सांगानि ।

रोगी दूतो भिषग्दीर्घमायुर्द्रव्यं सुसेवकः ।

सदोपधं चिकित्साया इत्यंगानि बुधा जगुः ॥

अर्थ—रोगी, दूत, वैद्य, दीर्घआयु, द्रव्य, उत्तमसेवक और उत्तम औषधी ये चिकित्साके अंग विद्वानोंने कहे हैं । जैसे अंगहीन मनुष्य अशोभित होता है उसीप्रकार चिकित्साभी अंगहीन उत्तम नहीं कहलाती ॥

शिष्य—आपने “ चतुर्णां भिषगादीनां ” इसश्लोकमें जो वेद्यादिचतुष्टय कहे उनका चिकित्सामें क्या प्रयोजन है और उनको क्या कहते हैं ॥

गुरु—वो चिकित्साके पादचतुष्टयहै अर्थात् चिकित्साके चारपैरहैं इनके बिना चिकित्सा चल नहीं सकती यहीप्रयोजन है ॥

चिकित्साकेपादचतुष्टय ।

भिषग्द्रव्याण्युपस्थाता रोगी पादचतुष्टयम् ।

गुणवत्कारणं ज्ञेयं विकारस्योपशान्तये ॥

अर्थ—वैद्य—द्रव्य ( औषधि ) रोगीका सेवक और रोगी ये चिकित्सा

के चार पैर हैं । यह पादचतुष्टय उपयुक्त गुणसंपन्न होनेसे रोगशांतिकर-  
नेको समर्थ होते हैं ॥

पाठांतरम् ।

वैद्यो व्याध्युपसृष्टश्च भेषजं परिचारकः ।

एते पादाश्चिकित्सायाः कर्मसाधनहेतवः ॥

अर्थ—वैद्य, रोगी, औषध और परिचारक (सेवक) ये चिकित्साके चार  
पैर कर्मसाधनके हेतु हैं; अर्थात् इनके बिना चिकित्सा कर्म नहीं होसका ॥

वैद्यविना पादत्रयको निष्फलत्व ।

वैद्यहीनास्त्रयः पादागुणवंतोऽप्यपार्थकाः ।

उद्गातृहोतृब्रह्माणो यथाध्वर्युर्विनाध्वरे ॥

अर्थ—वैद्यरहित चिकित्साके अन्य तीनपाद गुणवान्भी निरर्थक हैं,  
जैसे—यज्ञमें विना अध्वरी ( उपाध्यायके ) उद्गाता, होता और ब्रह्मा  
ये निष्फल हैं । जैसे अध्वरी—उद्गाता होता और ब्रह्माको पृथक् २ कर्ममें  
युक्ति बताता रहता है उसीप्रकार वैद्य, रोगी, सेवक और औषधमें  
युक्ति बताता रहता है ॥

पादत्रयविनाभीवैद्यको मुख्यत्व ।

वैद्यस्तुगुणवानेकस्तारयेदातुरान्सदा ।

पुर्वं प्रतितरैर्हीनं कर्णधारइवार्णवम् ॥

अर्थ—गुणवान् अकेला वैद्यही रोगियोंको सदैव उद्धार करता है अर्थात्  
रोगसे निर्मुक्त करता है जैसे प्रतितर (भीतरभरे हुए जलके उलीचने वालों  
करके ) हीन नावको अकेला मल्लाह ( केवदिया ) पार लगाता है ॥

पादचतुष्टयमें वैद्यको प्राधान्यत्व ।

कारणं षोडशगुणंसिद्धौ पादचतुष्टयम् । विज्ञाता शासिता  
योक्ता प्रधानं भिषगव तु । पक्ताहि कारणं पक्तुर्यथा  
पात्रेधनानलाः ॥ विजेतुर्विजये भूमिश्चमूः प्रहरणानि  
च । आतुराद्यास्तथा सिद्धौ पादाः कारणसंज्ञिताः ॥  
वैद्यस्यातश्चिकित्सायां प्रधानं कारणं भिषक् । मृदंड  
चक्रसूत्राद्याः कुम्भकारादतेयथा ॥ नावहन्ति गुणं वैद्या-  
दृतेपादत्रयं तथा ॥

अर्थ—चिकित्साकी सिद्धीमें सोलहगुण संपन्न पादचतुष्टय कारण है, तथा चिकित्साके पादचतुष्टयोंमें जानने वाला, आज्ञा करनेवाला, युक्ति बताने वाला वैद्य है, इसीसे वैद्यको मुख्यत्व है । इनकी दृष्टांत देकर समझाते हैं कि, जैसे रसोई करनेवाले प्राणीको रसोईके करनेमें पात्र, ईंधन और अग्नि ये कारण हैं तथा जीतनेकी इच्छा करनेवाले राजा को जीतनेमें जैसे पृथ्वी, फौज और हथियार कारण हैं । इसी प्रकार वैद्यको चिकित्साकी सिद्धीमें अतुरादि ( रोगी आदि ) तीनपाद कारण हैं, इसीसे चिकित्सामें प्रधान कारण वैद्य है और दृष्टांत देते हैं कि, जैसे मिट्टी ( जिस्से बरतन बनते हैं ) दंड ( चाक फिरानेकी लकड़ी ) और वासन तयार होनेपर काटनेका डोरा इत्यादि सब वस्तु धरी हैं, परंतु बिना कुम्हार ( बनाने वाले ) के वो अपने २ गुणोंको नहीं करते ( मिट्टी स्वयं वासनरूप नहीं बनती, लकड़ी स्वयं चाकको घुमाती नहीं है और डोरा काटता नहीं है, तात्पर्य यह है कि, जैसे मिट्टी, लकड़ी और डोरा उस कुम्हारके आधीन हैं वो उनसे काम लेसक्ता है ) इसीप्रकार रोगी औषधी और सेवक ये वैद्यके आधीन हैं बिना वैद्य कुछ नहीं करसक्ते परंतु वैद्य सब कार्य करा सक्ता है ॥

तहां प्रथमवैद्यकेलक्षण ।

चिकित्सां कुरुते यस्तु स चिकित्सक उच्यते ।

सच यादृक् समीचीनस्तादृशोऽपि निगद्यते ॥

अर्थ—जो चिकित्साकरे उसको चिकित्सक कहते हैं वो वैद्य जैसा उत्तम उसको लिखते हैं ॥

वैद्यशब्दकीव्युत्पत्ति ।

पंचतत्त्वात्मकं सर्वं वेत्ति यस्मादशेषतः ।

तस्माद्वैद्य इति ख्यातो तस्य नामानि कथ्यते ॥

अर्थ—संपूर्णब्रह्मांडके पदार्थोंको पंचतत्त्वात्मक जाननेसे इसको वैद्य कहते हैं अथवा ( विदज्ञाने ) इस बातसे वैद्य पद सिद्ध होता है इससे संपूर्ण त्रिस्कंधात्मक आयुर्वेद तथा अन्य व्याकरण, न्याय, ज्योतिषादि संपूर्ण शास्त्रोंके आशयोंको तथा लौकिकके संपूर्ण व्यवहारोंको जाननेसे इसको वैद्य ऐसा कहते हैं अब उस वैद्यके नामोंको कहते हैं ॥

वैद्यकेनाम ।

वैद्यः श्रेष्ठोऽगदंकारो रोगहारी भिषग्विधिः ।

रोगज्ञो जीवनो विद्वानायुर्वेदी चिकित्सकः ॥

अर्थ—वैद्य, श्रेष्ठ, अगदंकार, रोगहारी, भिषक, विधि, रोगज्ञ, जीवन, विद्वान्, आयुर्वेदी और चिकित्सक ये वैद्यके संस्कृत नाम हैं इसी प्रकार गदहागदारि, प्राणाचार्य, प्राणद और वैद्यराज इत्यादि और भी अनेक नाम वैद्यके हैं

वैद्यकेलक्षण ।

तत्त्वाधिगतशास्त्रार्थो दृष्टकर्मा स्वयंकृती । लघुहस्तः

शुचिः शूरः सज्जोपस्करभेषजः ॥ प्रत्युत्पन्नमतिर्द्धीमान्

व्यवसायी प्रियंवदः । सत्यधर्मपरो यश्च वैद्य ईदृक् प्रशस्यते ॥

अर्थ—जिसने यथायोग्य आयुर्वेदशास्त्र अध्ययन कर उसका यथार्थ तात्पर्य हृदयंगम अर्थात् हृत्त कर लिया हो, अन्यवैद्यके करे हुए छेदनादि और स्नेहपाकादि क्रियादि चिकित्साको अनेकवार देख चुका हो, स्वयं चिकित्सामें कुशल तथा जिसका हलकाहाथ हो, अर्थात् छेदनादि क्रियामें जिसका हाथ कांपे नहीं । पवित्राचार, ( बाहरभीतरसे शुद्ध ) शूर ( खेदरहित ) नवीन तयार करी हुई औषधयुक्त तथा अगोपहरणीयाध्यापमें पठितयंत्र शास्त्रादि युक्त, तात्काल स्फुरणवाली बुद्धि, अर्थात् बादकी किसी अवस्थामें मोहित न हो । बुद्धिवान् ( जो अनुक्त और दुरुक्त ग्रहण करनेवाली और त्यागनेवाली बुद्धिवाला ) उद्योगी ( रोगीकी विगड़ी-हुई अवस्थामें भी यत्न करनेमें मोहित न हो ) प्रियवचन बोलने वाला, कोई प्रियंवदके स्थानमें ( विशारद ) ऐसा पाठ कहते हैं तहां विशारद कहिये शास्त्रके कठिन शब्दोंको देखकरभी न घबड़ावे, सत्य और धर्ममें तत्पर ऐसा वैद्य उत्तम कहा है ॥

वैद्यकेगुणचतुष्टय ।

श्रुतेपर्यवदातृत्वं बहुशो दृष्टकर्मता ।

दासंशौचमिति ज्ञेयं वैद्येगुणचतुष्टयम् ॥

अर्थ—शास्त्रमें प्रवीणत्व तथा अनेक प्राचीन वैद्यांकी कर्मसिद्धीको जिसने अनेक बार देखा हो, चतुर और पवित्र ये वैद्यमें चारगुण जानने ॥

१ विशारदः इति पाठ्यतरम् ।



अब प्रसंगवश चरकसे तीनप्रकारके वैद्योंको यहाँ परवर्णन करतेहैं ॥  
त्रिविधवैद्य ।

**भिषक्छद्मचराः सन्ति सन्त्येके सिद्धिसाधिताः ।**

**सन्ति वैद्यगुणैर्युक्तास्त्रिविधा भिषजो भुवि ॥**

अर्थ—इस पृथ्वीमें तीनप्रकारके वैद्यहैं जैसे कि, छद्मचर (कपटी) वैद्य, दूसरे सिद्धसाधित और तीसरे वैद्यगुणोंकरके युक्त अर्थात् उत्तम वैद्य हैं ॥

ठगवैद्यकेलक्षण ।

**वैद्यभाण्डोपधैः पुस्तैः पल्लवैरवलोकनैः ।**

**लभन्ते ये भिषक्शब्दमज्ञास्ते प्रातिरूपकाः ॥**

अर्थ—वैद्योंके पात्र, औषधि, पुस्तक और पत्तेआदिके देखनेसे जो भिषक् (वैद्य) शब्दको प्राप्त होते हैं वो वैद्य मूर्खहैं, उनको प्रातिरूपक अर्थात् ठगिया कपटके बने वैद्यजानने चाहिये, तात्पर्य यहहै कि, जो मूर्खवैद्य ठगिया होते है वो अनेक शीशी, अमृतवान् आदि पात्रोंसे और झूठी औषध, पोथी, रूखड़ीआदिसे अपने स्थानको सजायेद्वार रखते है कि, जिससे रोगियोंको यह मालूम होवे कि, ये कैसे बडेमारी वैद्य है, परंतु ऐसे दुष्टवैद्य रोगियोंको त्याग देने चाहिये ॥

सिद्धिसाधितवैद्यकेलक्षण ।

**श्रीयशोज्ञानसिद्धिर्ना व्यपदेशादतद्विधाः ।**

**वैद्यशब्दं लभन्ते ये ज्ञेयास्ते सिद्धिसाधिताः ॥**

अर्थ—चिकित्साश्री और यशोज्ञान कहिये चिकित्साक्रियाकी सिद्धी इनके मिश्रसे जो वैद्यशब्दको प्राप्त होते हैं परंतु उनमें उत्तगुण होवे नहीं उनको सिद्धिसाधित वैद्य कहतेहैं अर्थात् बिना चिकित्साकरे और बिना चिकित्साकी क्रियाके बरे जिनका संसारमें यह नाम होजावे कि, अमुक वैद्य की चिकित्साके बराबर दूसरेकी चिकित्सा (इलाज) नहीं है और वो इसकर्म में अत्यंत निपुणहै उसको सिद्धसाधित वैद्य शास्त्रमें कहाहै। (ऐसे वैद्य क्या काम करते है कि, किसी नवीन शहरमें जाकर आप वैद्यबन बैठते हैं और उसीशहरके अथवा दशवीस अन्य शहरके पूर्व मनुष्योंको कुछ लोभदेकर अपना नाम इसप्रकार प्रसिद्ध कराते है कि, वो उस शहरमें जाकर यह प्रसिद्धी करतेहै कि, भाईहोयि नये वैद्य आयेहैं इनका भगवान् भंगलकरे कि मेरेवपोंसे फोडका रोग या सो इन्होंने दशही दिनमें दूर करदिया । दूसरा मनुष्य कह-

ताहै कि मेरे महीनोंके पुराने ज्वरको दोतीन पुढियोंमें खोय दिया। तीसरा कहताहै कि, मेरे दमेके रोगको जो बड़े २ वैद्य और डाक्टरोंसे अच्छा न होसका उसकोइन्होंने थोड़ेहीदिनमें बिलकुल जडसे उखाड दिया परमात्मा इनकी जय करे,इसी प्रकार कोईकुछ और कोई कुछ रोगका नामले-हैं वस इन दुष्ट मनुष्योंके वचनरूप जालमें फसकर उस शहरके भोले भाले मनुष्य इन बनेहुए सिद्धसाधक वैद्योंके पास खिचेहुए चलेजाते है और जब ठगा जाते हैं तब पश्चात्ताप करते उन दुष्टमनुष्योंकी निंदा करते हुए ( जो कि, उन वैद्योंकी बडाई करतेथे ) चुपही बैठ रहते हैं ॥

सद्वैद्यकेलक्षण ।

प्रयोगज्ञानविज्ञानसिद्धिसिद्धाःसुखप्रदाः ।

जीविताभिपरास्तेस्युर्वैद्यत्वंतेष्ववस्थितम् ॥

अर्थ-प्रयोग ( औषध प्रयोग करण ) ज्ञान ( शास्त्रज्ञान ) विज्ञान ( लोक-व्यवहारज्ञान ) सिद्धि ( चिकित्साकर्मकी सिद्धी ) इन करके जो बिख्या-तहैं और रोगियोंको सुखके देनेवाले वो प्राणाभिपर अर्थात् प्राणरक्षक वैद्य हैं ये रोगियों करके उपादेय हैं अर्थात् ऐसे वैद्योंसे अपनी चिकित्सा करानी चाहिये ॥

अब प्रसंगवस चरकसे द्विविध वैद्यवर्णनके वास्ते दशप्राणायतनीयाध्यायका वर्णन करते हैं ॥

अथातोदशप्राणायतनीयमध्यायंव्याख्यास्यामः ।

अर्थ-अब हम दशप्राणायतनीय अध्यायकी व्याख्या करेंगे अर्थात् प्राणोंके रहनेके दशस्थान जिस्मेकहे अतएव उसका वर्णन इस अध्यायमें करानाचना ॥

दशैवायतनान्याहुःप्राणोयेषुप्रतिष्ठितः ।

शङ्खौमर्मत्रयंकण्ठोरक्तशुक्रौजसीगुदः ॥

तानीन्द्रियाणिविज्ञानं चेतनाहेतुमामयम् ।

जानीतेयःसविद्वान्बै प्राणाभिपरवच्यतेइति ॥

अर्थ-जिनमें प्राणरहतेहैं वो दशस्थान कहेहैंजेसे दोनोंकनपटी,तीनमर्म,

कंठ, रुधिर, शुक्र, ओज और शुद्धा इन दशस्थानमें प्राणरहा करते हैं— इनको और इन्द्रियोंके विज्ञानको तथा चेतनाके हेतुको और रोगको जो जानता है उस विद्वान् वैद्यको प्राणाभिसर अर्थात् प्राणरक्षक वैद्य जानना ॥

अब इसजगह यह जिज्ञासा हुई कि, प्राणाभिसर किसका नाम है इसवास्ते कहते हैं ॥

द्विविधवैद्यवर्णनम् ।

द्विविधास्तु खलु भिषजो भवंत्यभिवेश-  
प्राणानामेकेऽभिसराहन्तारो रोगाणा-  
मेकेऽभिसरारोगाणाहन्तारः प्राणिनामिति ॥

अर्थ—अब चरकके मतसे दो प्रकारके वैद्य कहते हैं । महर्षिआश्रय भिय-  
शिष्य अभिवेशको संबोधन देकर बोलेकि, हेवत्स ! इसपृथ्वीमें दो प्रकारके  
चिकित्सक ( वैद्य ) हैं, एक प्राणाभिसर अर्थात् प्राणोंके रक्षक और रोगोंके  
नाशक। दूसरे रोगाभिसर अर्थात् रोगोंके रक्षक और प्राणोंके नाशकर्ता ॥

एवं वादिनं भगवन्तमात्रेयमभिवेश उवाच । भगवंस्ते  
कथमस्माभिर्वेदितव्या भवेयुरिति । भगवानुवाच । ये  
इमे कुलीनाः पर्यावदात्तश्रुताः पारिशिष्टकर्माणो दक्षाः शुच-  
योजितहस्ता जितात्मानः सर्वोपकरणवन्तः सर्वेन्द्रियोपप-  
न्नाः प्रकृतिज्ञाः प्रतिपत्तिज्ञास्ते प्राणिनामभिसराहन्तारो  
रोगाणाम् ॥

अर्थ—इसप्रकार आचार्यके वाक्यको श्रवणकर अभिवेश बोलेकि, हे भ-  
गवन् ! ये दो प्रकारके जो वैद्य आपने वर्णनकरे उनको हम किसप्रकार  
जाने, अतएव अनुग्रह करके उनके लक्षण कहो । तब महर्षि बोले कि, हेव-  
त्स ! श्रवणकर अब मैं दोनों प्रकारके वैद्योंके लक्षण वर्णन करता हूँ । उत्तम  
कुलमें जन्म जिन्होका शुद्ध शास्त्रज्ञान संपन्न, कृतकर्मा ( जिन्होंने वैद्यकी  
क्रिया स्वयं करलीनीहो ) कर्मकरनेमें चतुर, पवित्र, जितहस्त ( चोरी-  
आदि दुष्टकर्मसे रहित ) जीती है आत्मा जिन्होंने सर्व चिकित्साकी  
सामग्री करके युक्त, सर्व इन्द्रीन् करके युक्त ( अर्थात् काँगा, भेड़ा, लूला,  
लंगड़ा, टोटा इत्यादि लक्षण युक्त नहीं ) रोगियोंकी प्रकृतिको जानने  
वाला और प्रतिपत्तिवेत्ता अर्थात् ज्ञानी ऐसे वैद्य रोगियोंके प्राणोंके  
रक्षक और रोगोंके नाश करनेवाले होते हैं ॥

तथाविधाहि केवले शरीरज्ञाने शरीराभिनिवृत्तिज्ञानेप्र-  
कृतिविकारज्ञाने च निःसंशयाः सुखसाध्यकच्छसा-  
ध्ययाप्यप्रत्याख्येयानां च रोगाणां समुत्थानपूर्वरूप-  
लिंगवेदनोपशयविशेषविज्ञाने व्यपगतसंदेहाः ॥

अर्थ-उसीप्रकार जो शरीरविज्ञान और प्रकृति तथा विकृतिके  
नियम विषयमें भलेप्रकार जानने वाला, सुखसाध्य, कृच्छ्रसाध्य, याग्य  
तथा असाध्यरोग समस्तकी उत्पत्ति, पूर्वरूप, लक्षण, पीडा और उपश-  
यज्ञानमें संदेहशून्यहो ॥

त्रिविधस्यायुर्वेदसूत्रस्य ससंग्रहव्याकरणस्य सत्रिविधो-  
पधग्रामस्य प्रवक्तारः सर्वेषां मूलफलानां चतुर्णामहा-  
स्नेहानां पंचानां लवणानामष्टानां च मूत्राणामष्टानां  
च क्षीराणां क्षीरत्वक्वृक्षाणां च पण्णां शिरोविरे-  
चनादेश्च पंचकर्माश्रयस्याौषधगणस्याष्टाविंशतेश्च यवा-  
गूनां द्वात्रिंशतश्च सर्वेषां चूर्णप्रदेहानां पण्णां विरेचनश-  
तानां पंचानां च कपायशतानामितिस्वस्थवृत्तौ च  
भोजनपाननियमस्यानचक्रमणशय्याशनमात्राद्रव्याज-  
नधूमनावनाभ्यंजनपरिमार्जनवेगविधारणाविधारणव्या-  
यामसात्म्येन्द्रियपरोक्षोपक्रमसदृत्तकुशलाश्चतुष्पादोप-  
गृहीते च भेषजेशोडपकले सविनिश्चये सस्त्रिपर्येपणे  
सवातकलाकलज्ञाने व्यपगतसंदेहाः ॥

अर्थ-जिसका संग्रह तथा व्याकरण एवं त्रिविध ( वृद्धिमातृदोषके  
घटानेवाली, घटेदुपरोगकी बढानेवाली, तथा समभावस्थित दोषोंके  
संरक्षक ) औषधसाहित त्रिस्फध ( हेतु, लक्षण और औषधज्ञानात्मक )  
आयुर्वेदमें विशिष्टज्ञानसंपन्न सर्वप्रकारके मूल, फल, चतुर्विधमहास्नेह,  
पाँचप्रकारके निमक, आठमूत्र, आठ प्रकारके दूध, चचामें क्षीरवाले  
पृष्ठोंके तथा छः प्रकारके शिरोविरेचन पंचकर्म संबंधी २८ औषधसमूह  
और ३२, प्रकारकी यवागू, सर्वप्रकारके चूर्ण और प्रदेह समस्त, छः सौ  
विरेचन और पाँचसौ कपाय (काढे) आदि द्रव्यगण, स्वस्थावस्था भोजन

और-पानके नियम, अवस्थान, डोलना, फिरना, शयन, बैठना द्रव्यादि-  
कोंका परिमाण, अंजन, धूमपान, नस्याविधि ठवटना, देहका पोंछना,  
उपस्थितरोगका धारण और अधारण, व्यायाम शात्म्यता, उसी-  
प्रकार इन्द्रियोंके अप्रत्यक्षस्थलमें क्रियासंपादनका नियम, उत्तम आच-  
रणमें इत्यादि सर्वविषयोंको जाननेमें कुशल, पाद चतुष्टयोंपरगृहीत,  
औषध तथा सोलहकला करके निश्चित त्रिभैषणाका ज्ञाता सवात-  
कलाकल ज्ञानमें संदेहरहित हो ॥

चतुर्विधस्यच स्नेहस्यचतुर्विंशत्युपनयस्य चतुःषष्टि-  
पर्यंतस्य व्यवस्थापयितारो बहुविधविधानयुक्तानां  
च स्नेहस्वेद्यवम्यविरोध्यौषधोपचाराणां कुशलाः ॥

अर्थ—चार प्रकारके स्नेह चौबीसप्रकारके उपनय तथा चौसठ पर्य-  
तका स्थापन करनेको भलेप्रकार जानताहो । अनेक प्रकार विधिके साथ  
स्नेहनीय, स्वेदनीय, वमनीय और विरेचनीय औषध समस्तोंके  
प्रयोग विषयमें कुशल ॥

शिरोरोगादेश्च दोषांशविकल्पज्ञस्य व्याधिसंग्रहस्य  
संक्षयपीडकाविद्रधेः सर्वेषां च शोफानांबहुविधशो-  
फानुबंधानामष्टचत्वारिंशतश्च रोगाधिकारिणां चत्वारिं-  
शस्य च नानात्वजस्य व्याधिशतस्य तथा विगर्हि-  
तातिमलातिकृशानां सहेतुलक्षणोपक्रमाणां स्वप्नस्य  
च हिताहितस्यास्वप्नातिस्वप्नस्य च सहेतूपक्रमस्य  
पण्णांचलंवनादीनामुपक्रमाणां संतर्पणापतर्पणज्ञानां  
रोगाणांस्वरूपप्रशमनानांशोणितज्ञानां च व्याधीनां  
मदमूर्च्छासंन्यासानां च सकारणरूपौषधानां कुशलाः  
कुशलाश्च ॥

अर्थ—शिरोरोग, दोषोंके अंश, विकल्पजात, आधि व्याधिसंग्रह, क्षय, पीडका,  
विद्रधि, समस्त प्रकारकी सृजन, संपूर्ण सौषोंके १४८ अनुबंध मुख्यरोग ४०,  
तथा अनेक प्रकारकी १०० व्याधि, तथा दृष्ट मल, अतिकृशोंके सहेतु लक्षण-  
क्रमोंका जाननेवाला, स्वप्नका शुभाशुभ ज्ञाता, सोना तथा अत्यंत मोना  
इनके सहेतु चिकित्साका ज्ञाता अनुबंध, लंपनादि छः वस्तुओंका उपक्रम,

संतर्पण और अपतर्पण मद मूर्च्छा और संन्यास, इत्यादि सकल रक्तजन्य व्याधि एवं इनके निदान, लक्षण और प्रशमक औषध समस्त विषयमें विशेष विज्ञानशाली ॥

आहारविधिविनिश्चयस्य प्रकृत्याहिततमानामाहारवि-  
काराणामश्वसंग्रहस्यासवानांच चतुरशीति द्रव्यगुणवि-  
निश्चयस्य रसानुरससंशयस्य सविकल्पकवैरोधिकस्य-  
द्वादशवर्गाश्रयस्य चान्नपानस्य सगुणप्रभावस्य सान्न-  
पानगुणस्य नवविधार्थसंग्रहया आहारगतेश्च हिताहि-  
तोपयोगविशेषात्मकस्य च शुभाशुभविशेषस्य धात्वा-  
श्रयाणां च रोगाणामौषधसंग्रहाणां च दशानां च प्राणाय-  
तनानां यं च वक्ष्याम्यर्थे दशमहामूलीयं त्रिशततमा-  
ध्याये तत्र च कृत्स्नस्य च तंत्रोद्देशलक्षणस्य तंत्रस्य  
च ग्रहणधारणविज्ञानप्रयोगकर्मकार्यकालकर्तृकरणकु-  
शलाः कुशलाश्च ॥

अर्थ—आहारकी विधिका निश्चय, प्रकृतिके हिततम आहारविकारोंका ज्ञाता, अप्रिसंस्कारसे बने चौरासी आसवोंके, द्रव्यगुणोंका निश्चय, रसा-  
नुरससंशय सविकल्प और उनके विरोधी तथा द्वादशवर्गाश्रित अन्नपा-  
नका सगुणप्रभावका तथा अन्नपान आहारगतीके हिताहित उपयोग विशेष  
शुभाशुभका ज्ञाता, धातुसंश्रित रोग सकलको औषध प्रयोग विषयमें  
निपुण तंत्रोक्त निखिल लक्षण और तंत्रका ग्रहण धारण विज्ञान तथा  
प्रयोगादि विषयमें भलेप्रकार जाननेवाला ॥

स्मृतिमतिशास्त्रयुक्तिज्ञान आत्मनः शीलगुणैरविसं-  
वादनेन संपादनेन सर्वप्राणिपुचेतसो मैत्रस्य मातृपितृ-  
भ्रातृबंधुवदेवं च परंकृपालव इत्येवं बहुविधगुणयुक्ता  
भवंत्यग्निवेश प्राणानामभिसराहन्तारोरोगाणामिति ॥

अर्थ—स्मृति, बुद्धि, युक्ति और शास्त्रज्ञानसंपन्न, एवं सर्वप्राणीमात्रमें  
मातापिता भैयाके और बांधवोंके समान परम कृपाकरने वाला, इत्यादि

समस्त और इसीप्रकार अन्यान्यबहुगुणविशिष्ट वैद्य प्राणरक्षक और रोग-  
नाशक कहाताहै ॥

प्राणनाशकवैद्यकेलक्षण ।

अतो निपरीता रोगाणामभिसरा हन्तारः प्राणिनामिति  
तेभिषक्छद्मप्रतिछन्ना राज्ञांप्रमादाच्चरन्ति राष्ट्राणि तेषा-  
मिदं विशेषविज्ञानमत्यर्थं वैद्यवेशेन श्लाघमानाविशि-  
खान्तरमनुचरन्ति कर्मलोभाच्छ्रुत्वा च कस्यचिदातु-  
र्यमभितः परिपतन्ति गृध्राइव मांसलोभात्, संश्रवणे-  
चास्यात्मनोवैद्यगुणानुच्चैर्वदन्ति यश्चास्य वैद्यः प्रतिक-  
र्मकरोति तस्य च दोषान् मुहुर्मुहुरुदाहरन्त्यातुरमित्राणि-  
च प्रहर्षणोपजापोपसेवाभिरिच्छन्त्यात्मीकर्तुमल्पेच्छ-  
तांचात्मनःख्यापयन्तिकर्मचासाद्य मुहुर्महुरवलोकयन्ति  
दाक्ष्येणाज्ञानमात्मनश्छादयितुकामा व्याधितं चाप-  
वर्त्तयतुमशक्नुवंतोव्याधितमेवानुपकरणमपचारिकमना-  
त्मवन्तमुद्दिशन्ति अन्तगतं चाभिसमीक्ष्यान्यमाश्रयन्ति  
देशमपदेशमात्मनः कृत्वाप्राकृतजनसन्निपाते चात्मनः  
कौशलमकुशलवद्वर्णयन्ति अधीरवच्च धैर्यमपवदन्ते  
विद्वज्जनसन्निपातं चाभिसमीक्ष्य प्रतिभयमिव कान्तार-  
मध्वगाः परिहरन्ति । नचैषामाचार्याः शिष्यावा स ब्रह्म-  
चारी वैवादिको वा कश्चित्प्रज्ञायते इति ॥

अर्थ—अब दुष्टवैद्यके लक्षण कहते हैं कि, जो लक्षण कह आये हैं इस्से विपरी-  
त लक्षण वाले वैद्यको रोगाभिसर अर्थात् रोगोंका रक्षक और प्राणोंका ना-  
शक जानना। ऐसे कपटीवैद्य छिपेहुए राजाके प्रमादसे (राजाके वंदोचस्त न  
करनेसे) नगर सहरोंमें फिरते हैं इसकदनेसे यह प्रयोजन है कि, ऐसे दुष्ट वैद्यों-  
को राजा अवश्य दंडदेवे जिस्से ये बढे नहीं। अब इन दुष्टवैद्योंके जाननेके  
लिये कुछ लक्षण कहते हैं। कि, ये दुष्ट वैद्यवेशको धारण करे रहते हैं और  
अपनी बढाई आप अत्यंत करते हैं और कुछ कर्म वैद्योंकेसे कराकरते हैं,

एवं किसी मनुष्यको रोगी सुनकर इसप्रकार उसके ऊपर गिरते हैं जैसे मांसके लोभी गीध गिरते हैं, [ इसे यह दिखाया कि, गीध केवल मांसके लोभसे गिरता है उसीप्रकार ये छलिया वैद्य द्रव्य और उसरोगीके प्राणहरण करनेको जाते हैं ] प्रत्येक उपायोंको करके उसरोगीके पास पहुँच उसको प्रसन्न करते हैं,—उसके सुनते ऊँचे स्वरसे पुकारकर अपने वैद्यगुणोंको कहते हैं,—यदि कोई दूसरा वैद्य उसरोगीकी चिकित्सा करता होवे तो उसके बारंवार दोषोंको कहे अर्थात् इसवैद्यमें ये ये अवगुण हैं और रोगीके मित्र बांधवोंको अनेक प्रसन्नता, जप, सेवादि कर्मकरके अपनाय लेनेकी चेष्टा करे और इसप्रकार अपनेको बेपरवाही दिखावे कि, रोगीके बांधवोंको यह प्रतीत होजावेकि, इनको इसके चिकित्सा करनेका कुछ आग्रह नहीं है,—केवल हमारे कहनेसे लाचार होकर करते हैं,—जब रोगी इन दुष्टवैद्योंके हस्तगत होजाता है तब किसीक्रिया प्रयोगके बिगड़नेसे बारंवार क्रियाके फलको देखते हैं ( अर्थात् हमने यह रोगविचारकर इसरोगीको यह औषध दीनी, परंतु यह विपरीत गुणवाली क्यों होगई ) इसाँचितामें डूबजाते हैं । जब रोगी अच्छा न होसके तब अपने दोष छिपानेके निमित्त रोगीको उपकरण विहीन कहे ( अर्थात् हम क्या करें जो वस्तु रोगीको चाहिये वोतो इसके यहाँ नहीं थी ) और यह रोगी अत्याचारी है ( पथ्यसे नहीं रहता ) और सत्त्वसून्य है, इस प्रकार उस रोगीको दोष देते हैं । रोगीके मरनेपर अपने ऊपर विपर्ययके भयसे छलकरके दूसरे देशमें चलेजाते हैं ( अर्थात् रोगीके मरनेपर उसके बांधव कहीं सरकारमें रिपोर्ट न करदेवे अथवा लड़नेको तयार न होजायें, इस कारण परदेशको चलेजाते हैं ) और ये सामान्यमनुष्योंके समीप अकुशलके समान अपनी कुशलता और अधीरके समान अपने धैर्यको प्रगट करते हैं । विद्वानोंके समूहको देखके जैसे रास्ता चलनेवाला मनुष्य घोर वनको त्याग देता है उसीप्रकार ये दुष्टवैद्य उस विद्वानोंके समाजको देखकर चलेजाते हैं इन दुष्टोंके न आचार्य ( गुरु ) जाने जावे, न शिष्य न सहाय्यार्थ न विवादकर्ता जाने जावे ॥

मूर्खवैद्योंके लक्षण ।

भिषक्छद्मप्रतिछन्ना व्याधितास्तर्कयन्ति ये ।

वीतंसमिव संश्रित्य वने शाकुन्तिको द्विजान् ॥

श्रुतदृष्टक्रियाकालमात्राज्ञानवहिष्कृताः ।



देहको ठककर और मस्तकको नीचा झुकाके स्मृतिमान् शांति स्वरूप, स्थिरबुद्धि और रोगसंबन्धी शास्त्रका चिंतन करने वाला होना चाहिये। रोगीके घरकी कोईभी छिपी हुई बात बाहर निकलके किसीके आगे कहनेहो

हसितंचायुषः प्रमाणं न वर्णयितव्यम् जानतोऽपि त्रयत्रोच्यमानमातुरस्यान्यस्य वाप्युपघाताय संपद्यते तेनैतदप्यवश्यं चिंतनीयं यज्जीवनाशाच्छेदात् प्राणिनां धैर्यगांभीर्यादि प्रभृष्टाः परं शोचनीयतां यावन्ति अपि च न कश्चिज्जगत्यप्रमत्तो विद्यते, कदाचित् व्याधेः साध्यत्वेऽप्यसाध्यताभ्रान्तिस्तद्वत् व्याख्यानात् तद्वचनप्रतीतो ह्यातुर आयुष्मानपि विषयते अतो नानिवार्यहेतुं विनारिष्टलक्षणं प्रकटनीयम् । ज्ञानवतापि च नात्यर्थमात्मनो ज्ञानेकथितव्यम् । आत्मादपि कथमानादत्यर्थमुद्विजन्त्येके ॥

अर्थ—तथा रोगीके आगे अथवा रोगीके किसी आत्मीय बांधवके आगे जिससे उनको दुःख होय ऐसी रोगीकी भांवी (होनहार मृत्यु) को जानकरभी न कहे, क्योंकि कहनेसे उस रोगी और उसके बांधवकी धैर्यता जाती रहती है और वो घबड़ा जाते हैं अतएव इस बातको अवश्य याद रखना चाहिये । इस मनुष्य की जीवनआशा टूटी सुनतेही धीरज और गांभीर्यतादि गुण तत्काल चलायमान होजाते हैं और वो घोर शोकसागरमें डूब जाते हैं, इसीसे उस दुष्टवैद्यकी बराबर दूसरा प्रमत्त और कोन होगा। दूसरा कारण यह है कि, जिस रोगीको वैद्यने भ्रमसे असाध्य बताया यदि वो साध्य होय तो उस वैद्यके वाक्यका विश्वास जाता रहता है । और जिसको वैद्यने भ्रान्तीसे साध्य बताया है

१ देहठकने और मस्तक नीचा करनेसे वैद्यकी साधुता प्रगट होती है अन्यथा उद्धत और बेवृत्त तथा बदमास जाहिरहोता है । २ जब वैद्य रोगीके घरमें जाता है तो उसके परकी सर्वाभली और बुद्धिमान् इसमें जाहिरहो जाते हैं उस घरत बाहर आकर उसकी धूरनटकावे यह बड़े भारी ऐवकी बात है । ३ यदि वैद्यको उस रोगीका अनुभव कहनेकी ही अतिआवश्यकताहो तो उसके किसी बुद्धिमान् बांधवकी एकांतमें ले जाकर कहदेये ॥

और वो रोगी मरजावे तो फिरभी मनुष्योंको उसके कहनेका विश्वास नहीं रहता अतएव जब तक यह वैद्य अरिष्ट लक्षणोंको भलेप्रकार न विचार लेवे तब तक भला और बुरा कुछभी न कहे । यद्यपि आप विशेष ज्ञानवान् भी है, परंतु अपनी बहुत प्रशंसा आप न करें क्योंकि यथार्थ विद्वान और बहुदर्शीके भी मुखसे आत्मश्लाघा सुननेसे बहुतसे मनुष्य उससे विरागलेआते हैं अर्थात् फिर उनकी वो श्रद्धा नहीं रहती है । ये वैद्यकोही क्या मनुष्य मात्रको अपनी बड़ाई आप करना एक तुच्छता दिखानेका कारण होता है इससे अच्छे मनुष्यको आत्मश्लाघा करना त्याज्य है ॥

प्रसंगवसकलियुगियावैद्योकासिद्धान्त ।

**स्वस्थैरसाध्यरोगैश्च जन्तुभिर्नास्तिकिञ्चन ।**

**कातरादीर्घरोगाश्च भिषजां भाग्यहेतवः ॥**

अर्थ—स्वस्थ ( रोगरहित ) और असाध्यरोगवाले प्राणियो करके कुछ नहीं है, किंतु जो कायर ( डरपोक ) और दीर्घरोगी हैं वो प्राणी वैद्योंके भाग्यके कारण हैं । तात्पर्य यह है कि, रोगरहित देनेहीका क्या है और जो असाध्य हैं वो जानता है कि, अब मैं मरूंगातो सही फिर इन वैद्योंके ठगाने से क्या हासिल है, परंतु डरपोक प्राणी तत्काल ही वैद्यके दावमें आजाते हैं। एव जो बहुत दिनका रोगी है, वोभी नित्य प्रति वैद्यको ठुला येगा तो जबतक पड़ा रहेगा तबतक कुछन कुछ वैद्यको छीजता ही रहेगा ॥

**नातिधैर्यं प्रदातव्यं नातिभीतिश्च रोगिणम् ।**

**नैश्चिन्त्यान्नादिमे दानं नैराश्यादेव चांतिमे ॥**

अर्थ—वैद्यको उचित है कि, रोगीको अत्यंत धीरजभी न देय और न बहुत भयही दिखलावे, क्योंकि यदि अत्यंत धीरज वधाय देवेगा तो वो रोगी यह विचारके कि, अब मैं अच्छातो होयही जाऊंगा वैद्यको क्या ठगाऊ और अत्यंत भयदिखाने से वह रोगी मनमें विचारेगा कि, अब मैं बचनेका तो होई नहीं फिर इस वैद्यको देकर क्या घरखुका करे जो बचेगा तो बाल बच्चोंके ही काम आवेगा, अत एव अत्यंत धीरज और अत्यंत भय वैद्य रोगीको न देवे जैसे रुपया हाथ आवे वो युक्ति करे ॥

**भैषज्यं तु यथाकामं पथ्यं तु कठिनं वदेत् ।**

“ वैद्यानां शारदीमाता पितातु कुसुमाकर ” ॥

१ चेत कार मूले फिरे पटवति और वैद्य ।

**आरोग्यं वैद्यमाहात्म्यादन्यथात्वमपथ्यतः ॥**

अर्थ—वैद्यको उचित है कि, रोगीको जो मनमें आवे वोही ( घूल, खाक ) की पुडिया बांधके देदेवे, परंतु उसके ऊपर पथ्य कठिन बतावे ( जो रोगीसे न बन आवे ) यदि ऐसा करनेपर उस रोगीको आराम होगया तो वैद्यका माहात्म्य अर्थात् वैद्यने अच्छा करा है और आराम न होवे तो कह देवे कि, हम क्या करें तुमने पथ्यतो किया ही नहीं ( हमनेतो रामबाण दवाई दीनी भाग्य तुम्हारा ) ॥

**निदानं पूर्वरूपाणि सात्म्यासात्म्याचिकित्सिते ।**

**सर्वमप्युपदेक्ष्यन्ति रोगिणः सदने स्त्रियः ॥**

अर्थ—कदाचित् मूर्खवैद्य अपने मनमें यह विचार करे कि, मैं कुछ पढातो हूँ ई नहीं वहाँ रोगीके रोगका निदान और दवाई क्या कहंगा उसको कहते हैं कि, भाई तुम बुलानेवालेके साथ जायके उसरोगीके घरमें रोगीके समीप चुपके थोड़ी देर बैठतो जाऊ फिर तो रोगका निदान ( कारण ) तथा पूर्वरूप, एवं रोगीका हिताहित और चिकित्सा(इलाज) ये सब उसके घरकी स्त्री ( औरत ) अपने आप तुमको बताय देवेंगी (क्या आपको जानेंमेंभी आलस्य आताहै भला ऐसी सुप्तकी जीवका तुमको फवहाय लगनेकी है) ॥

**जृम्भमाणेषु रोगेषु म्रियमाणेषु जन्तुषु ।**

**रोगतत्त्वेषु शनैर्व्युत्पद्यन्ते चिकित्सकाः ॥**

अर्थ—जब चारों तरफसे रोग मूर् फैलाते हैं अर्थात् फैलते हैं और हजारों प्राणी मरते हैं तब वैद्य धीरे २ रोगतत्वोंमें बुद्धियुक्ति होते हैं । तात्पर्य यह है कि, तब तक रोग बढ़ते नहीं और विशेष मरी नहीं चेतें तब तक वैद्य एकदोही देखते हैं और जहां रोगबढ़े तथा मरी चेतती फिरतो वैद्यका बजारचेता और सेकड़ों नएनए वैद्य प्रगट होजाते हैं ॥

**प्रवर्त्तनार्थमारंभे मध्येत्वौपधहेतवे ॥**

**बहुमानार्थमन्तेच जिहीर्षन्ते चिकित्सकाः ॥**

अर्थ—प्रथम रोगीका यत्न आरंभ करनेको भेट आदि लेते हैं, फिर बीचमें कहते हैं कि, अब हमारे पास दवाई नहीं रही यदि कुछ देऊतो दवाई बनावे ऐसे कहकर लेते हैं और जब अच्छा होगया तब अंतमें बहुमानार्थ

अर्थात् अपनी विदाईके वास्ते वैद्य धनको हरण करते हैं । रोगी के पास वैद्यके आनेकी देरी है ॥ क्या ये पैसेको छोड़ते हैं । कभी नहीं, परंतु इनकेभी गुरुपंडाल हकीम और डाक्टर है “दुल हामरोचहिये दुलहनमेरा टका तो मोयदे” ॥

बहुश्रुतवैद्यकीप्रशंसा ।

स्वतंत्रकुशलोज्ञेयषु शास्त्रार्थेष्वबहिष्कृतः ।

वैद्यो ध्वजइवाभाति नृपतद्विधपूजितः ॥

अर्थ—जो वैद्य वैद्यविद्यामें कुशल है और अन्य ज्योतिष व्याकरणादिमें अबहिष्कृत ( थोड़ा २ जाने ) है, वो वैद्य ध्वजाके समान प्रकाश करता है । इसीप्रकार अन्यप्रजाओं करके पूजित राजा शोभित होता है ॥

निदानऔपथीऔरसाध्यासाध्यज्ञातावैद्यकोकर्मकीसिद्धि ।

यस्तुकर्मविशेषज्ञःसर्वभेषज्यकोविदः ।

साध्यासाध्यविधानज्ञस्तस्य सिद्धिः करे स्थिता ॥

अर्थ—जो वैद्योंके कर्मका विशेष जानता है और संपूर्ण औपथोंके योग अयोगमें कुशल है तथा साध्यासाध्य विभागके विधानको जाननेवाला है उसको चिकित्साकी सिद्धि हाथमें है अर्थात् वो तत्काल आराम करसکتा है ॥

शास्त्र और क्रियाज्ञातावैद्यकीप्रशंसा ।

दृष्टकर्माच शास्त्रज्ञो वैद्यः स्यात् सिद्धिभागसौ ।

एकाङ्गहीनो न श्लाघ्य एकपक्ष इवद्विजः ॥

अर्थ—जो छेदन भेदन आदि कर्म देखचुकाहो और शास्त्रभी पढ़ाहो वो चिकित्सासिद्धिका भागी है, परंतु जो एकही वस्तुको जानता है अर्थात् कर्म और शास्त्र इनमेंसे एकके जाननेवाला वैद्य प्रशंशके योग्य नहीं है जैसे एक पांखका पखेरू । तात्पर्य यह है कि, एक पंखसे जैसे पक्षी नहीं उड़सके उसीप्रकार एकवस्तु जाननेवाला वैद्य चिकित्सा नहीं करसक्ता ॥

चतुर्विधज्ञानवान्वैद्यकोराजत्व ।

हेतौ लिंगप्रशमने रोगाणामप्युभवे ।

ज्ञानं चतुर्विधं यस्य सराजादुर्भिपकृतमः ॥

अर्थ—रोगोंका हेतु ( आदिकारण ) रोगोंके लक्षण और उनरोगोंका नाश करना, तथा जैसे नाशद्वय रोग फिर इसप्राणीकी देहमें कभी प्रगट

नहो ऐसा उपाय करना ये चार प्रकारका जिसको ज्ञानहै वह सब वैद्योंका राजा है ॥

पद्मगुणयुक्तवैद्यकीप्रशंसा ।

विद्यावितर्को विज्ञानं स्मृतिस्तत्परताक्रिया ।

यस्यैते पद्मगुणास्तस्य नसाध्यमतिवर्तते ॥

अर्थ—विद्या, वितर्क, विज्ञान, स्मरण और उसीकर्ममें तत्पर होजाना एवं क्रिया यह पद्मगुणसंपन्न वैद्यसे साध्यव्याधि कदाचित् नहीं रहती अर्थात् तत्काल दूर करदेताहै ॥

वैद्यशब्दप्राप्तीकाकारण ।

विद्या मतिः कर्मदृष्टिरभ्यासः सिद्धिराश्रयः ।

वैद्यशब्दाभिनिष्पत्तौ बलमेकैकमप्यदः ॥

यस्य त्वेते गुणाः सर्वे सन्ति विद्यादयः शुभाः ।

स वैद्यशब्दं सद्भूतमर्हन् प्राणि सुखप्रदः ॥

अर्थ—विद्या, मति, कर्मदृष्टी, वैद्यकर्मका अभ्यास तथा उसकर्मकी सिद्धि और आश्रय ये एक २ वैद्यशब्द प्राप्त होनेमें बल कहिये कारण हैं जिसवैद्यमें ये संपूर्ण विद्यादि गुण हैं वो वैद्यशब्दको प्राप्तिहो प्राणियोंको सुखदाई जानना इसश्लोकका तात्पर्ययही है कि, जो विद्या विनयआदि गुणयुक्त है उसीको वैद्य कहना ठीक है मूर्खका नहीं। वो उनमेंहै कि “वैद्यराज नमस्तुभ्यं यमराज सहोदरः। यमस्तु हरति प्राणान् वैद्यः प्राणान् धनानि च” ॥

गुरुमुखपठितवैद्यकोवैद्यत्व ।

शास्त्रं गुरुमुखोद्गीर्णमादायोपास्य चासकृत् ।

यः कर्म कुरुते वैद्यः स वैद्योऽन्ये तु तस्कराः ॥

अर्थ—जो गुरुमुखसे शास्त्रको पढके और उसके तात्पर्यको विचारके अथवा उसके कर्मोंको सीखकर जो कर्म कर्ता है वो वैद्य है और बाकीके चोर हैं ऐसा जानना ॥

पूज्यवैद्यकेलक्षण ।

शीलवान्मतिमान्युक्तो द्विजातिः शास्त्रपारगः ।

प्राणिभिर्गुरुवत्पूज्यः प्राणाचार्यः सहि स्मृतः ॥

अर्थ—शीलवान् और बुद्धिमान् दिजाती तथा शास्त्रमें पारंगत ऐसा वैद्य प्राणियों करके गुरुके समान पूज्य है क्योंकि ऐसा वैद्य प्राणोंका आचार्य है ॥

जीवनदानको श्रेष्ठत्वकथन ।

धर्मार्थ सहस्रस्तस्य दातानेहोपलभ्यते ।

नहि जीवितदानाद्धि दानमन्यद्विशिष्यते ॥

अर्थ—धर्म, अर्थ और काम का दाता उसके बराबर और नहीं है कि, जिसने जीवनदान किया। कारण यह है कि, जीवनदानके समान दूसरा कोई भी दान नहीं है ॥

परोपकारत्वकथन ।

परोभूतदयाधर्म इति मत्वा चिकित्सया ।

वर्तते यः स सिद्धार्थः सुखमत्यन्तमश्नुते ॥

अर्थ—प्राणियोंके दया धर्मपर यह वैद्यकशास्त्र है ऐसा विचारके जो चिकित्सामें वर्तता है वह सिद्धार्थ है और अत्यन्त सुखको भोगे है ॥

वैद्यको दानित्वकथन ।

धर्मस्यार्थस्य कामस्य त्रैलोक्यस्याभयस्य च ।

दाता संपद्यते वैद्यो दानाद्देहसुखायुषाम् ॥

अर्थ—देह सुख और आयु इनके देनेसे धर्म, अर्थ, काम और त्रिलोकी को अभय का दाता वैद्य कहलता है ॥

दारुणैः कृष्यमाणानां गदैर्वैवस्वतक्षयम् ।

छित्वा वैवस्वतान्पाशाञ्जीवितं च प्रयच्छति ॥

अर्थ—दारुणरोगोंकरके यमपुरीकी खाँचे द्रुये मनुष्यकी जमफाँसोंको छेदनकर यह वैद्य इन प्राणियोंको जीवन देता है। अतएव इस वैद्यके समान धर्मार्थका दाता दूसरानहीं है क्योंकि जीवनदानसे बढकर संसारमें दूसरा दान कौनसा है ॥

चिकित्सा करनेका पुण्य ।

कपिला कोटिदानाद्धि यत्फलं परिकीर्तितम् ।

तस्मात्कोटिगुणं पुण्यमेकातुराचिकित्सया ॥

अर्थ—करोड़ कपिलागौदान करनेसे जिस फलकी प्राप्ति होती है उससे भी करोड़ गुणा अधिक पुण्य एकरोगीकी चिकित्सा (इलाज) करनेसे होता है ॥

अन्यच्च ।

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यमूलमुत्तमम् ।

तस्मादारोग्यदानेन नरोभवति सर्वदः ॥

अर्थ—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन पुरुषार्थ चतुष्टयोंका मूलकारण आरोग्यता है। इसीसे आरोग्यदान करके यह प्राणी सर्व वस्तुका दाता होता है। चाहिये सर्व दानकरो और चाहिये तो रोगीका यत्न करो दोनोंका फल बराबर है ॥

ग्रन्थांतरेच ।

अप्येकं नीरुजीकृत्य व्याधितं भेषजैर्नरः ।

प्रयाति ब्रह्मसदनं कुलसप्तकसंयुतः ॥

अर्थ—एकभी रोगीको औषधी करके रोगरहित करनेसे यह प्राणी अपने सात कुलोंको संग लेकर ब्रह्मलोकको जाता है। तात्पर्य यह है कि, वैद्य आप तो तरताही है, परंतु चिकित्साके प्रभावसे अपनी सात पीढी ( पुस्तो ) को तार देता है ॥

अपि मूलेन केनापि मर्दनाद्यैरथापि वा ।

सुस्थीकृतं लभेन्मर्त्यः पूर्वोक्तं लोकमुत्तमम् ॥

अर्थ—किसीएक जड़ीबूटीसे अथवा तैलादि मर्दनसे जो वैद्य रोगीको अच्छा कर्ता है वह पूर्वोक्त उत्तम लोक ( ब्रह्मलोक ) को प्राप्त होता है ॥

प्रमाणांतर ।

धर्मार्थौ कीर्तिमत्यर्थं सतां ग्रहणमुत्तमम् ।

प्राप्नुयात्स्वर्गवासं च हितमारभकर्मणा ॥

अर्थ—जो वैद्य प्राणियोंकी चिकित्सा करता है वह धर्म, अर्थ, कीर्ति और महात्माओं करके प्राप्त स्वर्गवासको प्राप्त होता है ॥

सर्वत्र वैद्यवृत्तिकाकथन ।

न देशो मनुजैर्हीनो न मनुष्या निरामयाः ।

अतः सर्वत्र वैद्यानां सुसिद्धा एव वृत्तयः ॥

अर्थ—ऐसा कोईसभी देश नहीं है जो मनुष्योंसे रहित हो और जहाँ २ मनुष्य हैं वहाँ २ वो रोगरहित नहीं है, अर्थात् थोड़े और बहुत अवश्य रोगी होंगे इसी कारण सर्वत्र वैद्योंकी वृत्ति तो सिद्ध है अर्थात् बनीबनाई तयार है फहाँ जाओ ॥

न प्राणिरहितो देशो न च प्राणिनिरामयः ।

तस्मात्सर्वत्रभिपजांकल्पिताएववृत्तयः ॥

अर्थ-ऐसा कोईसा देश नहीं है कि, जहाँ प्राणी ( मनुष्य ) नहीं रहते और प्राणी रोगरहित नहीं है अर्थात् सर्वत्र मनुष्य रोगपीडित हैं, इसी कारण वैद्योंकी वृत्ति सर्वत्र कल्पित है अर्थात् सर्वत्र मौजूद है ( जिसदेशमें जायगा उसी देशमें वैद्यकी चाह है ) ॥

रोगके अंतमें वैद्यपूजन ।

चिकित्सितशरीरं यो ननिष्क्रीणाति दुर्मतिः ।

सयत्करोति सुकृतं तत्सर्वभिपगश्नुते ॥

अर्थ-जो दुष्टबुद्धि रोगी अपने चिकित्सित शरीरको धनादि दान देकर उद्गुण नहीं करता, वह जो कुछ सुकृत ( पुण्य ) करता है वह सब वैद्यको प्राप्त होता है । अतएव रोगीको उचित है कि, इस लोक और परलोक की भलाईके वास्ते अपनी यथाशक्ति धन, रत्न, वस्त्रादिक देकर वैद्यको प्रसन्नकरे । अन्यथा वह कृतघ्रियोंकी गणनामें है ॥

योरोगीभिपजं सम्यक् रोगशांतौ न पूजयेत् ।

तस्यार्जितस्य पुण्यस्य प्राप्नोत्यर्द्धं भिपगवरः ॥

अर्थ-जो रोगी रोग शांतहोनेपर वैद्यका पूजन नहींकरे, अर्थात् धन-वस्त्रादि देकर संतुष्ट नहीं करता उसके संचितपुण्यका आधाभाग वैद्यको प्राप्त होता है । यदि रोगी कुछ न देवे तो हे भिपगवरहो ! तुम इसी वाक्यपर संतोषकरो ॥

चिकित्साकाफल ।

क्वचिदर्थःक्वचिन्मैत्री क्वचिद्धर्मःक्वचिद्यशः ।

कर्माभ्यासःक्वचिच्चापिचिकित्सानास्तिनिष्फला ॥

अर्थ-कहीं अर्थ ( धनकी प्राप्ति ) कहीं मित्रता, कहीं धर्म, कहीं यश-की प्राप्ति और कहीं चिकित्सा करनेसे कर्मकाही अभ्यास होता है, इत्यादि कारणोंसे चिकित्सा निष्फल नहीं है किंतु सफलही है ॥

चिकित्साकाफल ।

सनातनत्वाद्देदानामक्षरत्वात्तथैव च ।

तथादृष्टफलत्वाच्च हितत्वादापि देहिनाम् ॥



वाक्समहार्थविस्तारात्पूजितत्वाच्चदेहिभिः ।

चिकित्सितात्पुण्यतमं नर्किंचिदपि सुश्रुमः ॥

अर्थ-वैद्यके सनातन और अविनाशी होनेसे तथा प्रत्यक्ष फल दिखानेसे और प्राणीमात्रको हितकारी होनेसे तथा वाणीसमूहके कारण एवं देहधारियोंको माननीय होने से हम चिकित्सासे बढकर दूसरा पुण्यतम वस्तु नहीं सुना यह सुश्रुतमे लिखा है ॥

वैद्यकोशिक्षा ।

स्त्रीभिःसहास्यं संवादं परिहासं च वर्जयेत् ।

दत्तं च ताभ्यो नादेयमन्नादन्यद्रिपग्वरैः ॥

अर्थ-वैद्यको उचित है कि, स्त्रियोंके साथ एकजमे बैठना उनसे बात चीतकरना एवं उनसे हांसी ठटोरी करना त्यागदेवे । तथा अन्नके सिवाय और कोईसी वस्तु स्त्रियों से न लेवे, तात्पर्य यह है कि, रोगीके यहाँ स्त्रियोंके साथ बैठना हांसी ठटोरी करना और कोई वस्तु लेनेसे अन्य मनुष्यको यहप्रतीत होगी कि, इस रांडसे इस वैद्यकी कुछ सटलग रही है ॥

नसुप्याद्रोगिसदने नभुंजीयात्कदाचन ।

विनाह्वानं न गच्छेच्च नब्रूयान्मरणं भिषक् ॥

अर्थ-वैद्यको कदाचित् रोगीके घरमे न सोना चाहिये और नरोगीके घरमें भोजनकरे, एवं विनाबुलाए रोगीके यहाँ कदाचित् न जावे तथा रोगी का मरणजानकरभी न कहे ये पूर्वोक्त कर्म वैद्यकी प्रतिष्ठाहानि कारक है ॥

भाणीकोवैद्यशब्दकीप्राप्ति ।

विद्यासमाप्तौ भिषजो द्वितीयाजातिरुच्यते ।

अश्नुते वैद्यशब्दं हि न वैद्यः पूर्वजन्मना ॥

अर्थ-इस भिषकको विद्याकी समाप्तिमें द्विजाती जाति कहते है, अर्थात् दूसरी जाति होजाता है, तब यह वैद्य शब्दको प्राप्तहोता है किंतु जन्मलेने मात्रसेही वैद्य नहीं कहलाता ॥

वैद्यमानकोद्विजत्व ।

विद्यासमाप्तौ ब्राह्मं वा सत्त्वमार्पमथापि वा ।

ध्रुवमाविशति ज्ञानात्तस्माद्वैद्यो द्विजः स्मृतः ॥

अर्थ—आयुर्वेद विद्याकी समाप्तिमें ज्ञानहोनेके कारण इस प्राणीमें ब्राह्मसत्त्व अथवा ऋषिसत्त्व अवश्य प्राप्त होता है अतएव इस वैद्यको शास्त्रमें द्विज कहा है ॥

वैद्यकेप्रतिरोगीकावर्त्ताव ।

नाभिध्यायेन्नचाक्रोशेदहितैर्न समाचरेत्-।

प्राणाचार्यम्बुधःकश्चिदिच्छन्नायुरनित्वरम् ॥

अर्थ—इस वैद्यका किसी प्रकार दुष्टचित्तबन न करे, न गालीदे, तथा जिसमें वैद्यका अहितहोवे सो कर्मभी न करे, क्योंकि यह प्राणाचार्य है । अतएव आयुकी इच्छा करनेवाला बुद्धिमान् पुरुष वैद्यको सदैव प्रसन्नराखे ॥

कहकरनदेनेमेंअधर्मित्व ।

चिकित्सितस्तु संश्रुत्ययोवासंश्रुत्यमानवः ।

नोपाकरोतिवैद्याय नास्ति तस्येह निष्कृतिः ॥

अर्थ—जो रोगी वैद्यको देनाकरके नहीं देता अथवा किसी प्राणीको जो वस्तु देनी कहके नहीं देता, अर्थात् देनेसे उक्लपनहीं होता उस अधर्मके पापकी निष्कृति कहाँ नहीं है ॥

वैद्यकेधर्म ।

भिषगप्यातुरान्सर्वान् स्वसुतानिव यत्नवान् ।

आवाधेभ्योहिसंरक्षेदिच्छन्धर्ममनुत्तमम् ॥

अर्थ—अब वैद्यके धर्मकहते हैं कि, वैद्यभी उत्तम धर्मकी इच्छा करता, संपूर्ण रोगियोंको अपने पुत्रके समान रोगोंसे रक्षाकरे ॥

अनाथात्रोगिणो वैद्यःपुत्रवत्समुपाचरेत् ।

अर्थ—अनाथ रोगियोंको वैद्य अपने पुत्रके समान चिकित्सा करे । अर्थात् यदि उनके पास भोजनको न होवे तो भोजनको देय और औषधको द्रव्य न होवे तो आप उस औषधको मगायके देवे ॥

प्राणाचार्यश्च पितृवत्संपूज्यःशक्तिभक्तिः ॥

अर्थ—रोगी, रोगनिर्मुक्त होनेपर प्राणाचार्य (वैद्य) को अपने पिताके समान अपनी यथाशक्तिसे पूजनकरे ( कि, जिस्से वैद्य प्रसन्न होकर और आशीर्वाद देवे जिस्से फिर रोगी नहो ) ॥

धर्मार्थिनार्थकामार्थमायुर्वेदो महर्षिभिः ।

प्रकाशितो धर्मपरैरिच्छद्भिः स्थानमुत्तमम् ॥

अर्थ—धर्मपर महर्षियोंने उत्तमलोककी इच्छा करके यह आयुर्वेद शास्त्र धर्मार्थ प्रकाशकरा है किंतु कामनाके अर्थ नहींकरा, अतएव सब वैद्योंको उचित है कि, इस अमूल्य पदार्थको तुच्छ कामनाओंमें न लगावे ॥

नार्थार्थं नापिकामार्थं अथभूतदयांप्राप्ति ।

वर्त्तते यश्चिकित्सायां ससर्वमतिवर्त्तते ॥

अर्थ—यह आयुर्वेद, शास्त्र, धन एकत्र करनेको अथवा इसके द्वारा अनेक काम भोगना, इसके वास्ते नहीं है किंतु जो चिकित्सामें प्राणियोंकी दया विचारके यत्न करता है वह वैद्य सर्वमें श्रेष्ठ है ॥

नैवकुर्वीतलोभेनचिकित्सापण्यविक्रयम् ।

ऐश्वराणां वसुमतां लिप्सेतार्थतुदत्तये ॥

अर्थ—इस वैद्यको उचितहै कि, जो ऐश्वर्यसंपन्न अर्थात् सेठसाहूकार राजा बाबू हैं उनसे अपने वृत्तिके लगनेको लोभके पशहो चिकित्साका पण्यविक्रय (दुकानदारी) न करे अर्थात् इसरोगीसे इतनेही रुपया लेकर यत्न (इलाज) करेंगे । क्योंकि बड़े आदमी साले क्या देंगे, उनसे द्रव्यलेना ऐसा है जैसे जवाहिरकी कौडियोंमें बेचना ॥

वृत्त्यर्थचिकित्साकरनेकानिषेधः ।

कुर्वते येतुवृत्त्यर्थचिकित्सापण्यविक्रयम् ।

तेहित्वाकाञ्चनंराशिं पांशुराशिमुपासते ॥

अर्थ—जो प्राणी वृत्ति ( जीविका ) के अर्थ चिकित्साकी विक्रीकरते हैं वो सुवर्णकी रासको छोड़के घुलमिटी की रासको ग्रहण करते हैं ॥

अप्येकं नीरुजं कृत्वा जन्तुं यादृशतादृशम् ।

आयुर्वेदप्रसादेन किन्नदत्तं भवेद्भुवि ॥

अर्थ—वैद्य आयुर्वेदके प्रतापसे जैसे जैसे एकभी रोगीको नेरोग्य करता है उसने या पृथ्वीमें क्या वस्तु नहीं दीनी, अर्थात् वो सब वस्तु दे चुका अब कुछभी देना बाकी नहीं रहा, 'आयुर्वेदप्रसादेन' इस पदके

धरनेसे यह प्रयोजन है कि, आयुर्वेद पढ़कर रोगोंका निश्चय करके जिसने यत्न करा उसको सर्वदानीकी पदवी प्राप्त होसकी है किन्तु मूर्ख वैद्य भलेही सैकड़ों रोगियोंका यत्न करके अच्छा करदे, परंतु अधर्मकाही भागी होगा क्योंकि बिना पढेसे चिकित्सा कराना निषेध लिखा है ॥ सो आगे कहेंगे “ औषधं मूढवैद्यानामित्यादि ” ॥

शस्त्रादिविशोधन ।

शस्त्रं शास्त्राणि सलिलं गुणदोषप्रवृत्तये ।

मात्रापेक्षीण्यतः प्रज्ञां चिकित्सार्थं विशोधयेत् ॥

अर्थ—शस्त्र, शास्त्र, जल, ये मात्राकी अपेक्षा करते हैं अतएव इनको गुण-दोषकी प्रवृत्ति अर्थ और चिकित्साके अर्थ वैद्य शोधनकरे। तहाँ शस्त्र, शास्त्र और जलको चिकित्साके वास्ते शुद्ध ( उज्ज्वल ) करे। एवं गुणदोष प्रवृत्तिके वास्ते प्रज्ञाका शोधन करना चाहिये ।

शास्त्रं ज्योतिः प्रकाशार्थं दर्शनं बुद्धिरात्मनः ।

ताभ्यांभिपक्षं सुयुक्ताभ्यांचिकित्सन्नापराध्यति ॥

अर्थ—ज्योति प्रकाशार्थं शास्त्र और आत्मकी बुद्धि दर्शनके अर्थ इन दोनों ( शास्त्र और बुद्धि ) करके युक्त होकर जो वैद्य चिकित्सा करता है वह चिकित्सा कर्ममें कदाचित् नहीं चूके अर्थात् उसकी चिकित्सा ठीक होती है

चिकित्सिते त्रयः पादा यस्माद्वैद्यव्यपाश्रयाः ।

तस्मात्प्रयत्नमातिष्ठेद्विपक्षं स्वगुणसंपदि ॥

अर्थ—चिकित्साके तीनों पैर वैद्यके आश्रित हैं अतएव वैद्यकोभी उचित है कि, वह अपने गुण संपत्तिमें यत्नपूर्वक स्थित रहे। तात्पर्य यह है कि, रोगी दूत और औषधी ये सब वैद्यके आश्रित हैं यदि वैद्यही मूर्ख हुआ तो फिर ये कुछ कामके नहीं हैं इसी से वैद्य विद्या और वैद्यकर्ममें कुशल रहे ॥

वैद्यकी चतुर्विधवृत्ति ।

मैत्रीकारुण्यमार्त्तेषु शक्ये प्रीतिरुपेक्षणम् ।

प्रकृतिस्थेषु भूतेषु वैद्यवृत्तिश्चतुर्विधा ॥

अर्थ—अब वैद्यकी चतुर्विधवृत्ति कहते हैं कि, रोगियोंमें भिन्नभाव और करुणाकरे तथा जो प्रकृतिस्य प्राणी हैं अर्थात् रोगहीन हैं उनमें प्रीति और सावधानीसे देखना ॥

अश्विनावग्निरिन्द्रश्चवेदेषु सुतरां स्तुताः ।

वैद्यावित्यश्विनौ देवौ पूज्येते विबुधैरपि ॥

अर्थ—वेदमे अश्विनीकुमार अग्नि और इन्द्र निरंतर स्तुति करे गए हैं । वे अश्विनीकुमार वैद्य हैं सो देवताओं वरके भी पूजे जाते हैं । फिर औरों को तो अवश्य पूजने चाहिये ॥

अजरैरमरैर्नित्यं सुखितैरेवमाहृतैः

व्याधिमृत्युजराग्रस्तैर्दुःखप्रायैः सुखार्थिभिः ।

किंपुनर्भिषजो मर्त्यैः पूज्याः स्युर्नात्मशक्तितः ॥

अर्थ—जब अजर अमर और सदैव सुखित देवताओं के वैद्य पूजे जाते हैं तो फिर व्याधि, मोत और वृद्धावस्था फरके ग्रसित, दुखिया और सुखकी इच्छा करनेवाले ऐसे मनुष्यों को वैद्य अपनी शक्तिके माफिक क्या नहीं पूजने चाहिये किंतु सर्वथा पूजने ही चाहिये ॥

चिकित्सासिद्धिर्गोचरवैद्यैः ।

यस्तुरोगविशेषज्ञः सर्वभैषज्यकोविदः ।

देशकालविभावज्ञस्तस्य सिद्धिर्न संशयः ॥

अर्थ—जो वैद्य रोगविशेषों को जानता है अर्थात् संपूर्ण रोगों को जानता है और संपूर्ण औषधों के बनाने में चतुर है तथा देशकालके विभागों को जानने वाला है उसको चिकित्सा की सिद्धि में कुछ भी संशय नहीं अर्थात् ऐसे वैद्य को तो सिद्धी अवश्य ही होती है ॥

वैद्यशास्त्रपठितको चिकित्सा करने का अधिकार ।

आयुर्वेदं ततोऽधीत्य सकाशात्सद्गुरोर्भिषक् ।

चिकित्सां रोगिणां कुर्यादन्यथा पापभाग्भवेत् ॥

अर्थ—वैद्य गुरुसे आयुर्वेदशास्त्र को पढ़कर रोगियों की चिकित्सा करे अन्यथा पापका भागी होता है [ तात्पर्य यह है कि, केवल अमृतसागर आदि वांचकर ही वैद्य मत बनो भाइयो ! कुछ गुरुमुखसे भी पढो जिससे ज्ञान और प्रतिष्ठा की प्राप्ति हो ]

अत्र जल और चिकित्सादान का फल ।

अत्र दो जलदश्चैव आतुरस्य चिकित्सकः ।

**त्रयस्ते स्वर्गमायांति विनायज्ञेनभारत ! ॥**

अर्थ—हेभारत ! अन्नदाता जलदाता और रोगीकी चिकित्सा करने वाला ये तीनों प्राणी विनायज्ञकियेही स्वर्गको जाते हैं । तात्पर्य यह है इन तीनों प्राणियोंको विनायज्ञ करने परभी यज्ञ करनेका फल प्राप्त होता है । यह प्रमाण भारतके शांतिपर्वमें लिखा है, फिर न मालूम बड़े २ पंडित, वैद्यवृत्तीको क्यों दोषारोपण करतेहैं ।

राजाकोवेद्यादिचतुष्टयोंकानित्यदर्शन ।

**वैद्यः पुरोहितो मन्त्रीदेवज्ञश्चतुर्थकः ।**

**द्रष्टव्याः प्रातरेवैतेनित्यंश्रेयोविवृद्धये ॥**

अर्थ—औरभी लिखा है कि, राजा अपने कल्याणकी वृद्धिके लिये नित्य प्रातःकाल उठकर वैद्य, पुरोहित, मन्त्री और चतुर्थदेवज्ञ ( ज्योतिषी ) का दर्शनकरे । येभी प्रमाण धर्मशास्त्रका है देखोमित्र ! इसश्लोकमें भी प्रथम वैद्यका दर्शन करना लिखता है, इसीसे आयुर्वेदमें इसवैद्यका नाम प्राणाचार्य लिखा है जो प्राणोंसे द्वेषकराचाहें वो वैद्यसे भलेही द्वेषकरे जैसे नीचेके श्लोकमें लिखते हैं ॥

**गतश्रीर्गणकान्द्रेष्टि गतायुश्चचिकित्सकान् ।**

**गतश्रीश्च गतायुश्च ब्राह्मणान्द्रेष्टिभारत ॥**

अर्थ—गई है श्री ( संपत्ति वा शोभा ) जिसकी वो ज्योतिषीयोंसे द्वेष ( वैर ) करता है । गतायु अर्थात् गई है आयु जिसकी ( मरणासन्न ) वो वैद्योंसे द्वेष ( वैर ) करता है और हेभारत ! गतश्री और गतायु ऐसाप्राणी ब्राह्मणोंसे द्वेषकरता है ( हमब्राह्मण उसीको कहेंगे कि, जो ब्राह्मणवंशमें प्रगटहुआ हो और विद्यापढा हो ) केवलविद्याभ्यासी अथवा केवल ब्राह्मणकुलमें जन्म होनेसे ब्राह्मण नहीं होता तथापि विद्याहीन ब्राह्मणसे पढा हुआ क्षत्री वैश्य उत्तम है तथा शूद्रभी धनि-स्वतः विना पढेसे पढाहुआ उत्तम है ॥

विनाशास्त्रप्रायश्चित्तादिकथनमेंब्रह्महत्याकेपापकीप्राप्ति ।

**प्रायश्चित्तं चिकित्सां च ज्योतिषं धर्मनिर्णयम् ।**

**विनाशस्त्रेणयोऽब्रूयात्तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥**

अर्थ—प्रायश्चित्त, चिकित्सा, ज्योतिष और धर्मका निर्णय इनको जो विनाशास्त्रप्रमाणके कहता है, उसको बड़े २ मुनीश्वर ब्रह्महत्याका कहते हैं ।

तहां प्रायश्चित्त उसको कहते हैं जो पापीके वास्ते दंडकल्पना ( कृच्छ्र-  
चांद्रायणादि ) है चिकित्सा उसको कहते हैं जो रोगीके आरोग्य करनेको  
निर्णय करीजावे जैसे औषध और चीरना फाड़नाआदि । ज्योतिषकरके  
इसजगे ग्रहादिकों का फल तथा प्रभादिक जानने । और धर्मनिर्णय  
एकादशी जन्माष्टमीआदि व्रतोंका निर्णयआदि ) जानना । इनके उदा-  
हरण दिखाते हैं, जैसे किसी पुरुषने चांडालादिकका अन्न भोजनकरा  
अब शास्त्रसे तो उसका निश्चय नकरा किंतु जो जातीमें पंचहैंउन्होंने कह  
दियाकि १०० रुपये हमको देउ हम तुझको जातमें लेलेवेगे, वस जहाँ  
उनको रुपयेदिये और उन्होंने कही जा मूंड मुढाय जनेऊ पलट अमुक  
देवके आगे दियाधरआ और जात जिमायदे, तो यह शास्त्राविरुद्ध प्राय-  
श्चित्तहुआ । एवं विनारोगका और औषधका निर्णय हुए औषधदेना  
ये शास्त्राविरुद्ध चिकित्सा हुई । एवं विनाग्रह गोचर दशांतर्दशके कह-  
देना कि, तुझको मारकेश है अथवा अटकलपंजे प्रश्रवतानेलेगे वा तिथि  
वार बताने लगे, तोयह शास्त्राविरुद्ध ज्योतिष हुआ इसी प्रकार विनाशास्त्रके  
जाने सूतकादिका निर्णय करना ये शास्त्राविरुद्ध धर्मनिर्णय हुआ ॥

गुणयुक्तपादचतुष्टयोंकीप्रशंसा ।

गुणवद्भिस्त्रिभिः पादैश्चतुर्थो गुणवान् भिषक् ।

व्याधिमल्पेन कालेन महान्तमपि साधयेत् ॥

अर्थ—गुणवान् तीन पैर ( रोगी, औषधि और परिचारक ) करके  
और चौथा गुणवान् वैद्य घोर व्याधिकोभी शीघ्रही साधन करसक्ताहै,  
अर्थात् बढीहुई भी व्याधिको शीघ्र रोक सके है ॥

शास्त्रऔरबुद्धिद्वाराकर्मकरनेकी आज्ञा ।

प्रदीपभूतशास्त्रेण दर्पिता विप्रलामतिः ।

ताभ्यां भिषक्तुयुक्ताभ्यां चिकित्सन्नापराध्याति ॥

अर्थ—शास्त्रहै सो दीपक रूपहै उसने विशेष बुद्धि दिखाई है । अर्थात्  
जैसे दीपक अंधकारकी वस्तुको दिखाता है उसी प्रकार शास्त्रने अज्ञा-  
नांधकारसे ढकी हुई बुद्धिको बढायके दिखाई, इन दोनों अर्थात् शास्त्र और  
बुद्धिसे भलेप्रकार भिलापर जो चिकित्सा करताहै वो कदाचित् नहानूके ॥

उत्तमवैद्यकेलक्षण ।

येतु शास्त्रविदोदक्षाः शुचयः कर्मकोविदाः ।

जितहस्ता जितात्मानस्तेभ्यो नित्यकृते नमः ॥

अर्थ—अब उत्तमवैद्यकी प्रशंसा करते हैं कि, जो शास्त्रज्ञ, चतुर, पवित्र, चिकित्साकर्ममें निपुण, जितहस्त और जिती हैं आत्माजिन्होंने ऐसे उत्तम वैद्योंके अर्थ हमारी नित्य नमस्कार है ॥

निदानरहितवैद्यकोकर्मकीअसिद्धि ।

यस्तु रोगमविज्ञाय कर्माण्यारभते भिषक् ।

अप्यौषधविधानज्ञस्तस्य सिद्धिर्यदृच्छया ॥

अर्थ—जो रोगकी परीक्षाके बिना चिकित्सा करता है यद्यपि वो औषध विधानमें प्रवीणभी है, परंतु फिरभी उसको सिद्धीकी यथेच्छा है अर्थात् चिकित्साकरनेसे रोगी अच्छाहोय चाहिये नहींवे ॥

बिनापठित वैद्यकी निंदा ।

अविज्ञायतुशास्त्राणि भेषजं कुरुते भिषक् ।

यमएव सविज्ञेयो मर्त्यानां मर्त्यरूपधृक् ॥

अर्थ—जो, बिनाशास्त्र पढे औषध करता है वो मनुष्योंमें मनुष्यका रूप धारणकर्ता साक्षात् यमराज है ॥

मूर्खवैद्यकाहास्य ॥

पाणिचाराद्यथा चक्षुरज्ञानाद्भीतभीतवत् ।

नौमार्कतवशे वाज्ञा भिषक्चरति कर्मसु ॥

अर्थ—बिनानेत्रके अंधापुरुष हाथपैरोंको जैसे डरता हुआ धीरे धीरे धरता है और जैसे पवनके प्रबलवेगसे नौका ( जिहाज ) जैसे समुद्रमें मारा २ डोलता है उसीप्रकार मूर्खवैद्य चिकित्साकर्ममें चलता है ॥

वैद्याभिमानीमूर्खवैद्यकीनिंदा ।

यदृच्छयासमापन्नमुत्तार्यनियतायुपम् ।

भिषग्मानी निहंत्याशु शतान्यनियतायुपम् ॥

तस्माच्छस्त्रेऽर्थविज्ञाने प्रवृत्तौ कर्मदर्शने ।

भिषक्चतुष्टये युक्तप्राणाभिपरञ्च्यते ॥

अर्थ—मूर्खवैद्य यदृच्छापूर्वक प्राप्तहुए पूर्णआयुवालेको रोगसे बचा-यके मारे अभिमानके अनेक अनियतायुषी अर्थात् जिनकी आयुका



कुछ ठीक नहीं ऐसे सैकड़ों प्राणियोंको यह वैद्याभिमानी दुष्टवैद्य मारता है इसीकारण इस प्राणीको शास्त्र और शास्त्रके अर्थ ज्ञानमें तथा उस वैद्यकर्मकी प्रवृत्ति एवं उसकर्मोंके देखनेमें प्रवृत्तही तथा चतुष्पाद संपत्तियुक्तही जो चिकित्सा करता है वो प्राणाभिसर अर्थात् प्राणरक्षक वैद्य कहलाता है ॥

निदान विनाजाने चिकित्सा करनेमें वैद्यको दंडनीयत्व कथन ।

भेषजं केवलं कर्तुं यो जानाति न चाभयम् ।

वैद्यकर्म सचेत्कुर्याद्वधमर्हति राजतः ॥

अर्थ—जो वैद्य केवल औषध देना जानता है किंतु रोगोंको नहीं जाने कि, इस रोगीके क्या विकार है यदि वो वैद्य कर्म ( चिकित्सा ) करे तो वो राजासे वधके योग्य है । अर्थात् ऐसे वैद्यको राजा, फांसी, देदेवे, इससे वैद्यको उचित है कि, प्रथम निदानका अभ्यास करके फिर चिकित्साकरे ॥

केवल शास्त्रज्ञाता और औषधज्ञान रहित वैद्यकी निंदा ।

यस्तु केवलशास्त्रज्ञोभेषजेष्वविचक्षणः ।

तं वैद्यं प्राप्य रोगीस्याद्यथा नौर्नाविकं विना ॥

अर्थ—जो वैद्य केवल शास्त्र पढा है, परंतु चिकित्सा करनेमें अकुशल ( मूर्ख ) है, उस वैद्यकी प्राप्तही रोगीकी ऐसी दशा होती है, जैसे विना केवटिया ( मलाह ) के बीच धारमें नावकी गति ॥

शास्त्रपठित और क्रियारहित वैद्यको भीरुत्वकथन ।

यस्तु केवलशास्त्रज्ञः क्रियाष्वकुशलो पिभक् ।

समुह्यत्यातुरं प्राप्य प्राप्यभीरुरिवाहवम् ॥

अर्थ—जो वैद्य केवल शास्त्रको जानता है किंतु उस शास्त्रकी क्रियाओंमें अकुशल ( मूर्ख ) है वह वैद्य रोगीको देखके ऐसे घबड़ाता है कि, जैसे भीरु ( कापरमनुष्य ) संग्राम ( लड़ाई ) को प्राप्तहोकर घबड़ाताहै ॥

विनापठित वैद्यको राजासे दंडनीयत्वकथन ।

यस्तुकर्मसु निष्णातो धाष्ट्याच्छास्त्रवहिष्कृतः ।

स सत्सु पूजां नाप्नोति वधमर्हति राजतः ॥

अर्थ—जो वैद्यके कर्ममें तो निपुणहैं, परंतु ठीठतासे शास्त्र वहिष्कृत अर्थात्

शास्त्रको नहीं जाने वो सत्पुरुषोंमें सत्कार नहीं पाता, किंतु राजासे वध ( मृत्यु ) को प्राप्त होता है ॥

कर्त्तव्यमें मूर्खवैद्यकी निंदा ।

छेद्यादिष्वनभिज्ञो यः स्नेहादिषु च कर्मसु ।

स निहंति जनं लोभात्कुवैद्यो नृपदोषतः ॥

अर्थ—जो वैद्य छेदन भेदनादि कर्ममें मूर्ख है, तथा घृत तैल आदिके बनानेमेंभी मूर्ख है वह दुष्टवैद्य राजाके दोषसे प्राणियोंको लोभवश होकर मारता है [ यदि राजाही ऐसे दुष्टवैद्योंकी परीक्षा कियाकरे तो ये इतने क्यों बड़े और हजारों अनाथके समान प्राणी यमपुरकी यात्रा क्यों करे ] धन्यरे अंगरेजी राजा व धन्य है !!!

मूर्खवैद्यके दोष ।

लोभयन्त्यातुरं मूर्खा विचित्रैः कर्मकौशलैः ।

तेभ्योरक्षेत्सदात्मानमात्मायस्मात्सुदुर्लभः ॥

अर्थ—मूर्खवैद्य अपना विचित्रविचित्र कर्मकौशल ( अर्थात् धालाफी ) से रोगी को लोभित करते हैं । उन दुष्ट वैद्योंसे मनुष्यकी सदैव सावधानी के साथ अपनी आत्माकी रक्षा करनी चाहिये क्योंकि इस संसारमें आत्मा अत्यंतही दुर्लभ है ॥

तेषुणाक्षरवत्किंचिदुत्थाप्यनियतायुषम् ।

ग्रन्तिवैद्याभिमानेन शताननियतायुषान् ॥

अर्थ—वो पुणाक्षरन्याससे अनियतायुषीप्राणीको रोगसे बचापके वैद्याभिमानी हो अनेक अनियतायुषी प्राणियोंको नाश करते हैं ॥

ये क्रियां विक्रियां कुर्वन्त्युपेक्षन्ते स्वर्णंति वा ।

स्वादन्ति ते परप्राणान्निजानि सुकृतानि च ॥

अर्थ—जो वैद्य क्रियाको विक्रिया करते हैं अथवा जिससमय क्रिया करनेका फाल है उसकी उपेक्षा करदेते अथवा चिकित्सामें चूकजाते हैं वो दुष्टवैद्य दूसरे के प्राणों को और अपने सुकृतोंको खाते हैं ॥

वैद्यको स्वयंतर्ककरनेकी आज्ञा ।

नचैकांति न निर्दिष्टे शास्त्रेनिर्विशते बुधः ।

स्वयमप्यत्रभिपजातर्कनायं चिकित्सता ॥

अर्थ-शास्त्रमें सब कहा है तथापि वैद्य सब जानता है ऐसा नहीं होता इसीसे वैद्यको स्वतः तर्क चलायके चिकित्साकरे। तात्पर्य यह है कि, शास्त्रमें भी कुछ हगनी मूतनी छोटी २ बात नहीं लिखी है। अतएव वैद्य को उचित है कि, अपनी बुद्धिसे विचारकर केवल शास्त्रके भरोंमें ही न रहे ॥

निषिद्धवैद्य ।

कुचैलः कर्कशस्तब्धो ग्रामीणः स्वयमागतः ।

पंचवैद्यानपूज्यं ते धन्वंतरिसमा अपि ॥

अर्थ-मलिन कपड़ेको धारणकर्त्ता, कर्कश, गर्ववाला ( अभिमानी ) ग्रामीण ( गंमईका रहनेवाला ) और जो बिनाबुलाए आया हो, ये पांच वैद्य धन्वंतरिके भी समान होवे तथापि पूजे नहीं जाते । अर्थात् ऐसे वैद्योंका कोई सत्कार नहीं करता ॥

वैद्यकोपाककारित्वमप्रमाण ।

अन्यजातिकृतः पाको ह्यस्पृश्यः सर्वजातिभिः ।

इति विज्ञाय मतिमान् वैद्यं पाकेनियोजयेत् ॥

अर्थ-अन्य जातिका करापाक सब जातियोंको अस्पृश्य ( छूने योग्य नहीं ) है, ऐसा जानके बुद्धिमान् पुरुष वैद्यको पाक करनेपर नियुक्त करे। तात्पर्य यह है कि, अपनी २ जातिका करा पाक सब खाते हैं दूसरी जाति-का किया कोई नहीं छूता और वैद्यके हाथका करा सब खाते हैं अतएव पाककर्त्ता वैद्यही होना चाहिये ।

अन्यजातिकेकरेपाकभोजनमें प्रायश्चित्त ।

मोहाद्विजातिवर्णाद्यैः पाचितं खादिते सति ।

प्रायश्चित्तीभवेच्छूद्रो जातिहीनो भवेद्विजः ॥

अर्थ-जो प्राणी मोहवश ब्राह्मण आदिके करे हुए पाकको भक्षण ( भोजन ) करता है । यदि वह शूद्र होवे तो प्रायश्चित्ती होवे और ब्राह्मण होय तो जातिसे रहित अर्थात् जात बाहर होता है । यह प्रमाण पूर्व बंगालदेशमें है, परंतु हमारे पश्चिमोत्तर देशमें प्रमाणिक नहीं है । क्योंकि सब पुराणोंमें राजा महाराजाओंके ब्राह्मण और ब्राह्मणोंके राजा महाराजा भोजन करते रहे हैं । फिर हमारे देशमें भी प्रायः पक्की रसोई भोजनका व्यवहार है कच्चीका नहीं ॥

वैद्यशास्त्रऔरज्योतिषशास्त्रकोप्राधान्यता ।

अन्यानिशास्त्राणिविनोदमात्रं नकिञ्चिदेपांतुविशिष्टमस्ति ।

चिकित्सितं ज्योतिषमंत्रवादाः पदेपदे प्रत्ययमावहन्ति ॥

अर्थ-अन्य ( व्याकरण, न्याय आदि ) शास्त्र केवल विनोदमात्र अर्थात् बालकोंकेसे खेल हैं उन व्याकरणादि शास्त्रोंमें कुछ विशेषता नहीं है, परंतु चिकित्सित ( वैद्यविद्या ) ज्योतिष और मंत्रवाद ये तीनोंशास्त्र पद पदमें विश्वासदेते हैं ।

तात्पर्य यह है कि, व्याकरण, छंद, काव्य, अलंकार, प्रहसन आदि ये सब खेलनेके समान है, जैसे खेलकी वस्तुसे खेले और धरदानी इसी प्रकार ये अन्य शास्त्रहैं, परंतु प्रत्यक्षपरचादिज्ञाने वाले ये तीनही शास्त्र हैं, जैसे वैद्यक, ज्योतिष और तंत्रशास्त्र, इनमें भी हमको तो वैद्यशास्त्रमें विश्वास है । क्योंकि इसकी जितनी क्रिया हैं सब प्रत्यक्ष हैं और ज्योतिषमें हम गणितभागको प्रत्यक्ष फलदायक मानते हैं । रहा-मंत्रशास्त्र उसमें हम सदेहयुक्त हैं तथापि धाममार्ग तो सर्वथा दुष्ट पाम-रोंका निर्मित प्रतीत होता है अस्तु ॥ " जिस गावमेंही न जाना उसके फोश गिनना ध्यर्थ "

चोरी कपट और बलपूर्वकविद्या ग्रहणमें दोष ।

विद्यां गृहीतुमिच्छन्ति चौर्यच्छद्मबलादिना ।

न तेषां सिद्ध्यते किञ्चिन्मणिमंत्रौपधादिकम् ॥

अर्थ-जो प्राणी विद्याको चोरीसे कपटसे और जबरदस्तीसे ग्रहण करनेकी इच्छा करता है उनको मणिपरीक्षा, मंत्र और औषधकी सिद्धि ये कोईभी फलीभूत नहींहों ॥

भरणपर्यंतचिकित्साकरनेकीआज्ञा ।

यावदुच्छ्वसितिप्राणी यावद्भेषजमत्तिच ।

तावच्चिकित्साकर्तव्यादैवस्यकुटिलागतिः ॥

अर्थ-जबतक यह प्राणी श्वासलेता है और जबतक औषध भक्षण करसके तायत्कालपर्यंत वैद्यको इस प्राणीकी चिकित्सा करनी ही चाहिये क्योंकि देव (विधाता) की गति कुटिल ( टेढ़ी ) है अर्थात् मालूमनहीं-पडे नमालूम उस वक्तभी औषध देनेसे रोगी जीटटे ॥

**यावत्कंठगताः प्राणायवन्नास्तिनिरिन्द्रियः ।**

**तावच्चिकित्साकर्तव्या दैवस्यकुटिलागतिः ॥**

अर्थ—यावत् कंठमें प्राणहो और जबतक यह प्राणी इन्द्रिरहित न होवे तावत् पर्यंत रोगीकी चिकित्सा करनी चाहिये क्योंकि दैवकी गति कुटिल है ( कदाचित् इस अवस्थामें भी औषध देनेसे रोगी बच जावे )

**रोगीकेलक्षण ।**

**रोगोयस्यास्तिरोगीस सचिकित्स्यस्तुयादृशः ।**

**यादृशश्चाचिकित्स्योपिवक्ष्यमाणोनिशम्यताम् ॥**

अर्थ—अब चिकित्साके दूसरे पादका अर्थात् रोगीके लक्षण वर्णन करते हैं जैसे कि, जिसके रोग हुआ हो वो रोगी कहलाता है, तहां जैसे रोगीकी चिकित्सा करनी चाहिये और जैसे कि, चिकित्सा नहीं करनी उन दोनोंके लक्षण में आगे कहता हूं उनको सुन ॥

**चिकित्साकेयोग्यरोगी ।**

**निजप्रकृतिवर्णाभ्यांयुक्तः सत्वेन चक्षुषा ।**

**चिकित्स्योभिपजारोगीवैद्यभक्तोजितेन्द्रियः ॥**

अर्थ—जो रोगी अपने प्रकृति, वर्ण, धैर्य, बल और नेत्र, इनकरके युक्त है तथा जो वैद्यका भक्त और जितेन्द्री है, वो वैद्यको चिकित्सा करनेके योग्य है ॥

**आयुष्मान् सत्ववान् साध्यो द्रव्यवान् मित्रवानपि ।**

**चिकित्स्योभिपजारोगी वैद्यवाक्यकृदास्तिकः ॥**

अर्थ—जो रोगी दीर्घायु, धैर्ययुक्त, साध्य, द्रव्यवान्, और वैद्यकी आज्ञा पालन करनेवाला एवं आस्तिक ऐसे रोगीकी चिकित्सा वैद्यको करनी चाहिये ॥

**आढ्योरोगीभिपगवशोज्ञापकः सत्ववानपि ।**

**वैद्यशास्त्रेचविश्रब्धः कृतज्ञः पथ्यकारकः ॥**

अर्थ—जो रोगी धनवानहो, वैद्यके वशीभूत, अपनी प्रकृतिको यथार्थ कहने वाला धैर्यवान् तथा चिकित्सा और शास्त्रमें विश्वास रखने वाला उपकारका माननेवाला और पथ्य करनेवाला ऐसा रोगी उत्तम जानना ॥

रोगीकेगुणचतुष्टय ।

स्मृतिनिर्देशकारित्वमभीरुत्वमथापिच ।

ज्ञापकत्वं चरोगाणामातुरस्य गुणाः स्मृताः ॥

अर्थ—स्मरणवान्, वैद्यकी आज्ञाका पालन करनेवाला, निर्भय और अपने रोगकी वैद्यकी बतानेवाला, ये चारगुण रोगीके हैं ॥

उत्तमरोगी ।

प्राज्ञोरोगेसमुत्पन्ने बाह्येनाभ्यन्तरेणवा ।

कर्मणालभतेशर्म शास्त्रोपक्रमणेनवा ॥

अर्थ—बुद्धिमान् रोगी रोग उत्पन्न होतेही बाहरके यत्नसे अथवा भीतरके यत्नसे कल्याणकी प्राप्तहोताहै, अथवा शास्त्रोपक्रम ( चीरना फाड़नाआदि ) से कल्याणकी प्राप्तहोताहै तात्पर्य यह है कि, चतुररोगी रोगको प्रगट होतेही बाहर भीतरकी चिकित्सा अथवा चीरना फाड़नेआदिसे तत्काल उसे नष्टकर सुखी होता है ॥

मूर्खरोगी ।

बालस्तु खलुमोहाद्वा प्रमादाद्भ्रान्बुध्यते ।

उत्पद्यमानं प्रथमं रोगंशत्रुमिवाबुधः ॥

अर्थ—बाल ( मूर्खरोगी ) मोहवश अथवा प्रमादसे उस उत्पन्न पद रोगको नहींजानता, जैसे मूर्खमनुष्य प्रगटहूए अपने शत्रुको नहींजानता ॥

अग्राहिप्रथमंभूत्वारोगः पश्चाद्विवर्द्धते ।

सजातमूलोमुष्णातिबलमायुश्च दुर्मतेः ॥

अर्थ—प्रथम रोग अग्राह्यहोकर बीरर बढता है जय यो जडबद्ध होजाता है तब इस दुर्बुद्धिकी बल और आयुको हरणकरे है ॥

न मर्त्यो लभते श्रद्धां तावद्यावन्नपीड्यते । पीडितस्तु मर्ति पश्चात् कुरुते व्याधिनिग्रहे । अथ पुत्रांश्चदारांश्च ज्ञातोश्चाहूय भापते । सर्वस्वेनापि मे कश्चिद्विपगानीयतामिति । तथाविधं च कः शक्तो दुर्बलं व्याधिपीडितम् ॥ कृशं क्षीणेन्द्रियं दीनं परित्रातुं गतायुषम् । सत्रातारम-

नासाद्य बालस्त्यजति जीवितम् । गोधालाङ्गूलवद्धे वा  
कृष्यमाणा वलीयसा । तस्मात्प्रागेव रोगेभ्यो । रोगेषु  
तरुणेषु वा । भेषजैः प्रतिकुर्वीत यदृच्छेत्सुखमात्मनः ॥

अर्थ—जबतक यह प्राणी दुखी नहीं होता तबतक वैद्य और औषधीमें श्रद्धा नहीं लाता । और जो रोगोंसे पीड़ित हुआ कि, फिर रोगनाश करनेमें बुद्धि करता है । तब अपने पुत्रोंको स्त्रियोंको और अपने कुटुंबके मनुष्योंको बुलायके उनसे कहता है कि, मेरा सर्वस्व भी देकर वैद्यको लाओ [ और जैसेहो तैसे मुझको बचाओ ] मैं तुम्हारी शरण हूँ अबके बच गया तो आप लोगोंका उपकार जन्मभर नहीं भूलूंगा ] परंतु फिर उस असाध्य दुर्बल कृश, क्षीणेन्द्रिय, दीन और मरणासन्न रोगीके बचानेकी कौनसामर्थ्य है । बस, इसीप्रकार पुकारता २ अपने बचानेवालेको न प्राप्त हो कर यह मूर्खरोगी अपने प्राणोंको त्याग देता है । जैसे मोहकी पूँछ बँधी हुई हो और वो जब चले उसी वक्त बली मनुष्य उसको खींच लेता है इसप्रकार यमराज इसप्राणीको खींच लेता है । अतएव यदि अपने आत्माको सुख चाहें तो रोगों से प्रथमही अथवा तरुणरोगोंमेंही औषधद्वारा उस रोगको शांति करना चाहिये ॥

त्याज्यरोगी ।

चंडः साहसिकोभीरुःकृतघ्नोव्यग्रएवच । शोकाकुलो-  
मुमूर्षुश्चविहीनकरणैश्चयः ॥ वैरवैद्याविदग्धश्च श्रद्धाही-  
नश्च शंकितः । भिषजामविधेयश्च नोपक्रम्यभिषाग्विधः ।  
एतानुपाचरन् वैद्योबहुन् दोषानवाप्नुयात् ॥

अर्थ—जो अत्यंत क्रोधी साहसी ( अर्थात् विनाविचारे करनेवाला ) डरपनेवाला कृतघ्न ( वैद्यके उपकारको न माननेवाला ) व्यग्र ( व्या-  
कुल ) शोकार्त, मरनेकी इच्छा करनेवाला गतेन्द्रो ( जिसकी इन्द्रि-  
योंकी शक्ति नष्ट हो गई हो ) वैर करनेवाला वैद्यपनेका अभिमान रख-  
नेवाला, अविश्वासी और शंका रखनेवाला स्वतः औषधका जाननेवाला  
और वैद्यके स्वाधीन न रहनेवाला इत्यादि गुणवाले रोगीकी चिकित्सा  
करे तो वैद्यको अनेक दोष लगते हैं ॥

जारं चौरं तथा म्लेच्छं ब्रह्मघ्नं मत्स्यघातिनां द्वेष्टारं ग्रामकू-  
टं च बद्धकं मांसविक्रिणम् । एते सुव्याधिना ग्रस्तान् कुर्या-  
च्छमनक्रियाम् । ते पांजीवाप्ति संजाता द्वेद्यो भवति पापभाक् ॥

अर्थ—जार ( परस्त्रीगामी वा रंडीवाज ) चौर म्लेच्छ ब्रह्महत्यारा मछ-  
लियोंको मारनेवाला (धीवर) ग्रामकूट (गामको दुस्तदाई) बद्धक (जीवोंको  
बांधनेवाला ) और मांसका बेचने वाला ऐसे प्राणी यदि रोगी होवे तो  
उनको वैद्य औषध न देवे, क्योंकि यदि इन प्राणियोंको औषध देनेसे  
प्राणवचने पर ये जो हत्या आदि पातक करेंगे वो पाप वैद्यको लगेगा ॥

## भैषज्यलक्षण ।

वैद्यो व्याधिं हरेद्येन तद्रव्यं प्रोक्तमौषधम् ।

तद्यादृशमवश्यं स्याद्भोगघ्नं तादृशं नृवे ॥

अर्थ—अब चिकित्साके तीसरे पादका अर्थात् औषधके लक्षण कहते  
हैं । जिससे वैद्य रोगहरणकरे उस द्रव्यको औषध कहते हैं वो रोगनाश-  
क औषध वैद्यकी जैसी लेनी चाहिये उसके लक्षण कहते हैं ॥

उत्तम औषध ।

प्रशस्तदेशं जातं प्रशस्तेऽहनि चोद्धृतम् ॥ अल्पमात्रं व-

हुगुणं गन्धवर्णरसान्वितम् ॥ दोषघ्नमग्लानिकरमधिकं-

न विकारियत् ॥ समीक्ष्य काले दत्तं च भेषजं स्याद्दृष्टावहम् ॥

अर्थ—उत्तम स्थानमें प्रगट और शुभदिनयद्ही सुदृष्टमें द्रष्टाद्वीगई  
अल्पमात्र ( थोड़ी दी जावे ) और बहुतगुण दिखावे, तथा यथायोग्य गंध  
वर्ण और रसकरके युक्त घातादि दोषोंके नाशकरनेवाली, तथा जो ग्लानि  
और अधिक अवगुणकारी नहोवे, तथा रोगोंको विचारके तथा सम-  
यपरदानी ऐसी औषध परमगुणदायक होती है ॥

औषधके चार गुण ।

बहुतातत्रयोग्यत्वमनेकविधकल्पना ।

सम्पन्नेति चतुष्कोऽयं द्रव्याणां गुण उच्यते ॥



अर्थ-बहुतातत्रयोग्यत्व ( रोगानुसारी ) अनेक विधि कल्पना अर्थात् जिसकी कल्पना अनेक प्रकारसे होवे और संपत्ती ( रसादि संपत्ति ) ये चारगुण द्रव्यों के कहे हैं ॥

प्रसंगवश औषधोंके भेद चरकसे लिखते हैं ।

त्रिविधऔषध ।

त्रिविधमौषधमिति । दैवव्यपाश्रयं युक्तिव्यपाश्रयं स-  
त्त्वावजयश्च ॥

अर्थ-औषध तीनप्रकारकी है जैसे कि १ दैवव्यपाश्रय २ युक्तिव्यपा-  
श्रय ३ सत्त्वावजय अब इनके पृथक् २ लक्षण कहते हैं ॥

दैवव्यपाश्रय ।

तत्रदैवव्यपाश्रयं मन्त्रौषधिमणिमङ्गलनियमप्रायश्चित्तो-  
पवासस्वस्त्ययनप्रणिपातगमनादि ॥

अर्थ-तहां मंत्रजाप औषधी, धारण, मणियोंका धारण, मंगलकर्म,  
(पुण्याहवाचन आदि)नियमधारण, प्रायश्चित्तकरण, उपवासादि व्रतधारण,  
स्वस्तिवाचन, देवगुरुवृद्धोंकी प्रणाम करना और तीर्थोंमें गमन ये सब  
दैवव्यपाश्रय औषध कहलाती हैं ॥

युक्तिव्यपाश्रय ।

युक्तिव्यपाश्रयंपुनराहारौषधद्रव्याणां योजना ॥

अर्थ-युक्तिव्यपाश्रय औषध वो है जो युक्तिपूर्वक भोजनादिक और  
औषध आदि द्रव्योंकी योजना करना ॥

सत्त्वावजयः ।

सत्त्वावजयःपुनरहितेभ्योऽर्थेभ्यो मनोनिग्रहः ॥

अर्थ-सत्त्वावजय औषधी वो है जैसे दुष्टकर्मसे अपने मनको रोकके  
उत्तम शुभकर्ममें लगाना अब औरभी औषधोंके भेद कहते हैं ॥

शरीराश्रितत्रिविधऔषधी ।

शरीरदोषप्रकोपेत्तलुशरीरमेवाश्रित्यप्रायश्चित्त्रिविधमौष-  
धमिच्छन्ति अन्तःपरिमार्जनं बहिःपरिमार्जनं शस्त्रप्रणि-  
धानं चेति ॥

अर्थ—देहमें दोषोंके कोप होनेसे वो दोष शरीरके आश्रित होकर वैद्य-  
प्रायः त्रिविध औषधकी इच्छा करते हैं, जैसे १ अंतःपरिमार्जन, २ बहिः  
परिमार्जन ३ शस्त्रप्रणिधान, अब इन प्रत्येकके लक्षण आगे पृथक् कहते हैं॥

अंतःपरिमार्जन ।

तत्रान्तःपरिमार्जनं यदंतःशरीरमनुप्रविश्यौषधमाहारजा  
तव्याधीन् प्रतिमांष्टि ।

अर्थ—तहां जो औषध शरीरके भीतर प्रवेशकर भोजनजनित व्या-  
धियोंको दूर करे उसको अंतः परिमार्जन औषध कहते हैं उदाहरण—जैसे  
काय, चूर्ण, गुटिका, रस, पाक आदि जानने ॥

बहिःपरिमार्जन ।

यत्पुनर्बहिःस्पर्शमाश्रित्याभ्यंगस्वेदप्रदेहपरिपेकोन्म-  
दनाद्यैरामयान् प्रमांष्टि तद्वहिःपरिमार्जनम् ।

अर्थ—जो औषध बाहर त्वचाके स्पर्शके आश्रित हो उबटना, पसीने  
निकालना, तरडा देना, मालिश करना इत्यादि कर्मद्वारा जो रोगोंको  
नष्ट करे उसे बहिःपरिमार्जन औषध कहते हैं, उदाहरण—जैसे तैलका  
लगाना, लेपकरना, अंजन, मंजन आदिजानना ॥

शस्त्रप्रणिधानम् ।

शस्त्रप्रणिधानंपुनश्छेदनभेदनव्यधनदारणलेखनोत्पाटन  
प्रच्छन्नसीवनैषणक्षारजलौकाश्चेति ।

अर्थ—शस्त्रप्रणिधान चिकित्सा जैसे छेदन, भेदन, व्यधन, दारण  
लेखन, पाटन, प्रच्छन्न, सीवन, एषण, क्षार और जलौका आदिकर्म जो  
अष्टविधशस्त्रकर्माध्याय और क्षारकर्म तथा जलौकावचारण अध्यायमें  
लिखआये हैं वो जानने ।

त्रिविधऔषधी ।

किंचिदोषप्रशमनं किंचिद्धातुप्रदूषणम् ।

स्वस्थवृत्तौ हितं किञ्चिद्द्रव्यं त्रिविधमुच्यते ॥

अर्थ—द्रव्य तीनप्रकारकी है कोई दोषनाशक, कोई धातुको दूषणकर्ता  
और कोई स्वस्थवृत्ति अर्थात् आरोग्यप्राप्तीको हितकारी ॥

जंगमादि भेदसे त्रिविध औषध ।

तत्पुनस्त्रिविधं ज्ञेयं जांगमौद्भिदपार्थिवम् ।

अर्थ—फिर वो पूर्वोक्त द्रव्य तीनप्रकारकी है जैसे जंगम, औद्भिद ( स्थावर ) और पार्थिव ॥

जंगमद्रव्य ।

मधूनिगोरसाः पित्तंवसामजासृगामिपम् ।

विष्मूत्रंचर्मरेतोऽस्थिस्नायुरंगं खुरानखाः ।

जंगमेभ्यः प्रयुज्यन्ते केशालोमानिरोचना ॥

अर्थ—सहत, गोरस ( दूध, घी ) पित्ता ( मोर, मछली, आदिका पित्ता ) वसा ( चर्बी ) मज्जा, रुधिर, मांस, विष्ठा, ( गोबर, लीद ) मूत्र, चाम, वीर्य ( मगर आदिका ) हड्डी, स्नायु, अंग, खुर और नख ( नाखून ) तथा केश ( बाल ) लोम ( रुआं ) और गोलोचन ये जंगम ( पशु, पक्षी, मनुष्यादि ) के लियेजाते हैं, ये जंगम द्रव्य जानना ॥

भौमद्रव्य ।

सुवर्णैसमलाः पंचलोहाः सप्तिकतासुधा ॥ मनः शिलालेमण-

योलवणं गैरिकाञ्जने । भौममौषधमुद्दिष्टं-

अर्थ—सुवर्ण और अपने २ मल अर्थात् कीटीसहित पाँचों लोह, धूल, चूना, मनशिल, हरताल, मणी, निमक, गेरू और सुरमा इत्यादि भौम औषध अर्थात् पृथ्वी संबंधी औषध जाननी ॥

औद्भिदंतुचतुर्विधम् ।

वनस्पतिर्वीरुधश्च वानस्पत्यस्तथोषधिः ॥

अर्थ—औद्भिद अर्थात् स्थावरसंबंधी औषध चारप्रकारकी है जैसे, वनस्पति, वीरुध, वानस्पत्य और औषधी इन प्रत्येकके लक्षण आगे कहते हैं ॥

फलैर्वनस्पतिः पुष्पैर्वानस्पत्यफलैरपि ।

औषध्यः फलपाकान्ताः प्रतनैर्वीरुधः स्मृताः ॥

अर्थ—जिनमें केवल फलही लगते हैं फूल नहीं लगते उनको वनस्पति कहते हैं, जैसे गूलर, पीपर, बटआदि । और जिनमें फल फूल दोनों लगे

उनको वानस्पत्य कहते हैं, ऐसे आम, जामुन, आदिके वृक्ष । और जो फलके आनेसे पककर नष्ट हो उनको औषधी कहते हैं, जैसे जों, गेंहूँ चना आदि । और जो वेलके माफिक प्रतान वाली हैं उनको वीरुध कहते हैं, जैसे गिलोय, पान, आकाशवेल आदि । कोई औषधके पांच-भेद कहता है वो हम इसके निर्घट भागमें लिखेंगे ॥

औद्भिदगण ।

मूलत्वक्सारनिर्यासनाड्यःस्वरसपल्लवाः । क्षाराक्षीरंफलं पुष्पं भस्म तैलानिकण्टकाः । पत्राणि शुक्ला कन्दाश्च प्ररोहाश्चौद्भिदगणः ॥

अर्थ-तर्हा जड़, त्वचा, सार, गोंद, नाडी, स्वरस, नवीन पत्ते, क्षार, दूध, फल, फूल, भस्म, तेल, कांटे, पत्ते, शुद्ध ( कली ) कंद और प्ररोह ( अंकुर ) ये औद्भिद गण हैं अर्थात् वृक्षादिकोंसे इतनी वस्तु महण करी जाती हैं ॥

उद्भिदज औषधोंकी गणना ।

मूलिन्यः षोडशैकोनाः फलिन्यो विपरीतकाः । महास्नेहाश्च चत्वारः पञ्चैव लवणानि च ॥ अष्टौ मूत्राणि संख्यातान्यष्टा वैवपर्यासि च । शोधनार्थाश्च पञ्च वृक्षाः पुनर्वसुनिदर्शिताः ॥ य एतान्वेत्ति संयोजुं विकारेषु स वेद विव ॥

अर्थ-जड़वाली रूखड़ी मुख्य १६ हैं, फलवाली १९ हैं, महास्नेह हैं, पांच प्रकारके निमक हैं। आठ प्रकारके मूत्र, आठ प्रकारके दूध और शोधन करनेके अर्थ छः वृक्ष हैं, ये पुनर्वसु आश्रयने कहे हैं । जो इनको विकारोंमें देना जानता है वो आयुर्वेदका ज्ञाता है ऐसा जानना । इन सबका खुलासा चरकके प्रथमाध्यायमें लिखा है सो लेना ॥

औषधज्ञानको दुर्ज्ञेयत्व ।

न नाम ज्ञानमात्रेण रूपज्ञानेन वा पुनः ।

औषधीनां परां प्रार्थितिकश्चिद्देदितुमर्हति ॥

अर्थ-औषधोंका यथार्थज्ञान केवल नामज्ञान मात्रसे, अथवा रूपज्ञान करके ही नहीं होता किंतु रूप और नाम दोनों जाननेसे होता है ॥

औषधोंकेरूपऔरयोगज्ञातावैद्यकीप्रशंसा ।

योगज्ञःस्तस्यरूपज्ञस्तासांतत्त्वविदुच्यते ।

किंपुनर्योविजानीयादौषधीःसर्वदाभिपक् ॥

अर्थ—जो वैद्य औषधोंके योगकी और उनके रूपकी जानता है उसको तत्त्ववेत्ता कहते हैं और जो सदैव औषधोंको जानता रहताहै उस वैद्यका तो क्या कहना है ॥

तथावैद्यकोउत्तमत्वकथन ।

रूपंतासांतुयोविद्यादेशकालोपपादितम् ।

पुरुषंपुरुषंवीक्ष्यसविज्ञेयोभिपक्तमः ॥

अर्थ—देशकालोपपादित औषधोंके रूपकी प्रत्येक पुरुषोंके प्रति जो देना जानता है वह संपूर्ण वैद्यमें श्रेष्ठ है ॥

ज्ञाताज्ञातऔषधोंकेगुणागुण ।

यथाविषं यथाऋस्रं यथाग्निरश्निर्यथा ।

तथौषधमविज्ञातं विज्ञातममृतंयथा ॥

अर्थ—जैसे विष, जैसेऋस्र, जैसे अग्नि, जैसे वज्रपात प्राणीके प्राणहारक होते हैं । उसीप्रकार विनाजानी औषध प्राणोंको हरण करती है और जो जानी हुई औषध है वो अमृतके तुल्य प्राणदायक जाननी ॥

अज्ञात और दुष्प्रयोजितऔषधकीनिंदा ।

औषधं ह्यनविज्ञातं नामरूपगुणैस्त्रिभिः ।

विज्ञातं वापि दुर्युक्तं युक्तिवाह्येन भेषजम् ॥

अर्थ—जो औषध नाम,रूप और गुण इन तीनोंकरके विना जानीहुई है अथवा जो इनतीनों प्रकार करके जानीभी है, परंतु अविधिसे उसका प्रयोग करा है, वो युक्तिरहित औषध अपना गुण नहीं करे ॥

युक्तऔरअयुक्तऔषधकेगुणागुण ।

योगादपिविषं तीक्ष्णमुत्तमं भेषजं भवेत् ।

भेषजं वापि दुर्युक्तं तीक्ष्णं संपद्यते विषम् ॥

अर्थ—तीक्ष्ण, विषभी योगके साथ उत्तम औषधीरूप होजाता है,

और उत्तम औषधीभी दुष्टयुक्तीके साथ देनेसे घोर विषके समान माण-  
हरण कर्ता होती है ॥

युक्तिपूर्वकऔषधकोमुख्यत्व ।

तस्मान्नभिषजायुक्तं युक्तिवाह्येन भेषजम् ।

धीमता किञ्चिदादेयं जीवितारोग्यकाक्षिणा ॥

अर्थ—इसीसे जीवन और आरोग्यकी इच्छा करने वाले बुद्धिमान  
रोगीको युक्तिवाह्य औषधका प्रयोग कदाचित् नहीं करना चाहिये । अर्थात्  
मूर्खवैद्यकी औषधका ग्रहण न करे ॥

मूर्खवैद्यकेहाथकीऔषधनलेना ।

कुर्यान्निपतितं मूर्ध्नि सशेषं वासवाग्निः ।

सशेषमातुरं कुर्यान्नत्वज्ञमतमौषधम् ॥

अर्थ—रोगी अपत्तेमस्तकपर बचपात गिरना अंगीकार करले, रोगयुक्त  
रहना अंगीकार करलेवे, परंतु मूर्खवैद्यकी अनुमतीसे दी हुई औषधको  
कदाचित् अंगीकार न करे ॥

अज्ञानीवैद्यसेभाषणकरनेमेपापकथन ।

दुःखिताय शयानाय श्रद्धानाय रोगिणे । यो भेषजम-  
विज्ञाय प्राज्ञमानी प्रयच्छति ॥ तस्य च मृत्युदूतस्य  
दुर्मतेस्त्यक्तधर्मणः । नरो नरकपातीस्यात्तस्य संभाष-  
णादपि ॥

अर्थ—दुखिया, पड़ेहुए, भ्रष्टावाले रोगीको जो पड़िताभिमानी वैद्य  
बिना जानी औषधको देता है, उस मृत्युके दूत दुष्टमतिवाले अधर्मीके  
संभाषण (बोलने) से यह प्राणी नरकगामी होता है । अर्थात् ऐसे दुष्टवै-  
द्यसे भाषणभी नकरे, परंतु इस बातको कौन देखता है! भला बिनाबुलाये  
और थोड़ेसेमे खुसी होने वालेभी तो येही वैद्य है, भलेही माणचलेजावें  
परंतु धनतो घबजायगा धन्यरे दुष्ट समय त् धन्य है ॥

शरणागतरोगीसे द्रव्यादिलेनेकानिषेध ।

वरमाशीविषविषं कथितं ताम्रमेव वा । पीतमत्यग्निसन्त-  
ता प्राशितावाप्ययोगुडाः ॥ न तु श्रुतवतावेशं विभ्रता शर-

णागतात् । ग्रहीतमन्नपानं वा वित्तं वा रोगपीडितात् ॥

अर्थ—सर्पका हलाहल विष पीलेना, औटाहुआ ताम्र पीलेना तथा अभिसे दहकते हुए लोहेके गोलेको खायलेना उत्तम है, परंतु पंडित वेपधारी होकर शरणागत रोगीसे अन्नजल अथवा द्रव्य ग्रहण करना कदाचित् उचित नहीं है ॥

मूर्खवैद्यसेयत्नकरानानिषेध ।

वरं दुस्यौ वरंव्याले वरं यादोविभीषणे । सागरे जीवनो-  
त्सर्गः सुघोरे वापि धन्वनि ॥ नाधीतज्ञास्त्रे नाभ्यस्ते  
कर्मण्यखिलवैरिणि । न कार्यं दुर्मतौ पापे भिषजात्म-  
समर्पणम् ॥

अर्थ—चौरके हाथसे, हिंसकजीव ( सिंह व्याघ्रादि ) से, मगरआदि जलके जीवोंसे समाकुल घोर समुद्रमें अथवा घोर मारवाडकी भूमिमें, अपने प्राणोंको त्यागदेना परमोत्तम है, परंतु विना शास्त्रपढे हुए और विना अभ्यस्त कर्मवाले, सबके वैरी, दुर्बुद्धी, पापात्मा वैद्यके, हस्तगत अपना धात्म-सर्पण करना कदापि उचित नहीं है ॥

वैद्यकोवैद्यकेगुणसीखनेकीआवश्यकता ।

भिषक्बुभूर्धुर्मतिमानतः स्याद्गुणसम्पदि ।

परं प्रयत्नमातिष्ठेत्प्राणदःस्याद्यथा नृणाम् ॥

अर्थ—एतएव इत्यादि उक्त कारणोंसे बुद्धिमान प्राणी वैद्यहोनेकी इच्छा रखनेवाला वैद्य गुणसंपत्तिमें परम यत्नपूर्वक स्थितहोवे, क्योंकि यह वैद्य प्राणियोंको प्राणका देनेवाला है ॥

उत्तमऔषधऔरवैद्य ।

तदेवमुक्तं भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते ।

सचैव भिषजां श्रेष्ठो रोगेभ्यो यः प्रमोचयेत् ॥

अर्थ—वही औषधी उत्तम है जो रोगियोंको आरोग्यकरे । और वही वैद्योंमें श्रेष्ठ है जो रोगियोंको रोगोंसे छुटावे ॥

उत्तमप्रयोगऔरउत्तमवैद्यकीप्रशंसा ।

सम्यक्प्रयोगं सर्वेषां सिद्धिराख्यातिकर्मणाम् ।

सिद्धिराख्याति सर्वैश्च गुणैर्युक्तं भिषक्तमम् ॥

अर्थ—उत्तम प्रयोग संपूर्ण कर्मोंकी सिद्धिको प्रगटकरै है और सर्व-  
गुणयुक्त वैद्यको कर्मसिद्धि विख्यात करती है ॥

**परिचारककेगुण ।**

उपचारज्ञतादाक्ष्यमनुरागंचभर्त्तारि ।

शौचंचेतिचतुष्कोऽयंगुणः परिचरेजेने ॥

अर्थ—अब चिकित्साके चतुर्थपाद अर्थात् परिचारक ( सेवक ) के गुण लिखते हैं—जैसे कि, उपचारज्ञता ( अर्थात् रोगीकी सेवाके नियमोंका जानने वाला, ) चतुर और अपने स्वामी ( मालिक ) में अनुराग, तथा पवित्रता ये चारगुण सेवकके हैं । तहाँ चारगुण वैद्यके, चारगुण रोगीके, चारगुण औपधके और चारगुण सेवकके ये संपूर्ण सोलह गुण चिकित्साकी षोडश कला कहलाती हैं । अर्थात् चिकित्साके वैद्य आदि चार पादहैं और एक एक के चारगुण ऐसे सोलहगुण सोलह कला कहलाती हैं ॥

**परिचारककेलक्षण ।**

स्निग्धोऽजुगुप्सुर्वलवान्युक्तोव्याधितरक्षणे । वैद्यवाक्य-  
कृदश्रांतोयुज्यतेपरिचारकः ॥ अनुरक्तः शुचिर्दक्षो  
बुद्धिमान्परिचारकः ॥

अर्थ—स्नेह रखनेवाला, अनिदित, बलवान्, रोगीके संरक्षण करनेमें चतुरवैद्यकी आज्ञापालन करनेवाला, निरंतर परिश्रम करते २ न थके, कृपालु, शुद्ध, कुशल और बुद्धिमान् ऐसा सेवक रोगीके समीप रहना चाहिये ।

अब चिकित्साके चारों पैर और शोडष कलाओंको कहकर चिकित्साके अंग कहते हैं । तहाँ रोगी, दूत, वैद्य, सेवक और उत्तम औपधोंके लक्षणक अब शेषोंको कहते हैं ॥

**आयुविचार ।**

भिषगादौपरीक्षितरुणस्यायुः प्रयत्नतः ।



ततः आयुपिविस्तीर्णैचिकित्सासफलाभवेत् ॥

अर्थ-वैद्य प्रथम रोगीके आयुकी परीक्षा करे कारण यह हैकि, यदि आयु बड़ी होयगी तो चिकित्साभी सफल होतीहै, अन्यथा निष्फल होतीहै, परंतु दीर्घायुके लक्षण इस बृहन्निषण्डुरत्नाकरकी प्रथम जिल्दमें अर्थात् शरीर भागमें लिख आयेहैं, इस वास्ते यहाँपर नहीं लिखे हैं ॥

आयुकाप्रमाण ।

जलजानवलक्षास्तु दशलक्षास्तुपक्षिणः । रुद्रलक्षास्तु-  
कृम्याद्यास्थावराणांचविंशतिः ॥ त्रिशलक्षगवादीनां  
चतुर्लक्षास्तुमानवाः ॥

अर्थ-जलज ( जलमें होनेवाले ) १००००० नीलास्र है, पक्षी १०००००० दशलक्ष हैं, कृमि ( कीड़े ) ११००००० ग्यारहलाख है स्थावर ( वृक्षादिक ) योनि २०००००० बीस लाख हैं, गवादि ( अर्थात् गौ भैसवकरी आदि ) योनि ३०००००० तीसलाख हैं, और मनुष्य योनि ४०००००० चार लाख हैं ॥

शतायुःपुरुषश्चैववृक्षाणांतुसहस्रकम् । द्वात्रिंशश्चतुरंगाणां  
शतंकुजरसिंहयोः ॥ व्याघ्राणांचचतुःपष्टिः सहस्रंफणि-  
काकयोः । जम्बुकानांपोडशाब्दं शुनांद्वादशवत्सरम् ॥  
चतुर्विंशतिरुक्तंगोमहिष्योः सूकरस्यच । अजानांद्वा-  
दशप्रोक्तंमत्स्यानामयुतंतथा ॥ कुकुटानववर्षाणि मृगा-  
णांविंशतिर्भवेत् । पक्षिणांदशवर्षाणिखराणांद्वादशद्व-  
यम् ॥ चतुर्विंशतिरुष्ट्राणां रासभानांतथैवच ॥

अर्थ-पुरुष ( मनुष्य ) की १०० सौवर्षकी आयु है, वृक्षोंकी १००० हजार वर्षकी, घोड़ोंकी ३२ बत्तीस वर्षकी है । सिंह और हाथीकी उमर १०० वर्षकी है बघेरे की आयु ६४ वर्षकी है सर्प ( साँप ) और फौआ इनकी १००० वर्षकी आयु है । स्वार ( गौदड़ ) की आयु १६ वर्षकी है । कुत्तेकी उमर १२ वर्षकी है । गौ भैस और सूअरकी उमर २४ वर्षकी है, बकरी की उमर १२ वर्ष की, मछली की उमर १०००० दशह-

जार वर्षकी है, मुरगेकी ९ वर्ष की, मृग ( हिरण ) की उमर २० वर्ष की है, पक्षि ( तोता मॅना चिडिया आदि ) की उमर दशवर्ष की है, गधेकी उमर २४ वर्ष की है, कंटकी उमर २४ वर्ष की और खिन्नरकी आयु २४ वर्ष की जाननी, ये इनकी परमायु है, परंतु कोई २ इस्से अधिकभी जीते हैं ॥

अथद्रव्यम् ।

सर्वेद्रव्यमपेक्ष्यंतेरोगीप्रभृतयोयतः

विनावित्तंनभैपज्यंचिकित्सांगततोधनम् ॥

अर्थ-रोगीसे आदिले संपूर्ण द्रव्यकी इच्छा करते हैं, विना धनके औषधी नहीं हो सकती, इसीसे चिकित्साका मुख्य अंग धनहै ।

शिष्य-रोग और आरोग्य किसको कहते हैं ॥

गुरु-दोषोकी विषमावस्थाको रोग और समानावस्थाको आरोग्य कहते हैं जैसे वाग्भटमें लिखा है ॥

व्याधेर्लक्षणंवाग्भटे ।

रोगस्तुदोषवैपम्यंदोषसाम्यमरोगता ।

रोगादुःखस्यदातारोज्वरप्रभृतयस्तुते ॥

अर्थ-दोषोकी विषमता ( समान न रहनेकी ) रोग कहते हैं और समानावस्थाको आरोग्य कहते हैं तहां दुःखदाई रोग वे ज्वरप्रभृति अपांत ज्वरादिक जानने ॥

अथातोव्याधिसमुद्देशीयमध्यायंव्याख्यास्यामः ।

अर्थ-अब हम व्याधिसमुद्देशीयाध्यायकी व्याख्या करेंगे ॥

द्विविधा व्याधयःशस्त्रसाध्याःस्नेहादिक्रियासाध्याश्च । तत्र शस्त्रसाध्येषु स्नेहादिक्रिया न प्रतिपिच्यते । स्नेहादिक्रियासाध्येषु शस्त्रकर्म न क्रियते ॥

अर्थ-इस संसारमें दोप्रकारकी व्याधिहै एक शस्त्रसाध्य ( शस्त्रकर्मसे अच्छी होनेवाली है दूसरी स्नेहादिक्रियासाध्य, अर्थात् घृत तेल काय

चूर्णादि से अच्छी होनेवाली तहां अष्टविध शस्त्रसाध्यव्याधियोंमें स्नेहादिक्रिया करना सिद्धिकारक नहीं होती, जैसे भगंदरादि रोग चीरने फाड़नेयोग्य है उनपर तैलादि लगानेसे कुछ फायदा नहीं होता । और जो स्नेहसाध्य व्याधि है उनपर शस्त्रकर्म न करे, क्योंकि तैलकाथादिसे अच्छे होसकें ऐसे वातव्याधि और ज्वरादिरोगमें चीरना फाड़ना केवल दुःखदायक हैं ॥

**अस्मिन् पुनः शास्त्रे सर्वतन्त्रसामान्यात्सर्वेषां व्याधीनां यथा स्थूलमवरोधः क्रियते ॥**

अर्थ—तहां शल्यतंत्रमें शस्त्रक्रियाकोही मुख्यत्व है, स्नेहादि क्रियाको नहीं है इसशंकासे दोनों क्रियाओंका अधिकार दिखाते हैं । इस सौभत शल्यतंत्रमें शालाक्यादि तंत्रोंको समान होनेसे संपूर्ण व्याधियोंका स्थूल-दृष्टिकरके ग्रहण किया है ॥

**प्रागभिहितं तदुःखसंयोगो व्याधिरिति तच्च दुःखं त्रिविधमाध्यात्मिकमाधिभौतिकमाधिदैविकमिति तत्तु सप्तविधे व्यधावुपनिपतति ॥**

अर्थ—इस सुश्रुतकी प्रथमाध्यायमें लिखआये है कि, शरीरी और शरीरका अथवा शरीर और मनके दुःख संयोगको व्याधि अर्थात् रोग कहते हैं । तहां वो दुःख तीनप्रकारका है १ अध्यात्मिक २ आधिभौतिक, ३ और आधिदैविक यही त्रिविधदुःख सात प्रकारकी व्याधियोंमें विभाजित किया है अर्थात् सातप्रकारसे बांटा है ॥

**ते पुनः सप्तविधा व्याधयः । तद्यथा-आदिवलप्रवृत्ता-जन्मवलप्रवृत्ता दोषवलप्रवृत्ताः संघातवलप्रवृत्ताः कालवलप्रवृत्ताः दैववलप्रवृत्ताः स्वभाववलप्रवृत्ता इति ॥**

अर्थ -वो सातप्रकारकी व्याधि इसप्रकारसे है जैसे, १ आदिवलप्रवृत्त,

१ आदिशब्दसे स्वेदन, वमन, विरेचनादि जानने । २ आत्मशब्दसे मनरक्त सहित शरीरका ग्रहण है । वातपित्त और कफसे उत्पन्न शरीरमें होनेवाली तथा रजोगुण तमोगुणसे होनेवाली व्याधियोंको आध्यात्मिक कहते हैं । ३ भूतप्राणियोंको भूतोंमें अधिकारकरके या कर्षण उत्पन्न अधिदैव कहते हैं । ४ देव, असुर, भूत, प्रेत, इत्यादिमें होनेवाले रोगोंको अधिदैव कहते हैं ॥

२ जन्म बलप्रवृत्त, ३ दोषबलप्रवृत्त, ४ संघातबलप्रवृत्त, ५ कालबलप्रवृत्त, ६ दैवबलप्रवृत्त और ७ स्वभावबलप्रवृत्त, अब इन प्रत्येकका वर्णन नीचे करते हैं ॥

तहांआदिबलप्रवृत्तव्याधि ।

तत्रादिबलप्रवृत्ता ये शुक्रशोणितदोषान्वयाः कुष्ठार्शः प्रभृतयः । तेऽपि द्विविधा मातृजाःपितृजाश्च ॥

अर्थ—तहां पूर्वोक्त सप्तविधव्याधियोंमें जो आदिबलप्रवृत्त व्याधि हैं वह ये हैं जैसे जो दुष्टशुक्र और दुष्टरुधिरसे उत्पन्न होते हैं—ऐसे कोढ़, बवासीर, प्रभृति । वोभी दोप्रकारके हैं—एक माताके रुधिरसे और दूसरे पिताके वीर्यदोषसे जो होते हैं ॥

जन्मबलप्रवृत्तव्याधि ।

जन्मबलप्रवृत्ता ये मातुरपचारात्पङ्गुजात्यन्धबधिरमूक-मिण्मिणवामनप्रभृतयो जायन्ते । तेऽपि द्विविधारसकृ-तादौहृदापचारकृताश्च ॥

अर्थ—जन्मबलप्रवृत्त वह रोग हैं जो मातापिताके शुक्रशोणितकी दुष्टीके बिनाभी गर्भावस्थामें माताके दुष्टआहार और आचार करनेसे पांशुरा, जन्मांध, बहरा, गूगा, गिनगिनाके बोलने वाला, बोना आदि रोग होते हैं । वोभी जन्मबलप्रवृत्तरोग दोप्रकारके हैं, एक रसकृत, दूसरे दौहृदके अपचार करनेसे होते हैं ॥

दोषबलप्रवृत्तव्याधि ।

दोषबलप्रवृत्ता य आतंकसमुत्पन्ना मिथ्याहाराचारभवा-श्च तेऽपि द्विविधा आमाशयसमुत्थाः पक्वाशयसमुत्थाश्च पुनश्च द्विविधाः शारीरा मानसाश्च त एतआध्यात्मिकाः ॥

अर्थ—दोषबलप्रवृत्त जो व्याधि होती है वो मिथ्या आहार विहारसे होती है, अर्थात् जो वात, पित्त, कफ और रज तमकी शक्तिवरके रोग प्रवृत्त ( उत्पन्न ) होते हैं, वो दोप्रकारके हैं एक आमाशयसे प्रगट होने वाले, दूसरे पक्वाशयसे उत्पन्न होनेवाले, फिर वो आमाशय और पक्वाश

१ प्रभृतिसन्देसे प्रमद, क्षय, आदिगानने । २ गर्भवती माताके चतुर्थादिमा-  
साम श्रितियोंकी इच्छावो दौहृद कहते हैं ॥

यसे उत्पन्न होनेवाले रोग दो प्रकारके हैं एकशारीरक अर्थात् शरीरसे उत्पन्न होनेवाले, दूसरे मानसिक अर्थात् मनमें प्रगटहोनेवाले, इन्हीं दोषबलप्रवृत्त रोगोंको आध्यात्मिक कहते हैं ॥

संघातबलप्रवृत्तव्याधि ।

संघातबलप्रवृत्ता ये आगन्तवो दुर्बलस्य बलवद्विग्रहात्तेऽपि द्विविधाः शस्त्रकृता व्यालादिकृताश्च । एतेआधिभौतिकाः ॥

अर्थ—संघातबलप्रवृत्तव्याधि वोहैं जो आगंतुक और दुर्बल मनुष्यका बलवान्से लड़ना, फिर वो दोप्रकारकी है १ पहली शस्त्रकृत और दूसरी व्यालादि ( सर्पादि ) कृत, इन्हींको आधिभौतिक व्याधिकहतेहैं ॥

कालबलप्रवृत्तव्याधि ।

कालबलप्रवृत्ता ये शीतोष्णवातवर्षाप्रभृतेनिमित्तास्तेऽपि द्विविधा व्यापन्नर्तुकृता अव्यापन्नर्तुकृताश्च ॥

अर्थ—कालबलप्रवृत्तव्याधि वो है जैसे-शरदी, गरमी, पवन, वर्षा आदि पदार्थोंके निमित्तसे होती हैं वोभी दोप्रकारकी है एक व्यापन्नर्तुकृत, दूसरी अव्यापन्नर्तुकृत ॥

देवबलप्रवृत्तव्याधि ।

देवबलप्रवृत्ता ये देवद्रोहादभिशस्तका अथर्वकृता उपसर्गकृताश्च तेऽपि द्विविधा विद्युदशनिकृताः पिशाचादिकृताश्च पुनश्च द्विविधाः संसर्गजा आकस्मिकाश्च ॥

अर्थ—देवबलप्रवृत्त अर्थात् देवशक्तिसे होने वाले रोग वो है जो देव ( देवता, गौ, गुरु, सिद्ध, इनसे द्रोहकरने ) से होते हैं । तथा अभिशस्तक अर्थात् ऋषियोंके शापदेनेसे, अथर्वकृत ( अथर्वणवेद प्रणीत अभिचारिक मंत्रोंके होनेवाले मारण, मोहनादि व्याधि ) और उपसर्गज ( अर्थात् छूतकेरोग जैसे ज्वरवालेके पास रहनेसे वो ज्वर उठकर दूसरेको लगजाता है इत्यादि ) । फिर वो देवबलप्रवृत्त रोगभी

१ ऋतुके दूषित होनेसे रोगहोते हैं वो व्यापन्न ऋतुकृत कहते हैं । २ और जो उपम ऋतुमें दूषित ओषध गलने सेवनसे होनेवाली व्याधि होती हैं वो अव्यापन्न ऋतुकृत जाननी।

दोमकारके हैं, एक विजली और अशनिर्कृत दूसरा पिशाचादिकृत । फिर इसके दोभेद हैं एकसंसर्गज, दूसरा ओकस्मिक ।

स्वभावबलप्रवृत्त ।

स्वभावबलप्रवृत्ताःशुत्पिपासाजरामृत्युनिद्राप्रभृतय-  
स्तेऽपि द्विविधाः, कालकृता अकालकृताश्च तत्र परि-  
रक्षणकृताःकालकृता अपरिरक्षणकृता अकालकृता  
एते आधिदैविकाः ॥ तत्र सर्वव्याध्यवरोधः ॥

अर्थ-स्वभावबल ( अर्थात् प्रकृतिकी शक्तिसे ) उत्पन्न होनेवाले ऐसे भूख, प्यास, बुढ़ापा, मौत, निद्राआदि वोभी दोमकारके हैं एक काल-कृत और एक अकालकृत, तहां रक्षाकरने परभीहोय वो कालकृत रोगों हे और बिना रक्षा करनेसे जो होवे वो अकालकृत जानने । इन्हीको आधिदैविक कहते हैं तहाँ इन्ही आदि बलप्रवृत्तादि सात प्रकारकी व्याधियोंमें संपूर्ण व्याधिमात्र अंतर्गत जाननी ॥

कदाचित् कोई कहे कि,सबव्याधियोंका कैसे इन्हीमें संग्रह होसका है इस वास्ते कहते हैं ॥

सर्वेषाञ्च व्याधीनां वातपित्तश्लेष्माण एव मूलं तल्लि-  
ङ्गत्वाद्दृष्टफलत्वादागमाच्च तथाहि कृत्स्नं विकारजातं  
विश्वरूपेणावस्थितं सत्त्वरजस्तमांसि न व्यतिरिच्यन्ते ।  
एवमेव कृत्स्नं विकारजातं विश्वरूपेणावस्थितमव्यतिरि-  
च्यवातपित्तश्लेष्माणो वर्तन्ते ॥

अर्थ-संपूर्ण व्याधियोंके आदिकारण वातपित्त और कफहैं । कारण कि,

१ लतके आकार तिरछी गिरे वो विजली गिरी कहती है । २ और आगिकें समान गोला रूप गिरे उसको अशनि अर्थात् ( बखपात ) कहते है । ३ आदि शब्द-से भूत, मेत, मल्लराससादि जानने । ४ देहद्रोहकरके मनुष्योंके आपसमें मिलनेसे जो महामारी आदि रोग होते है । ५ बिना संसर्गके जो पूर्वे अन्योपानित कर्मोंके होनेवाले । ६ इससे कालरोगोंकी चिकित्सा नहीं बड़ी ॥

सर्व व्याधिमात्र तल्लिगत्व होनेसे; तथा दृष्टफलत्व होनेसे और शास्त्रप्रमाण होनेसे तथा यह संपूर्णविकार समूह विश्वरूपः करके स्थित है अर्थात् जाग्रत रूपकरके स्थित है । इसीसे यह सत्वगुण, रजोगुणसे पृथक् नहीं है इसी प्रकार यह संपूर्ण विकारजात विश्वरूपकरके स्थित अर्थात् रोगसमूहकरके स्थित पृथक् नहीं है ॥

कोई प्रश्नकरे कि, तीनदोषोंसे आदिवलप्रवृत्तादि अनेक व्याधि कैसे होती हैं तहाँ कहते हैं ॥

दोषधातुमलसंसर्गादायतनविशेषान्निमित्ततश्चैषां विक-

ल्पा भवन्ति ॥

अर्थ—दोष धातु मल इनके संयोगसे आयतन विशेषसे और निमित्तसे व्याधियोंके अनेक भेद होते हैं ॥

दोषद्वयसंज्ञालक्षणाकरकेहोतीहै ।

दोषद्वयितेष्वत्यर्थं धातुषु संज्ञाक्रियते रसजोऽयं शोणि-

तजोऽयं मांसजोयं मेदोजोऽयमस्थिजोऽयं मज्जजोऽयं

शुक्रजोऽयं व्याधिरिति ॥

अर्थ—दोषोंकरके दूयित धातुओंकी संज्ञाकरीजाती है यह रसजन्यव्याधि है, यह रुधिरजन्य है, यह मांसजन्य है, यह मेदाजन्य है, यह अस्थिजन्य है, यह मज्जाजन्य है और यह व्याधि शुक्रजन्य है ॥

१ तल्लिग कहिये वातादिदोषोंके लक्षण-रूप, अल्प, और स्नेहादिक तथा तोद, दाह और झुजली आदि कार्यजानने । २ दृष्टफलत्व कहिये वातादिकका क्षमन होना प्रत्यक्ष देखाजाताहै । ३ शास्त्रमें भी लिखाहै ११२० ग्यारहसौबास व्याधियोंको कार्यभूत वातपित्त और कफही कारण है । ४ विकार इसजग २३ महदादिक जानने । ५ संयोग जैसे । वातादिदोष, रसधातु, मल, मूत्रादिके संयोगसे अतीसारादिरोग होते हैं । वातादिदोष रसधातु इनके संयोगसे विद्रधि और रक्तगुल्मादि रोग होते हैं । तथा वातादिदोष और रसधातुके संयोगसे ज्वरादिक रोग होते हैं । रसादि द्वय और मलमूत्र आदिके संयोगसे बीसप्रकारकी प्रमेह होती है । ६ स्थानभेदसे रोगोंके भेद जैसे सातस्थानमें ६५ मुखरोग हैं । नेत्ररोग ७० इत्यादिजानने । ७ निमित्त कहिये वातादिभि रोगोंके अनेकभेद हैं—जैसे वातादि ज्वर तीन, सनिपातका एक, द्रव्यगतानि, आगतुम आठवां इसीप्रकार और भी भेद अनेक जानने ॥

जैसे यह घीसे जल गया तेलसे जल गया, ताम्रसे जल गया, लोहसे जल गया इत्यादि, जैसे घी, तेल, ताम्र और लोहमें अग्नि कारण है उसी प्रकार रसरक्तादिजन्य रोगोंमें वातादि दोष कारण हैं ॥

अव्यक्तिकृत्सा विशेष विज्ञानार्थः सुखसाध्यत्वादि कर्मके बोधार्थ प्रत्येक रसादि धातु विकारोंको दिखाते हैं ॥

रसजन्यविकार ।

तत्रान्नाश्रद्धारोचकाविपाकाङ्गमर्दज्वरहृत्तासृतिगौरव-  
हृत्पाण्डुरोगमागौपरोषकाश्च वैरस्याङ्गसादकालबलि-  
पलितदर्शनप्रभृतयोरसदोषजा विकाराः ॥

अर्थ—तहाँ अन्नमें अश्रद्धा और अन्नमें अरुचि ( नफरत ) विपाक, अंगोंमें फूटन, ज्वर, हृत्तास, सृति ( पेटभरेके समान ) देहमें भारीपना, हृदयरोग, पाण्डुरोग, छिद्रोंका बंद होजाना, कृशता, सुखमें विरसता, अंगोंमें उत्साहरहितपना, बिना समय बुढ़ापा और बालोंका सपेदहो-जाना इत्यादि रसदोषजन्य विकार हैं ॥

रुधिरजन्यविकार ।

कुष्ठविसर्पपिडकामशकनीलिकातिलकालकन्यच्छय-  
ङ्गेन्द्रलुप्तप्लीहविद्रधिगुल्मवातशोणिताशोऽर्बुदाङ्गमर्दा-  
सृग्दररक्तपित्तप्रभृतयो रक्तदोषजा गुदमुखमेहपाकाश्च ॥

अर्थ—कोठ, विसर्प, पिडका, मश्से, निलिका, तिलकालक ( तिल ) न्यच्छ ( लहसुन ) व्यंग ( झाई ) इन्द्रलुप्त ( जिसमें मूँडके बालजाते रहें प्लीह ( तिल्ली ) विद्रधि, गोला, वातरक्त, बवासीर, अर्बुद, अंगमर्द, ( अंगोंका टूटना ) असृग्दर ( रक्तप्रदर ) और रक्तपित्तआदि ये रुधिर-दोषजन्यबीमारी हैं । तथा गुदा, मुख और भगलिंगका पकना येभी रुधिरजन्यविकार हैं ॥

मांसदोषजन्यविकार ।

अधिमांसार्बुदाशोऽधिजिह्वोपनिह्वोपकुक्षगलशुण्डिका-  
लजीमांससंघातौष्ठप्रकोपगलगण्डमालाप्रभृतयोमांसदोषजाः ॥

अर्थ—अधिमांस, अर्बुद, बवासीर, अधिजिह्व, उपजिह्व, उपकुक्ष,



गलशुंठी, अलजी, मांससंघात, ओष्ठप्रकोप, गलगंड, गंडमाला  
आदि मांसदोषज विकार हैं

मेददोषजविकार ।

ग्रन्थि वृद्धिगलण्डार्बुदमेदोजोष्ठप्रकोपमधुमेहातिस्थी-  
ल्यातिस्वेदप्रभृतयो मेदोदोषजाः ॥

अर्थ—गांठ, अंडवृद्धि, गलगंड, अर्बुद, मेदरोग, ओष्ठप्रकोप, मधुमेह,  
अतिस्थूल और अतिपसीनाका आना आदि मेददोषजविकार हैं ॥

अस्थिदोषजविकार ।

अध्यस्थह्याधिदन्तास्थितोदशूलकुनसप्रभृतयोऽस्थिदोषजाः ॥

अर्थ—अधिक हड्डीका होना, अधिदंत ( दातके ऊपर दातका आना )  
हड्डियोंमें चमकाचलना और हड्डीका दर्द तथा कुनस आदि अस्थि-  
दोषज विकार अर्थात् ये विकार हड्डीके हैं ॥

मंजादोषजन्यविकार ।

तमोदर्शनमूर्च्छाभ्रमपर्वगौरवस्थूलमूलोरुजङ्घानेत्रा-  
भिप्यन्दप्रभृतयो मंजादोषजाः ॥

अर्थ—अंधकार दर्शन, मूर्च्छा, भ्रम, स्थूलमूलवाले फोड़ानका पर्वों  
( जोड़ों ) में होना, भारीपना, ऊरू ( जांघ ) और पीढ़री इनमें पीड़ा,  
तथा नेत्राभिप्यंद आदि मंजादोषजन्य विकार जानने ॥

शुक्रजन्यविकार ।

क्लेयाप्रहर्षशुक्राश्मरीशुक्र मेदशुक्रदोषादयश्चतदोषजाः ॥

अर्थ—नष्टसकता, स्त्रीसंगमें इच्छा न रहना, वीर्यकी पयरी शुक्रमेह,  
और शुक्रदोषादिक शुक्रके विकार जानने अर्थात् ये दोष शुक्रके दोषसे होते हैं

मलायतनविकार ।

त्वग्दोषाः सङ्गोऽतिप्रवृत्तिर्वामलायतनदोषाः ॥

अर्थ—कुष्ठसे आदिले त्वचाके विकार, मलमूत्रादिकोंका रुकजाना अथवा  
अत्यंत उतरना तथा कान, मुख, नाक, नेत्र आदि मार्गके रुकनेको संग  
पेसा कहते हैं ॥

इन्द्रियायतनदोष ।

इन्द्रियाणामप्रवृत्तिरयथाप्रवृत्तिर्वैन्द्रियायतनदोषाः ।  
इत्येवंसमासउक्तो विस्तरनिमित्तानि चैषां प्रतिरोगं  
वक्ष्यामः ॥

अर्थ—इन्द्रियोंका अपने २ कार्यमें प्रवृत्तनहोना अथवा कुछका कुछ-करना ये इन्द्रियायतन दोष हैं । तहां दोषधातु मल संसर्गादि दोष्याधियोंके कारण जो पूर्व कहआये तथा आयतनविशेष दूसरा व्याधि होनेका कारण ये दोनोंको संक्षेपसे कहकर ॥

अब तीसरे निमित्तजन्य कारणको कहते हैं कि निमित्त ( वातादि ) कारण जैसे बलधानसे विरोधकरना और मिथ्याप्रयुक्त स्नेहादिक से होनेवाले अतिसारादिरोगोंको प्रत्येक रोगोंके प्रति पृथक् २ कहेंगे ॥

भवन्ति चात्र ॥

कुपितानां हि दोषाणां शरीरे परिधावताम् ।

यत्र सङ्गस्त्वैगुण्याद्याधिस्तत्रोपजायते ॥

अर्थ—शरीरमें विचरनेवाले कुपित दोषोंका जिस मार्गमें बिगाड होनेसे रुकेंगे वही रोग उत्पन्न करते हैं ॥

इति ।

चिकित्साविधिकाउपदेश ।

जातमात्रश्चिकित्स्यः स्यान्नोपेक्ष्योऽल्पतयागदः ।

बह्विशत्रुविषैस्तुल्यः स्वल्पोऽपि विकरोत्यसौ ॥

अर्थ—व्याधि उत्पन्न होतीही उसकी चिकित्सा करे, किंतु यह अल्पदे क्या बिगाडकरेगी इसप्रकार उपेक्षा न करदेवे । क्योंकि उपेक्षा करनेसे वह अल्पही व्याधि अग्नि, शत्रु और विषके तुल्य विकार करने वाली होजातीहै । जैसे अग्निकी चिनगरी बड़े २ महलोंको शूकदेतीहै, छोटासा शत्रु काल पायके सर्वनाशकरेहै । एवं थोडासाभी विष प्राणहरण करताहै, उसीप्रकार अल्पव्याधि प्राणनाश करे है ॥

वेद्यकाकर्तव्य ।

व्याधेस्तत्त्वपरिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः ।

## एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः ॥

अर्थ—व्याधिका भलेप्रकार जानना और उस व्याधिजनित पीडाका नाशकरना यही वैद्यका वैद्यत्वहै किंतु वैद्य आयुका प्रभु नहीं है अर्थात् आयुका मालिक नहीं । परंतु कोई आचार्य इसश्लोकको इसप्रकार लगाते है कि, व्याधिका यथार्थ ज्ञान करना और पीडाकी शांति करनाही वैद्यका वैद्यपना नहीं है, किंतु सौ आगंतु मृत्युओंको हरणकरेहै इसवास्ते वैद्य आयुका प्रभु है ॥

## रोगमादौ परिक्षित ततो नंतरमौषधम् ।

## ततः कर्मभिषकु पश्चाज्ज्ञानपूर्वं समाचरेत् ॥

अर्थ—वैद्य प्रथम रोगकी परीक्षा करे, रोगज्ञानके पश्चात् औषधकी परीक्षा करे, जब रोग और औषध दोनोंकी परीक्षा कर चुके तब सावधानीके साथ कर्म ( औषधदेना आदि चिकित्सा ) का प्रारंभ करे । असावधानीसे चिकित्सा न करे ॥

अब-प्रसंगवश रोगोंके जाननेके वास्ते चरकसे त्रिविधविज्ञानी याध्यायको भाषा लिखते है ॥

॥ अब हम त्रिविध विज्ञानीध्यायायका वर्णन करते है ॥

तहां रोगका विज्ञान तीन प्रकारसे होता है । जैसे १ उपदेश, २ प्रत्यक्ष और ३ अनुमान ।

तहां आतवचनको उपदेशकते है । अब यह जिज्ञासा हुई कि, आत किसको कहते है तहां आतोंके लक्षण कहते है ॥

### आतलक्षण ।

जो तर्करहित स्मृतिविभागके जानने वाले और बिना प्रीतिके परदुःखसे आप दुखी होवे उन महात्माओंको आत ऐसा कहते है । उनका गुणसंयुक्त वचन प्रमाण है अर्थात् ग्रहणकरने योग्य है ॥

और मत्त ( सिडो पागल ) उन्मत्त ( मद्यादिपीनेसे पागल ) मूर्ख, बिना विचाररहने वाला इनका वचन अप्रमाण है अर्थात् अमाननीय है ॥

### प्रत्यक्षकेलक्षण ।

जो वस्तु अपने नेत्रादि इन्द्री और मनपरके ग्रहण करी जाये वो प्रत्यक्ष है अनुमान ।

तर्क और युक्तिकी जिसमें अपेक्षा होवे उसको अनुमान कहते है

इस ( उपदेश, प्रत्यक्ष और अनुमान ) त्रिविध ज्ञानसमुदायसे प्रथम रोगपरीक्षा कराहुआ रोगी चिकित्साकरनेमें संशयरहित होता है ॥

संपूर्ण ज्ञान केवल ज्ञानके एकदेश जाननेसे कदाचित् नहीं होता किंतु संपूर्ण ज्ञानके अंगोंके जाननेसे होता है ॥

इन तीनोंप्रकारके ज्ञानमें प्रथम आसोपदेशज्ञान मुख्य है फिर प्रत्यक्ष और अनुमानद्वारा निश्चय करना कहा है ॥

परंतु वादी शंकाकर्त्ता है कि, हम आसोंको नहीं जानते । इस वास्ते हम प्रत्यक्ष और अनुमान ये दोही परीक्षाओंको मुख्य करके मानते हैं इसीसे अब ज्ञानवालोंको दोही परीक्षा करना मुख्य है, प्रत्यक्ष और अनुमान, परंतु बहुतसे बुद्धिमान पुरुष इनदोनों परीक्षाओंके साथ उपदेश प्रमाणको मानते हैं अर्थात् इन दोनोंमें आसवचन संमतजो होवे वो प्रमाण है ॥

जैसे एक रोग, दोषोंका प्रकोप, रोगोंकी घोनी, आत्मा, अधिष्ठान, वेदना, संस्थान, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध उपद्रव, वृद्धिस्थान, क्षययुक्त इनका प्रसर और इनके नाम इत्यादियोग आसवचनसे जानना अर्थात् प्रवृत्ति अथवा निवृत्ति है यह आसवचनसे जाना जाता है ॥

**प्रत्यक्ष ।**

रोगतत्त्वकी प्रत्यक्ष जानना होवे तो सब इन्द्रियोंसे रोगीके देहगत सबइन्द्रियार्थ ( शब्द स्पर्शादिकों ) की परीक्षा करे, बिना जिह्वाद्वारा परीक्षाके । तात्पर्य यह है कि, वैद्य नेत्र, कान, नासिका और हाथोंसे परीक्षा करे और स्वाद जानना जिह्वा इन्द्री द्वारा होता है, परंतु इसको जिह्वा इन्द्रीसे नहीं करते अतएव यहाँ वर्जित है ॥

तहाँ इन्द्रियद्वारा जो परीक्षा करीजाती है उसको लिखते हैं ॥ पोरुओं कर्णइन्द्री ।

जैसे आँतोंका घोलना, संधियोंका चटकना और उंगलीके पूँछोंका चटकना इत्यादि और जो शरीरमें शब्द होनेवाले धर्म हैं उनको कर्ण इन्द्रीद्वारा परीक्षा करे ॥

**नेत्रइन्द्री ।**

देहका वर्ण, लंबा, नीचा, छाया शरीरकी प्रकृति, पांडुरोगादि विकार और जो नेत्रविषयक ज्ञान है उनको नेत्र इन्द्रीद्वारा परीक्षा करे ॥

**जिह्वाइन्द्री ।**

जिह्वाइन्द्रीका ज्ञान जैसे—रोगीके मलमूत्रका और देहका सारा मीठा

जायका यह अनुमानसेही जानलेवे, यह रसनेन्द्री ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा नहीं होता है, इसीसे रोगीसे प्रभुद्वारा करना चाहिये अर्थात् आपके मुसका जायका कैसा है जब मल सूत्र करते हो उस पर मक्खी बहुत बैठती है या थोड़ी और इसीप्रकार देहपर मक्खियोंके बैठनेसे देहमें मिष्टताका अनुमान करना और यदि जूँआँ आदि जीव देहपर दौड़े तो जाननाकि, इसरोगीके देहमें विरसता है ॥

अब रक्तपित्तकी परीक्षामें यह परीक्षा करना कि, इसके यह जलही-रुधिरमिला लाल रंग गिरे है अथवा रक्तपित्त गिरता है। तहाँ उस रुधिरको कौआ कुत्ते आदि भक्षणकरे तो जानना कि, रुधिर मिला जल गिरता है। और यदि कुत्ते कौआ आदि न खावेतो जानना कि, इसरोगीके रक्तपित्त गिरता ॥

इसी प्रकार औरभी खट्टे चरपरे आदि इस प्राणीके देहगत रसोंकी परीक्षा घेद्य अपनी बुद्धिके बलसे करे ॥

**नासिकाइन्द्री ।**

रोगीके देहमें दुर्गंध आती है या सुगंध आती है, और दुर्गंध सुगंध किसप्रकारकी आती है इत्यादि प्रकृतिविकारजन्य गंधको नासिका-इन्द्रीसे सूँघकर जाने ॥ **स्पर्शनेन्द्री ।**

हाथोंसे प्रकृति और विकृतियुक्त यह कठोर है यह नम्र है यह गरम और शीतल इत्यादि परीक्षा स्पर्श द्वारा प्रत्यक्ष और अनुमानके एकदेश द्वारा जाननी अब अनुमान ज्ञानको कहते हैं ।

अर्थ—अब आगे जो भाव कहते हैं इनसे आदिले औरभी अनुमानसे वेद्योंको जाने जातेहैं जैसे पचनेकी शक्तिद्वारा जठराग्निका मंदतीक्ष्णादि ज्ञान होता है । दंढकसरत डोलने फिरनेसे बलका अनुमान होता है शब्दादिग्रहणसे प्राणीके सुननेकी शक्तिका ज्ञानहोता है व्याभिचारसे मन और मनके अर्थोंका निश्चय होता है । व्यापार आदिसे विज्ञानका निश्चय होता है । संगतिसे रजोगुणका निश्चय होता है ज्ञानसे मोहका निश्चय होता है । द्रोह ( वैरभाव ) करनेसे क्रोधका निश्चय होता है । दीनता करनेसे शोकका निश्चय होता है प्रसन्नता ( खुशखुशी ) से हर्षका निश्चय होता है संतुष्टतासे प्रीतिका ज्ञानहोता है । घबड़ाहटसे भयका ज्ञानहोता है । स्वस्वचित्तसे धैर्यका ज्ञानहोता है । उत्साहद्वारावीर्यका निश्चय होता है । विना भ्रमके स्थितिका निश्चय होता है । अभिमायसे

भद्राका निश्चय होता है । ग्रहण धारणसे मेधाका निश्चय होता है । नाम ग्रहणसे संज्ञाका निश्चय होता है । स्मरणसे स्मृतिका ज्ञान होता है । लज्जा-युक्त होनेसे लज्जा ( शरम ) का बोध होता है । सुशीलोंके आचरणसे शीलताका ज्ञान होता है । वर्जित करनेसे द्वेषका ज्ञान होता है । अनुबंधनसे उपाधिका निश्चय होता है । चंचलता रहित होनेसे धृति का निश्चय होता है । आज्ञाके अनुसार चलनेसे वशीभूतपनेका निश्चय होता है । काल, देश, उपशय और पीडा इनसे अवस्था, भक्ति ( भोजनक्रिया ) सात्त्व्य और व्याधि इनका निश्चय होता है जिस व्याधिके लक्षण छिपे हुए हैं उसका ज्ञान उपशय और अनुपशय द्वारा होता है ॥

तथा दीपोंका प्रमाण, अपचार, आयुकी क्षीणता ये अरिष्टद्वारा जाने जाते हैं ग्रहणीका मृदु और दारुणत्व, दुःस्वप्नदर्शन, अनपेक्षितवस्तुओंमें अभिप्राय, सुख, दुःख, इन सबका रोगीसे प्रभ करनेसेही निश्चय होता है ॥

इसीवास्ते आत्रेय महार्थ कहते हैं—आप्तोपदेश प्रत्यक्ष इन्द्रियोंसे और अनुमानद्वारा चतुर वैद्य व्याधियोंकी परीक्षाकरे ॥

अर्थवेत्ता वैद्य यथासंभव सबको सर्वथा ज्ञानबुद्धिरूप दीपकसे देखकर कार्य करता है वह तत्त्ववेत्ता है ॥

प्रथम तत्त्वविचारकरे फिर कार्य करके उसको जाने । जो कार्य तत्त्वमें विशेष ज्ञाता है वह परीक्षा विषयमें मोहको नहीं प्राप्त होता है और बुद्धिमानकी उच्चतम फल प्राप्त करता है । जो वैद्य केवल ऊपरहीसे रोगकी परीक्षा करता है और ज्ञान बुद्धि दीपकसे रोगीके अंतःकरणका विचार नहीं करता वह चिकित्सा करनेका अधिकारी नहीं है ॥

इस प्रकार संपूर्ण रोगविशेषोंका त्रिविधज्ञानसंग्रह है—जैसे आप्तोपदेश करते हैं और जैसे प्रत्यक्ष ग्रहणकरा जाता है एवं जैसे अनुमानसे रोग-जाने जाते हैं उनको उदार बुद्धि वैद्य जाने इसप्रकार त्रिविधरोगविज्ञानीय विमानमें भाषोंका मुनिने वर्णन करा है ॥

इति श्रीमामुखेदोद्धारे बृहत्त्रिपुटद्वाराकरे त्रिविधरोगविशेषविज्ञानीय समाप्तम् ।

## रोगज्ञानानंतरचिकित्सा ।

### आदावन्ते रुजाज्ञाने प्रयतेत चिकित्सकः ।

१ शित औषध अन्न और विहारसे रोगीको सुसहो उसको उपशय और सात्त्व्य कहते हैं और इससे विपरीतको अनुपशय और असात्त्व्य कहते हैं ॥

भेषजानां विधानेन ततः कुर्याच्चिकित्सितम् ॥

अर्थ—वैद्य प्रथम रोगकी परीक्षामें यत्नकरे फिर औषधोंके विधान करके चिकित्सा करना चाहिये ।

सवरोगोंकेनामनजाननेमेंअलज्जत्व ।

विकारनामाकुशलो न जिह्रियात्कदाचन ।

नहि सर्वविकाराणां नामतोस्ति ध्रुवास्थितिः ॥

अर्थ—वैद्य रोगका नाम न जाननेपर कदाचित् लज्जा न करे, क्योंकि संपूर्ण रोगोंकी नामकरकेही परीक्षा नहीं करी, अर्थात् अनेकानेक रोग इससंसारमें विना नामके दीखते हैं ।

अनुक्तदोषोंमेंलक्षणद्वाराचिकित्साकीआज्ञा ।

नास्तिरोगोविनादोषैर्यस्मात्तस्माच्चिकित्सकः ।

अनुक्तमपिदोषाणां, लिगैर्व्याधिमुपाचरेत् ॥

अर्थ—विनादोषोंके रोग नहींहो इसीसे वैद्य, जो दोष शास्त्रमें नहीं कहे उनदोषोंकी रोगोंके उपद्रवोंसे जानके चिकित्साकरे ।

असाध्यरोगीकीचिकित्साका निषेध ।

येनकुर्वत्यसाध्यानां चिकित्सा ते भिषग्वराः ।

अतो वैद्यः श्रमः कार्यः साध्यासाध्यपरीक्षणे ॥

अर्थ—जो असाध्य रोगीका यत्न नहीं करते वोही वैद्यमें श्रेष्ठ हैं अतएव वैद्यकी उचित है कि, साध्यासाध्यकी परीक्षामें श्रम करे ॥

उत्पन्नहोतेही चिकित्साकरनेकाहेतु ।

यथास्वल्पेनयत्नेन छिद्यते तरुणस्तरुः ॥

स एवातिप्रवृद्धस्य छिद्यतेऽतिप्रयत्नतः ॥

अर्थ—जैसे तरुणवृक्ष अर्थात् नवीनोत्पन्नवृक्ष थोड़े यत्न करने परही काटा जासکتा है, परंतु जब वोही बढकर शाखाप्रशाखाओंकरके बढ जाता है तब उसका काटना बढाकठिन हो जाता है, उसीप्रकार रोग प्रगटहोते ही कुछ थोड़ीसी चिकित्सासे दूरहोसکتा है, परंतु जब रोग बढके बढमूल होजाता है फिर उसका दूरकरना बढा कठिन है ॥

## औषधकी आवश्यकता ।

आयुष्मान् पुरुषो जीवेत्सव्यथो भेषजे विना ।

भेषजेन पुनर्जीवेत्स एवहि निरामयः ॥

अर्थ—जिसकी दीर्घावस्था है यदि वो रोगग्रस्त हो औषध न करे तो वो दुःख सहित जीता है और यदि वही औषध करे तो रोगरहित हो आनंदसे जीवे । तात्पर्य यह है कि, दीर्घ आयुवाला बिना औषधके दुःखी रहता है और औषध के करनेसे रोगरहित जीवन पाता है ॥

नचौषधीनामपि सर्वथैव प्रभावहानिः परिकल्पनीया ।

फलंप्रयात्पूर्वमधस्त्रिवृच्च प्रत्यक्षतः कस्यनसिद्धिमेतत् ॥

अर्थ—इसप्राणीको उचित है कि, औषधोंमें सर्वथा [ कलिदोषसे ] प्रभाव हानि की कल्पना न करे [ अर्थात् अब कलियुगमें ये औषध अपना प्रभाव नहीं दिखाती ऐसा विचार कदाचित् न करे ] । क्योंकि मैनफलके खानेसे उलटी होती ही है और निसोथ खानेसे दस्त होते, यह बात प्रत्यक्षमें किसीको सिद्ध नहीं है, अर्थात् सब जानते हैं तथा जमालगोदा, इन्द्रायणके फल, चोक ये सब औषध अपना फल दिखाती हैं इसी कारण औषधोंके गुणमें किसीको भी संदेह नहीं करना ॥

यदि जो औषधके गुण हैं वो गुण नहोवे तो जानना कि, ये दवाई पुरानी है अथवा इसके प्रयोगमें कुछ नकुछ विपरीतता आ गई है या इसप्राणीकी प्रकृति के अनुसार नहीं है इत्यादि कारणोंसे औषध गुण नहीं करती, परंतु मुख्यमनुष्य अपने मूर्खता पर तो देखते नहीं व्यर्थ औषधको दोष देते हैं ॥

सतिचायुपिनोपायंविनोत्थातुंक्षमोरुजी ।

दर्शितश्चात्रदृष्टांतः पंकमग्नोमहागजः ॥

अर्थ—आयुष्यमानभी रोगी बिना उपायके रोगसे नहीं उठसके, इस्में दृष्टांत है कि, जैसे कीचमें फँसा हुआ हाथी बिना यन्त्रके नहीं निकलसका उसीप्रकार रोगी बिना यन्त्रके अच्छा नहीं होता । यहाँ रोगी है सो हाथी है और रोग है सोई कीचड़ है, उसमें फँसको औषध देना मानो उस कीचड़से निकालनेका उपाय है ॥

सतिचायुपिनष्टस्यादामयश्चचिकित्सितः ।

यथासत्यपितैलादौदीपोनिर्वातिवात्यया ॥



अर्थ—दीर्घावस्थावालाभी रोगी रोगकी विनाचिकित्सा (इलाज) करे नष्ट होजाता है इसमें दृष्टांत है कि, जैसे तेल और बत्ती होनेपर भी हवाके वेग करके दीपक बुझ जाता है, यहाँ यनुष्यकी देहही दीपक है और आयु-रूप तेल है समयरूप बत्ती तामें जीवरूप ज्योति है और रोगरूप पवन इस जीवरूप दीपकको बुझाय देती है जैसे उस दीपकको रक्षामें रखनेसे नहीं बुझे इसीप्रकार इस देहकी रक्षा करनेसे अकाल मृत्यु नहीं हो ।

**यथासत्यपितैलादौदीपमिर्वापयेन्मरुत् ।**

**एवमायुष्ययुक्तंचादिसंत्यागंतुमृत्यवः ॥**

अर्थ—पूर्वोक्त वाक्यको दृष्टांत देकर फिर पुष्ट करते हैं जैसे तेल घाती आदि रहनेपर भी दीपकको पवन बुझादेती हैं इसीप्रकार दीर्घ आयु होने-परभी आंगतुज मृत्यु इसमाणीको नाशकर देती है ॥

**दोषांगंतुनिमित्तेभ्योरसमंत्रविशारदौ ।**

**रक्षेतानृपतिनित्यं यत्नाद्वैद्यपुरोहितौ ।**

अर्थ—इसीवास्ते शास्त्रमें लिखा है कि, दोष जन्यव्याधि और आंगतुज व्याधियोंसे रस और मंत्रके ज्ञाता ( जाननेवाले ) वैद्य और पुरोहित राजकी रक्षा करे ॥

**रोगज्ञानमें अभ्यासको मुख्यत्व ।**

**अभ्यासात्प्राप्यतेदृष्टिः कर्मसिद्धिप्रकाशिनी ।**

**रत्नादिसदसज्ज्ञानं नशास्त्रादेवजायते ॥**

अर्थ—अभ्यास ( बारंबार चिकित्साकर्ममें प्रवृत्त होने ) से कर्मसिद्धि प्रकाशकरता दृष्टी होती है, अर्थात् चिकित्सा करनेका ज्ञान होता है, इसमें दृष्टांत है कि, जैसे हीरापन्ना आदि रत्नोंके सच्चे झूठेका ज्ञान जैसे शास्त्रके पढ़नेसेही नहीं होता किंतु उसमें अभ्यास करनेसे होता है इसीप्रकार वैद्य विविधव्याधि चिकित्सामें जाने ॥

**दृष्टापचारजः कश्चित्कश्चित्पूर्वापराधजः ।**

**तत्संकराद्भवत्यन्योव्याधिरेवंत्रिधास्मृतः ॥**

अर्थ—अब त्रिविध व्याधियोंको कहते हैं तहाँ कोई व्याधि दृष्टापचारज ( इस लोकमें व्याधिके कारणोंसे होनेवाली ) है और कोई पूर्वापराधज

(पूर्वजन्मके करे अशुभ कर्मोंसे हुए) है और तीसरे इन दृष्टापचारज और पूर्वापराधजके मिलनेसे होते हैं इसप्रकार रोग तीन प्रकारके हैं ॥

**यमानिदानंदोषोत्थैःकर्मजोहेतुभिर्विना ।**

**महारंभोलपकेहेतावातर्कादोषकर्मजः ॥**

अर्थ—तहां दोषजन्यरोग अपने २ निदानसे प्रगट होते हैं ( जैसे वात-के रुक्ष लघु आदि कारण है इनसे जो रोग प्रगटे वो वातजन्य जानना इसीप्रकार पित्त और कफजन्य रोगोंकी भी समझना चाहिये) और जो दोषोंके कारण विनाही प्रगट होवे वो कर्मजन्य रोग जानना और जिसमें थोड़े दोषोंके कुपित होनेसे बड़ीभारी व्याधि प्रगट हो उसको दोषकर्मज व्याधिकहते हैं ॥

**दृष्यं देशं बलं कालमनलं प्रकृतिं वयः । सत्त्वं सात्म्यं  
तथा हारभवश्चाथपृथग्विधाः ॥ सूक्ष्मासूक्ष्माःसमीक्ष्येषा  
दोषौषधनिरूपणे । यो वर्तते चिकित्सायां न सस्वल-  
ति जातुचित् ॥**

अर्थ—दोष औषध निरूपणमें जो वैद्य दृष्य, देश, बल, काल, अग्नि, प्रकृति, अवस्था, सात्म्य, आहार और द्रव्यादिकोंकी सूक्ष्म और बड़ी अवस्थाको देख ( विचार ) कर चिकित्सा करता है वह कदाचित् नहीं स्खलन होता अर्थात् कदाचित् नहीं भूले ॥

**गुरुलपव्याधिसंस्थानंसत्त्वदेहबलाबलात् ।**

**दृश्यतेप्यन्यथाकारं तस्मिन्नवहितोभवेत् ॥**

अर्थ—वैद्य, सत्त्व देह और बलाबलके कारण गुरु और अल्प व्याधियोंको आकृति अन्यथा दीखती है उसमें सावधान होवे। जैसे अधिक सत्त्व और उत्कृष्ट देहबलवाले प्राणीके होने वाले भारी भी रोग हलके मालूम होते हैं कारण कि, उसके देहमें सत्त्व बल ये अधिक है । इसीप्रकार हीनसत्त्व हीनदेह हीनबल वालेके उत्पन्न हुई व्याधि हलकी भी बड़ी भारी दीखे है।

**गुरुलघुमिति व्याधिकल्पयंतुभिषागुरुवः ।**

**अल्पदोषाकलनयापथ्येविप्रतिपद्यते ॥**

अर्थ—जो कुत्सित वैद्य है वो व्याधिके संस्थान (स्वरूप, मात्रके देखते

ही भारी रोगको हलका समझते हैं, जब हीन दोष समझा तो मात्रा भी हलकी देते हैं अतएव वो मात्रामें मोहको प्राप्त होते हैं । इसी प्रकार हलकी व्याधिको बड़ा भारी विचारके मात्रा देनेमें मोहको प्राप्त होते हैं ॥

ततोल्पमल्पवीर्यवा गुरु व्याधौप्रयोजितम् ।

उदीरयेत्तरारोगान् संशोधनमयोगतः ॥

अर्थ—अब कहते हैं कि, अल्पमात्र अल्पवीर्य ऐसी संशोधनरूप औषध प्रबल रोगोंमें दीनी हुई हीनयोग होता है, इसवास्ते रोगोंको अत्यंत बढ़ाती है । इससे तो औषध न देनाही ठीक है जैसे पुत्रके कार्य न करनेसे अपुत्र कहाँता है उसी प्रकारको अयोग ही हीनयोग कहलाता है ॥

शोधनं त्वतियोगेन विपरीतं विपर्यये ।

क्षिणुयान्नमलानव केवलवपुरस्यति ॥

अर्थ—लघुव्याधिमें विपरीत शोधन अर्थात् अत्यंत वायवान् और अधिक औषधी देवे, वह अतियोगके वश मलोंकोही नहीं क्षीणकरे है किंतु देहको भी नष्टकरे है ॥

अतोभियुक्तः सततं सर्वमालोच्य सर्वथा ।

यथायुजितभेषज्यमारोग्याय यथाध्रुवम् ॥

अर्थ—इसकारण अर्थात् रोगोंकी गति दुर्विक्षेप होनेसे निरंतर आयुर्वेद पठन पाठन अनुष्ठानमें तत्पर वेद्य सब द्रव्यादि वस्तुओंको विचार इसप्रकार औषध देवे कि, जैसे आरोग्य अवश्य होवे ॥

दर्शनस्पर्शनप्रश्नव्याधिज्ञानं त्रिधा मतम् ।

दर्शनान्मूत्रजिह्वाद्यैः स्पर्शनान्नाडिकादिभिः ॥

प्रश्नैः दूतादिवचनादिति त्रेधा समुच्यते ॥

अर्थ—रोगका ज्ञान तीन प्रकारसे होता है जैसे दर्शन (दिखना) स्पर्शन (छूना) और प्रश्न (पूछना) तहाँ मूत्र और जिह्वा आदिशब्दसे मलदेहकी आकृति आदि देखने करके जानना आदिको छूनेसे जाने और दूतादिके वचन पूछने करके वेद्यजनि इस प्रकार परीक्षा तीन प्रकारकी है ॥

शारीरामानसांगंतुसहेजाव्याधयोमताः ।

शारीराज्वरकुष्ठाद्याः क्रोधाद्यामानसामताः ॥

आगंतवोभिशपोत्या सहजाक्षुत्तृपादयः ॥

अर्थ—तहां व्याधि चार प्रकारकी है १ शारीरी २ मानसी ३ आगंतु और ४ सहज । तहां ज्वरकुष्ठादिक शारीरी व्याधि है । क्रोध, लोभादिक मानसिक व्याधि है । अभिशापजन्य व्याधि आगंतुज है और भूख, प्यास, निद्राआदि सहज व्याधि कहलाती है ॥

रोगोकेभेद ।

तेचस्वाभाविकाः केचित्केचिदागंतवः स्मृताः ।

मानसाः केचिदाख्याताः कथिताः केऽपिकायिकाः ॥

अर्थ—उनरोगोंमें कोई स्वाभाविक रोग है । कोई आगंतु और कोई मानसिक एवं कोई रोग कायिक अर्थात् देहसे संबंध रखते हैं ॥

त्रिविधव्याधि ।

कर्मजाः कथिताः केचिदोपजाः संतिचापरे ।

कर्मदोषोद्भवाश्चान्येव्याधयस्त्रिविधाः स्मृताः ॥

अर्थ—व्याधि तीन प्रकारकी है जैसे एक तो 'कर्मज' ( जो पूर्वजन्मोपाजितकर्मसे होती है ) दूसरी दोषज ( ओषातादि दोषोंके—कुंषित होनेसे ) होती है और तीसरी कर्म और दोष दोनों करके त्रिविधव्याधियोंकी चिकित्सा होनेवाली, ये तीनभेद हैं ॥

त्रिविधव्याधियोंकीचिकित्सा ।

कर्मक्षयात्कर्मकृतादोषजाः स्वस्वभेषजैः ।

कर्मदोषोद्भवार्थातिकर्मदोषक्षयात्क्षयम् ॥

अर्थ—कर्मकृत व्याधि कर्मके जीर्ण होनेसे शांति होती है । दोषजन्य

१ स्वाभाविक रोग भूख, प्यास, निद्रा, वृद्धावस्था और मृत्यु आदिहैं, अथवा अपने स्वभावसे उत्पत्ति होवे उसके स्वाभाविक बर्हिष सहज राग वो जन्मापादिक जानने । २ जो किसी प्रकारकी चोट लगनेमें आवे वो आगंतुज है । ३ क्रोध, क्रोध, लोभ, मोह, भय, अभिमान, दीनता, पिशुनता, शोक, विषाद, हर्ष, ईर्ष्या, असूया और मात्सर्यादिक ये मानसिक व्याधिहैं । ४ अपवा, उन्माद, अपस्मार, श्रम, मोह, तम सन्यासादिक जानने । ५ पूर्वजन्मोपाजित दृष्टकर्म अन्यव्याधि ॥

व्याधि अपनी २ पृथक् २ औषध करनेसे शांति होती है और कर्मदोष दोनोंसे प्रगट व्याधिकर्म और दोष दोनोंके क्षय होनेसे दूर होती है ॥

पुनः त्रिविधव्याधि ।

सांध्यायाप्याअसाध्याश्चव्याधयस्त्रिविधाः स्मृताः ।

सुखसाध्यःकष्टसाध्यो द्विविधः साध्यवच्यते ॥

अर्थ-साध्य-याप्य और असाध्य ऐसे व्याधि तीन प्रकारकी हैं । अब कहते हैं कि, साध्यव्याधिके दोभेद, एक सुखसाध्य-दूसरी कष्टसाध्य ॥

याप्यकेलक्षण ।

यापनीयंतुतंविद्यात्क्रियाधारयतेहियत् ।

क्रियायांतुनिवृत्तायांसद्योयश्चविनश्यति ॥

अर्थ-अब याप्यके चिह्न कहते हैं कि, जो चिकित्साकी क्रियाको धारण करे उसको याप्य अर्थात् दूर होने योग्य व्याधि जाननी और औषधोपाय न चले तो वो रोगी क्षीघ्रभरे उस रोगीको याप्य जानना ॥

प्राप्ताक्रियाधारयतिसुखिनंयाप्यमातुरम् ।

प्रपतिष्यदिवागारंस्तम्भोयत्नेनयोजितः ॥

अर्थ-याप्य रोगीको प्राप्तहुई क्रिया धारण करती है अर्थात् जबतक उसका यत्नहुआ करेगा तबतक रोगी नहीं भरे, जैसे गिरतेहुए घरमें अडवार अथवा किसी पत्थर वगेरहका नवि सहारा लगादेनेसे वह घर नहींगिरे ॥

साध्यायाप्यत्वमायांति याप्याश्चासाध्यतां तथा ।

अंति प्राणानसाध्यस्तु नराणामक्रियावताम् ॥

अर्थ-विना यत्नकरनेवाले मनुष्योंके साध्यरोग याप्य होजाते हैं और याप्यरोग असाध्य होते हैं, एवं असाध्य रोग इन प्राणियोंके प्राणोंको हरण करते ( इसीसे मनुष्य मात्रको उचित है कि, रोगके उत्पन्न होतेही उसका यत्नद्वारा निवारण करे ) ॥

याप्यत्व ।

याप्यःकेचित्प्रकृत्यैवकेचिद्याप्याउपेक्षया ।

प्रकृत्याव्याधयोऽसाध्याकेचित्साध्याउपेक्षया ॥

अर्थ-कोई रोगतो प्रकृतिसेही याप्य होते हैं और कोई रोगकी उपेक्षा

से होते हैं । कोई व्याधि प्रकृतिसे ही अर्थात् उत्पन्न होते ही असाध्य होती है और कोई उपेक्षा अर्थात् उसका यत्न नहीं करनेसे होती है ॥

**साध्योयमितियःपूर्वनरोगमुपेक्षते ।**

**सकिंचित्कालमासाद्यमृतएवावदृश्यते ॥**

अर्थ—यह रोग अभीतो साध्य है इस प्रकार जो उसकी उपेक्षा कर देता है, वह थोड़ेही कालमें मर गया ऐसा दीखता है ॥

**सप्तविधव्याधि ।**

**स्वभावजाश्चदोषोत्थाः सहजाश्चापचारजाः ।**

**आगंतवःप्रभावोत्थाः कालजाश्चेतिसप्तधा ॥**

अर्थ—१ स्वभावज २ दोषज ३ सहज ४ अपचारज ५ आगंतुज ६ प्रभावोत्प और ७ कालज ऐसे व्याधि सात प्रकारकी है ॥

**स्वभावजाः समाख्यातावाद्धक्यंक्षुत्तृपादयः । दोषो  
त्थाश्चाऽनृताहाराविहारादिसमुद्भवाः ॥ सहजारक्तरेतस्थ-  
दोषसंभारसंभवाः । गर्भेऽपचारजास्तेऽस्युः कुब्जावामनता-  
दयः । आगंतवोऽग्निवाय्वादिभूतावेशादिसंभवाः । प्रभा-  
वोत्थासुरक्षोणीसुरगुर्वादिशापजाः ॥ वर्षाशीतातपाद्यु-  
त्थाव्याधयः कालजामताः ॥**

अर्थ—तहाँ भूख, प्यास और बुढ़ापा आदि स्वभावज रोग है । मिथ्याआहारसे प्रगट होनेवाली व्याधि दोषज कहाती है । मातापिताके रुधिर और वीर्यदोषसे जो रोग प्रगट होवे वो सहजव्याधि कहलाती है । गर्भवतीके विरुद्धाचरणसे जो कुबड़ा बौना आदि व्याधि है उनको अपचारजन्य कहते हैं । अग्नि, पवन आदि और भूतावेशमें होनेवाली व्याधियोंको आगंतव कहते हैं । ब्राह्मण देवता गुरुआदिके शापसे होनेवाली व्याधियोंको प्रभावोत्प कहते हैं और वर्षा ( बारिश ) सरदी और गरमीसे जो प्रगट उन व्याधियोंको कालजन्य कहते हैं ॥

**उपद्रवकेलक्षण ।**

**रोगारंभकदोषस्यप्रकोपादुपजायते ।**

**योऽन्योविकारः सवुधैरुपद्रवइहोदितः ॥**

अर्थ—जो रोगके उत्पन्न करनेवाले वातादिदोष है उनके कुपित होने-

से जो रोगमें भी दूसरा विकार उत्पन्न होता है उसको उपद्रव कहते हैं ।  
उदाहरण, जैसे ज्वरमें तृषा अनिद्रा आदि उपद्रव होते हैं ॥

अरिष्टकेलक्षण ।

रोगिणो मरणं यस्मादवश्यं भाविलक्ष्यते ।

तल्लक्षणमरिष्टस्याद्रिष्टं चापितदुच्यते ॥

अर्थ—जिन लक्षणोंसे रोगियों का मरण अवश्य सूचित हो उनको अरिष्ट अथवा रिष्ट ऐसे कहते हैं ॥

न जंतुकश्चिदमरः पृथिव्यामेव जायते ।

अतो मृत्युरवार्यः स्यात्किंतुरोगान्निवारयेत् ॥

अर्थ—इस पृथ्वीमें कोई प्राणी अमर ( जो न मरे ऐसा ) नहीं है अर्थात् सब एक दिन मरेंगे इसी वास्ते मृत्यु निवारण नहीं हो सकती किंतु रोग निवारण हो सके हैं । तात्पर्य यह है कि, वैद्य रोगरहित कर देवे जैसे मरते समय कंठमें कफ घटघटाता है तो वैद्य की चातुर्यता यह है कि, ऐसी औषध देवे कि कफ का बोलना बंद हो जावे फिर बीरोगी चाहिये इसी लक्षणमें मर जाय ॥

मृत्युसंज्ञा और कालसंज्ञा ।

एकोत्तरं मृत्युशतमथर्वाणः प्रचक्षते ।

तत्रैककालसंयुक्तः शेषास्त्वागंतवः स्मृताः ॥

अर्थ—अथर्वाण ऋषिने १०१ एकसौ एक मृत्युकही है तिनमें एक काल संज्ञक मृत्यु है बाकी आगंतु संज्ञक मृत्युकही हैं । तहां कालसंज्ञक मृत्यु आयुष्यके अंतमें प्राणियोंको अवश्य मारेगा वह सब उपायोंसे भी अवार्य है तथा ब्रह्मादिकोंकी भी आयु अंतमें हरण करता है जैसे लिंगपुराणमें कार्तिकेयके प्रति श्रीशिवका वाक्य है ॥

ममायुर्मसते कालः कुतः पुनरसायनम् ॥

अर्थ—हे पुत्र ! यह काल मेरी भी आयुको मसता है जिनको प्राणी रसायन कहता है । सो कहाँ है । अतएव जो कालसंज्ञक मृत्यु है वह अवश्य होकर रहती है और जो आगंतुसंज्ञक जैसे, विषभक्षण अजीर्णमें अत्यंत भोजन दुष्ट देशका जलपीना, अत्यंत बलवान्से व्याध, घनका भैंसा मत-वारा हाथी आदिसे लड़ना, सर्पके साथ खेलना, अत्यंत ऊँचे पृष्ठपर चढ़ना, हाथोंसे तैरकर बड़ी भारी नदीकी पार जाना, अकेला रात्रिमें जाना इत्यादि जानना ये यत्न करनेसे रुकसंती है ॥

**शीतेशीतप्रतीकारमुष्णेतूष्णनिवारणम् ।**

**कृत्वा कुर्यात् क्रियां प्राप्तां क्रियाकालं न हापयेत् ॥**

अर्थ—शरदीके रोगमें शरदीके निवारण कर्त्ता गरम और गरमीके रोगमें गरमीके निवारणकर्त्ता शीतल औषध करके प्राप्तिक्रियाको करे, किंतु क्रियाके समयको नष्ट न करे, अर्थात् जो समय क्रिया करनेका शास्त्रने निश्चय किया है, वह ठसी समय क्रियाकरनी, आगे पीछे नहीं ।

**विकारेऽल्पे महत्कर्म क्रियालब्धौ गरीयसि ।**

**द्वयमेतदकौशल्यं कौशल्यं युक्तकर्मता ॥**

अर्थ—छोटेसे रोगमें बड़ीभारी क्रियाका करना अर्थात् अधिक और उत्कट औषधदेना, एवं बड़ेभारी रोगमें छोटी क्रिया अर्थात् थोड़ीदवा और अल्पगुण वाली देना, ये दोनों कर्म वैद्यकी मूर्खतासूचक हैं। कुशलता वैद्यकी उसीमें है कि, यथायोग्य कर्म करना ॥

**क्रियायास्तु गुणालाभे क्रियामन्यां प्रयोजयेत् ।**

**पूर्वस्यां शान्तिवेगायां न क्रिया संकरो हितः ॥**

अर्थ—जो रोगीके प्रति क्रियाकरे यदि वह अपना गुण न दिखलावे तो दूसरी क्रियाकरे, अर्थात् दूसरी औषध देवे, परंतु जब पहली औषधका वेग शान्ति होलेवे तब दूसरीदेवे, क्योंकि संकर(विपरीत)क्रिया रोगीको हितकारी नहीं होती ॥

**क्रियाभिरल्परूपाभिर्नक्रियासंकरोहितः ।**

**ताभिस्तु भिन्नरूपाभिः सांकर्यं नैवदुष्यति ॥**

अर्थ—वैद्यको एकसी दो चिकित्सा एकही कालमें नहीं करनी चाहिये, वो हितकारी नहीं होती, परंतु यदि दोनों भिन्नरूप अर्थात् पृथक् रूप वाली होवे तो वो संकर दोषकारक नहीं होती ॥

**उत्पद्यते च सावस्था दोषकालबलं प्रति ।**

**यस्यां कार्यमकार्यं स्यात्कर्मकार्यं विवर्जितम् ॥**

अर्थ—देश, काल, बल इनकी अवस्था देखके वैद्य रोगीको औषध देनेसे यदि विकृति देखे तो वह औषध वैद्यको त्यागदेनी चाहिये। इसका यह तात्पर्य है कि, बहुतसे रोगोंमें देश, काल और बलके अनुसार कोई करनेयोग्य



कार्यतो न करने योग्य होजाता है और न करनेयोग्य कार्य करनेयोग्य होजाता है । इस बातका विचार वैद्यको करलेना चाहिये ॥

अच्छेहोनेपरभीपथ्यकरनेकीआज्ञा ।

निवृत्तोऽपिपुनर्व्याधिः स्वल्पेनायातिहेतुना ।

दोषैर्मार्गीकृतेदेहेशेषः सूक्ष्मइवानलः ॥

अर्थ—दोषोंकरके रास्ता करी हुई देहमें दूरहुईभी व्याधि थोड़ेसेभी कुपथ्य करनेसे फिर लौट आती है, जैसे बहुत सूक्ष्म अग्निकी चिनगारी रहने पर फिर प्रज्वलित आग होजाती है ॥

कर्मदोषजऔरदोषजव्याधि ।

पुण्यैश्चभेषजैःशांतास्तेज्ञेयाः कर्मदोषजाः ।

विज्ञेयादोषजास्त्वन्येकेवलावायसंकराः ॥

अर्थ—जो व्याधि पुण्य और औषधों करके शांत होवे वो कर्म और दोषजन्य जाननी अन्य व्याधि केवल दोषजन्यही होती है और कोई २ मिश्रित व्याधि होती है ॥

दर्शनस्पर्शनप्रश्नेः परीक्षेतचरोगिणम् ।

रोगनिदानप्राप्त्यलक्षणोपशयाप्तिभिः ॥

अर्थ—दर्शन, स्पर्शन और प्रश्नसे, रोगीकी परीक्षाकरे तथा निदान, पूर्व-रूप, रूप, उपशय और समाप्ति इस निदानपंचक द्वारा रोगकी परीक्षा वैद्यको करनी चाहिये ॥

**अब रोगपरीक्षा करनेका क्रम लिखते हैं ॥**

वैद्यको उचित है कि, एक ऐसी पुस्तक बनावे कि, जिस्में ८ खाने हों । उनमें जिसरोगीका यत्नकरे उसकी व्यवस्था इस प्रकार लिखलिया करे।

१ पहले खानेमें रोगीका नाम तथा उपनाम लिखे ॥

२ दूसरेमें उसकी अवस्था लिखे ॥

३ तीसरेमें ज्ञाति और वर्णन तथा उसका रुजगार लिखे ॥

४ चौथेमें विवाहित है या फारा है यह लिखे ॥

५ पांचवेंमें उसका जन्म और वर्तमानमें रहनेका स्थान लिखे ॥

६ छठेमें रोगका नाम और उसके उत्पन्न होनेकी तिथिवार संवत् लिखे ॥

७ सातवेंमें रोगीके चिकित्सा आरंभका दिनलिखे ॥

८ आठवेंमें रोगीकी अवस्था आदि लिखनी ॥

अब लिखते हैं कि, वैद्यको रोगीसे यह पूछना चाहिये कि, तुम्हारे यह रोग कबसे हुआ है और उत्पन्न होनेमें इसकी क्या व्यवस्था थी अर्थात् यह रोग एकसाथ बढ़ा है या धीरेधीरे तथा किस प्रकार बढ़ा ॥

दूसरेवैद्यको पूछना कि, इसरोगीके कुलमें कोई पैतृज रोगती नहीं है तथा इसके माता पिताकी मृत्यु कौनसी अवस्थामें हुई और वो कौनसे रोगसे मरे ॥

तथा इसकी जठराग्नि कैसी है और शीतला, फेंफड़ेके रोग हुए होतो उनको भी पूछे तथा स्त्रियोंमें ऋतुका हाल पूछे अर्थात् ऋतु कुछ पीडाके साथ तो नहीं हो, एवं समय २ परहोता है कि, कुछ हेरफेरसे होता है और थोड़ाहीता है या अधिक ॥

फिर यह तलाशकरे कि, प्रथम यह रोग कैसे आया और किसकी दवाई करी उस दवाईने क्या फायदा और नुकसान करा ॥

फिर रोगीकी अवस्थाकी परीक्षा एवं मल, मूत्र, जिह्वा, श्वास, त्वचा, स्वर, नेत्र, मुख, बलाबल और नाडीआदि की परीक्षा सावधानीके साथ करे तो रोगका ज्ञान भलेप्रकार होवे इसमें संदेह नहीं है ॥

**औषधं मंगलं मंत्रमन्याश्चविविधाः क्रियाः ।**

**यस्यायुस्तत्रसिध्यन्ति नसिद्ध्यन्तिगतायुषि ॥**

अर्थ-औषधी मंगल ( स्वस्तिवाचन पुण्याहवाचनादि ) मंत्र और अनेकप्रकारकी क्रिया ( जादू टोना टोंटकाआदि ) ये सब जिसकी आयुवाकी है उसजगे चलती है औरगतायु मनुष्य परनहीं चले ॥

आरोग्यलक्षण ।

**मंगलाचारसंपन्नपरिवारस्तथातुरः । श्रद्धधानोऽनुकूलश्च प्रभूतद्रव्यसंग्रहः ॥ सत्वलक्षणसंयुक्तोभक्तिर्वैद्यद्विजातिषु । चिकित्सायामनिर्वेदस्तदारोग्यस्यलक्षणम् ॥**

अर्थ-मंगलाचारसंपन्न, परिवार ( कुटुंब ) के प्राणियों करके युक्त श्रद्धा-

वाला, अपने, अनुकूल वदतसा द्रव्यसंग्रहवाला, सत्वगुणी, वैद्य और ब्राह्मणोंका भक्त और चिकित्सामें अरुचि न लानेवाला, ऐसा रोगी होवे तो जानना कि, यह आरोग्य होयगा इसमें संदेह नहीं ॥

दीर्घतीव्रामयग्रस्तं ब्राह्मणं गामथापिवा ।

दृष्ट्वापथिनिरातंकमकृत्वाब्रह्महाशुचिः ॥

अर्थ—जो वैद्य, मार्गमें तीव्ररोगसे ग्रस्त ब्राह्मण अथवा गौको रोगी देखे उसकी बिर्ना चिकित्साकरे वैसेही चलाजावे उसको ब्रह्महत्याका पाप लगकर अपवित्र होता है ॥

॥ इति चिकित्सापादचतुष्टयवर्णनं समाप्तम् ॥



अथ

## ज्वरप्रकरणम् ।

शिष्य—रोग कितने हैं ?

गुरु—रोग असंख्यात अर्थात् बेशुमारी हैं, परंतु उसमेंसे मुख्य २ जो प्राचीन आचार्योंने संग्रह करे हैं उनको मैं कहता हूँ तू सुन ॥

रोगसंख्या हेमाद्रौ ।

ज्वरातिसारो ग्रहणीहृशौ जीर्णविषूचिका । सालसाच  
विलंबी च कृमिरुक्पांडुकामलाः ॥ हलीमकं रक्तपित्तं  
राजयक्ष्मा उरःक्षतम् । कासो हिका तथा श्वासःस्वर-  
भेदस्त्वरोचकः ॥ छर्दिस्तृष्णा च मूर्च्छा च तथापाना-  
त्ययादयः । दाहाख्यश्च तथोन्मादो ह्यपस्मारोऽनिला  
मयः ॥ वातरक्तमुरुस्तंभमामवातोऽथशूलरुक् । पक्तिजं  
शूलमानाहमुदावर्तोथ गुल्मरुक् ॥ रुद्रोगो मूत्रकृच्छ्रं च  
मूत्राघातस्तथाश्मरी । प्रमेहोमधुमेहश्च पिडिकाश्च प्रमे-  
हजाः ॥ मेदो दोषोदरं शोथो वृद्धिश्च गलगंडकः । गंड-  
मालापचीग्रंथीहृवुदं श्लीपदं तथा ॥ विद्रधिघ्नणशोथौ च  
द्वौत्रणौ भग्ननाडिकौ । भगंदरोपदंशौ च शूकदोषास्त्व-  
गामयः ॥ शतिपित्तमुदरंश्चोत्कोठकश्चाग्लापित्तकम् । विस-  
र्पश्च सविस्फोटस्तथैव च मसूरिका ॥ क्षुद्रास्यकर्णनासा  
क्षिशिरस्त्रीवालकामयाः । विपंचेत्ययमुद्देशः संग्रहोऽस्मिन्प्रकीर्तितः

अर्थ—१ ज्वर २ अतिसार (दस्तोंकी बिमारी) ३ संग्रहणी (पेचिस) ४ ववा-  
सीर ५ अजीर्ण (वदहजमीकारोग) ६ विशूचिका (हैजा) ७ अलस  
८ विलंबिका (ये दोनों रोग उसी हैजाके भेद हैं) ९ कृमिरोग (देहके

## आमव्याधिलक्षण ।

आलस्यतंद्राहृदयाविशुद्धिदोषाप्रवृत्त्याकुलमूलभावैः ।

गुरुदरत्वादरुचिसुप्तताभिरामान्वितव्याधिमुदाहरन्ति ॥

अर्थ—आलस्य, तंद्रा, हृदयकी विशुद्धि अर्थात् चित्तमे अस्वास्थ्य और मलमूत्रका अवरोध, पेटका भारीपना, अरुचि, अंगोका रहजाना, इत्यादि लक्षणोंसे आमयुक्त व्याधि जानना ॥

## उसकायत्न ।

आमंजयेल्लंघनकोष्णपेयाल्लघ्वन्नरूक्षोदनतित्तयूपैः ।

निरूहणैःस्वेदनपाचनैश्चसंशोधनैरूर्ध्वमधस्तथाच ॥

अर्थ—लंघन, मंदोष्णपेया, हलकेअन्न, रूखेअन्न, कहुपरस, मूंगका यूप आदि, निरूहवस्ती, स्वेदन, पाचन, रचन और वांति, इत्यादि उपायोंसे आमव्याधिका नाश करे ॥

## दोषत्रयकायत्न ।

कफंतुरिपुवत्तीक्ष्णैर्वातंस्नेहेनमित्रवत् ।

पित्तंजामातरमिव मधुरैःशीतलैर्जयेत् ॥

अर्थ—कफको शत्रुके समान तीक्ष्ण औषधोंसे जीते, वादीको मित्रके समान स्नेहनद्रव्य से जीते और पित्तको अपने जामाता (जमाई) के समान मधुर और शीतल पदार्थोंसे जीते ॥

## औषधकेनाम ।

भैषज्यंभेषजंजैत्रमगदोजायुरौषधम् ।

आयुर्योगोगदारातिरमृतंचतदुच्यते ॥

अर्थ—अब औषधके नाम कहते हैं जैसे—भैषज्य, भेषज, जैत्र, अगद, अजायु, औषध, आयुयोग, गदाराति और अमृत ये औषधके नामांतर हैं।

## औषधकेदोभेद ।

भेषजंद्विविधंचतत् ।

स्वस्थस्योजस्करांकिचित्किञ्चिदार्तस्यरोगनुत् ॥

अर्थ—अब कहते हैं कि, वह चिकित्सा अर्थात् औषध दो प्रकारकी है,

एक तो नैरोग्य पुरुषको तेज-( पुरुषार्थ ) के करनेवाली और दूसरी रोगीके रोगको नाश करनेवाली ॥

स्वस्थस्योजस्करयन्तु तदृष्यन्तद्रसायनम् ।

प्रायः प्रायेण रोगाणां द्वितीयं प्रश्नमे मतम् ॥

प्रायः शब्दो विशेषार्थोऽह्युभयं ह्युभयार्थकृत् ॥

अर्थ-अब दोनोंके भेदोंको, कहते हैं कि, जो स्वस्थ (नैरोग्य) पुरुषके तेज, बल, कांतिको बढावे वो वृष्य और रसायन है । ( वह इस चिकित्साखंडके अंतमें लिखेगे ) तथा दिनादिचर्याभी इसी ओजस्कर चिकित्सामें है यह प्रथम इस बृहन्निघंटुरत्नाकरके दूसरेभागमें लिख आये है । और दूसरी रोगीके रोगहरणकारी चिकित्सा है वह इसी चिकित्साखंडके प्रत्येक ज्वरादिरोगोंमें पृथक् २ लिखी जावेगी ॥ प्रायः यह शब्द विशेषार्थ वाचक है और उभयशब्द दोअर्थका वाचक है ॥

अभेपजंचद्विविधं बाधनं सानुबाधनम् ।

अर्थ-अभेपज ( अर्थात् जो औषध नहीं है ) वह दो प्रकारकी है एक-बाधन और दूसरी सानुबाधन ॥

अभेपजमितिज्ञेयं विपरीतं यदौषधम् ॥

अर्थ-जो औषधसे विपरीत कर्मकरे उसको अभेपज ऐसे वैद्य कहते हैं ॥

शिष्य-प्रथम ज्वर कहनेका क्या प्रयोजन है ? ॥

गुरु-यह संपूर्ण रोगोंका राजा है अतएव प्रथम हम ज्वराधिकार कोही वर्णन करते हैं जैसे लिखा है ॥

यतः समस्त रोगाणां ज्वरो राजेति विश्रुतः ।

अतो ज्वराधिकारोऽत्र प्रथमं लिख्यते मया ॥

अर्थ-संपूर्ण रोगोंमें ज्वर राजा है इस प्रकार सुना है अतएव प्रथम मैं इस जगे ज्वराधिकार लिखता हू तहां प्रथम ज्योतिषके मतको कहते हैं ॥

पूर्वजन्मकृतं पापं ग्रहरूपेण बाधते ॥

अर्थ-पूर्वजन्मके पाप इस प्राणीको ग्रहरूप होके बाधा करते हैं ॥

ग्रहेषु प्रतिकूलेषु नानुकूलं हि भेपजम् ।

तेभेपजानांवीर्याणिहरन्तिबलवन्त्यपि ॥

प्रतिकृत्यग्रहानादौ पश्चात्कुर्याच्चिकित्सितम् ॥

अर्थ—ग्रह ( सूर्यचंद्रादि ) के प्रतिकूल ( मारकादि ) होनेसे प्राणीको औषधी अनुकूल ( हितकारी ) नहीं होती, क्योंकि वो दुष्ट ग्रह बड़ी बलवान् औषधोंके वीर्यको हरण करलेते हैं इसीसे वैद्यको उचित है कि, प्रथम ग्रहोंको जप, दान, हवन पूजनादिसे शांति करके फिर चिकित्सा करे अत एव अब उन ग्रहोंके द्वारा ज्वर रोगका निर्णय कहते हैं ॥

ज्योतिः शास्त्रकाअभिप्राय ।

नीचस्थितस्य भानोर्दशाक्षिनाशो ज्वरः शिरोरोगाः ।

बंधनमहोअपीडाकुष्ठस्य च दर्शनं चिह्नम् । एवंक्षीणेन्दु-  
दशार्या परिचितनीयम् ॥

अर्थ—नीचस्थितसूर्यकी दशामे नेत्रनाश, ज्वर, मस्तकरोग, बंधन, महाभय, कोठ, रोग इत्यादि पीडाहोती है । इसीप्रकार क्षीणचंद्रकी दशामें भी रोगहोते हैं ॥

सुहृद्बंधुसमायोगो भूनिमित्तं कलिर्भवेत् । देहपीडाज्व-

रोव्याधिः शिखिमध्यगते बुधे । शनिरंतर्गतेप्येवम् ।

तद्वैकृतनिराकृतयेजपहोमादिकं कुर्यात् इति सारावल्याम् ॥

अर्थ—केतुकी दशामें बुधकीदशाआनेसे सुहृत् तथा बंधु इनका समागम और पृथ्वीके मध्ये झगडा, देहमें पीडा, ज्वर और व्याधि ये उपद्रव होते हैं । तथा शनीकी दशामें बुधकी दशा आनेसे उक्तफलहोता है उस पीडाके दूर करनेके निमित्त जपहोमादिक करे यह सारावली ग्रंथमें लिखा है ॥

ज्योतिषकल्पतरौ ।

हेलिः पित्तश्चन्द्रमाश्लेष्मवातौ भौमः पित्तोज्ञः त्रिदोष-

प्रधानः । जीवः श्लेष्माकारकोभार्गवस्तु वातश्लेष्मा-

भास्करिर्वातकारी ॥

अर्थ—अशुभ सूर्य पित्तके रोगोंको करे है, चंद्रमा कफवातके रोगोंको करे है, मंगल पित्तक, बुध त्रिदोष ( संनिपात ) के रोगोंको, बृहस्पति कफके

विकार, शुक्र वातकफके विकार, एवं अशुभ शनैश्चर वादीके रोगोंको अपनी दशांतर्दशामें कर्त्ता है ॥

ज्योतिषहरस्येऽपि ।

योचलीत्रिकभावेशोदशाश्चांतर्दशास्वपि ।

सूर्यभौमार्कभिर्विद्धःसभवेज्वरदायकः ॥

अर्थ-त्रिकभाव ६-८-१२ ) पण्डेश अष्टमेश और द्वादशेश इन तीनोंमें जो ग्रह बली होय वही अपनी दशा और अंतरदशामें सूर्य, मंगल और शनीश्चर करके विद्ध होवे तो ज्वरको प्रगटकरे है ॥

यैदृष्टोरिषुभावेशस्तत्तत्प्रकृतिजैर्गुणैः ।

ज्वरकृत्स्वदशामध्यवातपित्तकफादिकैः ॥

अर्थ-पण्डेशको जो जो ग्रह देखते हैं और उनकी जैसी २ प्रकृति है उसके माफिक अपनी २ दशामें वात, पित्त और कफादिजन्य ज्वरको प्रगट करते हैं ॥

पैशाचिकज्वरकायोग ।

रिषुभावेशरोहणोराहुकेतुशनैश्चरैः ।

दृष्टोवाव्ययभावेशो ज्ञेयःपैशाचिकज्वरः ॥

अर्थ-पण्डेशको अथवा ध्ययेशको राहु केतु और शनैश्चर देखते होवें तो उस प्राणीकी पैशाचिक अर्थात् भूतबाधाका ज्वर जानना ॥

खेदज्वरकायोग ।

मार्गाधीशोथबलवान्राहुकेतुशनैश्चरैः ।

दृष्टेखेदज्वरोज्ञेयइत्याहभगवान्भृगुः ॥

अर्थ-मार्गाधीशबली यदि राहुकेतु और शनैश्चर करके धीक्षित होवे तो उस प्राणीके खेदज्वर होवे इस प्रकार भृगुऋषिने कहा है ॥

ज्वरद्वारामृत्युकायोग ।

अष्टमेशोयदाभौमोलग्नेशेनेत्यशालवान् ।

पित्तराशिगतौतौचेज्ज्वरेणमृतिमादिशेत् ॥

अर्थ-मंगल यदि अष्टमेशहोके लग्नेशके साथ इत्यशाल योग करता हो तथा अष्टमेश और लग्नेश दोनों पित्तराशिके होवे तो उसप्राणीकी ज्वररोगसे मृत्यु होवे ॥



औषधजन्यज्वरयोग ।

प्रश्रलग्रेपित्तराशौ रोगेशेन समन्वितः ।

औषधाज्ज्वररोगः स्यादथवा वैद्यचापलात् ॥

अर्थ—प्रश्रलग्रमे पित्तराशिहो और रोगेश (पण्डेश) करके युक्त होवे तो उस रोगीको औषधसे ज्वर जानना अथवा वैद्यकी चपलतासे ज्वर जानना ॥

भीतिज्वरयोग ।

भयाधीशदयाधीशावेकस्मिन् भवने बली ।

चंद्रमाबुधसंयुक्तो भीतिज्वरयुतो नरः ॥

अर्थ—भयाधीश और दयाधीश दोनों बलवान् होकर एकवरमें बैठे हों और चंद्रमा तथा बुधयुक्त होवे तो उस प्राणीको भीतिज्वर जानना ॥

शापज्वरयोग ।

धर्मे शः पृष्ठभने पण्डेशेन समन्वितः ।

रिपुदृष्ट्या चेत्यशाली शनिना शापतो ज्वरः ॥

अर्थ—धर्मे श छठे घरमें पण्डेशकर्के युक्त होवे, तथा रिपुदृष्टिकरके शनैश्चरसे इत्यशाल करता होवे तो उस प्राणीको शापजनित ज्वर जानना ॥

यमघटयोग ।

आदित्ययोगेन मघाविशाखाचंद्रेण युक्ता कुजार्द्रया तु ।

मूलं प्रबुद्धे गुरुकृतिका च शुक्रेण रोहिण्यसितेन हस्तः ॥

एतान्वदंति निपुणाय मघं टयोगान् व्याधिप्रपन्नमनुजो य-

दिपुण्ययोगात् । संजायते मुदितमेव इति ॥

अर्थ—रविवारको मघानक्षत्र, सोमवारको विशाखानक्षत्र, मंगलवारको आर्द्रानक्षत्र, बुधवारके दिन मूलनक्षत्र, गुरुवारको कृतिकानक्षत्र, शुक्रवारको रोहिणी और शनिवारको हस्त नक्षत्र, होनेसे यमघटसंज्ञक योग होता है यदि इस योगमें मनुष्य रोगी होवे पुण्ययोगसे कदाचित् अच्छा होता है ॥

सुखयोग ।

दिनकरकरयुक्तः सोमसौम्येन वापितुरगसहितभौमः

सोमपुत्रेऽनुराधा । सुरगुरुरपिपुष्येरेवतीशुक्रवारेदिन-  
करसुतयुक्तोरोहिणीसौख्यहेतु ॥

अर्थ—रविवारमें हस्तनक्षत्र, चंद्रवारमें मृगशिरनक्षत्र, मंगलवार अश्वि  
नीनक्षत्रयुत बुधवार अनुराधानक्षत्र करके युक्त, बृहस्पति पुष्यनक्षत्रयुत,  
शुक्रवार रेवतीनक्षत्रयुत और रोहिणीनक्षत्रयुत शनिवार होवे वह सौख्य  
योग है यदि इस योगमें रोगी बिमारहोवे तो शीघ्र आराम होवे ॥

अथनक्षत्रयोगेनज्वरव्याधिःप्रजायते ।

साध्यासाध्यंचयाप्यंचवक्ष्यामिशृणुपुत्रक ॥

अर्थ—अब नक्षत्रयोगसे जो साध्यासाध्य और असाध्य रोग प्रगट होतेहैं  
उनको हे पुत्र ! मैं तेरे आगे कहता हूं सुन ॥

असाध्यनक्षत्र ।

मघा भरणिहस्तेषु मूलेष्वज्वरतोपिवा ।

मृत्युमापद्यते सोऽपि नात्रकार्याविचारणा ॥

अर्थ—मघा, भरणी, हस्त और मूल इन नक्षत्रोंमें यदि मनुष्य ज्वर-  
पीडित होवेतो अवश्य मृत्युको प्राप्त होवे ॥

साध्यनक्षत्र ।

अश्विनीरोहिणीपुष्ये मृगज्येष्ठापुनर्वसौ ।

एते सध्यास्तु विज्ञेया ज्वरिणांच विशेषतः ॥

अर्थ—अश्विनी, रोहिणी, पुष्य, मृगशिर, ज्येष्ठा, पुनर्वसु इतने नक्षत्र  
ज्वररोगीको साध्य हैं ॥

कष्टसाध्यनक्षत्र ।

पूर्वात्रयं स्वातितथापि चित्रात्रयोत्तरा वाश्रवणं धनिष्ठा ।

मूलं विशाखा सह कृत्तिकाभिः साप्योनुराधा सह ज्ये-

ष्ठया च ॥ एते सकष्टाः सहपीडितानां ऋक्षस्तु याप्यं

कुरुते नरस्य ॥ तस्मात्तुविज्ञायबुधश्चसम्यक्कुरुजांवि-

नाशंप्रतिकर्मभिश्च ॥

अर्थ—पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ और पूर्वाभाद्रपद, स्वाति, चित्रा,  
तीनों उत्तरा, श्रवण, धनिष्ठा, मूल, विशाखा, कृत्तिका, अश्लेषा, अनुराधा

और ज्येष्ठा ये नक्षत्र रोगीको कष्टसाध्य और याप्यकर्ता है [ तहां कोई नक्षत्र कष्टसाध्य और कोई नक्षत्र याप्य जानना ] इसीसे यह वैद्य प्रथम शुभाशुभ नक्षत्रोंको विचारके फिर रोगनाशक औषधी देवे ॥

कष्टावली ।

अश्विन्यां चैकरात्रं तु भरण्यां मृत्युमादिशेत् । कृत्तिका-  
नवरात्रं तु रोहिण्यां तु दिनत्रयम् ॥ अश्विनीष्वपिपट्परात्रं  
सुखं भवति देहिनाम् । यमदैवे समुद्दिष्टं मरणं पंचमे  
ऽहनि ॥ कृत्तिकासुगृहीतस्य सप्तरात्रं भवेज्वरः ।  
न मुंचेद्यदि सप्ताहादेकविंशतिमे सुखम् ॥ अत ऊर्ध्वं  
विपद्येत त्रिपक्षात्संशयो भवेत् ॥ रोहिण्यामष्टरात्रेण  
मुच्येदेकादशेहनि ॥ मृगेण षडहं ज्ञेयं नवरात्रमथापि  
वा । आर्द्रया मुपसंसृष्टं पंचाहान्मृत्युमादिशेत् ॥  
ऊर्ध्वं यद्यपि वर्तेत त्रिपक्षात्संशयो भवेत् ॥ पुनर्वसूप-  
सृष्टस्तु ज्वरेण परिपीडितः । त्रयोदशाहान्मुच्येत  
सप्तविंशेऽथवा हनि ॥ पुष्ये त्रिरात्रं ज्वरितं सप्तरात्रान्नि-  
वर्तते । नवरात्रं तथाश्लेषा मघाचेति यमालयम् ॥

अर्थ—अश्विनी नक्षत्रमें प्रगटहुआ रोग १ रात्रि रहता है । भरणी नक्षत्रमें प्रगटहुआ रोग मृत्यु करता है। कृत्तिका नक्षत्रमें प्रगटहुआ रोग नौ रात्रि रहे। रोहिणीमें तीनदिन जानना । अथवा अश्विनीमें प्रगट हुआ रोग छः रात्रि रहकर फिर आनंद होता है और भरणीमें प्रगटहोनेसे पांचमें दिन रोगीका मरणहोवे । कृत्तिकामें हुआ ज्वर सातरात्रि रहता है । यदि सातदिनमें अराम न होयतो फिर २१ दिनमें सुखहोवे । यदि इक्कीसदिनकेभीबाद आराम न होवे तो वह रोगी १॥ महीनेमें वचे अथवा मरजावे। रोहिणी नक्षत्रमें आठदिन रहकर ११ दिनमें रोगशांत होवे । मृगशिरमें छः दिन रहे अथवा नौ रात्रिमें उतरे । आर्द्रामें हुआ रोग पांचदिनमें मरणकरे। यदि पांचदिनके उपरांत रोगी बचजावे तो १॥ महीनेमें संशय कारक होता है पुनर्वसुमें हुआ ज्वर १३ दिनमें छूटे अथवा २७ वें दिन ज्वर रहितहोवे। पुष्यनक्षत्रमें प्रगटहुआ ज्वर तीन रात्रि रहे फिर क्रम २ से घटके सातवें

दिन मुक्तहोवे । श्लेपानक्षत्रमें ज्वर ९ रात्रिरहे । और मघानक्षत्रमें रोगहोनेसे रोगीका मरण होय ।

अश्लेपासुभवेन्मृत्युर्दीर्घकालक्रमादथ । मघासुद्वादशा-  
हेनमृत्युर्भवतिदेहिनः ॥ ऊर्ध्वयातिमचायांतुपुनरेवसु  
खीभवेत् । पूर्वाभासत्रयज्ञेयंउत्तरापंचकत्रयम् ॥ पूर्वात्र  
येत्रयोमासाः शुभाः ज्ञेयामनीपिभिः । पूर्वासुचोपसृष्ट-  
स्यफाल्गुनीषु भवेदश ॥ उत्तरासुतथाष्टौचनवरात्रमथा  
पिवा । एकविंशतिरात्राद्वाज्वरश्चेत् सौख्यमृच्छति ॥  
एतेपांतुर्यगेचांशेयदिरोगस्तदामृतिः ॥

अर्थ—श्लेपानक्षत्रमें रोगहोनेसे बहुतदिनमें मृत्युहोवे । मघानक्षत्रमें १२ दिनसे मरे । यदि १२ दिनसे उपरांत बच जावे तो फिर सुखी होय । पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ और पूर्वाभाद्रपद इनमें हुआ रोग तीन महीनेरहे और अच्छा होजावे । ५० फा० नक्षत्रमें हुआरोग १० रात्रिरहे । ३० फा० नक्षत्रमें आठरात्रि अथवा नौरात्रि रहे अथवा २१ रात्रिरहकर फिर आनंद होवे यदि उक्तनक्षत्रोंके चतुर्थ पादमें रोग होयतो रोगी निश्चय मरे ॥

हस्तेनप्रथमेमोक्षश्चित्रायामष्टमेहनि । स्वातिः षोडशरा-  
त्रंतुविशाखाविशरात्रिकम् ॥ स्वातियोगेदशाहेनमुच्येतप-  
क्षत्रयेणवा । विशाखासुभवेन्मृत्युरेकविंशतिमेहनि ॥  
चानुराधापक्षमेकं ज्येष्ठांदशदिनानितु । ज्वरस्तुदिवसा  
नष्टावनुराधासुवर्त्तते ॥ अतऊर्ध्वतुमुक्तिः स्यान्नास्ति त  
स्यचिकित्सितम् ॥

अर्थ—हस्तनक्षत्रमें प्रथमदिनही रोगसे मुक्त होजावे । चित्रानक्षत्रमें आठवेंदिन । स्वातिनक्षत्रमें आठ रात्रिमें । विशाखानक्षत्रमें बीसदिनसे रोगमुक्तहोवे । अथवा स्वातिनक्षत्रमें १० दिनसे अथवा १॥ महीनेमें छूटे । विशाखामें २१ दिनसे मृत्यु होय । अनुराधानक्षत्रमें १५ दिनसे । ज्येष्ठानक्षत्रमें दशदिनसे रोगमुक्त होवे अनुराधानक्षत्रमें प्रगटहुआ ज्वर आठदिनरहे । यदि आठदिनसे ज्यादा ज्वर रहे तो उस रोगीका मरण होवे उसका यत्नही है ॥

ज्येष्ठायांपंचमेष्ट्यरूध्रवाद्वादशात्मखम् । मूलेनचोप  
सृष्टस्यदशरात्रंभवेज्ज्वरः ॥ तदूर्ध्ववर्तमानस्यचैकविंशे  
भवेत्सुखम् । पूर्वापाठ्यांतुनवमेहानि रोगात्प्रमुच्यते ॥  
उत्तरासुत्वपाढासुमांसंक्लिश्यत्यसंशयः । अष्टौवानवमा-  
सानांततोऽस्यसुखामादिशेत् ॥ श्रवणेनाष्टरात्रंतुक्लिश्य  
तेज्वरपीडितः ॥

अर्थ-ज्येष्ठानक्षत्रमें पांचवेदिन मृत्युहो, यदि बच जावे तो १२ दिनमें  
सुखहोवे । मूलनक्षत्रमें प्रगटहुआ ज्वर दशरात्रि पर्यंत रहता है । यदि-  
दशरात्रिमें रोग नहटेतो २१ दिनमें सुखी होय । पूर्वापाठनक्षत्रमें यदि  
रोग प्रगट होवे तो नौमेंदिन अच्छा होय । उत्तरापाठमें रोगोत्पन्न हुआ  
१ महीने पर्यंत कष्टकारक जानना फिर आठ महीनेमें या नौ महीनेमें  
रोगशांति होवे और श्रवणनक्षत्रमें यदि ज्वर प्रगट होवे तो वह रोगी  
आठरात्रिपर्यंत क्लेशित रहता है ॥

मासत्रयंधनिष्ठासुशतभिपकृदिनविंशकम् । नवरात्रंपूर्वा-  
भाद्रेउत्तरापंचकत्रयम् ॥ दशाहरेवतीपीढासुच्यतेव्या-  
धिभिस्ततः । दशरात्रंधनिष्ठासुज्वरोभवतिदेहिनाम् ॥  
पढात्राद्वादशाहंवाभवेच्छतभिपासुच । तथाभाद्रप-  
देष्वेवपूर्वासुमरणंध्रुवम् ॥ उत्तरासुभवेन्मोक्षोदिवसेऽर्द्ध-  
चतुर्दशे । चतुरात्राष्टरात्रंवारेवत्यांवर्ततेज्वरः ॥

अर्थ-धनिष्ठानक्षत्रमें प्रगटहुआ रोग तीनमहीने रहता है । शतभिपा-  
नक्षत्रमें बीसदिन । पूर्वाभाद्रपदनक्षत्रमें उत्पन्नहुआ रोग नौरात्रि रहता  
है । उत्तराभाद्रपदमें प्रगट हुआ रोग १५ दिन रहता है । रेवतीनक्षत्रमें  
प्रगट हुई पीडा दशदिन रहकर नष्टहोती है । धनिष्ठानक्षत्रमें ज्वररोग  
होयतो दशरात्रिरहे। शतभिषानक्षत्रमें छःरात्रि अथवा चाररात्रिरहे पूर्वा-  
भाद्रपदमें ज्वर प्रगट होयतो रोगी मरो। उत्तरा भाद्रपदमें ७दिनरहे। एवं रेव-  
तीनक्षत्रमें यदि ज्वर होवे तो चाररात्रि अथवा आठरात्रि पर्यंत रोग रहता है ॥

अदिवनी ।

अश्विन्याःप्रथमेपादेनवरात्रंप्रकीर्तितम् । द्वितीयेपूर्ण-

**माख्यातंतृतीयेसप्तवासराः । संप्रोक्तावासराःपूर्णाश्चतु-  
र्थेह्येकविंशति ॥**

अर्थ—अब नक्षत्रके प्रत्येक चरणका फल कहते हैं । तहां अश्विनीनक्षत्र-  
के प्रथम पादमें रोग होवे तो नौरात्रिरहे । दूसरेमें होयतो मृत्युकरे ।  
तीसरेपादमें होयतो सातदिन रहे और अश्विनीके चतुर्थपादमें हुआ रोग  
२१ दिनपर्यंत रहता है ॥

**भरणी ।**

**भरण्यांप्रथमेपादेचैकादशदिनानितु । द्वितीयेचत्वारिं-  
शचतुर्तीयेपूर्णमादिशेत् ॥ चतुर्थेरुद्रसंख्याकंदिनसं-  
ख्याप्रकीर्तिता ॥**

अर्थ—भरणीके प्रथमपादमें हुआ रोग ११ दिनरहे, दूसरेमें ४० दिन  
तीसरेमें मृत्यु और चतुर्थपादमें होवेतो १० दिन रोग रहता है ॥

**कृत्तिका ।**

कृत्तिका नक्षत्रके प्रथम चरणमें पित्तजन्यज्वर उत्पन्न होवेतो वो दश-  
दिनरहे।दूसरे चरणमेंभी दशहीदिन रहे।तीसरेचरणमें होयतो पाँच दिनरहे  
**रोहिणी ।**

रोहिणीके प्रथम चरणमें ९ रात्रि पीडारहे । दूसरे चरणमें १८ दिनरहे ।  
तीसरेचरणमें दशरात्रि पीडा जाननी ॥

**मृगशिर ।**

मृगशिरनक्षत्रके प्रथम चरणमें ७ दिन पीडारहे । दूसरेचरणमें १२ दिन-  
रहे । तीसरेचरणमें २५ दिनपीडा रहती है ॥

**आर्द्रा ।**

आर्द्रानक्षत्रके प्रथमचरणमें १५ दिन।दूसरे चरणमें १२ दिन और  
तीसरे चरणमें पीडा होय तो रोगीकी मृत्यु होय ॥

**पुनर्वसु ।**

पुनर्वसनक्षत्रके प्रथम चरणमें ज्वर होयतो १५ दिनरहे । दूसरेमें ७  
दिन और तीसरे चरणमें होयतो २५ दिन पीडारहे ॥

पुण्य ।

पुण्यनक्षत्रके प्रथम चरणमें ७ दिन पीडा रहे । दूसरेमें २० दिन और तीसरेमें २१ दिन पीडा रहती है ॥

अश्लेषा ।

अश्लेषाके प्रथम चरणमें ज्वर होयतो तीन महीने रहे और रोगी कष्टसे जीवे । दूसरेमें तथा तीसरेमें रोगीकी मृत्यु होय ॥

मघा ।

मघाके प्रथम चरणमें ७ रात्रि पीडारहे । दूसरेचरणमें २७ दिन और तीसरे चरणमें ३० दिन पीडा रहती है ॥

पूर्वाफाल्गुनी ।

पूर्वाफाल्गुनीके प्रथम चरणमें ५ रात्रि पीडा रहती है । दूसरेमें १२ दिन और तीसरे चरणमें १ महीनेके बाद रोगी मरे ॥

उत्तराफाल्गुनी ।

उत्तराफाल्गुनीके प्रथम चरणमें १४ दिन पीडारहे । दूसरेमें सातरात्रि और तीसरे चरणमें ९ दिन पीडारहती है ॥

हस्त ।

हस्तनक्षत्रके प्रथमचरणमें रोग होवेतो ७ रात्रिरहे । दूसरेमें होयतो ४ दिन रहे और तीसरेमें होवेतो ५ दिन पीडा रहती है ॥

चित्रा ।

चित्राके प्रथमचरणमें व्याधि होनेसे रोगीकी मृत्युहोवे । दूसरे चरणमें तीन महीने रोगीरहे और तीसरेचरणमें १३ दिन रोग रहता है ॥

स्वाति ।

स्वातिके प्रथम चरणमें रोग होवेतो २७ दिनरहे । दूसरे चरणमें बीस दिन और तीसरे चरणमें रोग होयतो मृत्युहोय ॥

विशाखा ।

विशाखाके प्रथम चरणमें व्याधि होनेसे ४८ दिनरहे । दूसरे चरणमें होयतो बारह दिन रहे और तीसरे चरणमें भी १२ दिन पीडा रहती है ॥

अनुराधा ।

अनुराधाके प्रथम अंशमें पीडा उत्पन्न होयतो ७ दिन । दूसरेमें १५ दिन और तृतीयचरणमें ६४ दिन पीडा रहती है ॥

## ज्येष्ठा ।

ज्येष्ठाके प्रथम चरणमें रोग होनेसे तीन महीने पीडा रहे । दूसरेमें १६ दिन तथा तीसरेमें मृत्युहो ॥

## मूल ।

मूलनक्षत्रके प्रथम द्वितीय तृतीय चरणमें रोग होनेसे १५ दिन पर्यंत पीडा रहती है ॥

## पूर्वाषाढ ।

पूर्वाषाढके प्रथम चरणमें रोग होनेसे ३ महीने पीडा रहे । दूसरेमें १६ दिन और तीसरे चरणमें मृत्यु होवे ॥

## उत्तराषाढ ।

उत्तराषाढनक्षत्रके प्रथम चरणमें रोग होयतो १५ दिन रहे । दूसरेमें १२ दिन और हे महामुने ! तीसरे चरणमें रोग होयतो २० दिन रोग रहे ॥

## श्रवण ।

श्रवणके प्रथम चरणमें ७ दिन, दूसरेमें २० दिन और तीसरे चरणमें १६ दिन रोग रहे है ॥

## धनिष्ठा ।

धनिष्ठाके प्रथम चरणमें २० दिन रोग रहे । दूसरे चरणमें ६० दिन तथा तीसरे चरणमें रोग होवेतो १६ दिन रहता है ॥

## शतभिषा ।

शतभिषाके प्रथम चरणमें रोग होवेतो १॥ महीने घोर दुःखः देवे, दूसरेमें छः महीने और तीसरे चरणमें रोग होनेसे १६ दिन पीडा रहती है ॥

## पूर्वाभाद्रपद ।

पूर्वाभाद्रपदके प्रथम, द्वितीय और तृतीय चरणमें रोग होनेसे मृत्यु होवे ॥

## उत्तराभाद्रपद ।

उत्तराभाद्रपदाके प्रथम चरणमें रोग उत्पन्न होनेसे १५ दिन पीडा रहे । दूसरे चरणमें २८ दिन दुःख रहे और तीसरे चरणमें होनेसे १५ दिन रोग रहता है ॥

## रेवती ।

रेवतीनक्षत्रके प्रथम चरणमें रोग उत्पन्न होनेसे ८ दिन पीडा रहे ।



दूसरे चरणमें होवेतो १६ दिन दुःखीरहे और तीसरे चरणमें रोग होनेसे १० दिन पीडा रहे पश्चात् शांति होती है ॥

एवंज्ञात्वानरः सम्यक्कुर्यात्प्रशमनक्रियाम् ।

नक्षत्रस्यत्रयोभागारात्रेयेणप्रकीर्तिताः ॥

अर्थ—इसप्रकार नक्षत्रके और नक्षत्रके चरणोंका शुभाशुभविचारके शास्त्रोक्त ( जो आगे कहते हैं ) उस शांतिकर्मको करे, यद्यपि नक्षत्रके चार चरण होते हैं, परंतु यहाँ पर आत्रेयमहर्षिने तीनही चरणका फल कहा है चतुर्थ चरणका फल जो संपूर्ण रोगका प्रथम कहा है वह जानना ॥

अवनक्षत्रहवनकीविधि कहतेहैं—तहांप्रथम ।

समिधा ।

आक, खैर, ढाक, बेर, नीम, दूब, छोंकरा, कुश, काश, पीपल, बड, जटामांसी, जामुन, आम, सोमबल्कल, बहेडा, चंदन, अरनी, अगरवृक्ष, कदसरैया, सतावरी, सर्वांपधी, हलदी, दारुहलदी ये सब होमकरनेके लिये समिधा हैं ॥

परंतु राजनिघंटुमें सत्ताईस नक्षत्रोंके सत्ताईस वृक्ष कहे हैं उनकी समि लेनी चाहिये ॥

गंध ।

चंदन, लालचंदन, गौरीचन, हरदी, गेरू, नीब, बेल, पतंग, कदंब, केशर, कस्तूरी, कपूर, श्रीपणी, देवदारु, पीतचंदन, पन्नाख, दारुहलदी, अगर, सीसों और ढाक ये गंध द्रव्य है ॥

फूल ।

कमल, बेल, तुलसी, दूब, कुश, अरनी, छोंकराके पत्ते, आक, ढाक, इनके फूलले ॥

धूपदीपादि अलंकारोंसे वास्तुमंडल अलंकृत करके ईशानादिक्रमसे नवग्रहोंको स्थापनकरे । तथा नक्षत्रोंको स्थापनकरे, प्रथम सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु, केतु इनका पूजन करके क्रमसे इनकी समिधाका हवन करे फिर समिधाओंके दही, शहत, घृत इनमें डबी २ के अश्विन्यादि नक्षत्रोंका हवन करे ॥

तहां आककी समिधा लेकर, ' इदमश्विनो' इस मंत्रसे तथा 'विष्णो-  
रराट' इन मंत्रोंसे अश्विन्यादि नक्षत्रोंका हवनकरे ॥

' इदंभरण्यो' और 'मधुमाध्वी' इसमंत्रसे बेरकी समिधा भरणीनक्ष-  
त्रकी शांतिके अर्थ हवनकरे ॥

' कांडात् कांडात् ' इस मंत्रसे नीमकी समिधा कृतिकानक्षत्रकी  
शांतिके अर्थ हवनकरे, एवं दूर्वा ( दूब ) कुशा, इनकी समिधासे रोहिणी  
मृगशिर आर्द्रा आदि नक्षत्रोंकी शांत्यर्थ हवनकरे इसी प्रकार सब नक्ष-  
त्रोंका हवन पृथक् २ है सो शातिसार, शांतिकमलाकर, शांतिमयूख,  
आदि ग्रंथोंमें देखो ॥

फिर घृतसे पूर्णाहुती करे और ग्रहोंको अभिषेकस्नान करावे । फिर  
रोगीको भस्मस्नान और मंत्रस्नान कराय सपेद कपड़े पहिनायके उस  
यज्ञमें बैठाले वे वेदोक्त मंत्रोंसे उसका मार्जन करे तथा अपामार्जनसे  
उसे मार्जित करे आशीर्वाद देवे । पश्चात् वह रोगी गोदान, वस्त्रदान,  
पृथ्वीदान आदि यथाशक्त्यनुसार करे इस प्रकार हवन करे तो सर्वग्रह  
नक्षत्र और योगोंकी शांति होवे ॥

## ज्वररोगका कर्मविपाक ।

यथाशास्त्रं तु निर्णीतं यथाव्याधिचिकित्सितः ।

न शमं याति यो व्याधिः स ज्ञेयः कर्मजो बुधैः ॥

अर्थ—जिस व्याधिका शास्त्रानुसार निर्णयकर उस व्याधिके अनुसार  
चिकित्सा करी फिरभी न शांतिहोवे उस व्याधिको पंडितजन कर्मज जाने

जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते ।

तच्छांतिरौषधैर्दानैः जपहोमसुरार्चनैः ॥

तस्मात्कर्मविपाकोक्तप्रायश्चित्तादिसाधनैः ।

पूर्वपापक्षयात्क्षिप्रं व्याधिः शाम्येदसंशयम् ॥

अर्थ—जन्मान्तरमें किया हुआ पाप इस देहमें रोगरूपहोकर दुख देता है  
उसकी शांति औषधदान दिव्यौषधधारण दानकरना जप होम और देवता

ओंका पूजन इन कारणोंसे होती है। इसीसे कर्मविपाकोक्त प्रायश्चित्तादि साधनों करके पूर्वजन्मोपार्जित पापोंके शांति होनेसे रोग निःसंदेह शीघ्र शमनहो जाते हैं । इसीसे पूर्वजन्मजनितपाप परिपाकसे उत्पन्न ज्वरके हेतु और उनका यत्न कहते हैं ॥

येसंपूर्ण प्रायश्चित्त रोगानुसार बड़ा और छोटा करे और इनमें वित्तशा-  
ठ्य नकरे अर्थात् जिसकी दशरूपे लगानेकी सामर्थ्य है यदि वो एकरूपा या  
दो रूपाही लगावे तो वो वित्तसाठ्य कहलाता है ऐसा करनेसे वो फलीभूत  
नहीं होता है और न रोग शमनहो इसवास्ते अपनी सामर्थ्यके अनुसार  
प्रायश्चित्त करे और जो असामर्थ्य है उसको ऋण लेकर प्रायश्चित्त नहीं करना  
किंतु अपनी देहसे जो धनसके उसको जैसे विष्णुसहस्रनामका पाठ, गाय-  
त्रीजप और मनसे परमात्माका ध्यानआदि ॥

सर्वज्वरेकर्मविपाकमाह ।

देवस्वहरणाच्चैव जायते विविधो ज्वरः । ज्वरो महाज्वर-  
श्चैव रौद्रो वैष्णवएव च ॥

अर्थ—अब सर्वज्वरका कर्मविपाक कहते हैं । जैसे देवद्रव्य हरण कर-  
नेसे अनेक प्रकारका ज्वर प्रगट होता है उन्हींमें उष्णज्वर शिवसे और  
महाज्वर ( शीतज्वर ) विष्णुभगवान्से, प्रगट हुआ है ॥

अथास्यशांतिः ।

ज्वरे रुद्रजपं कुर्यान्महारुद्रं महाज्वरे ।

महारुद्रं जपेद्रौद्रे वैष्णवे तद्वयं जपेत् ॥

अर्थ—ज्वरके दूर करनेकी रुद्रजप और महाज्वर दूर करनेकी महारुद्रजप  
कराना चाहिये । रुद्रज्वरवालेको महारुद्र और वैष्णवज्वरमें रुद्र और  
महारुद्र दोनोंकी जप करावे ॥

गार्ग्यः ।

ये पुनः पूर्वजन्मनि क्रूराः पिशुनाः ततस्तेऽन्यजन्मनि

सततं ज्वरिणः स्युः ॥

अर्थ—गर्गऋषिका पुत्र लिखता है कि, जो मनुष्य पूर्वजन्ममें क्रूर तथा  
पिशुन ( चुगली करनेवाले ) होते हैं, वो उस पापकरके इस जन्ममें सत-  
तज्वरी होते हैं ॥

शीतज्वरकाकर्मविपाक ।

ये पुनः क्रूरकर्माणः पापाः पिशुनचेतसः ।

ते भवेयुः सदाशीतज्वरवंतस्तदेनसा ॥

अर्थ—जो कोई क्रूरकर्म करनेवाले, पापी, चुगलखोर हैं वो पुरुष सदैव शीतज्वरसे पीड़ित होते हैं ॥

उसकाशमन ।

शांतयेऽद्युतसंख्याकं प्रकुर्यात्प्रयतो जपम् । जातवेदसमं-

त्रेण ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः ॥ सुरामांसोपहाराद्यैर्बालैः

सर्वत्र शस्यते ॥ सहस्रकलशस्नानं शतभोजनमेव च ॥

शीतज्वरे पुनः कुर्यादभिषेकं हरेर्बुधः ॥

अर्थ—ऊपर कहे हुए शीतज्वरकी शांति करनेको (जातवेदसे) इस मंत्रको दशहजार जप करावे और ब्राह्मणभोजन करावे अथवा मद्यमांस इनकी बलिदानदे किंवा सहस्रकलशाभिषेक करे और १०० ब्राह्मणोंको भोजन करावे अथवा श्रीविष्णुभगवान्का अभिषेक करावे ॥

सहस्रकलशस्नानं रुद्रेणेशस्य कारयेत् ।

ब्राह्मणान्भोजयेच्छतयाजपेद्वै जातवेदसम् ॥

अर्थ—अन्यत्रभी लिखा है कि, शिवका रुद्रीसे सहस्र कलशाभिषेक करावे तथा यथाशक्ति ब्राह्मणभोजन करावे और 'जातवेदसे' इस मंत्रका जप करावे ॥

ज्वरवालेके दैविकउपचार ।

वेदानां श्रवणं हितस्यचरणं विप्रस्यसंतर्पणं कृष्णस्यस्म-

रणं शुभस्यकरणं द्रव्यस्यसंतर्पणम् । अश्वत्थभ्रमणं

सुरत्नधरणं दीनस्य संरक्षणं हन्यादष्टविधं ज्वरं कुसुदिनी-

नाथो यथोग्रंतपः ॥

अर्थ—अब ज्वरवान्को दैविक यत्न कहते हैं जैसे कि, वेदश्रवण, हिताचरण, ब्राह्मणभोजन, कृष्णका स्मरण, शुभकार्य, द्रव्यदान, पीपलकी मृद-

क्षिणा, उत्तमरत्नोंका धारण तथा दीनजनोंका पोषण ये उपचार अष्टविध ज्वरोंको जैसे चन्द्रमा घोर अंशुकारका नाश करता है उसी प्रकार नाश करे।

**सहस्रनेत्रस्य सहस्रबाहोः सहस्रवक्त्रस्य सहस्रमूर्धः ।**

**सहस्रपादस्य सहस्रनाम्नां सहस्रनाम्नां पठनं ज्वरघ्नम् ॥**

अर्थ—नेत्र, बाहु, मुख, मस्तक, पैर, हस्तादिअंग तथा उसीप्रकार नाम ये जिसके अनेक हैं ऐसे देवका सहस्रनाम ( विष्णुसहस्रनाम ) पाठ करे तो ज्वर दूर होवे ॥

**गणेश्वरो वा गरुडेश्वरो वा गौरीश्वरो वा दिवसेश्वरो वा ।**

**महेश्वरो वा कुलदेवतं वा तत्पूजनं तज्ज्वरिणां प्रशस्तम् ॥**

अर्थ—गणेश, विष्णु, शिव, गौरी, ( दुर्गा ) सूर्य अथवा कुलदेव इनका पूजन ज्वरवालेको हितकारी है ॥

**मंगलेषु च कार्येषु सततं कोपवात्ररः ! उष्णज्वराभिभूतः**

**स्यात्तस्य पापापनुत्तये ॥ सहस्रकलशस्नानं रुद्रेणेशस्य कारयेत् ।**

**ब्राह्मणान् भोजयेच्छतयाजपे द्वैजातवेदसम् ॥**

अर्थ—जो प्राणी मंगलकार्य(विवाहादिक) में क्रोध करता है वह प्राणी उष्ण ज्वरवाला होता है उस पापके दूर करनेको शिवका सहस्रकलशाभिषेक करे और यथाशक्ति ब्राह्मणभोजन करावे और “जातवेदसे” इसमंत्रका जपकराना चाहिये ॥

**अथ सर्वज्वरहरकुंभदानम् ।**

**नवंकुंभं समानीय मृन्मयं चाव्रणं दृढम् । लोहितं कर्णरहितं**

**स्थापयेत्तंदुलोपरि ॥ तंदुलानां परिमाणं द्रोणपंचकमि-**

**ष्यते । विशुद्धास्तंदुलाग्राह्याः श्वेतवस्त्रेण वेष्टयेत् ॥ मधु-**

**नाप्यथवाज्येन शुडशर्करयापि वा । तैलैर्वा पूरयेद्द्विर्य-**

**थाविभवतो नरः ॥ श्वेतपुष्पैरर्चयेत्तंगंधपुष्पैस्तथा परैः ।**

**होमश्च पूर्ववत्कार्यः समिदाज्यचरुत्करैः ॥ सुवर्णचयथा-**

**शक्त्या ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ तस्मै हुतवते वृत्तश्रुतशी-**

**लायसत्कृतम् । मंत्रेणानेन विधिवत् पूजयित्वा ज्वरी नरः ॥**

मंत्र ।

महेश ! देवदेवेश ! देवदेव ! परात्पर ! ॥ कुंभेनानेनदाने-  
नज्वरंक्षिप्रंविनश्यतु ॥ एकांतरं सन्निपातं तृतीयकचतुर्थ-  
कौ । पाक्षिकं मासिकं चैव सांवत्सरिकमेव च ॥ नाशयेतं  
ममक्षिप्रं वासुदेव महेश्वरौ ॥

अर्थ—नवीन मिट्टीका कलश जो फूटा और जो जरा न होवे तथा पक्का होय और रंगमें लाल होवे उसको चावलोंके ढेर पर स्थापन करे चावल पांच द्रोण अर्थात् दो मन होवे परंतु ( यह धनाढ्यके वास्ते आज्ञा है गरीबको यथाशक्ति लेना ) वो चावल विने और फटके हुए शुद्ध होने चाहिये । फिर उस कलशको सपेद वस्त्रसे लपेटके उस घड़ेमें शहत, घी, गुड, सांड अथवा तैल इनमें किसी एकको भरे यदि इन वस्तुओंसे किसीके भरनेकी सामर्थ्य न होवे तो स्वच्छ जलसेही भरदेवे पश्चात् उसका सपेद फूल, फल, मंध, धूप, दीप नैवेद्यादिसे पूजनकर पूर्वोक्त विधिसे हवनकरे उसमें समिधा घी और चरुको हीममें पश्चात् उस हवन करनेवाले ब्राह्मणको कि, जो वेद और वेदार्थको जानता हो तथा जिसका उत्तम आचार उसको यथाशक्ति इसमंत्रसे उसघटका और सुवर्णका दान करे ॥

उस मंत्रका यह अर्थ है कि, हे महेश ! हे देवदेवेश ! हे देवोंके देव ! हे परात्पर ! इस कुंभदानकरके मेरा एकाहिक, सन्निपातज्वर, तिजारी, चौथिया, पंद्रहदिनमें आनेवाला, महिनेमें आनेवाला एवं वर्ष दिनमें आनेवाले सब ज्वरोंको हे वासुदेव, महेश्वर, शीघ्र नाश करो ॥

अन्यच्च ।

अपामार्जनकंस्तोत्रं हनुमत्कवचादिकम् ।  
पठेज्ज्वरोचसततं सर्वज्वरनिवृत्तये ॥

१ जो ब्राह्मण व्याकरणादिभी पढाहो और ग्रहस्थीहो, उसको दानदे । किंतु जैसे पाथा—पुरोहित—टुराचारी, केवल संडमुसंड, सुसामदी, निरक्षर, मट्टाचार्य, परछीगामी, आदिपापीको दान नदे, इनको दानदेना मानो आपको मरुत्का मडमान बनानादे ॥

अभिमान करके तिरस्कार कर्ता हुआ, उस समय श्रीशिवके अत्यंत क्रोध करके लाल २ तीसरे नेत्रसे पीले रंगका और तीनमस्तकवाला, वीर-भद्रगण तत्काल प्रगट हुआ । पीलेनेत्र, बाधंवरकी ओंठे हुए, अमिकी कांतिकी धारणकर्ता, छोटी देह और तीनपैर, बड़ा भारी उदर जिसका, ऐसा वो वीरभद्रगण त्रिपुरके वैरी शिवके सन्मुख हाथ जोड़कर बोला कि, हे प्रभो ! मैं क्या करूँ तब उस घोर रूपवालेसे घोरस्वरूप श्रीशिव यह बोले ॥

सर्वंकुरुनिरुत्सवंसइतिरुद्रतो निर्दयं निशम्य समशीसम-  
प्रथममेव वह्नित्रयम् । मरुद्गणमदुद्रवद्भवमतुष्टवद्यज्वि-  
नोमुनीनलमनीनमदमनभीतसन्नस्वनान् ॥

अर्थ—कि, दक्षके यज्ञोत्सवको विध्वंसकर इस प्रकार रुद्रसे निर्दय आज्ञाको सुन प्रथम दक्षके यज्ञमें जो तीन अग्नि हैं उनको शांति करता हुआ । उस समय यज्ञमें आये ऐसे मरुद्गणोंको भजता हुआ, श्रीशिवको प्रसन्न करता दमनभयसे रुके आसजिनके यज्ञकरानेवाले मुनीश्वरको नीचा करता अर्थात् जीतता हुआ वीरभद्र श्रीशिवके सन्मुख प्राप्त हुआ ॥

इदंतमवदत्स्थितं पुररिपुः पुरस्ताद्यतोऽखिलं हविरिह कृतो  
ईदिति जीर्णमेव त्वया । अतोऽस्य जगतो ज्वरो भवततः  
प्रभृत्युच्चैरयं ज्वरयति स्फुरद्विविधनामधेयैर्जगत् ॥

अर्थ—इस प्रकार वैरीको जीतके सन्मुख खड़े हुए उस वीरभद्रसे श्रीपु-ररिपु ( महादेव ) बोले कि, तूने शीघ्र इस यज्ञकी सामग्रीको जीर्णकरी अर्थात् पचागया इसीसे तू इस जगतमें ज्वरनामकरके विख्यात हो, वस उसी दिनसे यह ज्वर अनेक नामोंकर इस जगतको अपने वेगसे ज्वर-वान् करता है ॥

ज्वरो नरिसपाकलालसहरिद्रतापेश्वराः गजोष्टमहिपार्व-  
गोष्वथ यथाक्रमं कीर्त्तिताः । तथैन्द्रमदस्त्रोरकर्षभकप-  
क्षपाताह्वयाः समस्ततिमिरासभां बुजखगेष्वलर्कः शुनाम् ॥

अर्थ—तहां मनुष्योंके जो ताप होता है उसको ज्वर ऐसा कहते हैं । हाथियोंमें इस ज्वरको पाकल कहते हैं । कंटोंमें इसको अलस कहते हैं । भैंसाओंमें इसकी हरिद्र संज्ञा है । घोड़ोंमें ताप कहलाता है । गौओंमें ईश्वरनाम करके विख्यात है । सब मच्छालियोंकी जातिमें इन्द्रमद कहलाता है ।

गधाओंमें खोरक नाम करके विख्यात है । कमलोंमें इसको ऋषभके नामसे पुकारते हैं । सब पक्षियोंमें अर्थात् पक्षेरुओंमें पक्षपात नामसे पुकारते हैं और कुत्तोंमें इसज्वरको अलर्कनामक कहते हैं ॥

**मृगामयारुयोमृगजातिपूतः प्रलेपकोऽजाविपुचूर्णकोन्ने ।**

**उष्णीपसंज्ञः ससरीसृपपुर्वाप्रसूनेषु च नीलिकासु ॥**

अर्थ—वही ज्वर मृग ( हरिणों ) की जातिमें मृगामय कहलाता है । बकरी और भेड़ोंमें प्रलेपकनाम करके विख्यात है । अन्न ( गेहूँ, चना, चावल आदि धान्यो ) में चूर्णक कहलाता है । सर्पोंमें उष्णीसनाम ज्वरकी संज्ञा है । पुष्प ( फूलों ) में पर्वा नामसे कहाता है और जलमें इसकी नीलिका संज्ञा है ॥

**कुंकुमको गोधूमे ज्योतिष्कस्त्वौषधीषु पर्वासु ।**

**ग्रंथिकसंज्ञो ब्रततावित्यभिधानैर्ज्वराः कथिताः ॥**

अर्थ—गेहूँधान्यमें कुंकुमनाम ज्वर की संज्ञा है । औषधियोंमें इसकी ज्योतिष्कसंज्ञा है । वेलोंमें इसकी ग्रंथिक संज्ञा है । इस प्रकार नामों-करके ज्वरको है ॥

**भूमेरूपरकः प्रोक्तो वृक्षाणां कोटरः स्मृतः ॥**

अर्थ—पृथ्वीमें ऊपरनामक ज्वर कहलाता है अर्थात् जिस पृथ्वीमें खार पैदा होता है वो ज्वरग्रसित पृथ्वी जाननी । एवं वृक्षोंमें कोटर कहलाता है अर्थात् वृक्षोंमें खोतरका विकार है ॥

**ज्वरके आठ भेद ।**

**बीभत्सस्त्रिशिराज्वरो थकपिलाभस्मप्रहारस्त्रिपात् पिंगाक्षोऽथ महोदरोऽथ परतोरोद्रो ज्वलद्विग्रहः । शंभोःश्वाससमुद्रवाभयकरादक्षकतोर्ध्वसका धोराघर्षरनादि नो मुनिवरेः प्रोक्ता ज्वरास्तेऽष्टधा ॥**

अर्थ—बीभत्स, त्रिशिरा, कपिल, भस्म, प्रहार, त्रिपाद, पिंगाक्ष, महोदर और ज्वलद्विग्रह ये श्रीशिवकी श्वाससे प्रगट, भयकारी, दक्ष-यज्ञविध्वंसक, धोरूपवाले और घर्षघर्ष नाद करनेवाले ऐसे आठ मुनिवरोंने कहे हैं ॥

**बीभत्सज्वरका स्वरूप ।**

**बीभत्सोरुधिरारुणांबरवृतो गंधास्यमालाधरो**



रक्ताक्षःकृमिसंकुलस्त्रिनयनोदुर्गंधिपूर्णोऽनिशम् ।  
नम्रो रुद्रसमुद्भवोऽतिबलवान्कोपीजगद्धातकः  
कृष्णाङ्गोमलिनोमदांधदमनःपूष्णोर्द्विजध्वंसकः ॥

अर्थ—रुधिरसे रंगे हुए वस्त्रोंको पहने, रुधिरकी गंधआवे, मुंडमालाको धारण करे, लालनेत्र, कृमिसे संकुलदेह, तीननेत्रवाला और दिनरात्रि-दुर्गंध जिसकी देहसे आवे, नम्र और अतिबली, कोपयुक्त, जगत्का धा-तक, काली देहका, मलिनस्वरूप, मदमस्तोंको दमनकर्त्ता और पूषादेवताके दांतोंको तोड़नेवाला ऐसा श्रीशिवसे उत्पन्नहुए बीभत्सज्वरका स्वरूप है ॥

त्रिशिराज्वरकास्वरूप ।

अभूदक्षविध्वंसकोरुद्रकोपात्रिशीर्षः स्त्रिपान्नंदनेत्रोऽ-  
तिकायः ॥ चलजिह्वयासृक्किणीलेलिहंतो बृहद्भालजं-  
घारुणाक्षोऽतिक्रोधी ॥

अर्थ—श्रीरुद्रके कोपसे दक्षका विध्वंस करनेवाला तीनशिरका, तीन-पैरका, नौनेत्रका, बड़ीदेहवाला, चलायमान जीभसे होठोंके प्रांतोंको चाट-ताहुआ, लंबेतालके समान पीठरीवाला, लालनेत्रका, अत्यंतक्रोधी, ज्वर प्रगट हुआ इसका त्रिशिरा नाम है ॥

कापिलारुणज्वरकास्वरूप ।

अभूद्रुद्रकोपाज्वरःकापिलारुणोमुखाङ्गारपुञ्जोद्विरन्तोऽ-  
तिकायः । मदाघूर्णिताक्षःस्फुरत्ताम्रकेशोमहामेघगर्जो-  
मनोहर्षहर्ता ॥

अर्थ—श्रीरुद्रके कोपसे जो कापिलज्वर हुआ है वो अत्यंत ऊँची देहका मुखसे अंगारोंके पुंजोंको छोड़ता, मदसे चढ़े हुए नेत्र, ताम्रके समान प्रकाशवाले बाल, घोरमेघकी गर्जनाका करनेवाला और मनकी प्रसन्नताका नाशकहै ॥

भस्मविक्षेपकज्वरकास्वरूप ।

अभूद्रस्मविक्षेपकोरुद्रकोपान्महाट्टाट्टहासोमुहुर्बभमा-  
णः । चलत्सप्तजिह्वः करालोयदंष्ट्रः स्फुरत्तप्तताम्रा-  
रुणश्मश्रुकेशः ॥

अर्थ—श्रीरुद्रके कोपसे एक भस्मविक्षेपक ज्वर प्रगट हुआ वह घोर अट्टाट्टहासका करनेवाला, वारंवार जंभाईको लेताहुआ और चलायमान सातजीभ, विकराल उग्रदाढवाला और प्रकाशमान तपेहुए तामेके समान लाल डड्ढी और केशवाला ऐसा जानना ॥

त्रिपादज्वरकास्वरूप ।

त्रिपादुद्रकोपाद्रभूवारुणाक्षो भृगोः इमश्रुविध्वंसकस्त-  
ब्धकर्णः । ज्वरोदीर्घकायोमुहुः श्वासकर्तारणेनृत्यमा-  
नोज्जदाहीतृपार्तः ॥

अर्थ—रुद्रके कोपसे तीन पैरका ज्वर प्रगटहुआ जिसके लालनेत्र और खडेहुए कान दीर्घदेहवाला वारंवार श्वासको छोडनेवाला तथा संग्राममें नाचनेवाला अंगोंमें दाहका करनेवाला और प्याससे व्याकुल तथा भृगु-  
ऋषिकी डाढीका उखाडने वाला जानना ॥

पिङ्गाख्यज्वरकास्वरूप ।

अभूद्वीरभद्रेश्वरादुत्कटास्योज्वरःपिङ्गनेत्रोऽल्पजंघोऽग्नि-  
वर्णः । तृपात्तोद्विजिह्वोऽसिहद्वितीयश्चलत्तीव्रकेशः  
कृशः शुष्कमांसः ॥

अर्थ—वीरभद्रेश्वरसे टेढे मुसका, पीलेनेत्रवाला, छोटी २ पाँडरीवाला अधिक समान लालवर्ण, तृपासे व्याकुल, दोजीभ मानो दूसरा नृसिंहही है, चलायमान तीव्र बालोंवाला, कृशदेह और सूखे मांसवाला ऐसा पिङ्ग-  
नेत्रज्वर प्रगट हुआ ॥

महोदरज्वरकास्वरूप ।

बभूवातिदीर्घोदरोलंबकर्णोज्वलदग्निरूपश्चलद्रक्तनेत्रः ।

तृपाश्वासजृम्भान्वितांगप्रमदोभटेशोज्वरोरक्तवर्णः प्रमत्तः ॥

अर्थ—श्रीशिवसे एक बडेपेट और लंबे कानका प्रज्वलित आगके समा-  
नरूप, चंचल लालनेत्र तृपाश्वास जृम्भाकरके युक्त, अंगोंका तोडनेवाला, योद्धाओं का राजा तथा लाल वर्णका और मतवाला महोदरज्वर जानना ॥

ज्वलद्विग्रहज्वरकास्वरूप ।

ज्वलद्विग्रहोमुक्तकेशश्चलद्भ्रुविसूलासिहस्तोभुजंगेश-

पाशः । ज्वरेशोऽतिवीर्योहरश्वासजातः कृशः शुष्कमां-  
सोवलीभैरवेशः ॥

अर्थ—श्रीशिवजीके श्वाससे प्रगट अभिसमान देहवाला, खुलेहुए बाल  
चलायमान भृकुटी, त्रिशूल, तलवार, सर्प और फाँसका धारण करनेवाला,  
सबज्वरोंका राजा, अतिपराक्रमी, कृशदेह और शुष्कमांसका बलवान्  
भयानकोंमेंभी श्रेष्ठ ऐसा ज्वलद्विग्रह ज्वरका स्वरूप जानना ॥

सुश्रुतेऽपि ।

रुद्रकोपाग्निसंभूतः सर्वभूतप्रतापनः । त्रिपादभस्मप्रहरण  
स्त्रिशिराः सुमहोदरः ॥ वैयाघ्रचर्मवसनः कपिलोज्ज्वल-  
विग्रहः । पिण्डेक्षणोद्भवजघो बीभत्सोबलवानयम् ॥ पुरुषो  
लोकनाशार्थमसौ ज्वर इति स्मृतः ॥

अर्थ—ये आठज्वर जो हंसराज ग्रंथमें लिखे हैं उनका मूलकारण यह  
सुश्रुतका वाक्य है । अर्थात् इसीके नामोंको लेकर हंसराजकविने अपनी  
कविता शक्ति दिखलाई है वास्तवमें ज्वर एकही है तहां रुद्रकोपाग्निसे प्रगट,  
सर्व प्राणियोंको तपानेवाला, तीनपैरका, भस्मप्रहरण अर्थात् भस्महेति  
शस्त्रका प्रहार करता, तीनमस्तक, बड़े भारी उदरवाला, व्याघ्रचर्मरूपवस्त्र,  
कपिल, ज्वलद्विग्रह, पीलिनेत्रका, झोटीजाँघका, बीभत्स, बलवान् ऐसा  
पुरुष लोकनाशार्थ प्रगट करा इसको ज्वर ऐसा कहते हैं ॥

ब्राह्मणज्वरकेलक्षण ।

दंडीयज्ञोपवीतीचरौद्रो ब्राह्मणरूपधृक् ॥

अर्थ—श्रीरुद्रभगवान्से प्रगट दंड यज्ञोपवीत ( जनेऊ ) को धारणकरे  
और ब्राह्मणरूप किये हुए ऐसा ब्राह्मणज्वर जानना । तथा छत्र, कमंडलु,  
मृगचर्मादि भूषित, पवित्र और शांतिवेश आदि जो ब्राह्मणोंके चिन्ह-  
होते हैं वो सब जानने ॥

क्षत्रीज्वरकेलक्षण ।

जपाकुमुभसंकाशोरौद्रदंष्ट्राकरालितः ।

खड्गहस्तो महारौद्रो माहेन्द्रः क्षत्रियोमतः ॥

अर्थ—जपा ( गुडहर ) के फूलके समान लालरंगका, तीखी डाँटीवाला,  
खड्गफोलिये महान् रौद्र, सब रुद्रज्वरोंका राजा, क्षत्रीज्वर जानना ॥

वैश्यज्वर ।

चंपकप्रसवाभासःतप्तकांचनभूषितः ।

दंडहस्तोमहावेगी वैश्योज्वरइतिस्मृतः ॥

अर्थ—चंपके फूल समान पीतवर्ण, तपेहुये सुवर्णसे भूषित, दंडहाथमे महावेगी ऐसा ज्वर वैश्य कहलाता है ॥

शूद्रज्वरकेलक्षण ।

कृष्णमेघांजनाकारस्तीक्ष्णदंष्ट्रोज्ज्वलाननः ।

त्रिनेत्रोज्ज्वलनप्रख्यःकालःशूद्रोविजानता ॥

अर्थ—कालेबादल और फाजलके आकार, तीखीडाढावाला, उज्ज्वलमुख का, तीननेत्र, अमिके समानस्वरूप, कालेरंगका, ऐसा शूद्रज्वर जानना विशेष देखना होवे तो ज्वरपराजय और ज्वरतिमिरभास्कर ग्रंथमें देखो ॥

ज्वरकेनाम ।

रोगःपाप्माज्वरोव्याधिर्विकारोदुःखमामयः ।

यक्ष्मातंकगदाबाधशब्दाःपर्यायवाचिनः ॥

अर्थ—रोग, पाप्मा, ज्वर, व्याधि, विकार, दुःख, आमय, यक्ष्मा, आतंक, गद और आबाध ये शब्द सब आपसमें पर्यायवाचक हैं अर्थात् रोगके नाम हैं।

१ रोगादिक शब्द पर्यायवाचक है अर्थात् एक अर्थकेही देनेवाले हैं, परंतु इनमें प्रत्यर्थभेद भी दीखता है जैसे—रोग (पीडादेनेसे इसको रोग कहते हैं) पाप्मा पापोंके करनेसे होता है इसीसे इसको पाप्मा ऐसा कहते हैं ) ज्वर ( व्याधातु अवस्थाकी हानिमें वर्तें है उसके आगेवर प्रत्ययलानेसे ज्वरशब्द सिद्ध होता है यह देह और मनको संतापकारक होनेसे ज्वर कहाता है) व्याधि ( जो देहमें अनेक प्रकारके दुःख प्रगटकरे उसको व्याधि कहते हैं ) विकार ( मन—बुद्धि और इन्द्रियोंके विवृत करनेसे विकार कहाता है ) दुःख ( उपतापक होनेसे दुःख कहते हैं ) आमय ( सपूर्ण रोगआमसे प्रगट होते हैं इस वास्ते आमय कहते हैं अर्थात् सपूर्ण प्राणीमात्र चपलतासे अदेश अचालम अपथ्य और अत्यंत भोजनवे सेवन करने वाले होते हैं इसीसे आमजन्यरोग प्रगट होते हैं यक्ष्मा ( सब रोग और रोगोंके समूह होनेसे यक्ष्मा कहलाते हैं, ) आतंक ( प्राणी रोगोंसे उपतप्तहो स्त्री, पान, भोजनादि त्याग कठिनसे जीते हैं इस वास्ते उनको आतंक ऐसा कहते हैं ) गद ( अनेक कारण जन्य होनेसे ज्वरको गद ऐसा कहा है ) आबाध ( जो चारो तरफसे देह और मनको बाधाकरे इस वास्ते इसको आबाध ऐसा कहते हैं ॥

## अथ निदानपंचकम् ।

मंगलाचरणम् ।

प्रणम्य जगदुत्पत्तिस्थितिसंहारकारणम् । स्वर्गापवर्गयो-  
द्धारं त्रैलोक्यशरणं शिवम् ॥ १॥ नानामुनीनां वचनैरि-  
दानींसमासतःसद्भिपजां नयोगात् । सोपद्रवारिष्टनिदा-  
नलिङ्गोनिबध्यते रोगविनिश्चयोऽयम् ॥ २॥

अर्थ—जगत्की उत्पत्ति पालन और प्रलयके प्रधान कारण, स्वर्ग  
( सुख ) अपवर्ग ( मोक्ष ) के द्वार अर्थात् दाता, तथा त्रिलोकीके  
रक्षक शिवको प्रणामकर अनेक चरकसुश्रुत आदि मुनीश्वरोंके वचनोंके  
अनुसार उत्तम वैद्योंकी आज्ञासे अब मैं संक्षपसे रोगविनिश्चय नाम  
ग्रन्थकी रचना कर्ता हूँ । जिसमें ( उपद्रव ) ( अरिष्ट ) ( निदान ) और  
( विन्ध ) इनका लक्षण अच्छी रीतिसे किया गया है ॥ १ ॥ २ ॥

\*शिष्य—\*यह अतिसूक्ष्म निदानपंचक सर्वज्ञ ऋषिमुनियोंके जानने योग्यहै  
उनके वाक्योंका निरादरकर मनुष्यकृत तुझारे ग्रन्थमें मनुष्योंकी कैसे प्रवृत्ति  
होवेगी ? इसकारण माधवाचार्यने “नानामुनीनां वचनैः” इस पदको धरा,  
अर्थात् अनेकमुनीश्वरोंके वचनोंका आश्रयलेमैने यह ग्रन्थ निर्माण कियाहै किंतु  
मेरे मनकी उक्तिसे कल्पित नहींहै ।

शंका—पहलेहीं बहुत ग्रन्थ निर्माणकरे उपस्थितहैं फिर तुझारे इस ग्रन्थको  
कौनपढेगा इसकारण माधवाचार्यने “इदानीम्” पद मूलमें धरा, इसपदका यहआश  
यहै कि, हमहीं अनेक मुनीश्वरोंके वचनोंसे अब ऐसाअलौकिकग्रंथ रचतेहैं कि, पहिलेकि

१ प्रथम लिखआपें कि “दर्शनस्पर्शनैः प्रभैः संपरिक्षितरोगिणम् । रोगनिदानमायूपलक्ष-  
णोपशमाप्तिभिः ” अर्थात् दर्शन, स्पर्श और प्रश्नसे रोगीकी परीक्षा करे, तथा निदान,  
पूर्वरूप, रूप, उपशय और संभाप्ति करके रोगकी परीक्षाकरे तहां त्रिविधरोगीकी परीक्षा  
तो प्रथम लिखआएँ अब हम रोगपरीक्षाके निमित्त निदानपंचकको रोगविनिश्चय ग्रंथसे  
लिखते हैं तथा जिस रोगका निदान लिखेंगे उसीके साथ उसकी निकित्साभी लिखी जायगी ॥

२ उपद्रवो—रोगारम्भकदोषप्रकोपजन्योपकारः । ३ नियतमरणख्यापकलिंगमरिष्टम् ।  
४ निदानरोगोत्पादकोद्देतुः । ५ लिंगं—रोगख्यापकोद्देतुः । तेनलिग्यते व्याधिःअनेनेति  
व्युत्पत्त्यापूर्वरूप-रूपो-पशयसंभासयोविज्ञायते ।

सोआचार्यने अद्यापि नहीं निर्माणकरा । कोईवादी शंका करे कि, तुमने ग्रन्थ रचाभी परंतु किसीने नहीं पढ़ातो आपका ग्रन्थनिर्माण करना व्यर्थ होयगा इसकारण माधवाचार्यने<sup>१</sup> “सद्विषयां नियोगात्” यह पद धरा इसपदका आशय यह है कि, हमारे पढ़नेके निमित्त कोई निदानग्रन्थ निर्माणकरो ऐसे बुद्धिमान् वैद्योंके कहनेसे इसग्रन्थकी रचना करी है शंका—श्रीमहादेवजीके हर भृद रुद्र शाम्भव इत्यादिनामोंको त्यागकर शिव इसनामको क्यों मणामकरा? उत्तर—इसरोगविनिश्चयग्रन्थके पठनपाठन करनेवालोंकी कल्याणकी इच्छाकर सर्वकामना देनेवाला कल्याणवाचक शिवनाम विचार इसको ग्रन्थके आदिमें माधवाचार्यने मणामकरा ॥ १ ॥ २ ॥

**नानातंत्रविहीनानां भिषजामल्पमेधसाम् ।**

**सुखं विज्ञातुमातंकमयमेव भविष्याति ॥ ३ ॥**

अर्थ—अभ्यनिदान ग्रन्थोंसे इसकी उत्तमता दिखातेहैं जैसेकी अनेक ग्रंथोंके विचार करनेमें असमर्थ ऐसे मन्दबुद्धिवाले वैद्योंके सुखपूर्वक रोगज्ञानके निमित्त यहीग्रन्थ करण होवेगा. क्यों कि रोगका जाननाही मुख्यहै सो ग्रन्थान्तरोंमें लिखाभीहै ॥

रोग जाननेके पांच उपाय उन्को कहतेहैं ।

**निदानं पूर्वरूपाणि रूपाण्युपशयस्तथा ।**

**संप्राप्तिश्चोति विज्ञानं रोगाणां पंचधा स्मृतम् ॥ ४ ॥**

अर्थ—निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय और संप्राप्ति, ये पांच प्रकार पृथक् पृथक् और समस्तव्याधिके बोधक होतेहैं । इसप्रकार रोगोंका जानना मुनीश्वरोंने पांच प्रकारका कहाहै ।

इसश्लोकमें “उपशयस्तथा” यह जो पद धरा इसका यह आशयहै कि, जैसे निदान पूर्वरूप और रूपसे रोग जाना जायहै उसीप्रकार उपशयसे और

१ रोगमादौपक्षितततोन्तर्गौषधम् ॥ तत कर्मभिषक्पश्चाज्ज्ञानपूर्वसमाचरेत् ॥ १ ॥  
रोगज्ञानार्थमेवादौषधकार्यो भिषग्वरैः ॥ सवितस्मिन्क्रियारम्भःपुण्याययशसेभ्यै ॥ २ ॥  
मसगवश रोगज्ञानकी विधि कहतेहैं जैसे रोग चारप्रकारसे जानाजाता है प्रत्यक्ष—अनुमान उपमान—और शब्दसे तहां चित्रकुष्मादिव्याधि प्रत्यक्ष देखनेसे प्रतीतहोती है, ज्वरादित्वकृद्भ्रंशसे जानेजाते हैं ॥

सम्प्राप्तिसेभी रोग जानाजाताहै 'सम्प्राप्तिश्चेति' इसपदमें च और इतिके धरनेसे यह मयोजनहै कि, रोगजाननेके इन पाचोंसे विशेष और उपाय नहींहै । अब कहतेहैं कि, रोगोंका निदान सनिकृष्ट समीप और विप्रकृष्ट दूर इन भेदोंसे दोमकारकाहै 'सनिकृष्ट' उसे कहतेहैं कि, जैसे वातादिक कुपित ज्वरादिक रोगोंको मगटकरेहैं और विप्रकृष्ट उसे कहतेहैं जैसे हेमतऋतुमें संचितहुआ कफ वसंतऋतुमें कुपित होताहै 'पूर्वरूप' उसे कहतेहैं जैसे ज्वरमें आलस्यादि धर्म 'रूप' उसे कहतेहैं जैसे १८ के श्लोकमें लिखाहै 'स्वेदावरोधइति' अर्थात् पसीनोंका अवरोध होना इत्यादिक 'उपशय' उसे कहतेहैं जैसे वातरोग तैलादिक लगानेसे शान्ति होयहै । 'सम्प्राप्ति' उसे कहतेहैं जैसे १० के श्लोकमें लिखाहै 'यथादुष्टेनदोषेण' इत्यादि शंका—क्योंजी ये पांच जो व्याधि जाननेके उपाय कहे इनमें एकहीसे रोगका निश्चय होसकेहै फिर माधवाचार्यने पाचमकार व्यर्थ क्यों लिखे? क्योंकि पाचोंका मयोजन केवल रोगका जाननाहै—उत्तर—तुमने कहा सो ठीकहै, परंतु इन पाचोंका प्रथक् प्रथक् मयोजनहै जैसे निदान से यह मयोजनहै कि, जिसवस्तुके सानेसे या लगानेसे रोग मगटहो उसका त्याग करनेसे रोग नहीं बढ़े किंतु उल्टा शांतिही होताहै और—पूर्वरूप के जाननेसे यह मयोजनहै जैसे सुश्रुतमें लिखा है कि, वातज्वरके पूर्वरूपमें घृतपानकरानेसे वातज्वरकी उत्पत्ति नहीं होय—रूप के जाननेसे यह मयोजनहै कि, व्याधि अर्थात् रोगका साध्यसाध्य और कष्टसाध्यत्व निश्चय होताहै, जैसे—जिसरोगका अल्परूप हो वह सुखसाध्यहै और मध्यरूप कष्टसाध्य और संपूर्णरूप असाध्य इसमकार जाननेसे असाध्यका परित्याग करना और कष्टसाध्य तथा सुखसाध्यकी औषधि करनी उचित है—उपशयके जाननेसे यह मयोजनहै कि, सुपरीक्षित व्याधिके संपूर्ण लक्षण न मिलनेसे व्याधिका यथार्थज्ञान नहीं होय उसको उपशयके द्वारा निश्चय करे, सो चरक ने लिखाहै कि, जिस व्याधिके लक्षण मगट न होय उसकी उपशय और अनुपशयके द्वारा परीक्षा करे । उसीमकार—सुश्रुतमें लिखाहै जैसे उबटना, तेल लगाना, स्वेदनविधि, इत्यादि कर्म करनेसे वातरोग शांत न होय तो उसके रुधिरका विकार जाने और सम्प्राप्ति के जानने से यह मयोजनहै कि, सम्प्राप्तिके विनाजानेपूर्वरूपादिकोंकरके जानीभईभी व्याधि चिकित्साके योग्यभी है, परंतु अज्ञात, विकल्प बल, आदिको जबतक नहींजाने

- १ अर्थात् नाडा नेत्र निव्हा मल मूत्र आदि परास्त्राभासे रोगोंका ज्ञान यथार्थ नहो ।  
 २ वातिकज्वरेपूर्वरूपेघृतपानमिति तथाच साध्यरूपाणामाध्यत्वमपिज्ञायते । ३ कष्टसाध्यके लक्षण चरक ने लिखे है—यथा—निमित्तपूर्वरूपाणामध्यमेनलेइति । ४ गूटालगन्ध्याधि-  
 गुणशपाजुशपाभ्यामुद्धचेतइति । ५ अम्यगसेहस्वेदायैर्वातरोगोनेशाम्याति । विचारस्तत्र  
 विज्ञेयोदुष्टमत्रास्तिशोषितामिति ।

निमित्तहेत्वाऽऽयतनप्रत्ययोत्थानकारणैः ।

निदानमाहुः पर्यायैः—

अर्थ—अब निदानके पर्यायवाचक शब्दोंको कहे हैं निमित्त, हेतु, आयतन, प्रत्यय, उत्थान और कारण ये निदानके पर्यायवाचक शब्द शास्त्र-व्यवहारके अर्थ मुनीश्वर कहतेहैं कारण इनके कहनेका यहहैकि, व्यवहारके वास्ते अर्थात् शास्त्रमें इन छहों शब्दोंमेंसे कोईशब्द आवे उसको निदान वाचकही जाने ॥

प्राग्रूपं येन लक्ष्यते ॥ ५ ॥

उत्पित्सुरामयो दोषविशेषेणाऽनधिष्ठितः ।

लिंगमव्यक्तमल्पत्वाद्ब्याधीनां तद्यथायथम् ॥ ६ ॥

अर्थ—जिस जंभाई आलस्य आदि करके उत्पत्ति होनेवाली व्याधिका ज्ञान होवे उसको प्राग्रूप अर्थात् ( पूर्वरूप ) कहतेहैं फिर वो व्याधि दोष ( वात पित्त कफ ) से बहुधा अग्रगट होवे । \* शंका—यदि वातादिक दोषोंसे अग्रगट होवेगी तो व्याधिका प्रगट होना असम्भवहै, क्योंकि कारण तो वातादिक दोषहैं जब दोषही नहीं तो रोग कैसे प्रगट होस केहैं । \* ( उत्तर इसपदका यह अर्थहै कि, दोष वातपित्त कफ इनका व्याधिके अल्प होनेसे अग्रगटरूप होना अर्थात् थोड़ा थोड़ा होना अत एव तत्तत् ज्वरादिव्याधिका अपने २ अग्रगट लक्षण पूर्वरूप तैसातैसाही होतेहैं अब कहतेहैं कि, (पूर्वरूप) दोषकारकाहै एक सामान्य दूसरा विशिष्ट सामान्यप्राग्रूप ( पूर्वरूप ) उसे कहतेहैं जैसे दोष ( वात पित्त कफ ) से दूषित धातु उसके बिगड़नेसे प्रगट होनेवाले ज्वरादि व्याधिमात्रहीकी प्रतीति होवे और वात आदि दोषोंके चिन्ह न मालूमहों जैसे “भ्रमो-रतिर्विवर्णत्वमिति” अर्थात् ज्वरमें भ्रम, मनका न लगना, देहका विवर्ण इत्यादि लक्षण हो और जिसमें होनहार रोगारम्भक दोष उन्हींके चिन्ह तिसके एक अंशकी प्रतीतिहो उसको विशिष्ट प्राग्रूप कहतेहैं जैसे “जंभा-त्यर्थं समीरणात्” अर्थात् जंभाईका आना केवल वातके दोषसेहीहै । इसमें होनहार रोग कौन ज्वर, उसका आरम्भक दोष कौन वात, उस

तबतक चिकित्सा यथार्थ नहीं होसके, इसी से वैद्य निदानपत्रकका अवश्यही परिचय करे ॥



वातका एक अंश कौन जंभाई, ऐसे औरभी जानने चाहियो। इस विशिष्ट पूर्वरूपमें जंभाईआदि रूप देखकर कदाचित् पूर्वरूपको रूप न समझना चाहिये । क्योंकि यह तो केवल व्याधिके आरम्भक दोषमात्रका सूक्ष्म चिन्ह है, इस वातको दृष्टान्त देकर समझाते हैं। ( दृष्टान्त ) जैसे तृणके समूहमें छोटी अग्निकी चिनगारी गिरनेसे धूम(धूआं) मात्र प्रकट देखकर हाथ, वस्त्र आदिके मारनेसे ही शान्ति करसकतेहैं, परन्तु जब अग्नि एक-साथ जोरसे प्रज्वलित होगई तब शान्ति नहीं होसके ऐसेही विशिष्ट पूर्वरूपको अल्प होनेसे शान्ति कर सके हैं, परन्तु जब रूप होगया तब उसका उपाय नहीं होसके है इसीसे पूर्वरूप और रूपमें भेद है \* अब कहते हैं पूर्वरूप और रूप इन दोनोंमें कोई शारीरिक अर्थात् शरीरसे सम्बन्ध रखते हैं और कोई मानसिक अर्थात् मनसे सम्बन्ध रखते हैं शारीरिक जैसे ज्वरमें मुखका विरस होना देह भारी, नेत्रसे जल गिरना इत्यादिक \* और मानसिक जैसे मनका एक जगह न लगना और अपने हितकारक वचनोंसे शान्ति न होना तथा खट्टे चरपरपदार्थपर मन चलना इत्यादि ॥

तदेवव्यक्ततां यातं रूपमित्यभिधीयते ।

संस्थानं व्यञ्जनं लिङ्गं लक्षणं चिह्नमाकृतिः ॥ ७ ॥

अर्थ—जब पूर्वोक्त प्राग्रूप प्रगट होजाय तब उसको रूप ऐसे कहते हैं। और संस्थान, व्यञ्जन, लिङ्ग, लक्षण, चिन्ह और आकृति, यह छः शब्द रूपके पर्यायवाचक हैं ॥

उपशयके लक्षण ।

हेतुव्याधिविपर्यस्तविपर्यस्तार्थकारिणाम् ।

औपधानविहाराणामुपयोगं सुखावहम् ॥ ८ ॥

विद्यादुपशयं व्याधेः सहि सात्म्यमिति स्मृतः ।

अर्थ—अब उपशयके लक्षणको कहते हैं हेतुविपरीत, व्याधिविपरीत, हेतुव्याधिविपरीत, हेतुविपर्यस्तार्थकारी, व्याधिविपर्यस्तार्थकारी, हेतुव्याधिविपर्यस्तार्थकारी ऐसे जो औषध अन्न ( पथ्य ) विहार आचरण इनका सेवन सुखकारक जानना उसको व्याधिका उपशय कहते हैं इसका तात्पर्य यह है कि, रोग और रोगके हेतुको सुखकारक जो औषधि पथ्य आचरण उसको उपशय कहते हैं और ( व्याधिसात्म्य ) ये पर्यायवाचक नाम उसी उपशयका है, सुखकारकके कहनेसे यह प्रयोजन है कि, दाह

और प्यासयुक्त नवीनज्वरमें शीतलजलका पीना व्याधिका बढ़ानेवाला है इसे शीतलजल सुखकर्त्ता न हुआ अतएव शीतलजलको उपशय न समझना चाहिये । परंतु दाहयुक्त प्यासमें शीतलजल उपशय माना जायगा क्योंकि सुखकारक है ॥

आगे अब क्रमसे उदाहरण दिखाते हैं ।

हेतुविपरीत औषध-जैसे शीतकफ ज्वरमें सोंठ तो इसमें प्रथम समझना चाहिये कि, यहां हेतु कौन है कि वात ( सर्दी ) उस वातका शीतलधर्म है-तो अब शीतकफ यह कब शान्तिहोय कि, जब सर्दी और कफके विपरीत औषधमिले, ऐसी औषध कौन कि, शुंठी ये सर्दीको और कफ दोनोंको शान्ति करे है तो शीत कफ ज्वरमें हेतुविपरीत

नाम	औषध	अन्न	विहार
हेतुविपरीत	शीतज्वरमें गरम औषधि सोंठ	अम्र और बादीसे प्रगट रोगपर मांसको रस और भात	दिनके सोनेसे प्रगट कफ रोगपर विपरीत आचरण रातमें जागना
व्याधि-विपरीत	अतिसारमें दस्त बढ़करनेवाली अवाधि पाठाआदि	दस्तों में दस्तके बढ़कारक पथ्य मसूर	उदावर्षरोगमें शब्दपूर्वक अधोवायुका निकसना मन्त्र औषध धारण देवगुरुकी सेवाकरनी
हेतुव्याधि-विपरीत	वातकी सूजनमें दशमूलका काढावात और सूजन दोनोंको दूर करने वाला है	कफकी संग्रहणीमें छाछका पीना वातनाशक कफनाशक और संग्रहणीनाशक	स्निग्ध जो दिनके सोनेसे उत्पन्नतद्रा तिसमें रुक्षतद्रा से विपरीत और स्निग्धता नाशक रात्रिमें जागना
हेतुविपर्यस्तार्थकारी	जैसे पित्त प्रधान व्रण की सूजनमें पित्तकारक उष्मापिडीका बाँकरना धना	पित्तकी सूजनमें दाहकारक अन्नका भोजन	जैसे वातसे पैदा उष्मादमे प्रासका देना
व्याधि-विपर्यस्तार्थकारी	जैसे कफरोगमें वमनकारक मैनफल आदि	अतिसार रोगमें दस्तकारक दुग्ध देना	छर्दीरोगमें हाथका अंगुठा गलेमें कर वा कमलनाल आदिसे उलटीका लाना.
हेतुव्याधि-विपर्यस्तार्थकारी	जैसे अग्निजलेपर गरम अगरआदि लेप अथवा विषपर विष	जैसे मद्यपानके कर नेसे प्रगट मदात्यय रोगमें मदकारक फेर मद्य पीना	दंढकसरतसे प्रगट वातमें जलका तेरनारूपव्यायामका करना

औषध सोंठ हुई ॥ १ ॥ ऐसेही ( हेतुविपरीत ) अन्न जैसे श्रम और सरदीसे प्रगट ज्वरमें मांसका रस और चावल इसमें हेतु कौनाकि श्रम और सरदी, ये कब शान्ति होंगे कि, श्रम और सर्दी हरणकर्ता पथ्य मिले, ऐसी पथ्य कौनाकि, मांसरस और चावलोंका भात ये श्रम और सर्दीके विपरीत है अर्थात् नाशकहैं ॥ २ ॥ ऐसेही ( हेतुविपरीतविहार ) कहिये आचरण कौन जैसे दिनके सोनेसे प्रगट कफपर रातमें जागना, यहां हेतु कौन हुआकि, दिनका सोना, उससे प्रगट दोष कौनाकि, कफ, यह कफ कब शान्ति होयकि, जिस हेतुसे प्रगटभया उस हेतुसे विपरीत आचरण कराजाय, तो दिनके सोनेपर उलटा आचरण कौन कि, रातमें जागना, तो यह हेतुविपरीत आचरणभया । इसप्रकार और उदाहरण व्याधि विपरीत आदिके पूर्व लिखे हुए चक्रके अनुसार बुद्धिवान् मनुष्य समझ लेंगे ॥

अनुपशयके लक्षण ।

विपरीतोऽनुपशयो व्याध्यसाम्यमिति स्मृतः ॥ ९ ॥

अर्थ—जो उपशयके लक्षण कहें उससे विपरीत लक्षण अनुपशयके हैं और व्याधिका 'असाम्य' अर्थात् असमान नाम उसी अनुपशयका पर्यायवाचक शब्द है ॥ ९ ॥

सम्प्राप्तिके लक्षण ।

यथा दुष्टेन दोषेण यथाचानुषिषता ।

निवृत्तिरामयस्याऽसौ सम्प्राप्तिर्जातिरागतिः ॥ १० ॥

अर्थ—दोष कहिये वातपित्त कफ इनका दुष्टहोना नाम कुपित होना अनेक प्रकारका है अर्थात् स्वकारण या दूसरेके कारण करके, ऐसे कुपितदोष अपने स्थानको छोड़कर देहमें ऊपर नीचे तिरछे विचरते हैं उस विचारनेसे जो रोग प्रगटहो उसको ( सम्प्राप्ति ) कहते हैं और (जाति) तथा आगति ये दोनों पर्यायवाचक नाम उसी सम्प्राप्तिके हैं । तात्पर्यार्थ ये हैं कि, मनुष्यके देहमें वात पित्त कफ दोष बढकर जैसे रोगको प्रगटकर उसीप्रकार उसको सम्प्राप्ति कहते हैं । उदाहरण—जैसे कुपितदोषोका आमाशयमें प्रवेश होना और उसस्थानमें इतस्ततो गमन करना तथा रसकी बहनेवाली नाडियोंके मार्गोंको रोकना और पकाशयमें रहनेवाली अग्निको बाहिर निकालना तथा उसी जठराग्निसे सर्व देहके तप्तहोनेसे ये ज्वर हैं, ऐसा जो निश्चय किया जाय है उसीको सम्प्राप्ति कहते हैं । ऐसेही अतिसारादि रोगोंकी सम्प्राप्ति जाननी चाहिये ॥ १० ॥

सम्प्राप्तिके भेद ।

संख्याविकल्पप्राधान्यबलकालविशेषतः ।

अर्थ—अब संप्राप्तिके भेद कहते हैं सा कहिये सो संप्राप्ति संख्यादि विशेषण करके पांच प्रकारकी है जैसे १ संख्या २ विकल्प ३ प्राधान्य ४ बल ५ काल इति ॥  
संख्यारूपसंप्राप्तिके लक्षण ।

सा भिद्यते यथात्रैव वक्ष्यन्तेऽऽद्यौ ज्वरा इति ॥ ११ ॥

अर्थ—जैसे इसी ग्रन्थमें आगे आठ प्रकारका ज्वर, पांचप्रकारकी खांसी है ऐसा कहेंगे अर्थात् रोगोंकी गणनाकोही संख्यारूप सम्प्राप्ति कहते हैं ॥  
विकल्परूपसंप्राप्तिके लक्षण ।

दोषाणां समवेतानां विकल्पोऽंशांशकल्पना ।

अर्थ—मिले हुए दोष कहिये वात, पित्त, कफ इनके अंशांशका अनुमान करना उसको विकल्परूप सम्प्राप्ति कहते हैं जैसे धूरके निकलनेसे ये पर्वत अभिमान है ऐसेही ये रोगीके देहमें वातका अंश विशेष है, काहेसे कि, वातके अंश विशेष मिलनेसे इसी अनुमानको विकल्पसंप्राप्ति कहते हैं—उदाहरण—जैसे रूखी, शीतल, हलकी और फैलनेवाली, इत्यादि गुणयुक्त जो पवन, उसका रौक्षादि गुणयुक्त कसेला रस वातको सर्वांशकरके बढानेवाला है उसी प्रकार कटुरस सर्वभावकरके पित्तको बढानेवाला है जैसे कटु, उष्ण, तीक्ष्णत्वकरके हांग पित्त को बढानेवाला है उसीप्रकार मधुररस जैसे भैंसका दूध ये सर्वभावकरके कफको बढानेवाला है इत्यादि इसमें (दोषाणां) जो बहुवचन है सो दोषोंके पृथक् पृथक् ग्रहणके वास्ते है और (समवेतानाम्) ये पद जो है सो द्वंद्वज और सन्निपातके ग्रहणनिमित्त धरा है ॥

प्राधान्यरूपसंप्राप्तिके लक्षण ।

स्वातंत्र्यपारतंत्र्याभ्यां व्याधेः प्राधान्यमादिशेत् ॥ १२ ॥

अर्थ—स्वतंत्र और परतंत्रकरके व्याधिको प्राधान्यता है जैसे स्वतंत्रज्वरको प्रधानता है और ज्वराधीन श्वास आदि रोगोंको अप्रधानता है ॥

बलरूपसंप्राप्तिके लक्षण ।

हेत्वादिकात्स्न्यावयवैर्वलावलविशेषणम् ।

अर्थ—हेतु आदि शब्दसे पूर्वरूप और रूप इनके सर्व अवयव (लक्षण) मिलनेसे व्याधिको बलवान् जानना और थोड़े लक्षण मिलनेसे निर्बल जानना जैसे जिस रोगके प्रति जो निदान कहा है वो निदान सम्पूर्ण रोगको उत्पन्न करनेवाला है कि, एकदेश ऐसेही पूर्वरूपभी समस्त

अवयवों करके व्याधिका प्रकाशक है या एकदेशसे इत्यादि लक्षणोंसे चलाबलका निश्चय करना ॥

कालरूपसंप्राप्तिके लक्षण ।

नक्तंदिनर्तुभुतांशैर्व्याधिकालो यथामलम् ॥ १३ ॥

अर्थ—नक्त ( रात्रि ) दिन ( दिवस ) ऋतु ( वसन्तादि ) भुक्त ( आहार ) इनका अंश कहिये एकदेश उसको यथा दोष ( वात, पित्त, कफ ) के अनुसार व्याधिका काल अर्थात् रोगके घटनेबढनेके हेतुका समय जाने \* उदाहरण दिखाते हैं—जैसे रात्रिके तीन भाग करे प्रथम, मध्य और अंत, तो रात्रिका प्रथमभाग कफका है, मध्यभाग पित्तका, अंतभाग वातका है, ऐसेही दिनके भी तीन भाग करे तो पूर्वाह्न कफका, मध्याह्न पित्तका, अपराह्न वातका, ऐसेही ऋतु जैसे वसंतऋतुमें कफ, ग्रीष्मऋतुमें पित्त और वर्षा में वात कुपित होती है ऐसेही भोजनका जैसे भोजनकरनेके समय कफका काल और अन्नके पचनेके समय पित्तका काल और जब भलेप्रकार परिपक्व होगया तब वातका काल, इसकालके जाननेसे यह प्रयोजन है कि, जिस दोष ( वात, पित्त, कफ ) का जो काल कहा है उसको उसी २ कालमें प्रावृत्त्यता जानलेना कठिन मालूम नहीं होती ॥

निदानपचकका उपसंहार ।

इति प्रोक्तो निदानार्थः स व्यासेनोपदेक्ष्यते ॥ १४ ॥

अर्थ—इति कहिये इस प्रकार संक्षेपप्रकारसे जो निदानार्थ कहा उसे विस्तारपूर्वक रोग २ के प्रति निदान पूर्वरूपादि करके कहते हैं ॥

सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः ।

तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाऽहितसेवनम् ॥ १५ ॥

अर्थ—अब पूर्व चतुर्थ श्लोककी व्याख्यामें कहे निदानके दो भेद कौन सन्निकृष्ट और विप्रकृष्ट, तिसमें सन्निकृष्ट, कौन वातादिक समीपके कारणकरके सर्व रोगोंका कारण है सो कहते हैं ( सर्वेषामिति ) । कुपितहुए जो मल ( वात, पित्त, कफ ) ये सम्पूर्ण रोगोंके कारण होते हैं और उन वात, पित्त, कफ दोषोंके कोपका कारण अनेकप्रकारका अपथ्य सेवन करना है ॥

१ केचन ऋत्वशा वातिप्याहोरज्याणि वधयति यदुक्तं वाग्भटे—ऋत्वोरित्यादिसमाह-  
नृतुसधिरिति स्मृतम् ॥

निदानार्थकरो रोगो रोगस्याप्युपजायते ।  
 तद्यथा ज्वरसंतापाद्रक्तपित्तमुदीर्यते ॥ १६ ॥  
 रक्तपित्ताज्ज्वरस्ताभ्यां श्वासश्चाप्युपजायते ।  
 ग्रीहाभिवृद्ध्या जठरं जठराच्छोफ एव च ॥ १७ ॥  
 अशोभ्यो जाठरं दुःखं गुल्मश्चाप्युपजायते ।  
 प्रतिश्यायादथो कासः कासात्संजायते क्षयः ॥ १८ ॥  
 क्षयो रोगस्य हेतुत्वे शोषस्याप्युपजायते ।

अर्थ—कोई प्रश्नकरे कि, जो पूर्व कहा है येही निदान है अथवा इसके व्यतिरिक्त और भी है इसलिये कहते हैं कि, रोगका रोगभी निदान होता है । अर्थात् जो निदानसे कार्य्य होता है वोही रोगसे भी होता है, इसवास्ते दृष्टांत देकर कहते हैं (तद्यथेति) जैसे ज्वरसंतापसे रक्तपित्त प्रकट होता है और रक्तपित्तसे ज्वर, एवं रक्तपित्तज्वरसे श्वास प्रगट होता है और ग्रीहके बढनेसे जैसे उदररोग और उदररोगसे सूजन और बवासीरसे जैसे उदररोग और गुल्म (गोला) रोग, एवं पीनसरोगसे खांसी, तथा खांसीसे ओजप्रभृति धातुओंका क्षय होता है और ये क्षयरोग राजयक्ष्मा जो सम्पूर्ण रोगोंमें राजा है उसको प्रगट करे है ॥

ते पूर्व केवला रोगाः पश्चाद्वैत्वर्थकारिणः ॥ १९ ॥

अर्थ—वो रोग प्रथम स्वतंत्र थे और जब बल मिलगया तो वोही हेत्वर्थकारी अर्थात् रोगके उत्पन्न करनेवाले होते हैं जैसे ज्वरसे रक्तपित्त होता है ॥

कश्चिद्धि रोगो रोगस्य हेतुर्भूत्वा प्रशाम्यति ।

न प्रशाम्यति चाप्यन्यो हेत्वर्थ कुरुतेऽपि च ।

एवं कृच्छ्रतमा नृणां दृश्यन्ते व्याधिसंकराः ॥ २० ॥

अर्थ—अब उसी रोग उत्पन्न करनेवाली व्याधिकी विचित्रता दिखाते हैं जैसे कोई एक रोग दूसरेका कारण हो अर्थात् दूसरे रोगको प्रगटकर आप शांत होजाता है, जैसे पीनसरोग आप शांत नहीं होनेपाता और खांसी उत्पन्न होती है और कोई रोग दूसरे रोगको प्रगटकर आप जैसा का तैसा बना रहता है, जैसे बवासीर नहीं जाय और गुल्म तथा उदर रोग

पैदा होते हैं । इस प्रकार मनुष्योंके घोरक्लेशदायक मिलेहुए रोग दिखाई देते हैं विशेषकरके चिकित्सा विरुद्ध होनेसे ये रोग कृच्छ्रतम होजाते हैं ॥

तस्माद्यत्नेन सदैवैरिच्छद्भिः सिद्धिमुत्तमाम् ।

ज्ञातव्यो वक्ष्यते योऽयं ज्वरादीनां विनिश्चयः ॥२॥

अर्थ—अब कहेहुये निदानादिपंचकद्वारा रोग निवृत्तिरूप सिद्धीकी इच्छा करके अवश्य जानने योग्यको कहते हैं ( तस्मादिति ) इसी कारण उत्तम सिद्धी हमको प्राप्त हो ऐसी जिन सदैवोंकी इच्छा है उनको ज्वरा-विरोगोंका निदान जो आगे कहते है वो यत्नसे जानना चाहिये ॥

## अथ ज्वरनिदानम् ।

अब सर्वदेहके रोगोंमें प्रथम प्रगट होनेसे, बली देह इन्द्री मनको तपायमान करनेसे जन्म मरणका कारण होनेसे स्थावर अंगम प्राणीनमें स्थिति होनेसे सम्पूर्ण शरीरके रोगोंमें चरक सुश्रुतादि आचार्योंने ज्वर राजा कहा है तदुक्त चरके ।

देहेन्द्रियमनस्तापी सर्वरोगाग्रजो बली ।

ज्वरः प्रधानो रोगाणामुक्तो भगवता पुरा ॥ १ ॥

अर्थ—देह इन्द्री मनको तपायमान करनेसे रोगोंमें प्रथम प्रगट होनेसे बलवान् ज्वरको सब रोगोंमें प्रधानता कही है ॥

ज्वरकी उत्पत्ति ।

दक्षप्रमाणसंकुद्धरुद्रनिःश्वाससम्भवः ।

ज्वरोऽष्टधा पृथग्द्वंद्वसंघातागंतुजः स्मृतः ॥ २ ॥

अर्थ—दक्षप्रजापतिके तिरस्कारसे<sup>१</sup> क्रोधित श्रीरुद्रभगवान्के श्वाससे उत्पन्न ज्वर आठप्रकारका है वात पित्त कफ इनसे<sup>२</sup>, द्वंद्वज<sup>३</sup>, सन्निपात<sup>४</sup> और आगंतुज<sup>५</sup> १ ऐसे मिलकर संक्षेपसे ज्वर आठप्रकारका है ॥

इस श्लोकमें [ निश्वाससम्भवः ] ये जो पद धराहै सो श्वास इस जगह क्रोधके लक्षण करके कहा है किंतु ज्वरकी श्वाससे उत्पत्ति नहीं है जैसे ( सुश्रुतमें ) लिखा है यथा “रुद्रकोपामिसंभूतः सर्वभूतप्रतापनः” इति

अर्थात् क्रोधित रुदने ललाटस्थ तीसरे अग्रिमय चक्षु ( नेत्र ) की स्पर्शकर आग्नेयबाण निर्माण किया ( तथा च चरके ) “ स्पृष्ट्वा ललाटे चक्षुर्वै दग्ध्वा तानसुरान्प्रभुः । बाणं क्रोधाग्निसंततममृजच्छत्रुनाशनम् ” इत्यादिक वाक्योसे ज्वरमात्रकी पित्तप्रकृति जाननी, प्रयोजन यह है कि, सर्वज्वरमें पित्तकी विरोधी क्रिया न करे सो ( वाग्भटने ) कहा है ( यथा— “ उष्मा पित्तादृते नास्ति नात्युष्माणं विना ज्वरः । तस्मात्पित्तविरुद्धानि त्यजेत्पित्ताधिकेऽधिकम् ” इति । अर्थात् गरमी पित्तके विना नहीं होती और ज्वर गरमीके विना नहीं होवे इसीसे ज्वरमें पित्तविरुद्ध क्रिया व्याज्य है ॥ अन्य आचार्य कहते हैं कि, श्रीरुद्रसे उत्पत्ति होनेसे ज्वर देवता है इस लिये ज्वरका पूजन करनेसे शांत होता है जैसे ( विदेहका वाक्य ) है “ ज्वरस्तु पूजनैर्वापि सहसैवोपशाम्यति ” और ज्वरका स्वरूपभी ( हरिवंशमें ) लिखा है यथा— “ ज्वरस्त्रिपादस्त्रिशिराः पद्भुजो नवलोचनः । भस्मप्रहरणो रौद्रः कालान्तक्यमोपमः ॥ ” इति । अर्थात् ज्वरके तीन चरण तीन मस्तक छह भुजा नवनेत्र भस्मप्रहेती है शस्त्रजिसका यह रौद्रकाल यमराजके समान है ॥

ज्वरसंप्राप्तिः ।

मिथ्याहारविहाराभ्यां दोषा ह्यामाशयाश्रयाः ।

बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरदाः स्थू रसानुगाः ॥ ३ ॥

अर्थ—मिथ्या आहार ( देश काल प्रकृति आदिसँ विरुद्ध और संयोग-विरुद्ध भोजन ) मिथ्याविहार ( देहके पुरुषार्थसे विशेष कामका करना ) इन कारणोंसे दुष्ट हुये जो दोष ( वात पित्त कफ ) सो नाभिस्तनके बीच आमाशयमें प्राप्त हो रसको विगाडकर और कोष्ठस्थानमें रहती जो अग्नि उसको देहके बाहर निकाल ज्वरके प्रगट करनेवाले होते हैं ॥\*॥

ये संप्राप्ति शारीर रोगोंकी हैं आगंतुजकी नहीं हैं क्योंकि आगंतुक रोगोंका तो व्यापारपूर्वक वातादिदोषोंके रोकनेसे प्रयोजन है जैसे ( सुश्रुतमें ) लिखा है श्रम और चोटके लगनेसे देहधारीयोंके देहमें कुपित हुई वात सबदेहको परिपूर्णकर ज्वरको पैदा करती है \* और ( चरक ) में भी लिखा है

१ अकालं चातिमात्रं च असाध्यं यच्च भोजनम् । विषमाशनं च यदुक्तं मिथ्याहारः स उच्यते ॥ १ ॥ इस श्लोकमें हिन्दी और फारसीकी देव्यता दिखाई है । २ अशक्त कुस्ते कर्म शक्तिमात्रं करोति च । मिथ्याविहार इत्युक्तं सदा चैव विवर्जयेत् ॥ ३ नाभिस्तनान्तरं बन्तोऽरामाशय इति स्पृतः ॥



कि, चोटके लगनेसे प्रगट वात रुधिरको विगाड़ व्यथा और शोष तथा विवर्णयुक्त वातज्वरको प्रगट करती है ( शंका-क्यौजी आगंतुभी शारीररोगही है क्योंकि आगंतुज्वरमेंभी गरमी रहती है जैसे " उष्मा-पित्तादृते नास्ति " इत्यादि वाक्य प्रमाण होनेसे उत्तर-ये जो तुमने कहा सो ठीक है, परंतु इन आगंतुरोगोंमें पित्तकी पूर्वकालसेही उत्पत्ति नहीं होती पीछे उत्पत्ति होती है यासे आगंतुरोगोंको शारीरत्व नहीं है ॥ इस श्लोकमें ( कोष्ठाग्नि ) यह जो पद धराहै सो धातुकी अग्नि के निवारणार्थ है अर्थात् जब धात्वग्नि बाहर आय जावेगी तो दोषोंका पचना नहीं होसके और दोष पचेविना ज्वरशांति नहीं होवेगा इसलिये इसका अर्थ ऐसा न करना चाहिये " बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निम् " कोठके अग्नि की गरमीको बाहर निकालकर ऐसा अर्थ करना चाहिये।

ज्वरके लक्षण ।

स्वेदावरोधस्तप्तापः सर्वांगग्रहणं तथा ।

युगपद्यत्र रोगे तु स ज्वरोव्यपदिश्यते ॥ ४ ॥

अर्थ-जिस रोगमें पसीना न आवे, देहमें सन्ताप और सर्वांगमें पीडा ये एकही समें हो उसको ज्वर ऐसे कहतेहैं ॥ ( शंका-क्यौजी पित्त-ज्वरमें तो पसीने आतेहैं इस श्लोकमें विरुद्धता आती है \* इसपर जेज्जटादिक उत्तर लिखतेहैं कि, स्वेदावरोध कहिये " स्विद्यते अनेनेति स्वेदः " इस व्युत्पत्ति करके स्वेद कहिये अग्नि तिस्का अवरोध कहिये दोषकी व्याप्ति ऐसा अर्थ करनेसे श्लोकार्थमें विरुद्ध नहीं पड़ता ॥

ज्वरका पूर्वरूप ।

श्रमोरतिविवर्णत्वं वैरस्यं नयनप्लवः ।

इच्छा द्वेषो मुहुश्चापि शीतवातातपादिषु ॥ ५ ॥

जृम्भांगमर्दोऽगुरुतारोमहर्षोऽरुचिस्तमः ।

अप्रहर्षश्च शीतं च भवत्युत्पित्ताति ज्वरे ॥ ६ ॥

अर्थ-कारण विनाही श्रम, कर्मकरनेमें उत्साह नहो, अथवा खेलनेमें अरुची देहमें मलीनता, मुखमें विरसता, नेत्र अशुपातयुक्त, सर्दी, गर्मी पवन इनकी धारंवार इच्छा होना और धारंवार द्वेष ही । इसमें जो ( आदि ) शब्दहैं उससे जल और अग्निका ग्रहणहै अर्थात् इनकी धार २ इच्छा और द्वेष ये ( चरक ) का मतहै तदुक्तं चरके- " ज्वलनातपवाय्वं बुभुक्तेपाभिलाषिता " इति । अन्ये तु शैत्योष्णसाधर्म्याजलाऽनलौ

गृह्णाति ते तु आदिशब्देन शयनादिकं मन्यन्ते \* अन्य आचार्य शर्दी गरमीके साधर्म्यसे जल अग्निको कहते हैं और आदिशब्दसे शयन आदि मानते हैं \* जैभाई अंगोंका दृटना, देहभारी, रोमांचोंका खड़ा होना, अन्नमें, अरुचि, अँधेरका आना, आनंदकी निवृत्ति, शरदीका लगना, \* (शंका) क्योंजी! पूर्व कहआये कि, शरदी गरमीको बार बार इच्छा और बार बार द्वेष फिर पुनः (शीत) पद क्यों धरा ? \* उत्तर-इस पदके धरनेसे शरदीकी आधिक्यता दिखाई, अर्थात् शरदी विशेष लगे ये लक्षण ज्वरके पूर्व होते हैं ये माधवाचार्यने सामान्यपूर्वरूपके लक्षण (सुश्रुतोक्त) लिखे हैं ॥ विशिष्टपूर्वरूपके लक्षण नहीं लिखे सो हम ग्रन्थान्तरसे लिखते हैं ।

सामान्यतो विशेषात्तु जृम्भात्यर्थ समीरणात् ।  
पित्तान्नयनयोर्दाहः कफान्नात्राभिनन्दनम् ॥ ७ ॥

अर्थ-विशेषकरके वातज्वरमें जैभाई बहुत आती हैं, पित्तज्वरमें नेत्रोंमें दाह हो और कफज्वरमें अन्नमें अरुचि होती है, ये श्लोक क्षेपक हैं, परंतु बहुत पुस्तकोंमें मूलके साथ लिखा है इसवास्ते हमने भी मूलके साथ लिख दिया है ॥

अथज्वरचिकित्साप्रारंभः ।

इतिज्वराः समाख्याताः कर्मेदानीं प्रवक्ष्यते ॥

अर्थ-इसप्रकार ज्वरोंके निदान और लक्षण कहे अब सुश्रुतग्रंथसे उक्त ज्वरोंकी चिकित्सा कहते हैं ॥

वेद्यकोसाधारणक्रियाकीआज्ञा ।

दोषाणांचपरिज्ञानंयत्रसम्यक्नदृश्यते ।

क्रियांसाधारणांतत्रभिपक्षसम्यक्प्रयोजयेत् ॥

अर्थ-जिसरोगमेंवातादि दोषोंका ज्ञान अच्छीरीतिसे नहोवे उस जगे वेद्य साधारण क्रिया ( जो आगे लिखते हैं उसको ) उत्तम रीतिसे करे । अर्थात् यह साधारण क्रिया किसी रोगमें करो उस रोगको नष्टहीकरे है बढाती नहीं है ॥

अंशांशं यत्र दोषाणां विवेक्तुं नैव शक्नुयात् ।

साधारणी क्रिया तत्र विदधीत चिकित्सकः ॥

अर्थ—वैद्य जिस रोगमें दोषोंके अंशांशको न जानसके उसजगह साधारण क्रियाकी विधि करके यत्नकरे ॥

ज्वरकी सामान्य चिकित्सा ।

ज्वरस्य पूर्वरूपे तु वर्तमाने सुबुद्धिमान् । पाययेत् घृतं त्व-

च्छं ततः सलभते सुखम् ॥ विधिमां रूतजे चैव पित्तिकेतुवि-

रेचनम् । मृदुप्रच्छर्दनं तद्वत् कफजे हि विधीयते ॥ सर्वद्वि-

दोषजे पूक्तं यथा दोषं विकल्पयेत् ॥

अर्थ—ज्वरके पूर्वरूपमें यत्न कहते हैं । तहां वात ज्वरके पूर्वरूपमें रोगीको घृतपान करना चाहिये, पित्तप्रधान ज्वरमें मृदु विरेचन देना और कफ प्रधान ज्वरमें हलकी वमन करानी एवं द्विदोष और त्रिदोषमें उक्त दोनों वा तीनों यत्न यथा-संभव करने चाहिये ॥

ज्वरके आदि मध्य और अंतमें कर्तव्य ।

ज्वरादौ लंघनं प्रोक्तं ज्वरमध्ये तु पाचनम् ।

ज्वरान्तरे च न देयमेतज्ज्वरचिकित्सितम् ॥

अर्थ—वैद्य रोगीको ज्वरके आदिमें लंघन करावे और ज्वरके मध्य अवस्थामें ज्वरपाचक औषध देवे, एवं जब ज्वरशांति होजावे तब उस रोगीको दस्त करावे, यह संक्षेपसे ज्वरकी चिकित्सा कही है ॥

लंघन ।

ज्वरे लंघनमेवादावुपदिष्टमृते ज्वरात् ।

क्षयानिलभयक्रोधकामशोकश्रमोद्भवात् ॥

अर्थ—ज्वरमें प्रथम लंघन कराना वैद्यको उचित है, परंतु क्षयज्वर, वातज्वर, भयज्वर, क्रोधज्वर, कामज्वर, शोकज्वर, परिश्रमजन्यज्वर इनज्वरोंमें लंघन कदाचित् नहीं करना ॥

१ धातु क्षयज्वर अथवा राजयक्ष्माज्वर । २ वातज्वर कहनेसे यहांपर निरामवातका ग्रहण है यदि सामवातज्वर होवे तो लंघन अवश्य कराने चाहिये ॥

लंघनकरानेमें कारण ।

आमाशयस्थोहत्वाग्निं सामोमार्गान्निधापयन् ।

विदधाति ज्वरं दोषस्तस्माल्लंघनमाचरेत् ॥

अर्थ-अब लंघन करानेमें कारण कहते हैं, जैसेकि, आमसे मिले हुए दोष आमाशयमें स्थित जठराग्निको नष्ट कर और देहके भीतरके मार्गोंके ( नसनाडी आदि ) को ढकते हुए ज्वरको प्रगट करते हैं अतएव उस आमके पचानेको और रुके हुए मार्गोंके स्वच्छ करनेको वैद्य रोगीके चास्ते लंघन करावे । यहाँ जठराग्नि करके जठराग्निकी उध्मालेनी, समग्रजठराग्नि नहीं लेनी चाहिये ॥

अनवस्थितदोषाग्नेर्लंघनं दोषपाचनम् ।

ज्वरग्रं दीपनं कांक्षारुचि लाघवकारकम् ।

अर्थ-अपने २ स्थानपर नहीं स्थित ऐसे दोष और अग्निके विकार पचानेकी लंघन कराने चाहिये लंघन ज्वरको नाश करते हैं, अग्निको दीप्त करे, भोजनकी इच्छा, रुचि और देहमें हलकापना करते हैं ॥

प्राणाविरोधिना चैव लङ्घनेनोपपादयेत् ।

बलाधिष्ठानमारोग्यं यदर्थोऽयं क्रियाक्रमः ॥

अर्थ-वैद्यको चाहिये कि, रोगीका बल न टूटे इस प्रकार लंघन करावे क्योंकि आरोग्यता बलके आधीन है और उस आरोग्यताके अर्थ यह क्रियाका क्रम है ॥ उत्तमलंघनके लक्षण ।

वातमूत्रपुरीषाणां विसर्गो गात्रलाघवे ॥ हृदयोद्धारकं ठा

स्य शुद्धौ तन्द्राकुमे गते ॥ स्वेदे जाते रुचौ चापि क्षुत्पिपा-

सा सहोदये । कृतं लंघनमादेश्य निर्व्यथे चांतरात्मनि ॥

अर्थ-अधोवायु, मल, मूत्र इनका यथा समय निकलना, शरीरमें हलकापना, ( हृदयका भारीपना ) आदि, कंठमें कफका लिहसारहना, मुखमें विर्रसता इत्यादि लक्षण रहित हृदय, कंठ और मुखका शुद्ध होना, तन्द्रा और ग्लानिका नाश, पसीनोंका आना, रुचिका चलना, एवं भूखप्यासका एक साथ लगना और मनमें किसी प्रकारकी व्यथाका न रहना ये लक्षण उत्तम लंघन होनेवाले रोगीके हैं ॥

अतिलंघनके दोष ।

पर्वभेदोऽङ्गमर्दश्च कासः शोषो मुखस्य च । क्षुत्प्राणाशोऽरु-

चिस्तृष्णादौर्वल्यंश्रोत्रनेत्रयोः । मनसःसंभ्रमोऽभीक्ष्णं-  
मूर्ध्वातन्तमोहोद्वि । देहाग्निबलहानिश्चलंघनेतिकृतेभवेत् ॥

अर्थ—गांठोमे पीडा, देहकाटूटना, खांसी, मुखका सूखना, भूखका माराजाना, अरुचि, प्यास कर्णेन्दी और नेत्रोंमें दुर्बलता, मनका डामा-डोलहोना—ऊर्ध्ववात ( हिचकी, श्वास, कानोंमें शब्द और जंभाई आदिकाहोना) मोह, देह, अग्नि और बलका घटना, ये लक्षण अत्यंत लघन करनेवाले रोगीके होते हैं । मुख्य लघन करानेका हेतु आमपचानेके वास्ते है, परंतु हमारे मथुरा आदिके दपोल शंख वैद्य सब ज्वर वालोंको लघन कराते हैं और फिर अंधेकी तरह उससे पूछते है कि, कही अभी तुमको भूखलगी है या नहीं, यदि रोगीको भूख भी लगी हो तथापि उस रोगीको लघनही कराते है कि, जिस्से उसका बलनष्ट हो शीघ्रयमालयको चलाजावे और रोगोंसे बचभी गयातो निर्वलताके कारणसे प्रत्येक समय रोगी हो जावे ' हरीच्छा ! बलीयसी ' ॥

लघनकेअयोग्यरोगी ।

नलघयेन्मारुतज्वरेचक्षयोद्भवेचक्षुधितेचजन्तौ । नगु-  
र्विणीदुर्बलबालवृद्धान्भीतांस्तृपात्तानपिसोर्ध्ववातात् ॥

अर्थ—निरामवात ज्वरमें, राजयक्ष्माके ज्वरमें, भूखमे, गर्भवती स्त्री, दुर्बल मनुष्य, बालक, बुद्धा, डरपोक, तृपार्त और उर्ध्व वातवाला रोगी इनकी वैद्य कदाचित् लघन न करावे ॥

लघनसहनकरनेमेंकारण ।

दोषाणामेवसाशक्तिर्लघनेयासहिष्णुता ।

नहिदोषक्षयेकश्चित्सहतेलघनादिकम् ॥

अर्थ—लघनका करना ये केवल दोषोंही की सामर्थ्य है, क्योंकि दोष क्षीण होनेपर कोईभी प्राणी लघनको नहीं सहसकता, अतएव जबतक इसको लघन करनेकी सामर्थ्य रहे तभीतक वैद्य लघन करावे ॥

अस्नेहनीयोऽशोध्यश्चसंयोज्योलघनादिना ।

रूपप्राग्पयोविद्यान्नानात्वंवद्विधूमवत् ॥

अर्थ—जो स्नेहन करनेके अयोग्य है और जिनको वमन विरेचनसे

शोधन नहीं करसकते, उनको लंघनादिक करानाही उत्तम है। तथा रूप और पूर्वरूपका अग्नि और घ्रांकि समान अनेकविधत्व वैद्यजाने अर्थात् जैसे घुंआंहोनेसे अग्निकी संभावना होती है उसी प्रकार पूर्वरूपसे रोगके रूपकी संभावना जाननी ॥

**अव्यक्तरूपेषुहितमेकांतेनापतर्पणम् ।**

**आमाशयस्थेदोषेतुसोत्क्रेशेवमनंपरम् ॥**

अर्थ—ज्वरके पूर्वरूपमें केवल लंघनादिक कराना जो आमाशयमें दोष होय और जो मचलाता होवे उसको घमन कराना हित है ।

लंघनकी अवधी ।

**आनद्धस्तिमितैर्दोषैर्यावतः कालमातुरः ।**

**कुर्यादनश्नन्तावत्ततः संसर्गमाचरेत् ॥**

अर्थ—जबतक यह रोगी घातादिदोष अथवा वात मल मूत्रादिसे घिरारहे, अर्थात् अधोवायु, मल, मूत्र साफ न उतरे तबतक लंघनकरे फिर मिलेहुए अर्थात् औषधादि और लंघनादि दोनोउपाय करने चाहिये ॥

घमनकरानेयोग्यरोगी ।

**सद्योभुक्तस्यवाजातेज्वरेसंतर्पणोत्थिते ।**

**वमनंवमनार्हस्य शस्तमित्याहवाग्भटः ॥**

अर्थ—तत्कालभोजन करनेवालेके ज्वर प्रगटहुआहो, अथवा संतर्पण कर्मकरनेसे यदि ज्वर प्रगट हुआ होवे, तथा जो घमन करानेके योग्य रोगी है उनको वमन करना उत्तमहै ऐसे वाग्भटाचार्य कहता है ॥

अवस्थाविशेषमेवमनकरानाकहतेहै ।

**कफप्रधानानुत्कृष्टान्दोषानामाशयोत्थितान् ।**

**बुध्वाज्वरकरान्काले वम्यानावमनैर्हरेत् ॥**

अर्थ—चरकऋषि लिखते हैं कि, जिन रोगोमें कफ प्रधान है और हृल्लासादि करके जो बाहर निकलाचाहे तथा जो दोष आमाशयसे उठे हुए है और जो ज्वरके करने वाले दोष है, एवं जो वमन कराने योग्य है उनको वमनके समय वमन कराकर दोष दूरकरने चाहिये ॥

उक्तअवस्थाकोविनावमनकरानानिषेध ।

**अनुपस्थितदोषाणांवमनंतरुणज्वरे ।**

हृद्रोगंश्वासमानाहंमोहंचकुरुतेभृशम् ॥

अर्थ—वमन करनेको नहींउपस्थित ऐसे दोषोंमें और तरुणज्वरमें यदि वमन ( रद्द ) करावे तो वह हृदयरोग, श्वास, अफरा और मोहको करे है । यह भी चरकमें लिखाहै ॥

निर्वातभवनावासमुष्णवारिनिपेवणम् ।

अभूरिजल्पनिःक्रोधं कामशोकंच रोगिणम् ॥

कुर्यादारोग्य संपन्नंशीघ्रं वैद्योविचक्षणः ।

कफमेदोऽनिलामघ्नं दीपनं वस्तिशोधनम् ॥

अर्थ—जिसमें पवन न आती हो ऐसे मकानमें रहना, गरमजलपीना, थोड़ा बोलना, क्रोध का न करना, कामदेव, शोककरना इन सबको रोगी त्यागदे कि, जबतक आरोग्य न होवे ऐसा करनेसे कफ, मेदा और वादी नष्ट होवे, एव अग्निदीपन हो और वस्ति शुद्धि होती है । सर्वत्र रोगीके यत्रमें लिखा है कि, 'निदानपरिवर्जनम्' इसकारण ज्वरमें जो निदान त्याज्य है उसको कहते हैं ॥

चरके ।

नवज्वरेदिवास्वापस्नानभोजनमैथुनम् ।

क्रोधप्रवातव्यायामकपायांश्चविवर्जयेत् ॥

अर्थ—नवीन ज्वरमें दिनका सोना, स्नान करना, भोजन करना, मैथुन करना, क्रोध, हवाका खाना, व्यायामकरना और काढा आदिका देना निषेध कहा है ॥

उष्मापित्तादृतेनास्तिज्वरोनात्युष्मणोविना ।

तस्मात्पित्तविरुद्धानित्यजेत्पित्ताधिकेधिकम् ॥

स्नानाभ्यंगप्रदेहांश्चपरिपेकांश्चवर्जयेत् ॥

अर्थ—विनापित्तके गरमी नहीं और ज्वर विना मरमांके नहीं होता, अतएव सबज्वरोंमें पित्तके विरुद्ध चिकित्सा नहीं करना और पित्तज्वरमें तो विशेष करके पित्तविरुद्ध चिकित्सा त्याज्य है । तथा स्नान, मालिस, लेपन और जल आदिका तरावा देना वर्जित है ॥

जलकेगुण ।

पानीयंशीतलंरूक्षंहन्तिपित्तविषमम् । दाहाजीर्णं

श्रमच्छर्दिमोहमूर्च्छा मदात्ययान् ॥ मूर्च्छापित्तोष्ण  
दाहेषुविपेरक्ते मदात्यये । श्रमकुमातिसारेषुमार्गोत्थव-  
मथौतथा ॥ उर्ध्वगेरक्तपित्तेचशीतमभःप्रशस्यते ॥

अर्थ—जल शीतल और रूखा है, तथा पित्त, विष, श्रम, दाह, अजीर्ण,  
श्रम, छर्दि, मोह, मूर्च्छा, मद्यपानके विकार, इनको नष्टकरे है ॥

मूर्च्छा, पित्तकी गरमी, दाह, विषजन्यरोग, रुधिरकी विमारी, मदा-  
त्यय, श्रम, क्रम, अतिसार, मार्गचलनेसे हुआ परिश्रम, मद्यवाय, उर्ध्व-  
गतरक्तपित्त इन सब रोगोंमें वैद्य रोगीको शीतलजल देवे ॥

उष्णजलकेगुण ।

यत्काथ्यमानंनिर्वेगंनिष्फेनंनिर्मलंभवेत् । अर्द्धावशि-  
ष्टंभवति तदुष्णोदकमुच्यते ॥ कफमेदोनीलामघ्नंदीप-  
नंवस्तिशोधनम् । कासश्वासज्वरहरं पथ्यमुष्णोदकंसदा ॥  
तसंपाथःपादभागेनहीनं पथ्यंप्रोक्तंवातजातामयघ्नम् ।

अर्धांशोर्ननाशयेद्वातपित्तं पादप्रायंतत्तुदोषत्रयघ्नम् ॥

तप्तायःपिंडसंसिक्तलोष्टनिर्वापितंजलम् ।

सर्वदोषहरं पथ्यंसदानैरुज्यकारकम् ॥

उष्णोदकंश्रेष्ठतमंवदंतिविश्वायवानीसहितंक्रमेण ।

कफेचवातेनचपित्तरोगेसर्वेषुरोगेषुनशीतलाम्बु ॥

अर्थ—जो औटानेसे निर्वेग, जागरहित, निर्मल और आधारहजावे  
उसको उष्णोदक कहते हैं, यह कफ, मेदा, वादी, आम, श्वास, खाँसी, ज्वर  
इनको दूरकरे, दीपन है और वास्तिको शुद्धकरे है, उष्णोदक प्राणीको  
सदैव पथ्य है । तहाँ चतुर्थांश जलाहुआजल वातके रोगोंमें पथ्यहै, आधा-  
जला हुआ जल वातपित्तविकारोंको नष्टकरे और जो जलकर चौथाई  
रहगया हो ऐसा जल त्रिदोषनाशक जानना । लोहेके गोलेको अग्निमें  
लाल करके अथवा ईंटको अग्निमें लाल करके जलमें बुझाय देवे, वह  
जल सर्वदोष हरण कर्ता, पथ्य तथा सदैव आरोग्यकारी है । सोंठ अज-  
मायनको डालके औटायाहुआ जल सर्वोत्तमहै, तहाँ सोठडाला जल क-



फरोगमें और अजमायनडाला हुआ वादीके रोगमें पथ्य है, परंतु ये दोनों जल पित्तरोगमें हितकारी नहीं हैं एवं सब रोगोंमें शीतलजल पथ्यनहीं है ॥

ऋतुविशेषमें जलकायके नियम ।

शारदंचार्धपादोनंपादहीनंतु है मतम् । शिशिरे च वसंतेश्च  
ग्रीष्मे चार्धवशोपितम् ॥ विपरीते ऋतौ तद्वत्प्रावृष्यष्टा-  
वशोपितम् ॥

अर्थ—शरद ऋतुमें आठवों भागजल, हेमंत ऋतुमें चतुर्थांशजल शिशिर वसंत और ग्रीष्म ऋतुमें अर्धवशेष एवं ऋतुके विपरीततामें और चौमासेमें अष्टावशेष जल पीना परम उत्तम कहा है ॥

रात्रिमें सेवित उष्णजलके गुण ।

भिनत्ति श्लेष्मसंघातं मारुतं चापकर्षति ।

अजीर्णं जरयत्याशु पीतमुष्णोदकं निशि ॥

अर्थ—रात्रिमें गरम जलपिया हुआ कफके समूहको वादीको और अजीर्णको नष्ट करता है ॥

उष्णोदकका प्रयोग ।

पार्श्वशूले प्रतिश्याये वातरोगे गलग्रहे । आध्याने स्तिमि-  
ते कोष्ठे सद्यः शुद्धेन वज्वरे ॥ द्विकायां स्नेह पीते च शीता-  
म्बुपरिवर्जयेत् ॥

अर्थ—पसवाढेके, दर्दमें सरेकमां, वादीका रोग, गलग्रह, अफरा, कोठेकी अशुद्धी जो वमन विरेचन द्वारा तत्काल शुद्ध हुआ हो, नवीनज्वर, हिचकी और, जिसने स्नेहपान करा हो, इन सबको शीतल जलपीना वर्जित है ॥

उष्णजल थोड़ा पीना ।

अरोचके प्रतिश्याये प्रसेके श्वयथुक्षये । मंदाग्रावुदरे कोष्ठे  
ज्वरे नेत्रामये तथा ॥ व्रणे च मधुमेहे च पानीयं मंदमाचरेत् ॥

अर्थ—अरुचि, सरेकमां, प्रसेक, सूजन, क्षय, मंदाग्नि, उदररोग, कोठेका रोग, ज्वर, नेत्ररोग, व्रणरोग और मधुप्रमेह इन रोगोंमें इस प्राणीको पानी थोड़ा पीना चाहिये ॥

शृतशीतजलकेगुण ।

गुल्माशोथदृणीक्षयेषुजठरे मंदानलाध्मानके शोफेपां  
डुगलग्रहे व्रणगदेमेहेचनेत्रामये । वातारुच्यतिसारके-  
कफयुतेकुष्ठेप्रतिश्यायके उष्णवारिसुशीतलंशृतहिमं  
स्वल्पंप्रदेयंजलम् ॥

अर्थ—गोला, बवासीर, सग्रहणी, क्षय, उदररोग, मदाग्नि, अफरा,  
सृजन, पांडुरोग, गलग्रह व्रणरोग, प्रमेह, नेत्ररोग, वादीका रोग, अरुचि,  
कफातिसार, कोठ, पीनस इन सब रोगोंमें औंटेहुए जलको शीतल  
करके थोड़ा २ पीनेको देवे ॥

अथउष्णजलविधिः ।

आमंजलंजीर्यतियाममात्रंतदर्धमात्रंशृतशीतलंच ।

तदर्धमात्रंतुशृतंकदुष्णंपयप्रपाकेत्रयएवकालाः ॥

अर्थ—बिना औंटाजल १ प्रहरमें पचता है और औंटापकर शीतल  
कराहुआ जल आधे प्रहरमें पचता है, एव औंटापके कुछ २ गरम पीनेसे  
चौथाई प्रहरमें पचता है, ये जलपचनेके तीनही काल है ॥

अधिकजलपीनेकेदोष ।

जलाधिक्यान्मनुष्याणामामवृद्धिःप्रजायते। आमवृद्ध्या  
तुमंदाग्निर्मंदाग्नौचाप्यजीर्णता ॥ अजीर्णेनज्वरोत्पत्ति  
ज्वराद्वै धातुनाशनम् । धातुनाशात्सर्वरोगाजायन्ते  
चोत्तरोत्तरम् ॥

अर्थ—अधिक जलपीनेसे मनुष्योंके आम बढ़ती है, आमके बढ़नसे  
मंदाग्निहोती है, मदाग्निसे अजीर्ण—अजीर्णसे ज्वरकी उत्पत्ति—ज्वरसे  
सब धातुओंका नाशहोता है, धातुनाश होनेसे सपूर्ण रोग एकके पीछे  
दूसरा होता है अतएव अधिकजल पीना वर्जित है ॥

शर्बत ।

शर्करासहितंनीरं कफकृत्पवनापहम् । सिताक्षितोप-  
लायुक्तंशुक्रलं दोषनाशनम्॥ सगुडंमूत्रकृच्छ्रघ्नंपित्तश्ले-

प्मकरं भवेत् ॥ स्निग्धं स्वादु हिमं हृद्यं दीपनं वस्तिशोधनम् ।

वृष्यं पित्तपिपासाघ्नं नालिकेरोदकं लघु ॥

अर्थ—शरबत पीना कफकर और वादीको हरै है, सपेद चीनीका शरबत वीर्यको बढावे और दोषोंका नाश करे है । गुडका शरबत मूत्रकृच्छ्रको नष्टकरे और पित्तकफको करै है । नारियलका जल चिकना, स्वादु, शीतल, हृदयको हितकारी, दीपन और वस्तीको शुद्धकरे है, वीर्यवर्द्धक, पित्त और प्यासको नष्टकरे एवं हलका है ॥

धारापातेन विष्टं भिदुर्जरं पवनाहतम् ।

शृतशीतं त्रिदोषघ्नं बाह्यान्तर्भावशीतलम् ॥

अर्थ—वर्षाका जल विष्टभी होता है और पवनसे ताडित जल दुर्जर होता है, एवं औटायेके शीतल करा हुआ जल त्रिदोषनाशक तथा बाहर भीतरसे शीतल होता है ॥

दिवा शृतं तु यत्तोयं रात्रौ तद्गुरुतां व्रजेत् ।

रात्रौ शृतं तु दिवसे गुरुत्वमधिगच्छति ॥

अर्थ—दिनका औटा हुआ जल रात्रिमें भारी हो जाता है और रात्रिमें औटाया हुआ जल दिनमें भारी हो जाता है, इसी कारण दिनमें औटा हुआ जल दिनमें पीवे और रात्रिका औटा जल रात्रिमें पीवे ॥

जलशोधनविधिः ।

जलके शोधनेको तीन लकड़ीकी और तीन खानेकी टिकटी बनवावे वह बीचमें छेदवाले हों उनमें क्रमसे छेददार चारघडा रखे ऊपरके घडेमें पक्केकौले भरके जल छोडदे, दूसरेमें पीली और चिकनी मिट्टीके कंकरभरे तीसरेमें बालूरेतभरे और नीचेके घडेको खाली रखे, उसमें क्रमसे जल टपक टपककर जमा होवेगा ये शुद्धजल करने की विधि है ॥

तरुणज्वरमेकादेकादेनानिषेधः ।

न कपायं प्रशंसन्ति कदाचित् तरुणज्वरे ।

कपायेणाकुलीभूता दोषा जेतुं सुदुस्तराः ॥

अर्थ—शुद्धिमान् वैद्य तरुण ज्वरमें कदाचित् काढादेना अच्छा नहीं कहते क्योंकि यदि तरुणज्वरमें कपाय दीनी जावे तो दोष व्याकुल हो जाते हैं उन व्याकुल दोषोंका जीतना बड़ा कठिन है ॥

कपायं यः प्रयुंजीतनराणांतरुणज्वरे ।

ससुप्तकृष्णसर्पतुकराग्रेणपरामृशेत् ॥

अर्थ—जो वैद्य, रोगी मनुष्योंको तरुण ज्वरमें काढापीनेको देता है वह सोते हुए कालियसांपको उंगलियोंसे छूकर जगाता है । अर्थात् जैसे काला सांप इसप्राणीको मारडालता है, उसी प्रकार तरुण ज्वरमें काढा देना प्राणोंको हरण करता है ॥

चतुर्भागावशिष्टस्तु यः षोडशगुणांभसा ।

सकपायः कपायः स्यात्सर्वज्वर्यस्तरुणज्वरे ॥

अर्थ—जो सोलहगुने जलमें औटाया और चार भाग बाकी रहनेपर उतार लिया वह कपाय, कपाय कहलाती है इसको तरुणज्वरमें देना वर्जित है ॥

नवज्वरेमलस्तंभात्कपायोविषमज्वरम् ।

कुरुतेऽरुचिहृल्लासहिष्माध्मानादिकानपि ॥

अर्थ—नवीन ज्वरमें कपाय देनेसे वो मलकास्तंभन करती है, अतएव विषम ज्वरको करे है तथा अरुचि, हृल्लास, हिचकी और अफरा आदि रोगोंको करे है ॥

अजीर्णद्रवशूलाद्व्येसमितीव्ररुजिज्वरे ।

नपिबेदौषधंतद्विभूयएवाममावहेत् ॥

अर्थ—अजीर्ण, द्रवपदार्थजन्यशूलमें, साम और तीव्रज्वरमें औषध कदाचित् नहीं पीवे, यदि पीवे तो वो नष्ट हुई आमको फिर मगट करती है ॥

परिपेकान्प्रदेहांश्चस्नानंसंशोधनानिच ।

दिवास्वापंव्यवायंचव्यायामंशिशिरंजलम् ।

क्रोधप्रवातभोज्यानिवर्जयेत्तरुणज्वरी ॥

अर्थ—जलका तरहा देना, चंदनादिकका लेप, स्नान, वमन, विरेचन द्वारा संशोधन, दिनमें सोना, भैशुन करना, दंडकसरत करना, शीतल जलका स्पर्श, क्रोध करना, हवामें बैठना और भोजन करना इन सब कर्मोंको तरुणज्वरवाला त्याग देवे ॥

शोषछर्दिमदंमूर्च्छाभ्रमतृष्णाद्यरोचकान् ।

प्राप्नोत्युपद्रवानेतान्परिपेकादिसेवनात् ॥

अर्थ—यदि तरुण ज्वरवाला उक्तपरिषेकादिकमोंकोकरे तो शोथ, छर्दि, मद, मूर्च्छा, भ्रम, तृष्णा और अरुचि इत्यादि उपद्रवोंको प्राप्त होता है ॥

परिषेकादिप्रत्येकके दूषणहारीतसे ।

व्यायामाज्वरसंवृद्धिर्व्यायात्स्तंभमूर्च्छनम् । मृतिश्च-  
स्नेहपानात्तुमूर्च्छाछर्दिमदोरुचिः ॥ शुर्वन्नभोजनात्स्व-  
प्नाद्विष्टंभो दोषकोपनम् । अग्निसादः खरत्वं च स्त्रो-  
तसांचाप्रवर्तनम् ॥

अर्थ—ज्वरमे दंड कसरत करनेसे ज्वरकी वृद्धि होती है, स्त्रीसंगक-  
रनेसे स्तंभ, मूर्च्छा और मृत्यु होती है, घृतादिपान करनेसे मूर्च्छा, वमन,  
मस्तपना और अरुचि होती है, भारी अन्न भोजन करनेसे और दिनमें  
सोनेसे अफरा और घातादिदोषोंका प्रकोप होता है एवं अग्निकी शांति  
होना, तथा खरत्व होना एवं नेत्र नासिका आदि छिद्रोंका रुकना  
इत्यादि दुःख होते हैं ॥

आसप्तरात्रात्तरुणज्वरमाहुर्मनीषिणः ।

मध्यंचतुर्दशाहंच पुराणस्यात्ततः परम् ॥

अर्थ—सातरात्रि पर्यंत ज्वरकी तरुणावस्था पंडितजन कहते हैं,  
चौदह दिनपर्यंत ज्वरकी मध्यावस्था और चौदह दिनके उपरांत पुरा-  
ना ज्वर ऐसे कहलाता है ॥

सप्ताहेनतुपच्यंते सप्तधातुगतामलाः ।

निरामश्चाप्यतः प्रोक्तो ज्वरः प्रायोऽमेऽहनि ॥

अर्थ—सातदिनमें सात धातुओंके मल पचते हैं, अतएव प्रायः आठ-  
वेदिन ज्वर निराम कहलाता है ॥

ज्वरपाककी अधधी ।

वातजः सप्तरात्रेण दशरात्रेण पित्तिकः ।

श्लेष्मजो द्वादशाहेन ज्वरः पाकं प्रपद्यते ॥

अर्थ—वातजन्य ज्वर सातरात्रिकरके—पित्तिकज्वर दशरात्रि करके एवं  
कफजन्यज्वर चारह दिनमें पकता है ॥

वाते द्वे पित्ते चैकं कफे दिनचतुष्टयम् ।

सप्ताहं वातपित्ते च कफपित्ते दशस्मृताः ॥

**कफवातेद्वादशाहं त्रिदोषैवविंशतिः ॥**

अर्थ—अब ग्रंथान्तरसे लिखते हैं कि, वातजन्य ज्वर २ दिनमें, पित्त-जन्य १ दिनमें, कफजन्य ४ दिनमें, वातपित्तज्वर ७ दिनमें, कफ पित्तज्वर १० दिनमें, कफवातज्वर १२ दिनमें एवं त्रिदोषज्वर २० दिनमें पचता है ॥

**सप्ताहादौषधकेचिदादुरन्येदशाहतः ।**

**केचिल्लघ्वन्नभुक्तस्य देयमामोत्वणेन तु ॥**

अर्थ—किसी आचार्यका मत है कि, सात दिनमें औषध देना, कोई दशदिनसे औषध देना कहते हैं, कोई कहता है कि, हलका अन्न देकर औषध देवे, परंतु आमोत्वर्णमें औषध कदाचित् न देवे ॥

**अपच्यमानं भैषज्यं भूयोजनयति ज्वरम् ।**

**मृदुज्वरो लघुर्देहश्चलितश्चमलो यदा ॥**

**अचिरज्वरितस्यापि भैषज्यं योजयेत्तदा ॥**

अर्थ—जो औषध नहीं पची वो फिर ज्वरको प्रगट करे है । अब औषध देनेका समय कहते हैं कि, जिस रोगीका ज्वर धीमा पड़ गया हो, देह हलकी हो, मल चलायमान हो गए हों ऐसे तत्काल आए द्रुपे ज्वरवालेको भी औषधी वैद्य निस्संदेह देवे ॥

**गृह्णवाग्भटे ।**

**षड्दशद्वादशाहेषु व्यतीतिषु क्रमेण वै ।**

**वातपित्तकफातृष्णेष्वन्नकाला इमे त्रयः ॥**

अर्थ—छः, दश, बारह इतने दिन व्यतीत होनेपर क्रमसे, वात, पित्त और कफके ज्वरमें रोगीको अन्न देना ये तीन काल अन्नके देनेमें कहे हैं ॥

**द्वंद्वजे संनिपाते च व्याधवारोग्यदर्शने ।**

**सतियवागुग्रूपादिकल्पयेदतिनैपुणात् ॥**

**मुद्रान्मसूरांश्च कान्कुलत्थान्मकुष्टकान्पाचनयूपहेतून् ॥**

**हिताहितानां विहितांश्च पेयान्दद्याद्यवागूमपि पाचनैः स्वैः ॥**

अर्थ—द्वंद्वज और संनिपातजन्य रोगोंमें जब आरोग्य हो जावे तब यवागू और यूपकी कल्पना वैद्य बुद्धिमानोंके साथ करे भूंग, मसूर, चना,

अर्थ-लघु ( ह. अभि. पुष्य. अभि. ) मृदु ( मृ. रे. चि. अनु. ) चर ( स्वा. पुन. श्र. ध. श. ) मूल इननक्षत्रोंमें द्विस्वभावलभ ( मिथुन, कन्या, धन, मीन ) में शुक्र, चंद्र, गुरु, बुध और रविवारमें तथा १२-७ और ८ स्थान शुद्धलभमें और उत्तम तिथिमें ( अर्थात् रिक्ता, अमा आदि वर्जित तिथिमें ) और जिसदिन जन्मका नक्षत्र न हो ऐसे शुभसमयमें प्रथम औषध सेवन करना शुभ है ॥

परंतु यह सुदुर्लभ देखना साधारण रोगमें लेना और जो रोग होतेही घोर उपद्रवकारी शीघ्रबढनेवाले हैं जैसे हैजा आदि उनमें वैद्यको कदाचित् सुदुर्लभ नहीं देखना चाहिये ॥

औषधग्रहणमेंमंत्र ।

ॐ अमृतं भक्षयामि स्वाहा ॥

अच्युतानंतगोविंदनामोच्चारणभेषजात् ।

नश्यंतिसकलारोगाः सत्यं सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥

इनको प्रथम पढ़कर फिर औषध पीवे तो वह बहुत जल्दी गुणकरेहै। तथा रोगी पडा २ इसश्लोकको मनमें जपाकरे तो रोग शीघ्र दूरहीवे ॥

कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनंदनाय च ।

प्रणतक्लेशनाशाय गोविंदाय नमोनमः ॥

औषधग्रहणविधिः ।

तत्रोषविश्यविश्रांतः प्रसन्नवदनः क्लेशः । औषधं हेमरजतं  
मृद्गाजनपरिष्ठितम् ॥ पिवेत्प्रसन्नवदनः पीत्वा पात्रमधो  
मुखम् । निक्षिप्य पात्रे सलिलं ताम्बूलान् पुष्पकल्पयेत् ॥

अर्थ-रोगी बैठकर और परिश्रमको दूरकर, प्रसन्नमुख और नेत्र-कर सुवर्ण, चांदी अथवा मिट्टीके पात्रमें स्थित औषधको प्रसन्न मुखसे पीवे और औषधको पीकर उसपात्रको ओंघेमुख रखदेवे फिर जलसे हाथ धोकर पानकी बीड़ी आदिको चचावे ॥

गंडूषवर्जन ।

यमदूतपिशाचाद्याय शृंगधर्वराक्षसाः ।

तेभ्रन्त्यौषधीर्याणिततो गंडूपवर्जनम् ॥

अर्थ-यमके दूत, पिशाच ( आदिशब्दसे भूत, प्रेत, बेतालादिक ) यक्ष, गंधर्व, राक्षस ये सब औषधके पराक्रमको नष्टकरदेते हैं इसीसे औषधको पीकर कुरला न करे ॥

काथस्य कल्कस्य रसस्य याममासत्रयंचाञ्जनचूर्णवीर्यम् ।

षण्मासकारुण्यगुडलेहवीर्यसंवत्सरं तैलघृतस्य वीर्यम् ॥

अर्थ-काथ ( काढा ) कल्क, स्वरस इनमें १ महर पर्यंत अपनी शक्ति रहती है और अंजन, सुरमा आदि चूर्ण ( हिंघाष्टकादि ) इनकी तीनमहीने शक्ति रहती है, गुड ( बाहुशालगुडादि ) लेह ( कल्याणावलेह आदि ) इनमें छः महीने पर्यंत वीर्य रहता, एवं घृत और तैलमें १ वर्ष पर्यंत वीर्य रहता है, उपरांत हीनवीर्य होजाती है ॥

वातज्वरके लक्षण ।

वेपथुर्विषमो वेगः कंठोष्ठमुखशोषणम् ।

निद्रानाशः क्षवः स्तंभो गात्राणां रौक्ष्यमेव च ॥ ८ ॥

शिरोहृद्गात्ररुग्बक्रैरस्यं गाढविद्धता ।

शूलाध्माने जृम्भणं च भवन्त्यनिलजे ज्वरे ॥

अर्थ-कंपहोना, ज्वरका विषमवेग, कंठ, होठ, मुख इनका सूखना, निद्राका नाश, छींकका न आना, देहका रूखापना, चकारसे नेत्र, विष्टा, मूत्र इनका काला होना और आचारी " रौक्ष्यमेवच " इसजगे " श्यावांगमलमूत्रता " ऐसा पाठ कहते हैं और मस्तक, हृदय, गात्र इनमें पीडा । कोई (शंका) करे कि, गात्र पदके धरनेसे ही मस्तक हृदय आदिका बोध होगया फिर (मस्तक) और हृदय पद क्यों धरा ? उत्तर ये दोनों पदके धरनेसे इनमें दर्दकी आधिक्यता दिखाई अर्थात् मस्तक हृदयमें बहुत पीडा होय मुखकी विरसता, मलका रुकना, शूल, अफरा, जम्माई ये लक्षण वातज्वरके होते हैं ॥

वातज्वरपरशुंक्वादिपाचन ।

विश्वभेषजकैरात कुरुविंदगुडूचिका । पाचनं स्मृतमेते-  
पां देयं पवनजे ज्वरे ॥



अर्थ-सोंठ, चिरायता, नागरमोया और गिलोय इनका काढा वातज्वरमें पाचनार्थ देवे ॥

शुद्ध्यादिपाचन ।

गुडूचिकोपणाजटामहौषधैश्च पाचनम् ।

मरुज्ज्वरे सर्लिंगके दिने च सप्तमे हितम् ॥

अर्थ-गिलोय, पीपल, जटामांसी, सोंठ इनका काढा वातज्वरका पूर्वरूपहोकर जाने उपरांत सातवेंदिन हितकारकहै ॥

शठचादिकाढा ।

शठानिशाद्वयंदारुशुंठीपुष्करमूलकम् ॥ एलागुडूची

कटुकीर्पटश्चयवासकः ॥ शृंगीकिराततित्तचदशमू-

लंतथैवच ॥ काथमेपांपिबन्कृष्णासिंधुचूर्णयुतंनरः ॥

ज्वरान्सर्वान्द्रुतंहन्यान्नात्रकार्याविचारणा ॥

अर्थ-कचूर, हलदी, दारुहलदी, देवदारु, सोंठ, पोहकरमूल, इलायची, गिलोय, कुटकी, पित्तपापडा, जवासा, काकड़ासिंही, चिरायता, कुटकी और दशमूल इनका काढा पीपल और सेंधानिमक डालके देवे तो सर्व-ज्वरोंका शीघ्र नाश करे इसमें संशय नहीं है ॥

श्रीपर्ण्यादिपाचन ।

श्रीपर्णीतर्कारीश्रीफलटिटूकपाटलामूलैः ।

पाचनमुचितंमारुतजनितज्वरहारिवारिभिःकथितैः ॥

अर्थ-श्रीपर्णी, अरनी, बेलगिरी, टेंदू, पाडर इनका काढा करके वात-ज्वरमें देवे यह पाचनहै ॥

शुद्ध्यादिकाढा ।

शुद्धचीसारिवाद्राशाबलाचांशुमतीतथा ।

एषोपिपरमः सिद्धोवातज्वरविनाशनः ॥

अर्थ-गिलोय, सरिवन, दाख, खिरौंदी और शालपर्णी इनका काढा वातज्वरमें देवे यह उत्तम है ॥

दर्भमूलादिकाढा ।

दर्भमूलागोक्षुरकंपचेत्पादावशेषितम् ।

शर्कराघृतसंयुक्तं पिवेद्वातज्वरापहम् ॥

अर्थ—कुशकीजड़, खिरंटी और गोखरू इनका काढा चतुर्धाशकरके शीतल होनेपर मिश्री तथा शहत मिलायके देवे तो वातज्वरको नाशकरे त्रिफलादिकाढा ।

श्रीफलंसर्वतोभद्राकामदूतीचशोणकः । तर्कारीगोक्षुरः  
क्षुद्रावृद्धतीकलशीस्थिरा ॥ रास्नाकणाकणामूलकुप्टंशुं  
ठीकिरातकः । मुस्तामृतामृतावालंद्राक्षयासः शता-  
ह्विका ॥ एपांकाथोनिहंत्येवप्रभंजनकृतज्वरम् । सोपद्र-  
वंचयोगोयंसर्वयोगवरःस्मृतः ॥

अर्थ—बेलगिरी, छोटीकंभारी, लालपाठर, टेंडू, अरनी, गोखरू, कटेरी, बड़ीकटेरी, पिठवन, सालपर्णी, रास्ना, पीपल, पीपरामूल, कूठ, सोंठ, चिरायता, नामरमोथा, गिलोय, खिरंटी, नेत्रवाला, दाख, धमासा और सतावर इनका काढा वातज्वरका नाश करे ॥

भूनिंबादिकाढा ।

भूनिंबमुस्ताजलकंटकारिद्र्यामृतागोक्षुरनागराणाम् ।

सशालिपर्णीद्वयपौष्कराणांकाथंपिवेद्वातभवज्वरार्तः ॥

अर्थ—चिरायता, नागरमोथा, नेत्रवाला, कटेरीदोनों, गिलोय, गोखरू, सोंठ, सालपर्णी, पृष्ठपर्णी, पोहकरमूल इनका काढा जिसको वातज्वर आता हो उसको देवे ॥

दुरालभादिकाढा ।

दुरालभानागरतित्तापाठासठवृषैरंडजटाकपायः ।

पीतः सशूलंशमयेज्ज्वरंच सश्वासकासंपवनप्रसूतम् ॥

अर्थ—धमासा, सोंठ, कुटकी, पाठ, कचूर, अदूसा और अंडकी जड़ इनका काढा पित्त, शूल, श्वास, खांसी तथा वातज्वर इनका नाशकरे ॥

## शुंभ्यादिकाढा ।

विश्वामृताग्रंथिकसिद्धितोयंरुज्ज्वरः स्यात्पिबतःकुतोयम् ।  
काथोथकुस्तुंवरुदेवदारु शुद्रौषधैः पाचनमत्रचारु ॥

अर्थ—सोंठ, गिलोय और पीपरामूल इनका काढा पीनेवाले मनुष्योंके वातज्वर कहां रहता है और इस वातज्वरपर धनियां, देवदारु, कटेरी और मोठके काढेका पाचन सुंदर है ॥

## पंचमूलादिकाढा ।

पंचमूलीबलारास्नाकुलित्यसहपौष्करैः ।

काथोहन्याच्छिरः कंपपर्वभेदमरुज्ज्वरम् ॥

अर्थ—पंचमूल, खरैटी, रास्ना, कुलथी और पोहकरमूल इनका काढा शिरःकंप, संधियोंकी पीड़ा और वातज्वर इनका नाश करे ॥

## कणादिकाढा ।

कणारसोनामृतवल्लिविश्वानिदग्धिकासिंदुकभूमिनिवैः ।

समुस्तकैराचरितः कपायोहिताग्निनाहंतिगदानिमांस्तु ॥

ज्वरंरुत्कोपसमुद्रवंतथावलासजं चानलमंदतांच ।

कंठवारोधं हृदयावरोधं स्वेदं च हिक्कांच हिमत्वमोहान् ॥

अर्थ—पीपल, लहसन, गिलोय, सोंठ, कटेरी, सह्यालू, चिरायता और नागरमोथा इनका काढा लेकर पथ्यसे रहे तो वातज्वर, कफज्वर, मंदामि, गला तथा हृदयका रुकना, पसुनि, हिचकी और शीत, मोह इनका नाश करे ॥

## काकोल्यादिकाढा ।

काकोलीवृहतीमुस्ताकुण्डारुवृषामता ।

शुंठीकाथः सितायुक्तो हतिवातज्वरं परम् ॥

अर्थ—काकोली, कटेरी, नागरमोथा, बूठ, देवदारु, अदूसा और सोंठ इनका काढा मिश्री डालके देये तो वातज्वर दूर हो ॥

अमृतादिकाढा ।

अमृतानागरंमुस्तानिंशाह्वयवासकैः ।

वातज्वरेप्रदातव्यः कृष्णायुक्तकपायकः ॥

अर्थ-गिलोय, सोंठ, नागरमोथा, हलदी और जवासा इनका काढा पीपरका चूर्ण डालके वातज्वरमें देवे ॥

ग्रंथ्यादिकाढा ।

ग्रंथिकंपर्पटोवासाभांगींविश्वागुडूचिका ।

एभिःसुसाधितंतोयंतीव्रवातज्वरापहम् ॥

अर्थ-पीपरामूल, पित्तपापरा, अहूसा, भारंगी, सोंठ और गिलोय इनका काढा तीव्रवातका नाश करे ॥

शालिपर्ण्यादिकाढा ।

शालिपर्णीबलाद्राक्षागुडूचीसारिवातथा । आसांक्राथं-  
पिवेत्कोष्णंतीव्रवातज्वरच्छिदम् ॥ काश्मरीसारिवाद्रा-  
क्षात्रायमाणानृताभवः । कपायःसगुडःपीतोवातज्वर-  
विनाशनः ॥

अर्थ-शालपर्णी, खरैटी, दाख, गिलोय और सरिवन इनका काढा कुछ गरम पीवे तो तीव्र वातज्वर दूरहोकर भारी, सरिवन, दाख, त्रायमाणा और विलोय इनके काढेमें गुड डालके पीवे तो वातज्वर नाश होवे ॥

गुडूच्यादिपाचन ।

गुडूचीपिप्पलीमूलनागरैःपाचनंस्मृतम् ।

दद्याद्रातज्वरेपूर्णंलिङ्गेसप्तमवासरे ॥

अर्थ-गिलोय, पीपरामूल और सोंठ इन तीन औषधोंका काढा ज्वर पूर्ण दशमें आनेसे सातवे दिन देवे तो वातज्वर नष्ट हो ॥

किरातादिकाढा ।

किराताब्दामृतोदीच्यवृहतीद्वयगोक्षुरैः ।

संस्थिराकलशीविश्वैःकाथोवातज्वरापहः ॥

अर्थ-चिरायता, नागरमोथा, गिलोय, नेत्रवाला, दोनों कटेरी, गोखरू, पिठवन, सालपर्णी और सोंठ इनका काढा वातज्वरनाशक है ॥

पिप्पल्यादिकाढा ।

पिप्पलीसारिवाद्राक्षशतपुष्पाहरेणुभिः ।

कृतःकपायः सगुडोहन्यात्पवनजंज्वरम् ॥

अर्थ-पीपर, सारिवा, दाख, सोंफ, रेणुकाकेबीज इनका काढा कर गुड़ डालके देवेतो वातज्वर नष्ट हो ॥

उशीरादिकपाय ।

उशीरकलशीमहौषधकिरातकांभोधरस्थिराबृहतिकाद्र-  
यानृतलतात्रिकंठैःकृतम् । कपायकममुपिवेत्पवनजज्व-  
रव्याकुलःपुमान्दशशतच्छदछदमदग्रसल्लोचने ॥

अर्थ-हे कमलदललोचने! नेत्रवाला, पिठवन, सोंठ, चिरायता, नागरमोथा सालवन, कटेरी दोनों, गिलोय और गोखरू इनका काढा वातज्वरपीडितोंको देनेसे उनका ज्वर शांत होवे । यह वैद्यजीवनमें लिखा है ॥

मरीच्यादिकाढा ।

मरीचंरुचकंशुंठीकिरातंचहरीतकी ।

पिप्पलीकटुकीचैववातज्वरविनाशनम् ॥

अर्थ-फालीमिरच, अंडकी जड़, सोंठ, चिरायता, छोटी हरड़, पीपल, कुदकी इनका चूर्ण अथवा काढा पीनेसे वातज्वर दूर होवे ॥

त्रिफलादिचूर्ण ।

त्रिफलाव्योपगुडकंशर्करात्रिवृतार्धकम् । मोदकंभक्षयि-  
त्वातु पिवेच्चोष्णजलंपुनः । पार्श्वशूलैरुचौकासेज्वरेचा-  
निलसंभवे ॥

अर्थ-त्रिफला, सोंठ, मिरच, पीपल इनका चूर्ण गुड़से अथवा निशो-  
धके चूर्णमें दुग्गी सांड मिलाय भक्षण करे, ऊपरसे गरम जलपीवे तो  
पार्श्वशूल, अरुचि, खौसी और वातज्वर इनका नाश होवे ॥

पिप्पल्यादिचूर्ण ।

तुल्यांशमर्दयेत्खल्वेपिप्पलीहिगुलंविषम् ॥

द्विगुंजंमधुनादेयंवातज्वरविनाशनम् ॥

अर्थ-पीपल, हिगुल तथा सिंगियाविष ये समान भागले खरल करे, फिर इस चूर्णको २ रत्ती शहतके साथ देवे तो वातज्वरका नाश होय ॥  
द्राक्षादिचूर्ण ।

द्राक्षादुरालभापथ्याचिकणीसमभागतः ।

एतागुडान्वितानूनं नाशयंत्यनिलज्वरम् ॥

अर्थ-दाख, धमासा, छोटी हरड़ तथा चिकनी सुपारी इनको समभाग ले चूर्णकरे इसमेंसे २ तोले गुड़में मिलाकर देवे तो वातज्वर नष्ट होय ॥  
शतावरीस्वरसः ।

सद्योवातज्वरंहन्ति शतावर्यामृतारसः ।

समासात्सगुडःपीतो बलहीनस्यदेहिनः ॥

अर्थ-सतावर, गिलोय इनका स्वरस गुड़ मिलाकर देनेसे निर्वल पुरुषका वातज्वर शांत होय

कल्पतरुरसः ।

शुद्धं शंकरशुकमक्षतुलितंमारारिनारीरजस्तावत्तावदु-  
मापतिस्फुटगलालंकारवस्तुस्मृतम् । तावत्येवमनः  
शिला च विमलातावत्तथाटंकणं शुंठीद्वयक्षमिताक-  
णाचमरिचंदिकपालसंख्याक्षकम् ॥ विपादिवस्तूनि-  
शिलोपरिष्टाद्विचूर्णयेद्वाससिशोधयेच्च । ततस्तुखल्वे  
रसगंधकौचचूर्णंचतद्यामयुगंविमर्द्य ॥ कल्पतरुनामधेयो  
यथार्थनामारसःश्रेष्ठः । सर्मारणश्लेष्मगदनहरतेमात्रा-  
स्यगुंजैका ॥ आर्द्रकेणसममेपभक्षितोहन्तिवातकफसंभ-  
वंज्वरम् । श्वासकासमुखसेकशीततावाह्निमांध्यमरुचिच  
नाशयेत् ॥ नस्येनाश्वेवहरति शिरोर्त्तिकफवातजाम् ।  
मोहंमहांतमपिचप्रलापंक्षवथुग्रहम् ॥

अर्थ—पारा, गंधक, वच्छनागविष, मनसिल, सुहागा, प्रत्येक शुद्धकरे हुए एक २ तोले लेवे, उसमें सौंठ २ तोले, कालीमिरच ८ तोले, पीपल ८ तोले इस प्रमाण डालके वच्छनागादि औषधोंको बारीक कूट पीस कपड छानकर लेवे फिर पारिगंधककी कजलीकर उसमें उक्त औषधोंके चूर्णको मिलाय देवे सबको एकत्र कर दो प्रहर खरल करके जलसे एक २ मासिकी गोली बनावे, तो यह कल्पतरु नामक श्रेष्ठ रस बनकर तयार हो, इसमेंसे १ गोली प्रातःकाल सेवन करे तो घात कफके रोग दूर होंगे इस रसको अदरखके रससे खाय तो घात कफज्वरका नाश करे तथा श्वास, खांसी, मुखसे लारका बहना, शीत, मंदामि और अरुचि इनका नाश करे, एवं इस रसकी नस्य लेनेसे कफवातसे प्रगट हुई मस्तकपीडाकी हरणकरे। उसीप्रकार बड़ा भारी मोह, प्रलाप और छींकका न आना इनको नाश करे ॥

भैरवरसः ।

विषमद्वौषधिमागधिकोपणद्युमणिरक्तकमार्द्रकमर्दितम् ।

क्रमविवर्द्धितमुद्रलितज्वरं हरतिभैरवपरसोवरः ॥

अर्थ—सिगियाविष, सौंठ, पीपल, कालीमिरच ये औषध प्रत्येक एकसे दूसरी अधिक भाग लेवे, सबको कूट पीस आकफे दूध और अदरखके रससे खरलकर गोली बनावे तो यह भैरव रससिद्ध होवे, इसको बलाबल देखके देवे तो घोर वातज्वरको दूर करे ॥

शीतभंजीरसः ।

पारदंरसकंतालंशिखितुथंचटकणम् । गंधकंचसमं पि-  
द्वाकारवेष्टरसैर्दिनम् ॥ ताम्रपात्रोदरेलेप्यंधत्रेपात्रंत्वधो-  
मुखम् । दत्त्वारुध्वा विशोष्याथवल्कलाभिःप्रपूरयेत् ॥  
पचेद्दार्वाग्निनाचुल्यांताम्रपृष्ठगतायदा । स्फुटंतिब्रीहयः  
शुद्धोरसस्तंस्वांगशीतलम् ॥ ताम्रपात्रात्समुद्धृत्यचूर्ण-  
यन्मरिचैःसमम् । शीतभंजीरसोनाम द्विगुंजवातकेज्वरे ॥  
दातव्यःपर्णखंडेन तत्क्षणान्नाशयेज्ज्वरम् । त्रैदिनंविष-  
मंतीव्रंएकद्वित्रिचतुर्थकम् ॥

अर्थ-पारा, खपरिया, हरताल, लीलायोथा, सुहागा और गंधक ये औषध समभाग लेकर कोलेके रसमें १ दिन खरलकरे, फिर उस पिट्टीको ताम्रके पात्रके भीतर लेप करके और उस पात्रके ऊपर दूसरा अधोमुख ताम्रके पात्रमें दावकर सात कपड मिट्टी कर धूपमें सुखाय चूहेपर रख बालुकायंत्रमें तीव्राम्रिसे पचन करावे, जब बालूके ऊपर रखेहुए धान खिलजावे तब अभि भेद कर शीतल करें और औषधको पात्रमेंसे निकाल धरावरकी कालीमिरच मिलायके पैसे २ रत्ती पानमें धरके देवे तो तत्क्षण वातज्वर नाश होवे तथा यह शीतभंजी रस तीनदिन सेवन करे तो, तीव्र विषमवर, एकाहिक, व्याहिक और चातुर्थिक ज्वरोंको शांत करे ॥

भातुलंगादिगुटिका ।

भातुलुंगफलकेसरोद्धतःसिंधुजन्ममरिचान्वितोमुखे ।

हंतिवातकफरोगमास्यगंशोपमाशुजडतामरोचकम् ॥

शर्करादाडिमाभ्यांचद्राक्षादाडिमयोस्तथा ॥

कल्कंविधारयेदास्येशोपवैरस्यनाशनम् ॥

अर्थ-विजोरेकी केशर, सैधानिमक, कालीमिरच, ये तीनों औषध एकत्र खरलकर गोली कर मुखमें रक्खे, इससे मुखसंवंधी कफ वातरोग, शोष, जडता और अरुचि दूर होवे । खांड और अनार अथवा दाख और अनार इनका कल्क शोष तथा मुखकी विरसता दूर होनेके लिये सेवन करे ॥

द्राक्षादिप्रतिसारण ।

द्राक्षामलकयोः कल्कंसघृतं वदनेक्षिपेत् । तेन घृष्ट्वा मु

खस्यांतः कुर्वीत प्रतिसारणम् ॥ जिह्वातालुगलांतस्थः

संशोपस्तेन शाम्यति । सुरसंजायते वक्रं रुचिर्भवति

भोजने ॥

अर्थ-दाख और आमले इनका कल्क घीके साथ मिलाय उसको मुखके भीतर फेरे, उसकी प्रतिसारण कहते है, यह करके उक्त दाख आदिकी गोली मुखमें रक्खेतो जिह्वा, तालु, तथा गला इनका सूखना शांत होय और मुख सुरस होकर भोजनमें रुचि होवे ॥



हरीतक्यादिशुटिका ।

हरीतकीत्रिवृच्चैवदारुकाणांपृथग्भवेत् ॥ पलद्वयंकणाशुं  
ठीगुडूचीगोक्षुरोवरी । सहदेवीविडंगचप्रत्येकंपलसं  
मितम् । मधुनावटिकांकृत्वाखादञ्ज्वरमपोहति ॥ का  
संश्वासंमलस्तंभंवह्निमांघ्र्यनियच्छति ॥

अर्थ—हरडकी छाल, निसोय, विधायरा, प्रत्येक ८ तोले, पीपर, सोंठ, गिलोय, गोखरू, सतावर, सहदेई, वायविडंग ये प्रत्येक तोले ४ प्रमाण लेकर चूर्ण कर शहतसे गोली बनावे यह ज्वर, खांसी, श्वास, मलावरोध और अग्निमांघ्र्य इनका नाश करे ॥

स्वेदकाढनेकेविषयमेंप्रमाणकहतेहैं ।

वातश्लेष्मज्वरेस्वेदंजंघापाश्वोस्थिशूलिनि । पीन  
संश्वासवाधिर्येकास्येतद्विधानवित् । स्रोतसांमार्दवंकू  
त्वानीत्वापावकमाशयम् । हत्वावातकफस्तंभंस्वेदो  
ज्वरमपोहति ॥

अर्थ—वातकफज्वरमें, जंघा, पार्श्वभाग और हड्डी इनमें शूल होनेसे तथा पीनस, श्वास तथा वधिरता ये विकार होनेसे पसीने काढने चाहिये अर्थात् पसीने निकालनेसे इतने गुण होते हैं, रसवाहिनी नाडियोंका नम्र होना तथा अग्निको स्वस्थानमें लावे और वात तथा कफ संबंधी जडत्वको नाशकर ज्वरका नाश करे है ॥

खर्परभृष्टवालुकास्वेदयोग ।

खर्परभ्रष्टपरास्थितकांतिकसंसिक्तवालुकास्वेदः ।

शमयतिवातकफामयमस्तकशूलंगभंगादीन् ॥

अर्थ—वालूको खिपडेमें तपाय उसपर कांजी डाल उसका चफारा देय तो वात कफ रोग, मस्तकशूल तथा अंगोंका टूटना इससे शांत होता है ॥

निद्रानाशनिदान ।

नावनंलंघनंचिताव्यायामः शोकभीकुपः ॥

एभिरेवभवेन्निद्रानाशः श्लेष्मातिसंक्षयात् ॥

अर्थ—नस्य, लंघन, चिता, दंडकसरत, शोक, भय और क्रोध इन कारणोंसे अत्यंत कफनाश होनेसे निद्रा नहीं आती ॥

विजयाचूर्णयोग ।

भ्रष्टं तु विजयाचूर्णं मधुनानि शिभक्षयेत् ।

निद्रानाशेति सारे च ग्रहण्यां पावकक्षये ॥

अर्थ—रात्रिमें भांगको भून उसके चूर्णको शहतके साथ देवे तो निद्रा-नाश, अतिसार, संग्रहणी तथा मंदाग्नि इत्यादि रोग नष्ट होवे ॥

सगुडादिचूर्ण ।

गुडं पिप्पलिमूलस्य चूर्णेनालोडितं लिहन् ।

चिरादपि च संनष्टां निद्रामाप्नोति मानवः ॥

अर्थ—पीपरामूलके चूर्णको गुडके साथ खानेसे बहुत दिनका निद्रा-नाश हुआ होय वो नष्ट होवे ॥

निद्रालानेकी औषध ।

मूलं तु काकमाच्यावद्धं सूत्रेण मस्तकेनियतम् ।

विदधाति नष्टनिद्रां निद्रायाश्चैव सिद्धमिदम् ॥

अर्थ—काकमाची ( मकोय ) की जड़ सूतसे मस्तकमें बांधे तो निद्रा तत्काल आवे यह अनुभवसिद्ध है ॥

पित्तज्वरके लक्षण ।

वेगस्तीक्ष्णेति सारश्च निद्राल्पत्वं तथा वमिः । कंठोष्ठसु-

खनासानां पाकः स्वेदश्च जायते ॥ प्रलापो वक्रकटुता मू-

र्छा दाहो मदस्तृषा । पीतविण्मूत्रनेत्रत्वक्पैत्तिके भ्रम एव च ॥

अर्थ—ज्वरका तीक्ष्णवेग हो अतिसार ( यानी पित्तके वेगसे दस्तका पतला होना न कि, अतिसार रोगहो ) थोड़ी निद्रा आवे, पित्तको कफके स्थानमें पहुँचनेसे वमनका होना, कठ, होठ, मुख, नाक इनका पकना और पसीनोंका आना बढबढाना मुखमें कटुआपन, मूर्च्छा, दाह, उन्मत्तपना, प्यास, विष्टा, मूत्र, नेत्र, देहकी त्वचा इनका पीला होना तथा भ्रम ये लक्षण पित्तज्वरमें होते हैं ॥ शंका ॥ क्योंकि भ्रमको वात

विकारमें लिखा है यासे ये तो वातका धर्म हैं फिर पित्तके विकारमें भ्रमशब्द क्यों कहा ? \* उत्तर तुमने कहा सो ठीक है, परंतु रोग एकही दोषसेही नहीं प्रगट होवे किंतु अनेक दोषोंसे होय है जैसे लिखा है “ न रोगोप्येकदोषजः इति ” और “ पैत्तिके भ्रम एवच ” इस पदमें चकार जो पडा है इससे इस श्लोकमें जो नहीं कहै कोन तीव्रगरमी, लालचकते, शीतकी इच्छा, दाह, अरुचि, इत्यादि जानने ॥

छिन्नादिपाचन ।

छिन्नरुहापिचुमंदकधान्यंविश्वनिशाजनितश्चकपायः ।

पाचनकंगुडमिश्रितमेवपित्तभवेज्वरएवहिपेयम् ॥

अर्थ-गिलोय, नीमकी छाल, धनियां, सोंठ तथा हलदी इनका काठा गुड डालकर देवे यह पित्तज्वरपर पाचन है ॥

दुस्पर्शादिकाढा ।

दुस्पर्शवासाकटुकाहरेणुप्रियंगुभूर्निवकृतःकपायः ।

पीतोहिपित्तप्रभवंसदाहंज्वरंजयेदाशुसितासमेतः ॥

अर्थ-धमासा, अडूसा, कुटकी, पित्तपापडा, फूलप्रियंगु और चिरायता इनका काठा खांड डालकर पीवे तो दाहयुक्त पित्तज्वरका नाश करे ॥

द्राक्षादिकाढा ।

द्राक्षापटोलीपिचुमंदतित्ताहरीतकीसिंहमुखीजलंच ।

धान्याकलोध्रांबुदनागरंचपित्तज्वरांभोनिधिवाडवाग्निः ॥

अर्थ-दाख, पटोलपत्र, नीमकी छाल, कुटकी, छोटोहरड, कटेरी, नेत्रवाला धनियां, लोध, नागरमोथा और सोंठ इनका काठा पित्तज्वररूप समुद्रको बडवाभीके समान है ॥

पित्तज्वरप्रतीकार ।

अमलैःकमलैरथानिलैरलसैःपुष्परजःसमन्वितैः ।

जलकेलिकथाकुतूहलैरपिपित्तज्वरजारुजोजयेत् ॥

अर्थ-श्वेतकमल, सुगंधित पुष्पोंमें होकर आया मंद सुगंध वायु और जल क्रीडा इन करके वैद्योंको पित्तज्वरजनित पीडा जीतनी चाहिये ॥

## तित्तादिकाढा ।

तित्तामुस्तायवैःपाठाकट्फलाभ्यांसहोदकम् ॥

पक्वसशर्करंपीतंपाचनं पैत्तिकज्वरे ॥

अर्थ—कुटकी, नागरमोथा, इन्द्रजौ, पाठ, कायफल और नेत्रवाला इनका काढा खांड डालके पीवे यह पित्तज्वरको पाचक है ॥

## पपर्तादिकाढा ।

पर्पटोवासकस्तिक्तकिरातोधन्वयासकः ॥

प्रियंगुश्चकृतःकाथएषशर्करयापुनः ॥

पिपासादाहपित्तास्रयुक्तंपि तज्वरंहरेत् ॥

अर्थ—पित्तपापडा, अडूसा, कुटकी, चिरायता, धमासा, फूलप्रयंगु इनका काढा खांड डालकर लेय तो प्यास, दाह तथा रक्तपित्त इन सहित पित्तज्वरको दूर करे ॥

## द्राक्षादिकाढा ।

द्राक्षाहरीतकीमुस्ताकटुकीकृतमालकः । पर्पटश्चकृतः

काथएषपित्तज्वरापहः ॥ मुखशोषप्रलापांतर्दाहमूच्छा-

भ्रमप्रणुत् । पिपासारक्तपित्तानांशमनोभेदनोमतः ॥

अर्थ—दाख, छोटी हरड, नागरमोथा, कुटकी, अमलतासका गूदा और पित्तपापडा इनका काढा लेय तो मुखशोष, चकवाद, अंतर्दाह, मूच्छा तथा भ्रम इनको नाश करे और प्यास तथा रक्तपित्त इनको शमन करे तथा मलको निकाले ॥

## पटोलादिकाढा ।

पटोलयवधान्याकमधुकंमधुसंयुतम् ।

हंतिपित्तज्वरंदाहंतृष्णां चातिप्रमाथिनीम् ॥

अर्थ—पटोलपत्र, इन्द्रजौ, धनियों, मुलहटी इनका काढा शहत डालके पीवे तो पित्तज्वर, दाह तथा प्यास शांत हो ॥

गुडूच्यादिकाढा ।

गुडूच्यामलकीयुक्तः केवलोवापिपर्पटः ।

पित्तज्वरं हरेत्तूर्णपित्तशोषभ्रमान्वितम् ॥

अर्थ—गिलोय, आमले तथा पित्तपापडा इनका अथवा केवल पित्त-पापडेका काढा लेनेसे शोष तथा भ्रम युक्त पित्तज्वरको हरण करे ॥

ह्रीवैरादिकाढा ।

ह्रीवैरचंदनोशीरघनपर्पटसाधितम् ।

दद्यात्तुशीतलं वारितृड्वृद्धिज्वरदाहनुत् ॥

अर्थ—नेत्रवाला, लाल चंदन, खस, नागरमोथा, और पित्तपापडा इनका काढा शीतल करके देय तो अत्यंत प्यास, ज्वर तथा दाह इनको दूर करे ॥

भूनिंयादिकाढा ।

भूनिंवातिविपालोध्रमुस्तकेंद्रयवाः स्मृताः । वालकंधा-  
न्यकं बिल्वंकपायोमाक्षिकान्वितः ॥ भिनत्तिश्वासका  
सांश्चरक्तं पित्तज्वरं हरेत् ॥

अर्थ—चिरायता, अतीस, लोध, नागरमोथा, इन्द्रजव, नेत्रवाला, धनियों और बेलगिरी इनका काढा शहत डालके लेयतो अतिसार, श्वास, खांसी, रक्त, पित्त, ज्वर इनको दूर करे ॥

कट्फलादिकाढा ।

कट्फलेंद्रयवांवृष्टातिक्तापुस्तैः शृतं जलम् ।

पाचनं दशमे द्विस्त्यात्तीव्रपित्तज्वरे नृणाम् ॥

अर्थ—कायफल, इन्द्रजौ, पाट, कुटकी और नागरमोथा इनका काढा तीव्र पित्तज्वरवालेको दशमेंदिन दे (अर्थात् पित्तज्वर दशमेंदिन पाचन होता है) इसीवास्ते दशमें दिन देय तो पित्तज्वर दूर हो ॥

पंचभद्रादिकाढा ।

पर्पटादामृताविश्वाकैरातेः साधितं जलम् ।

पंचभद्रमिदं ज्ञेयं वातपित्तज्वरापहम् ॥

अर्थ—पित्तपापडा, नागरमोथा, गिलोय, सोंठ और चिरायता इनका काढा वातपित्तज्वरको दूरकरे इसे पंचभद्र काथ कहते हैं ॥

कलिंगादिकाढा ।

कलिंगकट्फललोभ्रपाठाकटुकरोहिणी ।

पक्कंसशर्करं पीतं पाचनं पित्तकज्वरे ॥

अर्थ—कुडाकी छाल, कायफल, लोध, पाठ और कुटकी इनका काढा खांड डालके पीवे तो पित्तज्वरको पचावे ॥

शर्करादिकाढा ।

शर्करामधुरोहंतिकपायः पित्तिकज्वरम् ।

चंदनोशीरश्रीपर्णी पुरूषकमधूकजः ॥

अर्थ—लालचंदन, नेत्रवाला, कायफल, फालसे, मुलहठी इनका काढा खांड डालकर देय तो पित्तज्वरका नाश करे ॥

क्षुद्रादिकाढा ।

क्षुद्राधान्यकशुंठीभिर्गुडूचीमुस्तपद्मकैः । रक्तचंदनभू-

निवपटोलवृषपौष्करैः ॥ कटुकैर्द्रव्यवारिष्टभांगीर्पपटकैः

समैः । काथं प्रातर्निपेवेत शीतं सर्वज्वरच्छिदम् ॥

अर्थ—फटेरी, धनियां, सोंठ, गिलोय, नागरमोथा, पद्मास, लालचंदन, चिरायता, पटोलपत्र, अडूसा, पोहकरमूल, कुटकी, इन्द्रजव, बूठ, भारंगी और पित्तपापडा इनका काढा पीवे तो सर्वप्रकारके शीतज्वर दूर होय ॥

लोभादिकाढा ।

लोभ्रोत्पलामृतापद्मसारिवाणांसशर्करः ।

काथः पित्तज्वरं हन्यादथवा पर्पटोद्भवाः ॥

अर्थ—लोध, कमलगट्टकी गिरी, गिलोय, पद्मास और सरियन इनका काढा खांड डालके पीवे अथवा पित्तपापडेकाही काढा पित्तज्वरको दूर करता है ॥

पर्पटादिकाढा ।

पर्पटामृतधानीणां काथः पित्तज्वरं जयेत् ।

द्राक्षारग्वधयोश्चापिकाश्मर्याश्चापिवापुनः ॥

अर्थ-पित्तपापडा, गिलोय और आमले इनका काढा पित्तज्वरको दूर करे अथवा दाख, अमलतासका गूदा इनका अथवा केवल कंभा रीका काढा पित्तज्वरको जीतता है ॥

विश्वादिकाढा ।

विश्वपर्पटकोशीरघनचंदनसाधितम् ।

दद्यात्सुशीतलंवारितृच्छर्दिज्वरदाहनुव ॥

अर्थ-सोंठ, पित्तपापडा, नेत्रवाला, नागर मोया और लालचंदन इनका काढा शीतलकर देवे तो तृषा, वमन, ज्वर और दाह इनको नाशकरे ॥

गुडूच्यादिकाढा ।

गुडूचीमुस्तधान्याकमधुकंकटुरोहिणी ।

तृष्णाशूलरुचिच्छर्दिपित्तज्वरहरोगणः ॥

अर्थ-गिलोय, नागरमोया, धनियां, मुलहटी और कुटकी इनका काढा प्यास, शूल, अरुचि, वमन और पित्तज्वर इनको नाशकरे ॥

किरातादिकाढा ।

किरातामृतधान्याकचंदनोशीरपर्पटैः ।

सपद्मकैःकृतःकाथोहंतिपित्तभवंज्वरम् ॥

दाहतृष्णाश्रमारुचिमुत्क्लेशं वमथुं कुमम् ॥

अर्थ-चिरायता, गिलोय, धनियां, चंदन, नेत्रवाला, पित्तपापडा और पद्मास इनका काढा पित्तज्वर, दाह, तृष्णा, श्रम, अरुचि, मुखसे पानी बहना वमन और ग्लानि इनका नाश करे ॥

चंदनादिकाढा ।

चंदनंमधुकंद्राक्षांकटुकांसदुरालभाम् ।

चंदनादिर्गणःप्रोक्तोहन्यादाहज्वरारुचिः ॥

अर्थ-चंदन, मुलहटी, दाख, कुटकी और धमासा यह चंदनादि गण दाह, अरुचि और ज्वर इनका नाशकरे ॥

पर्पटादिकाढा ।

एकएवसलुपैत्तिकज्वरं हंति पर्पटकृतः कपायकः ।

चंदनोदकमहोषधान्वितश्चेत्तदा किमु पुनर्विचारणा ॥

अर्थ—केवल एकही पित्तपापडेका काढा पित्तज्वरको नष्ट करता है यदि उसमें ललाचंदन, नेत्रवाला और सोंठ मिलायकर काढा कराजावे तो पित्तज्वर दूरकरे इसमें क्या संदेह है ॥

उदुंबररादिहिम ।

उदुंबरशिफाछिन्नातज्जलंसितयान्वितम् ।

पीतपित्तज्वरंहन्तिपटोल्यावाशिफाजलम् ॥

अर्थ—गूलरकी छालके पानीमें खांड मिलायकर पीनेसे अथवा पटोल पत्रकी जड़का पानी खांडके साथ पीवे तो पित्तज्वरको नाशकरे ॥

द्राक्षादिकाढा ।

द्राक्षाभयापर्पटकाब्दतित्ताक्वाथःससंपाकफलोविदध्यात् ।

प्रलापमूर्च्छाभ्रमदाहशोपतृष्णाान्वितोपित्तभवज्वरेच ॥

अर्थ—मुनक्का, ( दाख ) हरडजंगी, पित्तपापडा, नागरमोथा, कुटकी और अमलतासका गूदा इनका काढा करके पीवे तो प्रलाप, मूर्च्छा, भ्रम, दाह, शोप और तृषा इन करके युक्त जो पित्तज्वर उसका नाशकरे ॥

दुरालभादिकाढा ।

दुरालभापर्पटकप्रियंगुभूनिम्बवासाकटुरोहिणीनाम् ।

क्वाथपिवेच्छर्करयावगाढंतृष्णास्रपित्तज्वरदाहयुक्तः ॥

अर्थ—धमासा, पित्तपापडा, फूलप्रियंगु, चिरायता, अडूसा और कुटकी इनका काढा करके उसमें खांड डालके तृषा, रक्तपित्तज्वर और दाह इनकरके युक्त जो रोगी होवे उसको पीना चाहिये ॥

द्राक्षादिकाढा ।

द्राक्षापर्पटराजवृक्षकटुकासुस्ताभयानांजलं

मूर्च्छाशोपनिदाघतृप्प्रलपनभ्रांत्याढ्यपित्तज्वरे ।

दुरुपर्शप्रमदाकिरातकटुकासिहास्यरेणूद्भवः

क्वाथः शर्करयान्वितोहरतितृप्दाहाख्यापित्तज्वरान् ॥

अर्थ—मुनक्का (दाख), पित्तपापडा, अमलतासका गूदा, कुटकी, नागरमोथा और हरडकी छाल इनका काढा पीवे तो पित्तज्वरजनित जो मूर्च्छा, शोप, दाह, प्यास, प्रलाप और भ्रांति इनका नाश होवे, जवासा, अतीस



चिरायता, कुटकी, अडूसेके पत्ते और पित्तपापडा इनका काढा करके उसमें मिश्री डालके पीवे तो तृषा, दाह, रक्तपित्त और ज्वर इनका नाशहोवे ॥

छिन्नादिकाढा ।

अहोकिमर्थैवहुभिः कषायैः पराशराद्यैर्मुनिभिः प्रदिष्टैः ।

छिन्नाशिवापर्पटतोयपानात्पित्तज्वरः किंसरीसरीति ॥

अर्थ-पाराशरादि ऋषियोंने इतने काढे काहेके वास्ते कहे ? गिलोय, हरड और पित्तपापडा इनका काढा सेवन करनेसे क्या पित्त ज्वर नहीं जाता है ? ॥

द्राक्षादिकाढा ।

द्राक्षाचंदनपद्मानिमुस्तातिक्तामृतापिच । धात्रीवा  
लमुशीरंचलोध्रेन्द्रयवपर्पटाः ॥ परूपकंप्रियंगुश्चयवा  
सोवासकस्तथा । मधुकंकुलकंचापिकिरातोधान्यक  
स्तथा ॥ एपांकाथोनिदंत्येवज्वरंपित्तसमुत्थितम् ॥ तृष्णां-  
दाहप्रलापंचरक्तपित्तंभ्रमंकुमम् ॥ मूर्च्छांछर्दितथाशूलं  
मुखशोपमरोचकम् । कासंश्वासंचहृल्लासंनाशयेन्नात्रसंशयः ॥

अर्थ-दाख, लालचंदन, कमलगट्टकी भिंगी, नागरमोथा, कुटकी, गिलोय, आमले, नेत्रवाला, खस, लोध, इन्द्रजों, पित्तपापडा, फालसे, फूलप्रियंगु, धमासा, अडूसा, मुलहटी, पटोलपत्र, चिरायता और धनि-यां इनका काढा लेनेसे पित्तज्वर, तृषा, दाह, प्रलाप, रक्तपित्त, भ्रम, ग्लानि, मूर्च्छा, वमन, शूल, मुखशोष, अरुचि, खांसी, प्यास, मुखसे पानी गिरना इन सबका नाश निस्संदेहकरे ॥

ससितादिकाढा ।

ससितोनिशिपथुंपितः प्रातर्धान्याकतंदुलकायः ।

पीतः शमयत्यचिरादंतर्दाहंज्वरंपैतम् ॥

अर्थ-धनियां और चावलको रात्रिमें धीरे मटकनेमें भिंगोदे और प्रातःकाल काथकर उसमें खांड मिलाय पीवे तो अंतर्दाह तथा पित्तज्वरको दूरकरे ॥

मुद्गादिकाढा ।

मुद्गानामंजलिचूर्णयष्टीमधुकसाधितम् ।

पाक्यंशीतकपायंवापिवेत्पित्तज्वरापहम् ॥

अर्थ—मुलहटी और मूंगका आठ तोले चूर्णका काढा कर और शीतल पीवे तो पित्तज्वरका नाशहो ॥

द्वीवेरादिकाढा ।

द्वीवेरंमुस्तकंधान्यंचंदनंयष्टिकामृता । वृषोशीरयुतः

कायः शर्करामधुसंयुतः ॥ रक्तपित्तंजयत्युग्रंतृष्णादाह-

ज्वरापहः ॥

अर्थ—नेत्रवाला, नागरमोथा, धनियां, लालचंदन, मुलहटी, गिलोय, अहूसा और खस इनके फाढेमे खांड और शहत मिलाय पीनेसे रक्तपित्त, तृष्णा, दाह और नित्तज्वरको दूरकरे ॥

तिक्तादिकाढा ।

तिक्तायासकभूनिवश्यामापर्पट्वासकैः ।

सृतंजलंसितायुक्तंरक्तपित्तज्वरंजयेत् ॥

अर्थ—कुटकी, धमासा, चिरायता, पीपल, गिलोय, पित्तपापडा और अहूसा इनका काढा मिश्री मिलाय पीनेसे रक्तपित्त और ज्वरको जीते ॥

पथ्यादिकाढा ।

पथ्यातैलघृतक्षौद्रैर्लिहेद्दाहज्वरापहम् ।

कासासृक्पित्तवीसर्पश्वासंहंतिवमिमपि ॥

अर्थ—हरडका चूर्ण, तेल अथवा घी अथवा शहतके साथ चाटेतो दाह, ज्वर, खांसी, रक्तपित्त, विसर्प, श्वास और वमन इनका नाशकरे ॥

आम्रादिकाढा ।

आम्रजंबूकिसलयैर्वटशृंगप्ररोहकैः । उशारेणकृतःफाटः

सक्षौद्रोज्वरनाशनः ॥ पिपासाछर्द्यतीसारान्मूच्छजय-

तिदुस्तराम् ॥

अर्थ—आम तथा जामुन इनके फोमल पत्ते तथा बडकी फोमल पत्ती

तथा तत्काल निकले द्रुये पत्ते और नेत्रवाला इन औषधोंको पूर्वरीतिसे फाँटकर पीनेसे ज्वर, प्यास, वमन, अतिसार तथा कष्टसाध्य मूर्च्छा ये दूरहों ॥

शुद्ध्यादिकाढा ।

शुद्धचीपद्मलोध्राणांसारिवोत्पलयोस्तथा ।

शर्करामधुरःकाथःपीतःपित्तज्वरापहः ॥

अर्थ—गिलोय, पद्मास, लोध, सरवन और कमलगट्टा इनका काढा शीतल कर मिश्री मिलाय पीनेसे पित्तज्वरको दूर करे ॥

पटोलादिकाढा ।

पटोलयवनिकाथोमधुनामधुरीकृतः ।

तीव्रपित्तज्वरोन्मर्दापानात्तृड्दाहनाशनः ॥

अर्थ—पटोलपत्र और ओं इनका काढाकर उसमें शहत मिलाय शीतल कर पीवे तो तीव्रपित्त ज्वर, तृषा, दाह इनका नाश करे ॥

केसरमातुलिकादियोग ।

जिह्वातालुगलक्लोमशोपेसूर्ध्वचदापयेत् ।

केसरमातुलिंगस्यमधुसंधवसंयुतम् ॥

अर्थ—जीभ, तालू, गला, क्लोम ( तृषा लगनेका स्थान ) और मस्तक इनमें शोष होनेसे विजोरेकी केशर, शहत और सेंधानिमक, मिलाय कर मालिशकरे ॥

दूसराप्रकार ।

केसरमातुलिंगस्यमधुसंधवसंयुतम् । हरीतकीप्रियंगुश्च  
पिप्पलीलोध्रमेवच ॥ दार्वीहरिद्रातेजोह्वासक्षौद्रंमुखधा-  
वनम् । एतेनकटुभावश्चमुखरोगश्चशाम्यति ॥ वक्रंवि-  
शदतामेतिभक्तछंदश्चजायते । मुद्गयूपोदनोदेयः सित-  
यापैत्तिकेज्वरे ॥

अर्थ—विजोरेकी केशर, शहत और सेंधानिमक इनका अथवा हरिद्र, प्रियंगु, पीपल, लोध, दारुहलदी, हलदी, तेजवल इनका चूर्ण शहतसे मिलाय जलमें डाल कुरला करे तो मुखकी कटुता तथा मुखरोग, शांत होय और मुख स्वच्छहो रुचि होयहै, उसरोगीको मूंगका यूप और भात तथा दूरा मिलाय पथ्य देवे ॥

रसपर्पटी ।

शुद्धं सूतं द्विधा गंधं मर्च्य भृंगीरसैः क्षणम् । पाचयेच्छोहपात्र-  
स्थं चालयंतु चुटकेन च ॥ लोहभस्माथवा ताम्रपादांशेन वि-  
निक्षिपेत् । पाच्यं प्रचालयेन्नैव यामार्धमृदुवह्निना ॥  
तत्क्षिपेत्कदलीपत्रे गोमयस्योपरि स्थिते । तत्पत्रंधार-  
येदूर्ध्वं तदूर्ध्वं गोमयं क्षिपेत् ॥ ततः संचूर्णयेत्सत्त्वे निर्गु-  
ह्याभावयेद्दिनम् । जयंती त्रिफला कन्या वा सा भार्गवी-  
कदुत्रयैः ॥ भृंग्यग्निमुनिमुंडीभिर्भावयेत्प्रत्यहं पृथक् ।  
आर्द्रकस्य द्रवैः पश्चाद्भावयेद्दिनसप्तकम् ॥ अंगारैः स्वेद-  
येत्पश्चात्पेष्याख्यो महारसः । चतुर्गुणामितो देयः स-  
म्यक् श्लेष्माधिके ज्वरे ॥ वासांशुं भीमाकाथमनुपानं प्र-  
कल्पयेत् । चव्यकस्वरसैर्वाथपेयं श्लेष्मज्वरापहम् ॥

अर्थ—शुद्धपारा १ भाग, शुद्ध गंधक १ भाग इनकी कजली करके  
भांगरेके रसकी भावनादे फिर उसको मंदाग्निवाले चूल्हेपर लोहके पात्रमें  
धीरे २ हिलाता हुआ पचन करावे, पीछे ताम्र तथा लोह की भस्म  
चतुर्धांश डाल फिर चार घड़ी बिना हिलाए मंदाग्निपर पचन करावे  
जब पतला होकर सब एक रस हो जाय तब केलेके पत्तेपर उलट देवे  
और दूसरा पत्ता ढककर दाहिदेवे जब शीतल होजावे तब खरलमें  
घोट सझालूके रसकी ३ पुटदेवे फिर जयंती, त्रिफला, धीकुवार, अडूसा,  
भारंगी, त्रिकुटा, भांगरा, चीता, अगस्तिया और मुंडी इनके रसकी  
प्रहर २ तक भावनादेवे फिर अदरकके रसकी सातदिन भावनादेवे  
और अंगारोंके ऊपर भूने यह पर्पटी रस ४ रत्नी अडूसा, सोंठ तथा हरद  
इनके काटेसे अथवा चव्यके रससे देवे तो कफज्वरको हरण करे ॥

उत्तानसुप्तयोग ।

उत्तानसुप्तस्य गभीरताम्रकांस्यादिपात्रे निहिते च नाभौ ।

शीतांबुधारा बहुलापतंती निहंति दाहं ज्वरितज्वरंच ॥

अर्थ—ज्वरवाले मनुष्यको चित्त सुलाय उसकी नाभी (तोंदी) पर ता-

मेका अथवा फाँसेका मौँधा पात्र घर उसमें शीतल जलकी बड़ी धार डाले तो दाहज्वरको तत्काल नाश करे ॥

औदुंबरादियोग ।

औदुंबरस्यनिर्यासःसितयादाहनाशनः ।

छिन्नासारःसितायुक्तःपित्तज्वरनिषूदनः ॥

अर्थ—गूलरका गोंद खाँड मिलायकर लेवे तो दाहको नाश करे और गिलोयका सत्व खाँड मिलाय कर ले यह पित्तज्वरनाशक है ॥

धर्म ।

अथगोतक्रसंसिक्तशीतलीकृतवाससा ।

कांजिकार्द्रपटेनावगुंठनंदाहनाशनम् ॥

अर्थ—गौकी छालमें फिंवा कांजीमें वस्त्र भिगोय उस वस्त्रसे रोगीको उठावे तो दाह नष्ट हो ॥

द्राक्षादिकल्क ।

द्राक्षामलककल्केनकवलोन्नहितोमतः ।

पक्वदाडिमजैर्वाथधानाकल्केनचक्रचित् ॥

अर्थ—दाख और आमले इनके कल्कका अथवा पके हुए अनारका अथवा धनियेका हिम करके मुखमें कवल देवे तो हित है ॥

मुद्गयूप ।

दाहवम्यर्दितंक्षामंनिरन्नंतृष्णयान्वितम् ।

शर्करामधुसंयुक्तंपाययेल्लजतर्पणम् ॥

मुद्गयूपौदनोदेयः सितयापैत्तिकेज्वरे ॥

अर्थ—यदि दाह और वमन इनसे पीडित कृपकुछ खाय नहीं प्यास अधिक लगे उसको चावलोंका मंड मिश्री और शहत डालके देवे और मूँगका यूप भात और खाँड ये पदार्थ भक्षणार्थ देवे तो पित्तज्वर शांति हो ॥

अमृतादिहिम ।

अमृतायाहिमःप्रातःससितःपैत्तिकंज्वरम् ।

वासायाश्चतयाकासरक्तपित्तज्वराञ्जयेत् ॥

अर्थ—गिलोयको रात्रिमें कूट पानीमें भिगोदेवे प्रातःकाल 'उस पानीको छान मिश्री मिलायके पीवे तो पित्तज्वरनाशक है, इसी प्रकार अडूसाके हिम खांसी, रक्त, पित्तज्वर इनका नाशक है ॥

### कफज्वरकेलक्षण ।

स्तैमित्यंस्तिमितोवेगआलस्यंमधुरास्यता। शुक्लमूत्रपु-  
रीपत्वक्स्तंभस्तृप्तिरथापिवा ॥ नात्युष्णगात्रताछर्दिरं-  
गसादोविपाकता । गौरवंशीतमुत्केदोरोमहर्षोतिनि-  
द्रता ॥ प्रतिश्यायोरुचिःकासः कफजेक्ष्णोश्चशुक्लता ॥

अर्थ—स्तैमित्य ( गीले कपड़ेसे देहको आच्छादित कर देनेसे जैसा हो ऐसा मालूम हो ) ज्वरका मंदवेग, आलस्य, मुख भीठा, मलमूत्र, सफेद, देहका जकड़ना, तृप्तसरीखा, अन्नमें अरुचि, पेट भरासारहै, देह-  
बहुत गरम नहींवे, अंगरहजावे, देहभारी शीतल, शीतलगे, ओंकारी आवे \* अन्य आचार्य कहतेहैं कि, कफका थूकना, रोमांचका होना अतिनिद्रा, रसके बहनेवाली नाडीके मार्गोंका रुकना, दस्तका थोड़ा उतरना, पसीना, मुखमें नीनकासा सवाद, देहका थोड़ा गरमहोना, रक्कत होना, लारका गिरना, मुखपाक तथा मुखनाकमें कफका पड़ना, अरुचि, खांसी, नेत्र श्वेतहो ये लक्षण कफज्वरमें होते हैं " स्तंभस्तृप्तिरथापि च " इस पदमें जो चकार है उससे देहमें पीडा, शीतका लगना, लारका गिरना, घमन, तंत्रिकरोग, हृदयलिहासा, गरमी प्यारी लगने, मन्दाग्नि इत्यादि जानने ॥

कलिंगादिचूर्ण ।

कलिंगरोहिणीनिशाकटुत्रिकेभकेसरम् ।

विचूर्णितंकफज्वरेनिहंतिकोष्णवारिणा ॥

अर्थ—इन्द्रजो, कुटकी, हलदी, नागकेशर और त्रिकटु इनका चूर्ण गरम जलसे लेवे तो कफज्वर दूरहो ॥

शृंग्यादिअवलेह ।

शृंगीकणाकटुफलपौष्कराणांक्षौद्रान्वितानांविहितोवलेहः ।

श्वासेनकासेनयुतं वलासं ज्वरं जयेदत्र न कापिशंका ॥

अर्थ—काकडासिंगी, पीपल, कायफर, पोहकरमूल इनका अवलेह शहत मिलायकर देवे तो श्वास, खांसीयुक्तकफ और ज्वरको दूर करे इसमें कुछ संदेह नहीं है ॥

सिंधुकवल ।

सिंधुत्रिकदुराजीभिरार्द्रकेण कफोहितः ॥ कवल इति शेषः ॥

अर्थ—सैंधानिमक, त्रिकुटा, राई और अदरक इनको एकत्र पीस उसकी कवल करके मुखमें धारण करे यह कवल कफपर प्रशस्त है ॥

मुद्गयूप ।

मुद्गयूपौदनोदयो ज्वरे कफसमुत्थिते ॥

अर्थ—कफज्वरमें मूंगका यूप और भात पथ्य देना चाहिये ॥

त्रिफलादिचूर्ण ।

लिह ज्वरार्तं त्रिफलां पिप्पलीं च समाक्षिकाम् ।

कासे श्वासे च मधुना सर्पिपाच सुखी भवेत् ॥

अर्थ—कफज्वरवाले रोगीको त्रिफला तथा पीपलका चूर्ण शहतसे देवे और खांसी तथा श्वास पर वही चूर्ण शहत और घृतके साथ देवे ॥

अजाजियोग ।

अजाजि शर्करायुक्तो दाडिमस्वरसेन तु ।

रुचिष्यो मधुना युक्तः कर्तव्यः कवलग्रहः ॥

मुद्गयूपौदनश्चापि देयः कफसमुत्थिते ॥

अर्थ—जीरा और खांड अथवा अनारकारस तथा शहत ये रुचिकारी हैं इनको मुखमें धारण करे और मूंगभात पथ्य देवे ॥

चंदनादिकाढा ।

चंदनं च सुगंधं च वालकोशीरपर्पटाः ।

मुस्तांशुं ठीसमायुक्तः पित्तज्वरनिपूदनाः ॥

अर्थ—लालचंदन, रोहिपतृण, नेत्रवाला, पित्तपापडा, नागरमोथा और सोंठ इनका काढा पित्तज्वरनाशक है ॥

शतधौतघृतम् ।

शतधौतघृतस्यलेपतोदवथुर्नाशमुपैतितत्क्षणात् ।

अथवापिचुमंदपत्रजस्वरसप्रोत्थितफेनलेपतः ॥

अर्थ-सौवार धुलेहुए चीको शरीरमें लगानेसे अथवा नीमका रस फेन-युक्त करके अंगोंमें लेप करनेसे दाह शांति होता है ॥

पलाशादिलेप ।

पलाशस्यवदर्यावानिवस्यमृदुपल्लवैः ।

अम्लपिष्टैःप्रलेपोयंहन्यादाहयुतंज्वरम् ॥

अर्थ-ढाककी, बेरकी किंवा नींबूके फीमलपत्ते छोंछमें अथवा नींबूके रसमें पीस लेप करे तो दाहयुक्त ज्वर दूर हो ॥

नीरदादिपाचन ।

नीरदविश्वदुरालभवासासाधितमंबुहिपाचनमेवम् ।

पेयमिदंज्वरएवकफारव्येश्वासकासघनशूलहरंच ॥

अर्थ-नागरमोथा, सोंठ, धमासा, अदूसा इनका काठा पाचक होकर ज्वरनाशक, श्वास, खाँसी, शूल, कफज्वर इनका नाश करे ॥

पिप्पल्यादिपाचन ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलंमरिचंगजपिप्पली । नागरंचित्रकं-

चव्यरेणुकाचाजमोदिका ॥ सर्पपौर्हिगुभांगीचपाठेंद्रय-

वजीरका॥महानिवश्चमूर्वाचविपातित्ताविडंगकाः॥पिप्प-

ल्यादिगणोह्येष कफवातातिनाशनः ॥ गुल्मशूलज्वर-

हरोदीपनश्चामपाचनः ॥

अर्थ-पीपर, पीपरामूल, कालीमिरच, गजपीपर, सोंठ, चीता, चव्य, रेणुकाबीज, अजमोद, सरसो, हिंग, भारंगी, पाठ, इन्द्रजो, जीरा, वका-यन, मूर्वा, अतीस, कुटकी, वायविडंग यह पिप्पलादिगण कफ और वादी-को दूर करे गोला, शूल, ज्वरको हरण करे तथा दीपन और आमको पचावे ॥

क्षौद्रादिकाटा ।

क्षौद्रोपकुल्यासंयोगःश्वासकासज्वरापहः ।



प्रीहानंहन्तिहिकांचवालानामपिशस्यते ॥

अर्थ—पीपर और शहतका योग, खांसी, श्वास, ज्वर, प्रीहा, हिचकी इनका नाश करनेवाला है और बालकोंको उत्तम है ॥

पिप्पल्यादिचूर्ण ।

पिप्पलीत्रिफलांचापिसमभागांज्वरीलिहन् ।

मधुनासर्पिपावापिकासीद्वासीसुखीभवेत् ॥

अर्थ—पीपर, त्रिफला ये समान भागले वा शहत घृतके साथ चाटे तो खांसी, श्वास और ज्वर दूर हो ॥

कट्फलादिलेह ।

कट्फलंपौष्करंशृंगीकृष्णाचमधुनासह ।

कासश्वासज्वरहरोलेहोयंकफनाशनः ॥

अर्थ—कायफल, पोहकरमूल, काकडासिंगी और पीपर इनका चूर्ण शहत के साथ खाय तो श्वास, खांसी, ज्वर और कफको नाशकरे ॥

कट्फलादिचूर्ण ।

कट्फलंपौष्करंशृंगीयवानीकारवीतथा । कटुत्रयंचसर्वा-  
णिसमभागानिचूर्णयेत् ॥ आर्द्रकस्वरसैर्लिह्यान्मधुनावा-  
कफज्वरी । कासश्वासारुचिच्छर्दीश्लेष्मानिलनिवृत्तये ॥

अर्थ—कायफल, पोहकरमूल, काकडासिंगी, अजवायन, अजमोद, त्रिकुटा इनका चूर्ण अदरखके रससे अथवा शहतके साथ देवे तो खांसी, श्वास, अरुचि, वमन, शर्दी, वायु, कफज्वर इनका नाश करे ॥

निर्गुड्यादिकाढा ।

सिंदुवारदलकायंकणाढयंकफजेज्वरे ।

जंघयोश्चत्रलेक्षणेकर्णेचपिहितेपिबेत् ॥

अर्थ—कफज्वर तथा जाँघोंकी निर्वलता और कानोंका चंद हो जाना इनपर सम्हालूके पत्तोंका काढा पीपलका चूर्ण ढालके पीवे ॥

यवान्यादिकाढा ।

यवानीपिप्पलीवासातथाखस्त्रसवल्कलाम् ।

एपांकाथंपिवेत्कासेश्वासेचकफजेज्वरे ॥

अर्थ-अजवायन, पीपल, अडूसा और खसखसके डोडे इनका काढा पीनेसे खांसी, आस तथा कफज्वर इनका नाश होय ॥

वासादिकाढा ।

वासाक्षुद्रामृताकाथःक्षौद्रेणज्वरकासहृत् ॥

अर्थ-अडूसा, कटेरी, गिलोय इनका काढा शहतके साथ पीनेसे कफज्वर और खांसीको दूर करे ॥

निंबादिकाढा ।

निंबविश्वामृताभीरुयासभूनिंबपौष्करम् ।

पिप्पल्योबृहतीचेतिकाथोहंतिकफज्वरे ॥

अर्थ-नीमकी छाल, सोंठ, गिलोय, शतावर, जवासा, चिरायता पोहकरमूल, पीपर और कटेरीकी जड़ इनका काढा कफज्वरकोनाशकरे ॥

मरीच्यादिकाढा ।

मरीचंपिप्पलीमूलंनागरंकारवीकणा ।

चित्रकंकटफलंकुष्ठंसुगंधिवचाशिवा ॥

कंटकारीजटाशृंगीयवानीपिचुमंदकः ।

एपांकाथोहरत्येवज्वरंसोपद्रवंकफात् ॥

अर्थ-कालीमिरच, पीपलामूल, सोंठ, सौफ, पीपल, चीता, कायफल कूठ, निर्गुंडी, वच, हरड़, कटेरीकी जड़, जटामांसी, काकडासिंगी, अजवायन और नीमकी छाल इनका काढा उपद्रव सहित कफज्वरका नाश करे ॥

निदिग्धिकादिकाढा ।

निदिग्धिकाच्छिन्नरुहोपकुल्याविश्वौषधैःसाधितमंबुपीतम् ।

हंतिज्वरंश्वासबलासकासशूलाग्निमांद्यंजठरानिलंच ॥

अर्थ-कटेरीकी जड़, गिलोय, पीपल और सोंठ इनका काढा ज्वर, श्वास, कफ, खांसी, शूल, मंदाग्नि इनको दूरकरे ॥

भांग्यादिकाढा ।

भांगीगुडूचीघनदारुसिंहोशुंठीकणापुष्करजःकपायः ।

ज्वरंनिहंतिश्वसनंक्षिणोतिक्षुधांकरोतिप्ररुचिंतनोति ॥

अर्थ-भारंगी, गिलोय, नागरमोथा, देवदारु, कटेरी, सोंठ, पीपल और पौहकरमूल इनका काढा ज्वर और श्वासकी नष्टकरे एवं क्षुधाकरे अन्नमें रुचि प्रगटकरे है ॥

मातुलिंगादिकाढा ।

मातुलिंगशिफाविश्ववयस्थाग्रंथिकोद्भवम् ।

कफज्वरेपुसक्षारंपाचनंवाकणादिकम् ॥

अर्थ-विजोरेकी जड, सोंठ, गिलोय, पीपरामूल इनके काढेमें जवा-  
खार अथवा पीपर डालके पीवे तो कफज्वर दूर हो तथा पाचन हो ॥

त्रिफलादिकाढा ।

त्रिफलात्रिवृतामुस्तंकटुकंसकलिमकम् ॥

पटोलारग्वधंचैवरोहिणीचित्रकंसम ॥

काथःक्षौद्रयुतःश्लेष्मज्वरकासगतामये ॥

अर्थ-त्रिफला, निसोथ, नागरमोथा, त्रिकुटा, इन्द्रजों, पटोलपत्र, अमलतास, कुटकी और चीता ये समभागले काढाकर शहत डालके पीवे तो कफज्वर, खांसी तथा कंठरोग दूर होंगे ॥

पिप्पल्यादिगण ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलंचव्यचित्रकनागरम् । मरीचैलाजमो

देद्रपाठारेणुकजीरकम् ॥ भाङ्गीमहानिवफलंहिंगुरोहिणि-

सर्पपम् । विडंगातिविषामूर्वागणोयंकफनाशनः ॥

अर्थ-पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, कालीमिरच, छोटी-  
इलायची, अजमोद, इन्द्रजों, पाट, रेणुका, जीरा, भारंगी, वकायनके  
फल, हींग, कुटकी, सरसों, वायविडंग, अतीस और मूर्वा यह औषधों-  
का गण कफनाशक है अतएव कफज्वरपर इसका काढा देवे ॥

पंचकोलं ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलंचव्यचित्रकनागरम् ।

**पंचकोलमिदं प्रोक्तं शोधनं कफनाशनम् ॥**

अर्थ—पीपर, पीपरामूल, चव्य, चित्रक और सोंठ यह पंचकोल शोधन तथा कफनाशक है ॥

**पटोलादिकाढा ।**

**पटोलत्रिफलातित्तासठीवासामृताभवः ।**

**काथोमधुयुतः पीतो हन्यात्कफकृतं ज्वरम् ॥**

अर्थ—पटोलपत्र, त्रिफला, कुटकी, कचूर, अदुसा और गिलोय इनका काथ सहकके साथ पीवे तो कफज्वर दूर हो ॥

**बीजपूरादिकाढा ।**

**बीजपूरशिवापथ्यानाग्रग्रंथिकैः शृतम् ।**

**सक्षारं पाचनं श्लेष्मज्वरे द्वादशवासरे ॥**

अर्थ—विजोरेकी जड़, छोटीहरड, सोंठ और पीपरामूल इन औषधोंका काढा कर उसमें जवाखार मिलाय बारहवेदिन कफज्वर पर पाचन देवे तो कफज्वर दूर होय ॥

**भूनिंबादिकाढा ।**

**भूनिंबनिंबपिप्पल्यः सठीशुंठीशतावरी ।**

**गुडूचीवृहतीचेति काथो हन्यात्कफज्वरम् ॥**

अर्थ—चिरायता, नीमकी छाल, पीपल, कचूर, सोंठ, शतावर, गिलोय और कटेरी इनका काढा कफज्वरको दूर करे ॥

**कटुक्यादिकाढा ।**

**कटुकीचित्रकं निबंहरिद्रातिविपंवचा ।**

**सप्तपण्यं मृतानि वस्तु ह्यर्कैः साधितं जलम् ॥**

**पेयं माक्षिकसंयुक्तं बलासज्वरशान्तये ॥**

अर्थ—कुटकी, चीतेकी छाल, नीमकी छाल, हलदी, अतीस, वच, सतीनाकी छाल, गिलोय, चिरायता, वृहत् और आंव इनके काठेमें शहत मिला कर पीवे तो कफज्वर दूर हो ॥

त्रिकंटकादिकाढा ।

त्रिकंटकवलाव्याघ्रीगुडनागरसाधितम् ।

वर्चोमूत्रविवंधघ्नकफज्वरहरंपयः ॥

अर्थ-गोखरू, गंगेरन, कटेरी, गुड और सोंठ इनका काढा मलम्-  
त्रके रुकनेको और कफज्वरको दूर करे, परंतु इसकाढेमें औषधोंसे अठ  
गुना दूध और दूधसे चौगुना पानी डालके ओंटावे ॥

कुष्ठादिकाढा ।

कुष्ठमिंद्रियवमूर्वापटोलेनापिसाधितम् ।

पिवेन्मरीचसंयुक्तसक्षौद्रकफजेज्वरे ॥

अर्थ-कूठ, इन्द्रजों, मूर्वा, पटोलपत्र इनका काढा सहत और काली  
मिरच डालके पीवे तो कफज्वर दूर हो ॥

त्रिफलादिकाढा ।

त्रिफलापटोलवासाछिन्नरुवारोहिणिविचाशुंठी ।

मधुनाश्लेष्मसमुत्थदशमूलीवासकस्यचक्राथः ॥

अर्थ-हरड, बहेडा, आमला, पटोलपत्र, अडूसा, गिलोय, कुटफी,  
वच और सोंठ इनका अथवा दशमूल और अडूसेका काढा सहतके  
साथ कफज्वरपर देवे ॥

सप्तच्छदादिकाढा ।

सप्तच्छदगुडूचीचर्निवत्स्फूर्जकमेवच ।

क्वाथंकृत्वापिवेत्तोयंसक्षौद्रकफजेज्वरे ॥

अर्थ-सतोना, गिलोय, नीवकीछाल और स्फूर्जक इनका काढा सह-  
तके साथ पीवे तो कफज्वर दूर होय ॥

आमलक्यादिकाढा ।

आमलक्यभयाकृष्णाचित्रकश्चेत्ययंगणः ।

सर्वज्वरकफातंकेभेदीदीपनपाचनः ॥

अर्थ—आमले, हरडकी छाल, पीपल और चित्रक यह औषधोंका गण सर्व ज्वर और कफके रोगोंको दीपन और पाचन कर्ता है ॥

तित्तादिकाढा ।

तित्तानिबविषाण्योपशक्राह्वाभिःसृतंजलम् ।

पिवेत्कफज्वरंहंतिहिक्काकाससमन्वितम् ॥

अर्थ—कुटकी, नीमकी छाल, अतीस, त्रिकुटा, इन्द्रजों और नेत्रवाला इनका काढा हिचकी और खांसी युक्त कफज्वरको दूर करे ॥

मुस्तादिकाढा ।

मुस्तंमधुकवीजानित्रिफलाकटुरोहिणी ।

परूपकाणिचक्राथःकफज्वरविनाशनः ॥

अर्थ—नारगमोथा, महुआकेबीज, त्रिफाला, कुटकी और फालसे इनका काढा कफज्वरको दूर करे ॥

चपलादिकाढा ।

चपलाचपलापदनागरिकाचवकानलसंजनितंसलिलम् ।

कसनेश्वसनेहृदयोल्लसनेकफजूर्तिगदप्रपिबेच्चण्डे ॥

अर्थ—पीपल, गजपीपल, सोंठ, चव्य, चीतेकी छाल इनका काढा श्वास, खांसी, हल्लास इत्यादि रोगयुक्त कफज्वर दूर हो ॥

पिचुमंदादिकाढा ।

पिचुमंदमहौपधान्वितावृहतीपौष्करतित्तकंसठी ।

वृषकट्फलकंकणावरीकथितंवारिकफज्वरंजयेत् ॥

अर्थ—नीमकीछाल, सोंठ, कटेरीकी जड़, पोहकरमूल, चिरायता, कनूर, जडूसा, कायफर, पीपल और शतावर इनका काढा कफज्वरको दूर करे ॥

वासादिकाढा ।

वासाविशालादशमूलगौरीमहौषधंपुष्करभार्गियुक्ता ।

एषांकपायोविनिहंतिकासंकफज्वरंशूलनिवर्त्तनंच ॥

अर्थ—जडूसा, इन्द्रायणकायूदा, दशमूल, तुलसी, सोंठ, पोहकरमूल और भारंगी इनका काढा कास और कफज्वर तथा शूल इनका नाश करे ॥

कंटकार्यादिकाढा ।

कंटकार्यमृतादारुवृषविश्वामाश्रितः ।

क्वाथःकणारजोयुक्तःसद्यःश्लेष्मज्वरापहः ॥

अर्थ-कटेरी, लिंगोय, देवदारु, अदूसा, सोंठ इनका काढा पीपलका चूर्ण डालकर पीवे तो तत्काल कफज्वर दूर हो ॥

कणादिकाढा ।

कणाविश्वामृतादारुकिरातैरंडमूलकः ।

निवर्णपांकृतःक्वाथःपित्तश्लेष्मज्वरापहः ॥

अर्थ-पीपल, सोंठ, गिलोय, देवदारु, चिरायता अंडकी जड़ और नीमकी छाल इनका काढा पित्त कफज्वरको दूरकरे ॥

मुस्तादिकाढा ।

मुस्तादुरालभाशुंठीक्वाथेषांसमांशतः ।

हंतिश्लेष्मज्वरंतात्रिनिपीतःपथ्यभोजने ॥

अर्थ-नागरमोथा, धमासा, बराबर ले काढाकरके पीवे और पथ्यसे रहे तो तीव्र कफज्वर दूर हो ॥

वातपित्तज्वरलक्षण ।

तृष्णामूर्च्छाभ्रमोदाहःस्वप्ननाशःशिरोरुजः ।

कंठास्यशोषोवमथूरोमहर्षोरुचिस्तमः ॥

पर्वभेदश्चजृम्भाचवातपित्तज्वराकृति ॥

अर्थ-प्यास, मूर्च्छा, भ्रम, दाह, निद्रानाश, मस्तकपीडा, फंठ, मुखका सूखना, वमन, रोमांच, अरुचि, अंधकारदर्शन, संधियोंमें पीडा और जर्माई ये वातपित्तज्वरके लक्षण हैं ॥

नीलोत्पलादिहिम ।

नीलोत्पलंबलाद्राक्षामधुकंमधुकंतथा । उशीरंपद्मकंचै-

वकाश्मरीचपरूपकम् ॥ एतच्छीतकपायश्चवातपित्त-

ज्वरंहरेत् । विप्रलापभ्रमच्छर्दामोहतृष्णानिवारणः ॥

अर्थ-नीलमल, गगेरन, दाख, मुलद्दी, महुआ, खस, पद्माख,

कंभारी और फालसे इन औषधोका पूर्वरीतिसे हिमकरके पीवे तो वात-  
पित्तज्वर, प्रलाप, भ्रम, वमन, मोह और तृष्णा इनको दूर करे ॥

निदिग्धिकादिकाढा ।

निदिग्धिकामृताराम्रात्रायमाणामृतायुतः ।

मसूरविदलकाथोवातपित्तज्वरं जयेत् ॥

अर्थ—कटेरी, गिलोय, रास्ना, त्रायमाण, हरड और मसूरकीदाल  
इनका काढा वात पित्तज्वरको दूर करे ॥

विश्वादिकाढा ।

विश्वामृताब्दभूर्निबपंचमूलसमन्वितः ।

कृतः कपायोहंत्याशुवातपित्तभवं ज्वरम् ॥

अर्थ—सोंठ, गिलोय, नागरमोथा, चिरायता, पंचमूल इनका काढा  
तत्काल वातपित्तज्वरको दूर करे ॥

नीलोत्पलादिकाढा ।

नीलोत्पलमुशीराणिपद्मकामलकानि च । काश्मीरमधुक-

द्राक्षामधूकानिपरूपकान् ॥ पिबेच्छीतं कपायंचवानपि-

तज्वरापहम् । संप्रलापंचसंमोहं शमयेत्पैत्तिकं ज्वरम् ॥

अर्थ—नीलकमल, खस, पद्माख, आमले, कंभारी, मुलहदी, दाख, महु-  
आके फूल और फालसे इनके काढेको शीतलकर पीवे तो वातपित्तज्व-  
र, प्रलाप, मोह और पित्तज्वर इनको शमन करे ॥

आरग्वधादिकाढा ।

आरग्वधफलं मुस्तं यष्टीमधुकमेव च । उशीरमभयाचैव-

हरिद्रादारुसाह्वया ॥ पटोलं पिचुमंदंच अमृताकटुरोहि-

णी । एषां पीतः कपायः स्याद्रातपित्तभवे ज्वरे ॥

अर्थ—अमलतासका गूदा, नागरमोथा, मुलहदी, महुआके फूल, खस,  
हरड, हलदी, देवदारु, पटोलपत्र, नीमकी छाल, गिलोय और कुटकी  
इनका काढा वातपित्तज्वरको शांतकरे ॥



## द्राक्षादिकाढा ।

द्राक्षाकिरातामृतवासकासठीक्वाथंपिवेत्पित्तमरुज्वरं हरेत् ॥

अर्थ—दाख, चिरायता, गिलोय, अडूसा और कचूर इनका काढा पीवे तो वातपित्तज्वर दूर हो ॥

## पंचमूलादिकाढा ।

पंचमूल्यमृतामुस्ताविश्वाम्भुनिवसाधितः ।

कषायः शमयत्याशुवायुमायुभवंज्वरम् ॥

अर्थ—पंचमूल, गिलोय, नागरमोथा, सोंठ और चिरायता इनका काढा वातपित्तज्वरको दूर करे ॥

## मुद्गादियूप ।

मुद्गामलकयूपस्तुवातपित्तज्वरेहितः ।

महादाहेप्रदातव्योयूपश्चणकसंभवः ॥

दाडिमामलकमुद्गसंभवोयूपउक्तइहवातपैत्तिके ॥

अर्थ—मूंग और आमलेका यूप वातपित्तज्वरमें हित है । अत्यंत दाहमें चनेका यूप देना चाहिये और अनारदाने, आमले तथा मूंगका यूप वातपित्तमें देना ॥

## मुद्गादियोग ।

कफपित्तहरामुद्गाकारवेछादयस्तथा । प्रायेणनचतेदेया-

वातपित्तोत्तरेज्वरे ॥ दत्तास्तुज्वरविष्टंभक्षूलोदावर्तकारिणः ॥

अर्थ—वातपित्तज्वरपर मूंग तथा करेले इत्यादि न देवे, ये कफपित्त-हारक हैं इनके देनेसे ज्वर, मलावष्टंभ, शूल तथा उदावर्त होता है ॥

## मधुकादिकषाय ।

मधुकंसारिवाद्राक्षामधुकंचंदनोत्पलम् ।

काश्मरीफलकंलोध्रंत्रिफलापद्मकेसरम् ॥

परूपकंमृणालंचक्षिपेत्संचूर्ण्यवारिणा । निशोपितंसेत-

क्षौद्रलाजयुक्तंशुतत्पिबेत् ॥ वातपित्तज्वरंदाहंतृष्णामृ-

च्छीरुचिभ्रमान् । शमयेद्रक्तपित्तंचजीमूतमिवमारुतः ॥

अर्थ-मुलहठी, सारिवा, दाख, महुआके फूल, लालचदन, कमलगट्टा, कंभारी, लोध, त्रिफला, कूठ, नागकेशर, फालसे और भसींड़े कि, जिनको कमलकी जड़ कहते हैं इनका काठा खोड़ और शहद तथा खील मिलाकर देवे तो वातपित्तज्वर, दाह, तृषा, मूर्च्छा, अरुचि, भ्रम तथा रक्तपित्त इनको शमन करे इसमें दृष्टांत है कि जैसे वादलोंको पवन दूर करता है ॥

पचमद्रकपाय ।

छिन्नोद्भवापर्पटवारिवाहभूर्निवशुंठीजनितःकपायः ।

समीरपित्तज्वरजर्जराणां करोति भद्रं खलु पंचमद्रः ॥

अर्थ-गिलोय, पित्तपापडा, नागरमोथा, चिरायता और सोठ इनका काठा वात पित्तज्वरको नाश करे इस कायको पचमद्र कहते हैं ॥

दुरालभादिकषाय ।

दुरालभामृतावनोजलंचरोहिणीरजो ।

ज्वरंचवातपित्तजनिहंत्यसौकषायकः ॥

अर्थ-धमासा, गिलोय, नागरमोथा, नेत्रवाला, कुटकी और पित्तपापडा इनका काठा वातपित्तज्वरका नाश करता है ॥

भूर्निवादिकषाय ।

भूर्निवतिक्ताजलचंदनंचधानेयपथ्यादशमूलसंघाः ।

ह्रीबेरविश्वाकरमर्दकाचएपांशृतंपित्तमरुज्वरेष्टम् ॥

अर्थ-चिरायता, कुटकी, नेत्रवाला, लालचदन, धनिया, हरड, दशमूल, खस, सोठ और कमरख इनका काठा वातपित्तज्वर पर हितकारी है ॥

त्रिफलादिकषाय ।

त्रिफलाशाल्मलीरास्त्राराजवृक्षाढरूपकैः ।

शृतमंबुहरत्याशुवातपित्तभवंज्वरम् ॥

अर्थ-त्रिफला, सेमरका मूसला, रास्ना, अमलतासका गूदा और अडूसा इनका काठा वातपित्तज्वरका नाश करे ॥

मधुकादिफाट ।

मधुपुष्पमधूकंचचंदनंसपरूपकम् । मृणालंकमलंलोध्रं

कंभारीनागकेसरम् ॥ त्रिफलासारिवाद्राक्षालान्कोष्णे  
जलेक्षिपेत् । सितामधुयुतःपेयःफांटोवासोहिमोथवा ॥  
वातपित्तज्वरंदाहंतृषामूच्छारत्तिभ्रमान् । रक्तपित्तमदं  
हन्यान्नात्रकार्याविचारणा ॥

अर्थ—महुआके फूल, सुलहटी, लालचंदन फालसे, कमलकीजड़, कमल  
गट्टा, लोध्र कंभारी, नागकेशर, त्रिफला, सरिवन, दाख और स्त्रील, इनका  
फांटकरके खांडसे अथवा शहदसे देवे तो वातपित्तज्वर, दाह, प्यास,  
अरुचि, भ्रम, रक्तपित्त और मद ये दूरहों अथवा पाच औषधोंका  
हिम करकेलेवे तो उक्तगुण करे ॥

द्राक्षादिकाढा ।

द्राक्षाकिरातकंधात्रीकपूरामृतवल्लरी ।

काथएपांगुडयुतःपीतोद्वंद्वज्वरोगहृत् ॥

अर्थ—दाख, चिरायता, आमले, कपूर और गिलोय, इनका काढा  
गुडमिलाके पीवे तो द्वंद्वज्वरका नाश करे ॥

व्याघ्र्यादिकाढा ।

व्याघ्रीभाङ्गीसिंहवक्राचरास्तादुस्पर्शपाशाल्मलीराजवृक्षः  
तद्वज्ज्यैत्रैफलंकाथएपांशस्तः कासेवातपित्तज्वरेच ॥

अर्थ—इटेरी, भारंगी, अडूसा, रास्ता, धमासा, सेमर, अमलतास  
और त्रिफला इनका काढा वातपित्तज्वरपर हितकारी है ॥

मुस्तादिकाढा ।

जलदधान्यकिरातगुडूचिकानियमनंकटुकीचपटोलिका ।

क्वथितमेभिरिदंतुजलंहरत्पवनपित्तभवंज्वरमुन्नतम् ॥

अर्थ—नागरमोषा, धनियाँ, चिरायता, गिलोय, नीम, कुटकी और  
पटोलपत्र इनका काढा वातपित्तज्वरनाशक है ॥

बलादिकाढा ।

बलामृतैरंडजलान्दपद्मकभांगीकणोशीरयुतैः सचंदनैः ।

संकाथ्यतोयंकफपित्तज्वरप्रणाशनंवाह्निविवृद्धिकारकम् ॥

अर्थ—गगेरन, गिलोय, अंडकीजड, नेत्रवाला, नागरमोथा, पन्नाख, भारंगी, पीपर, खस और लालचंदन इनका काढा घातपित्तज्वरनाशक तथा अभिवृद्धिकारक है ॥

रसायन ।

त्रिफलामृतलोहचभृंगराजचूर्णीतम् । चूर्णमर्जुनपत्रस्य  
त्रिजातकशिलाजतु ॥ त्र्युषणंतुल्यतुल्यांशंसर्वेषांचस-  
मासिता । क्षौद्रेणवटिकाकार्याकर्षमात्रंचभावयेत् ॥  
वातपित्तज्वरंहंतिअनुपानंचकल्पयेत् ॥

अर्थ—त्रिफला, लोहभस्म, भृंगरा, लोहवृक्षकेपत्र, त्रिजातक, शिला-  
जीत और त्रिकुटा इनका चूर्ण करके सब चूर्णके समान मिश्री मिलाय  
शहदसे १ तोलेकी गोली करे १ गोली अनुपानके साथ देवे तो घातपित्त  
ज्वरको दूर करे ॥

वातकफज्वरलक्षण ।

स्तैमित्यंपर्वणांभेदोनिद्रागौरवमेवच ।

शिरोग्रहःप्रतिश्यायःकासः स्वेदप्रवर्तनम् ॥

संतापोमध्यवेगश्चवातश्लेष्मज्वराकृतिः ॥

अर्थ—स्तैमित्य नाम ( गीले कपड़ेसे देहको ढकनेसे जैसा हो ऐसा  
मालुमहो ) संधियोंमें फूटनी, निद्रा, देह भारी, मस्तक भारी, नाकसे  
पानी गिरे, खाँसी, पसीनोका आना, शरीरमें दाह, ज्वरका मध्यवेग ये  
घातश्लेष्मज्वरके लक्षण है ॥

चिकित्सा ।

वातश्लेष्मज्वरेदेयमौषधंनवमेहनि ।

अर्थ—वातकफज्वरमें नवमदिन औषधी वैद्यको देनी चाहिये ॥

यूष ।

शुष्कमूलकयूपस्तुवातश्लेष्माधिकेहितः ॥

अर्थ—सूखीमूलीका यूष, वात कफ ज्वरमें हितकारी है ॥

पंचकोल ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलंचव्यचित्रकनागैः । दीपनीयः

स्मृतोवर्गोवातश्लेष्मज्वरापहः ॥ कोलमात्रोपयोगित्वा-  
त्पंचकोलमिदंस्मृतम् । तीक्ष्णोष्णपाचनश्रेष्ठदीपनक-  
फवातनुत् ॥ गुल्मप्लीहोदरानाहशूलघ्नपित्तकोपनम् ॥

अर्थ-पीपल, पीपरामूल, चव्य, चित्रक और सोंठ, यह वर्ग अमि-  
दीपक तथा वातकफज्वरनाशक है । ये सर्व औषधी पंचकोल ( आठ-  
मासे ) लीजाती हैं इसीसे इसको पंचकोल कहते हैं यह तीक्ष्ण, गरम,  
पाचन, दीपन, कफवात, गोला, प्लीहा, उदर, अफारा और शूल इनको नाश  
करे तथा पित्तको कुपित करता है ॥

निवादिकपाय ।

निवामृताविश्वदारुकट्फलंकटुकावचा ।  
कपायंपाययेदाशुवातश्लेष्मज्वरापहम् ॥  
पर्वभेदाशिरःशूलंकासारोचकपीडितम् ॥

अर्थ-नीमकी छाल, गिलोय, सोंठ, देवदारु, कायफल और वच इनका  
काढा पीनेसे संधिपीडा, मस्तकशूल, खासी, अरुचि तथा वातकफज्वर इन  
का नाश करे ॥

किरातादिकपाय ।

किरातविश्वामृतवल्लिसिंहिकाकणाकणामूलरसोनसिंदुकः ।  
कृतःकपायोविनिहंतिसत्वरंज्वरंसमीरातसकफात्समुत्थितम् ॥  
अर्थ-चिरापता, सोंठ, गिलोय, कटेरीकीजड़, पीपल, पीपरामूल,  
लहसन, सह्यालू इनका काढा वातकफज्वर नाशक है ॥

बृहत्पिप्पल्यादिकाढा ।

पिप्पल्यादिगणकाथंपिवेद्वातकफज्वरीनातःपरंकिञ्चि-  
दास्मिज्वरेभेजमुत्तमम् ॥ पिप्पलीपिप्पलीमूलंचव्य-  
चित्रकनागरम् । वचासातिविपाजाजिपाठावत्सकरेणु-  
कम् ॥ किराततिक्तकोमूर्वासर्पपामरिचानिच । कट्फ-  
लंपुष्करंभार्गोविडंगंकर्कटाह्वयम् ॥ अर्कमूलंबृहत्सिंहि-  
श्रेयसीसदुरालभा । दीपकश्चाजमोदश्चशुकनासासहि-  
गुका ॥ एषांकाथोनिर्णीतःस्याद्वातश्लेष्मज्वरापहः ॥

हंतिवातंतथाशीतिंप्रस्वेदमतिवेषथुम् । प्रलापंचातितं  
द्रांचरोमहर्षोरुचिस्तथा ॥ महावातेपतंत्रेचशून्यत्वेसर्व-  
गात्रजे । पिप्पल्यादिर्महाकाथोज्वरेसर्वत्रपूजितः ॥

अर्थ—पिप्पल्यादिगणका काढा वातकफज्वरी रोगीको पिवावे,इस्से  
इसज्वरके ऊपर दूसरी उत्तम औषधी नहीं है पीपल, पीपरामूल,चव्य,  
चित्रक, सोठ, वच, अतीस,जीरा,पाठ,बुढाकीछाल,रेणुकबीज,चिरायता,  
कुटकी, मूवा, सरसों, कालीभिरच,कायफर,पोहकरमूल, भारंभी,वायवि-  
डग, काफडासिंगी, आककी जड,बडीकटेरी,रास्ता, धमासा,अजवायन,  
अजमोद, दिहुककी छाल और हींग ये औषध समान भाग लेकर  
काढाकर पीवे तो वातकफज्वर,घाय, शीत, पसीने, कंप, प्रलाप, अत्य-  
तनिद्रा, रोमांच, अरुचि, महावात, अपतंत्रवात, सर्वदेहकी शून्यता  
और सपूर्ण ज्वर इनका नाश करे यह पिप्पल्यादि गण सर्व ज्वरपर  
प्रशस्त है ॥

सिंहिकादिकपाय ।

सिंहीयवानोछिन्नानांकाथश्चपलयायुतः ।

कफवातज्वरश्वासशूलपीनसकासजित् ॥

अर्थ—करेटीकी जड, अजवायन और गिलोय इनका काढा पीपलका  
चूर्ण डालके पीवे, तो वात कफ ज्वर,श्वास, शूल, पीनस और खांसीको  
दूर करे ॥

कट्फलादिकपाय ।

कट्फलविश्ववचाधनपांशुधान्यशिवाजलशृंगिसुराह्वैः ।

भांर्गीयुतैःकथनंकिलपेयंवातकफप्रगणोननुचैपाम् ॥

अर्थ—कायफर, सोंठ,वच,नागरमोथा, पित्तपापडा, धनियाँ,हरद,नेत्र  
वाला,काकाडासिंगी,देवदारु और भारंगी इनका काढा वात कफनाशकहै।

दशमूलीकाढा ।

दशमूलीरसःपेयःकणाद्य-कफवातजे ।

ज्वरेविपाकेतंद्रायांपार्श्वरुक्श्वासकासके ॥

अर्थ—दशमूलके रसमें पीपरका चूर्ण मिलाय पीवे तो ज्वर, अजीर्ण, तंदा, पार्श्वशूल, श्वास और खाँसी इनका नाशकरे ॥

पिप्पल्यादिकाढा ।

पिप्पलीभिः शृतंतोयमनभिष्यंदिदीपनम् ।

वातश्लेष्मज्वरंहंतिसेवितंघ्नीहनाशनम् ॥

अर्थ—पीपलकां काढा सेवन करनेसे कफको दूर करे अग्निदीपक और वातकफज्वर तथा घ्नीहा इनका नाश करनेवाला है ॥

दारुादिकाढा ।

दारुपर्पटभांग्यन्दवचाधान्यककट्फलैः । साभयाविश्व-  
पूतकैः काथोहिगुमधूतकटः ॥ कफवातज्वरेपीतोहिका  
शोषगलग्रहान् । श्वासकासप्रमेहांश्च हन्यात्तरुमिवाशानिः ॥

अर्थ—देवदारु, पित्तपापडा, भारंगी, नागरमोथा, वच, धनियाँ, कायफर, हरड, सोंठ तथा कंजा इनका काढा हींग तथा शहद मिलायके देवे तो कफवातज्वर, हिचकी, शोष, गलरोग, श्वास, खाँसी और प्रमेह इनका नाशकरे जैसे वृक्षको वज्र नाश करता है ॥

पटोलादिकाढा ।

तृष्णान्वितेवातकफार्तिशूलेसश्वासकासारुचिविद्विवंधे ।  
हितंजलंदीपनपाचनंचपटोलशुंठीयवपिप्पलीनाम् ॥

अर्थ—प्यास, वात, कफरोग, शूल, श्वास, खाँसी अरुचि तथा बद्धकोष्ठ इनपर पटोलपत्र, सोंठ, इन्द्रजों और पीपल इनका काढा दीपन पाचन और हितकारी है ॥

क्षुद्रादिकाढा ।

क्षुद्रामृतानागरपुष्कराह्वयैः कृतः कपायः कफमारुतोत्तरे ।  
सश्वासकासारुचिपार्श्वशूलेज्वरेत्रिदोषप्रभवेपिशस्ते ॥

अर्थ—फटेरी, गिलोय, सोंठ और पोहकरमूल इनका काढा कफवातज्वर, श्वास, खाँसी, अरुचि, पार्श्वशूल और त्रिदोषजनित ज्वर इनपर हितकारी है ॥

आरग्वधादिकाढा ।

आरग्वधकणामूलंमुस्तातित्ताभयाकृतः ।

काथःशमयतिक्षिप्रंज्वरंवातकफोद्भवम् ॥

अर्थ-अमलतासका गूदा, पीपलामूल, नागरमोथा, कुटकी और हरड इनका काढा तत्काल वातकफज्वरको शमन करे ॥

मुस्तादिकाढा ।

मुस्तापर्पटकंशुंठीगुडूचीसदुरालभा ।

कफवातारुचिछर्दिदाहशोपज्वरापहः ॥

अर्थ-नागरमोथा, पित्तपापडा, सोंठ, गिलोय और धमासा इनका काढा कफवात, अरुचि, वमन, दाह, शोष और ज्वर इनका नाश करे ॥

भूनिंबादिकाढा ।

भूनिंबमुस्ताकटुकागुडूचीदुरालभापर्पटनागराख्यः ।

काथोनिलश्लेष्महरोवदंतिसूर्योयथानाशयतेधकारम् ॥

अर्थ-चिरायता, नागरमोथा, कुटकी, गिलोय, धमासा, पित्तपापडा और सोंठ इनका काढा वातकफको हरण करे जैसे सूर्य अंधकारको ॥

चातुर्भद्रादिकाढा ।

किरातंतित्तकंमुस्तंगुडूचीविश्वभेषजम् ।

चातुर्भद्रकमित्याहुर्वातश्लेष्मज्वरापहम् ॥

अर्थ-कडुआचिरायता, नागरमोथा, गिलोय और सोंठ यह चातुर्भद्र-काढा वातकफज्वरको दूर करे ॥

स्वेदशोषकचूर्ण ।

स्वेदोद्गमेभ्रष्टकुलित्थचूर्णनिर्यातनंशस्तमितिव्रुवन्ति ।

जीर्णशकृद्गोलवणस्यभाजनंसंचूर्णितंस्वेदहरंसुधूलनात् ॥

अर्थ-पसीनेआनेपर कुलथीको भूनकर पीसे, इस चूर्णको देहमें मालिश करे अथवा गौका पुराना गोबर और नोनके पात्रको पीसेक मालिश करे तो पसीना आना दूर होवे ॥



भरिचाशुद्धलन ।

भरिचंपिप्पलीशुंठीपथ्यालोघ्रश्चपुष्करम् । भूनिवःकटु-  
काकुपुंक्चूर्णैरालिगिकासठी॥एतानिसमभागानिसूक्ष्मचू-  
र्णानिकारयेत् । एतदुद्धूलनंश्रेष्ठंस्त्रोतेवस्वेदनिर्गमे ॥

अर्थ-काली मिरच, पीपल, सोंठ, हरड़, लोध, पोहकरमूल, कहुआ,  
चिरायता, कूट, कन्नूर, शिवालिंगी और कपूरकचरी ये औषध समान  
भागले कपड छान चूर्णकरके देहमे लगावे तो पसीनेकी झड़ीवी लगरही  
हो उसको बंद करे ॥

भूनिवाशुद्धलन ।

भूनिवकारवीतिक्तावचाकट्फलजंरजः ।

एषामुद्धूलनंश्रेष्ठंस्ततस्वेदसंप्लवे ॥

अर्थ-चिरायता, अजचायन, कुटपी, वच और कायफल इनका चूर्ण  
अगमें लगावे तो निरंतर आनिघाले पसीनेको उत्तमहै ॥

सूतशेखररस ।

सूतकंदंकणभ्रपुंगंधशुद्धंसमंसमम् । द्विगुणंसूतकादेयंजै-  
पालंतुपवर्जितम्॥सैधवंभरिचंचिचात्वक्क्षारःशर्करापि-  
च ॥ प्रत्येकंसूततुल्यस्याज्वरीर्मर्दयेद्दिनम् ॥सूर्यशेख-  
रनामायंरसोगुंजाद्वयोन्मितः । भक्षितस्तततोयेनवात-  
श्लेष्मज्वरापहः ॥

अर्थ-शुद्धपारा, सुनासुहागा, शुद्धगंधक, सैधानिमक, मिरच, इमली-  
का खार और मिश्री प्रत्येक एक एक टके भरशुद्ध जमालगोटा २ टके भर  
इन सबको कूट पीस नीचूके रसमें १ दिन खरलकरे यह सूर्यशेखर नाम-  
क रस दो रत्ती गरम जलसे लेय तो वातकफज्वर दूर हो ॥

कफपित्तज्वरलक्षण ।

लिततित्तास्यतातंद्रामोहःकासोऽरुचिस्तृपा ।

तथास्तंभश्चसंस्वेदःकफपित्तप्रवर्तनम् ॥

मुहुर्दाहोमुहुःशीतंपित्तश्लेष्मज्वराकृतिः ॥

अर्थ-मुखकफसे लितहो तथा पित्तके जोरसे मुखमें कड़ुआ, तंद्रा, मूच्छा, खाँसी, अरुचि, प्यास, स्तंभ ( देहका जकड़ना ) पसीना, कफ पित्तका गिरना, बारंवार दाहहो और बारंवार शीतका लगना ये कफपित्तज्वरके लक्षण है ॥

कफपित्तज्वरप्रक्रिया ।

पित्तश्लेष्मज्वरेदेयमौषधंदशमेहनि ॥

अर्थ-पित्त ज्वरमे औषधी दशमें दिन देनी चाहिये ॥

कंटकार्यादिकाढा ।

कंटकार्यमृताभाङ्गोविश्वेद्रयवासकम् । धूनिचचंदनंमु  
स्तंपटोलंकटुरोहिणी ॥ विपाच्यपाययेत्काथंपित्तश्ले-  
ष्मज्वरापहम् ॥ दाहत्पणारुचिच्छादिकासशूलनिवारणम् ॥

अर्थ-कटेरी, गिलोय, भारंगी, सोंठ, इन्द्रजो, अदुसा, चिरायता, लालचंदन, मोथा, पटोलपत्र और कुटकी इनका काढा पित्तकफज्वर, दाह, प्यास, अरुचि, घमन, खाँसी और शूल इनको दूर करे ॥

नागरादिकाढा ।

नागरोशीरविल्वाब्दधान्यमोचरसांबुभिः ।

कृतःकाथोभवेद्ग्राहीपित्तश्लेष्मज्वरापहः ॥

अर्थ-सोंठ, खस, बेलगिरी, नागरमोथा, धनियो, मोचरस और नेत्र-वाला इनका काढा ग्राही और पित्त कफज्वरका नाशक है ॥

शृंगवेरादिकाढा ।

कपायःपरिपीत्तस्तुशृंगवेरपटोलयोः ।

पित्तश्लेष्मज्वरवर्मादाहकंडूविसर्पनुत् ॥

अर्थ-अदरख और पटोलपत्रका काढा करके पीवे तो पित्तकफज्वर, घमन, दाह, सुजली और विसर्प ये दूर हो ॥

पटोलादियूष ।

पटोलघान्ययोर्यूषःपित्तश्लेष्मज्वरापहः ।

दीपनःकफावेच्छेदीपित्तवातानुलोमनः ॥

अर्थ-पटोलपत्र और धनियेका यूष पित्तकफज्वरको दूरकरके दीपन और कफको छुटानेवाला तथा पित्तवातको अनुलोमकरता है ॥

पटोलादिकाढा ।

पटोलंपिचुमंदश्चत्रिफलामधुकंवला ।

साधितोयंकपायःस्यात्पित्तश्लेष्मभवेज्वरे ॥

अर्थ—पटोलपत्र, नीमकी छाल, त्रिफला, मुलहठी और गेंगेरन इनका काढा पीनेसे पित्तकफज्वर दूर हो ॥

तित्तादिकाढा ।

तित्तोशीरवलाधान्यपर्पटांभोधरैःकृतः ।

क्वाथःपुनःसमायातंज्वरंशीघ्रंनिवारयेत् ॥

अर्थ—कुटकी, खस, गेंगेरन, धनियाँ, पित्तपापडा और नागरमोथा इनका काढा उलटकर आनेवाले ज्वरको तत्काल दूर करे ॥

लोहितचंदनादिकाढा ।

लोहितचंदनपद्मकधान्यछिन्नरुहापिचुमंदकपायः ।

पित्तकफज्वरदाहपिपासावांतिविनाशदुताशकरःस्यात् ॥

अर्थ—लालचंदन, पद्मास, धनियों, गिलोय और नीमकी छाल इनका काढा पित्त, कफज्वर, दाह, प्यास, वमन इनको दूर करे और अमिको बढ़ावे ॥

जीरकादिकाढा ।

जीरकंकारवेल्यंबुशीतपूर्वज्वरेहितम् ।

पाक्यंशीतकपायंचमुस्तापर्पटकंभवेत् ॥

अर्थ—जीरा और करेलेका रस देनेसे शीतज्वरका नाश करे एवं नागर मोथा और पित्तपापडा इनका काढा शीतल देनेसे पाचक है ॥

यवादिकाढा ।

यवःपर्पटकंधान्यंपटोलारिष्टसाधितम् ।

पिवेत्सर्शकंरक्षौद्रंपित्तश्लेष्मज्वरापहम् ॥

अर्थ—जो पित्तपापडा, धनियाँ, पटोलपत्र, नीमकी छाल इनका काढा शहद और मिर्ची मिलाकर पीवे तो पित्त कफज्वरको दूरकरे ॥

नागरादिकाढा ।

नागरेद्रयवंमुस्तंचंदनंकटुरोहिणी । पिप्पलीचूर्णसं-

युक्तं कपायंतुपिवेत्रः । भ्रममूर्च्छारुचिर्दिपित्तश्ले-  
ष्मज्वरापहम् ॥

अर्थ—सोंठ, इन्द्रजों, नागरमोथा, लालचंदन और कुटकी इनका काढा कर उसमें पीपलका चूर्ण डाल पीवे तो भ्रम, मूर्च्छा, अरुचि, वमन, पित्तकफज्वर इनका नाश करे ॥

द्राक्षादिकाढा ।

द्राक्षाशम्पाककटुकामुस्तंत्रंथिकधान्यकम् ।

पक्वंहन्यादुदावर्तशूलं पित्तकफज्वरम् ॥

अर्थ—दाख, अमलतासका गूदा, कुटकी, मोथा, पीपरामूल और धनियाँ इनका काढा देवे तो उदावर्त, शूल और पित्तकफज्वर ये दूर हों ॥

पटोलादिकाढा ।

पटोलयवधान्याकमुस्तामलकचंदनम् ।

श्लेष्मिकश्लेष्मपित्तोत्थज्वरतृदृच्छर्दिदाहनुत् ॥

अर्थ—पटोलपत्र, इन्द्रजों, धनियाँ, नागरमोथा, आमले और लालचंदन इनका काढा कफपित्तज्वर, कफज्वर, प्यास, वमन और दाह इनको नाश करे ॥

यवादिकाढा ।

यवपद्मकधान्याकंद्रेहरिद्रेसचंदने । गुडूचीदेवकाष्ठं च

तेजोह्वासदुरालभा ॥ श्रपयित्वापिवेत्काथंकफपित्तज्व-

रापहम् । पिपासाछर्दिदाहग्रंवृष्यंवह्निविदीपनम् ॥

अर्थ—इन्द्रजों, पद्मास, धनियाँ, हलदी, दारुहलदी, रक्तचंदन, गिलोय, देवदारु, तेजबल और जवासा इनका काढा कफपित्तज्वर तथा प्यास, वमन, दाह इनको नाश करे और अग्निको दीपन करे ॥

त्रायंत्यादिकाढा ।

त्रायंतीभिधकटुकारामसेनापटोलिका ।

ज्वरेपैतकफेह्येतदेयं दीपनपाचनम् ॥

अर्थ—त्रायमाण, मोथा कुटकी, सपेदकटेली और पटोलपत्र इनका काढा पित्तकफज्वरपर दीपन और पाचनार्थ देवे ॥

## किरमालादिकाढा ।

किरमालोवचाहिं गुवालकंधान्यकं निशा । मुस्तायष्टिस्त-  
थाभांगीपपटः समभागतः ॥ अष्टावशेषितः काथोमधु-  
नाप्रतिपाकतः श्लेष्मपित्तज्वरं हन्ति रोगिणः पथ्यभोजिनः ॥

अर्थ—अमलतासका गूदा, वच, हींग, नेत्रवाला, धनिया, हलदी, नागरमोथा, मुलहठी, भारंगी और पित्तपापडा ये समभागलेके अष्टाव-  
शेष काढाकरे उसमे शहद डालके पीवे और पथ्यसे रहे तो कफपि-  
तज्वरका नाश हो ॥

## पटोलादिकाढा ।

पटोलमुस्ताजलरक्तचंदनं तित्कारजोविश्वमुशीरवासकम् ।  
संक्वाथ्य तोयं कफपित्तजं ज्वरं निहन्ति चारात्त्वरितं तृपायुतम् ॥

अर्थ—पटोलपत्र, नागरमोथा, नेत्रवाला, रक्तचंदन, कुडकी, पित्तपा-  
पडा, सोठ, खस और अदूसा इनका काढा कफपित्तज्वर और तृषा  
इनका नाश करे

## शुद्ध्यादिकाढा ।

गुडूचीनिवधान्याकपद्मकंचंदनान्वितम् ।  
तृष्णादाहरुचिच्छर्दिं सर्वज्वरहरोगणः ॥

अर्थ—गिलोय, नीमकी छाल, धनियां, पद्मास, रक्तचंदन इनका काढा  
तृषा, दाह, अरुचि, वमन और संपूर्ण ज्वरोंको नाश करे ॥

## शुद्ध्यादिकाढा ।

सनागरं पपटकं पिवेद्वासदुरालभम् ।  
किराततित्कं मुस्तं गुडूचीं सदुरालभाम् ॥

अर्थ—सोठ, पित्तपापडा अथवा धमासा इनका काढा अथवा चिरायता,  
नागरमोथा, गिलोय और धमासा इनका काढा पित्तकफज्वरवालेको देवे ॥

## शुद्ध्यादिकपंचतित्ककाढा ।

क्षुद्रामृताभ्यां सह नागरेण स पुष्करचैव किराततित्कम् ।  
पिवेत्कपायं भुवि पंचतित्कं विधिः समस्तज्वरमाशुहन्ति ॥

अर्थ-कटेरी, गिलोय, सोंठ, पोहकरमूल और चिरायता इनका पंच-  
तित्तनामक काढा मर्वज्वरोंको तत्काल दूर करे ॥

मांग्यादिकाढा ।

भांगीपुष्करमूलंचमुस्तकंकटकारिका । त्रिकंटकवृह  
त्यौचकर्णिनीनागैःशृता॥गणोभांग्यादिकोनामपित्तश्ले  
ष्मज्वरापहः।कासश्वासारुचिहरःपार्श्वशूलनिवारणः ॥

अर्थ-भारंगी, पोहकरमूल, नागरमोथा, कटेरी, गोखरु, बड़ीकटेरी,  
अमलतासका मूला और सोंठ इन औषधोंका काढा पित्तकफज्वर,  
खांसी, श्वास, अरुचि और पसवाडोंका दरद इन रोगोंको दूर करे ॥

पटोलादिकाढा ।

पटोलचंदनमूर्वातिकापाठामृताकणाः ।

पित्तश्लेष्मारुचिच्छार्दज्वरकंडूविषापहाः ॥

अर्थ-पटोलपत्र, लालचंदन, मूर्वा, कुटकी, पाठ, गिलोय और पीपल  
इनका काढा पित्त, कफ, अरुचि, घमन, ज्वर, खुजली और विष इनको  
नाशकरे ॥

त्रिफलादिकाढा ।

त्रिफलात्रायमाणचमृद्धीकाकटुरोहिणी ।

पित्तश्लेष्मज्वरेह्येपकपायोद्धानुलोमिकः ॥

अर्थ-त्रिफला, त्रायमाण, दास और कुटकी इनका काढा पित्तक-  
फज्वरके दूर करनेको देवे ॥

वत्सकादिकाढा ।

वत्सकंपद्मकाष्ठंचनागरंचंदनामृते । पटोलंधान्यकंचैव  
मुस्तकंरक्तचंदनम् ॥ पाठांमूर्वामृतांशुंठीमुंशीरंकटुरो-  
हिणीमांसमभागशृतंतोयंसर्वज्वरहरंपिबेत् ॥ पित्तामृक्  
दाहशूलघ्नम्लपित्तविनाशनम् ॥

अर्थ-कुडाकी छाल, पद्मास, सोंठ, रक्तचंदन, गिलोय, पटोलपत्र,  
धनियाँ, नागरमोथा, सपेदचंदन, पाठ, मूर्वा, सस और कुटकी ये समा-

न भागलेके काढा करे यह सर्वज्वर, रक्तपित्त, दाह, शूल और अम्लपित्तको दूर करे ॥

अमृतादिकाढा ।

अमृतारिष्टकटुकामुस्तेन्द्रियवनागरैः । पटोलचंदनाभ्यां  
चपिप्पलीचूर्णयुक्कृतम् ॥ अमृताष्टकमेतच्चपित्तश्लेष्म  
ज्वरापहम् । छर्द्यरोचकहृल्लासदाहतृष्णानिवारणम् ॥

अर्थ—गिलोय, नीमकी छाल, कुटकी, नागरमोथा, सोंठ, पटोलपत्र और दोनों चंदन इनके काढेमें पीपलकाचूर्ण मिलायके पीवे तो यह अमृताष्टक पित्तकफज्वर, वमन, अरुचि, हृल्लास, दाह और प्यासको दूर करे ॥

वासास्वरस ।

सपत्रपुष्पवासायारसःक्षौद्रसितायुतः ।

कफपित्तज्वरंहंतिसाक्षपित्तसंकामलम् ॥

अर्थ—पत्ते और फूल सह अद्सेका रस लेवे उसमें मिश्री और शहद मिलाय पीवे तो कफपित्तज्वर, रक्तपित्त और कामला दूर हो ॥

कटुकीचूर्ण ।

सशर्करामक्षमात्रांकटुकीचोष्णवारिणा ।

पीत्वाज्वरंजयेज्जंतुःपित्तश्लेष्मसमुद्भवम् ॥

अर्थ—कुटकीका चूर्ण एक तोला ले उसमें चार मासे मिश्री मिलाय गरम जलसे लेवे तो पित्तकफज्वर दूर हो ॥

लाजमंड ।

लाजैर्वातंडुलेभ्रैर्लाजमंडःप्रकीर्तितः ।

श्लेष्मपित्तहरोयाहीपिपासाज्वरजिन्मतः ॥

अर्थ—खीलोंका अथवा भुने चावलोंका मांड निकालकर देवे यह कफ, पित्त, प्यास, ज्वर इनको, दूर करे और प्राही है ॥

वाटचमंड ।

सुकंडितैस्तथाभ्रैर्वाटचमंडोपवैर्भवेत् ।

कफपित्तहरःकंठयोरक्तपित्तप्रसादनः ॥

अर्थ-जवोंको अच्छीरीतिसे बिन छरके मिगी निकालले फिर चौदह गुनेजलमें पककरे जब जो सीज जाय तब उस पानीको छानके प्यावे इसको वाटचमंड कहते है यह कफपित्तकी दूरकरे कंठको हितकारी और रक्तपित्तको दूर करे ॥

मुस्तादिनिर्युह ।

मुस्तापपेटकैरातनिर्युहेनप्रसाधितः ।

कफपित्तज्वरहरोयूपोधान्यपटोलयोः ॥

अर्थ-नागरमोथा, पित्तपापडा और चिरायता इनका निर्युह अथवा धनियाँ और पित्तपापडा इनका यूप कफपित्तज्वरका नाश करे ॥

निंबादियुष ।

निंबकुलकयूपस्तुहितः पित्तकफात्मके ॥

अर्थ-नीमकी छाल और पटोलपत्र इनका यूप पित्तकफका नाश करताहै ॥

चंद्रशेखररस ।

शुद्धंसूतंसमंगंधमरिचं कण्ठतथा । चतुस्तुल्याशिला  
योज्यामत्स्यपित्तेन भावयेत् ॥ त्रिदिनं भावयेत्तेन रसोयं  
चंद्रशेखरः । द्विगुंजमार्द्रकद्रवैर्देयं शीतोदकं पुनः ॥  
तक्रौदनं च घृताकं पथ्यंतत्र निवेदयेत् । त्रिदिनाच्छ्लेष्म  
पित्तोत्थमत्युष्णं नाशयेज्ज्वरम् ॥

अर्थ-शुद्धपारा, शुद्धगंधक, कालीमिरच, सुहागा तथा इन चारोके बरोबर मनसिल ले सबको एकत्रकर मछलीके पित्तेसे तीनदिन खरल करे तो यह चंद्रशेखर रस बनकर तयारहो, इसको २ रत्ती अदरखके रससे देवे और ऊपर शीतल जलपीवे तथा दही भात और बैगन ये पथ्यसे देतो तीनदिनमें कफपित्तज्वर नाश हो ॥

सन्निपातज्वरलक्षण ॥

क्षणेदाहः क्षणे शीतमीस्थसंधिशिरोरुजः । सप्तावेकलुपे  
रक्तेनिर्भुग्नेचापिलोचने ॥ सस्वनौसरुजौ कर्णौ कंठः शूकै  
रिवावृतः । तंद्रामोहः प्रलापश्चकासः श्वासोरुचिर्भ्रमः ॥  
परिदग्धाखरुर्पक्षाग्निह्वासस्तांगतापरम् । घृविनं



रक्तपित्तस्य कफेनोन्मिथितस्य च ॥ शिरसो लोड  
नंतृष्णानेद्रानाशो हृदिव्यथा । स्वेदमूत्रपुरीषाणां चिरा  
द्दर्शनमल्पशः ॥ कृशत्वं नातिगात्राणां सततं कंठकूजनम् ।  
कोष्ठानां श्यावरक्तानां मंडलानां च दर्शनम् ॥ मूकत्वं स्त्रो  
तसां पाको गुरुत्वमुदरस्य च । चिरात्पाकस्तु दोषाणां  
संनिपातज्वराकृतिः ॥

अर्थ—अकस्मात् क्षणमें दाह, क्षणभरमें सीत लगे, हाड, संधि, मस्तक  
इनमें शूल, अश्रुपातयुक्त काले और लाल तथा फटेसे नेत्र हो जावें (अथवा  
टेटे नेत्र हो ये जेज्जटका मत है) कानोंमें शब्द और पीडा हो, कंठमें फाटे  
पड जाय; तंद्रा, बेहोशी हो, अनर्थ बोले, खांसी, श्वास, अरुचि, भ्रम ये हो  
जीभ परिदग्धवत् (काली) और खर्दरी गो जीभके समान तथा शिथिल  
(लठर) हो पित्त और रुधिर मिला कफ थूके, शिरको इधर उधर पटकें, तृषा  
वहुत लगे, निद्राका नाश हो, हृदयमें पीडा, पसीना, मूत्र, मल इनका  
वहुतकालमें थोड़ा उतरना, दोषोंके पूर्ण होनेसे देहका कृश न होना, कंठमें  
कफका निरंतर बोलना, रुधिरसे काले, लाल फोटे और चकत्तोंका होना  
शब्द बहुत मन्द निकले, कान, नाक, मुख आदि छिद्रोंका पकना, पेटका  
भारी होना, वात, पित्त, कफ इनका देरमें पाक हो (उदरस्य च) इस पदमें  
जो चकार है यासे वाग्भटने जो लिखे हैं कोन शीतका लगना, दिनमें  
घोर निद्राका आना, नित्य रात्रिमें जागना अथवा निद्रा कभी आवेही  
नहीं, पसीना बहुत आवे और नहीं आवे, कभी गान करे, कभी नाचे,  
हंसे, रोवे और चेष्टा पलट जाना इत्यादि जानने ये सन्निपातज्वरके लक्षण  
जानने सुश्रुत वाग्भटके मतसे सन्निपात एकही प्रकारका है, परंतु और  
आचार्यनके मतसे उत्त्वणादि भेद करके ५२ प्रकारका है ॥

धातुपाकलक्षण ।

निद्राबलौजोरुचिर्वीर्यनाशो हृद्वेदनागोरवतालपचेष्टा ।

विष्टंभतायस्य किलारतिः स्यात्सधातुपाकी मुनिभिः प्रदिष्टः ॥

अर्थ—निद्रा, बल, तेज, रुचि, वीर्य इनका नाश, हृदयमें पीडा,  
देह भारी, हीन चेष्टा अर्थात् मनका न लगना ये लक्षण जिसके हों उसको

१ कोटक रक्षण मालुकिने कहें यथा "वरदीदृशसंराज्ञ कहुमान लोदितोऽप्राप-  
पिपवान् क्षणिकोत्पत्तिविनाशवैत इत्यभिधीयते सति" इति ।

धातुपाकी मुनीश्वरोंने कहा है ( धातुपाक ) कहिये उत्तरोत्तर रोगकी वृद्धि और बलकी हानि होकर शुक्रादि धातुसहित मूत्रादिकोंका जो पाक होय उसे ( धातुपाक ) कहते हैं ॥

दोषपाकलक्षण ।

दोषप्रकृतिवैकृत्यलघुताज्वरदेहयोः ।

इन्द्रियाणांचवैमल्यंदोषाणांपाकलक्षणम् ॥

अर्थ—दोषोंका स्वभाव पलटजाय, ज्वरका हलका होना, देह हलकी हो, इन्द्रियोंका निर्मल होना ये ( मलपाक ) के लक्षण जानने ( धातुपाक ) और ( मलपाक ) होना केवल ईश्वरपर है इसमें दूसरा कोई हेतु नहीं है ॥

सन्निपातज्वरकेविशेषलक्षण ।

संनिपातज्वरस्यातिकर्णमूलेसुदारुणः । शोथःसंजाय-  
तेतेनकश्चिदेवप्रमुच्यते ॥ ज्वरस्यपूर्वज्वरमध्यतोवा  
ज्वरांततोवाश्रुतिमूलशोथः । क्रमादसाध्यः खलुकष्ट-  
साध्यः सुखेनसाध्योमुनिभिः प्रदिष्टः ॥

अर्थ—सन्निपातज्वर शांति होनेके पीछे कानकी जड़में दारुण सूजन पैदा होती है उससूजनसे कोई रोगी बचे है प्रायः यह मारही डाले है ॥ यदि यह सूजन ज्वरके पहिले होवे तो असाध्यहै ज्वरके मध्यमे होय तो कष्टसाध्य है और ज्वरके अतमे होय तो सुखसाध्य है ऐसे मुनीश्वरोंने कहा है ॥

साध्यासाध्यलक्षण ।

दोषेविवृद्धेनष्टेग्रौसर्वसम्पूर्णलक्षणः ।

सन्निपातज्वरोसाध्यः कृच्छ्रसाध्यस्ततोऽन्यथा ॥

अर्थ—जिसमें दोष ( घात पित्त कफ ) वृद्धि होकर अर्थात् सम्पूर्ण लक्षण होकर मिलतेहो और अग्नि शांति होगई हो वो सन्निपातज्वर असाध्य है और इससे विपरीत अर्थात् दोष बढे नहीं अल्प लक्षण हो अग्नि थोड़ी दीप्त हो वो सन्निपातज्वर कृच्छ्रसाध्य है ॥

सन्निपातकीकालमर्यादा ।

सप्तमेदिवसेप्राप्तेनवमेकादशेपिवा । पुनर्घोरतराभूत्वा-  
प्रशमंयातिहंतिवा ॥ सप्तर्माद्विगुणायावन्नवम्येकादशी-

तथा ॥ एपात्रिदोषमर्यादामोक्षायचवधायच ॥

अर्थ—संनिपातज्वर यदि सातवें, नवें, ग्यारवें, चौदहवें, अठारवें और बाईसवें दिन ज्यादा होवे तो रोगी इस मर्यादाके दिवसोंमें मरे और मर्यादा चूक जावे तो रोगी जीवे, यह त्रिदोषकी मर्यादा है । जबसे त्रिदोष प्रकटहो उस दिनसे लेकर ७ किंवा १४ और ९ किंवा १८ तथा ११ किंवा २२ दिनतक त्रिदोष ज्वरोंकी मर्यादा है इस अधिमें ज्वर जाता रहै अथवा मृत्युहोय ॥

दोषजनितकालमर्यादा ।

पित्तकफाऽनिलवृद्ध्यादशदिवसद्वादशाहसप्ताहान् ।

हन्तिविमुञ्चत्याशुत्रिदोषजोधातुमलपाकात् ॥

अर्थ—पित्तकफ और वात इनके पाकहोनेकी मर्यादा अनुक्रमसे दशमें, बारहमें और सातवें दिवस होती है अतएव उसीउसी दिनमें धातुपाक होनेसे रोगी मरे मलपाक होनेसे रोगी रोगरहित होवे ॥

कट्फलादिपानम् ।

कट्फलं त्रिफलादारुचन्दनं सपरूपकम् । कटुकापद्मकोशी-

रं विपचेत्कार्पिकं जले ॥ त्रिदोषदाहतृष्णाभ्रं पानमात्रेण

पूजितम् । दीर्घकालज्वरार्तानामेतत्स्यादमृतोपमम् ॥

अर्थ—कायफल, त्रिफला, देवदारु, लालचंदन, फालसे, कुटकी, पद्मास और खस इन औषधोंको एक २ तोलालेकर काढा करके पीवितो त्रिदोष दाह और तृष्णा इनको शांत करे और दीर्घकालसे आने-वाले ज्वररोगीको अमृतके तुल्य है ॥

दशमूलादिमंड ।

पाचनोदीपनः सोष्णोलाजमंडोयतः स्मृतः ।

दशमूलादिसिद्धः संनिपातज्वरोहितः ॥

अर्थ—दशमूलके काढ़ेसे सिद्ध कराहुआ सीलोंका मंड पाचन, दीपन और गरम है अतएव संनिपातज्वरपर हित है ॥

दुःस्पर्शादिसिद्धात्र ।

दुस्पर्शगोक्षुरक्षुद्रासिद्धमाहारमर्पयेत् ।

दोषशान्तिवलाभ्यर्थं त्रिदोषज्वरिणे पृथक् ॥

अर्थ—धमासा, गोखरू और कंटरी इनके काढेमे सिद्ध कराहुआ आहार देवे। इससे दोष शांतिहो तथा बल और अग्नि ये बढ़े और त्रिदोष रोग-  
वालेको हित है ॥

लाजसक्तुक ।

लाजसक्तून्समश्रियात्सैधवेनसमन्वितान् ।

तच्चेज्जीर्यत्यविघ्नेनज्वरीजिवित्तदाध्रुवम् ॥

अर्थ—त्रिदोषज्वरवालेको खीलका सत्तू सैधानोन डालके देवे तो यदि यह निर्दिष्ट पचजावे तो रोगी निश्चय जीवे ॥

लाजसक्तुनिषेध ।

रक्तपित्तेहितत्वेनतृष्णादाहज्वरेषुच ।

लाजानांसक्तवः शीतानचतेत्रहितामताः ॥

अर्थ—खीलका सत्तू शीतल है यह रक्तपित्त, प्यास दाह और ज्वर इनपर हित है, परंतु संनिपातपर नहीं देना चाहिये ॥

पित्तशमनकरनेकेकारण ।

निर्हरेत्पित्तमेवादौज्वरेषुसमवायिषु ।

दुर्निवारतरंतद्विज्वरातेषुविशेषतः ॥

अर्थ—समवायि संनिपात ज्वरमे प्रथम पित्तका हरण करे क्योंकि, यह दुर्निवार है ॥

शीतोदकसेचनकानिषेध ।

संनिपातेतुदाहार्तयःसिचेच्छीतवारिणा ।

आतुरः सकथंजीवेद्विषग्वासकथंभवेत् ॥

अर्थ—जो वैद्य संनिपातके दाहमे शीतल जलसे सिंचन करता है उसको वैद्य कैसे कहना चाहिये और वह रोगी कैसे बचेगा ॥

शिरीषाद्यंजन ।

शिरीषबीजगोमूत्रकृष्णामरिचसैधवैः ।

अंजनंस्यात्प्रबोधायसरसोनशिलारसैः ॥

अर्थ—सिरसके बीज, गोमूत्र, पीपर, कालीमिरच और सैधानिमक इनको एकत्र पीस अंजनकरे तो संनिपातकी मूर्च्छा जाय अथवा मनशिल और वच इनका लहसनके रसमें अंजन करे ॥

कस्तूरिकाद्यंजन ।

कस्तूरीमरिचंवाजिलालाचमधुनांजनम् ।

तंद्रांनिवारयत्याशुव्यूषंक्षितंयथानसि ॥

अर्थ—कस्तूरी और मिरच इनको धोडेकी लारमें पीस शहद डालके अंजन करे तो तंद्रा शीघ्र दूर होवे । उसी प्रकार त्रिकुटाके चूर्णकी नास लेनेसे तंद्रा दूर होय ॥

लंघन ।

सन्निपातज्वरीपूर्वसम्यग्लंघनमाचरेत् ।

शृतशीतंपिवेदंभः समयेद्रेपजंभजेत् ॥

अर्थ—संनिपातज्वरवाला प्रथम उत्तम लंघन करे और पानीको ओढ़ाय शीतल करके बहुत प्यासमें पिवावे और समय २ पर औषधि देवे ॥

शीतजलपाननिषेध ।

सन्निपातेनतृप्यंतंपार्श्वरुक्तालुशोपिणम् ।

यः पाययेज्जलंशीतंसमृत्युर्नरविग्रहः ॥

अर्थ—संनिपातज्वरवाले रोगीके शोष होय और कूखमें शूल तथा तालुआ सूखताहो इसमें जो वैद्य बिना ओढ़ाहुआ जल देवे वह मनुष्यरूप मृत्यु जानना ॥

वालुकास्वेद ।

वातश्लेष्मकृतेस्वेदान्कारयेद्रूक्षनिर्मितान् ।

स्निग्धस्वेदोनिपिद्धोत्रविनाकेवलवातजात् ॥

अर्थ—वातकफके विकारमें रुक्ष औषधोंसे स्वेद विधिकरे किन्तु स्निग्ध स्वेद केवल वात रोग बिना अन्यत्र निषेध है ॥

सैंधवादिनस्य ।

सैंधवंश्वेतमरिचंसर्पपाः कुष्ठमेवच ।

वस्तमूत्रेणसंपिष्टंनस्यंतंद्रांनिवारणम् ॥

अर्थ—सैंधानिमक, सपेदमिरच, सरसों और कूठ इनको बकरेके मूत्रमें पीस नास देवे तो संनिपातकी तन्द्रा जाय ॥

मातुलिंगादिनस्य ।

मातुलिगाद्रंकरसंकोष्णांत्रिलवणान्वितम् ।

अन्यद्रासिद्धविहितंनस्यंतीक्ष्णंप्रयोजयेत् ॥

तेनप्रभिद्यतेश्लेष्माप्रभिन्नश्चप्रसिच्यते ।

शिरोहृदयकंठास्यपार्श्वरुक्चोपशाम्यति ॥

अर्थ—विजौरेकारस और अदरखकारस इनको गरम कर तीनो नोन (संचर साक्षर खारी) मिलायके नस्यदेवे अथवा और जो सिद्धवैद्योंकी कहीहुई तीक्ष्ण औषधोंकी नस्यदेवे तो इससे कफ फटजावे और फटकर दब-जाय कि, जिस्से शिर, हृदय, कंठ, मुख और पसवाडोंकी पीडा शांति हो॥

कल्पतरुनस्य ।

मोहामयेनमुग्धं बोधायितुंयादृशःशक्तः ।

कल्पतरुनामधेयोरसोगताहृक्परंकिंचित् ॥

अर्थ—जो मोहरूप रोगसे भूठ हो रहा है उसके चैतन्य करनेमें जैसा कल्पतरुस सामर्थ्य रखता है ऐसा अन्य नहीं है ॥

द्राक्षादिलेपजिह्वापर ।

जिह्वातालुगलक्लोममरुत्पित्तेनवोच्छितः ।

तदासचाचरेच्छोपंजिह्वायाःखरतांतथा ।

रुफुटनंचतदाजिह्वालेपयेन्मधुपिष्टया ॥

द्राक्षयासाज्ययातेनजिह्वास्यात्सरसामृदुः ॥

अर्थ—यदि वातपित्तके प्रभावसे जीभ, तालु, गला और क्लोम (पिपा-सास्थान) ये ठठ आवे तो ये शोषको करते है और जीभको खरदरीक-रे तथा जीभ फटजावे, इसमे जीभपर दाक्ष और घृत मिलाय शहदका लेपकरे तो जीभ रसयुक्त नम्र हो जावे ॥

आर्द्रकादिकवलग्रह ।

आर्द्रकस्वरसोपेतं सैधवंकटुकत्रयम् । आकंठाद्वारयेदास्ये-

निष्ठीवेच्चपुनःपुनः ॥ तेनास्यहृदयक्लोममन्यापार्श्वशिरो-

गलान्गालानोप्याकृष्यते श्लेष्मालाघवंचास्यजायते ॥ पर्व-

भेदोज्वरोमूर्च्छानिद्राश्वासगलामयाः । मुखाक्षिगौरवंजा-

उच्यमुत्केशश्चोपशाम्यति ॥ सकृद्वित्रिचतुःकुर्याद्दृष्ट्वा-  
रोगबलावलम् । एतद्विपरमंप्राहुर्भेषजसन्निपातिनाम् ॥

अर्थ—अदरखेके स्वरसमें सैधानिमिक और त्रिकुटा मिलायके गोलीक-  
रे, इस गोलीको मुखमें रखके, बारंबार कफ आवे उसको थूक देवे इस  
प्रकार करनेसे मुख, हृदय, क्लोम, मन्यानाडी, पसवाड़ेके भाग और गला  
इनमें लिहसा हुआ कफ निकले और शरीरमें हलका पना आवे और  
गांठोंका दूखना, ज्वर, मूच्छा, श्वास, गलेका रोग, मुख नेत्र इनकी  
जडता, मुखसे पानीका गिरना ये सब रोग दूर हों । यह प्रकार दोषों-  
को बलावल देखकर दो बारबार करे यह सन्निपात रोगमें उत्तम है ॥

अष्टांगावलेह ।

ऊर्ध्वजन्तुगदग्रीयासासायमवलेहिका ।

अधोरोगहरीयासाभोजनात्प्राक्प्रयुज्यते ॥

अर्थ—जन्तुके ऊपरके रोगोंमें सायंकालमें अवलेह लेवे और अधोभा-  
गके रोगोंमें भोजनके पूर्व लेनी चाहिये ॥

कद्रुफलादिअवलेह ।

कद्रुफलंपुष्करंशृंगीव्योपंयासश्चकारवी ।

शुष्कणचूर्णकृतंचैतन्मधुनासहलेहयेत् ॥

एपावलेहिकाहंतिसन्निपातंसुदारुणम् ।

हिक्कांश्वासंचकासंचकंठरोगंचनाशयेत् ॥

एतद्योज्यंकफोद्रेकचूर्णमाद्रिकजैरसैः ॥

अर्थ—कायफर, पोहकरमूल, काकडासिंगी, त्रिकुटा, धमासा और अज-  
मोद इनका कपडछन चूर्णकर शहदसे चाटे तो यह दारुण सन्निपात,  
हिचकी, श्वास, खाँसी और कंठरोग इनको दूरकरे । यदि कफ अधिक  
होवे तो इसी चूर्णको अदरखके रसके साथ चाटना चाहिये ॥

आर्द्रकादिस्वरस ।

अष्टांगमधुनालिह्यादाद्रिकस्यरसेनवा ।

संमोहंदारुणंहन्यात्तद्राकाससमन्वितम् ॥

अर्थ—ऊपर कहा अष्टांग अवलेह शहदसे किवा अदरखके रससे चाटे तो खांसी, तंद्रा और अत्यंत मोह इनका नाशकरे, ॥

मधुनिषेध ।

सर्वेषु संनिपातेषु नक्षौद्रमवचारयेत् । शीतोपचारिक्षौद्रं  
स्याच्छीतं चात्र विरुध्यते ॥ उष्णैर्विरुध्यते सर्वविषान्वय-  
तयामधु । उष्णार्तमुष्णैरुष्णं च तं निहतं त्रिधा विपम् ॥

अर्थ—संपूर्ण संनिपातोंमें शहद न देवे कारण कि, शहद भक्षण करनेसे उसपर शीतल उपचार करने चाहिये और संनिपातोंमें शीतल चिकित्सा विरुद्ध है तथा सर्व उष्णपदार्थोंसे शहदका विषके सदृश विरोध है अतएव जो मनुष्य असलमें गरमीसे पीडित होय और फिर उसके ऊपर गरम उपचार होय तो वो विषके समान मारने वाले होते हैं ॥

प्रक्रिया ।

संनिपातज्वरे पूर्वकुर्यादामकफापहम् ।

पश्चाच्छ्लेष्मणिसंक्षीणेशमयेत्पित्तमारुतौ ॥

अर्थ—संनिपातज्वरपर प्रथम आम और कफनाशक औषधी देवे जब कफक्षीण हो जावे तब पित्तवातको शमन करे ॥

दूसरा प्रकार ।

लंघनं वालुकास्वेदो नस्यं निघ्नो वनंतथा ।

अवलेह्यं जनचैव प्राक्प्रयोज्यं त्रिदोषजे ॥

अर्थ—संनिपातमें लंघन, वालुकास्वेद, नस्य, धूकना, अवलेह और अंजन ये प्रथम करने चाहिये ॥

लंघनका असहन ।

दोषाणामेव साशक्तिर्लघने यासा हि ण्णुता ।

कश्चिदोपविमुक्तो न लंघनं सहते नरः ॥

अर्थ—लंघनोंका सहन होना यह दोषोंकीही शक्ती है दोषमुक्त होनेपर रोगीको लंघन सहन नहीं होते ।

एककालमें दो प्रकारकी औषध देनेका निषेध ।

क्रियायास्तु गुणालाभे क्रियामन्यां प्रयोजयेत् ।



पूर्वस्यांशांतवेगायांनक्रियासंकरोहितः ॥

अर्थ-एक औषधक्रियाका गुण न होय तो दूसरी औषधक्रिया करनी चाहिये, परंतु पूर्वऔषधका वेग नष्ट हो जानेपर करे एककालमें दो औषधक्रिया हितकारी नहीं हैं ॥

अन्यप्रतीकार ।

तप्तायोलांछनंपंचताल्वादिपुत्रिदोषजे । रुद्राभिपेकोभू-  
देवभोजनंग्रहजाप्यतः ॥ मंत्ररक्षादिभिःकार्यासंनिपा-  
तेप्रतिक्रिया ॥

अर्थ-सन्निपातमें तालु आदि पांचस्थानोंमें तत्ते लोहकी सलाई आदिसे दागदेवे और रुद्राभिपेक, ब्राह्मणभोजन, ग्रहोंका जप तथा मंत्ररक्षादिक रोगनाशार्थ अन्यउपाय कराने चाहिये ॥

कंटकार्यादिपाचन ।

कंटकारिद्वयंशुंठीधान्यकंसुरदारुच ।

एभिःशृतंपाचनंस्यात्सर्वज्वरनिवारणम् ॥

अर्थ-दोनोंकटेरी, सोंठ, धनियाँ और देन्दारु इनका काठा सर्वज्वरमें पाचक तथा ज्वरनाशक है ॥

मनःशिलादिभजन ।

तुरंगलालासहितामनःशिलानिहतितंद्रासकृदंजनेन ।

बन्धूलपत्राणिहरीतकीचसंस्वेदितास्वेदविकारहन्त्री ॥

अर्थ-मनसिलको पीठेकी लारमें घिसके भजन करावे तो तंद्राका आना दूर हो और बचुरके पत्ते और हरड़ इनकी बाफ स्वेदहरणकर्ता जाननी ॥

भूनिवादिमर्दन व उद्भूलन ।

भूनिवकटुकाकुष्ठंकारवींद्रयवाःसठी । एतानिसमभागा

निसूक्ष्मचूर्णानिकारयेत् ॥ प्रस्वेदेकंठरोधेचसंधौमर्दन

मिष्यते । एतदुद्भूलनंश्रेष्ठंसंनिपातहरंपरम् ॥

अर्थ-चिरामता, कटुकी, कूठ, अजवायन, इन्द्रजों और बचूर इनका

समभाग चूर्णलेकर देहमें लगावे तथा, संधीनमें विशेष मालिशकरे तो कफसे हुआ कंठावरोध और संनिपातज्वर ये शांत हों ॥

यवानिकाशुद्धूलन ।

यवानिकावचाशुंठीपिप्पलीकारवीतथा ।

एतैरुद्धूलनंश्रेष्ठं त्रिदोषोत्थज्वरेनृणाम् ॥

अर्थ—अजवायन, वच, सोंठ, पीपर और अजमोद, इनका चूर्ण संनिपातज्वर वालेके पसीने आनेमें लगाना उत्तम कहा है ॥

विषाशुद्धूलन ।

विषभागोभवेदेकोमरीचं त्रिगुणं मतम् । आरण्योपलजं

भस्मपोडशांशसमन्वितम् ॥ एकत्रमीलितं चूर्णं धूर्त्तस्व

रसभावितम् । आतपेशोपितं तच्च शीतस्वेदहरं परम् ॥

अर्थ—विष १ भाग, कालीमिरच ३ भाग, आरनेउपलोंकी भस्म १६ भाग, सबको मिलाय अंगोंमें लगावे तो पसीने बंद होय ॥

चणकाशुद्धूलन ।

अथवाचणकाभ्रष्टायवानीचूर्णमिश्रिताः ।

वचोपणारजोयुक्ताः स्वेदसंशोपणामताः ॥

अर्थ—धुनेहुए चनावा चून, आजवायन, वच और काली मिरच इनको मिलाय देहमें मालिशकरे तो पसीने आते हुए बंद हो जावें ॥

चटनी ।

सुरसार्जकनिर्याससमधुव्योपसंधवः ।

महच्छ्लेष्मानिलोद्रेके संज्ञानाशविनाशनः ॥

अर्थ—तुलसीकारस, राठ, त्रिकुटा, सैधानिमक और शहद इनको मिला यके चाटेतो कफवातादिक ज्वरको और मून्डोंको नष्ट करे ॥

लघनविधि ।

त्रिरात्रं पंचरात्रं वा दशरात्रं तथापि वा ।

लघनं सन्निपाते पुकुर्यादारोग्यदर्शनाय ॥

अर्थ—संनिपातरोगीके अच्छा करनेको तीन, पांच, किंवा दशदिन लघन करावे ॥

लंघन ।

शस्तंसुलंघितस्यादौविधायकवलग्रहम् ॥

अर्थ-रोगीको लंघन करनेपर पूर्वोक्त कवल मुखमें धरना चाहिये ॥

अतिलंघनकेविचार ।

कफपित्तद्रवौधातुसहेतेलंघनमहत् ।

आमक्षयादूर्ध्वमपिवायुर्नसहेतेक्षणम् ॥

अर्थ-कफ और पित्त ये द्रवधातु हैं अतएव आमके क्षयपर्यंत बहुत लंघन सहन होते हैं, परंतु वादीवालेको बहुत लंघन क्षणमात्र सहन नहीं होते ॥

लंघितकोअन्न ।

ग्राम्येगुरुत्वंश्रद्धाचविकृतिर्हीनलंघिते । प्रकांक्षालाघवं

ग्लानिःस्वच्छतासुप्रसन्नता॥उपद्रवनिवृत्तिश्चसम्यक्लं-

घितलक्षणम् । संमोहःसंधिशैथिल्यंवातरुक्चातिलंघिते ॥

अर्थ-हीनलंघन होनेसे मैथुन करनेमें अश्रद्धा तथा अंगोंमें भारीपना एलक्षण होते हैं । उत्तम लंघन होनेसे अन्नकी इच्छा अंगोंका हलका होना, ग्लानि, स्वस्थता, सुप्रसन्नता तथा ज्वरोपद्रवोंका नाश ये लक्षण होतेहैं और अतिलंघन होनेसे मोह, संधीका शिथिलपना, वायुके विकार ये होते हैं ॥

पंचमुष्टिकग्रूप ।

पंचमुष्टिकग्रूपेणत्रिकंठककृतेनच । आदोपशमनान्नि

त्यंभिपक्वश्रेष्ठस्तुसाधयेत् ॥ यवकोलकुलित्यानामुद्रमू

लकशुंठिनाम् । एकैकमुष्टिमादायपचेदष्टगुणेजले॥पंचमु

ष्टिकइत्येपवातपित्तकफापहः । शस्यतेशूलगुल्मेचश्वासे

कासेज्वरेक्षये ॥

अर्थ-गोखरू डालके पंचमुष्टिकग्रूप दोपशमन पर्यंत देवे, पंचमुष्टिकको कहते हैं-जौ, बेरकी गुठली, कुलथी, भूंग, मूली और सोंठ ये चार २ तोले लेय तथा अठगुने पानीमें फाटा करे उसकी पंचमुष्टिकग्रूप संज्ञा है, यह घात पित्त कफ इनका नाशक और शूल, गुल्म, श्वास, खाँसी और क्षय इनपर उत्तम है ॥

सप्तमुष्टिकयूप ।

यवकोलकुलित्थैश्चशुष्कमूलकमुद्गैः । धान्याकैर्विंश  
युक्तैश्चयूपोवातज्वरापहः ॥ सप्तमुष्टिकइत्येषसंनिपात-  
ज्वरापहः । कफवातामदोषघ्नःकंठहृद्वक्रशोधनः ॥

अर्थ-जौं, बेरकी गुठली, कुलथी, मूंग, सूखीमूली और सोठ, धनियाँ  
ये प्रत्येक चार ४ तोले लेकर यूप बनावे, तो सप्तमुष्टिक संज्ञक यूप वात  
ज्वर, सन्निपातज्वर, कफ, धातू और आमदोष इनको नाशकरे और  
गला, छाती तथा मुख इनको स्वच्छ करे ॥

कंपादिककीचिकित्सा ।

सन्निपातज्वरेयस्तुकंपतेप्रलपत्यपि ।

किंचिदेवनजानातिचिकित्सातस्यकथ्यते ॥

अर्थ-संनिपातज्वरमें कंप होय वक्तादकरे और बेहोष होय तो उस  
की चिकित्सा कहते हैं ॥

अभ्यंजन ।

अभ्यंजयेत्पुराणेनसर्पिपापूर्वमेवतम् ।

बलारास्नागुडूच्याद्यैस्तेलेश्चपरिपेचयेत् ॥

अर्थ-प्रथम संनिपातवाले रोगीके अंगमें पुराना घी लगावे किंवा  
बला, रास्ना, गिलोय इनका तेल अंगमें लगावे ॥

वर्तकादिरस ।

वर्तकोवर्तकालावोवार्ताकस्तित्तिरीःशशः ।

कुर्लिंगश्चरसेनैपातर्पयेतयथानलम् ॥

अर्थ-वतक, विचित्ररंगका चिडा, लवा, बटेर, तीतर, शशा और  
चिडा इनके मांसका रस रोगीका अभिघ्न देखके देवे ॥

सन्निपातीमांसनिषेध ।

सन्निपातेश्चुधार्तयोभोजयेत्पिशितौदनैः ।

सकथंभिषगाख्यातिलभतेभिषजाधमः ॥

अर्थ-सन्निपातज्वरमें क्षुधितरोगीको जो वैद्य मांस और भात खा-  
नेको देता है, वह अधम वैद्य लोकमें प्रतिष्ठाको कैसे प्राप्त होगा ॥

सुवर्णादिलेप ।

सुवर्णमुक्तारजतप्रवालंकस्तूरिकाकुंकुमरोचनंच । वराट  
रुद्राक्षमधूकविल्वंकुष्ठंचखर्जूरपुनर्नवाच ॥ द्राक्षाकणा-  
नागरपुत्रजीवीसारंगशृंगकतकस्यबीजम् । एरंडमूलंशर-  
शीर्षकंचमयूरिकाश्वेतपुनर्नवाच ॥ स्तन्येनपिद्वाकुरु  
सन्निपातेलेपःसदासर्वगदान्निहति ॥

अर्थ—सोना, मोती, चांदी, मूंगा, कस्तूरी, केशर, गोरोचन, कौडी,  
रुद्राक्ष, मुलहदी, बेलगिरी, कूठ, खजूर, सोंठ, दाख, पीपल, सोंठ,  
जीयापोता, हरणके साँग, निर्मलीके बीज, अंडकी जड़, सरपतेकी जड़,  
अंबाडा और बिसखपरा ये सब औषधस्त्रीके दूधसे पीस लेपकरे तो  
सर्व सन्निपातके विकार दूर हो ॥

चिकित्साप्रक्रिया ।

श्लेष्मनिग्रहमेवादौकुर्याद्व्यादौत्रिदोपजे । निरस्तेश्ले-  
ष्मणिह्यस्यस्रोतःसूद्धादितेषुच ॥ लाघवंजायतेसद्य  
स्तृष्णाचैवोपशाम्यति ॥

अर्थ—सन्निपातज्वरमें प्रथम कफको जीते कफके घटनेपर तथा शिरा  
ओके मार्ग खुलनेपर शरीरमें हलकापना आता है और प्यास दूर होय ॥

अन्यसन्निपातनिदाने ।

एकोल्वणास्त्रयस्तेस्युर्द्युल्वणाश्चतथेतिपद । उल्वणश्चभ  
वेदेकोविज्ञेयःसतुसप्तमः॥प्रवृद्धमध्यहीनाश्चवातपित्तकफे  
श्चपद । सन्निपातज्वरस्येवंस्युर्विशेषास्त्रयोदश ॥

अर्थ—सन्निपातमें कफ, वात और पित्त इन प्रत्येक दोषोंके उल्वण  
होनेसे तीन, दोषोंके उल्वण होनेसे तीन तथा तीन दोषोंके उल्वणोंके मिल  
नेसे एक, सब सातद्वय और प्रवृद्ध, मध्य और हीन जे वात, पित्त और  
कफदोष इनके पर्याय करके छः ऐसे सन्निपातके तेरह भेद होते हैं ॥

वातोल्वणसन्निपात ।

संध्यस्थिशिरसः शूलंप्रलापोगौरवंभ्रमः ।

वातोल्बणस्याद्वचनुगेतृष्णाकंठास्यशुष्कता ॥

अर्थ-वाताधिक्य और कफपित्तहीन ऐसे सन्निपातमें संधि, हड्डी और मस्तकमें शूल, प्रलाप, देहमें गौरव, भ्रम, प्यास तथा गन्ना और मुखका सुखना ये लक्षण होतेहैं ॥

वातोल्बणसंनिपातकीचिकित्सा ।

पंचमूलिकपायंतुदद्याद्वातोत्तरेज्वरे ।

भृशोष्णवासुखोष्णवाटद्वादोपबलावलम् ॥

अर्थ-वाताधिक्य सन्निपातमें पंचमूलका काढा गरम अथवा सुखोष्ण ऐसे दोषोंका बलावल विचारके देवे ॥

मुस्तादिकाढा ।

समुस्तंपंचमूलंचदद्याद्वातोत्तरेज्वरे ।

भृशोष्णवासुखोष्णवाटद्वादोपबलावलम् ॥

अर्थ-नागरमोथा और पंचमूल इनका काढा करके इसे दोषवली होय तो गरम और निर्वल होय तो सुखोष्ण देवे ॥

कट्फलादिकाढा ।

कट्फलाब्दवचापाठपुष्कराजाजिपपटैः ॥ देवदार्वभया-  
शृंगीकणाभूनिवनागरैः ॥ भार्गीकलिंगकटुकासठीकटु-  
तृणधान्यकैः ॥ समांशैः साधितः काथोहिग्वार्द्रकरसै-  
र्युतः ॥ कर्णमूलोद्भवंशोथंहितमन्यागलाश्रयम् । कफवा-  
तज्वरंश्वासंकासंहिकां हनुग्रहम् ॥ गलगंडगंडमालांस्वरभे-  
दंकफात्मकम् । शिरोगुरुत्वंवाधिर्यवृद्धिचकफमेदसोः ॥  
दशमूलज्वरान्क्षेपः सन्निपातज्वराजयेत् । अभिन्यासम्  
संज्ञांचकट्फलादिर्निहंतिच ॥

अर्थ-कायफर, नागरमोथा, वच, पाठ, पोहकरमूल, जीरा, पित्तपापडा, देवदार, हरड, काकडासिंगी, पीपर, चिरायता, सोंठ, भारगी, इन्द्रजों कुटकी, कचूर, रोहिषतृण और धनियाँ ये औषध समान भागले काढा, करके, उसमें हींग और अदरकका रस डालके पीये तो कर्णमूल, गर्दन

और गला इनकी सूजन, कफवातज्वर, श्वास, खांसी, हिचकी, हनुग्रह, गलगंड, गंडमाला, कफजन्यस्वरभेद, मस्तककी पीडा, बहरापना, कफ और भेद इनकी वृद्धि, दशमकारका ज्वर, सन्निपात, अभिन्यास और संज्ञानाश इनको यह कट्फलादिकाठा नाश करता है ॥

पित्तोल्बणसन्निपातनिदान ।

रक्तविण्मूत्रतादाहोस्वेदस्तृड्वलसंक्षयम् ।

मूर्च्छांचेतित्रिदोषेस्याल्लिंगं पित्तगरीयसि ॥

अर्थ—पित्तोल्बणसन्निपात होनेसे मलमूत्रका लालहोना, दाह, पसीने, प्यास, बलक्षय और मूर्च्छा ये लक्षण होते हैं ॥

पित्तोल्बणसं० चिकि० काठा ।

परूपकाणित्रिफलादेवदारुसकटफलम्।चंदनंपद्मकंचैव-  
तथाकटुकरोहिणी॥पृश्निपर्णीशतंत्वेभिस्त्वपितंशतिलंज्व-  
रम् ॥ पित्तोत्तरेनृणामेतत्सन्निपातेचिकित्सितम् ॥

अर्थ—फालसे, त्रिफला, देवदारु, कायफर, लालचंदन, पद्मास, कुटकी और पिठवन ये औषध समान भागले रात्रिको शीतल जलमें भिगोयदेवे, प्रातःकाल काठाकर शीतल होनेपर पीवे तो पित्ताधिकसन्निपात दूरहो ॥

चंदनादिपानी ।

चंदनंपद्मकंचैवतथाकटुकरोहिणी ।

पृथक्पर्णीसमंसिद्धमुपितंशीतलंजलम् ॥

पित्तोत्तरेनृणामेतत्सन्निपातेचिकित्सिते ॥

अर्थ—लालचंदन, पद्मास, कुटकी और पृष्ठिपर्णी, ये समानभागले रात्रिमें शीतल जलमें भिगोयदेवे, प्रातःकाल उस जलको छानके पीवे तो पित्ताधिक सन्निपात-दूरहो ॥

मुस्ताद्यष्टादशांगः ।

मुस्तापपटकोशीरदेवदारुमहौषधम् ।

त्रिफलाधन्वयासश्चनीलीकंपिल्लकंविबृत् ॥

किराततिक्तकंपाठावलाकटुकरोहिणी ।

मधुकंपिप्पलीमूलंमुस्ताद्योगणउच्यते ॥

अष्टादशांगमुदकंसन्निपातज्वरापहम् ॥

पित्तोत्तरेसन्निपातेहितमुक्तमनीषिभिः ॥

मन्यास्तंभेउरोधातेहनुस्तंभेशिरोग्रहे ॥

अर्थ—नागरमोथा, पित्तपापडा, खस, देवदारु, त्रिफला, धमासा, नीली, कवीला, निसोथ, चिरायता, पाठ, खरेटी, कुटकी, मुलहटी, पीपरामूल यह मुस्तादि अष्टादशांगगण इसका शीतलकाठा सन्निपातज्वरका नाशकरे और यह ऋषियोंने पित्ताधिक सन्निपात, मन्या-नाडीके स्तंभ, उरोधात, हनुस्तंभ इनपर कहा है ॥

किरातादिकाठा ।

किराततिक्तकंसुस्तंगुडूचीविश्वभेषजम् ।

पाठोदीच्यमृणालंचशृतंपित्ताधिकेपिबेत् ॥

अर्थ—पित्ताधिक संनिपातमे चिरायता, कुटकी, नागरमोथा, गिलोय, सोंठ, पाठ, नेत्रवाला और कमलगट्टा इनका शीत काठादेवे ॥

शक्यादिकाठा ।

शठौपुष्करमूलंचव्याघ्रीशृंगीदुरालभा ॥ वत्सकस्यच

बीजानिपटोलंकटुरोहणी ॥ एषशक्यादिकोवर्गःसन्नि

पातज्वरापहः । कासंश्वासंदिवानिद्रांरात्रौजागरणं

तथा ॥ मुखशोषंतृपादाहंनिद्रोपंचनियच्छति ॥

अर्थ—फचूर, पुहकरमूल, कटेरी, काकडासिंगी, धमासा, इन्द्रजो, पटोलपत्र और कुटकी यह शक्यादिवर्ग सन्निपातज्वर, दमा, खाँसी, दिनकी निद्रा, रात्रिमे जागना, मुखशोष, प्यास, दाह और निद्रोप इनका नाशकरे ॥

कफोल्बणसन्निपातनिदान ।

आलस्यारुचिहृल्लासदाहवम्यरतिभ्रमैः ।

कफोल्बणंसन्निपातंतद्राकसेनचादिशेत् ॥

अर्थ—कफाधिक संनिपातमे आलस्य, अरुचि, हृल्लास, दाह, वमन, बे-चैनी, भ्रम, तन्द्रा और खाँसी ये लक्षण होते हैं ॥



कफोल्बणचिकित्सा ।

बृहत्यापुष्करंभांगीशठीशृंगीदुरालभा ।

वत्सकस्यचवीजानिपटोलंकटुरोहिणी ॥

बृहत्यादिगणः शस्तःसन्निपातेकफोत्तरे ।

श्वासादिपुचसर्वेषुहितः सोपद्रवेषुच ॥

अर्थ-दोनो कटेरी, पुष्करमूल, भारंगी, कचूर, काकडासिंगी, धमासा, इन्द्रजौ, पटोलपत्र और कुटकी यह बृहत्यादिगण कफादिकसंनिपात, दम और सर्व उपद्रवपर हितकारक है ॥

कफोल्बणोपरकाथ ।

कफोत्तरेबृहत्यादिगणश्चदशमूलजः ।

परूपकाणित्रिफलादेवदारुसकटफलम् ॥

अर्थ-कफाधिक संनिपातपर बृहत्यादिगण, दशमूल, फालसे, त्रिफला, देवदारु और कायफल इनका काढा देय ॥

शुल्बणसन्निपात ।

सर्वलक्षणसंयुक्तरुशुल्बणस्तुमतोबुधैः ॥

अर्थ-सर्वलक्षणोंके युक्त होय उसको शुल्बणसंनिपात जानना ॥

नागरादिकाढा ।

नागरंधान्यकंभांगीपद्मकरक्तचंदनम् । पटोलःपिचुमंद-

श्चत्रिफलामधुकंवला ॥शर्कराकटुकामुस्तागजाह्वाव्या-

धिघातकः । किराततित्तममृतादशमूलीनिदिग्धिका ॥

योगराजोनिहंत्येषःसन्निपातज्वरापहः । सन्निपातसमु-

त्थानंसृत्युमप्यागतंजयेत् ॥

अर्थ-सोंठ, धनियाँ, भाटंगी, पद्मास, लालचंदन, पटोलपत्र, नीमकी-छाल, त्रिफला, मुलहठी, खटेरी, मिश्री, कुटकी, नागरमोथा, गजपीपल, अमलतास, कटुआ चिरायता, गिलोय, दशमूल और फटेली इनका काढा मृत्युसमानभी संनिपातका नाशकरे ॥

व्योपादिकाढा ।

व्योपादत्रिफलारिष्टपटोलीतित्तवत्सकैः ।

सभूनिवामृतापाठैस्त्रिदोषज्वराजिजलम् ॥

अर्थ-सोंठ, मिरच, पीपल, नागरमोया, हरड, बहेडा, आँवला, नीम कीछाल, पटोलपत्र, कुटकी, इंद्रजों, चिरायता, गिलोय और पाट इनका काढ़ा त्रिदोषज्वरका नाशकरे ॥

वातपित्तोल्बणसन्निपात ।

भ्रमःपिपासादाहश्चगौरवंशिरसोतिरूकू ।

वातपित्तोल्बणेष्विद्याल्लिंगमंदकफज्वरे ॥

अर्थ-भ्रम, प्यास, दाह, गौरव, मस्तकपीडा ये वातपित्तोल्बण और हीनकफ ऐसे सन्निपातमें लक्षण होते हैं ॥

वातपित्तोल्बणचिकित्सा ।

वातपित्तहरंवृष्यंकनीयःपंचमूलकम् ।

तत्कायोमधुनाहंतिवातपित्तोल्बणज्वरम् ॥

अर्थ-वातपित्तनाशक और वृष्य ऐसी लघुपंचमूल है अतएव इसका काढ़ा शहद डालके देय तो वातपित्तोल्बण सन्निपातका नाशहोय ॥

वातश्लेष्मोल्बण ।

शैत्यंकासोरुचिस्तंद्रापिपासादाहरुक्ता ।

वातश्लेष्मोल्बणेष्व्याधोल्लिंगपित्तावरेविदुः ॥

अर्थ-वातकफाधिक और हीनपित्त ऐसा सन्निपात होनेसे शरीर, खाँसी, अरुचि, तंद्रा, प्यास, दाह और पीडा ये लक्षण होते हैं ॥

चिकित्सा ।

किराततित्तकंमुस्तंगुडूर्चाविश्वभेषजम् ।

चातुर्भद्रकमित्याहुर्वातश्लेष्मोल्बणज्वरे ॥

अर्थ-फेड़ुआ चिरायता, नागरमोया, गिलोय और सोंठ इनका काढ़ा करके वातकफोल्बणज्वर वालेको देय इसको चातुर्भद्र कहते हैं ॥

पित्तकफोल्बण ।

छर्दिःशैत्यंमुहुर्दाहस्तृष्णामोहोस्थिवेदना ।

मंदेवातेव्यवस्यंतिर्लिङ्गपित्तकफोल्बणे ॥

अर्थ—पित्तकफाधिक और हीनवात ऐसे संनिपातके होनेसे वांति, शीत, चारंवार दाह, प्यास, मोह और हड्डियोंमें पीडा ये लक्षण होते हैं ॥

चिकित्सा ।

पर्पटःकटूफलंकुष्ठमुशीरचंदनंजलम् । नागरंमुस्तकंशृं  
गीपिप्पल्येषांशृतहितम् ॥ तृष्णादाहाग्निमांशेषुपित्तश्ले  
ष्मोल्बणेज्वरे ॥

अर्थ—पित्तपापडा, कायफर, कूठ, खस, लालचंदन, नेत्रवाला, नागर-मोथा, सोठ, काकडासिंगी और पीपल इनका काढा प्यास, दाह, मदा-मि और पित्तकफात्मकज्वर इनका नाश करे ॥

हीनवातमध्यपित्तवश्लेष्माधिकसं० ।

प्रतिश्याछर्दिरालस्यंतंद्रारुच्यग्निमार्दवम् ।

हीनवातेमध्यपित्तेचिह्नंश्लेष्माधिकेमत्तम् ॥

अर्थ—कफाधिक हीनवायु और मध्यपित्त ऐसे संनिपात होनेसे, सरेक-मा, घमन, आलस्य, तंद्रा, अरुचि और मदामि ये लक्षण होते हैं ॥

हीनवातमध्यकफवपित्ताधिकसं० ।

हारिद्रनेत्रमूत्रत्वक्दाहस्तृष्णाभ्रमोरुचिः ।

हीनवातेमध्यकफेर्लिङ्गपित्ताधिकेमत्तम् ॥

अर्थ—पित्ताधिक, हीनवायु और मध्यकफ ऐसे संनिपातके होनेसे नेत्र, मूत्र और त्वचा ये पीलेहो तथा दाह, प्यास, भ्रम और अरुचि ये लक्षण होते हैं ॥

हीनपित्तमध्यकफववाताधिकसं० ।

शिरोरुग्वेपथुश्वासप्रलापच्छर्दरोचकाः ।

हीनपित्तेमध्यकफेर्लिङ्गवाताधिकेमत्तम् ॥

अर्थ—हीनपित्त, मध्यकफ और वाताधिक ऐसे संनिपातमें मस्तकशूल कंठ, श्वास, प्रलाप, घमन और अरुचि ये लक्षण होते हैं ॥

हीनपित्तमध्यकफश्लेष्माधिकसं० ।

शीतगौरवतंद्राश्वप्रलापोस्थिशिरोतिरुक् ।

हीनपित्तमध्यवातेलिङ्गंश्लेष्माधिकेमतम् ॥

अर्थ—हीनपित्त, मध्यवात और कफाधिक संनिपात होनेसे शीतलगे, अंगोंमें गौरवता, तन्द्रा, प्रलाप, हड्डी और मस्तकमें पीड़ा ये लक्षण होते हैं ॥

कफहीनमध्यवातवपित्ताधिकसं० ।

पर्वभेदोभिदौर्वल्यंतृष्णादाहोरुचिभ्रमः ।

कफेहीनेमध्यवातेलिङ्गपित्ताधिकेविदुः ॥

अर्थ—कफहीन, मध्यवात और पित्ताधिक संनिपातमें संधियोमें पीड़ा, भेदाभि, प्यास, दाह, अरुचि और भ्रम ये लक्षण होते हैं ॥

हीनकफमध्यपित्तववाताधिकसं० ।

कासश्वासप्रतिश्यायमुखशोपोतिपाइर्वरुक् ।

कफेहीनेमध्यपित्तेलिङ्गवाताधिकेस्मृतम् ॥

अर्थ—हीनकफ, मध्यपित्त और वाताधिक संनिपातमें खासी, श्वास, सरे-कमा, मुखशोष और पसवाडांमें अत्यंत पीड़ा ये लक्षण होते हैं ॥

छहोंकीएकश्लोकसेचिकित्सा ।

प्रवृद्धं कर्पयेद्दोषं क्षीणं संवर्द्धयेद्विपक् ।

चिकित्सेयं विधातव्यादोपयोर्हीनवृद्धयोः ॥

अर्थ—जो दोष बढाहो उसको क्षीण करे और क्षीणदोषको बढावे, इस-प्रकार वैद्य क्षीण वृद्धदोषोंकी चिकित्सा करे ॥

प्रवृद्धेशमिते दोषे मध्यमः स्वयमेवाहि ।

शान्तियातिशमनीते त्वनुबन्ध्यनुबन्धवत् ॥

अर्थ—बढे दोषके शान्तिहोनेसे मध्यम जो दोष है सो स्वयं शान्ति होजाते हैं जैसे साधिका शान्तहोनेसे अर्थात् दूसरा दुर्बलहोनेसे आपभी शान्ति होजाता है ॥

द्वात्रिंशंगक्राय ।

भाङ्गीभूनिवनिवाधनकटुकवचाव्योपवासाविशालारासा-  
नंतापटोलीसुरतरुजनीपाटलातिदुकैश्च । ब्राह्मीदार्वागु-

दूचीत्रिवृतमतिविपापुष्करत्रायमाणैर्व्याघ्रीसिंहीकलिंगै-  
स्त्रिफलशठियुतैःकल्पितस्तुल्यभागैः ॥ काथोद्वात्रिश-  
नामात्रिभिरधिकदशान्सन्निपातान्निहन्ति शूलंकासादि-  
हिक्काश्वसनगदरुजाध्यानविध्वंसकारी । ऊरुस्तंभात्रवृ-  
द्धीगलगदमरुचिसर्वसंधिग्रहातिमातंगौघान्निहन्यान्मृग-  
रिपुरिहचेद्रोगजालंतथैव ॥

अर्थ-भारंगी, चिरायता, नीमकी छाल, नागरमोथा, कुटकी, वच, सोंठ,  
मिरच, पीपल, अहूसा, इंद्रायणका गूदा, रासना, धमासा, पटोलपत्र, देव-  
दारु, हलदी, पाठल, कुचला, ब्राह्मी, वारुहलदी, गिलोय, निसोथ, अतीस,  
पोहकरमूल, त्रायमाण, दोनोंफटेरी, इन्द्रजौ, हरड, बहेडा, आमला और  
कचूर ये सब औषध समानभागले काढाकरे इसको द्वात्रिंशनामकाथ  
कहते हैं यह तेरह प्रकारके संनिपात, शूल, खाँसी, हिचकी, श्वास, अफरा,  
ऊरुस्तंभ, अंत्रवृद्धि, गलेका रोग अरुचि और संधिग्रह इनको जैसे  
हाथियोंकी पंक्तिकी सिंह नाश करताहै इसप्रकार यह काढा नाशकरे ॥

अष्टादशांगकाढा ।

भूनिवदारुदशमूलमहौषधाब्दतिक्तद्रवीजधनिकेभक्-  
णाकपायः । तंद्राप्रलापकसनारुचिदाहमोहश्वासादियु-  
क्तमखिलज्वरमाशुहन्ति ॥ अष्टादशांगइत्येपमृत्युकल्प-  
ज्वरंजयेत् ॥

अर्थ-चिरायता, देवदारु, दशमूल, सोंठ, नागरमोथा, कुटकी, इन्द्रजौ,  
धनिया और गजपीपल इनका काढा करके पीवे तो तंद्रा, प्रलाप, खाँसी,  
अरुचि, दाह, मोह, श्वास इनकरके युक्त सर्वज्वरोंका नाशकरे यह अष्टा-  
दशांग काढा मृत्युतुल्य ज्वरका नाशकरे ॥

द्वादशांग ।

दशमूलीकपायस्तुसपौष्करकणान्वितः ।

सन्निपातज्वरेदेयःश्वासकाससमन्विते ॥

अर्थ-दशमूल, पोहकरमूल और पीपल इनका काढा सन्निपात ज्वरपर  
देये तो श्वास, खाँसी और सन्निपात इनका नाशकरे ॥

सन्निपातपररेचन ।

विल्वकंठिवृतादंतीसमूलचतुरंगुलम् । पक्कंपायंविस्त्रा-  
व्यनीलीचूर्णविमिश्रितम् ॥ ससर्पिष्कंपिवेत्तूर्णसंनि-  
पातेविरेचनम् ॥

अर्थ—वेलगिरी, निसोय, दंती और अमलतासका गूदा इनका काढा करके इसमें नीलकापूरा और घी मिलाय देवेतो यह सन्निपातका नाशकरे॥

संज्ञानाशचिकित्सा ।

कंपः प्रलपनंयस्यसंज्ञानाशश्चदारुणः । रसैश्चलाववर्तै-  
श्चकुलिंगैःशशतित्तिरैः ॥ तर्पयेत्प्राक्पुराणेनसर्पिषाभ्यं-  
जयेन्नरम् । बलारास्नागुडूच्याद्यैस्तैलैश्चपरिपेचयेत् ॥

अर्थ—जो रोगी कंप, प्रलाप और संज्ञानाश इनके युक्त हो इसको लवा, वटेर, चिड़ा, कबूतर और तीतर इनके मांसरस प्रथम पिलायके फिर अंगोंमें पुरानेघीकी मालिश करावे । तथा खरेटी, रासना और गिलोय इनका तेल देहमें लगावे ॥

विल्वादिकाढा ।

विल्वाग्निमंथः स्योनाकः काश्मरीपाटलातथा । शालि-  
पर्णीपृश्निपर्णीबृहतीद्वयगोक्षुरैः ॥ उभयंदशमूलस्या-  
त्सन्निपातहरोगणः ॥

अर्थ—वेलगिरी, अरनी, टेढ़, कंभारी, पाठ, शालिपर्णी, पृष्ठपर्णी, दो-  
नौकटेरी और गोसूर ये दशमूल है इनका काढा सन्निपातनाशक है ॥

शुंठ्यादिकाढा ।

शुंठीदारुशठीरजोबृहतिकातिकाकिरातांबुदानंताभिर्ज-  
नितः कषायकवरः कृष्णामधुभ्यांयुतः । निःशेषांनि-  
तयोद्भवज्वरहरोजीर्णज्वरस्यांतकृत्कासारिर्वीपमापहो-  
निगदितः शुंठ्यादिकः सूरिभिः ॥

अर्थ—सोंठ, देवदारु, कचूर, पित्तपापडा, कटेरी, कुटफी, चिरायता,  
नागरमोथा और धमासा इनका काढा पीपलका चूर्ण और शहद डालके

देवे तो निःशेष सन्निपात, जीर्णज्वर और खाँसी इनको यह शृंठ्यादि काटा नाशकरे ॥

अर्कादिकाटा ।

अर्कानंताकिरातामरतरुरसनासिंधुवारोग्रगंधातर्कारी-  
शिशुपंचोषणधुणदायितामार्कवाणांकपायः । सद्यस्ती-  
त्रात्रिदोपानपहरतितथामारुतंदंतबंधं शैत्यंगान्नेषुगाढ-  
श्वसनकसनकंसूतिकावातरोगान् ॥

अर्थ—आककीजड, धमासा, चिरायता, देवदारु, रासना, निर्गुडी, वच, अरनी, सहेजना, पीपरी पीपरामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, अतीस और भोंगरा इनका काटा देय तो घोर त्रिदोष, धनुर्वात, वत्तिसीकाभिचना, देहकी अत्यंत शरीदी, श्वास, खाँसी, प्रसूतके और वादीके सर्वरोगोंको नाशकरे ॥

तिक्तादिकाटा ।

तिक्तातिक्तकपर्पटामृतशठिरास्त्राकणापौष्करंत्रायंतीवृ-  
हतीसुरौपधशिवादुःस्पर्शभांगीकृतः । काथोनाशय-  
तित्रिदोपनिकरंस्वापंदिवाजागरनक्तंतृणुसुखशोपदाहक-  
सनश्वासानशोपानपि ॥

अर्थ—कुटकी, चिरायता, पित्तपापडा, गिलोय, कचूर, रास्ना, पीपल, पोहकरमूल, त्रायमाण, कटेरी, देवदारु, सोंठ, हरड, धमासा और भारंगी इनका काटा करके देवे तो त्रिदोष, दिनकीनिद्रा, रात्रिका जागना, प्यास, मुखशोष, दाह, खाँसी और संपूर्णश्वास इनका नाशकरे ॥

त्रिदोषपर ।

पित्तप्रायेचशठ्यादिर्वृहत्यादिःकफादिके . ।

वातोत्तरेसन्निपातेकट्फलादिः प्रयोजयेत् ॥

अर्थ—पित्ताधिक संनिपातवालेको शठ्यादिकाटा और कफाधिकवा-  
लेको वृहत्यादिकाटा एवं वाताधिक्य संनिपातवालेको कट्फलादिका-  
टेकी योजना करे ॥

दाव्याद्यष्टादशांग ।

दारुनागरभूनिवधान्यतिकाकालिंगजैः । गजाद्वादशमूलान्देर्मृत्युकल्पंज्वरंजयेत् ॥ अष्टादशांगइत्येषःसन्निपातज्वरापहः । कासहृद्ग्रहपार्श्वार्तिश्वासद्विक्कावमीहरः ॥

अर्थ—देवदारु, सोंठ, चिरापता, धनियाँ, कुटकी, इन्द्रजों, गजपीपल, दशमूल और नागरमोथा इन अठारह औषधोंका काढा देय तो अत्यंत कठिन, मृत्युके समान ज्वर, सन्निपातज्वर, खांसी, हृदयशूल, पसवाड़े-की पीड़ा, श्वास, हिचकी और घमन इनका नाशकरे ॥

शुद्धूच्यादिकाढा ।

शुद्धूचीचंदनंपद्मनागरेंद्रयवासकम् । अभयारग्वधोशीरपाठाधान्याब्दरोहिणी ॥ कषायंपाययेदेतंपिप्पलीचूर्णसंयुतम् । तंद्राकासज्वरश्वासपिपासादाहनाशनः ॥ विण्मूत्रानिलविष्टंभ्रिदोषप्रभवस्यच । शुद्धूच्यादिगणोद्घोषः पाचनोदीपनःपरः ॥

अर्थ—गिलोय, चंदन, पोहकरमूल, सोंठ, इन्द्रजो, धमासा, हरड, अमलतासका गुदा, नेत्रवाला, पाद, धनियाँ, नागरमोथा, कुटकी इनका काढा कर उसमें पीपलका चूर्ण मिलायके देवे तो तन्द्रा, खांसी, ज्वर, श्वास, प्यास, दाह, मलमूत्र, वायुका रुकना, त्रिदोषजन्यज्वर इनको यह शुद्धूच्यादिगणकाढा दूरकरे और दीपन पाचनहै ॥

अमृतादिकाढा ।

अमृतादशमूलीभ्यांसाधितंविधिवज्जलम् ।

संनिपातज्वरंहन्यात्रयोदशविधंनृणाम् ॥

अर्थ—गिलोय और दशमूल इनका काढा तेरहप्रकारके संनिपातज्वरोंको दूरकरे ।

विश्ववादिकाढा ।

विश्वशुंठीदशमूलीछिन्नापाठाचपिप्पलीन्द्रयवैः ।

सकिराततित्कवासाशमयतिहतौजसंसद्यः ॥



अर्थ-अतीस, सोंठ, दशमूल, गिलोय, पाठ, पीपर, इन्द्रजौ, कडुआ चिरायता और अडूसा इनका काढा देय तो ज्वरकरके क्षीणहुआरोगी शीघ्र अच्छाहोय ॥

ज्यूषणादिकाढा ।

ज्यूषणदशमूलशुंठीभांगीछिन्नोद्भवःकाथः ।

पीतःशमयतिसहसाज्वरमुग्रसंनिपाताख्यम् ॥

अर्थ-त्रिकुटा, दशमूल, सोंठ, भारंगी और गिलोय इनका काढा उग्रसंनिपातको शमन करे ॥

दशमूलादिकाढा ।

द्विपंचमूलीपङ्गुगन्धाविश्वगृध्रनखीद्वयम् ।

कफवातहरःकाथोसंनिपातहरः परः ॥

अर्थ-दशमूल, पीपरामूल, सोंठ, वेर और शरियावेर इनका काढा कफवात हारक और संनिपातको दूरकरे ॥

आढरूषादिकाढा ।

सिंहास्यपर्पटारिष्टयष्टीधान्याब्दनागरम्। दाहृग्रगंधेद्रय  
वाह्वदंष्ट्राग्रंथिकंतथा ॥ एपांकपायमाहृत्यसंनिपातज्व-  
रीपिवेत्।श्वासातिसारकासग्रशूलारुचिहरंपरम् ॥

अर्थ-अडूसा, पित्तपापडा, नीमकी छाल, मुलहठी, धनियौ, नागरमोथा, सोंठ, देवदारु, वच, इन्द्रजौ, गोखरु और पीपलामूल इनका काढा संनिपातज्वर, श्वास, अतिसार, खांसी, शूल और अरुचिको दूरकरे ॥

कट्फलादिकाढा ।

कट्फलंत्रिफलादारुचंदनंसपरूपकम् । कटुकंपद्मकोशी  
रंविपचेत्कार्पिकंजले ॥ तत्संनिपातदाहग्रंपानमात्रेणपू-  
जितम् । दीर्घकालप्रयुक्तानांज्वराणाममृतोपमम् ॥

अर्थ-कायफर, त्रिफला, देवदारु, लालचंदन, फालगु, पटोलपत्र, पद्मास और नेत्रवाला इनका काढा संनिपात, दाह, जीर्णज्वर इनपर साक्षात् अमृतके तुल्य है ॥

किरातादिकाढा ।

चिरज्वरेवातकफोत्त्वणेवात्रिदोषजेवादशमूलमिश्रः ।

किराततित्तादिगणःप्रयोज्यःशुद्धार्थिनेवात्रिवृताविमिश्रः ॥

किराततित्तकोमुस्तंगुडूचीविश्वभेषजम् ।

किरातादिगणोहोपश्चातुर्भद्रकमित्यपि ॥

अर्थ-बहुतदिनका वात कफोत्त्वण ज्वर और त्रिदोष ज्वर इनपर चिरायता, नागरमोथा, गिलोय और सोंठ यह किरातादिगण और दश-मूलकी औषध इनका काढा करके देवे यदि इसको दस्तलानेके अर्थ देवेतो इसमें निसोथ मिलायलेवे ॥

अष्टादशांगकाढा ।

दशमूलेशठीजृम्भीपौष्करंसदुरालभम् ।

भार्गीकुटजबीजचपटोलंकदुरोहिणी ॥

अष्टादशांगइत्येषःसंनिपातज्वरापहः ।

कासहृद्ग्रहपाश्चात्तिश्वासहिक्कावमीहरः ॥

अर्थ-दशमूल, कचूर, काकडासिंगी, पोहकरमूल, धमासा, भारंगी, इन्द्रजौ, पटोलपत्र और कुटकी इसको अष्टादशांग कहते हैं यह काढा संनिपात ज्वर, खोंसी, हृद्ग, पार्श्वशूल, श्वास, हिक्का और धमन इनको नाशकरे ॥

पंचतित्तककाढा ।

क्षुद्रापुष्करभूनिवगुडूचीविश्वभेषजैः ।

पंचतित्तकनामार्यकाथोहत्यष्टधाज्वरम् ॥

अर्थ-कटेरी, पोहकरमूल, चिरायता, गिलोय और सोंठ यह पंचतित्तना-मक गणहै इसका काढा आठप्रकारके ज्वरोंको नाशकरे ॥

दार्व्यक्षुदादिकाढा ।

दार्व्यक्षुदातित्तफलत्रिकंचक्षुद्रापटोलीरजनीसर्पिणवा ।

काथंविदध्याज्ज्वरसन्निपातेनिश्चेतनेपुंसिविवोधनार्थम् ॥

अर्थ-दारुहलदी, नागरमोथा, चिरायता, त्रिफला, कटेरी, पटोलपत्र,

अर्थ-अतीस, सोंठ, दशमूल, गिलोय, पाठ, पीपर, इन्द्रजौ, कटुआ चिरायता और अडूसा इनका काढा देय तो ज्वरकरके क्षीणहुआरोगी शीघ्र अच्छाहोय ॥

व्यूषणादिकाढा ।

व्यूषणदशमूलशुंठीभांगीछिन्नोद्भवःकाथः ।

पीतःशमयतिसहसाज्वरमुग्रसंनिपाताख्यम् ॥

अर्थ-त्रिकुटा, दशमूल, सोंठ, भारंगी और गिलोय इनका काढा उग्रसंनिपातको शमन करे ॥

दशमूलादिकाढा ।

द्विपंचमूलीपङ्ग्रयाविश्वगृध्रनखीद्वयम् ।

कफवातहरःकाथोसंनिपातहरः परः ॥

अर्थ-दशमूल, पीपरामूल, सोंठ, वेर और झरियावेर इनका काढा कफवात हारक और संनिपातको दूरकरे ॥

आढरूषादिकाढा ।

सिंहास्यपर्षटारिष्टयष्टीधान्याब्दनागरम्।दारुग्रगंधेद्रय

वाइवदंष्ट्राग्रंथिकंतथा ॥ एपांकपायमाहृत्यसंनिपातज्व-

रीपिवेत्।श्वासातिसारकासघ्नशूलारुचिहरंपरम् ॥

अर्थ-अडूसा, पित्तपाषाण, नीमकी छाल, मुलहदी, धनियाँ, नागरमोषा, सोंठ, देवदारु, वच, इन्द्रजौ, गोखरू और पीपलामूल इनका काढा संनिपातज्वर, श्वास, अतिसार, खासी, शूल और अरुचिको दूरकरे ॥

कटूफलादिकाढा ।

कटूफलंत्रिफलादारुचंदनंसपरूपकम् । कटुकंपद्मकोशी

रंविपचेत्कार्पिकंजले ॥ तत्संनिपातदाहघ्नपानमात्रेणपू-

जितम् । दीर्घकालप्रयुक्तानांज्वराणाममृतोपमम् ॥

अर्थ-कायफर, त्रिफला, देवदारु, लालचंदन, फालसे, पटोलपत्र, पद्मास और नेत्रवाला इनका काढा संनिपात, दाह, जीर्णज्वर इनपर साक्षात् अमृतके तुल्य है ॥

किरातादिकाढा ।

चिरज्वरेवातकफोल्बणेवात्रिदोषजेवादशमूलमिश्रः ।

किराततिकादिगणःप्रयोज्यःशुद्धचर्थिनेवात्रिवृताविमिश्रः ॥

किराततित्तकोमुस्तंगुडूचीविश्वभेषजम् ।

किरातादिगणोह्येषश्चानुर्भद्रकमित्यपि ॥

अर्थ-बहुतदिनका घात कफोल्बण ज्वर और त्रिदोष ज्वर इनपर चिरायता, नागरमोथा, गिलोय और सोंठ यह किरातादिगण और दश-मूलकी औषध इनका काढा करके देवे यदि इसको दस्तलानेके अर्थ देवेतो इसमें निसोथ मिलायलेवे ॥

अष्टादशांगकाढा ।

दशमूलीशठिशृंगीपौष्करंसदुरालभम् ।

भार्गीकुटजबीजंचपटोलंकटुरोहिणी ॥

अष्टादशांगइत्येषःसंनिपातज्वरापहः ।

कासहृद्ग्रहपार्श्वार्तिश्वासहिक्कावमोहरः ॥

अर्थ-दशमूल, कबूर, काकडासिंगी, पोहकरमूल, धमासा, भारंगी, इन्द्रजौ, पटोलपत्र और कुटकी इसको अष्टादशांग कहते हैं यह काढा संनिपात ज्वर, खाँसी, हृद्रोग, पार्श्वशूल, श्वास, हिचकी और वमन इनको नाशकरे ॥

पंचतित्तककाढा ।

क्षुद्रापुष्करभूर्निवगुडूचीविश्वभेषजैः ।

पंचतित्तकनामार्यकाथोहंत्यष्टाज्वरम् ॥

अर्थ-कटेरी, पोहकरमूल, चिरायता-गिलोय और सोंठ यह पंचतित्तना-मक गणहै इसका काढा आठप्रकारके ज्वरोंको नाशकरे ॥

दाव्यैबुदादिकाढा ।

दाव्यैबुदातित्तफलत्रिकंचक्षुद्रापटोलीरजनीसनिवा ।

काथंविदध्याज्ज्वरसन्निपातेनिश्चेतनेपुंसिविवोधनार्थम् ॥

अर्थ-दारुहलदी, नागरमोथा, चिरायता, त्रिफला, कटेरी, पटोलपत्र,

हलदी और नीमकी छाल इनका काढा संनिपातज्वरोंमें जो मृन्हा आतीहै उसे दूरकरे ॥

अंध्यादिकाढा ।

अंध्यांद्रजामरपुरकृमिशत्रुभांगीभृंगत्रिकदनलकट्फलपौ-  
ष्कराणाम् । रास्नाभयावृहतिकाद्वयदीप्यभूतकेशी-  
किरातकवचाचविकावृकीणाम् ॥ काथोहन्यात्संनिपा-  
तान्समग्रात्तुद्धिभ्रंशस्वेदशैत्यप्रलापान् । शूलाध्मानं  
विद्रधिंश्लेष्मदातान्वातव्याधीन्सूतिकानांचतद्वत् ॥

अर्थ-पीपरामूल, इन्द्रजौ, देवदारु, शूल, वायविडंग, भारंगी,  
भांगरा, त्रिकुटा, चित्रक, कायफर, पौहकरमूल, रास्ना, हरड, दोनोंकटेरी,  
अजवायन, निर्गुडी, चिरायता, वच, चव्य और पाठ इनका काढा  
सर्वसंनिपात, बुद्धिभ्रंश, पसीने, शीत, प्रलाप, शूल, अफरा, विद्रधि, कफ-  
वात, वादीकेरोग और प्रसृतके रोग इनका नाशकरे ॥

लशुनादिकाढा ।

लशुनंतित्तकंकांडंभांगीचातिविपातथा ।

नरमूत्रेणचकाथःसन्निपातेसुदारुणे ॥

अर्थ-लहस, चिरायता, तिरकांड, भारंगी और अतीस इनको  
घोंडेके मूत्रमें काढाकरके देय तो दारुणसन्निपातज्वर नाशहोय ॥

दशमूलादिकाढा ।

दशमूलस्यनिर्गुहः कट्फलादिरजोयुतः ।

तुल्याद्रंकरसोपेतोमृत्युकल्पंज्वरंजयेत् ॥

अर्थ-दशमूलका निर्गुहकरके उसमें कायफलका चूर्ण और काटेके समान  
अदरसका रस ढालके देय तो मृत्युके समान कठिन ज्वरका नाशकरे ॥

पंचमूलादिकाढा ।

पंचमूलीकिरातादिर्गणोयोज्यस्त्रिदोषजे ।

पित्तोत्कटेतुमधुनाकणयाचकफोत्कटे ॥

अर्थ-पंचमूल और किरातादिगण इनका काढा त्रिदोषजनित ज्वरपर  
तथा पित्तोत्कटपर शहदके और पीपलका चूर्ण मिलायके देये ॥

अर्कादिकाढा ।

अकं ग्रंथिकशिग्रदारुचविकानिर्गुडिकापिप्पलीरास्त्राभृंग  
पुनर्नवानलवचाभूनिवशुंठीकृतः ॥ काथःसंहरतित्रिदो  
पमखिलंस्वापानिलंसूतिकानानामारुतशैत्यशांतिकृद्  
पस्मारस्मरन्ध्रवकः ॥

अर्थ-आफकी जड़, पीपरासूल, अमलतासका गुदा, देवदारु, चव्य,  
निर्गुडी, पीपल, रास्त्रा, आंगरा, साँठ, चित्रक, वच, चिरायता और  
साँठ इनका काढा सर्व त्रिदोष ज्वर, निद्रा, प्रसूतके रोग, अनेकप्रकार  
की वायु, शीत, अपस्मार इनका नाशक है ॥

मृतसंजीवनीवटिका ।

विपत्रिकटुकं गंधटंकणमृतशुल्बकम् । धतूरस्य च बीजा  
निर्दिगुलं न वमं मतम् ॥ एतानि समभागानि दिनैकं विजया  
द्रवैः । मर्दयेच्चणकाकाराकर्तव्या वटिका यथा ॥ भक्षणी  
यानुपातव्योरविमूलकपायकः । मृतसंजीवनीनाम्नासं  
निपातज्वरांतकृत् ॥

अर्थ-सिंगियाविष, त्रिकुटा, गंधक, सुहागा, ताम्रकीभस्म, धतूरेके  
बीज और हिगुल ये नौ औषध समान लेकर चूर्णकर भांगरेके रसमें  
एकदिन खरलकरे फिर चनेके प्रमाण गोली बनावे एकगोली खायके  
ऊपरसे आफकीजड़का काढा पीवे तो सन्निपातज्वरका नाश हो ॥

त्रिनेत्ररस ।

शुद्धसूतंसमंगंधंसूतांशमृतताम्रकम् । त्रिभिस्तुल्यैर्गवां  
क्षीरैर्मर्दयेदातपेखरे ॥ मर्दयेद्दिनमेकं तु निर्गुडीशिग्रुजद्रवैः ।  
विधायगोलंतंगोलमंधमृपागतंपचेत् ॥ त्रियामान्वालुका  
यंत्रततःखल्वेवितूर्णयेत् । अष्टमांशं विपत्रत्रक्षिपेत्तेनापि म  
र्दयेत् ॥ त्रिनेत्राख्योरसो ह्येपदेयोगुं जाद्वयोन्मितः । पंच  
कोलकपायेण छागीदुग्धेन वा सह ॥ रसेनानेन भुक्तेन सं  
निपातज्वरो महान् । संशयं व्रजति क्षिप्रं कर्तव्यो नात्र संशयः ॥

अर्थ-पारा गंधक दोनों शुद्ध और तामेकी भस्म ये समभागले और इन औषधोंके बराबर गौका दूध डालके तीव्र घूपमें खरलकरे और एक दिन निशुद्धीके रसमें एकदिन सहेजनेके रसमें खरकर गोला बनाय अंधमूषामें रसके तीन प्रहर वालुकार्यत्रमें पचनकरावे फिर सिद्धहोनेके पश्चात् अष्टमांश शुद्धविष डालके फिर खरलकरे वह त्रिनेत्राख्यरस दोरत्ती पंचकोलके काढेसे अथवा बकरीके दूधसे देय तो निःसंशय महा-संनिपातका नाशहोय ॥

भस्मेश्वररस ।

भस्मपोडशनिष्कस्यादारण्योपलसंभवम् । मरिचनिष्क  
मात्रंचविषनिष्कविचूर्णयेत् ॥ रसोभस्मेश्वरोनाम्नासंनि  
पातज्वरांतकृत् । एकगुंजामितोभक्ष्यार्द्रकस्यद्रवेणहि ॥

अर्थ-आरनेडपलोंकी राख १६ तोले कालीमिरच और सिंगीयाविष ये प्रत्येक एक एक तोले ले बारीक चूर्णकरे यह भस्मेश्वर रस एकरत्ती अदरखके रससे देयतो संनिपातज्वरका नाशकरे ॥

अग्निकुमाररस ।

द्वौकपौसूतकादग्राह्यौगंधकाद्द्वौतथैवच । यत्नतस्तू-  
भयंमर्द्यदिनंहंसपदीरसैः ॥ कल्कस्यवटिकांकृत्वानिक्षि-  
पेत्काचभाजने । कर्पकममृतंतत्रक्षिप्त्वावक्रंनिरोधयेत् ॥  
कुपिकायाः परौभागौवालुकाभिश्चपूरयेत् । सार्द्धयावद  
होरात्रंतावत्तत्रपचेद्रसम् ॥ दीपमात्रेनलोदेयः स्वांगशीतं  
समुद्धरेत् । तोलार्धममृतंतत्रक्षिपेत्तावत्तथोपणम् ॥ भ-  
क्षितोरक्तिकामात्रोरसस्त्वग्निकुमारकः । सन्निपातज्व  
रंहन्याद्वातंमंदाग्रितामपि ॥ शूलसंग्रहणीगुल्मक्षयंपांडु  
गदंतथा । श्वासकासादिकान्सर्वान्गदानेपविनाशयेत् ॥

अर्थ-पारा, गंधक, दोदो कर्पलेकर, फज्जलीकरे फिर उसको हंस-पदीके रसमें १ दीन खरलकरे फिर इस कल्ककी गोली बनाय कांचकी शीशीमें भरे उसके ऊपर १ कर्प विषका चूर्ण डालके शीशीका मुख बंद

करे फिर इस शीशीको बड़े बर्तनमें रखके गलेपर्यंत बालूभरदेवै और १२'प्रहर दीपकाग्निसे पचन करावे स्वांगशीतल होनेपर उसको चूल्हेपरसे उतार औषधको खरलमें ढाले आधातोला विष और आधा तोला कालीमिरच ढालके खरलकरे, यह अमिकुमाररस एकरत्ती रोगीको देय तो संनिपातज्वर, वायु, मंदाग्नि, शूल, संग्रहणी, गोला, पांडू, श्वास और खांसी इत्यादि रोगोंका नाशकरे॥

पंचवक्त्ररस ।

गंधेशटंकमरिचंविपंधतूरजैरसैः । दिनसंमर्दितंशुष्कं  
पंचवक्त्रोरसोभवेत् ॥ आर्द्रकस्यद्रवेणैषदातव्योरक्ति  
कामितः । संनिपातज्वरंधोरनाशयेन्नात्रसंशयः ॥

अर्थ-गंधक, पारा, सुहागा, कालीमिरच और सौंगियाविष ये औषध धतूरेके रसमें १ दिन खरल कर सुखायले तो यह पंचवक्त्ररस तयार हो इसको अदरखके रससे एकरत्ती देवे तो घोरसंनिपातका नाशकरे॥

दूसराप्रकार ।

शुद्धंसूतं विपं गंधं मरिचंटंकणंकणाम् । मर्दयेद्भूर्तज  
द्रावैर्दिनमेकं तु शोषयेत् ॥ पंचवक्त्रो रसोनाम द्विशुं  
जः सन्निपातहा । अर्कमूलकपायंतु सत्र्यूपमनुपा  
ययेत् ॥ युक्तं दध्योदनं पथ्यं जलयोगं च कारयेत् ।  
रसेनानेन शाम्यन्ति सक्षौद्रिण कफादयः ॥ मध्वार्द्र  
करसेनैनं पिबेदग्निविवृद्धये । यथेष्टं घृतमांसाशी  
शक्तो भवति पावकः ॥

अर्थ-शुद्धपारा, विष, गंधक, कालीमिरच, सुहागा और पीपल इन छः औषधोंको धतूरेके रससे १ दिन खरलकर २ रत्तीकी गोली बनावे इसे पंचवक्त्ररस कहते हैं यह आककीजठके काठेमें त्रिकुटाफा चूर्णमिलायेक १ गोली देय और दहीभात इसके ऊपर पथ्यदेवे पीनेके वास्ते शीतल जलदेय तो यह सन्निपातज्वरको दूरकरे शहदके साथ लेनेसे कफादिरोग दूरहों तथा अदरखके रसमें शहद मिलायेके पीवे तो



जठराग्निकी वृद्धि होय और घृत मांसादिक भारी अन्न यथेष्ट भक्षणकरे तोभी पचजावे तथा मस्तकपर जलकी धार देनी चाहिये ॥

उन्मत्तरस ।

रसगंधकतुल्यांशंधतूरफलजैरसैः ।

मर्दयेद्दिनमेकंचतत्तुल्यंत्रिकटुक्षिपेत् ।

उन्मत्ताख्योरसोनामनस्येस्यात्संनिपातजित् ॥

अर्थ-शुद्धपारा १ भाग, गंधक १ भाग इनको घतूरेके फलके रसमें एकदिन खरलकर फिर इसमें बराबरका त्रिकुटाका चूर्ण मिलावे इस रसकी नस्यलेनेसे संनिपात दूरहोवे ॥

कनकसुंदररस ।

कनकस्याष्टशाणाःस्युःसूतोद्वादशभिर्मतः । गंधोपिद्वा-  
दशप्रोक्तस्तान्नांशान्द्वयोन्मितम् ॥ अभ्रकस्यचतुःशाणं  
माक्षिकस्यद्विशाणकम् । वंगोद्विशाणःसौवीरंत्रिशाणं  
लोहमष्टकम् ॥ विपंत्रिशाणकंकुर्याल्लंगलीपलसंमिता ।  
मर्दयेद्दिनमेकंचरसैरम्लफलोद्भवैः ॥ दद्यान्मृदुपुटेवह्नौ  
ततःसूक्ष्मंविचूर्णयेत् । मापमात्रोरसोदेयःसंनिपातेसु-  
दारुणे ॥ आर्द्रकस्वरसेनैवरसोनस्वरसेनवा । किलासं  
सर्वकुष्ठानिविसर्पचभगंदरम् ॥ ज्वरंगरमजीर्णचजये  
द्रोणहरोरसः ॥

अर्थ-सोना २४ मासे, पारा३तोले, गंधक३तोले तामेकी भस्म ८मासे, अभ्रकभस्म १६ मासे, सोनामक्लीवीभस्म ८ मासे, वंगभस्म ८ मासे शुद्धसुरमा२तोलेभर, लोहभस्म२॥तोले, सांगियाविष६तोलेभर, कलियारीकीजड४तोलेलेय, सबको नाँवूके रसमें १ दिन खरलकर मिट्टीके शराव संपुटमें रख कपड मिट्टी चढाय आरने उपलोंकी हलकी पुटेदेवे शीतलहोनेपर उसमेंसे निकाल खरलमे डाल वारीकचूर्णकरके धररक्खे, इसको कनकसुंदररस कहतेहैं यह १ मासे अर्दरखेके रसमें अथवा लहसनके रसमें लेय तो घोर संनिपातको दूरकरे, तथा किलासकुष्ठ, इतरकुष्ठ, विसर्प, भगंदर, ज्वर, विषदोष और अजीर्ण ये रोग दूरकरे ॥

तंद्रासां० ।

सन्निपातज्वरोत्पन्नायुत्तयातंद्राजयेद्विषक् ।

उपद्रवः कष्टतमोज्वराणांसविशेषतः ॥

अर्थ—सन्निपातज्वरमें तन्द्रा उत्पन्नहोतीहै उसको वैद्य युक्तिसे जीते, यह ज्वरमें कष्टसाध्य उपद्रवहै ॥

तंद्रालक्षण ।

आचितामाशयकफेसंनिपातज्वरेदृढे । शीतित्ववश्यंत-  
स्याशुतंद्रासमुपजायते ॥ अभिद्रवरसक्षीरदिवास्वाप-  
निषेवणात् । दुर्बलस्याल्पवातस्यजंतोः श्लेष्माप्रकु-  
प्यति ॥ वायुमार्गसमावृत्यधमनरिनुसृत्यसः । तंद्रासु-  
घोराजनयेत्तस्यावक्ष्यामिलक्षणम् ॥ उन्मीलितविनिर्भुमे-  
परिवर्तिततारके । भवतस्तस्यनयनेलुलितेचलप-  
क्ष्मणी ॥ विवृताननदंतोष्ठमुद्गुरुत्तानशायिनम् । पिच्छि-  
लोच्छिन्नतंतुश्चकंठेश्लेष्मास्यगच्छति ॥ कंठमार्गावरोधश्चवै-  
कृतंचोपजायते । सोर्वाकूत्रिरात्रंसाध्यः स्यादसाध्य-  
स्तुततः परम् ॥

अर्थ—जिसज्वरमें आमाशयमें आम और कफ इनके संचय करके दृढसंनिपात होकर शीतिहोनेपर उस रोगीके निश्चय तन्द्रा उत्पन्नहोती है और पतलेरस, दूध और दिनकी निद्रा इनके सेवन करनेसे दुर्बल तथा अल्पवायूवाले रोगीके कफ कुपितहोता है और वो कफवायूके मार्गको रोगकर धमनियोंमें प्रवेश करते हैं और घोर तन्द्रा उत्पन्नकरे उसके लक्षण कहताहूँ । उसरोगीके नेत्र आधे मिचेहुए किंवा टेढ़ेसे हो, तारे फिरे तथा नेत्रोंकी बन्नी चंचलहो, नेत्रगिरेसे प्रतीतहो, होठ अचंचल-होकर मुख खुला तथा दांत बाहरसे दीखे, बारंबार चित्त लेटे, चिकना तंतुयुक्त कफको गलेमें लावे तथा कंठमार्ग रुकजावे इसप्रकार विकृति होतीहै यह तीनरात्रिके पूर्व साध्यहै और त्रिरात्रानंतर असाध्य जानना ॥

असुरादिभंजन ।

असुराह्वस्य विट्चूर्णं कस्तूरीमधुसंयुतम् ।

अर्थ-आमलोको सिजायकर पीसडाले, फिर इसमें मुनका ( दाख )  
सोंठ इनका चूर्ण मिलाय शहदके साथ देवे तौ साँसी, श्वास, मूच्छा,  
अरुचि ये रोग दूर हों ॥

संनिपातप्रकोपकारण ।

अम्लस्निग्धोष्णतीक्ष्णैःकटुमधुरसुरातापसेवाकपायैः

कामक्रोधातिरूक्षैर्गुरुतरपिशिताहारसौहित्यशीतैः ।

शोकव्यायामचिंताग्रहणवनितयात्यंतसंगप्रसंगैः

प्रायः कुप्यन्तिपुंसामधुसमयशरद्वर्षणसंनिपाताः ॥

अर्थ-खट्टे, चिकने, गरम, बिदाही, चरपरे, मधुर, मद्य, धूप, कपेलेपदा-  
र्थोंके सेवनसे तथा काम, क्रोध, अतिरूक्ष, भारीपदार्थोंका कंठपर्यंत भोज-  
न, मांसभक्षण, शीतपदार्थसेवन शोक, अम, चिंता, पिशाचबाधा, अति-  
स्त्रीप्रसंग इनकारणोंसे और चैत्र, वैशाख, आश्विन, कार्तिक, श्रावण, भाद्र-  
पद इनमहीनोंमें संनिपातका प्रायः प्रकोपहोताहै ॥

संनिपातकेनाम ।

संधिकश्चांतकश्चैवरुग्दाहश्चित्तविभ्रमः । शीताङ्गस्तं-

द्रिकःप्रोक्तःकंठकुब्जश्चकर्णकः ॥ विख्यातोभुग्नेत्र-

श्चरक्तष्ठीवीप्रलापकः । जिह्वकश्चेत्यभिन्यासस्सन्निपाता

स्रयोदश ॥ ४ ॥

अर्थ-१ संधिक, २ अंतक, ३ रुग्दाह, ४ चित्तविभ्रम, ५ शीतांग,  
६ तंद्रिक ७ कंठकुब्ज, ८ कर्णक, ९ भुग्नेत्र, १० रक्तष्ठीवी, ११ प्रलापक,  
१२ जिह्वक और १३ अभिन्यास ये तेरह संनिपात कहे हैं ॥

उनकीमर्यादा ।

संधिकेवासराःसप्त चान्तकेदशवासराः । रुग्दाहेविंशति-

ज्ञेयावन्द्वाष्टौचित्तविभ्रमे ॥ ५ ॥ पक्षमेकंशुशीतांगेतान्द्रि-

केपंचविंशतिः।विज्ञेयावासराश्चैककंठकुब्जेत्रयोदश॥६॥

कर्णकेचत्रयोमासभुग्नेत्रेदिनाएकम् । रक्तष्ठीवीदशा

हानिचतुर्दशप्रलापके ॥ ७ ॥ जिह्वकेषोडशाहानिकला

भिन्यासकक्षणे।परमायुरिदंप्रोक्तंप्रियतेतत्क्षणादपि॥८॥

अर्थ-संधिककी ७, अंतककी १०, रुग्दाहकी २०, चित्तविभ्रमकी २२,

शीतांगकी १५, तंद्रिककी २५, कंठकुब्जकी १३, कर्णककीतीन महीना (९० दिन) भुमनेत्र ८, रक्तघ्नीवीकी १०, प्रलापकी १४, जिह्वकी १६, अभिन्यासकी १६ दिनकिये, संनिपातोंकी परमायुके दिन कहें, परंतु रोगी शीघ्रही मरजाता है ॥

साध्यासाध्य ।

संधिकस्तन्द्रिकश्चैवकर्णकःकंठकुब्जकः ।

जिह्वकाश्चित्तविभ्रंशःषट्साध्याःसप्तमारकाः ॥ ९ ॥

अर्थ-संधिक १, तंद्रिक २, कर्णक, ३, कंठकुब्ज ४, जिह्वक ५, चित्तविभ्रंश ६ ये छह साध्य हैं बाकी बचे सात सो मारक हैं ॥

संधिकसन्निपात ।

पूर्वरूपकृतशूलसंभवंशोपवातबहुवेदनान्वितम् ।

श्लेष्मतापबलहानिजागरसन्निपातमितिसंधिकंवेदेत् ॥

अर्थ-जिसज्वरके पूर्वरूपमें शूल, शोष, वायुकी अत्यंतपीडा, कफ, संतापबलकी हानी और जागरण ये लक्षण हों उसको संधिक संनिपात जानना ॥

संधिकारीरस ।

शुद्धं सूतंसमंगंधमारितंचाभ्रकंसमम् । त्रिक्षारजीरकव्यो  
पत्रिफलालवणैःसमम् ॥ चित्रकस्यकषायेणदिनैकमर्द  
येद्वटम् । गुंजापंचमितंखादित्संधिकारिरितिस्मृतः ॥ पि-  
प्पलीमधुनाचानुपिवेदुष्णोदकंतथा ॥

अर्थ-शुद्धपारा, शुद्धगंधक, अभ्रकभस्म, तीनोंक्षार, जीरा, त्रिकुटा, त्रिफला, निमक ये समानभागले, चित्रकके काटेमें १ दिन खरल करे यह संधिकारी रस ५ रत्ती शहत पीपल इनके साथ देवे और ऊपर गरमजल पिवावे तो यह संधिकसन्निपातको दूरकरे ॥

संनिपातानलरस ।

रसभस्मसमंगंधंताम्रभस्मद्वयोःसमम् । ताम्रतुल्यंस्वर्प  
रंचस्वर्परांशंचहिगुलम् ॥ अम्लवेतसकाभावेक्षारंचणक  
संभवम् । जंवीरैर्गमितंरुध्वापुटकेभूधरेपचेत् ॥ आदायखट्ट  
येचूर्णं हिगुकर्पूरत्र्यूपणम् ॥ चत्वारःसूततुल्याःस्युःसत

ब्राह्म्याद्रकद्रवैः।भावयेच्चमहाराष्ट्र्यानिर्गुड्याकरवीरजैः ॥  
द्रवैरेतैःपृथग्भाव्यसप्तधासप्तधाक्रमात् । चूर्णयित्वातुपट्ट  
गुंजंदापयेदाद्रकद्रवैः ॥ सन्निपातानलःसोयंरसःस्यात्सं  
निपातजित् । अतितंद्राज्वरश्वासकुमकासातिसारजित् ॥

अर्थ- पारदभस्म और गंधक, दोनों एक २ भाग ताम्रभस्म, स्वप-  
रिया और हिंगुल ये प्रत्येक दो दो भाग, लेकर अमलवेतके रसमें यदि  
अमलवेत न मिले तो चनाखार और जंभीरीके रसमें खरलकर भूधर-  
यंत्रमें एकपुट देवे फिर हाँग, कपूर, सोंठ, भिरच, पीपल ये एक २ भागले  
उन्हांसे खरलकरे और ब्राह्मी, अदरक, जलपीपल, निर्गुडी, कनेर इन  
प्रत्येकके रसकी सात २ भावना देय, तो यह संनिपातानल रस तया-  
रहो, इसमेंसे छःरत्तीरस अदरकके रससे देय तो संनिपात, तंद्रा, ज्वर,  
श्वास, ग्लानि, खाँसी और अतिसार इनको नाशकरे ॥

निर्गुड्यादिधूप ।

निर्गुडीपुरसहितःसिद्धार्थकनिवपत्रसंयुक्तः ।

सर्जरसेनसमेतोधूपःसंधिकग्रहंहरति ॥

अर्थ-निर्गुडी, गूगल, सरसो, नीमके पत्ते और राल इनकी धूनी संधि-  
क संनिपातका नाशकरे ॥

दूसरानिर्गुड्यादिधूप ।

निर्गुडीपिचुमंदकुण्डविजयाकार्पाससिद्धार्थकैःपट्टग्रंथात-  
गरामरेंद्रतरुभिमार्तंडमूलान्वितैः।चंडापावकरुद्रमाल्य-  
सहितैर्मध्वासवैर्मोदितैर्धूपोयंग्रहसंनिपातजनितांपीडां-  
पिनापिक्षणात् ॥

अर्थ-निर्गुडी, नीमकीपत्ती, कूठ, भौंग, विनोले, सरसो, वच, तगर,  
देवदार, आककीजड, किरमानी अजवायन, चित्रक और बेलगिरी इन-  
का चूर्णकर इसको शहद और दारूसे भिगोय धूपदेवे तो संनिपात और  
ग्रहोंकी पीडा इनको क्षणमात्रमे दूरकरे ॥

देवदारुकाढा ।

सुरदारुसठीसुधालतासुवहाशुंठियुताःशृताजलेन ।

सपुराःशमयन्तिसेविताःसततंहंतिसदासदागतिम् ॥

अर्थ—देवदारु, कचूर, गिलोय, रास्ना और सोंठ इनके कोठेमें गुल डालके सेवन करे तो वायूका नाशकरे ॥

मुस्तादिकाढा ।

मुस्तैरंडप्राणदावाणदारुच्छिन्नारास्नाभीरुकर्चूरतिक्ताः ।

वासाविश्वापंचमूलीयुगाढचोहन्यान्मन्यास्तंभसंधिग्रहातिम्

अर्थ—नागरमोथा, अंडकीजड, जलपीपल, नीलापियावासा, तेलिया देवदारु, गिलोय, रास्ना, शतावर, कचूर, कुटकी, अडूसा, सोंठ और दशमूल इनका काढा मन्यास्तंभ और संधिघात इनका नाशकरे ॥

वचादिकाढा ।

वचाकवचकच्छुरासहचरामृतभंगुरासुराह्वयननागरात-

रुणदारुरास्नापुरा । वृपातरुणभीरुभिःसहभवन्तिसंधिग्र-

ह्वयथोरुजडिमकुमभ्रमणपक्षघातापहाः ॥

अर्थ—वच, धमासा, गिलोय, भारंगी, पियावासा, देवदारु, नागरमोथा, सोंठ, विधायरा, रास्ना, गुग्गुलु, असर्गंध, अंडकीजड, शतावर इनका काढा संधिक संनिपात, जडता, ग्लानि, भ्रम और पक्षाघात इनका नाशकरे ॥

रास्नादिकाढा ।

रास्नाशुंठीगुडूचीसहचरजलदैर्भीरुपथ्यासुराह्वैस्तिक्ता-

कचूरवासानिलरिपुसहितैःपंचमूलीद्वयेन । एभिर्द्रव्यैःक-

पायस्त्वरितमपहरेत्पीतमात्रःप्रभातेमन्यास्तंभांत्रवृद्धि

ज्वरपिटिककटीसंधिसर्वांगपीडाम् ॥

अर्थ—रास्ना, सोंठ, गिलोय, पियावासा, नागरमोथा, शतावर, हर-  
ड, देवदारु, कुटकी, कचूर, अडूसा, अंडकीजड और दशमूल इनका काढा  
मन्यास्तंभ, अंत्रवृद्धि, ज्वर, पिटिका, कमर, तथा संधि इनका शूल और  
सर्वदेहकी पीडा को दूरकरे ॥

अमृतादिकाढा ।

अमृतोरुवुकविश्वासुरतरुरास्नाहरीतकीकाथः ।

सकलसमीरणरोगान्प्रातःसद्योहरेत्पीतः ॥

अर्थ-गिलोय, अंडकीजड़, सोठ, देवदारु, रास्ना, हरड इनका काढा प्रातःकाल पीवे तो सर्ववातके रोगोंका नाशकरे ॥

अंध्यादिकाढा ।

ग्रंथीकलितरूपथ्याकृतमालशिवाढरूपकैर्विहितः ।

एरंडतैलयुक्तःकाथो हन्यान्मरुन्मांशम् ॥

अर्थ-पीपरामूल, बहेडा, हरड, अमलतासका गूदा, आमले और अड़ूसा इनके काढेमें अंडीकातेल मिलायके पीवे तो वादीसेइए मंदत्वकी नाशकरे ॥

पंचमूल्यादिकाढा ।

मूलीपंचककल्ककल्पितमिदं सन्मागधीमिश्रितम् ।

कौलत्थेनरसेनसैधवयुतंपेयंचविश्वौषधम् ॥

अर्थ-पंचमूल, पीपल, सैधानिमक, सोंठ इनके चूर्णको कुलधीके जलके साथ देवे तो वायुका नाशकरे ॥

रास्नादिकाढा ।

रास्नागुडूचीशठिवृद्धदारुसुराह्वविश्वत्रिफलावरीभिः ।

क्वाथंपिबेद्गुलुसंनियुक्तंसमग्रसंधिग्रहसंनिपाते ॥

अर्थ-रास्ना, गिलोय, कचूर, विधायरा, देवदारु, सोठ, त्रिफला और सतावर इनके काढेमें गुगलमिलायके पीवे तो संधिकसंनिपातको दूरकरे ॥

क्षारादिपरिमाण ।

जीरकंगुग्गुलुंक्षारंलवणंचशिलाजतु ।

हिंशुत्रिकटुकंचैवक्वाथेज्ञानोन्मितांक्षिपेत् ॥

अर्थ-जीरा, गुगल, क्षार, नोन, शिलाजीत, होंग और त्रिकुटा इनका चूर्ण काढेआदिमें ४ मासेडाले ॥

साधिकपरलंघन ।

संधिस्थेहितमस्ति लंघनविधिःस्वेदोपनादादिकम् ।

सूक्ष्मंकर्मसमग्रमेवविहितंकुर्याद्यवागूरसम् ॥

अर्थ-साधिकसंनिपातपर लघन, स्वेदन, पिंडी आदि बाँधना इत्यादि देहहलका करनेके उपचार करना योग्यहै और यवागू आदि पथ्यहै ॥

अंतकसं०निदान ।

दाहंकरोतिपरितापनमातनोतिमोहंददातिविदधातिशि-  
रःप्रकंपम् । हिक्कांकरोतिकसनंचसमाजुहोतिजानीहितं  
विबुधवर्जितमंतकारुण्यम् ॥

अर्थ-दाह, संताप, मोह, शिरःकंप, हिचकी और खांसी ये अंतक  
संनिपातके लक्षणहैं इस अंतकसंनिपातको वैद्यत्यागदे ॥

अंतकरोटीकाबंधन ।

अयंप्रयोगोयदिसन्निपातेभिषग्वराणां कथितो नुभूतः ।  
सरागिकापिष्टपलांडुतोयंविधायसम्यक्चसरोटिकांच ॥  
मृद्वीपुनःस्निग्धविभर्जिताचसोष्णाचताल्वोपरिवंधनी-  
या । यामद्वयंबध्यपुनश्चवध्वायावन्मनुष्यो घृतिमातनो-  
ति ॥ एवंविधिश्चांतकसंनिपातेमृत्युव्यथागच्छतिनिश्चयेन ॥

मृतसंजीवनीरस ।

अर्थ-वैद्योंने बहुत अनुभव करके अंतक संनिपातपर यह प्रयोग  
कहाहै कि, राईकेचूर्णको लहसनके रसमें सानके उसकी रोटी बनाय तेल  
में अथवा घृतमें सैक गरमागरम भस्तकपर बाँधे, दोप्रहरकेबाद फिर  
बाँधे तो मनुष्यके अंतक संनिपातकी ब्यथा दूरहोय परंतु हमारी  
समझमें उसरोटीकी अंडीके तेलमें सेंके ॥

शुद्धंसूतंसमंगंधंस्त्वैकजलीकृतम् । तथालोहक-  
भस्मात्रताम्रभस्मसमंसमम् ॥ विपतालककंकणशिला-  
हिगुलचित्रकैः । हस्तिमुंडीचातिविषंन्यूपणंहेममाक्षि-  
कम् ॥ भृंगीकुंभीमेघनादाःप्रतिचूर्णैरसांशकम् । त्रिदिनं  
मर्दयेत्स्त्वैकद्रवैरार्द्रकसंभवैः ॥ निर्गुंडीविजयाद्रवैस्त्रि-  
दिनंमर्दयेत्पुनः । जंवीरस्यचचागिर्याद्रवैःसंमर्दयेद्दिनम् ॥  
काचकुप्यानिवेश्याथवालुकायंत्रगंपचेत् । द्वियामां-  
तेसमुद्धृत्यमर्दयेच्चाद्रकद्रवैः ॥ दिनैकंशोपितं चूर्णं  
त्रिगुंजसंनिपातजित् । मृतसंजीवनोनामरसोयंशंकरो-



**दितः ॥ मृतोपिसंनिपातेन जीवत्येव न संशयः । सक्षीरं  
दापयेत्पथ्यं देयो वानन्दभैरवः ॥**

अर्थ—पारा और गंधक दोनों की कजलीकरे फिर लोहभस्म, विष, हरताल, मुरदासिंग, मनसिल, हींगुल, चित्रक, हन्दायणका गूदा, अतीस, त्रिकुटा, सोनामक्खी, भांग, जमालगोटा और चोलाईकीबड़, सब समानले अदरक और भांगरेके रसमें एकदिन खरलकरे, फिर काँचकी शीशीमें भर घालुकायंत्रमें २ प्रहर पचन करावे, फिर अदरकके रसमें एक दिन घोटें तो शिवप्रोक्त मृतसंजीवनीरस तयारहो इसको तीन रत्ती देय तो सन्निपातसे आसन्नमरणवालाभी रोगी बचजावे । इसके ऊपर दूध भात पथ्यदेवे अथवा यह रस नमिले तो आनन्दभैरव रस देना चाहिये.

**पथ्यादिकाढा ।**

**पथ्यावृषारवधदारुतिक्तारास्त्रागुडूचीगदजः कपायः ।**

**सोपद्रवाच्चांतकनामधेयाज्वरान्नरं मोचयतीति चित्रम् ॥**

अर्थ—हरड, अदूसा, अमलतासका गूदा, देवदारु, कुटकी, रास्त्रा, गिलोय और कुलिजन इनका काढा उपद्रवसहित मनुष्योंका अंतकज्वरसे मुक्तकरे इसमें क्या आश्चर्य है ॥

**असाध्यत्वकहते हैं ।**

**इहापहायवृतमुष्णवारिज्वरारियूपादिगदापहारि ।**

**ज्वरच्छिदं जीवितदंचनित्यं मृत्युं जयं चेत्तसि चितयस्व ॥**

अर्थ—अंतक संनिपात होनेसे गरम जल, ज्वरनाशक काढ़े, घूपइत्यादि को त्यागके जीवनका देनेवाला और ज्वर नाश कर्ता जो मृत्युंजय शिव उसका चितवन करे ॥

**भिपग्भिरिति निर्णतं संनिपाते तकाभिधे ।**

**भेषजं नाह्नवीनीरैर्वैद्योगोविंद एवाहि ॥**

अर्थ—अंतकसंनिपात होनेसे वैद्योंने ऐसा निश्चय करा है कि, उस रोगीका विष्णुभगवान् वैद्यहै और गंगाजल यही औषधी है अर्थात् भगवन्नामस्मरण और गंगाजल पीवे ॥

रुग्दाहसंनि०निदान ।

प्रलापपरितापनप्रबलमोहमाद्यश्रमः परिभ्रमणवेदना-  
व्यथितकंठमन्याहनुः । निरंतरतृपाकरःश्वसनकासहि-  
क्काकुलःसकष्टतरसाधनोभवतिहन्तिरुग्दाहकः ॥

अर्थ-प्रलाप, संताप, अत्यंतमोह, मंदत्व, श्रम, भ्रमण और कंठ, मन्या-  
नाडी तथा टोड़ी इनमें पीडा, सर्वकाल तृपा, श्वास, खाँसी और हिचकी  
इन लक्षणकरके युक्त ऐसा रुग्दाहसंनिपात कष्टसाध्य और मारक है ॥

जलधरकाढा ।

जलधरमलमजनागरसवालकोशीरपर्पटैःकथितम् ।

यःपिबतिपयः सुशीतंशाम्यतिरुग्दाहकस्तस्य ॥

अर्थ-नागरमोथा, लालचंदन, सोंठ, नेत्रवाला, खस और पित्तपापड़ा  
इनका काढा शीतल होनेपर देवे तो रुग्दाह संनिपातको शमन करे ॥

अभयादिकाढा ।

अभयापर्पटमुस्ताकटुकीशम्याकगोस्तनीकाथः ।

पीतःकरोतिनाशंरुग्दाहरुजोनसंदेहः ॥

अर्थ-हरड़, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, कुटकी, अमलतासका गूदा और  
मुनका(दाख) इनका काढा करके पीवे तो रुग्दाह संनिपात नाश होय ॥

ब्राह्म्यादिकाढा ।

ब्राह्मीद्राक्षाजलधरवचोशीरशम्याकतित्तापथ्याधात्रिक-

लितरुबलानिबकोशातकीभिः।भूर्निवाढ्याभवापिसहितः

पंचमूलीद्वयेनपीतःकाथःसकल्पवनव्याधिरुग्दाहहंता ॥

अर्थ-ब्राह्मी, दाख, नागरमोथा, वच, खस, अमलतासका गूदा, कुटकी,  
त्रिफला, खरेंटो, नीमकीलाल, कडुई धीयाके बीज, चिरायता और दशमूल  
इनका काढा सर्ववात व्याधियोंका और रुग्दाह संनिपातको नाश करे ॥

उशीरादिपडंगकाढा ।

उशीरचंदनोदीच्यद्राक्षामलकपर्पटैः ।

शृतंशीतंजलंदद्याद्दाहत्तूज्वरशांतये ॥

अर्थ-नेत्रवाला, लालचंदन, खस, दाख, आमले और पित्तपाषडा इनका काठा शीतलकरके देय तो दाह, तृषा और ज्वर ये शांति होय ॥  
धान्याककाठा ।

**ससितोनिशिपयुपितः प्रातर्धान्याकतंडुलकाथः ।**

**पीतः शमयत्यचिरादंतर्दाहंज्वरंशैत्यम् ॥**

अर्थ-धनियाँ और चावल इनको रात्रिमें भिगोय देवे, प्रातःकाल इसकी पेयाकर शीतल होनेपर देवे तो अंतर्दाह और पित्तज्वर इनका शमन करे ॥

अगर्वादिधूप ।

**अगरुघनसारसल्लककरुहनतनीरचंदनैर्युक्तः ।**

**सर्जरसेनसमेतोधूपोरुग्दाहकंहंति ॥**

अर्थ-कालीअगर, कपूर, सल्लकी, नख, तगर, नेत्रवाला, चंदन और रार इनकी धूनी रुग्दाहनाशक है ॥

दध्यादिलेप ।

**शमयतिदाहमचिरादधियुक्तैर्धूपल्लवैर्लेपः ।**

**लेपोहिमकरमलयजनिंबदलैस्तक्रपिष्टैर्वा ॥**

अर्थ-घेरके पत्तोंको पीस दहीमें मिलाय अंगोंमें लेपकरे अथवा कपूर, चंदन, नीमकेपत्ते ये एकत्र छाँछमें पीसके लेपकरे तो इससे दाह शमन होवे ॥

बदर्यादिलेप ।

**बदरीपल्लवलेपःश्रीखंडारिष्टकेनसंयुक्तः ।**

**दातव्यःपादतलयोस्त्वरयारुग्दाहसंनिपातघ्नः ॥**

अर्थ-बैरकेपत्ते, चंदन और नीम ये औषध एकत्र पीस पैरोंके तल्लरमें लेपकरे तो रुग्दाह शमन होय ॥

लाजतर्पण ।

**दाहवम्यदितंक्षामंनिरन्नंतृष्णयान्वितम् ।**

**शर्करामधुसंयुक्तंपाययेज्जाजतर्पणम् ॥**

अर्थ-दाह और वमन इनकरके कृश अन्नचले नहीं और वृषार्त्त ऐसे रोगी-को खिलोंका मूष, झूरा और शहत मिलायके देवे ॥

स्त्रीकाआलिङ्गन ।

पयोधराढ्याकुशलांसुरूपानवयौवनाम् ।

प्रमदांस्वभुजाश्लेषैर्भजेद्गुदाहपीडितः ॥

अर्थ-रुग्दाहयुक्त मनुष्यका स्वरूपवती, पतिस्तनी, विलासचतुर ऐसी स्त्रीका आलिङ्गन करनेसे रुग्दाह शमन होय ॥

पथ्यावलेह ।

पथ्यातैलघृतक्षौद्रैर्लिहेदाहज्वरापहाम् ।

कासासृक्सर्ववीसर्पश्वासान्हन्तिवमरिपि ॥

अर्थ-हरडकाचूर्ण, तेल, घी अथवा शहत इनके साथ साथ तो खाँसीमें जो रुधिर गिरे वो, तथा विसर्प श्वास, वमन (वाँति) इनका नाश होय ॥ भैरवीगुटी ।

शुद्धसूतद्विधागंधमर्दयेदिक्षुकद्रवैः । दिनंभाव्यंचमर्थं

चशोपयित्वातुभृंगजैः ॥ चतुर्धाभावयेद्द्रवैस्तिलप-

ण्यांद्रवैश्चसः । भावितंचविशोप्याथचूर्णयेद्दस्त्रगालितम् ॥

चूर्णतुल्यंसूतंताम्रंताम्रादष्टांशकंविषम् । कृष्णाशीतवि-

डंगानिकृष्णाजीरासनंबला ॥ ताम्राधैप्रतिचूर्णस्यात्सर्व-

मेकत्रकारयेत् । यामैकंभृंगजद्रवैर्मर्दयेत्कल्कतांगतम् ॥

स्निग्धभांडगतंपाच्यं पिडयामात्कृशाग्रिना । चणमात्राव-

टीयोज्याचित्रकाद्रैकसैधवैः ॥ सम्यक्त्रिदोषजंहन्तिसंनिपा-

तंसुदारुणम् । भैरवीगुटिकाख्यातादध्यत्रंपथ्यमाचरेत् ॥

अर्थ-शुद्धपारा और गंधक इनकी कजली कर इसके रसमें १ दिन भावना देवे, फिर भाँगरेके रसकी४ भावनादेय, फिर तिलपर्णिके रसकी भावना देकर सुखाय फपडलान कर लेवे पीछे इस चूर्णके समान ताम्रभस्म ताम्रका अष्टमांश सिंगियाविष और काली तथा सपेद चापविडंग, पीपर, जीरा, रास्ना, खटेरी ये प्रत्येक ताम्रसे आधी २ लेवे, सबको एकत्रकर भाँगरेके रससे १ प्रहर खरल करे जब घुटते २ कल्कके समान हो जावे तब घीके चिकने चर्तनमें रखके मंदापिपर जबतक गोला होय तबतक पचन करावे फिर इसकी चनेके प्रमाण गोली करे इसको चीता, अदरस और सेंधानिमक इनके साथ देवे तो त्रिदोष-

जन्य संनिपातका नाश करे इसको ( भैरवीगुटी ) कहते हैं इसके ऊपर दही भातकी पथ्यदेनी चाहिये ॥

चित्तभ्रमसन्निपात ।

यदिकथमपिपुंसांजायतेकायपीडाभ्रममदपरितापोमोह-  
वैकल्यभावः । विकलनयनहासोद्गीतनृत्यप्रलापीह्याभिद-  
धतिनसाध्यंकेपिचित्तभ्रमाख्यम् ॥

अर्थ—किसीप्रकार शरीरमें पीडा, भ्रम, उन्माद, संताप, मोह, विक-  
लपना, नेत्रोंमें व्याकुलता, हँसना, गाना, नाचना और बकना ये लक्षण  
होनेसे इसको चित्तविभ्रम संनिपात कहते हैं यह असाध्य है ॥

मध्वादिकाढा ।

मधुनखशाल्मलिकृष्णावनतरुपथ्यामुरागरूभिश्च ।

मलयजसहितैरैःकाथश्चित्तभ्रमंहन्ति ॥

अर्थ—महुआकी छाल, नख, ( सुगंधद्रव्य ) सेमरका मूसला, पीपर,  
कोहवृक्षकी छाल, हरड, मुरा, अगर और लालचंदन इनका काढा  
चित्तविभ्रमको शमन करे ॥

द्राक्षादिकाढा ।

मृद्वीकामरदारुमत्स्यशकलामुस्तामलकयोमृतापथ्या-  
रेवतरामसेनकरजाराजीफलैःसंयुतः । हन्युश्चित्तरुजो-  
थदुर्दलद्राक्षापटोलीपयःपथ्यापर्पटराजवृक्षकटुकाशं  
वृकपुष्पशृतः ॥

अर्थ—दाख, देवदारु, कुटकी, नागरमोषा, आमले, गिलोय, हरड,  
अमलतासका गूदा, चिरायता, पित्तपापडा और पटोलपत्र इनका  
अथवा ब्राह्मी, दाख, पटोलपत्र, नेत्रवाला, हरड, पित्तपापडा, अमल-  
तासका गूदा, कुटकी और शंखपुष्पी इनका काढा चित्तविभ्रमको शमनकरे ॥

ब्राह्म्यादिकाढा ।

ब्राह्मीचवाभीरुफलत्रिकेणतित्तावलारग्वधतित्तेन ।  
निचाहकोशातकिहारहूराद्विपंचमूलीभिरसौकपायः ॥  
पीतोहिचित्तभ्रमसंनिपातंनिहन्तिरुदाहमपिप्रभूतम् ॥

अर्थ—ब्राह्मी, वच, शतावर, त्रिफला, कुटकी, खैरटो, अमकतासका

गूदा, चिरायता, नीमकीछाल, पीयाफेबीज, दाख और दशमूल इनका काढा चित्तभ्रम संनिपातको और रुदाहको नाशकरे ॥

पथ्यादिकाढा ।

पथ्यापर्पटकटुकामृद्रीकादारुजलदभूनिवाः ।

शम्याकपटोलशिवाकाथश्चित्तभ्रमंहन्ति ॥

अर्थ—हरड, पित्तपापडा, कुटकी, दाख, देवदार, नागरमोथा, कहु-आचिरायता, अमलतासका गूदा, पटोलपत्र और आमले इनका काढा चित्तविभ्रम संनिपातको नाश करे ॥

हरीतक्यादिकाढा ।

हरीतकीपर्पटहारहूराशंबूकपुष्पैःकटुकीपयोदैः ।

शम्याकदेवाह्वयभारतीभिश्चित्तभ्रमंहन्तिकृतःकपायः ॥

अर्थ—हरड, पित्तपापडा, दाख, शंखपुष्पी, कुटकी, नागरमोथा, अमलतासका गूदा, देवदार और ब्राह्मी इनका काढा चित्तभ्रम सन्निपातका नाशकरे ॥

कणाद्यंजन ।

कणोपणोग्रालवणोत्तमानिकरंजवीजक्षणदामलानि ।

पथ्याक्षसिद्धार्थकहिगुशुंठीयुतानिवस्तांबुविमिश्रितानि॥

पिष्टागुटीयंनयनेविधेयाप्रचेतनेतिप्रथितान्वितार्था ।

चित्तभ्रमापस्मृतिभूतदोषशिरोक्षिरोगभ्रमनाशहेतुः ॥

अर्थ—पीपर, कालीमिरच, वच, सैधानिमक, कजाफेबीज, हलदी, आमले, हरड, वहेडा, सरसों, होंग और सोंठ इनका चूणं एकत्रकर बकरेके मूत्रमें खरलकरके गोलीबांधे इसका नेत्रोंमें अंजन करे तो चेतन्यता होय और चित्तविभ्रम, मृगी, भूतदोष, मस्तकरोग, नेत्ररोग और भ्रम इनका नाशकरे ॥

कुंभोद्भवस्य ।

कुंभोद्भवतरोरंभोगुडविश्वाकणान्विम् ।

निहितंनसिन्नूनस्याश्चित्तभ्रमविनाशनम् ॥

अर्थ—अगस्तीयाके पत्तोंके रसमें गुड, सोंठ और पीपलको ढालके नम्य देवे तो चित्तभ्रमको नाशकरे ॥

धूप ।

मुरामूर्धजमेघाह्वमधूकमलयोद्रवैः । मरुत्तरुमधून्मिश्रैः  
पुरपाणिजपांसुभिः ॥ लोहलामज्जकैलाभिर्धूपश्चित्तप्र  
मापहः । ग्रहदोषहरः श्रीदः सौभाग्यकर उत्तमः ॥

अर्थ—मुरा ( गंधद्रव्य ) नेत्रवाला, महुआकी छाल, चंदन, देवदारु, शहद, नखद्रव्य, पित्तपापड़ा, अगर, पीलासुगंधवाला और इलायची इनकी धूनी चित्तभ्रम संनिपात और ग्रहदोष इनकी नाशक तथा लक्ष्मी-कारक और कांतिप्रद है ॥

संनिपातगजांकुश ।

शुद्धं मृतं मृतं चाभ्रं शुद्धेतालकमाक्षिके । हिगुंचतुल्यतु  
ल्यं स्यान्मर्दयेत्खल्वकेद्रवैः ॥ बंध्यापटोलनिर्गुडीसुगंधा  
निबचित्रफैः । धतूरलांगुलीपाठाभृंगाजं वीरजद्रवैः ॥ त्रि-  
दिनं मर्दयेद्देभिश्चूर्णाकृत्य विमिश्रयेत् । त्रिंशत्संधवं वा-  
लं विषं मधुरसारकम् ॥ तुल्यं तुल्यं विचूर्ण्यार्धपूर्वोक्तचंद्र-  
मासमम् । एकीकृत्य भवेत्सिद्धः संनिपातगजांकुशः ॥ संनि-  
पातं निहंत्या शुभापमात्रः प्रयोजितः ॥

अर्थ—पारा, अधकभस्म, हरताल, सुवर्णमाक्षिक ये शुद्धलेवे उसमें समानभाग हींग डालके पींकुवार, बोंक्षककोडा, परबल, सपेद और फाली निर्गुडी, नीम, चित्रक, धतूरा, कलियापी, पाद, भांग और जैभीरी इनके रसमें ३ दिन खरलकरे तथा इसमें क्षारत्रय, संधानिमफ, विष, फाकोली और जमालगोटा ये समान भागले अर्थात् ये पूर्व औषधोंकी बराबर होय इसप्रकार मिलावे तो यह संनिपातगजांकुश रसबने इसमेंसे १ मासे देनेसे संनिपातका नाशकरे ॥

प्राणेश्वररस ।

रसगंधसमं शुद्धं मृतं ताभ्रं मृतं रसम् । दिनेकं तालमूल्याश्च-  
वाराह्यारसमर्दितम् ॥ निरुद्धं काचकुप्यां तुवालुकायंत्रगं  
पचेत् । दिनं वा भूधरेपकासमादाय विचूर्णयेत् ॥ त्रिंश-  
त्पंचलवणं त्रिफलाव्योषचित्रकैः । सजीरकैः सैद्रयवैर्हिगुगु-

गुलुदीप्यकैः ॥ सर्वैःसमैःपूर्वसमचूर्णीकृत्यविमिश्रयेत् ।

मापमात्रं प्रदातव्यं किंचिदुष्णोदकं पिवेत् ॥

सन्निपाताचले वज्रं सज्जरग्रहणी प्रणुत् ।

कुर्यात्प्राणपरित्राणमतः प्राणेश्वरो रसः ॥

अर्थ—शुद्धपारा, गंधक, ताघभस्म, पारदभस्म इन सबको मूसली और चाराहीकंदके रसमें खरलकर शीशीमें भरके बालुकायंत्रमें अथवा भूधरयंत्रमें पचन करावे जब शीतल होजावे तब इसमें क्षारत्रय, पाँचो निमक, त्रिफला, त्रिकुटा, चित्रक, जीरा, इन्द्रजौ, ह्रींग, गूगल और अजवायन, सब समानले इनका चूर्ण पहिली औषधोंके बराबर लेकर मिलावे, फिर इसमेंसे १ मासे लेकर ऊपरसे गरमपानी पीवे तो सन्निपात, संग्रहणी और ज्वर इनको नाशकरे यह प्राणेश्वरसं प्राणोष्की रक्षा करने वाला है ॥ मोरेश्वररस ।

शुद्धं सूतं द्विधा गंधदिनैकं चार्द्रकद्रवैः । मर्दयित्वा च तंगोलं  
गोलार्धेताम्रसंपुटे ॥ क्षिप्तवानिरुध्यतत्संधिमृण्मूपायां नि  
रुध्य च । रात्रौ गजपुटे पाच्यं प्रातरादाय चूर्णयेत् ॥ गुंजैकं  
नागरसमं सघृतं सन्निपातनुत् । अनुपानं पिवेत्पश्चात्तप्तं  
वारिपलद्वयम् ॥ दध्यन्नं दापयेत्पथ्यंतुपायां शीतलं जलम् ।  
कृशंच कुरुते स्थूलं नरं मोरेश्वरो रसः ॥

अर्थ—शुद्धपारा १ भाग, गंधक २ भाग इनको एकदिन अदरखके रसमें खरलकर गोली बांधे उन गोलियोंका आधा तामा ले उसकी डिट्ठी वनाय उसमें घी गोली भरके बंदकर मिट्टीके पात्रमें रखके मुख बंदकर संधियोंको लेपकर बंदकरदेवे फिर १ रात्रि गजपुटमें रखके आँच देवे प्रातःकाल निकालकर चूर्ण करे इसमेंसे १ रत्ती सोंठ और घीसे देवे ऊपर ८ तोले गरम जलपीवे और दहीभातका पथ्यदेके जब प्यास लगे तब शीतल जलदेवे तो यह (मोरेश्वररस) कृशपुरुषको मोटाकरे ॥

शीतांगसंनिदान ।

हिमसदृशशरीरो वेपथुः श्वासहिक्का शिथिलितसकलांगः  
खिन्ननादो ग्रतापः । कुमथुद्वयकासच्छर्द्यतीसारयुक्त-  
स्त्वरितमरणहेतुः शीतांगः प्रभावात् ॥



अर्थ-देह अत्यंत शीतल, कंप, श्वास, हिचकी, अंगोंमें शिथिलता, शब्द धारीक, भीतरसंताप, विनाकारण श्रम, संताप, खोंसी, वमन और अती-सार इनलक्षणों करके युक्त सन्निपातको शीतगात्र ( शीतांग ) सन्निपात कहते हैं यह तत्काल प्राणनाश करे ॥

शीतांगकीचिकित्सा ।

मृतसंजीवनोवाथरसोगुंजाद्रयोहितः सर्वांगसुंदरोवाथस्व  
च्छंदोभैरवोपिवादातव्यः पंचवक्रोवाशीतांगनाशयेद्भुवम् ॥

अर्थ-शीतांग सन्निपातपर मृतसंजीवन रस दो रत्ती किंवा सर्वांगसुंदर अथवा स्वच्छंदभैरव किंवा पंचवक्र रस दवे तो शीतांगसन्निपात नाश होय ॥

अर्कादिकाढा ।

भास्वन्मूलंजीरकव्योपभांगीव्याघ्रीशृंगीपुष्करं गोजलेन।  
सिद्धंसद्यः शीतगात्रातिमोहश्वासश्लेष्माद्रेककासान्निहन्ति ॥

अर्थ-आककीजड, जीरा, त्रिकुटा, भारंगी, कटेरी, काकडासिंगी और पोहकरमूल इनका काढा गोमूत्रमें सिद्धकरके पीवे तो तत्काल शीत-गात्र, संनिपात, मोह, श्वास और कफवृद्धि इनका नाश हो ॥

मातुलिंगादिकाढा ।

मातुलिंगादिभूनिवग्रंथिकंदेवदारुच ।  
दशमूलाजमोदंचशुंठीशीतांगनाशनम् ॥

अर्थ-विजैरेकी केशर, चिरायता, पीपरामूल, देवदारु, दशमूल, अज-मोद और सोंठ इनका काढा शीतांग सन्निपातनाशक है ॥

ककोटिकाद्युद्धर्तन ।

ककोटिकाकंदरजःकुलित्याकृष्णावचाकट्फलकृष्णजीरैः ।  
किराततिक्ताग्निककट्फलं बुपथ्याभिरुद्धर्तनमत्रशस्तम् ॥

अर्थ-ककोटिका कंद, पित्तपापडा, कुलथी, पीपल, वच, फायफर, कालाजीरा, चिरायता, चित्रक, कड़ई तुंबी और हरड इनके चूर्णको देहमें मले तो शीतांग सन्निपातका नाश करे ॥

श्रीविष्टादिचूर्ण ।

श्रीविष्टफलसंभूतभस्मभागाष्टकं शुभम् । मरीचस्यचच-  
त्वारोरसस्यैकीविषस्यच ॥ सूक्ष्मचूर्णततः कृत्वामर्दयेद-

तियत्नतः । असाध्यपि हि शीतांगस्वेदोयाति हि निश्चितम् ॥  
चूर्णचणकभृष्टोत्थं भृष्टभृंगी भवन्तथा । कुलित्थकोत्थ-  
चूर्णेन स्वेदोयाति हि निश्चितम् ॥

अर्थ—शरलवृक्षके फलोकी भस्म ८ भाग, भांग ४ भाग, कालीमिरच ४ भाग, पारा और सिंगियाविषये सब एकत्र कर इनका बारीक चूर्ण करे इसके सेवनसे असाध्य शीतांगवालेके भी पसीने आवे भुनाहुआ चनेका चूर्ण भुना हुआ भांगका चूर्ण और कुलथीका चूर्ण इनकी मालिश करनेसे पसीने दूर हो ॥

तंद्रिकसंनिदान ।

प्रभूतातंद्रार्तिज्वरकफपिपासाकुलतरोभवेच्छयामाजि-  
ह्वापृथुलकटिनाकंटकवृता । अतीसारःश्वासःकुमथुप-  
रितापःश्रुतिरुजोभृशंकंठेजाड्यंशयनमनिशंतंद्रिकगदे ॥

अर्थ— ( तंद्रिक ) सन्निपातमे अत्यंत तंद्रा, शूल, ज्वर, कफ, प्यास इनसे रोगी पीडित हो जोभ काली बठोर और ऊपर फाटेयुक्त हो अतीसार, श्वास, ग्लानि, संताप, कानोंमें पीडा, गलेमें जडता और निरंतर निद्राका आना ये लक्षण होते हैं ॥

तंद्रिकपरीक्षा ।

ज्वरेप्रथममुत्पन्नेचक्षुर्भ्यानेवपश्यति ।

तंद्रिकःसन्निपातोयंकष्टसाध्योभवेत्ततः ॥

अर्थ—ज्वर उत्पन्न होतेही नेत्रोंके आगे अंधेरा आवे तो यह तंद्रिक सन्निपात कष्टसाध्य जानना ॥

मांग्यादिकाढा ।

भांगीगुडूचीधनकंटकारीहरीतकीपौष्करनागराणाम् ।

कृतःकपायस्त्रिदिननिपीतोघोरंजयेत्तंद्रिकसन्निपातम् ॥

अर्थ—भांगी, गिलोय, नागरमोया, फटेरी, हरड, पुद्गलमूल और सोठ इनका काढा तीनदिन पीवे तो घोर तंद्रिक सन्निपात दूर होय ॥

दूसराप्रकार ।

भांगीपुष्करपथ्यानिदग्धिकानागरामृताकायः ।

अपनत्तितंद्रिकभयंनिःसंशयंप्रगेतनेपीतः ॥

अर्थ—भारंगी, पोहकरकमूल, हरड, कटेरी, सोंठ और गिलोय इनका काढा प्रातःकाल पीवे तो निःसंदेह तंद्रिकसंनिपात शमन होय ॥

अमृतादिकाढा ।

अमृतापटोलवासाव्योपयुतस्तंद्रिकेकाथः ॥

अर्थ—गिलोय, पटोलपत्र, अडूसा और त्रिकुटा इनका काढा तंद्रिकपर देवे ॥  
रास्नाअंजन ।

रास्नामनःशिलातैलमंजनंचैवतंद्रिके ॥

अर्थ—रास्ना, मनसिल, इनसे सिद्धकरे हुए तेलका अंजन तंद्रिक संनिपातनाशक है ॥  
तुरंगलालाअंजन ।

तुरंगलालवणोत्तमेंदुमनःशिलामागधिकामधूनि ।

नियोजितान्यक्षिणिनिश्चितद्राक्तद्रांसनिद्राविनिवारयंति ॥

अर्थ—संधानिमक, कपूर, मनसिल और पीपल ये चार औषधोंको घोंडेकी लारमें और शहदमें पिसके अंजन करे तो तंद्रिक को दूरकरे ॥  
कृष्णादिनस्य ।

कृष्णामनःशिलातालमंजनमेवंतंद्रिकेत्विष्टम् ।

अमृतापटोलयूपोव्योपयुतस्तंद्रिकंजयति ॥

अर्थ—पीपल, मनसिल, हरताल, इनका अंजन हितकारी है और गिलोय, पटोलपत्र इनका काढा त्रिकुटाके घृणसे देवे तो तंद्रिक संनिपातका नाशकरे ॥  
कुष्ठादिनस्य ।

कुष्ठगवाक्षीनागरनिशाद्रयमरीचकणावचायुक्तम् ।

वस्तसलिलेनपिष्टंतद्रिकाहिसंभवेन्नस्यम् ॥

अर्थ—कूठ, इंद्रायन, सोंठ, हलदी, दारुहलदी, मिरच, पीपर और वच इनको चकरके सूत्रमें पीस नस्य देवे तो तंद्रिकसंनिपात को दूरकरे ॥  
मरिचादिनस्य ।

मरिचकंचपचंपचावचारुकृमिहरनागरशर्वरीगवाक्ष्यः ।

छगलकजलकान्वितानितान्तंनसिनिहिताननुतंद्रिकंजयति ॥

अर्थ—मिरच, दारुहलदी, वच, कूठ, वायविडंग, सोंठ, हलदी और

इन्द्रवारुणी इनको बकरेके मूत्रमें खरलकर नस्यदेवे तो तंद्रिको निश्चय दूरकरे ॥ क्षुद्रादिनस्य ।

क्षुद्रामृतापौष्करनागराणिशृतानिपीतानिशिवायुतानि ।

शुंठीकणागस्त्यरसोपणानिनस्येनतंद्राविजयोल्बणानि ॥

अर्थ—फटेरी, गिलोय, पोहकरमूल, सोंठ और हरड इनका काढा देकर अगस्तियाके रसमें त्रिकुटा को मिलाय नस्यकरे तो यह नस्य और ऊपर कहाहुआ काढा तंद्राके जीतने को समर्थ है ॥

कंठकुब्जनिदान ।

शिरोर्तिकंठग्रहदाहमोहकंपज्वररेक्तसमरिणार्तैः ।

हनुग्रहस्तापविलापमूर्छास्यात्कंठकुब्जःखलुकष्टसाध्यः ॥

अर्थ—मस्तकका दूखना, कंठका जिकड़ना, दाह, मोह, कंप, ज्वर, वातरक्त, रक्तकी पीडा, ठोडीका जिकड़ना, संताप, मलाप और मूर्च्छा इतने लक्षणयुक्त ज्वरको ( कंठकुब्ज ) सन्निपात कहते हैं ॥

शृंग्यादिकाढा ।

शृंगीवित्सकचेतकीधनसठीभूनिवभागीनिशातिकापुष्क-

रचित्रकैः समरिचैर्व्याघ्रीवृषामिश्रितैः । धात्रीदारुविभी-

तकैश्चचविकाविश्वाकणाकट्फलैःपीतःकृततिकंठकुब्ज-

मचिरात्कोष्णःकपायस्त्वह ॥

अर्थ—काकडासिंगी, कूडाकी छाल, हरड, नागरमोथा, कचूर, चिरायता, भारंगी, हलदी, कुटकी, पुहकरमूल, चित्रक, कालीमिरच, फटेरी, अडूसा, आमर, देवदार, बहेडा, चव्य, सोंठ, पीपल और कायफल इनका काढा किंचित् दण्ण पीवे तो कंठकुब्ज सन्निपात को जीते ॥

त्रिकट्वाद्रिकपाय ।

त्रिकटुकलिङ्गकटुकाहरीतकीविभीतकामलकैः ।

ध्वंसयतिकंठकुब्जंवृषजनीद्वयसंयुतःकपायः ॥

अर्थ—त्रिकुटा, हन्डजौ, कुटकी, हरड, बहेडा, आपले, अडूसा, हलदी और दारुहलदी इनका काढा कंठकुब्जवाले रोगीको हितकारी है ॥

फलात्रिकादिकाढा ।

फलत्रिकयूपणमुस्तकदीकलिङ्गसिंहाननशर्वरीभिः ।

काथः कृतः कृततिकंठकुब्जकंठीरवःकुंजरमाशुयद्वत् ॥

अर्थ-त्रिफला, त्रिकुटा, मोथा, कुटकी, इन्द्रजौ, अडूसा और हलदी इनका काठा करके पीवे तो जैसे सिंह हाथीको जीते इसप्रकार कंठकुब्जको जीते ॥ किरातादिकाढा ।

किरातकटुकाकणाकुटजकंटकारीसटीकलिद्रुकिलिमा-  
भयाकटुककट्फलांभोधरैः । विषामलकपुष्करानल-  
कुलीरशृंगीवृषैर्महौपधसखैरयंजयतिकंठकुब्जगणः ॥

अर्थ-चिरायता, कुटकी, पीपर, इन्द्रजौ, कटेरी, कचूर, बहेडा, देवदारु, हरड़, कालीमिर्च, कायफल, नागरमोथा, अतीस, आमले, पोहकरमूल, चित्रक, काकडासिंगी, अडूसा और सोंठ इनका काठा कंठकुब्ज सन्निपातको जीते

कृष्णादिनस्य ।

अपनयतिकंठकुब्जकृष्णापामार्गयुद्धनस्यम् ।

अथहंतिसलिलसहितंत्रिकटुककटुतुविनीनस्यम् ॥

अर्थ-पीपल और आंगारके रसकी नस्य अथवा त्रिकुटा कडुई धीपाके बीज इनको पानीमें औटायके इसकी नस्य देवे तो कंठकुब्जको दूरकरे सिद्धवटी ।

शुद्धसूतंतथागंधकाकडंसैधवंसमम्।सद्योवालस्यविष्टांच  
द्रवैर्ब्राह्मयाविमर्दयेत् ॥ गुटिकावदराकाराभक्षितारोगना-  
शिनी । इयंसिद्धवटीनामसन्निपातानियच्छति ॥ पूर्वोक्ते-  
नानुपानेनदेयोवानंदभैरवः ॥

अर्थ-शुद्धपारा, शुद्धगंधक, काकडासिंगी, संधानिमक तथा सद्ज वालककी विष्टा ये सब समान भाग ले ब्राह्मीके रसमें सरलकर बराबर गोली बनावे यह गोली सन्निपातरोग नाशक है अथवा पूर्वोक्त अनुपानके साथ आनंदभैरव रस देय बोभी सन्निपातनाशक है ॥

कर्णकसन्निपातनिदान ।

प्रलापश्रुतिह्लासकंठग्रहांगव्यथाश्वासकासप्रसेकप्रभावम् ।

ज्वरंतापकर्णतियोग्लपीडाबुधाःकर्णकंकटसाध्यवदति॥

अर्थ-गेरू, गोखरू, सोंठ, कायफल और वच इनको काँजीमें पीस गरमकर लेप करे तो कर्णमूल शांति हो ॥

शिम्वादिलेप ।

शिग्रराजिकयोःपिष्टं कर्णमूले प्रलेपयेत् ।

कर्णमूलभवः शोफस्तेन लेपेन शाम्यति ॥

अर्थ-सहेंजनेकीछाल और शिरस इनको महीन पीस कर्णकपर लेप करे तो कर्णमूल संबंधी सूजन शांतिहो ॥

अर्ककालेप ।

दशशतकरदुग्धं पुष्करत्वक् समेतं दहनगुडानिकुंभाकुप-  
कासीसयुक्तम् । अपनयति वितीर्णलेपनं सप्तरात्राच्छ्रयथु  
हरणयुक्तं कर्णकग्रंथिमेतत् ॥

अर्थ-पोहकरमूल, दालचीनी, चित्रक, गुड, कायफल, कूठ और हीरा-  
कसीस इन औषधोंका चूर्णकरके आकके दूधमें घोटकर लेप करे तो  
यह लेप सातही दिनमें कर्णमूलको शमन करे ॥

दंत्यादिलेप ।

दंतीचित्रकयोर्मूलं स्नुह्यर्कपयसागुडः ।

भल्लातकास्थिकासीसलेपो भवति कर्णके ॥

अर्थ-दंती, चित्रक, दोनोंकी जड़, धूहर, आकका दूध, गुड, भिला-  
म, मिर्गी और कसीस इनको जलमें पीस लेप करे तो  
कर्णकसंनिपात दूर हो ॥

नागरादिलेप ।

सनागरदेवदारुरास्नाचित्रकपेपितम् ।

प्रलेपनमिदं त्रेपुंगलशोफनिवारणम् ॥

अर्थ-सोंठ, देवदारु, रास्ना और चित्रक इनको जलसे पीस लेप  
तो गलेकी सूजन दूर हो ॥

निशादिलेप ।

निशेगुदीसैधवदारुकुष्ठदार्वाविशालारविदुग्धलेपः ।

तं कर्णग्रंथसमपाहरेद्वाजलौकयापातनमत्र शस्तम् ॥

अर्थ-हरदी, हिंगोट, सैधानिमक, देवदारु, कूठ, इन्द्रायणकीजड इनको आकके दूधसे पीस लेप करे तो कर्णकशांति हो अथवा उस गांठमें जोखलगायके रुधिरको निकाल डाले तो अच्छा होय ॥

बीजपूरादिलेप ।

बीजपूरकमूलत्वक्वाह्निमंथस्तथैवच ।

शरपुंखाशिखीतुंवीसकृष्णाविपमुष्टिभिः ॥

प्रलेपोवाहिर्द्विबीभिःश्वयथौकर्णमूलजे ॥

अर्थ-विजोरेकी जड, दालचीनी, अरनी, सरफोंका, चित्रक, कडुई-तुंवी, पीपल, कुचलाकेबीज इनका लेप कर्णमूलकी सूजनपर करे ॥

वज्रमुष्ट्यादिलेप ।

वज्रमुष्टिभवःकंदोशोथविध्वंसनक्षमः । कर्कटस्यचमां

सेनस्वेदनंबंधनंतथा॥कणमूलभवंशोथनाशयत्यविलंबतः ॥

अर्थ-वज्रमुष्टीका कंद कर्णककी सूजनको नष्ट करे और केकड़ेके मांससे सेके और वही मांस उसपर बांध देवे तो कर्णकसंबंधी सूजन शीघ्रनाश होय ॥ सिद्धार्थादिलेप ।

सिद्धार्थसैधववचाग्रहधूमविश्वैःपिष्टैर्जलेननिशयासहितं

सुसूक्ष्मम् । लेपोहितोरुधिरनिष्क्रमणेप्रभातेशोफव्रण-

स्यशमनःसरुजश्चकर्णे ॥

अर्थ-प्रथम कर्णमूलकी सूजनपर जोख लगायकर रुधिर निकल डाले और दूसरे दिन प्रातःकाल उस सूजनपर सरसों, सैधानिमक, वच, धरकाधूआ, सोठ, हलदी इनकी पानीमें पीस उसका लेप करे तो सूजनशुक्त व्रणको और पीडाको शमन करे ॥

रोहीतकादिलेप ।

लेपेनरोहीतकपीलुसिंधुपुत्राद्रवलीकटुहंजिकावा । तु-

त्थालसर्पपशिलानवसारगंधकासीसकुष्ठपटुहंसपदीकरं-

जः ॥ लेपात्पलंकपयुताश्वसयावशूकानिःसंशयंसपदि-

कर्णकवेदनशतः ॥

अर्थ-रुहीडा, अखरोटवृक्षकी छाल, मोतीकी सीप, इन्द्रायन, करेले,

नीलाथोथा, हरताल, सरसों, मनसिल, नोसादर, गंधक, हीराकसीस, कूट, निमक, हंसपदी, कंजा, गुगल, और जवाखार इनका लेप कर्णमूलपर करे तो तत्काल कर्णमूलकी पीडा दूर करे ॥

मरीचादिनस्य ।

अशिशिरजलपरिमर्दितं मरिचकणालवणजं रजस्त्वरितम् ।

नस्यविधोसेवितं किल कर्णकरुड्नाशनं गदितम् ॥

अर्थ—गरमजलमें मिरच, पीपल और सैधानिमक औटायकर नस्यलेप तो कर्णककी पीडा दूर हो ॥

कर्णकपरनस्य ।

अशिशिरजलयुक्तं नावनं कर्णकार्त्तोजनयति सुखसिद्धिं

घ्राणरंध्रप्रवेशात् । लवणपरमकृष्णाचूर्णयुक्तं प्रभाते सकलमुनिभिरुक्तं व्याधिविध्वंसकारि ॥

अर्थ—कर्णक रोगमें सैधानिमक और पीपल इनका चूर्ण गरम पानीमें डालके प्रातःकाल नस्य लेवे तो कर्णक पीडावालेको सुख होय ॥

सामान्य उपचार ।

तंजयेच्छोणितस्रावैः सर्पिः पानप्रलेपनैः ।

प्रदाहैः कफपित्तघ्नैर्वमनैः कवलग्रहैः ॥

अर्थ—रक्तस्राव, घृतपान, लेप, दागना, कफपित्तनाशक वमन और पे, कवल धरना इत्यादि उपचार कर्णककी सूजनपर करे ॥

अथ

कांजिकादिलेप ।

युक्तं

कांजिकेन सुपिष्टं तु धूर्तबीजप्रलेपनम् ।

राजिकागुडमिश्रेण कर्णमूले सुखावहम् ॥

अर्थ—धतूरेके बीज, राई और गुड इनको एकत्रकर पीस कांजीमें मालय लेप करे तो सुख होय ॥

उपचार ।

रक्तस्रावोजलौकाभिर्घृतपानं च युज्यते ।

कर्णग्रंथिविनाशार्थमायुर्वेदविदां वरेः ॥

अर्थ—कर्णमूलवालेके जोख लगाय रुधिर कटावे और घृत पिवावे तो अच्छा होय ॥



अत्र ।

जीर्णानारक्तशालीनांज्वरघ्नःकाथसाधितः । प्रसृत-  
स्त्वोदनोद्विस्त्रिकायौयूपादिकोपिवा ॥ सचेजीर्यत्य-  
विघ्नेनज्वरीजीवेत्तदाध्रुवम् ॥

अर्थ—पुराने लालचावलोंका ज्वरघ्न काष्ठमें भात अथवा यूप बनायके देवे यदि यह जिस रोगीको निर्विघ्न पचजावे तो रोगी निःसंदेह बचे ॥

**भुग्ननेत्रसंनिपातनिदान ।**

ज्वरवलापचयस्मृतिशून्यताश्वसनभुग्नविलोचनमोहितः ।

प्रलपनभ्रमवेपथुशोथवान्त्यजतिजीवितमाशुसभुग्नदृक् ॥

अर्थ—ज्वरकफे बलक्षीण, स्मरण शक्तिका नाश, श्वास, टेढ़ीदृष्टी, भ्रूच्छर्मा, प्रलाप, भ्रम, कंप ये लक्षण भुग्ननेत्र संनिपातमें होतेहैं यह रोगी तत्काल मरे ॥

**द्राव्यादिकाढा ।**

दार्वीपटोलाघनकंटकारीतित्तानिशार्विवफलात्रिकाणाम् ।

काथोनियोज्योज्वरसंनिपातेविभुग्ननेत्रेप्रतिबोधनाय ॥

अर्थ—दारुहलदी, पटोलपत्र, नागरमोषा, कटेरी, कुटकी, हलदी, कीछाल, हरड, बहेडा और आमला इनका फाटा ज्वर और संनिपात इनपर बोध होनेके लिये देय ॥

**श्रेष्ठादिकाढा ।**

श्रेष्ठापटोलकटुकाघननिवसुराह्वधानीसाहिताः ।

भ्रंतिभृशंमोहंपित्तज्वरसंनिपातोत्थम् ॥

अर्थ—पीपल, पटोलपत्र, कुटकी, नागरमोषा, नीमकीछाल, देवदार कटेरी इनका फाटा मोह, पित्तज्वर तथा संनिपातज्वरका नाश यष्ट्यादिकाढा ।

यष्टीपटोलकटुकाघननिवसुराह्वधान्यः ।

अपहरंतिमोहंपित्तज्वरमुग्रसंनिपातोत्थम् ॥

अर्थ—मुलहटी, पटोलपत्र, कुटकी, नागरमोषा, नीमकीछाल, देवदार और कटेरी इनका फाटा पित्तज्वर और उग्रसंनिपातज्वर इनका नाशक है ॥

मरिचादिनस्य ।

मरिचतुरगंगंधामागधीसिधुजातं लशुनमधुकसारैरुग्रगंध  
द्रकाभ्याम् । छगलकजलपिष्टं संयुतं शास्त्रविद्विः सपदि भव-  
ति नस्यं भुग्ननेत्रप्रमाथि ॥

अर्थ—कालीमिरच, असगंध, पीपल, सैंधानिमक, लहसन, मडुआका-  
गोद, वच और अदरक इनको बकरेके मूत्रमें पीस नस्यदेवे तो भुग्न-  
नेत्र सन्निपातको दूर करे ॥

अश्वगंधादिनस्य ।

तुरंगगंधालवणोग्रगंधामधुकसारोपकमागधीभिः ।

वस्तांबुशुंठीलशुनान्विताभिर्नस्यं त्वसंभुग्नदृशं करोति ॥

अर्थ—असगंध, सैंधानिमक, वच, मुलहटी, अनारदाना, त्रिकुटा और  
लहसन इनको बकरेके मूत्रमें नस्यदेवे तो नेत्र स्वच्छ करे ॥

भूर्निवादिअवलेहअंजन व नस्य ।

भूर्निवमाक्षिकवचासहितंचकुर्याल्लेहंकणोपणरसोनकरा-  
जिकाभिः नित्रांजनंचलवणोत्तमपिप्पलीभ्यां नस्यं वचाम-  
रिचहिं गुमधुकसारैः ॥

अर्थ—चिरायता, शहद, वच, पीपल, मिरच, लहसन और राई इनका  
पिष्ट देवे तथा निमक और पीपल इनका अंजन करे और वच, मिरच,  
मुलहटी और अनारदाना इनका नस्य करावे ॥

मार्तदभैरवरस ।

शुद्धसूतंसमंगंधगंधात्पादांशटंकणमात्ताम्रपात्रेक्षिपेत्पिष्टं-

जयंत्यालोडयेद्रवैः ॥ शिशुमूलरसेनाथभावेयेदृष्टधातपोक

त्रयस्यवासायावद्विरुद्रजटाद्रवैः ॥ तिलपर्णी तथाजा

पिप्पलीपत्रमूलकैः ॥ द्रावेरेवतुसप्ताहं शोष्यं शो

ष्यं विभावयेत् ॥ ताम्रपात्रात्समुद्धृत्य कृत्वा गोलं विशो

पयेत् ॥ वस्त्रेव ध्वामृदाप्यत्र भूधरैः स्वेदयत्पुटे ॥

द्वियामातिसमुद्धृत्य चूर्णयेदोषधैः सह । विपकर्पूरजा-

त्येलारसस्य दशमांशतः ॥ भावेयेद्विजयाद्रावेर्दिनमे-

कंचमर्दयेत् । चतुर्गुणासकपूरमधुनासन्निपातजित् ।  
मार्तंडोयंरसोनामअसाध्यंसाधयेद्भुवम् ॥ दशमूलं पि-  
वेच्चानुपथ्यंस्यान्मुद्गयूपकैः ॥

अर्थ-पारा १ भाग, गंधक १ भाग, सुहागा चतुर्थांश, सबको एकत्र कर तामेके पात्रमें डालके जपंतीके रसकी तथा सहेंजनेकी जडके रस की आठ २ भावना धूपमें धरके तामेके पात्रमें देय और त्रिकुटा, अट्टसा, चित्रक, ईश्वरी, तिलपर्णी, जावित्री, पीपलके पत्ते और जड इन प्रत्येक के रसकी सात २ भावना देवे फिर सुखावे फिर तामेके पात्रमेंसे निकाल उसका गोला कर सुखायके ऊपर कपड़ामिट्टी कर भूधरयंत्रमें दो प्रहर पचन करावे जब शीतल हो जाय तब निकाल बारीक घोंटे उसमें विप, कपूर, जावित्री और इलायची ये सब वस्तु पारंके दशांश डालके भाँगके काठमें एक दिन खरल करे तो यह ( मार्तंड रस ) बने इसमेंसे चार रत्ती शहद और कपूर इनसे देवे ऊपरसे दशमूलका काटा देवे तो असाध्यभी सन्निपातका नाश करे ॥

## रक्तघ्नीसन्निपातनिदान ।

रक्तघ्नीवीज्वरवमितृषामोहशूलातिसारद्विकाध्मानभ्रमण  
वथुश्वाससंज्ञाप्रणाशः । श्यामारक्ताधिकतररसनामण-  
लोत्थानरूपारक्तघ्नीनिगदितग्रहप्राणहंताप्रसिद्धः ॥

अर्थ-रुधिर गिरना, ज्वर, वमन, तृषा, मूर्छा, शूल, अतीसार, हिचका, पेटका फूलना और नेत्रोंमें दाह, श्वास, चित्तभ्रम, जिह्वा काली किंवा लाल उसपर चक्ते हों ऐसे लक्षणयुक्त जो हो उसको ( रक्तघ्नी ) सन्निपात कहते हैं यह प्राणनाशक प्रसिद्ध है ॥

पर्पटादिकाढा ।

पर्पटकधन्वयासकवासाभूतृणकैः कटुकीफलन-  
शर्करयासहितोपिकपायो लोहितमास्यगतं वि-

अर्थ-पित्तपापरा, धमासा, अट्टसा, रोहिस ( सुगंधि तृण ) खांड मिलायके देवे और कंकोलका चूर्ण करके इसकी नस्य प से रुधिर गिरनेको दूर करे ॥

## जलदादिकाढा ।

जलदाह्वयपद्मकपर्पटकमलयोद्भवजातिवरीमधुकैः ।

मधुनिबजलानलचंदनकैः कथितं मुखरक्तदरंसलिलम् ॥

अर्थ-नागरमोथा, पद्मास, पित्तपापडा, चंदन, चमेली, सतावर, मुलहटी, शहद, नीमकीछाल, नेत्रवाला, चित्रक और लालचंदन इनका काढा मुखसे रुधिर बहतेको बंद करे ॥

## रौहिपादिकाढा ।

रौहिपधन्वयवासकवासापर्पटगंधलताकुटुकाभिः ।

शर्करयासममेषकपायः क्षतजष्टीविनउदितउपायः ॥

अर्थ-सुगंधितृण, धमासा, अडूसा, पित्तपापडा, गंधलता, कुटकी इन का काढा खाँडके साथ देवे तो रक्तघ्नीवी सन्निपात दूर हो ॥

## पद्मादिकाढा ।

पद्मकचंदनपर्पटमुस्ताजातिवरारुणचंदनवारि ।

क्षीतकनिवयुतं परिपक्वं वारि भवेदिह शोणितहारि ॥

अर्थ-पद्मास, चंदन, पित्तपापडा, नागरमोथा, चमेलीके पत्ते, ला, लालचंदन, सुमंधवाला, मुलहटी और नीम इनका काढा रक्त रोगों नष्ट करे ॥

## मधुकादिकाढा ।

मधुकमधूकपरूपकपायश्चंदनपल्लवदारुसनाथः ।

श्रीपर्णीफलशीतकपायः ससितइहस्यादस्त्रजयाय ॥

अर्थ-महुआ, मुलहटी, फालसा, रक्तचंदन, पत्रज, देवदार, सालवन, ल इनका काढा शीतल करके खाँड मिलायके देय तो रुधिर बंद

होय ।

## दूर्वादिनस्य ।

प्यंविभाक्ष्यंदूर्वारसैर्नस्यंरसैर्दाडिमपुष्पजैः ।

पयेत् अथवा त्रिफलादूर्वाजलं रक्तहरं परम् ॥

द्वियामां के रसकी अथवा अनारके फूलके रसकी किंवा त्रिफला त्येला रसकी नस्य देवे तो रक्तघ्नीवी सन्निपात नष्ट होय ॥

आम्नादिनस्य ।

आम्नास्थिचपलांडुर्वानासिकाच्युतरक्तजित् ॥

अर्थ—आमके गुठलीकी अथवा लहसनके रसकी नस्यदेवे तो नाकसे रुधिर गिरना बंद हो ॥

चिकित्सा ।

पंचवक्त्रोरसोप्यत्रदेयोगुंजाद्वयोहितः ।

भस्मेश्वरोरसोवाथमापैकंसन्निपातजित् ॥

अर्थ—पंचवक्त्ररस दो रत्ती अथवा भस्मेश्वर १ मासे देय तो रक्तघ्नी-  
वीको नाश करे ॥

रक्तघ्नीवीचिकित्सा ।

रक्तेमोरेश्वरोदेयोरसोगुंजाद्वयंघृतैः । सनागरोनिहं-

त्याशुसन्निपातंसुदारुणम् ॥ अनुपानविशेषाच्चतसंवा

रिपलद्वयम् । दध्यन्नंदापयेत्पथ्यंतृपार्तंशीतलंजलम् ॥

अर्थ—रक्तघ्नीवीमें मोरेश्वररस घृतके और सोंठके चूर्णसे दो रत्ती देय  
अनुपान विशेषमें गरम जल ८ तोले देय और पथ्यमें दहीभात देय  
और अतितृपामें शीतल जल देवे ॥

सोमपाणीरस ।

सूतनिष्कंगंधनिष्कमर्दयेच्चित्रकद्रवैः । मापैकंमृतर्त

क्ष्णस्यान्मृतंशुत्वंचमाक्षिकम् ॥ मापैकंचसंमिश्रयपू

र्वंसूतेथमर्दयेत् । धत्तूरत्रिफलाकन्यावृद्धादाव्वार्द्र-

कद्रवैः ॥ कोशाग्रकस्यमण्डूक्यानिर्गुब्ध्याभृंगिचित्रकैः ।

वयस्थापिचदातारिशकासनद्रवैरपि ॥ प्रतिद्रावंपलै-

कैकंदत्वास्वलपंविमर्दयेत् । रसांसंघूपणंक्षिप्त्वा

मात्रावटीकृता ॥ तांमिश्रसन्निपातात्तदापयेज्ज

वैः । कपायःपंचमूलानामनुपानंप्रशस्यते ॥

त्रंदापयेत्पथ्यंतृपार्तंशीतलंजलम् । सन्निपातंनि

शुसोमपाणीरसोवरः ॥

अर्थ-पारा और गंधक चारचार मासे लेकर उनकी चित्तके रसमें खरल करे फिर १ मासा तीक्ष्ण लोहकी भस्म १ मासा ताम्रभस्म और एक मासा शुद्ध माक्षिक ये एकत्र कर उक्तपारे गंधकमें मिलाय धतूरा, त्रिफला, धीकुवार, विषायरा, अदरक, लाल आम, ब्राह्मी, निर्गुडी, भोंगरा, चीता, आमले, अंडकी जड़ और भांग इनके एक एक पल काटेमें अथवा रसमें घोंटे फिर पारेके समान भाग त्रिकुटेका चूर्ण डालके चनेकी घरावर गोली बनावे ये रक्तष्टीवी सन्निपातपर जीरेके काटेसे देवे और पीछे पंचमूलका काठा देय तथा दहीभातका पथ्य देय जब प्यास लगे तब शीतल जल देवे तो यह (सोमपाणिरस) सन्निपातको दूर करे॥

### प्रलापकसन्निपातनिदान ।

कंपप्रलापपरितापनशीर्षपीडाप्रौढप्रभावपवमानपरोन्य-  
चिंता । प्रज्ञाप्रणाशविकलप्रचुरप्रवादःक्षिप्रप्रयातिपि-  
तृपालपदंप्रलापी ॥

अर्थ-कंप, प्रलाप, संताप, मस्तकपीडा, अत्यंत प्रभाव, स्वच्छता, विषय, इच्छा, अग्न्यपुरुषकी चिंता, बुद्धिका नाश, विकलता, अत्यंतवक-  
राद करना अथवा वाटकरना इन लक्षणों करके ( प्रलापक ) संनिपात  
ना यह रोगीको तत्काल यमलोकको पहुँचावे ॥

मुस्तादिकाढा ।

मुस्तवारिदशमूलनागरपर्पटीमलयजंधवत्वचः ।

वासकःकृतसमानविभागःकाथएवहरतिप्रलापकम् ॥

४-नागरमोथा, नेत्रवाला, दशमूल, सोंठ, पित्तपापडा, लालचंदन,  
नी छाल और अदुसा ये समान माग ले पाठाकर पीवे तो प्रला-  
सन्निपात दूर होय ।

तगरादिकाढा ।

तुरगगंधापर्पटीशंखपुष्पीत्रिदशविटपित्ताभा-  
पिकेशी । जलधरकृतमालश्चेतकीगोस्तनीभ्यां  
प्यंविभातिकपायोमंक्षुपानात्प्रलापम् ॥

असगंध, पापरी, शंखाइली, देवदार, कुटकी, ब्राह्मी,  
द्वियामा, नागरमोथा, अमलतासका गुदा, हरद और दास इनका  
त्येलापक संनिपातको तत्काल शमन करे ॥